(कमलाचन्डीग्रन्थमाला - १०)

बृहन्नील-तन्त्रम्

(आशा-सुशीला हिन्दी-व्याख्या सहितम्)

भाष्याकार एवं सम्पादक

स्वामी शत्रुघ्न दास

सहायक

विकास थपलियाल 'शिवम'

(कमलाचन्डीग्रन्थमाला - १०) बृहन्नीलतन्त्रम् (आशा–सुशीला हिन्दी–व्याख्या सहितम्)

(कमलाचन्डीग्रन्थमाला - १०)

बृहन्नील-तन्त्रम्

(आशा-सुशीला हिन्दी-व्याख्या सहितम्)

भाष्याकार एवं सम्पादक

स्वामी शत्रुघ्न दास

सहायक

विकास थपलियाल 'शिवम'

कमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

बृहन्नील-तन्त्रम्

(तारा-काली-साधना-विधि)

(आशा-सुशीला हिन्दी व्याख्या सहित)

भाष्यानुवाद एवं सम्पादक

स्वामी शत्रुघ्न दास

सहायक

विकास थपलियाल 'शिवम'

प्रकाशक

श्री मधुसूदन प्रकाशन

पो०ओ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक :

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो०ओ० - जाखचौरा
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरभाष - 09760219141, 09411184063, 09675314181
mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2016 (चैत्र शुक्ल नवमी 'तारा जयन्ती' - 2073)

मूल्य 750/- मात्र

मुख्य प्राप्ति स्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
469/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं0 21 ए, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली - 110002
फोन - 011-32996391

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117, गोपाल मन्दिर लेन
पो.बॉ. नं. 1129, वाराणसी-221001
फोन - 0542-2335263

टाईपसेटिंग :

कृष्णा कम्यूनिकेशन्स, ऋषिकेश

मुद्रक :

Kamla-Chandi Granthmala - 10

BRIHANNĪL - TANTRAM

(TARA-KALI-SADHANA-VIDHI)

'WITH ASHA-SHUSHILA HINDI COMMENTRY'

Edited & Translated by

SWAMI SHATRUGHNA DAS

Assisted by

VIKAS THAPLIYAL 'SHIVAM'

Published by
Madhusudan Prakashan
P.O. - Jakh Chaura, Tehri-Garhwal
Uttarakhand - 249130

Publishers :
Shri Madhusudan Prakashan
P.O. Jakhchaura, Tehri Garhwal
Uttarakhand - 249130
Tel. : 09760219141, 09411184063, 09675314181
E-mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© All Rights reserved with the Publisher

First Edition - 2016 (Chaitra Shukl Navami 'Tara Jayanti'-2073)

Price : 750/-

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 011-32996391

CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
K.37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 0542-2335263

Typesetting :
Krishna Communications, RKSH

Printed by :

कौलावधूत परम पूज्य शिव स्वरूप सद्गुरुदेव

श्रीयुत् कालिकानन्द नाथ जी

के आशीर्वाद का कृपा प्रसाद

उनके श्री चरणों में

सादर समर्पित

- विकास थपलियाल 'शिवम्'

पूर्व-पीठिका

कर्पूरेन्दु-निभां सितां वर-युगां रत्नोल्लसद्-भूषणाम्,
चन्द्रार्धाङ्कित-भालकां त्रि-नयनां हारावली-भूषिताम्
विभ्राणां नृ-कपाल-कर्तृक-लते संशोभि-वक्त्राम्बुजाम्,
चेटीभिः परिवारितां भगवतीं तारां परमाश्रये॥

विश्व-सृष्टि के विकास का मूल आधार पुरुष-प्रकृति का समन्वय है। इस पुरुष के 'काल' तथा 'यज्ञ' भेद से दो विवर्त है। प्रथम काल-पुरुष अनादि तथा व्यापक है। इस काल-पुरुष का ही यत्किञ्चित भाग परिछिन्न होकर यज्ञ पुरुष कहलाता है। सृष्टि का प्रथम प्रवर्तक काल-पुरुष है। यज्ञ-पुरुष भी काल-पुरुष के आश्रय से ही विश्व संरचना में समर्थ होता है। मन्त्र-संहिताओं में जो तत्व 'काल' नाम से अभिहित है, उपनिषदों में उसे ही 'परात्पर' कहा गया हे। सर्वमृत्युघन अमृतत्व को ही 'परात्पर' नाम से सम्बोधित किया गया है। अमृततत्व सत्, मृत्युतत्व असत् है। परन्तु दोनों परस्पर ओत-प्रोत हैं - **अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् (१शत०१०/५/२), तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वास्यास्य बाह्यतः (ईश ५)।**

एक निरञ्जन, निर्गुण, शान्त, शाश्वत, अभय, पूर्ण, मृत्युलक्षण है तो दूसरा साञ्जन, सगुण, अशान्त, अशाश्वत, सभय, अपूर्ण स्वलक्षण है। तमः प्रकाशवत परस्पर अत्यन्त विरुद्ध स्वभाव होते हुए भी दोनो अविनाभूत हैं। इनमें कौन आधार कौन आधेय है, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। एक के सर्वथा सत् होने के कारण वह अविनाशी है तो दूसरा सर्वथा असत् है, विनाश होना उसका स्वरूप है। सदसद्रूप अमृत-मृत्यु की समष्टि का नाम ही 'काल-पुरुष है। इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में - **'अमृतञ्चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन'** कहकर व्यक्त किया गया है। यह तत्व न तो

पूर्णतः **'सत्'** है और न ही **'असत्'**। 'सत्' तथा 'असत्' परस्पर विरुद्ध धर्मी होने के कारण उस तत्व को **'सदसत्'** रूप भी नहीं कहा जा सकता है। इसे ही वेद -

''नैव वा इदमग्रेऽसदासीत् नैव सदासीत्। आसीदिव वा इदमग्रे नेवासीत्। तस्मादेतद ऋषीणाऽभ्यनुक्तं - नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् इति।' रूप से वर्णित करता है।

इसी विलक्षण अनिर्वचनीय तत्व को 'परात्पर' कहा गया है। यही 'काल-पुरुष' है। इसी विश्वातीत **'महाकाल-पुरुष'** की (उससे सर्वदा अभिन्न) शक्ति का नाम ही **'महाकाली'** है। एक ही तत्व शिव-शक्ति के रूप में परिणत होकर 'अर्धनारीश्वर' बनता है। शक्ति तथा शक्तिमान में स्त्री-पुरुष भाव रूप भेद मानना भी सर्वथा अनुचित कहा जाता है। इसी तथ्य को रहस्य-शास्त्र -

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता।।
अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् सदपि नारद।। (देवी० भा० ९/१/१०-११)

और भी - **अहमेवास पूर्वं तु नान्यत् किञ्चिन्नगाधिप।**
तदात्मरूपं चित्संवित परब्रह्मैकनामकम्।।
तस्य काचित स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
पाकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः।।
स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत् सर्वं चराचरम्।
सापि मत्त पृथङ् माया नास्त्येव परमार्थतः।। (देवी० भा० ७/३३/५)

इस प्रकार से व्यक्त करता है। सृष्टि से पूर्व जब कुछ न था, उस समय केवल अनुपाख्य तम था। इसी अवस्था का निरूपण करते हुए मनु ने कहा है -

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।। (मनु०१/५)

यही अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रत्यर्क्य एवं अनिर्देश्य तत्व महाकाल है तथा उसी की शक्ति का नाम महाकाली है। आगमशास्त्रों में प्रथमा, आद्या आदि नामों से व्यवहृत होने वाली इसी महाकाली रूप महाविद्या का सृष्टि-पूर्व साम्राज्य रहता है। रात्रि को प्रलयकाल का स्वरूप कहा गया है। उसमें भी घोरतम युक्त अर्धरात्रि (लगभग १२ बजे) का समय जो है, वही

महाकाली है। अर्धरात्रि से लेकर सूर्योदय से पूर्व तक के मध्य का काल महाकाली है। मध्यरात्रि के पश्चात् उत्तरोत्तर तम का ह्रास है। इस मध्य रात्रि से सूर्योदय से पूर्व तक के काल को प्राचीन मनीषी ऋषियों द्वारा तम के तारतम्यानुसार ८४ भागों में विभक्त किया गया है। यही महाकाली के ८४ अवान्तर विभाग कहे गये हैं। प्रत्येक का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। शक्ति के इन्हीं स्वरूपों का स्पष्टीकरण करने के लिए 'निदान' विद्या के आधार पर उन ऋषियों ने उनकी भिन्न-भिन्न मूर्तियों की कल्पना की है। सभी शक्तियाँ अचिन्त्या, निर्गुण तथा प्रत्यक्ष से परे है, परन्तु -

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

इसी आर्ष-सिद्धान्त के अनुसार ही उन शक्तियों के स्वरूप-ज्ञान तथा उपासना हेतु उनकी कल्पित मूर्तियों की रचना की गई है। सभी (दश) महाविद्याओं के स्वरूप का निदान से सम्बन्ध है।

निदान का अर्थ है सङ्केत। अर्थात् अमुक वस्तु के द्वारा अमुक भाव को जानना। जैसे कि शोक का निदान (सङ्केत-सूचक) काला रङ्ग (अथवा वस्त्र), व्यवधान-आपद् का निदान लाल रंग, निरुपद्रवता का निदान हरित वर्ण, यश का निदान श्वेत वर्ण, पृथिवी का निदान 'कमल', मोह का निदान 'सुरा' आदि-आदि। परन्तु इस विषय में इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि इस 'निदान' का सम्बन्ध सजातीय भाव से ही रहता है। शोक के कारण उसके सन्ताप से सारी चेतना-ज्योति के आवृत हो जाने के कारण ज्ञान-प्रकाश मन्द हो जाता है। ऐसे ही कृष्ण-वर्ण भी सारे प्रकाश को स्वयं में आवेशित कर लेता है। इसी साम्य के कारण ही कृष्ण वर्ण (वस्त्र) को शोक का निदान (सङ्केतक) माना गया है। ऐसे ही कीर्ति मनुष्य से रश्मिवत् निकलकर चारों ओर उस मनुष्य को प्रकाशित (प्रसिद्ध) कर देती है। शुक्ल वस्त्र, शुक्ल रूप (वर्ण) प्रकाश को चारो ओर अपवर्तित कर स्वयं को प्रकाशित करता है। यही कारण है कि शुक्ल वस्त्र को कीर्ति का निदान माना गया है। जल में रुद्रवायु के प्रवेश के कारण उसमें 'घनता' आने से वह 'हरित काई' के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यही 'पुष्करपर्ण' है। **'आपो वै पुष्करपर्णम्'** (शत०६/४/२/२) के अनुसार यह पत्ता (काई) वास्तव में जल ही है। यही पुष्करपर्ण फेन, मृत्, सिकता, शर्करा, अश्ना, अय, हिरण्य इन रूपों में परिणत होता हुआ 'पृथिवीपुर' रूप में परिणत हो जाता है। पृथिवी की सृष्टि पुष्करपर्ण से होने के कारण उस जल से उत्पन्न होने वाले

कमल को पृथिवी का निदान माना गया है। इस प्रकार जिस देवता के हाथ में कमल-पुष्प गृहीत है, सम्पूर्ण भूमण्डल पर उस देव-प्राण का साम्राज्य व्याप्त है, ऐसा विश्वास करना चाहिए। सुरा विवेक-शक्ति नाशक माया जनित मोह का प्रतीक है। भगवती के हाथ में स्थित सुरापात्र इस बात का संकेत करता है कि महामाया ने अपनी मोह-मदिरा से समस्त सृष्टि को उन्मत बना रखा है।

शक्ति प्रतिमाओं के अनेक रूप हैं। महाकाल पुरुष की महाशक्ति रूपा जिस महाकाली का यहाँ प्रसङ्ग उपस्थित है, उसी के स्वरूप का निरूपण निदान के आधार पर अब करते हैं। तत्तदेवताओं की तत्तच्छक्तियों को समझाने के लिए प्राचीन ऋषियों ने निदान द्वारा तत्तदेवताओं का तत्तदनुरूप ध्यान (सम्बन्धित श्लोकों) की रचना कर डाली है। प्राय: प्रत्येक देवता की उपासना-विधि के प्रारम्भ में ही 'अथ ध्यानम्' लिखा रहता है, इसका तात्पर्य यह है कि उपासक, जिस उपास्य देवता की उपासना करने जा रहा है, पहले उसके स्वरूप को समझ ले फिर उसी के अनुसार अपने चित्त में उसका ध्यान करे। महाकाली की उपासना में सामान्यत: निम्न प्रकार के ध्यान का अनुमोदन किया गया है।

शवारूढ़ां महाभीमां घोर-दंष्ट्रा हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम्।।
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

यहाँ महाकाली का (ध्यान) स्वरूप इस प्रकार से निरूपित किया गया है। वह (महा)काली शव पर आरूढ़ (स्थित) है। तीक्ष्ण, विकराल तथा बड़ी-बड़ी दाढ़ों के कारण उनकी देहाकृति (अथवा मुखाकृति) बड़ी भयानक प्रतीत हो रही है। ऐसी महाभयानक स्वरूप वाली वह आदि (माया) शक्ति हंसते हुए मुखाकृति वाली है जो उसकी भयानकता को और भी अधिक संवर्धित करने वाला प्रतीत हो रहा है। चार भुजाओं वाली उस महाकाली के हाथों में खड्ग, नरमुण्ड, अभय तथा वर (मुद्रा) धारित है। उसके गले में नरमुण्डों की माला है तथा उसकी जिह्वा बाहर को निकली हुई लपलपा सी रही है। वह सर्वथा नग्न है तथा श्मशान भूमि ही उसका आश्रयस्थल है।

अब इस महाकाली के स्वरूप-रहस्य पर विचार करते हैं। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि महाकाली संज्ञिका इस महाशक्ति का

सम्बन्ध प्रलयरात्रि के मध्यकाल से है। जब तक यह विश्व शक्तिमान (शक्ति-संयुक्त) है, तभी तक ही यह शिव है, शक्ति के बहिर्गमन करते ही यह 'शव' रूप हो जाता है अर्थात् उसका स्वरूप नष्ट हो जाता है। विश्वातीत परात्पर महाकाल की शक्तिभूता महाकाली का विकास विश्व से पूर्व है। वही विश्व का संहार करने वाली कालरात्रि है। उसकी प्रतिष्ठा सृष्टिकाल न होकर प्रलयकाल है। अन्य प्रकार से कहें तो शक्तिमान विश्व उसकी प्रतिष्ठा न होकर शक्ति शून्य अर्थात् 'शव' रूप विश्व ही उसका आलम्बन है। प्रलयकाल में शवरूप से स्थित विश्व पर वह स्थित (आरूढ) है। यहाँ 'शव' को ही शक्ति-शून्य विश्व का निदान (संकेत) माना गया है। वह अनुपाख्य (अनिर्वचनीय) तम रूपा है, सर्व विनाशिका है। शत्रु-संहार करने वाले क्रोधावेश युक्त योद्धा की आकृति स्वाभाविक रूप से भयावह हो जाती है। सर्वसाधारण मनुष्य तो उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं कर पाता। प्रलयरात्रि रूपा संहारकारिणी शक्ति के इसी स्वरूप को समझाने के लिए भयानक आकृति को निदान माना गया है। शत्रु-पक्ष की सम्पूर्ण सेना का सर्वथा संहार करके जैसे महान योद्धा भीषणता-पूर्वक अट्टहास करता है तथा चतुर्दिक जैसे उसका ही साम्राज्य व्याप्त हो जाता है, ठीक वैसी ही स्थिति इस समय महाकाली की भी है। अतः उसे इस समय 'हसन्मुखीम्' रूप से व्यक्त किया गया है। जो विश्व एवं विश्व की प्रजा स्वयं को सर्वे-सर्वा समझती थी, वह सभी इस महाशक्ति से परास्त होकर विनाश को प्राप्त हो गयी है, इस भाव का निदान भी महाकाली का हास्य है। प्रत्येक वृत्त का केन्द्र बिन्दु ३६० अंश का माना जाता है। चार रेखाओं द्वारा इस केन्द्र को ९०-९० अंश के चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। यही उस वृत्त की चार भुजाएं हैं। महाकाली-पूर्णरूपा हैं। अनन्ताकाश रूप महा-अवकाश में चतुर्भुज रूप में परिणत होकर ही वह विश्व का संहार करती है। इसी भाव का निदान (संकेत) चार भुजाएं हैं। विनाश-शक्ति का निदान खड्ग है, कटा हुआ मस्तक (हस्तगत नरमुण्ड) नष्ट हुए प्राणियों का निदान है। स्थिति-विच्युति (पूर्व अवस्था से विचलन-पतन) का नाम कम्प है तथा कम्प ही भय है। विश्व ससीम है, अतः वह सभय है। परन्तु व्यापक तत्व में भय का अभाव है, क्योंकि उसके अतिरिक्त किसी अन्य का कोई स्थान नहीं है। इसलिए वह अभय है। ऐसा एक मात्र विश्वातीत महाकाल पुरुष ही है, क्योंकि वह व्यापक है। 'अभयं गतो भवति' इत्यादि रूप से उसी परात्पर को उपनिषद्

अभय बतलाता है। इस प्रकार उसकी शक्ति की भी अभयरूपता स्वयंसिद्ध है। वह महाशक्ति संहारकारिणी है, घोर रूपा भयप्रदा (डरावनी) भी है, परन्तु अभयप्रद की प्राप्ति भी उसी की आराधना (एवं कृपा) पर ही निर्भर है। अभय मुद्रा इसी का निदान है। ससीम विश्व क्षणिक सुखरूप अतएव दुखरूप ही है। परम सुख तो इस शिवरूपा 'शिवा' की आराधना से ही उपलब्ध हो सकता है। मनुष्यों के जीवित दशा (सृष्टि-काल) में जो सबका आधार थी, प्रलयकाल में भी वही सबका आधार है। ध्वस्त विश्व के निष्प्राण प्राणियों का निर्जीव अंश भी उसी पर प्रतिष्ठित है। उस व्यापक तत्व से बाहर कोई कैसे स्थित रह सकता है। इसी परायण भाव का निदान 'मुण्डमाल' है। **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** के अनुसार वह शक्ति विश्व का सृजन कर उसमें प्रविष्ट हो जाती है। इस प्रकार विश्व उसका आवरण (वस्त्र) बन जाता है। परन्तु विश्व संहार के अनन्तर वह स्वस्वरूप से उल्बण (आवरण रहित स्वच्छ-स्पष्ट) है। इस दशा में दिशाएं ही उसका वस्त्र है। इसी अवस्था का निदान 'नग्न' भाव है। उस महाशक्ति का पूर्ण विकास काल-विश्व का प्रलयकाल है। जब सारा संसार श्मशान रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब ही उस तमोमयी महाशक्ति का विकास होता है। श्मशान इसी अवस्था की ओर संकेत करता है। यही है महाकाली का स्वरूप। जन-सामान्य इस गम्भीर अवस्था की ध्यान में कल्पना कर उसकी आराधना करने में असमर्थ है। अतः उनके कल्याण के लिए परम कारुणिक महर्षियों ने निदान द्वारा इन प्रतिमाओं की कल्पना की है। प्रलयकाल में विश्व की कैसी स्थिति होती है, हमें इसके ज्ञान से क्या प्रयोजन, जब हमें इन प्रतिमाओं के स्वरूप-ध्यान से ही 'शिवत्व' की प्राप्ति हो जाती है।

अक्षोभ्य पुरूष की महाशक्ति तारा

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि रात्रि के बारह बजे से सूर्योदय से पूर्व तक के समय में महाकाली की सत्ता है। इसके बाद तारा का साम्राज्य है। हिरण्यगर्भ विद्या के अनुसार निगमशास्त्र ने सम्पूर्ण विश्व-सृष्टि का आधार सूर्य को माना है। सौर-मण्डल आग्नेय होने के कारण हिरण्मय कहा जाता है। क्योंकि अग्नि हिरण्यरेता के नाम से प्रसिद्ध है। उस हिरण्मय-मण्डल के केन्द्र में वह सौर-ब्रह्म-तत्व प्रतिष्ठित है, जिसे 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है। भू, भुवः, स्वः रूप रोदसी (पृथिवी तथा आकाश के मध्य

स्थित) त्रिलोकी के निर्माता तथा अधिष्ठाता स्वयम्भू परमेष्ठी रूप अमृतासृष्टि, पृथिवीचन्द्रमारूपा मर्त्यासृष्टि के विभाजक एवं सञ्चालक, विश्वकेन्द्र में प्रतिष्ठित इन्हीं भगवान् हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव होता है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदधार पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम।।(यजु०२३/१)

यह श्रुति इसी उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। जिस प्रकार विश्वातीत परात्पर महाकाल पुरुष की शक्ति महाकाली कही जाती है, उसी प्रकार विश्वाधिष्ठाता इस हिरण्यगर्भ-पुरुष की शक्ति 'तारा' है। घोर तम में दीपक बिम्ब तारा-सदृश प्रकाशित रहता है। उस महातम के केन्द्र में उत्पन्न होने वाले सूर्य की भी यही स्थिति है। इसलिए श्रुति में सूर्य 'नक्षत्र' नाम से प्रसिद्ध है। अतएव आगम शास्त्र में इस सूर्य की शक्ति 'तारा' नाम से प्रसिद्ध हुई। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य सर्वथा स्थिर है। बृहती-छन्द नाम से प्रसिद्ध सुप्रसिद्ध विष्वद्वृत्त के ठीक मध्य में क्षोभरहित होकर स्थिरभाव से भगवान् सूर्य तप रहे हैं।

'सूर्यो वृहतीमध्यगूढस्तपति।' 'उदयास्तमनश्चैव दर्शनादर्शनं रवेः।'

इत्यादि वचनों से सूर्य का स्थिर होना ही सिद्ध होता है। क्योंकि यह क्षोभरहित है। अतः तन्त्रशास्त्रों में इनकी 'अक्षोभ्य' नाम से प्रसिद्धि हुई।

सूर्य को साक्षात् रुद्र कहा जाता है। 'शिव' तथा 'घोर' भेद से इनके दो शरीर माने जाते हैं। आपोमय पारमेष्ठ्य महासमुद्र में घर्षण द्वारा आग्नेय परमाणु उत्पन्न हुए। इसके अनन्तर 'श्वेत वाराह' नाम से प्रसिद्ध प्राजापत्य वायु द्वारा उनका केन्द्र में संघात हुआ। संघात होते-होते वह अग्नि-परमाणु-संघ पिण्ड रूप में परिणत होता हुआ सहसा प्रज्वलित हो उठा। इसी का नाम सूर्य हुआ। उत्पन्न होते ही इस रुद्राग्नि ने अन्न की इच्छा की। क्योंकि अन्नाद अग्नि बिना अन्नाहुति के क्षणमात्र भी प्रतिष्ठित नहीं रह सकता। इस अन्नाहुति से पहले वह सूर्य महाउग्र था। संसार को जला डालने वाला था। बस, इसी समय के उग्र सूर्य की जो शक्ति थी वही 'उग्रातारा' नाम से प्रसिद्ध हुई। जब तक अन्नाहुति (पार्थिव औषधि, वनस्पत्यादि के रसों का सूर्य रश्मियों द्वारा ग्रहण) होती रहती है, तब तक 'तारा' शान्त रहती है। अन्नाभाव में वही उग्र बनकर संसार का विनाश कर डालती है। उसी उग्रभाव का, उग्रशक्ति का निरूपण निम्न प्रकार से किया गया है -

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा,
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्प्परभुजा - हुंकारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता,
जाड्यं न्यस्य कपालकृर्तजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयं॥

महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री थी, उग्रतारा सूर्य-प्रलय की अधिष्ठात्री है। प्रलय करना दोनों का समान धर्म है। इसीलिए इनके ध्यान-स्वरूप में थोड़ा ही अन्तर है। इसकी चारों भुजाओं में सर्प लिपटे रहते हैं। भाव यह है कि प्रलय काल में यह विषाक्त वायु द्वारा विश्व का संहार करती है। सूर्य प्रलय काल में वायु के विषाक्त हो जाने के कारण प्राणियों का दम घुटने लगता है। इसी का निदान सर्प है। उस शक्ति की सत्ता विश्व-केन्द्र में होने के कारण वह शव-रूप विश्व केन्द्र में प्रतिष्ठित है। इसी रहस्य को उद्घाटित करने के लिए उसे शव के हृदय पर प्रतिष्ठित किया गया है। सौर अग्नि आहुति बन्द होने से प्रबल वेग धारण कर लेता है। उससे 'सायँ-सायँ' सी ध्वनि निकलने लगती है। इसी का निरूपण भगवती के अट्टहास द्वारा किया गया है। प्रलयकाल में पृथिवी, चन्द्रमा, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी का रस उग्र सौर-ताप से सूख जाता है। सबका रसांश वह उग्रतारा पान कर जाती है। रस प्राणियों का श्री भाग है, जो विशेष रूप से शिरः कपाल में स्थित रहता है। श्री (रस) भाग की स्थिति के कारण ही मस्तक को 'शिर' (सिर) कहा जाता है। इसी शिर को आधार बनाकर वह रस का पान करती है। इसी भाव का निदान 'खप्पर' है। **'नीलग्रीवो विलोहित'** (यातु०१६/७) के अनुसार उग्र सूर्य नीलग्रीव है। उसके द्वारा चारों ओर प्रसारित रश्मियाँ पिङ्गल वर्ण हैं। इसकी शक्ति (तारा) का भी यही रूप (वर्ण) है। उसके सूर्यरूप मस्तक भाग से चारों ओर (सूर्य रश्मिवत्) फैली हुई जटाओं का वर्ण भी पिङ्गल है। उस महाभीषण प्रलयकाल में प्रति सौर रश्मि में जहरीली वायु भरी रहती है। इसी स्वरूप को व्यक्त करने के लिए 'नीलविशालपिङ्गल जटाजूटैकनागैर्युता' कहा गया है। वह महाशक्ति इसी उग्ररूप में परिणत होकर विश्व का संहार करती है। यही दूसरी सृष्टि-धारा है। महाकाली रूप विश्वातीत के पश्चात् सूर्यरूपा इस दूसरी महाशक्ति का विकास होता है।

तन्त्र ग्रन्थों में भी भगवती तारा को द्वितीया (महा) विद्या के रूप में ही निरूपित किया गया है। 'निर्वाण-तन्त्र' के प्रथम पटल में ही जहाँ

जगदुत्पत्ति का वर्णन है, कहा गया है कि निराकारा महाज्योति स्वरूपिणी, हस्तपादादि रहिता, चन्द्रसूर्याग्नि स्वरूपा महाशक्ति जो स्वयं को माया द्वारा आच्छादित चणक (चने) रूप से सत्यलोक में निवास करती है, वही जब विश्व-सृष्टि के लिए उन्मुख होती है तो अपने माया रूपी आवरण का परित्याग कर शिव-शक्ति रूप से दो भागों में विभक्त हो जाती है। उसी समय उसे ब्रह्मा (नामक प्रथम पुत्र) की उत्पत्ति होती है। **यह महाशक्ति (जो मूल प्रकृतिरूपिणी महाकाली कही जाती है और जिससे प्रथम महाविद्या के रूप में दक्षिणा काली की उत्पत्ति होती है) ब्रह्मा को विवाह (सृष्टि-निर्वाह) का आदेश देती है। ब्रह्मा के एकाकी सृष्टि रचना में असमर्थता व्यक्त करने पर वह द्वितीया महाविद्या के रूप में सावित्री को उत्पन्न कर उन्हें प्रदान करती है।**

तच्छ्रुत्वा जगतां माता स्वदेहान्मोहिनीं ददौ।
द्वितीया सा महाविद्या सावित्री परमा कला॥
अस्याः सङ्गं समासाद्य वेदविस्तारणं कुरु।
अनायासं सृष्टिकर्ता भव त्वं महिमण्डले॥

इसी प्रकार **'श्री दुर्गासप्तशती'** के **'प्राधानिक रहस्य'** के अन्तर्गत कहा गया है कि त्रिगुणमयी मूल प्रकृतिरूपिणी परात्परा शक्तिरूपा श्री महालक्ष्मी ने इस सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखकर केवल तमोगुण उपाधि के द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट नारी रूप धारण किया, जिसके शरीर की आभा काजल के सामन कृष्ण वर्ण थी।

शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभारं परमं रूपं तमसा केवलेन हि॥ (प्रा०र० ७)

यही प्रथमा अथवा आद्या शक्ति श्री महाकाली कहलायी। इसके पश्चात् पुनः श्री महालक्ष्मी ने अत्यन्त शुद्ध सत्व गुण के आश्रय से चन्द्रमा के समान गौर वर्णा श्री महासरस्वती के रूप में स्वयं को व्यक्त किया। द्वितीया शक्ति (विद्या) के रूप में अभिव्यक्त इसी महासरस्वती को महाविद्या, भारती, वाक्, वेदगर्भा, सावित्री आदि-आदि नामों से अभिहित किया गया है।

तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वस्पमपरं नृप।
सात्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दु प्रभं दधौ॥ (प्रा०र० १४)
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी॥ (प्रार०१६)

इसी सावित्री को हयग्रीव तथा सोमक नाम के असुरों ने बन्धक बनाकर विषयुक्त नील कुण्ड में डुबोकर रखा था। जिससे इसका वर्ण नीला हो गया और यह नील सरस्वती कहलायी। वेदों की उत्पत्ति तथा विश्व सृष्टि का कारण होने से यह सावित्री है, ब्रह्मज्ञान प्रदान कर (ब्रह्मस्वरूपिणी होने के कारण) विश्व को तारने वाली होने से यह तारा है तथा वाक्प्रदा होने के कारण (नील) सरस्वती है। कुछ तन्त्र-ग्रन्थों तथा विद्वानों द्वारा तारा को हमारे वैदिक एवं सनातन धर्म की शक्ति (देवता) न मानकर इसे बौद्ध सम्प्रदाय की देवी प्रतिपादित करना मेरे विचार से उनकी अज्ञता एवं भ्रम का सूचक है।

तन्त्रशास्त्र के किसी-किसी ग्रन्थ में भगवती माँ तारा के आठ स्वरूपों (भेदों) का उल्लेख मिलता है। यथा -

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती।
कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृता॥

तन्त्र-ग्रन्थों में इन आठ स्वरूपों के मन्त्र तो उपलब्ध हैं परन्तु इनके पृथक-पृथक साधना सम्बन्धित साहित्य का अभाव है। ग्रन्थों में माँ तारा के मुख्य रूप से तीन रूपों की उपासना का विवरण प्राप्त होता है। प्रथम तारा (उग्रतारा, नील सरस्वती), द्वितीय एकजटा तथा तृतीय महानील सरस्वती।

यदि हम परमब्रह्म स्वरूपिणी भगवती तारा के उपर्युक्त तीनों भेद-स्वरूपों की तुलना श्री दुर्गा सप्तशती के प्राधानिक रहस्य में वर्णित तीनों महाशक्तियों से करें तो इनमें एक प्रकार से अभिन्नता के ही दर्शन होते हैं।

''उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता।''

प्रबल विपत्तियों का निवारण करने वाली तथा उग्र स्वरूपा होने के कारण इनकी समानता महाकाली (तमोगुणमयी भगवान विष्णु की योगनिद्रा-मधु कैटभ का विनाश करने वाली) से की जा सकती है।

''प्रधानैकजटा यस्मात् तस्मादेकजटा शिवा।''
तथा **''कैवल्यदायिनी यस्मात् तस्मादेकजटा स्मृता।''**

'प्रधान' अर्थात् मूल प्रकृति एवं 'एकजटा' अर्थात् सत्व, रज तथा तम तीनों गुणों की साम्यवस्था (एकत्वरूप)। इसके साथ ही 'कैवल्य' रूप मोक्ष की प्रदाता। ये सभी लक्षण परब्रह्मस्वरूपा मूल प्रकृतिरूपिणी महालक्ष्मी की ओर ही संकेत करते हैं। अतः 'एकजटा' की समानता महालक्ष्मी से की जा सकती है।

''लीलया वाक्प्रदा चेति तेन लीलसरस्वती।
विदिता नीलवर्णत्वात् तथा नील सरस्वती॥''

इसी प्रकार **''ज्ञान-खड्ग-प्रदा या सा मातर्नीलसरस्वती।''**

'वाक्प्रदा' अर्थात् लौकिक वाणी (शब्द-शास्त्र का ज्ञान) प्रदान करने के साथ ही विशुद्ध परमार्थ ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) रूपी खड्ग प्रदान करने वाली जिससे साधक अपने अज्ञान रूपी पशु का वधकर (उसे भगवती के चरणों में बलि रूप से समर्पित कर उनकी कृपा से वर रूप में) मोक्ष का लाभ कर सके। ऐसी भगवती नीलसरस्वती वास्तव में महासरस्वती (सत्वगुणमयी) से अभिन्न ही कही जा सकती है।

तारा तो भोग एवं मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाली परमब्रह्म से सदैव एकत्व प्राप्त उसकी अभिन्न तथा स्वस्वरूप में भी ब्रह्मस्वरूपा शक्ति है।

''तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्ष प्रदायिनी।''

भगवती तारा की आराधना एवं साधना युगों-युगों से चली आ रही है। भगवती तारा का बीज मन्त्र 'त्रीं' अथवा (तथा) 'स्त्रीं' कहा जाता है। इसके विषय में एक प्राचीन आख्यान प्राप्त होता है। प्राचीन काल में कभी (कृष्णावतार से पूर्व) मुनि वशिष्ठ ने माँ तारा की साधना की थी। परन्तु वर्षों तक साधना करने पर भी न तो उन्हें भगवती का दर्शन प्राप्त हुआ और न ही किसी प्रकार की साधना-जनित सिद्धि की ही प्राप्ति हुई। अपनी इस असफलता के कारण मुनि ने क्रोधित होकर भगवती को शाप दे दिया। वशिष्ठ के इस आचरण पर माँ तारा प्रकट हुई और उन वशिष्ठ मुनि से बोली- हे पुत्र! तुमने बिना (मेरी) साधना विधान को भली-भाँति जाने ही जो साधन किया है, उसी के कारण तुम्हें यह असफलता प्राप्त हुई है। मुझे शाप देकर तुमने यह अनुचित कर्म किया है। माँ तारा के दर्शन से अभिभूत वशिष्ठ ने उनसे क्षमा माँगते हुए उनकी साधना-क्रम का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया। माँ कामाख्या के धाम कामरूप (असम) प्रदेश के नीलाचल पर जहाँ मुनि वशिष्ठ ने साधना में असफल होने पर भी माँ तारा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया था, उस स्थान पर आज भी 'वशिष्ठाश्रम' विद्यमान है।

इस विषय में प्रचलित किवदन्ति (कथा) यह है कि भगवती तारा ने वशिष्ठ को, तिब्बत प्रदेश (अथवा चीन देश) में जाकर बुद्ध से तारा-साधना विधान की शिक्षा प्राप्त करने तथा उसी विधि (महाचीन क्रम) से साधना करने का आदेश दिया था। वशिष्ठ ने भी माँ की आज्ञानुसार साधना-विधान का ज्ञान प्राप्त कर तथा तदनुरूप साधना करके सिद्धि की प्राप्ति की थी। किन्तु यह अतिशयोक्ति है। सम्भवतः बौद्धों द्वारा किसी समय स्वधर्म (बौद्ध धर्म) के उन्नयन तथा महिमामण्डन हेतु इस प्रकार की कथा प्रचारित की गई होगी जिसे सम्राट अशोक के समय बौद्ध धर्म के अति प्रचार-प्रसार के कारण विशेष बल

प्राप्त हुआ होगा। इस कालखण्ड में (तथा इसके पश्चात् भी) निर्मित (रचित) भारतीय तन्त्र शास्त्र भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका तथा उसमें भी इस कथानक का समावेश हो गया। उस समय के शिक्षा-क्षेत्र में सुप्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय में भी सम्भवत: बौद्ध धर्म का ही प्रभाव था।

बुद्ध भी इसी भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर हुए थे। उन्होंने जो भी ज्ञान प्राप्त किया, इसी धरा पर प्राप्त किया। अत: तिब्बत और चीन का प्रसङ्ग केवल कपोल-कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे महर्षि वशिष्ठ और बुद्ध के काल में भी साम्य नहीं है। महर्षि वशिष्ठ की उत्पत्ति तो बुद्ध के जन्म से लाखों वर्ष पूर्व पहले ही हो चुकी थी। क्या वह बुद्ध के काल तक बिना साधना के ही रहे। इसके अतिरिक्त उनकी 'तारा-साधना' का काल कृष्णावतार से पूर्व का है, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही कहा था कि बीज मन्त्र को प्राप्त मेरा शाप कृष्णावतार के पश्चात् स्वयं ही समाप्त (निष्प्रभावी) हो जाएगा।

वास्तविक तथ्य यह है कि महर्षि वशिष्ठ को स्वयं भगवती तारा ने ही अपनी साधना पद्धति का उपदेश (ज्ञान) तथा कुलाचार विधि से साधना करने का आदेश दिया था। इसके पश्चात् महर्षि ने द्वारका नदी के तट पर (वर्तमान में वीरभूमि जिले के 'रामपुर हाट' नामक स्थान पर) जाकर माँ की विधिवत साधना की थी। इसके फलस्वरूप माँ तारा ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर वर माँगने के लिए कहा। तब महर्षि वशिष्ठ ने माँ तारा से शिशु रूप शिव को दुग्धपान कराते हुए दर्शन देने की अभिलाषा व्यक्त की। माँ ने भी महर्षि की इस कामना को तद्नुरूप दर्शन देकर पूर्ण की। आज भी वहाँ स्थित तारा-पीठ में वशिष्ठासन (मुण्डासन) तथा माँ तारा की शिशु रूप शिव को दुग्ध पान कराते हुए प्रतिमा अवस्थित है। प्रात: काल में इस विग्रह के दर्शन उपलब्ध होते हैं।

वशिष्ठ द्वारा दिया गया शाप परमब्रह्म स्वरूपिणी भगवती पर तारा पर तो आरोपित हो नहीं सकता था अत: वह उनके बीज मन्त्र **'त्रीं'** पर (मन्त्र तथा देवता में अभेद-एकत्व होने के कारण) आरोपित हुआ। माँ ने भी मुनि की गरिमा तथा शाप की मर्यादा को ध्यान में रखते (उसका मान रखते) हुए ऐसा होने दिया। पुन: वशिष्ठ मुनि से ही माँ ने उसके उद्धार (निवारण) का उपाय पूछा। तब मुनि ने कहा त्रेतायुग के पश्चात् द्वापर युग में कृष्णावतार के अनन्तर स्वत: ही इस शाप का प्रभाव निर्मूल हो जायेगा। शाप काल (शापित अवस्था) में इस बीज मन्त्र के साथ 'सकार' का संयोग करके

'स्त्रीं' रूप से जप करने का विधान बतलाकर तत्काल के लिए भी उसका उद्धार कर दिया। वर्तमान काल (कलिकाल) में 'त्रीं' तथा 'स्त्रीं' दोनों ही मन्त्र समान रूप से प्रभावी (फलदायक) हैं।

तन्त्र-ग्रन्थों में ये **'पञ्च-मकार'** 'पञ्च-तत्व' तथा 'कुल-द्रव्य' रूप से भी अभिहित किये गये हैं। इन्हें मनुष्य शरीर में स्थित **'आनन्दब्रह्म'** का अभिव्यञ्जक (प्रकाशित करने वाला) कहा गया है।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्चमकाराः कुल-संज्ञिकाः॥

पञ्चवर्गों (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग तथा प वर्ग) में विभाजित स्पर्शवर्णों को वर्गानुसार पृथिवी आदि पञ्चतत्वात्म रूप माना गया है। इन सभी वर्गों के साथ सूर्यात्मक 'म' वर्ण (अनुस्वार रूप से) संयुक्त है तथा क से भ तक सभी वर्णों में 'मकार' आत्मरूप से भी अनुगत है। क से लेकर भ तक चौबीस वर्णों को प्रकृति से पृथिवी तक चौबीस तत्वों का प्रतीक भी माना गया है तथा 'मकार' को 'आत्मरूप' कहा गया है।

मनुष्य शरीर भी पञ्च (चौबीस) तत्वों से निर्मित पञ्चकोशात्मक (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमयकोश) उपनिषदों में स्वीकृत है। परमानन्द स्वरूप ब्रह्म इन पाँचों कोशों से आवृत सबसे भीतर सर्वात्मा रूप से अवस्थित है। 'पञ्चकोश विवेक' द्वारा इस आनन्दस्वरूप ब्रह्म को इन कोशों से पृथक कर अनुभव कर लेना तथा स्वयं को इस परमानन्द स्वरूप ब्रह्म के रूप में जान लेना ही 'पञ्चमकार' की साधना कही जा सकती है।

शाक्त-तन्त्रों के अनुसार शक्ति-साधना सामान्यतः तीन प्रकार के आचारों से की जाती है। दक्षिणाचार, वामाचार तथा कुलाचार। इन्हीं आचार-त्रय को भाव-त्रय-पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव भी कहा जाता है।

पशुभावापन्न साधक के लिए प्रातः स्नान-सन्ध्या, मध्याह्न में पूजन, ऊन के आसन (कम्बलादि) का प्रयोग, दिन में रुद्राक्ष की माला से जप (रात्रि में जप का निषेध), हविष्यान्न (पायस-शर्करा) भोग, स्ववर्णाश्रमानुसार श्रौत-स्मार्त धर्मों का पालन तथा ब्रह्मचर्य धारण (यदि साधक गृहस्थ है तो केवल स्वपत्नी के साथ ही शास्त्रानुसार सम्बन्ध) अनिवार्य रूप से कहा गया है। पञ्चमकारों (इनके स्थूल रूप) से पूजन तथा सेवन करना पूर्णतया निषिद्ध है।

वामाचार में स्नान-शौचादि का कोई बन्धन नहीं है। वह सर्वदा सर्वकाल में जप, पूजनध्यानादि (भोजन करने के बाद भी) करने के लिए

स्वतन्त्र है। परन्तु उसके लिए रात्रि में जप-पूजन करना सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वामाचारी वर्णाश्रमधर्म से मुक्त है, उसके लिए सर्ववर्ण समान है। कुछ ग्रन्थों में केवल सामूहिक 'चक्र-पूजन' के समय ही वर्ण-साम्य की बात कही गयी है, पूजनोपरान्त प्रत्येक साधक का स्व-स्व वर्ण ही मानना चाहिए। ऐसे साधक के लिए नृ-दन्त की माला, नर-मुण्ड का कपाल, चर्मासन तथा स्त्री के केशों का कङ्कण आदि प्रयोजनीय कहे गये हैं। वीर-साधक के लिए पञ्च-मकारों से देव-पूजन करना विहित है। इसमें स्व-कान्ता अथवा पर-कान्ता में कोई भेद नहीं माना गया है। इतनी स्वतन्त्रता होने पर भी शास्त्र को साधक की उच्छृंखलता स्वीकार नहीं है। मद्य-मांसादि के सेवन की एक मर्यादा भी शास्त्र ने निश्चित की है।

सेवेत स्वसुखार्थं यो मद्यादीनि स पातकी।
प्राशयेद्देवताप्रीत्यै स्वाभिलाषविवर्जितः।।
मत्स्यमांससुरादीनां मादकानां निषेवणम्।
यागकालं विनान्यत्र दूषणं कथितं प्रिये।।
यथा क्रतुषु विप्राणां सोमपानं विधीयते।
मद्यपानं तथा कार्यं समये भोगमोक्षदम्।।
आवृतिं गुरुपंक्तिञ्च वटुकादीन्न पूज्य यः।
वीरोऽप्यत्र वृथा पानं देवताशापमानुयात्।।
अयष्ट्वा भैरवं देवमकृत्वा मन्त्रतर्पणम्।
पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।।
असंस्कृतं पिवेद्द्रव्यं वलात्कारेण मैथुनम्।
स्वप्रियेण हतं मासं रौरव नरकं व्रजेत्।।
स्वेच्छया रममाणो यो दीक्षासंस्कारवर्जितः।
न तस्य सद्गतिः कापि तपस्तीर्थव्रतादिभिः।।

तन्त्र का उद्देश्य मनुष्य को मद्यप, मांसाहारी तथा स्त्री लम्पट बनाना नहीं है। बल्कि परिसंख्या विधि के अनुसार इनके सेवन को एक सीमा में रखकर धीरे-धीरे मनुष्य को इससे मुक्त करना है। 'पश्वाचार' विशुद्ध 'वैष्णवाचार' है। इसके साधन से धीरे-धीरे साधक के अष्ट पाश रूप पशुत्व के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। वाह्यान्तर (शरीर तथा मन की) शुद्धि भी काफी हद तक उसकी हो चुकी होती है। इन्द्रियों के साथ विषयों का सम्बन्ध (मद्यादि का सेवन) न होने के कारण इनके प्रति साधक की वाह्य

आसक्ति तो क्षीण हो जाती है परन्तु आन्तरिक (मन में) आसक्ति बनी रहती है। जिसका मिटना बिना परमात्म-साक्षात्कार के सम्भव नहीं है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। (गीता २-५९)

इसके लिए साधक को 'वीराचार' रूप साधना के द्वितीय सोपान पर आरोहण करना पड़ता है। इस स्थिति में साधक को पञ्च-मकारों के द्वारा देवता का पूजन (तथा कुछ सीमाओं में रहकर उसके सेवन) का अधिकार प्राप्त हो जाता है, जैसा कि ऊपर (श्लोकों में) वर्णन किया गया है।

साधक इस मद्यादि का सेवन इन्द्रिय सुख के लिए स्वेच्छानुसार नहीं कर सकता, अन्यथा उसका पतन निश्चित है। यहाँ प्रथम श्लोक में 'प्राशयेत्' शब्द विचारणीय है। वक्ता (शिव) यहाँ 'पाययेत्' अथवा 'खादयेत्' भी प्रयोग कर सकता था। परन्तु 'प्राशयेत्' का प्रयोग करके यह सूचित करने का प्रयास किया गया है कि 'मद्यादि' को 'पीना' अथवा 'खाना' नहीं है, बल्किकेवल 'चखना' (स्वाद लेना) मात्र है। वह भी पूजन काल के अतिरिक्त अन्य समय में (यहाँ तक कि पर स्त्री ही नहीं स्व-स्त्री-सम्बन्ध भी) पूर्णतया वर्जित हैं। पशु साधक की बात छोड़िये यदि 'वीर' साधक भी बिना देवता, गुरु, वटुक आदि का पूजन-तर्पण किये मद्यादि का सेवन करता है तो वह देवता के शाप का भागी तथा नरकगामी होता है। पूजन तथा सेवन से पूर्व भिन्न-भिन्न मन्त्रों द्वारा इन्हें संस्कारित करना भी अनिवार्य कहा गया है। वीराचार साधक ही नहीं यदि ब्रह्मनिष्ठ योगी भी असंस्कृत द्रव्यों का प्रयोग करे तो वह निन्दा का पात्र होता है। अदीक्षित एवं संस्कारहीन पर स्त्री ही नहीं स्वस्त्री सम्बन्ध भी यहाँ निषिद्ध है। पञ्चम मकार हेतु इस साधना में पर-कान्ता-स्वीकृति भले ही दोष न माना गया हो परन्तु काल-विशेष में देवता-पूजन के समय शास्त्रों द्वारा अनुमोदित आयु, जाति, वर्ण, व्यवहार आदि लक्षणों से युक्त युवती को आमन्त्रित करना, शक्ति यदि दीक्षित न हुई तो उसे दीक्षित करना, उसके शरीर में विभिन्न प्रकार के न्यासों का सम्पादन करना, उसका पूजन करना, उसे सर्वप्रकार से संतुष्ट करना, उसकी रुचि तथा इच्छानुसार उसी की प्रसन्नता एवं सुख के लिए ही पञ्चम मकार की क्रिया करना, धनसम्पत्ति, वस्त्राभूषण आदि देकर प्रसन्नमुखी हुई उसे विदा करना आदि-आदि अनेकों प्रकार के क्रिया-कलाप इसमें करने पड़ते हैं। पश्वाचार के प्रबल-निषेध-नियंत्रण से थोड़ी सी छूट भी मिली तो वह भी

इतने बन्धनों के बीच। चले थे अष्टपाशों से मुक्त होने के लिए ऊपर से इतने बन्धन (पाश) और थोप दिये गये। साधक के चित्त में इन बन्धनों से मुक्त होने के लिए एक छटपटाहट सी पैदा हो जाती है। पश्वाचार की साधना के फलस्वरूप उसकी इन विषयों के प्रति वाह्य आसक्ति (राग) तो पहले ही विलीन हो चुकी होती है। साधना से शुद्ध हुए बुद्धि-विवेक के प्रकाश में वह सोचता है कि नाम-मात्र के इन विषयों के भोग के लिए इतने बन्धनों में पड़ने से अच्छा तो पश्वाचार ही था। परन्तु पीछे तो लौटा नहीं जा सकता और मन में किञ्चित भी आसक्ति होते हुए इन बन्धनों से मुक्त भी नहीं हुआ जा सकता। अतः उचित तो यह है कि जो थोड़ी भी मानसिक (आन्तरिक) आसक्ति है, उसका भी परित्याग कर दिया जाय। इस विवेक-शक्ति-सामर्थ्य द्वारा अन्तर्बाह्य दोनों रूप से विषयासक्ति से मुक्त हुआ (पूर्ण आसक्ति अथवा राग तो परमात्म साक्षात्कार के पश्चात् ही मिटती है, तब तक आसक्ति का बीज मन के किसी कोने में निर्जीव सा पड़ा रहता है) वह साधक 'दिव्य-भाव' की साधना का अधिकारी हो जाता है। 'दिव्य भाव' का साधक इन पञ्च-मकारों को किस रूप में ग्रहण करता है, इसकी विवेचना आगे की गई है।

'श्रीमद्भागवत' (११-५-११) में स्पष्ट कहा गया है -

लोके व्यवायामिव मद्य-सेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितस्तेषु विवाह-यज्ञ-सुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा॥

संसार में स्त्री-सम्भोग, मद्य (मांस) आदि के सेवन की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही प्राणियों (मनुष्यों) में होती है। इसके लिए किसी को प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं होती। इन सभी को नियन्त्रित (एक सीमा-मर्यादा में व्यवस्थित) करने तथा धीरे-धीरे मनुष्य को इनसे निवृत्त करने के लिए ही शास्त्रों ने विवाह, सोम-याग, सौत्रामणि यज्ञ आदि की व्यवस्था की है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य को मद्य-मासादि के सेवन की प्रवृत्ति (उसके प्रति स्वाभाविक आसक्ति) से निवृत्त करना ही तन्त्र शास्त्र को अभीष्ट है। अतः जो मनुष्य अपने सामान्य दैनिक जीवन में इन मद्य-मासादिकों के सेवन में प्रवृत्त तथा लिप्त है, उसी के लिए स्थूल-पञ्च-मकारों से युक्त इन साधनाओं का विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त जिन मध्यम अधिकारियों के लिए **'देवी याग'** कर्मकाण्डान्तर्गत

स्वीकृत है, उन्हे ही पञ्च-मकारों को प्रकृत रूप से प्रयोग करने का आदेश शास्त्र ने दिया है। दिव्यभावापन्न उत्तम अधिकारियों के लिए तो 'देवी-याग' का स्वरूप बाह्य न होकर **'अन्तर्याग'** (ज्ञान-यज्ञ) रूप है। इसमें वाह्य सहकारियों (उपचारों) के लिए कोई स्थान नहीं है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति साधना के इसी क्रम का निर्वहन करे। मनुष्य अपनी योग्यता, प्रतिभा तथा मनःस्थिति के अनुसार क्रम का अतिक्रमण भी कर सकता है।

भगवती तारा द्वारा महर्षि वशिष्ठ को, स्वयं की जिस साधना पद्धति का उपदेश किया गया था, उसमें कुलाचार विधि से **'पञ्चमकार'** द्वारा साधना की जाती है। इसका निरूपण 'कुलार्णव-तन्त्र' में इस प्रकार किया गया है।

मद्यं मांसञ्च मत्स्यश्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारं पञ्चकं देवि देवता प्रीतिकारकम्।।

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन इन पाँचों का संगठित नाम 'पञ्चमकार' है। इनके द्वारा देवता की साधना (अर्चनादि) करना उस देवता के (साधक के प्रति) प्रीति का कारण होती है।

साधना-क्षेत्र में इन 'पञ्चमकारों' के वाचिक (सामान्य शाब्दिक) अर्थ ग्रहण न करके इनके लाक्षणिक अर्थों को ग्रहण करना ही श्रेयष्कर माना जाता है। इनका शाब्दिक अर्थ ग्रहण करना किसी भी प्रकार से शास्त्र (कुलधर्म) को स्वीकार नहीं है। शाब्दिक अर्थ ग्रहण करने वाले ऐसे कौलिकों की कुलार्णव तन्त्र में निन्दा की गई है।

वहवः कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञान विडम्बकाः।
स्वबुद्ध्या कल्पयन्तीत्थं पारम्पर्य-विवर्जिताः।।

संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य हैं, जो हैं तो वास्तव में अज्ञानी, परन्तु मिथ्या ज्ञान का आवरण डाले हुए, छद्म ज्ञानी बने हुए विचरण करते हैं। ये कौलिक धर्म की परम्परा (सम्प्रदाय) कुलाचार आदि के ज्ञान से रहित हैं। परन्तु अपने ज्ञान के अहंकार में डूबे हुए, स्वबुद्धि से ही कौलिक धर्म की काल्पनिक (मनमानी) व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह ऐसा ही है जैसा कि मैं कह रहा हूँ। इनके अनुसार -

पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्य प्रियामुखम्।
इत्येवाचरणं जाप्यं परिप्राप्यं परम्पदम्।।

मदिरा पान करो, मांस भक्षण करो और अपनी प्रियतमा (स्वस्त्री हो

अथवा पर स्त्री) के मुख का दर्शन (तथा उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध) करो। जप की भाँति बार बार इसी का आवर्तन करते रहो। परमपद (मोक्ष) सहज ही प्राप्त हो जायेगा।

इन छद्म ज्ञानियों तथा पाखण्ड-प्रिय कौलिकों पर आक्षेप करते हुए 'कुलार्णव-तन्त्र' में ही कहा गया है-

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गछन्तु पामराः॥
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि।
शक्ति सम्भोगमात्रेण यदि भोक्षो भवेत् वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवनात्॥

तात्पर्य यह है कि यदि मदिरापान करने से मनुष्य को सिद्धि की प्राप्ति सम्भव हो तो सभी मदिरापायी पापी मनुष्यों को सिद्ध (पुरुष) हो जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा है नहीं। यदि माँस खाने से पुण्य (लोकों) की प्राप्ति होती हो तो मनुष्य ही क्या सभी मांसभोजी पशु-पक्षियों आदि को भी पुण्य की प्राप्ति द्वारा स्वर्ग की उपलब्धि हो जानी चाहिए थी। परन्तु यहाँ भी ऐसा सम्भव होना दृष्टि गोचर नहीं होता। ऐसे ही यदि शक्ति (स्त्री) के साथ सम्भोग करने मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति होना सम्भव हो तो मनुष्य के साथ ही सभी जीव-जन्तुओं की भी मुक्ति हो जानी चाहिए थी, क्योंकि सभी प्राणी स्त्री (मादा) का सेवन (शारीरिक-सम्बन्ध) करने वाले हैं। इस प्रकार से तो सारे विश्व को प्राणियों से शून्य हो जाना चाहिए था। परन्तु यहाँ भी ऐसी स्थिति दिखाई नहीं पड़ती। इससे स्पष्ट है कि मद्य-पान, मांस-भक्षण तथा स्त्री-सम्बन्ध ये तीन पृथक-पृथक अथवा मिलकर भी मनुष्य का कल्याण करने वाले नहीं हैं।

तन्त्र-शास्त्र इतना सरल नहीं है और न ही तन्त्र (में उल्लिखित शब्दों) की परिभाषा सरल है। श्लोकों में निबद्ध तन्त्रों के अनेक साधन-विधान प्राचीन मनीषियों द्वारा कूट-भाषा में लिखे गये हैं, जिनके प्रकट एवं गुप्त भावों के अनुसार अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं। इनका वास्तविक अर्थ-ज्ञान गुरु-मुख तथा सम्प्रदाय परम्परा द्वारा योग्य अधिकारी के लिए ही प्राप्त करना सम्भव है। इस विषय में शास्त्र का वचन है -

तन्त्राणामतिगूढत्वात् तद्भावोऽप्यतिगोपितः।
ब्राह्मणो वेदशास्त्रार्थ-तत्वज्ञो बुद्धिमान वशी॥
गूढतन्त्रार्थ भावस्य निर्मथ्योद्धरणे क्षमः।
वाममार्गेऽधिकारी स्यादितरो दुखभागभवेत्॥

तन्त्र-शास्त्रों का अत्यन्त गहन तथा रहस्यमय होना प्रसिद्ध है। उनमें वर्णित विषयों का वास्तविक अर्थ (भाव) सामान्य जन के लिए अप्रकाशित (गुप्त) ही रहता है। वेद तथा शास्त्रों के परमार्थ को तत्व सहित जानने वाला, बुद्धिमान (विवेकशील), मन तथा इन्द्रियों को वशीभूत किये हुए स्वधर्म का पालन करने वाला ब्राह्मण ही तन्त्रों का मन्थन (उनके विषयों का मनन) करके उसमें गुप्त रूप से स्थित भावों (अर्थों) को निकालने (उन्हें प्रकाशित करने) में समर्थ होता है। ऐसा मनुष्य ही तन्त्र-साधना के वाममार्ग का अधिकारी (वाममार्गी साधना करने के योग्य पात्र) होता है। इस साधन-पथ पर गमन करने वाले अन्य (अनाधिकारी) पुरुष तो केवल दुख के ही भागी होते हैं। सिद्धि तो उनके लिए आकाश-कुसुमवत् ही होता है।

भगवती तारा द्वारा महर्षि वर्शिष्ठ को पञ्चमकारों के सेवन सहित जिस कुलाचार विधि से अपनी साधना का दिव्य ज्ञान दिया गया था उसमें पञ्चमकारों का भाव (अर्थ) निम्नवत् ग्रहण किया जाता है।

मद्य- यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्॥

तथा - **ब्रह्म स्थान-सरोज-पात्रलसिता ब्रह्माण्ड-तृप्ति-प्रदा,**
या शुभ्रांश-कला-सुधा विगलिता सा पान-योग्या सुरा।
सा हाला पिबतामनर्थफलदा श्रीदिव्यभावाश्रिताः,
यामित्वा मुनयः परार्थ-कुशला निर्वाणमुक्तिं गताः॥

निर्विकार (निश्चल, कूटस्थ, शाश्वत, अपरिणामी, निष्क्रिय) तथा निरञ्जन (निर्दोष, माया रहित) जिस तत्व को परम ब्रह्म कहा गया है, योग साधना द्वारा, उसी के चिन्तन-मनन रूप मन्थन द्वारा, उसी में स्थित जो परमानन्द युक्त चित्त को उल्लास प्रदान करने (उन्मत्त बना देने) वाला ज्ञान है, उसे ही उत्पन्न करके उसका भोग (पान) करना ही वास्तविक मद्य-पान है।

शिर के ऊर्ध्व भाग में जहाँ ब्रह्म-स्थान है, वहीं सहस्रदल कमल रूपी पात्र है। यह वहीं स्थित पूर्ण चन्द्र की कलाओं से स्रवित होने वाली सुधा

से सुशोभित (भरा हुआ) है। यही वास्तव में पीने योग्य सुरा है, इसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को तृप्ति प्रदान करने की क्षमता है। यह मदिरा अर्थ (संसार) रूप फल देने वाली नहीं है। श्री भगवती के दिव्य ध्यान में सदा लीन रहने वाले, परमार्थ को प्राप्त करने की साधना में प्रवीण मननशील साधकों ने इसी का निरन्तर पान करके निर्वाण रूपी मुक्ति को प्राप्त किया था।

मांस- पुण्यापुण्यं पशुं हत्वा ज्ञान-खड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं पलाशी स निगद्यते।।
तथा- **माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रिये।**
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांस साधकः।।

पुण्य (कर्म) और अपुण्य (पाप कर्म) अर्थात् धर्म और अधर्म दोनों पशु हैं। ये दोनों ही पाश रूप होकर मनुष्य को सांसारिक जन्म-मृत्यु रूप बन्धन में बांधने वाले हैं। योगी-साधक ज्ञान रूपी खड्ग (तलवार) से (अर्थात् गुरूपदेश अथवा शास्त्राध्ययन-मनन से उत्पन्न विवेक द्वारा) इनका वध (परित्याग) कर दे। तात्पर्य यह कि साधक पाप और पुण्य दोनों प्रकार की भावनाओं से ऊपर उठकर केवल कर्त्तव्य रूप कर्मों का पालन करते हुए नित्य ही अपने चित्त को पर तत्व रूप परमात्मा के ध्यान में लीन करने का अभ्यास करता रहे। ऐसा मनुष्य ही वास्तव में मांस-भक्षी कहा जाता है।

'मा' शब्द से रसना (जिह्वा) अर्थ ग्रहण करना चाहिए तथा वाक्य (वाणी) जो उससे उत्पन्न होता है वही 'अंश' है। जो साधक सदैव उस वाक्य का भक्षण करता है अर्थात् अन्तर्बाह्य रूप दोनों प्रकार की वाणी का संयम कर मौन होकर साधना करता है, वही वास्तव में मांस साधक है।

मत्स्य(मीन)- गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।
तथा- **मनसा चेन्द्रियगणं संयम्यात्मानि योजयेत्।**
मीनाशी स भवेद् देवि इतरे प्राणिहिंसकाः।।

गङ्गा और यमुना (शरीरस्थ इडा और पिङ्गला रूप) नदियों के मध्य में (निरन्तर प्रवाहित होने वाले श्वास-प्रश्वास रूप) दो मत्स्य सदैव विचरण करते रहते हैं जो मनुष्य इन दोनों मत्स्यों का भक्षण (प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास को रोककर कुम्भक की साधना) करता है, वह ही यथार्थ मत्स्य भक्षक है।

जो साधक मन द्वारा सभी इन्द्रियों का संयम (विषयों की आसक्ति से परे) करके, उन्हें मन के साथ ही ध्यानवृत्ति द्वारा परमात्मा से संयुक्त (उसमें

लीन) कर देता है अर्थात् अन्तर्बाह्य रूप से चित्त को निष्क्रिय तथा विषयों से शून्य (वृत्ति रहित) कर देता है, वही वास्तविक मत्स्य भक्षक है। अन्य मनुष्य तो केवल प्राणियों की हिंसा करने वाले हैं।

मुद्रा- **आशातृष्णा जुगुप्साभयविशदघृणामान लज्जाप्रकोपाः,**
ब्रह्माग्नावष्ट मुद्राः परसुकृतिजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं सम्भक्षयेत्तानवहित मनसा दिव्यभावानुरागी,
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा॥

परमार्थ की प्राप्ति हेतु श्रेष्ठ (पुण्य) कर्म करने वाला दिव्यभावापन्न जो साधक अपनी समस्त वृत्तियों को रोककर एकाग्रचित्त से ध्यान करता हुआ, उससे उत्पन्न ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि में आशा (कामना), तृष्णा (किसी वस्तु के प्रति विशेष लालसा), जुगुप्सा (किसी दुश्य अथवा वस्तु के प्रति अरुचि-गर्हित भाव), भय, घृणा, मान, लज्जा तथा क्रोध इन अष्ट पाश रूप मुद्राओं को भली-भाँति पकाकर नित्य भक्षण करता है अर्थात् ध्यान जन्य ज्ञान (विवेक) द्वारा इनसे मुक्त होने का प्रयास करता रहता है तथा इस प्रयास रूप अभ्यास के साथ ही पशु हिंसा से विमुख है, वह साधक इस ब्रह्माण्ड में महान रुद्र के समकक्ष हो जाता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान के द्वारा इन पाशों से मुक्त हो जाना अथवा समस्त (भाव रूप) पाशों को ब्रह्म में विलीन कर ब्रह्मरूप कर देना ही मुद्रा भक्षण है।

मैथुन-या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा,
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुज रमणी सुन्दरीवारयोषित।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ,
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्॥

तथा- **कुलकुण्डलिनी शक्तिः देहिनी देहधारिणी।**
तथा शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्॥

मूलाधार से परमपद रूप ब्रह्मरन्ध्र तक जो सुषुम्णा नाम वाली सूक्ष्म नाड़ी गयी (स्थित) है, साधक के लिए वही स्वप्रिया रूप से भोग्या तथा आलिङ्गन के योग्य है। सामान्य मानव स्त्री (चाहे वह स्वस्त्री हो अथवा) सुन्दरी वाराङ्गना (परस्त्री-वेश्या) का आलिङ्गन साधक के लिए श्रेष्ठ नहीं है। इडा तथा पिङ्गला नामक नाड़ियों में प्रवाहमान वायु (श्वास-प्रश्वास अथवा प्राण-अपान) दोनों का संयोग (कुम्भक) करके, सर्वश्रेष्ठ तथा सर्व (साधकों द्वारा) वन्दनीय साधक योगी (अथवा जो ऐसा होना चाहता है वह) कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्र पद्मस्थ शिव से संयोजित कर

अपने आनंदपूर्ण चित्त में उस कुण्डलिनी का स्व-इष्ट देवता के रूप में चिन्तन करता हुआ स्वयं को उसी में लीन कर दे। वास्तविक मैथुन इसी क्रिया को कहा जाता है। स्त्री-सम्भोग का नाम यहाँ मैथुन नहीं है।

शरीर को धारण करने वाली जो प्राण-शक्ति है, उसी को कुल-कुण्डलिन-शक्ति भी कहा जाता हे। इस शक्ति को (मूलाधार से कुण्डलिनी सहित उठाकर) शिर के ऊर्ध्व भाग में सहस्रपद्मस्थ शिव के साथ संयुक्त करने की क्रिया का नाम ही मैथुन है।

इन पाँचों का भाव यदि संक्षेप में व्यक्त करें तो **'मद्य'** का तात्पर्य है **'ब्रह्मात्मिका अखण्डाकार वृत्ति'** जिसका प्रवाह **'सहस्रार-पद्म'** से होता है। **'मत्स्य'** का भाव है इन्द्रियों का नियन्त्रण तथा उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति और बाह्य विषयों पर स्वभावतः प्रवर्तित होने वाले **'मन का वशीकरण'**। **'मांस'** का अर्थ कर्म-फलों के बन्धन से युक्त पशु-भाव को ज्ञान रूपी खड्ग से काटकर **'ब्रह्मात्मैक्य भाव में निमग्न होना'** है। 'ब्रह्मविद्याग्नि' में समस्त दूषित वासनाओं की आहुति देकर स्वयं को **'ज्योति'** एवं **'आनन्द'** रूप समझना ही **'मुद्रा'** है। **'शिव-शक्ति-सामरस्य'** अर्थात् सभी प्रकार के संशयों तथा वासनाओं से निर्मुक्त होकर जीव तथा ब्रह्म की एकता के भाव को उपलब्ध हो जाना ही **'मैथुन'** का वास्तविक स्वरूप है।

पञ्मकारों के इन्हीं दिव्य भावों के अनुसार ही साधना करके महर्षि वशिष्ठ ने पुनः माँ तारा का साक्षात्कार एवं सिद्धि प्राप्त की थी।

ऐसी मान्यता है कि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को इसी पृथिवीतल पर माँ तारा का प्राकट्य हुआ था।

चैत्र-मासे सिते पक्षे नवम्यां तिथौ भूतले।
क्रोधरात्रिर्महेशानि तारा रूपा भविष्यति।।

'स्वतन्त्र-तन्त्र' नामक ग्रन्थ में भगवती तारा की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख है-

मेरोः पश्चिमे कूले तु चोलनाख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नील-सरस्वती।।

इस कथन में अत्यन्त कूट भाषा में यथार्थतः भगवती की साधना का रहस्य (सार) निहित है।

'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' के अनुसार ब्रह्माण्ड स्वरूप हमारे इस पिण्ड (शरीर) में स्थित 'मेरु-दण्ड' के ऊर्ध्व भाग में 'सुमेरु' की स्थिति है। अर्थात् शिरस्थ सहस्रार ही 'सुमेरु' है। इसके पश्चिम (अधो) भाग में

(ज्ञानरूपी अमृत से परिपूर्ण) एक महान ह्रद (विशाल कुण्ड) अवस्थित है। दोनों भौंहो के मध्य मस्तक का वह प्रदेश जहाँ आज्ञा चक्र का स्थान माना गया है, वहीं इस ज्ञान-कुण्ड में साधना के द्वारा भगवती तारा का प्राकट्य (ज्ञान रूपी तृतीय नेत्र का उन्मीलन) होती है। इसके जागृत होते ही समस्त सांसारिक कामनाओं तथा सञ्चित एवं क्रियमाण कर्म संस्कारों का भस्मीकरण हो जाता है। शिव के तृतीय नेत्र के खुलते ही कामदेव का भस्म हो जाना रूप जो पौराणिक आख्यान है, वह इसी तथ्य को व्यक्त करने वाला है।

जब दिव्यभावापन्न साधक कुलाचार विधि से पञ्चमकारों के वास्तविक स्वरूप को हृदयङ्गम करके उसके अनुसार साधना करता है तो उसे अवश्य ही माँ की कृपा एवं इच्छानुसार सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसीलिए तन्त्रशास्त्रों में भगवती तारा (तथा काली) की साधना कुलाचार विधि से पञ्चमकारों द्वारा करने का बार-बार आग्रह प्राप्त होता है।

जगत् जननी जगदम्बा पराम्बा भगवती तारा की असीम अनुकम्पा से शाक्त-ग्रन्थों के प्रकाशन क्रम में तन्त्र-शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थ 'बृहन्नील-तन्त्र' को भाषानुवाद सहित प्रकाशित करने का जो प्रयास 'मधुसूदन प्रकाशन' द्वारा किया जा रहा है, वह सत्य ही स्तुत्य है। अपने मूल रूप (संस्कृत भाषा) में तो यह ग्रन्थ पहले से ही उपलब्ध था, परन्तु मूल में अत्यधिक अशुद्धियों के कारण तथा भाषानुवाद विशेष रूप से हिन्दी भाषा में अनुवाद (व्याख्या) न होने के कारण केवल संस्कृत के विज्ञजनों के परिशीलन योग्य ही इसे कहा जा सकता था। इस ग्रन्थ के भाष्याकार स्वामी शत्रुघ्नदास जी ने इस ग्रन्थ के मूल श्लोकों का कहीं-कहीं शुद्ध अभिलेखन, तो कहीं-कहीं श्लोकों के मूल मर्म को पूर्णतः ध्यान रखते हुए भाष्यानुवाद में उसका स्पष्टीकरण किया है। इसके साथ ही ग्रन्थ में आये हुए मन्त्रों का सटीक कूट-विच्छेदन एवं उनका शुद्ध स्वरूप में लेखन कार्य भी किया है।

'बृहन्नील-तन्त्र' ग्रन्थ चौबीस (२४) पटलों तथा दो हजार आठ सौ तिरपन (२८५३) श्लोकों में निबद्ध है। मूलरूप से माँ नील सरस्वती को समर्पित यह ग्रन्थ तन्त्र-शास्त्र के सिद्धान्त, साधन, क्रियात्मक पक्ष एवं भगवती नील-सरस्वती (तारा) तथा महाकाली के दुर्लभ मन्त्रों, उनके प्रयोगों के साथ ही इन महाशक्तियों की अर्चना पद्धतियों को भी उद्घाटित करता है।

चौबीस पटलों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम पटल में भगवती तारा की कृपा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि माँ तारा की अनुकम्पा से उनकी

आराधना करने वाला मनुष्य हृदयस्थ-अज्ञान-तम के विनष्ट होने पर माया के बन्धनों से मुक्त होकर अति दुस्तर भवसागर से तर (उसे पार कर) जाता है अर्थात् जन्म-मृत्यु रूपी आवर्तन से सदा के लिए सर्वथा बाह्य हो जाता है।

''सिद्धविद्यां महादेवि! माया-मोहन-कारिणीम्॥''

सिद्धविद्या रूपिणी महादेवी तारा जो अपनी माया के द्वारा विश्वजनों को मोहित करने वाली कही जाती है, वही निज-भक्तों की बुद्धि पर आरूढ माया को मोहित कर अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें इस माया-पाश से मुक्त कर देती है।

इसी पटल में श्रीमन्नील सरस्वती के पञ्चाक्षरी मन्त्र का उद्धार, प्रातः कृत्य, स्नान-सन्ध्या विधि आदि का वर्णन किया गया है। इस महा (सिद्ध) विद्या को त्रैलोक्य में दुर्लभ तथा महापातक नाशिनी कहने के साथ ही इसके भेदों के अनुसार इसकी सपर्या (अर्चना) भेद का भी इसमें सङ्केत किया गया है।

''सपर्याभेद-संयुक्तां महापातकनाशिनीम्।''

''अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा।''

इसके दूसरे पटल में यन्त्र-संरचना, भगवती के षोडशोपचार पूजन की विधि एवं ताराष्टक-स्तोत्र का वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ के तीसरे पटल में दीक्षा का महत्व, अदीक्षित की निन्दा, संक्षेप में गुरु-लक्षण, गुरु-मुख गृहीत विद्या की महिमा, कौल-गुरु की विशेषता, दीक्षा के लिए उपयुक्त काल (मास-तिथि, ग्रहण आदि), दीक्षा से सम्बन्धित गुरु-पूजन आदि विधियों (दीक्षा-विधि) का सामान्य रूप से वर्णन किया गया है।

इसके चौथे पटल में पुरश्चर्या विधि निरूपण, माला निर्णय (निर्माण विधि आदि सहित), कुल्लुका माहात्म्य, मन्त्र चैतन्य सहित मन्त्र-सिद्धि लक्षण, परदारा विधि के सम्बन्ध में उपस्थित सन्देह का निवारण आदि विषयों का उल्लेख किया गया है।

पाँचवे पटल में पीठ-पूजा तथा पीठ-स्थानों से सम्बन्धित विवरण है। छठवें तथा सातवें पटल मे काम्य-प्रयोगों का वर्णन है। सातवें पटल में कुमारी पूजन तथा उससे प्राप्त होने वाले फलों का भी निरूपण है।

इसके आठवें पटल में यन्त्र के स्वरूप (अर्चन), दूतीयाग, मन्त्र के दश संस्कार इत्यादि का वर्णन है। नवें तथा दशवें पटल में क्रमशः वीरसाधन एवं श्मशान साधन का विवरण है।

ग्यारह, बारह, तेरह तथा चौदहवें पटल में विभिन्न मन्त्रों का विवरण तथा तत्सम्बन्धित विधानों का उल्लेख किया गया है। पन्द्रहवें पटल में साधन स्थानों का वर्णन है। सोलहवें में शारदीय दुर्गार्चन, सत्रहवें में मण्डप-विधान, कुण्ड-निर्णय, अग्नि संस्कारादि का निरूपण किया गया है।

अट्ठारहवें पटल में भगवती तारा के 'सहस्रनाम' का तथा उन्नीसवें एवं बीसवें पटल में क्रमशः नील-सरस्वती कवच तथा तारा-शतनाम का निरूपण किया गया है।

इक्कीसवें पटल में रसायन-विधान तथा भावनिरूपण, बाईसवें पटल में 'काली-सहस्रनाम' तथा तेईसवें पटल में 'काली-शतनाम' का उल्लेख है। इसी प्रकार चौबीसवें पटल में अन्नपूर्णा के मन्त्र सहित उनके शत-नाम का वर्णन किया गया है।

शाक्त-साधन-विधान की इस अमूल्य धरोहर को हिन्दी भाषा में अनूदित करके स्वामी शत्रुघ्न दास जी ने उन सभी साधकों तथा जिज्ञासुओं को उपकृत किया है जो संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ हैं।

श्री भगवती की अहेतुक कृपा से स्वामी जी ने श्लोकों की अशुद्धियों को दूर करने के शोधपूर्ण प्रयास के साथ ही कूट मन्त्रों एवं श्लोकों की सटीक व्याख्या करके ग्रन्थ की उपयोगिता को अत्यन्त ही संवर्धित कर दिया है। स्वामी जी द्वारा किया गया यह स्तुत्य पूर्ण प्रयास उनकी विलक्षण प्रतिभा, शाक्त साहित्य में शोध की जिज्ञासा एवं उन पर मां नील-सरस्वती की प्रत्यक्ष व परोक्ष कृपा को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।

'बृहन्नील-तन्त्रम्' नामक यह ग्रन्थ शाक्त समाज की एक अमूल्य निधि है। भगवती स्वामी जी को सदैव स्वस्थ रखते हुए सुदीर्घजीवी बनाये जिससे शाक्त समाज तन्त्र के प्राचीनग्रन्थों का परिचय सहज एवं सरल भाषा में प्राप्त करता रहे।

यदि शिल्पकार अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का उपयोग करते हुए सुन्दर सजीव भगवत् प्रतिमा का निर्माण करे परन्तु वह किसी देवालय में प्रतिष्ठित होकर सर्व जन आराध्य न बन सके तो उस शिल्पकार का श्रम 'स्वान्तः सुखाय' भले ही कहा जाय, 'सर्वजन हिताय (सुखाय)' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ की रचना एवं रचनाकार से न्यूनतर महत्व प्रकाशन तथा उसके प्रकाशक का नहीं होता। हजारों अप्रकाशित ग्रन्थ (पाण्डुलिपियाँ) संग्रहालयों में महत्वहीन सी पड़ी हुई धूल-घूसरित हो रहे हैं, समाज के लिए

उनका क्या मूल्य है? इसीलिए इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग प्रदान करने वाले 'श्रीमान् आद्या शंकर त्रिपाठी' (जनपद-वाराणसी, उत्तर प्रदेश - वर्तमान में कैलिफोर्निया, अमेरिका निवासी) तथा 'मधुसूदन-प्रकाशन एवं उसके सर्वेसर्वा श्री विकास थपलियाल 'शिवम' जी दोनों ही अत्यधिक प्रशंसा एवं धन्यवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के नयनाभिराम अक्षर संयोजन के लिए कृष्णा कम्युनिकेशन, ऋषिकेश (देहरादून) तथा आकर्षक मुद्रण के लिए 'आईशा प्रिंटिंग प्रेस, देहरादून का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थरूपी पूजनोपचार को भगवती के चरणों में समर्पित करने की क्रिया में जिन अन्य महानुभावों का भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से किञ्चित भी सहयोग रहा हो, उन सभी को माँ तारा अपनी ममतामयी कृपा के साथ ही श्रेय तथा प्रेय दोनों ही प्रदान करे। यही उस जगज्जननी जगदम्बा से विनम्र प्रार्थना एवं आशा है।

महाशिवरात्रि
७ मार्च, २०१६

भगवती तारा-चरण-चञ्चरीक
राजीव श्रीवास्तव
(दिव्यानन्द नाथ - कौलाचार्य)
इलाहाबाद (उ०प्र०)

अनुक्रमणिका

प्रथमः पटलः

१. ग्रन्थावतरणम् ..१
२. ग्रन्थ-महिमा ..२
३. ग्रन्थस्य वर्ण्य विषयानि ..२
४. सभेद तारिणी सपर्यायाः श्रवणेच्छा ..४
५. सारस्वत-मन्त्रोद्धारः ..४
६. मन्त्रस्य ऋपिछन्दादि कथनम् ..५
७. मन्त्रोपासनार्थे प्रातः कृत्य कर्मोपाख्यानम् ..५
८. स्नान-सन्ध्याविधि आदि कथनम् ..६

द्वितीयः पटलः

१. पूजनार्थे स्थान-सङ्केतनम् ..१२
२. याग-मण्डपे-द्वारपूजनम् ..१२
३. श्मशानपीठ-ध्यानम् ..१३
४. यागमण्डेप भूम्यादि शोधन-पूजनपूर्वक आसनोपवेशनम् ..१४
५. यन्त्र-लेखनम् ..१५
६. सारस्वतप्रद नीलसरस्वती यन्त्रम् ..१६
७. यन्त्रे पीठ-पूजाम् ..१७
८. भूतशुद्धिं देवी ध्यानञ्च ..१८
९. पञ्च नमस्कार मुद्रा ..१९
१०. देव्याः शेषध्यानस्वरूप-वर्णनम् ..१९
११. अर्घ्य स्थापनं, विनियोग, पडङ्ग-पोढा-मातृका न्यासादि कथनम् ..२०
१२. देव्याः पूजन-क्रमं प्रदेय पुष्पनामानि च ..२२
१३. देव्याः नैवेद्य निरूपणम् ..२४
१४. गुरुत्रय पूजनार्थे अनुमतिम् ..२४
१५. गुरु माहात्म्य सहित गुरुत्रय निरूपणम् ..२५
१६. यन्त्राष्टदले वैरोनादि पूजनम् ..२६
१७. नित्य-होम कथनम् ..२७
१८. समन्त्र-बलि-विधानम् ..२८
१९. षटचक्रेषु मन्त्र बीज ध्यानं तत्फलवर्णनञ्च ..२९
२०. देव्याः स्तुतिम् ..३०
२१. ताराष्टक स्तोत्र माहात्म्यं फलश्रुतिश्च ..३१
२२. ताराष्टक-स्तोत्रम् ..३३
२३. ताराष्टक स्तोत्र फलश्रुतिः ..३६
२४. सलक्षण-साष्टाङ्ग-प्रणामं निर्माल्यर्पणञ्च ..३६

तृतीयः पटलः

१. दीक्षा-माहात्म्यं-वर्णनम् ..३९
२. सद्गुरु प्रशंसनं स्वरूप वर्णनञ्च ..४०
३. कुलीन (शैव-शाक्त) गुरुणा दीक्षा श्रेयप्करा ..४१
४. दीक्षार्थ काल (मास-तिथि) निर्णयम् ..४२
५. दीक्षार्थे शुभ स्थान नक्षत्राणि च ..४३
६. दीक्षा विषये कुल्लुकादि ज्ञानं गुरुं-दक्षिणा माहात्म्य-कथनञ्च ..४४
७. पुनर्गुरुमाहात्म्यं तस्य सफल पूजाविधानञ्च ..४५

चतुर्थः पटलः

१. पुरश्चर्याविधि-वर्णनम् ..४८
२. काली-मन्त्र-स्वरूपं जप-विधानञ्च ..४९
३. माला-निरूपणम् ..५१
४. मालायां प्राण-प्रतिष्ठा-विधिः ..५४
५. कर-मालायां अंगुलीनां निर्णयम् ..५६
६. कुल्लुकाज्ञानस्यानिवार्यताम् ..५६
७. कुल्लुका निरूपणं विद्या-जपं तदनन्तर कार्यवर्णनञ्च ..५८
८. चैतन्य-मन्त्र-माहात्म्यं तर्पणाभिषेकादि वर्णनञ्च ..५९
९. परदाराभिगमन-विषये जिज्ञासा ..६२
१०. परदाराभिगमन-व्यवस्था ..६२
११. वेदोत्पत्ति-कर्तादि विषये जिज्ञासा ..६३

पञ्चमः पटलः

१. काम्यार्चन-निरूपणम् ..६६
२. दुर्गा महाष्टमी प्रपूजन-माहात्म्यं तत्र आसवसहित बलि निरूपणञ्च ..६८
३. आसवं प्रति देव्याः जिज्ञासा ..६८
४. सुरायाः पेयत्वापेयत्वं तस्याः भेदानि च ..६९
५. अमन्त्रित सुरापाने दोषः तत्र शुक्रोपाख्यानम् ..७०
६. श्री शुक्राचार्येण देव्याः स्तुतिः ..७१
७. महाकाल्याः शुक्राचार्यं प्रति-वचनम् ..७२
८. आसवानुकल्पं, होमं, विशेष तिथि पूजन-फलश्च ..७३

९. अनुष्ठानादि कथनं पीठार्चनञ्च ..७५
१०. सिद्धिप्रद स्थान (पीठ) नामानि ..७७
११. पीठानां माहात्म्यम् ..७९
१२. पीठ-देवता-नामानि ..८०
१३. तीर्थ-माहात्म्य-वर्णनम् ..८८
१४. अक्षमालामयपीठ-माहात्म्यं तन्नाम वर्णनञ्च ..८९
१५. तीर्थानां प्राकट्य प्रयोजनं भक्ति स्वरूपं तत्फल निरूपणञ्च ..९१
१६. दुर्भगस्य नरस्य स्थितिम् ..९३
१७. मुक्त्यर्थे प्रवृत्त्युपदेशः ..९५
१८. पीठेषु देव्याः प्रिय नाम-वर्णनम् ..९६

षष्ठः पटलः

१. कुल-पूजनस्य जिज्ञासा ..१००
२. कुल (शक्ति) पूजन-माहात्म्यम् ..१००
३. कुल-शक्ति-पूजनम् ..१०३
४. शक्त्यर्चने षोडशवर्षा श्रेष्ठा ..१०४
५. केशसंस्करणं युवत्यङ्गेषु मन्त्र लेखनञ्च ..१०४
६. अङ्गेषु मन्त्र-जप-विधिः ..१०५
७. बलि-प्रदानम् ..१०६
८. बलिदान-माहात्म्यं, अदाने हानिः ..१०७
९. बलिमन्त्र-द्वय-निरूपणम् ..१०८
१०. शाक्ताचार-क्रम-निरूपणम् ..१०९
११. समयाचार-लक्षणम् ..१११
१२. महादेव्याः कालिकायाः पूजनम् ..११५
१३. बलिदान-निरुपणम् ..११८
१४. महाकाली (दक्षिणा काली) मन्त्रोद्धारः..११९
१५. विशेषेषु मास-तिथिषु देव्याः पूजन-फलम् ..१२०
१६. काम्यानुष्ठानरूप षट्कर्म-स्वरूपं तेषां प्रयोगानां काल-निरूपणञ्च ..१२१
१७. कर्मानुसारेण तद्देवता-ध्यानम् ..१२३
१८. पल्लव-योगादि निरूपणम् ..१२४
१९. प्रयोगकाले-देवता-ध्यानम् ..१२६
२०. तिथि-वार निर्णयम् ..१२७
२१. वशीकरण-प्रयोगः ..१२८
२२. विद्वेषण-प्रयोगः ..१३१
२३. शान्ति-कर्म-प्रयोगः ..१३३
२४. ज्योतिरूपा-देवी-दर्शनम् ..१३४
२५. साधने हेतोः स्वीकार्यता तस्य नामानि च।..१३६
२६. सुरा-शोधनम् ..१३८
२७. हेतु-शोधन-मन्त्राः ..१४०
२८. हेतु-ग्रहणं तदनन्तरे जप-पूजादि कर्माणि..१४२
२९. नैवेद्य-निन्दा-निषेधं देव्याः नैवेद्य-वर्णनञ्च ..१४३
३०. स्त्रियः सर्वथा पूज्याः ..१४४
३१. साधने कारणस्य कारणता विषये देव्या सह तादाम्यप्राप्त्युपाय विषये च प्रश्नम् ..१४६
३२. कारणस्य कारणता विषये समाधानम्..१४७
३३. हेतु ग्रहणात् दोषापनयनम् ..१४८
३४. शाक्ताचार-वर्णनम् ..१४९
३५. देव्याः होम-तर्पण-विधानम् ..१५४
३६. शक्ति(खड्ग) पूजन मन्त्राः ..१५९

सप्तमः पटलः

१. शत्रु-निग्रहोपायः - उच्चाटनम् ..१६१
२. मारणोपायः ..१६१
३. विद्वेषणोपायः, तत्तत्कार्यार्थे मन्त्र स्वरूपाणि च ..१६२
४. पर-मन्त्र सिद्धिविनाशक-प्रयोगः ..१६२
५. मन्त्र-दोष निवारक-प्रयोगः ..१६३
६. पुत्र-धन-रक्षादिकार्यार्थे धारण-यन्त्रम्..१६३
७. अष्टाक्षर-मन्त्रोद्धारः ..१६५
८. वशीकरण-प्रयोगः ..१६५
९. कवित्वप्रद-प्रयोगः ..१६७
१०. बाल्यकालादेव कवित्व-शक्ति-सम्भवार्थे प्रयोगः ..१६८
११. मन्त्र लेखनान्ते तारिणी-पूजनम् ..१६९
१२. शान्ति-स्तोत्रम् ..१७०
१३. शान्ति-स्तोत्र-महात्म्यम् ..१७२
१४. महाचीन-क्रम-विषयक-प्रश्नः ..१७३
१५. महाचीन-क्रम-वर्णनोपक्रमः ..१७३
१६. देव्या सतर्क प्रत्युत्तरान्ते पुनः प्रकाशनार्थे प्रार्थना ..१७५
१७. महाचीन क्रमे स्नान शुद्ध्यशुद्ध्यादि निरूपणम् ..१७६
१८. महाचीन क्रमे जपादि-निरूपणम् ..१७८
१९. अस्य साधनस्य प्रकाशने मृत्युः सर्व हानिश्च ..१८४

२०. सारस्वतप्रद-प्रयोगः ..१८५
२१. निश्चित् सिद्धिप्राप्त्युपायरुप-प्रश्नम् ..१८६
२२. मन्त्र-सिद्ध्यर्थे मन्त्र-शिखानिरूपणम् ..१८६
२३. निशाचारादि निरूपणम् ..१८८
२४. योषिद्-ध्यानेन मन्त्र-सिद्धिः ..१८९
२५. श्री भ्रष्ट इन्द्रेण बृहस्पतिं प्रति-गमनम् ..१९१
२६. इन्द्रेण वृहस्पतिं-प्रति पुनः इन्द्रत्वं प्राप्त्युपाय रूप प्रश्नम् ..१९१
२७. नील-साधनमकरेण इन्द्रत्व-हानिः धर्मेण श्री वर्धनञ्च ..१९२
२८. बृहस्पतिना हिरण्याक्षपुर-गमनं अध्यापक वृत्त्यर्थे निवेदनञ्च ..१९३
२९. स्वकुतर्कैः बृहस्पतिना दैत्यराजं मोहनम् ..१९४
३०. बृहस्पतिना देवराजं प्रतिगमनं तारण्यादि पूजा-विधान-कथनञ्च ..१९४
३१. संक्षिप्त पूजन-जपादि विधानम् ..१९५
३२. कुमारी पूजनम् ..१९६
३३. अवस्था भेदेन कन्यानां संज्ञाः ..१९७
३४. कन्या-पूजने पञ्चाङ्ग न्यासं वक्त्र-न्यासं उपचारादि अर्पणम् ..१९९
३५. कन्या-दान-फलम् ..२०२

अष्टमः पटलः

१. काली-यन्त्रोद्धारः ..२०४
२. यन्त्र-लेखनं देव्यावाहनं पूजनञ्च ..२०४
३. देव्याः उपचार निरूपणम् ..२०७
४. कतिपयाः काम्य-प्रयोगाः ..२०८
५. तारा-साधन-विषये पुराख्यान-वर्णनम् ..२०९
६. भैरवेण-विष्णोर्शङ्का-समाधानम् ..२१०
७. काली-गायत्री मन्त्रेण पापेभ्यो मुक्तिः ..२१०
८. काली-गायत्री-मन्त्रोद्धारः ..२११
९. साधन निरूपणम् ..२१२
१०. वक्ष्यमाण महामन्त्रस्य माहात्म्यम् ..२१३
११. त्र्यक्षर-मन्त्रोद्धारः ..२१५
१२. देव्याः पूजन हेतवे स्थानानां नाम्नां निरूपणम् ..२१५
१३. काली-गायत्री साधना ..२१६
१४. कलियुगे प्रधान-देवता विषये देवी प्रश्नम् ..२१८
१५. कलियुगे काली-तारिण्योः प्राधान्यम् ..२१९
१६. काली (दक्षिणा काली) मन्त्रोद्धारः ..२१९
१७. विद्यायाः (मन्त्रस्य) माहात्म्यम् ..२१९
१८. मन्त्रेण साधिताः प्रयोगाः ..२२०
१९. कुण्डलिन्याः चक्र-निरूपणम् ..२२१
२०. मन्त्र-दोषस्य कारणम् ..२२४
२१. मन्त्राणां दश-संस्काराः ..२२५
२२. ब्रह्मणः साकार-स्वरूप निरूपणम् ..२२७
२३. ब्रह्मणः जीवत्व-रूपं तच्छक्ति रूपं च निरूपणम् ..२२९

नवमः पटल :

१. गृहान्तिके मन्त्र-साधनम् ..२३५
२. शवासने वीरसाधनेन पुरश्चर्या साधनम् ..२३८

दशमः पटल :

१. शव-मुण्ड-साधनम् ..२४०
२. लता-साधनेन मन्त्र-सिद्धिः ..२४१
३. वीर (शव) साधनम् ..२४२
४. श्री गुरुं तत्सम्बन्धिनश्च पूजनम् ..२४३

एकादशः पटलः

१. तारा-मन्त्रोद्धारः ..२४५
२. मन्त्रवर्ण-संख्याभेदेन देवता (विद्या-नाम) भेदाः ..२४६
३. सप्ताक्षरी महाविद्योद्धारः ..२४७
४. भुवन-तारिणी तारा-विद्योद्धारः ..२४७
५. दशाक्षर मन्त्रोद्धारः ..२४८
६. अष्टाक्षरी-विद्या विद्यारत्नोद्धारः ..२४९
७. सप्तदशाक्षरी महाविद्योद्धारः ..२४९
८. अष्टाक्षरी हंस-तारा महाविद्योद्धारः ..२५०
९. चतुस्त्रिंशदक्षरी नील सरस्वती मन्त्रोद्धारः ..२५२
१०. मन्त्रस्य ऋषि-छन्दादि वर्णनम् ..२५२
११. नील सरस्वत्याविर्भावम् ..२५३
१२. अस्याः गुप्त मन्त्रस्योद्धारः प्रयोगश्च ..२६१

द्वादशः पटलः

१. श्री महाविद्योत्पत्ति-निरूपणम् ..२६२
२. काल्याः प्राकट्यं देवताभिः स्तवनञ्च ..२६३
३. सृष्टि-क्रम-निरूपणम् ..२६५
४. असुरैः पराजिता देवताभिः काल्यन्तिकं गमनम् ..२६६
५. ब्रह्मणा सह देवताभिः विष्णु-शिव समीपं गमनम् ..२६७
६. ब्रह्मादि देवताभिः कालीसमीपागमनम् ..२६८

७. देवताभिः स्वविपत्ति-निवेदनं काल्या नील सरस्वती विषये कथनञ्च ..२६९
८. नील सरस्वत्याः माहात्म्यं तयाश्वासितादेव ताभिपुनरागमनञ्च ..२७०
९. देवातभिः देवी नीलसरस्वत्या पूजनम्..२७१
१०. सिद्धविद्या निरुपणं देव्यासुरान्निहत्य सुरान् संस्थापनञ्च ..२७३
११. सार्वज्ञ-प्राप्ति-प्रयोगः ..२७४

त्रयोदशः पटलः

१. महाकाल्याः मन्त्रोद्धारः ..२७६
२. ऋषि-छन्दं-ध्यानादिकम् ..२७७
३. काली-गायत्री-मन्त्रोद्धारः ..२७८
४. मूल-मन्त्रस्य पुरश्चरणं तत्साधनञ्च..२७९
५. मन्त्रस्य माहात्म्यम् ..२८१

चतुर्दशः पटलः

१. कामाख्याः पञ्च भैरवं तद्यन्त्र-मन्त्र-स्वरूपञ्च ..२८२
२. मन्त्र-माहात्म्यम् ..२८३
३. कामाख्या-यन्त्र-पूजनम् ..२८३
४. योगिनी नामानि तासां पूजनञ्च ..२८८

पञ्चदशः पटलः

१. दर्पणाख्य-पर्वतस्य माहात्म्यम् ..२९२
२. दर्पणं परितः स्थितानां क्षेत्राणां माहात्म्यम् ..२९३

षोडशः पटलः

१. विविधाचारं पर्व-विशेषेषु पूजनादि निरूपणञ्च ..३०९
२. ज्येष्ठ पूर्णिमायां महाकाली... ..३१२
३. आषाढ़ादि मासेषु देवी स्नपनात् प्राप्तव्यानि फलानि ..३१४

सप्तदशः पटलः

१. सार्वज्ञ-मन्त्र-प्रयोगः ..३२०
२. कार्तिक-मासे महाकाली-पूजनम् ..३२१
३. मण्डप-कुण्डादि निरूपणम् ..३२३
४. आहुति-मानेन कुण्ड-मानं सदोषे हानिश्च.३२७
५. कुण्ड-संस्काराः ..३२८
६. कुण्ड-मध्ये रेखाङ्कन-पीठार्चन अग्न्युद्धरणादयः ..३३०
७. वह्नि मन्त्रस्य न्यासादि निरूपणम्..३३२
८. अग्नि-देवतायाः ध्यानम् ..३३५
९. अग्नेः सप्तजिह्वाष्टमातृकादि पूजनम् ..३३६
१०. स्रुक-स्रुवाज्याग्न्यादि संस्कारम् ..३३७
११. अग्नौ देवी-पूजनं हवन-विधिश्च ..३४१
१२. माघ-मासि शुक्लपक्षे सप्तमी तिथौ देव्याः पूजनम् ..३४२
१३. सन्ध्योपासनादि निरूपणम् ..३४३
१४. अभिषेकाघर्मणार्घ्यादि निरूपणम् ..३४४
१५. संक्षिप्त पूजन विधि निरूपणम् ..३४६

अष्टादशः पटलः

१. तारा-सहस्रनाम वर्णनाय निवेदनम् ..३४८
२. तारा सहस्रनाम्नः गोपनीयत्वं प्रकाशनाद् हानिश्च ..३४८
३. भैरवस्य वचनं श्रुत्वा देव्याः विषण्णम् ..३४९
४. महादेवेन देवी-माननम् ..३५०
५. तारा सहस्रनाम प्रकाशनाय पुनर्निवेदनम् ..३५१
६. तारा सहस्रनाम-स्तोत्रस्य माहात्म्यम् ..३५१
७. तारा सहस्र-नामानि ..३५२
८. तारा सहस्रनाम स्तोत्रपाठ-फलश्रुतिः..३६७

एकोनविशः पटलः

१. तारा-कवच-माहात्म्यम् ..३७४
२. तारा-कवच-स्तोत्रम् ..३७५
३. त्र्यक्षरी गुप्त मन्त्रोद्धार-साधनञ्च ..३७७

विशः पटलः

१. तारा-शतनाम-निरूपण-हेतवे प्रार्थना ..३८०
२. तारा-शतनाम-स्तोत्रस्य माहात्म्यम् ..३८०
३. तारा-शतनाम-स्तोत्रम् ..३८१
४. फल-श्रुतिः ..३८३
५. सर्वविद्या प्राप्त्युपायः (साधनम्) ..३८३
६. शक्ति माहात्म्यं तत्साक्षात्कारं च ..३८४
७. नानात्वे एकं एके च नानात्व-दर्शनम् ..३८५
८. प्रकृति-योगेन (ज्ञानेन) बिना आत्मज्ञानस्यासम्भवत्वम् ..३८६

एकविंशः पटलः

१. स्वर्ण-रजत-निर्माण-विधिः ..३८८
२. पारद (सूत) भस्म निर्माण-विधिः ..३८९
३. भावत्रय-निरूपणम् ..३९०

द्वाविंशः पटलः

१. काली सहस्रनाम श्रुत्यर्थ-कामना ..३९५
२. सविनियोग काली-सहस्रनाम वर्णनम्..३९५
३. सहस्रनाम-स्तोत्रपाठ-फलश्रुतिः ..४१२

त्रयोविंशः पटलः

१. श्री महाकाल्याः शतनाम प्रकाशनाय प्रार्थना ..४१४
२. श्री महाकाल्याः शतनाम-वर्णनाय प्रतिज्ञा ..४१४
३. विनियोग सहित शतनाम वर्णनम् ..४१५
४. शतनाम (स्तोत्र) पाठ-फलश्रुतिः ..४१७

चतुर्विंशः पटलः

१. अन्नदा-मन्त्र-प्रकाशनाय निवेदनम् ..४१९
२. अन्नदा (अन्नपूर्णा) मन्त्रोद्धारः ..४१९
३. अन्नदा-शतनाम-वर्णनम् ..४२०
४. शतनाम-पाठ (जप)-फलश्रुतिः ..४२२
५. अन्य तन्त्रस्य माहात्म्यम् ..४२६

परिशिष्टम्

प्राभातिक कृत्य (तारा साधने)

१. गुरु-ध्यान-मानसपूजनादि ..४२८
२. स्नान-विधिः ..४३०
३. अघमर्षणं तर्पणं सन्ध्याविधिश्च ..४३१
४. तारा (उग्रतारा) सन्ध्याविधिः ..४३३
५. नील सरस्वती-सन्ध्याविधिः ..४३४
६. मन्त्राचमनम् ..४३५
७. द्वार-पूजनम् ..४३५
८. सामान्य-अर्घ्य-स्थापनम् ..४३६
९. संविदा (विजया) ग्रहणम् ..४३९
१०. द्रव्य-शुद्धिः ..४४०
११. कुण्डगोलोत्पत्तिः ..४४१
१२. (पुनः) सामान्यार्घ्य (शंख) स्थापनम् ..४४५
१३. प्रोक्षणी-पात्र-स्थापनम् ..४४७
१४. यन्त्र-संरचना ..४४९
१५. लघु-प्राण-प्रतिष्ठापनम् ..४४९
१६. भूत-शुद्धि ..४५०
१७. देव्याः स्वरूप-वर्णनम् ..४५१
१८. प्राणायामः ..४५३
१९. मूलमन्त्रस्य विनियोग न्यासादि ..४५४
२०. अन्तर्बहिर्मातृका न्यासः ..४५५
२१. तारा-षोढा न्यासः ..४५५
२२. रुद्र-न्यासः ..४५६
२३. ग्रह-न्यासः ..४५६
२४. लोकपाल-न्यासः ..४५७
२५. शिव-शक्ति न्यासः ..४५७
२६. तारादि न्यासः ..४५८
२७. पीठ-न्यासः ..४५८
२८. काली-तन्त्रोक्त षोढा न्यासः ..४५८
२९. गुह्य षोढान्यासः ..४५९
३०. योनि-न्यासः ..४६०
३१. बीज (मन्त्र) न्यासः ..४६०
३२. तत्व-न्यासः ..४६०
३३. पीठ-न्यासः ..४६०
३४. यन्त्रे पीठ-पूजनम् ..४६१
३५. देव्याः आवाहनम् ..४६२
३६. प्राण-प्रतिष्ठा ..४६३
३७. देव्यर्चनम् ..४६४
३८. अक्षोभ्य-ध्यानं पूजनञ्च ..४६७
३९. आवरण-पूजनम् ..४६७
४०. बलिदानम् ..४७३
४१. जपकाले मन्त्र-भावना ..४७४
४२. नित्य होमः ..४७४
४३. पुरश्चरण-विधिः ..४७५
४४. तारायाः मन्त्राः ..४७६

प्रभातिक कृत्य (काली साधने)

१. गुरु-ध्यान-मानसपूजनादि ..४७८
२. श्री दक्षिणा काली ध्यानम् ..४८१
३. अजपा-जप समर्पणम् ..४८२
४. दन्त-शोधनादि ..४८५
५. स्नानाघमर्षण-तर्पण-सन्ध्याः ..४८५
६. गृहे स्नान-विधिः ..४८६
७. यागमण्डप (द्वार-पूजनम्) ..४८६
८. मन्त्र-नित्याचमनम् ..४८८
९. भूत-शुद्धिः ..४९०
१०. पाप-पुरुष-ध्यानम् ..४९१
११. प्राण-प्रतिष्ठा ..४९१
१२. मूलमन्त्रस्य विनियोगादयः ..४९३
१३. वर्ण-न्यासः ..४९४
१४. मातृका-न्यासः, अन्तर्मातृका न्यासः ..४९४
१५. बहिर्मातृका न्यासः, संहार-मातृका न्यासः ..४९७
१६. सृष्टि-मातृका-न्यासः ..५००
१७. स्थिति मातृका-न्यासः ..५०२
१८. कलामातृका न्यासः ..५०५

१९. श्रीकण्ठादि मातृका न्यासः ..५०९
२०. काली षोढा न्यासः ..५११
२१. तत्व-न्यासः ..५१२
२२. बीज-न्यासः ..५१२
२३. मन्त्र-वर्ण-न्यासः ..५१२
२४. पीठ-न्यासः ..५१३
२५. मानस पूजनम् ..५१४
२६. मानस जपं, मानस तर्पणम् ..५१५
२७. पूजन-यन्त्र-संरचना ..५१६
२८. पात्रासादनं (कलश स्थापनम्) ..५१८
२९. शापोद्धारः (द्रव्यशोधनम्) ..५२२
३०. आनन्द भैरव ध्यानम् ..५२२
३१. आनन्द भैरवी ध्यानम् ..५२२
३२. श्रीपात्र (विशेषार्घ्य) स्थापनम् ..५२३
३३. गुरु-पात्रादि स्थापनम् ..५२६
३४. आनन्द-भैरवादि तर्पणम् ..५२८
३५. तत्वशोधनम् ..५२९
३६. शुद्धि ग्रहणम् ..५२९
३७. कारण (बिन्दु) ग्रहणम् ..५२९
३८. पञ्चबलि प्रदानम् ..५३०
३९. पीठ-पूजनम् ..५३२
४०. हृद्याद् देव्यावाहनं यन्त्रे स्थापनञ्च..५३३
४१. प्राण-प्रतिष्ठापनम् ..५३४
४२. आवरण-देवतानामावाहनम् ..५३४
४३. श्रीमद् दक्षिणा कालिकायाः पूजनम्..५३६
४४. महाकाल ध्यानम् ..५४२
४५. आवरण-पूजनम् ..५४२
४६. श्रीमद् दक्षिण कालिकायाः (पुनः) अर्चनम् ..५४७
४७. महानैवेद्यम् ..५४८
४८. मन्त्र-जप-विधिः ..५५०
४९. माला-पूजनम् ..५५१
५०. कुल्लुका मन्त्र-विनियोगादि ..५५१
५१. सेतु-महासेतु आदि मन्त्राः ..५५२
५२. नित्य-होमः ..५५३
५३. बलि-प्रदानम् ..५५६
५४. नीराजनम् ..५५६
५५. आत्मसमर्पणम् ..५५८
५६. क्षमापनम् ..५५८
५७. देवतोद्वासनम् ..५५८
५८. पात्रोद्वासनम् ..५५९
५९. शान्ति-स्तोत्रम् ..५६०
६०. तारिणी पञ्च श्लोकी ..५६१
६१. तारा चालीसा ..५६२
६२. आरती (तारा) ..५६४
६३. आरती (काली) ..५६५

॥ प्रथमः पटलः॥

(मूल मन्त्रोद्धारपूर्वक सन्ध्या-विधि निरूपणम्)

ॐ श्री गणेशाय नमः। नमस्तारायै।

॥ग्रन्थावतरणम्॥

श्रीदेव्युवाच

कैलासशिखरासीनं भैरवं कालसंज्ञितम्।
प्रोवाच सादरं देवी तस्य वक्षःसमाश्रिता॥१॥
पुरा प्रतिश्रुतं देव कालीतन्त्रप्रकाशने।
नीलतन्त्रप्रकाशाय तद् वदस्व सदाशिव॥२॥
यस्य विज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते।
यज् ज्ञात्वा साधकाः सर्वे विचरन्ति यथा तथा॥३॥
यस्य विज्ञानमात्रेण कविता चित्तमोदिनी।
जायते च महादेव तत्त्वं तत् कथयस्व मे॥४॥

कैलाश पर्वत के शिखर पर बैठे हुए (समस्त लौकिक ज्ञान तथा पारलौकिक-ब्रह्मज्ञान रूपी सिंहासन पर विराजमान, सम्पूर्ण ज्ञानों पर अधिकार प्राप्त तथा सकल-ज्ञानाधिष्ठानभूत) महाकाल संज्ञक भैरव (शिव) से, उनके हृदय में सदैव (ब्रह्मज्ञान रूप से) आश्रित रहने वाली (उसी) देवी ने (ही लोक कल्याण के लिए भगवती नील सरस्वती-तारा के मन्त्रोपासनादि विषयक ज्ञान को प्रकाशित करने हेतु) आदरपूर्वक बोला (कहा)।

हे सदाशिव! इससे पहले मेरे प्रश्न करने पर आपके द्वारा प्रति-उत्तर में काली तन्त्र विषयक वर्णन में मैंने नीलतन्त्र (नील-सरस्वती) के भी नाम का उल्लेख करते हुए आपको सुना है। अब आप कृपा करके नील सरस्वती से सम्बन्धित नील-तन्त्र के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए। इस तन्त्र की महिमा-वर्णन में कहा जाता है कि इसकी सविधि सरहस्य मन्त्रोपासनादि का ज्ञान रखने वाला (उसका अनुष्ठान करने वाला) मनुष्य सर्वत्र निर्भय होकर स्वच्छन्द जहाँ-तहाँ विचरण करता है तथा उसकी पृथ्वी पर सदा ही विजय होती है। इसके ज्ञान मात्र से ही उसके मुख से विद्वानों के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली (रस-छन्द-अलङ्कारों) से युक्त काव्य-सरिता प्रवाहित होने लगती है। इसलिए हे महादेव! इस नीलतन्त्र के तत्व का विस्तार पूर्वक कथन मुझसे करें।

।। ग्रन्थ महिमा।।

श्रीमहाकालभैरव उवाच

शृणु सा (ध्वि) वरारोहे सर्वार्थस्य प्रदायिनि।
तत्त्वं तत् कथयिष्यामि तव स्नेहाद् गणाधिपे।।५।।
नीलतन्त्रप्रकाशाय प्रतिज्ञासीन्मम प्रिये।
तस्मात् कथ्यं महेशानि शृणु (ष्व) कमलानने।।६।।
गुह्याद् गुह्यतरं तन्त्रं न प्रकाश्यं कदाचन।
तन्त्रस्यास्य प्रकाशाच्च सिद्धिहानिर्न संशयः।।७।।
यद्गृहे निवसेत् तन्त्रं तत्र लक्ष्मीः स्थिरायते।
राजद्वारे श्मशाने च सभायां रणमध्यतः।।८।।
निर्जने च वने घोरे (श्वा)पदैः परिभूषते।
माहात्म्यात् तस्य देवेशि चमत्कारी भवेत् प्रिये।।९।।

स्वभक्तों को उनके अभीष्ट सभी अर्थों (भोगों-पदार्थों) को प्रदान करने वाली, सुन्दर स्तनों (नितम्बों) वाली तथा (मेरे) गणों की स्वामिनी हे साध्वि (सत्प्रकृति वाली)! तुम्हारे प्रेमवश मैं उस नीलतन्त्र के तत्व को तुमसे कहूँगा। हे महेशानि, कमलानने, प्रिये! मैंने तुमसे नीलतन्त्र के प्रकाशन (वर्णन करने) की प्रतिज्ञा की है अतः उसका वर्णन करता हूँ, ध्यान से एकाग्रचित्त होकर सुनो। यह अति गोपनीय तन्त्र है, जहाँ-तहाँ अनाधिकारी के समक्ष केवल ज्ञानाडम्बर भाव से इसका प्रकाशन नहीं करना चाहिए अन्यथा इसका वर्णन करने वाले व्यक्ति को कभी भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है तथा उसकी पूर्व प्राप्त-सिद्धि भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाती है। जिस किसी भी साधक के घर में इस तन्त्र का निवास होता है अर्थात् जहाँ इसकी मन्त्रादि की साधना होती है, उस घर में लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) सदैव अचल (क्षय-रहित) होकर निवास करती है। राजद्वार (राज-सभा) में, श्मशान में, विद्वानों की सभा (समाज) में, रणभूमि में, निर्जन वन में अथवा जङ्गली कुत्तों (तथा अन्य हिंसक पशुओं) से भरे भयानक अरण्य में, इस तन्त्र का एक निष्ठ साधक जहाँ कहीं भी स्थित हो, इस तन्त्र की महिमा से वह आश्चर्यजनक रूप से सदा सुरक्षित, निर्भय तथा विजय ही रहता है।

।।ग्रन्थस्य वर्ण्य-विषयानि।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं प्रयत्नतः।
तन्त्रराजं नीलतन्त्रं तव स्नेहात् प्रकाश्यते।।१०।।

गोपनीयतमं देवि स्वयोनिरिव पार्वति।
विशेषं मन्त्रराजस्य कथितव्यं वरानने॥११॥
यज्ज्ञानात् साधकाः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः।
सारात् सारतरं देवि सर्वसारस्वतप्रदम्॥१२॥
नित्यपूजां मन्त्रराजं मान्त्रोपासनिकं विधिम्।
पुरश्चर्यां च नैमित्तकाम्यानां नियमं तथा॥१३॥
नियमं च रहस्यानां कुमारीपूजनक्रमम्।
मन्त्रान्तरं च देवेशि पुरश्चर्यां विशेषतः॥१४॥
फलं स्तोत्रं विशेषेण कथितव्यं वरानने।
भावानां निर्णयं वाच्यं पूजान्तरविधिं तथा॥१५॥
होमस्य नियमं वाच्यं वासनातत्त्वनिर्णयम्।
गुप्तपूजां गुप्तमन्त्रं तथा गुप्तजपक्रमम्॥१६॥
स्वर्णरूप्यादिकरणं सूतभस्म तथैव च।
सूतस्य निर्णयं वाच्यं तथा षट्कर्मलक्षणम्॥१७॥
विद्योत्पत्तिं विशेषण कथिष्यामि तच्छृणु।

तुम्हारे स्नेह के कारण विवश होकर जिस नीलतन्त्र का मैं वर्णन करने जा रहा हूँ उसे सर्व प्रकार से प्रयत्नपूर्वक स्वयोनि की भाँति ही सदैव गुप्त रखना। विशेष रूप से जिस मन्त्रराज को मैं कहने जा रहा हूँ उसके ज्ञान को प्राप्त करके साधक सभी आश्चर्यजनक सिद्धियों के साथ ही सभी ऐश्वर्यों (भोगों-धन सम्पत्तियों) को भी प्राप्त कर लेता है। इस तन्त्र के विषय में विस्तार से वर्णन करना असम्भव सा है, इसलिए अत्यधिक संक्षिप्त रूप से इसके सारतर से भी सारतर तत्व का ही मैं निरूपण करुंगा। इसके सर्व सारस्वत (सर्व शास्त्रज्ञान) प्रद मन्त्र की नित्य जप तथा पूजन विधि का पुरश्चर्या सहित वर्णन, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों के सम्पादन की विधि, कुमारी पूजन की विधि तथा रहस्यों को, इसके अन्य मन्त्रों तथा उनकी पुरश्चरण विधियों को तथा स्तोत्रों के वर्णन सहित सभी के द्वारा उपलब्ध होने वाले फलों का भी वर्णन करूंगा। इसके अतिरिक्त वाचिक (वाह्य) पूजन तथा मानसिक (आन्तर) पूजन की विधियों, भावना-भेदों का निर्णय, हवन विधि, वासना तत्व निर्णय, गुप्त-पूजन-मन्त्र जप-विधि, स्वर्ण तथा चाँदी के निर्माण की विधि, पारद निर्णय, पारद-भस्म निर्माण की कला, षट्कर्म-लक्षण तथा विशेष रूप से विद्या की उत्पत्ति का भी मैं वर्णन करूँगा, तुम ध्यान से सुनो।

॥ सभेद-तारिणी सपर्यायाः श्रवणेच्छा॥

श्रीदेव्युवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि तारिणीं भेदसंयुताम्॥१८॥
सपर्याभेदसंयुक्तां महापातकनाशिनीम्।

हे देव! इस समय मैं महापाप (जन्म-मृत्यु रूप सांसारिक बन्धन) नाशिनी तारिणी (तारा) के विभिन्न भेदों (स्वरूपों) सहित उनके मन्त्रों तथा पूजन की विधियों का भी भेद (प्रकारों) सहित वर्णन सुनना चाहती हूँ।

॥ सारस्वत मन्त्रोद्धारः॥

श्रीशिव उवाच

सिद्धविद्यां महादेवि मायामोहनकारिणीम्॥१९॥
शृणु चार्वङ्गि देवेशि सर्वसारस्वतप्रदाम्।
सर्वबीजं समुद्धृत्य द्वितीयं बीजकं शृणु॥२०॥
जृम्भणान्तं त्यक्तपार्श्वं प्रस्थानवारकं युतम्।
तुरीयस्वरसंयुक्तं चन्द्रबिन्दुविराजितम्॥२१॥
बीजं नीलसरस्वत्यास्तृतीयं शृणु भैरवि।
सर्वस्याद्यं समादाय तस्याद्यं तत्र योजयेत्॥२२॥
यात्रानिवारणं तत्र योजयेच्च महेश्वरि।
व्य(व्द्य)ङ्गवर्णयुतं कुर्यान्नादबिन्दुविराजितम्॥२३॥
कूर्चास्त्रेऽन्ते समायोज्य मन्त्रराजं समुद्धरेत्।
पञ्चाक्षरी महाविद्या श्रीमन्नीलसरस्वती॥२४॥
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा।
जपमात्रेण सर्वेषां साधकानां विमुक्तिदा॥२५॥
अतिरिक्तश्रमो ह्यत्र नास्ति हे! सुरपूजिते।
सारात् सारतरं देवि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥२६॥

हे सुन्दर शरीराङ्ग वाली महादेवि देवेशि! अपनी माया से सम्पूर्ण विश्व (त्रिलोकी) को मोहित करने वाली तारिणी (तारा) सिद्ध विद्या कही जाती है। तुम उसके सर्वसारस्वतप्रद मन्त्र (के उद्धार) को सुनो।

सबसे पहले सर्वबीज (ॐ) का उद्धार करे। इसके बाद द्वितीय बीज के रूप में 'हकार' को स्वर रहित कर उसके साथ प्रस्थान वारक 'र', तुरीय स्वर 'ई' तथा चन्द्रबिन्दु का संयोग कर 'ह्रीं' का उद्धार करें। अब तीसरे बीज को सुनो। सर्वस्य का आद्य 'स्', तस्य का आद्य 'त्' तथा यात्रा निवारण

'र्' को संयुक्त करके उसके साथ द्वि-अंग वर्ण 'ई' तथा नाद-बिन्दु 'अनुस्वार' का समायोजन कर 'स्त्रीं' का उद्धार करें। पुनः इन तीनों बीजों के साथ अन्त में कूर्च 'हूं' तथा अस्त्र 'फट्' का योग करके मन्त्रराज का उद्धार करें। मन्त्र-स्वरूप - **''ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्''**॥

यह पञ्चाक्षरी महाविद्या श्रीमन्नीलसरस्वती कही जाती है अर्थात् यह नील सरस्वती का पञ्चाक्षरी मन्त्र है। इसके समान (प्रसिद्ध महिमा वाली) अन्य कोई विद्या (मन्त्र) त्रिलोक में भी अप्राप्य सी है। यह केवल जप करने मात्र से ही साधक को मुक्ति रूपी फल प्रदान करने वाली है। हे सर्वदेव पूजिता देवि! यह विद्या सभी तन्त्रों में अति गोपनीय तथा समस्त तन्त्र-मन्त्रों के सार से भी सारतर अंश (यथा दुग्ध का सार दधि, दधि का सार नवनीत तथा उसका भी सार घृत) के समान है, इसकी साधना में विशेष रूप से अन्य साधनाओं की अपेक्षा अधिक श्रम की आवश्यकता हो, ऐसा भी नहीं है। यह सहज ही साध्य है।

॥ मन्त्रस्य ऋषि-छन्दादि कथनम्॥

वशिष्ठोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती च्छन्द उच्यते।
नीलसरस्वती प्रोक्ता देवता कार्यसिद्धये॥२७॥
कवित्वार्थे विनियोगः सर्वसिद्धिसमृद्धिदः।
हूँबीजमस्त्रं शक्तिः स्यादेवमृष्यादिकल्पना॥२८॥

इस पञ्चाक्षरी सारस्वत प्रद मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ (अन्य तन्त्रानुसार अक्षोभ्य), छन्द वृहती, देवता नील सरस्वती, बीज 'हूं' तथा शक्ति 'फट्', (ह्रीं बीज, हूं शक्ति-मेरु तन्त्र) कहे गये हैं। सर्व सिद्धि समृद्धि (ऐश्वर्य) तथा विशेष रूप से कवित्व शक्ति प्राप्ति के लिए इसका विनियोग करना चाहिए।

॥ मन्त्रोपसानार्थे प्रातः कृत्य कर्माख्यानम्॥

उत्थाय चोत्तरे यामे चिन्तयेत् तारिणीं पराम्।
मूलादिब्रह्मरध्रान्तं बिसतन्तुतनीयसीम्॥२९॥
मूलमन्त्रमयीं साक्षादमृतानन्दरूपिणीम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम्॥३०॥
तडित्कोटिसमप्रख्यां कालानलशिखोपरि।
तत्प्रभापटल - व्याप्तिपटलाङ्कितदेहवान्॥३१॥
सर्वमङ्गलसंपन्नः स्नानकर्म समारभेत्।
मृत्कुशानपि संग्रह्य गत्वा जलान्तिकं ततः॥३२॥

मलापकर्षणं कृत्वा तन्त्रस्नानं समाचरेत्।
पुनर्निमज्ज्य पयसि संकल्पं स समाचरेत्॥३३॥

रात्रि के अन्तिम (चौथे) प्रहर में शय्या से उठकर भगवती पराशक्ति रूपा तारा का ध्यान करे। इसके बाद मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) पर्यन्त कमल नाल के रेशे के समान अत्यन्त सूक्ष्म, मूलमन्त्रमयी, सहस्रार से स्रवित अमृतानन्द से तृप्त साक्षात् अमृतानन्द स्वरूप, सूर्यवत् तीव्र आभा (प्रकाश) से सन्दीप्त, चन्द्रमा के सदृश अत्यन्त शीतल, मेघ-विद्युत के समान दीप्तिमान तथा प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित तेज के समान शिखर वाली कुण्डलिनी का ध्यान करके उसके परितः स्थित तेजोराशि द्वारा अपने शरीर को व्याप्त हुआ अनुभव करके सभी माङ्गलिक कर्मों [सहस्रार स्थित गुरु पीठ का ध्यान, शक्ति सहित श्री गुरु का ध्यान, मानस पूजन, गुरु पादुका मन्त्र-जप, गुरु-स्तोत्र (पञ्चक-स्तोत्र) का पाठ, इष्ट देव का ध्यान, मानस पूजन, मन्त्र-जप, जप-समर्पण, अजपा-जप, जप समर्पण आदि आदि जो भी स्वगुरु परम्परान्तर्गत उपदेशित कर्म हैं उन सभी] को करके शौचादि से निवृत्त होकर शुद्ध मिट्टी, कुशादि आवश्यक पदार्थों (वस्त्रादि) को लेकर किसी पवित्र नदी अथवा सरोवर के निकट जाकर स्नान क्रिया का विधिवत् सम्पादन करें। पहले बाहर से ही जल से शारीरिक मल का शोधन कर फिर जल में निमज्जन (डुबकी लगाकर) रूप से स्नान करके इष्ट देवी की पूजा के लिए स्नान का सङ्कल्प करके तान्त्रिक-स्नान करें।

॥ स्नान-सन्ध्याविधि आदि कथनम्॥

इष्टदेव्याः प्रपूजार्थं कुर्यात् स्नानं जलाशये।
बिल्वाक्षतमोड्रपुष्पं कुशाञ्जलम्॥३४॥
प्रस्थग्राहे ताम्रपात्रे कृत्वा चार्घ्यं निवेदयेत्।
मूलान्ते चोद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्तिन्यै॥३५॥
शिवचैतन्यमय्यै (च) स्वाहेति तन्मनुः स्मृतः।
मूर्तिभेदे महेशानि स्नानमन्यच्छृणु प्रिये॥३६॥

इष्ट देवी के पूजन के लिए स्नान का सङ्कल्प कर जलाशय में स्नान करने के पश्चात् किसी प्रस्थमात्र जल ग्रहण क्षमता वाले ताम्र पात्र में विल्व पत्र, अक्षत, मोड्र पुष्प, कुल पुष्प, कुशादि जल सहित लेकर सूर्य को अर्घ्य अर्पित करें। **अर्घ्य मन्त्र**-मूल मन्त्र बोलकर **'उद्यदादित्य मण्डल मध्यवर्तिन्यै शिव(नित्य) चैतन्यमय्यै तारायै (नील सरस्वत्यै वा) स्वाहा'**। अब मूर्ति भेद के आधार पर स्नान की अन्य विधि का श्रवण करें।

प्रोत्थाय चोत्तरे यामे शिरःपद्मे गुरुं स्मरन्।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभावयेत्॥३७॥
प्रोद्यत्सूर्यप्रतीकाशां कुण्डलीं परदेवताम्।
यातायातक्रमेणैव चामृतीकृतविग्रहाम्॥३८॥
मूलविद्यां जपेद् ध्यात्वा चाष्टोत्तरशतं क्रमात्।
मृत्कुशानपि संग्रह्य गत्वा जलान्तिकं ततः॥३९॥
प्रत्यूषसि गुरोश्चिन्तां कृत्वा स्नानं समाचरेत्।
नद्यादिं समनुप्राप्य स्नायादप्सु महेश्वरि॥४०॥
देवीरूपं जलं ध्यात्वा गृहीत्वा जलदर्भकम्।
मलापकर्षणं कृत्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत्॥४१॥
तत्प्रीत्यै परमेशानि स्नानं कुर्यात् समाहितः।
आदौ च वैदिकीं संध्यां कृत्वा स्नानं समाचरेत्॥४२॥
(पश्चातु तान्त्रिकी सन्ध्या) कुर्याच्चैवागमोदिताम्।
संध्यां कृत्वा ततो वीरः कुलकोटिं समुद्धरेत्॥४३॥

रात्रि के अन्तिम (चौथे) प्रहर मे सूर्योदय से लगभग (४८) मिनट पूर्व ब्रह्म-मुहूर्त में निद्रा का परित्याग कर उठ करके शय्या पर बैठे-बैठे ही सहस्रार के सहस्रदल कमल के मध्य स्थित द्वादश कमल के मध्य पीठ पर स्वगुरु का ध्यान करे। इसके बाद मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त मूल विद्या को व्याप्त रूप से ध्यान करके नवोदित सूर्यवत् आभा युक्त कुण्डलिनी रूप परदेवता का ध्यान करके उसके आरोह-अवरोह रूप प्रक्रिया द्वारा स्वशरीर को सहस्रार-स्रवित अमृत द्वारा परिसिञ्चित अमृतमय अनुभव कर इष्ट देवता का ध्यान करके मूल विद्या का एक सौ आठ बार जप कर (तथा जप को इष्ट देवता को समर्पित करके) शुद्ध मृत्तिका कुश आदि लेकर स्नान के लिए नदी-सरोवर आदि पर जाए। प्रतिदिन इसी प्रकार प्रातः काल उठकर श्री गुरुदेव का ध्यानादि करके ही स्नान करना चाहिए।

सबसे पहले जल से बाहर ही शरीर-मल शोधन करके देवी पूजन के लिए स्नान का सङ्कल्प करके जल का देवी के रूप में ही ध्यान करके हाथ में कुश ग्रहण करके अञ्जलि द्वारा शिर पर जल डालते हुए मन्त्र स्नान करें स्नान के बाद पहले वैदिकी संध्या फिर आगमोक्त (तन्त्रोक्त) तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिए। इस प्रकार सन्ध्या करने वाला वीर साधक अपने करोड़ों कुलों (अथवा स्वयं के साथ ही अपने कुलों) का भी उद्धार कर देता है।

स्नानार्थं मृत्तिकां नीत्वा संघृष्य च करद्वये।
गात्रानुलेपनं कुर्यादस्त्रमन्त्रेण देशिकः॥४४॥
सूर्याय दर्शयेदादौ ततः कुर्याच्च लेपनम्।
गोक(पु)रीषं नासिकायां वं-मन्त्रेण पुटद्वये॥४५॥
जलाञ्जलिं ततो दत्त्वा मूर्ध्नः कृत्वाभिषेचनम्।
तत आचमनं कुर्यात त्रिकोणे दक्षिणेन तु॥४६॥
गृहीतपाणिना देवि शङ्खावतक्रमेण तु।
विलोड्य तत्र निमज्जेदघमर्षणकं त्रिधा॥४७॥
कूर्चबीजं त्रिधा जप्तवा कारयेदघमर्षणम्।
दद्याज्जलाञ्जलींस्त्रीन् वै वरुणाय ततः परम्॥४८॥

(सन्ध्या से पूर्व) स्नान के लिए शुद्ध मिट्टी लेकर दोनों हाथों से उसे रगड़ करके अस्त्र मन्त्र(फट्) का उच्चारण कर उस मिट्टी को शरीर पर लगायें। लेपन से पहले उस मिट्टी को सूर्य दर्शन कराना चाहिए। इसके बाद ही उसे शरीर पर लगाना चाहिए। फिर शरीर को जल से धोकर हाथ में गाय का गोबर लेकर उसे 'वं' बीज से अभिमन्त्रित करके थोड़ा सा दोनो नासिका पुटों में लगाकर शेष का शरीर में लेप करके पुनः शुद्ध जल द्वारा स्नान करके जलाञ्जलि द्वारा शिर पर अभिषेक करना चाहिए इसके पश्चात् आचमन करके बायें हाथ में जल लेकर उसमें त्रिकोण बनाकर तीन बार कूर्च मन्त्र 'हूं' का जप करते हुए उस जल पर शंखावर्त क्रम से विलोडित करके पुनः उसे दाहिने हाथ में लेकर तीन बार अघमर्षण करें। तत्पश्चात् वरुण देवता को तीन बार जलाञ्जलि प्रदान करें।

सोमाय भानवे पश्चाज्जलादुत्थाय वाससी।
परिधाय ततो मन्त्री यथाविधि समाचरेत्॥४९॥
तिलकं रक्तगन्धेन गोपीनां चन्दनेन तु।
देव्यस्त्रं विलिखेद् भाले ताराबीजं ततो हृदि॥५०॥
शक्तिमध्यगतं कुर्यात् प्राणायामं समाचरेत्।
आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा उपविश्य च मन्त्रवित्॥५१॥

तत्पश्चात् चन्द्र तथा सूर्य के लिए तीन-तीन बार जलाञ्जलि प्रदान करके जल से बाहर निकल करके शुद्ध वस्त्र धारण करके यथाविधि आगे की क्रिया करें। लाल चन्दन अथवा गोपी चन्दन से मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र रूप तिलक अंकित करें तथा हृदय पर तारा बीज (त्रीं अथवा स्त्रीं) लिखें। मध्य (नाभि) पर शक्ति बीज 'हूं' लिखें। इसके बाद आचमन करके आसन पर पूर्वमुख बैठकर प्राणायाम करें।

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचमेत् साधकोत्तमः।
त्रिकोणे मूलमन्त्रेण सवित्रे हंसकं जपन्॥५२॥
उपस्थाप्य जपेद् देवि गायत्रीं शृणु सुन्दरि।
तारायै विद्महे प्रोक्त्वा महोग्रायै च धीमहि॥५३॥
तन्नो देवीति-शब्दान्ते धियो यो नः प्रचोदयात्।
गायत्र्येषा समाख्याता सर्वपापनिकृन्तनी॥५४॥
वामपादं ततः कुर्याद् दक्षपादे महेश्वरि।
उपस्थाय पुनर्हंसमूर्ध्वबाहुस्त्रिधा जपेत्॥५५॥

तत्पश्चात् आत्म, विद्या, शिव तथा सर्व तत्व शोधन रूप आचमन हथेली को त्रिकोण रूप बनाकर मूल मन्त्र द्वारा करें। फिर सूर्य गायत्री (अथवा ब्रह्म गायत्री) का जप करके सूर्योपस्थापन करके इष्ट (तारा) गायत्री का जप करें। तारा गायत्री का उद्धार इस प्रकार है। 'तारायै विद्महे' बोलकर 'महोग्रायै धीमहि' तत्पश्चात् 'तन्नो देवी' फिर 'धियो यो नः प्रचोदयात्' बोलें।

तारा गायत्री – **"(ॐ) तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी धियो यो नः प्रचोदयात्॥"**

यह तारा गायत्री समस्त पापों का विनाश करने वाली कही गयी है। इसके बाद खड़े होकर दाहिने पैर पर बाँया पैर रखकर दोनो हाथों को ऊपर की ओर उठाकर के पुनः सूर्य मन्त्र (अथवा गायत्री) का तीन बार जप करते हुए उपस्थापन करें।

तीर्थोदकं तिलकल्कं क्षीराक्षतसमन्वितम्।
उत्तराशामुखो भूत्वा देवीमात्रं च तर्पयेत्॥५६॥
मूलान्ते तारिणीं चोक्त्वा तर्पयाम्यग्निवल्लभाम्।
स्वर्णपात्रेण रौप्येण ताम्रपात्रेण वा पुनः॥५७॥
ऋजुदर्भत्रयेणैव सन्तर्प्य भक्तितः सुधीः।
दक्षिणाशामुखो भूत्वा संग्रह्य मोटकं ततः॥५८॥
तृप्यन्तु पितरः प्रोक्त्वा एतत्तर्पणमदिशेत्।
सूर्यस्य वन्दनं चैवमभेदं च महेश्वरि॥५९॥
गायत्रीं प्रजपेद् धीमानघमर्षणपूर्वकम्।
एतत्संध्यात्रयेणैव दिवा रात्रौ च वन्दना॥६०॥

थाली (परात) के समान स्वर्ण, चाँदी अथवा ताँबे के बने पात्र में तीर्थ जल तथा तिल चूर्ण, अक्षत (चावल) एवं दूध लेकर इसके मिश्रण द्वारा उत्तर मुख बैठकर देवी का तर्पण करें। तर्पण के समय मूलमन्त्र का उच्चारण

करके **'तारिणीं तर्पयामि स्वाहा'** का उच्चारण करें। तर्पण के समय हाथ में तीन कुशों को सीधा रखना चाहिए। इस प्रकार भक्ति सहित देवी का तर्पण कर दक्षिण मुख होकर हाथ में कुश लिए हुए ही पितरों का **'पितरः तृप्यन्तु'** बोलते हुए तर्पण करें। इसके पश्चात् सूर्य तथा देवी में अभेद की भावना करते हुए सूर्य को प्रणाम करके तारा गायत्री का जप करें। इस प्रकार हे महेश्वरि! दिन में त्रिकाल सन्ध्या तथा रात्रि में पूजन करें।

महारात्रावपि सदा कार्या देशिकसत्तमैः।
संध्या त्ववश्यकर्तव्या त्रिसंध्यं श्रद्धयान्वितः॥६१॥
संध्यया प्रविहीनो यो न दीक्षाफलमाप्नुयात्।
अर्धरात्रात् परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च॥६२॥
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तत्र कृत्वाक्षयं भवेत्।
ततो विद्यां हृदि ध्यात्वा अष्टोत्तरशतं जपेत्॥६३॥
तत्रैवोक्तक्रमेणैव तान्त्रिकं स्नानमाचरेत्।
वैदिकीं तान्त्रिकं संध्यां ततः कुर्यात् समाहितः॥६४॥
चतुर्विधानि कार्याणि वेदकार्येषु पार्वति।
आगमं न तथा विद्धि एकमेव हि मद्वचः॥६५॥
संध्यां सायन्तनीं कुर्याद् द्वादश्यादिष्वपि प्रिये।
अकुर्वन् निरयं याति यतो नित्यागमक्रिया॥६६॥

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरव भैरवी सम्वादे
(मूलमन्त्रोद्धार पूर्वक सन्ध्या विधि निरूपणं)
प्रथमः पटलः

श्रेष्ठ साधकों को नित्य अर्धरात्रि में देवी का पूजन करना चाहिए। प्रत्येक साधक को त्रिकाल सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। जो साधक सन्ध्या कर्म से रहित है, उसे दीक्षा का फल प्राप्त नहीं होता है। अर्धरात्रि के पश्चात् जो दो मुहूर्त (४८ मिनट) का काल होता है, वह महारात्रि कहलाती है, इस समय किये हुए जप-पूजन आदि का फल अक्षय होता है। अतः हृदय में देवता का ध्यान करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप पूजन के पश्चात् रात्रि में अवश्य करना चाहिए। महारात्रि में यदि साधक के लिए सम्भव हो तो पूर्वोक्त विधि से तान्त्रिक स्नान करके एकाग्रचित्त होकर वैदिकी और तान्त्रिकी संध्या भी करनी चाहिए। हे पार्वति! वैदिक कार्यों में (वैदिक विधि से उपासना-साधना करने वालों को) चार बार सन्ध्या करनी चाहिए परन्तु

आगमों में ऐसा विधान नहीं है। मेरे कथनानुसार तो साधक को केवल एक ही बार प्रातः सन्ध्या करनी चाहिए। द्वादशी आदि तिथियों में सांयकालीन सन्ध्या भी करनी चाहिए। नित्य सन्ध्या कर्म आगम (तन्त्र) कर्म का प्रमुख अङ्ग है, अतः नित्य कर्म के रूप में सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। जो साधक ऐसा नहीं करता उसे नरक की प्राप्ति होती है।

।। श्री बृहन्नीलतन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद में
(मूल मन्त्रोद्धारपूर्वक सन्ध्या विधि निरूपण) नामक प्रथम पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

।। अथ द्वितीयः पटलः।।

(षोडशोपचारपूजास्तोत्रादि निरूपणम्)

।। पूजनार्थे स्थान सङ्केतनम्।।

इदानीं शृणु चार्वङ्गि पूजां सर्वागमोदिताम्।
यां कृत्वा परमेशानि शिवत्वं प्राप्नुयादतः।।१।।
कार्या सर्वप्रयत्नेन पूजां कुर्याच्छुचिस्मिते।
एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे।।२।।
तत्रस्थः साधयेद्योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्।
पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते।।३
तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा।
उज्जटे पर्वत वापि निर्जने वा चतुष्पथे।।४।।
हर्म्ये वा साधयेद् देवीं सर्वाभीष्टप्रदायिनीम्।

हे सुन्दर शरीर वाली प्रिये! अब तुम सभी तन्त्र-शास्त्रों में वर्णित उस विशेष पूजन-क्रम को सुनो, जिसको करने से, हे परमेशानि! साधक शिव स्वरूप हो जाता है। हे पवित्र मुस्कान वाली प्रिये! एक लिङ्गस्थ क्षेत्र, श्मशान, एकान्त गृह कक्ष अथवा चौराहे पर त्रिभुवनेश्वरी स्वरूप इस विद्या (देवता-तारा-नील सरस्वती) की साधना करनी चाहिए और इस क्रम में उस साधक योगी को सब प्रकार प्रयत्न करते हुए इस सर्वोत्तम पूजन को भी अवश्य ही करना चाहिए।

जहाँ किसी प्राण-प्रतिष्ठा पूर्वक स्थापित शिव लिङ्ग के चतुर्दिक् पाँच कोश (१६ किमी) तक स्थान में कोई अन्य शिव लिङ्ग स्थापित न हो, वह क्षेत्र एक लिङ्ग कहा जाता है। ऐसे स्थान पर साधना करने से सर्वोत्तम सिद्धि की प्राप्ति होतीहै। यदि इस प्रकार का स्थान प्राप्त न हो तो किसी पर्वत के शिखर पर, जन-शून्य वन में (एकान्त स्थान में), चौराहे पर अथवा किसी मन्दिर (अथवा स्वगृह) में ही इस समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली देवी की साधना करनी चाहिए।

।। याग-मण्डप-द्वार-पूजनम्।।

गणेशं क्षेत्रपालं च योगिनीर्वटुकं तथा।।५।।
गांवांक्षांयां च बीजानि तान्युक्तानि महेश्वरि।
पूजयित्वा गृहद्वारे ब्रह्माणं पूजयेत् ततः।।६।।

मनसा वास्तुदेवं च पूर्वेण तु ततः सुधीः।
ततस्तत्पुरुषान् विघ्नरूपांश्चैव निवारयेत्।।७।।

संध्यादि करने के उपरान्त साधक देवी पूजन के लिए याग-मण्डप द्वार (पूजन कक्ष) पर आकर पहले द्वार के चारों ओर गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा वटुक का पूजन उनके बीजाक्षरों क्रमशः **गां, क्षां, यां** तथा **वां** के साथ उनके नामों का चतुर्थ्यन्त प्रयोग करते हुए करे। तत्पश्चात् पूर्व में ब्रह्मा तथा वास्तुदेव का पूजन करके विघ्न रूप (साधना में बाधा उत्पन्न करने वाले) भूतल तथा आकाशस्थ पुरुषों (शक्तियों) का निवारण करें।

।। श्मशान पीठ-ध्यानम्।।

योगस्थानं समाश्रित्य तत्र पीठं विचिन्तयेत्।
श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्।।८।।
तन्मूले मणिपीठं च नानामणिविभूषितम्।
नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैर्विभूषितम्।।९।।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु महेशानि शवमुण्डास्थिभूषितम्।।१०।।
तन्मध्ये चिन्तयेद् देवीं यथोक्तध्यानयोगतः।
एवं ध्यानं महेशानि हृदि कुर्याच्छुचिस्मिते।।११।।
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्।

तत्पश्चात् साधक याग-मण्डप (अथवा पूजा-स्थल) में विहित आसन पर यथोचित बैठकर ध्यान योग द्वारा अपने हृदय में (श्मशान रूप) पीठ का चिन्तन (ध्यान) करे। सबसे पहले स्व चित्त में श्मशान भूमि की कल्पना करे फिर वहाँ स्थित एक कल्पवृक्ष का ध्यान करे। उस वृक्ष के मूल स्थान में अनेकों मणियों से विभूषित मणिपीठ पर विभिन्न प्रकार के आभूषणों को यथास्थान शरीराङ्गों पर धारण की हुई, मुनियों तथा देवताओं द्वारा आवृत्त सुशोभिता, मांस-अस्थियों का आनन्द पूर्वक भक्षण करने वाली अनेकों मादा सियारों (गीदड़ों) तथा चारो ओर बिखरे पड़े हुए शव-मुण्डों के मध्य स्थिता देवी (तारा) का उसी प्रकार ध्यान करना चाहिए जिस प्रकार से उनके स्वरूप का वर्णन (तन्त्रों में) किया गया है।

इस प्रकार से देवी का ध्यान करने वाले साधक को सैकड़ों-हजारों वर्षों तक किये जाने वाले पूजन के समकक्ष फलों की प्राप्ति होती है।

।। यागमण्डपे भूम्यादि शोधन-पूजनपूर्वक-आसनोपवेशनम्।।

गन्धानां पञ्चकं दद्याद् रक्तमालां निधापयेत्।।१२।।
ह्रींकारं धारयेद् हस्ते स्वर्णाभरणभूषितः।
रक्तवस्त्रद्वययुतः क्रोधपैशुन्यवर्जितः।।१३।।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वज्रोदके ततः परम्।
ततः कूर्चं महादेवि फट्स्वाहा तदनन्तरम्।।१४।।
मन्त्रेणानेन देवेशि शोधयेज्जलमुत्तमम्।
प्रणवं च ततो माया विशुद्धं तदनन्तरम्।।१५।।
सर्वपापानि तत्पश्चाच्छमय तदनन्तरम्।
अशेषान्ते विकल्पं वापनयेति ततः परम्।।१६।।
हूंफट्स्वाहावधिर्मन्त्रो हस्तक्षालनके मतः।
प्रणवं च ततः कूर्चं फट्स्वाहा तदनन्तरम्।।१७।।
मन्त्रेणानेन देवेशि आचमेत् साधकोत्तमः।
प्रणवं मणिधरि-पदं वज्रिणीति पदं ततः।।१८।।
वशंकरीति च पदं हूंफट्स्वाहावधिर्मनुः।
मन्त्रेणानेन देवेशि शिखाबन्धनमाचरेत्।।१९।।
ओंकारं पूर्वमुच्चार्य रक्षरक्ष-पदं ततः।
हूंफट्स्वाहेति मन्त्रेण भूमिशोधनमाचरेत्।।२०।।
मन्त्रपूतेन तोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम्।
चतुर्द्वारे महेशानि गणेशं बटुकं तथा।।२१।।
क्षेत्रेशं योगिनीश्चैव पूजयेद् बहुयत्नतः।
तथा चैव महेशानि मुद्रां कुर्याद् विशेषतः।।२२।।

साधना से पूर्व साधक को पाँच प्रकार के गन्धों द्वारा तिलक (तथा शरीर में लेपन) करके लाल पुष्पों की माला, हाथों में **'ह्रीं'** मन्त्र द्वारा स्वर्णाभूषण (विशेष रूप से मुद्रिका-अंगूठी) तथा दो रक्त वस्त्र (अधोवस्त्र तथा उत्तरीय) धारण करना चाहिए। साधक को क्रोध-पिशुनता (चुगलखोरी, निन्दा करना) आदि मानसिक दोषों से मुक्त होकर प्रसन्न तथा शान्त चित्त होकर साधना के लिए बैठना चाहिए। **'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र से पूजा हेतु ताम्रपात्र में रखे हुए जल का शोधन करें। **'ॐ ह्रीं विशुद्धं सर्व पापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र द्वारा हस्त प्रक्षालन करें। **'ॐ हुं फट् स्वाहा' (ॐ ह्रीं स्वाहा)** द्वारा आचमन करें। **'ॐ मणिधरि वज्रिणि वशंकरि हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र द्वारा

शिखा बन्धन (यदि शिखा पहले से ही बंधी हो तो केवल स्पर्श) करें। **'ॐ रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र द्वारा भूमि शोधन करें। इसके बाद मन्त्र पवित्र जल द्वारा याग-मण्डप (पूजन-कक्ष स्थल) का प्रोक्षण करें। इसके बाद (यदि पहले द्वार पूजन के समय गणेश आदि का पूजन न किया गया हो तथा मण्डप अथवा कक्ष चार द्वारों वाला हो तो) मण्डप के चारों द्वारों पर (प्रत्येक द्वार पर) गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक तथा योगिनी का पूजन करें तथा नाराच मुद्रा के प्रदर्शन सहित विघ्नोत्सारक मन्त्र द्वारा समस्त विघ्नों का निवारण करें।

मन्त्रं शृणु वरारोहे सर्वविघ्नानुत्सारकम्।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सर्वविघ्नान् समादिशेत्॥२३॥
तत्परं च पुनर्देवि उत्सारय तदनन्तरम्।
कूर्चः स्वाहावधिर्मन्त्रः सर्वसिद्धिफलप्रदः॥२४॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पवित्रपदमन्ततः।
वज्रभूमे-पदं पश्चाद् हूँफट्स्वाहावधिर्मनुः॥२५॥
मन्त्रेणानेन देवेशि कुर्याद् भूम्यभिमन्त्रणम्।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य आः-पदं तदनन्तरम्॥२६॥
सुरेखे वज्ररेखे च हूँफट्स्वाहावधिर्मनुः।
रक्तचन्दनपुष्पाभ्यां पूजयित्वासनं सुधीः॥२७॥
विशेत् तत्रासने देवि ततः पूजनमारभेत्।
शिखाबन्धनमन्त्रेण वस्त्रग्रन्थिं च बन्धयेत्॥२८॥

हे देवि वरारोहे! सर्वविघ्नोत्सारक मन्त्र को सुनो। **'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र द्वारा (नाराच मुद्रा प्रदर्शन सहित) समस्त विघ्नों का निवारण करें। **'ॐ पवित्रं वज्रभूमे हुं फट् स्वाहा'** द्वारा भूमि का अभिमन्त्रण करें। **'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा'** द्वारा रक्त चन्दन पुष्पादि द्वारा आसन का पूजन कर उस पर आसीन हो पूजन प्रारम्भ करें। शिखा बन्धन के मन्त्र से ही वस्त्र-गन्थि (बन्धन) भी स्व रक्षा हेतु उत्तरीय वस्त्र में कर लेना चाहिए।

॥ यन्त्र-लेखनम्॥

पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण चित्तादीनां विशोधनम्।
कुर्यान्मन्त्रं महेशानि रक्तगन्धादिना शुभे॥२९॥
स्वर्णादिपात्रे संलिख्य तत्रार्णान् संलिखेत् सुधीः।
आःसुरेखे वज्ररेखे हूँफट्स्वाहा नमः-पदम्॥३०॥
मन्त्रणानेन देवेशि पद्ममष्टदलं लिखेत्।
तन्मन्त्रेणैव देवेशि वसुपत्रं मनोहरम्॥३१॥

पूर्वे त्रिकोणे देवेशि मायाबीजं लिखेच्छुभे।
याम्ये वधूं लिखेच्चैव उत्तरे फंद्विठान्तकम्।।३२।।
पश्चिमे च महादेवि टंकारं विलिखेत् ततः।
तन्मध्ये परमेशानि लिखेत् कूर्चं समाहितः।।३३।।

हे महेशानि! पूर्वोक्त मन्त्र से स्वचित्त शरीर आदि का शोधन (पवित्रीकरण) करके यन्त्र लेखन योग्य किसी स्वर्णादि के गोरोचन कुंकुमादि लिप्त फलक पर **'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा नमः'** मन्त्र द्वारा त्रिकोण, अष्ट दल पद्म तथा चतुर्द्वार युक्त भूपुर से युक्त यन्त्र की रचना करें। त्रिकोण के पूर्व पद्म के पूर्वदल में **'ह्रीं'**, दक्षिण कोण में **'स्त्रीं'** तथा वाम कोण में **'फं'** (स्वाहा) लिखे। त्रिकोण के पश्चिम में **'टं'** तथा मध्य में 'हूं' लिखें।

।। सारस्वतप्रद नीलसरस्वती-यन्त्रम्।।

अथवान्यप्रकारेण यन्त्रं शृणु गणेश्वरि।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां सर्वशास्त्रविबोधिकाम्।।३४।।
ज्ञानं तथा च ज्ञानार्थी मोक्षार्थी मोक्षमेव च।
सर्वार्थी प्राप्नुयात् सर्वं यन्त्रस्यास्य प्रसादतः।।३५।।
व्योमेन्द्वौरसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं
वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम्।
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्दिक्कोण संशोभितं
यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।३६।।

इसके अतिरिक्त अन्य यन्त्र के विषय में, हे गणेश्वरि! सुनो! इस यन्त्र के पूजन से विद्यार्थी समस्त शास्त्रों का सम्यक् बोध कराने वाली विद्या (ज्ञान) को प्राप्त कर लेता है। इस यन्त्र की कृपा से (पूजन-धारण) के फलस्वरूप ज्ञानेच्छु को ज्ञान, मोक्षेच्छु को मोक्ष तथा चतुः पुरुषार्थी को चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।

दो वृत्तों से आवृत्त अष्टदलपद्म की रचना करके उसके बाहर चतुर्द्वार युक्त भूपुर बनाये। पद्म की कर्णिका में 'ह्सौः' लिखे। पद्मदल के केसरों में पूर्वादि क्रम से दो-दो स्वरों को लिखें। इसी प्रकार दलों पर मातृका के अष्टवर्गों को लिखें। यथा - पूर्वादि से प्रथम पाँच दलों पर क्रमशः 'क, च, ट, त तथा प' वर्ग के वर्णों को लिखें। छठे दल पर 'य, र, ल, व तथा श', सातवें दल पर 'ष, स, ह, ल, क्ष' तथा आठवें दल पर 'अ, इ, उ, अं, अः' लिखें (अथवा छठे दल पर 'य, र, ल, व', सातवें दल पर 'श, ष, स, ह' तथा आठवें दल पर 'ल, क्ष' लिखें)। भूपुर की पूर्वादि चारों दिशाओं में ताराधीश्वर (चन्द्र) वर्ण **'ठं'** तथा आग्नेयादि कोण दिशाओं में वारिवर्ण **'वं'** लिखें। इस यन्त्र को जो सभी भोगों तथा सिद्धियों का दाता है, श्री नील सरस्वती (नील तारा) का शरीर रूप कहा गया है।

।। यन्त्रे पीठ-पूजाम्।।

यन्त्रं निर्माय देवेशि पीठपूजां समाचरेत्।
गन्धर्वोक्तप्रकारेण पूजयेदावृतीस्ततः।।३७।।
योनिमुद्रां ततो बद्धा चक्रमध्ये प्रपूजयेत्।
पूर्वे गणपतिं चेष्ट्वा दक्षिणे बटुभैरवम्।।३८।।
क्षेत्रपालं पश्चिमे च योगिनीरुत्तरे यजेत्।
ते सर्वे ध्रुवदीर्घाया: शक्तिबीजपुरःसराः।।३९।।
ततोऽष्टदलमध्ये तु लक्ष्म्यादीश्च प्रपूजयेत्।
लक्ष्मीं सरस्वतीं वैच रतिं प्रीतिं तथा यजेत्।।४०।।
कीर्तिं शक्तिं च पुष्टिं च तुष्टिं चैव प्रपूजयेत्।
देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः।।४१।।
प्रणवादिनमोन्तेन पूजयेद् यत्नतः सुधीः।
भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् प्राणायामक्रमेण तु।।४२।।

उपरोक्त यन्त्र की रचना करके गन्धर्व तन्त्रोक्त विधि से यन्त्र का आवरण पूजन करना चाहिए। चक्र के मध्य में योनिमुद्रा बद्ध होकर पूजन करना चाहिए। यन्त्र के पूर्व द्वार पर गणपति की, दक्षिण द्वार पर वटुक भैरव की, पश्चिम द्वार पर क्षेत्रपाल की तथा उत्तर द्वार पर योगिनी का पूजन करना चाहिए। इनके चतुर्थी युक्त नामों के पूर्व 'ॐ' कार, दीर्घ स्वर 'आ' कार युक्त स्व बीज वर्ण तथा शक्ति बीज 'ह्रीं' का प्रयोग करना चाहिए। यथा- पूर्व द्वारे - **ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः।** दक्षिण द्वारे- **ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः।** पश्चिम द्वारे-**ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः।** उत्तर द्वारे- **ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः।**

इसके पश्चात् अष्ट दलों में लक्ष्मी आदि का पूजन करें लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, शक्ति (शान्ति), पुष्टि तथा तुष्टि, ये सभी नील सरस्वती की पीठ शक्तियाँ कही जाती हैं, इनके चतुर्थ्यन्त नामों के पूर्व प्रणव (ॐ) तथा पश्चात् 'नमः' लगाकर अष्ट दलों में दक्षिणावर्त क्रम से करना चाहिए। यथा- पूर्व (देवी के अग्रभाग) से प्रारम्भ करके **ॐ लक्ष्म्यै नमः। ॐ सरस्वत्यै नमः। ॐ रत्यै नमः। ॐ प्रीत्यै नमः। ॐ कीर्त्यै नमः। ॐ शक्त्यै (शान्त्यै) नमः। ॐ पुष्ट्यै नमः** तथा **ॐ तुष्ट्यै नमः।**

[इन पीठ शक्तियों के पूजन से पूर्व मध्य में पूजन करना चाहिए। यथा- मध्ये-उपर्युपरि- **ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। तन्मूले ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ नाना मणिभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थि मोदमान शिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु-शव मुण्ड चिताङ्गारास्थिभ्यो नमः।**]

उपर्युक्त समस्त पूजन के पश्चात् अन्त में कर्णिका में पूजन करें। यहाँ देवी के शवासन रूप सदाशिव का **'ह्सौः सदाशिव महाप्रेत पद्मासनाय नमः'** से पूजन करे। तत्पश्चात् साधक प्राणायाम करके फिर भूतशुद्धि करें।

।। भूत शुद्धिं देवीध्यानञ्च।।

भूतशुद्धिं विधायाथ शून्यं विश्वं विचिन्तयेत्।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धं स्वात्मानं तारिणीमयम्।।४३।।
अन्तरिक्षे ततो ध्यायेत् आःकाराद्रक्तपङ्कजम्।
भूयस्तस्योपरि ध्यायेत् टांकाराच्छेतपङ्कजम्।।४४।।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् हूँकारं नीलसन्निभम्।
ततो हूँकारबीजात्तु कर्त्रिकां बीजभूषिताम्।।४५।।
कर्त्रिकोपरिगं ध्यायेत् स्वात्मानं तारिणीमयम्।
प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।।४६।।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ।
नवयौवनसंपन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।।४७।।

[भूतशुद्धि की प्रक्रिया (वीरतन्त्रानुसार) इस प्रकार है। साधक अपनी गोद में दोनों हाथों को उत्तानावस्था (करतल भाग ऊपर की ओर) में रखकर 'हंस' मंत्र द्वारा कुण्डलिनी, जीवात्मा तथा विलोम क्रम से चौबीसों तत्वों को सुषुम्ना मार्ग द्वारा सहस्रार में लाकर परमतेज से संयुक्त कर दे। फिर कुम्भक करके नाभि स्थल में रक्तवर्ण 'ह्रीं' का ध्यान करके उससे उत्पन्न अग्नि द्वारा लिङ्ग शरीर को भस्म कर दे। तत्पश्चात् हृदय में पीतवर्ण 'स्त्रीं' का चिन्तन करके उससे उत्पन्न वायु द्वारा उस लिङ्ग शरीर के भस्म को (रेचन क्रिया द्वारा) उड़ा दे। इसके बाद रेचक करते हुए ललाटस्थ चन्द्रमण्डल में श्वेत वर्ण 'हूं' का ध्यान करके उससे उत्पन्न अमृत बिन्दुओं द्वारा उस शरीरास्थि को आप्लावित करके समस्त पापों से रहित निर्मल देवतास्वरूपवत् हुआ वह साधक विश्वमय शरीर (चराचर सहित समस्त जगत् अथवा षट्त्रिशत तत्वों) को उस अमृत से आप्लावित हुआ अनुभव करें।]

इस प्रकार (उपर्युक्त रूप से)भूत-शुद्धि करके साधक समस्त विश्व को शून्यवत् तथा स्वयं को समस्त दोषों से मुक्त, निर्गुण शुद्ध स्वरूप तारिणीमय चिन्तन (अनुभव) करे। तत्पश्चात् अन्तरिक्ष (उपर्युक्त विश्व व्यापक अमृत जल) में 'आः कार' से उत्पन्न (आःकार रूप) रक्त कमल का ध्यान करें। उसके ऊपर 'टां कार' से उत्पन्न (टांकार रूप) श्वेत कमल

का ध्यान करके पुनः उसके ऊपर नील आभा युक्त 'हूं' का ध्यान करें। पुनः उसके ऊपर 'हुंकार' बीज से भूषित कर्त्तरी का ध्यान करके उसके ऊपर तारिणी स्वरूप में स्वयं का ध्यान करें।

प्रत्यालीढ अवस्था में (वाम पाद को शव के पैरों पर रखे तथा संकुचित किये एवं दक्षिण चरण को आगे बढ़ाकर शव के हृदय पर रखकर खड़ी हुई) स्थित, छोटे शरीर (नाटे कद) वाली, वृहद् उदर वाली, भयंकरा, कटि में व्याघ्र चर्म लपेटे हुए, यौवनावस्था से युक्त तथा पञ्च मुद्राओं से विभूषित (नमस्कृत) देवी तारा के स्वरूप (में स्वयं) का साधक को ध्यान करना चाहिए।

।। पञ्च नमस्कार मुद्रा।।

सुमुखं चतुरस्रं च वृत्तं गोमुखमेव च।
योनिमुद्रेति विख्याता मुद्राः पञ्च नमस्कृतौ।।४८।।

(श्रीगुरु तथा देवी को) नमस्कार रूप से प्रदर्शित की जाने वाली पाँच प्रकार की मुद्राओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – १. सुमुख, २. चतुरस्र, ३. वृत्त, ४. गोमुख और ५. योनि मुद्रा।

।। देव्याः शेष ध्यान स्वरूप वर्णनम्।।

चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्।
खड्गकर्त्रिसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।।४९।।
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम्।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्।।५०।।
(नीलनागजटाजूटां श्वेताहिकृतकुण्डलाम्।
पीताहिकङ्कणोपेतां धूम्राहिबाहुभूषणाम्।।५१।।
श्यामनागोपवीतां च शुभ्राहिहारभूषणाम्।
श्वेतनागलसत्काञ्चीं पाटलाहिपदद्वयाम्।।५२।।
पार्श्वद्वये लम्बमाननीलेन्दीवरमालिकाम्।
प्रज्वलत्पितृभूमध्यस्थितां दंष्ट्राकरालिनीम्।।५३।।
शवकण्ठपदद्वन्द्ववामदक्षपदद्वयाम्।
सावेशस्मेरवदनां भक्तानामभयप्रदाम्।।५४।।)
क्रमेणानेनं देवेशि ध्यात्वा नीलां (सरस्वतीम्)।
आत्मानं तन्मयं ध्यायेद् भूतशुद्धिरितीरिता।।५५।।

भगवती तारा चार भुजाओं वाली हैं, इनकी जिह्वा बाहर निकली हुई लपलपा सी रही है। इनका स्वरूप महाभयंकर (अथवा बलशाली) प्रतीत हो

रहा है। अपने भक्तों को वर देने वाली इन देवी की वाम भुजा में कपाल तथा कमल एवं दक्षिण भुजा खड्ग तथा कर्त्रिका (कैंची जैसा अस्त्र) से युक्त है। इनके शिर पर पीले (घूसर) रंग की जटायें अक्षोभ्य नाग से सुशोभित हैं। इन जटाओं में नील वर्ण वाले नाग लिपटे हुए हैं तथा ये श्वेतवर्ण सर्पो के कुण्डल पहने हुए हैं। हाथों में पीतवर्ण सर्पों के कङ्कन, बाहों में धूम्र वर्ण सर्पों के आभूषण, श्यामवर्ण सर्पो के यज्ञोपवीत, धवल सर्पो के हार, श्वेत सर्पो से निर्मित काञ्ची (करधनी), पाटल वर्ण सर्पों के दोनों पैरों में कड़े (अथवा नूपुर) तथा वक्षः स्थल के दोनों भागों का स्पर्श करती हुई नीले कमलों से रचित लम्बी माला धारण की हुई है। इनके बड़े-बड़े (बाहर निकले हुए से) दाँत हैं, जिसके कारण ये अत्यन्त भयंकर प्रतीत हो रही हैं। शव के कण्ठ (तथा वक्ष) पर वाम एवं दक्षिण चरणों को रखे हुए, गर्व से भरी तथा मन्द मुस्कान युक्त मुख वाली भगवती तारा जो निजभक्तों को सदा अभय प्रदान करने वाली है, चारों ओर जलती हुई चिताओं से परिपूर्ण श्मशान भूमि के मध्य खड़ी हैं। इस प्रकार नील तारा (सरस्वती) का ध्यान करके इसी स्वरूप में स्वयं का ध्यान (तारा के रूप में स्वयं की स्थिति की भावना-अनुभूति) करना चाहिए। इसे ही तत्वतः भूतशुद्धि कहा जाता है।

॥ अर्घ्य स्थापनं, विनियोग षडङ्ग-षोढ़ा-मातृका न्यासादि कथनम्॥

अथार्घ्यस्थापनं वक्ष्ये येन सिद्धिर्भवेन्मनोः।
त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा स्ववामे परमेश्वरि॥५६॥
तत्र त्रिपदिकां न्यस्य शङ्खं प्रक्षाल्य सुन्दरि।
भागत्रयेण देवेशि पूरयेज्जलमुत्तमम्॥५७॥
कपालपात्रं संस्थाप्य रक्तगन्धादिकं ततः।
रक्तपुष्पं ततो दद्यात् देवता सुप्रसीदति॥५८॥
दशधा मूलविद्यां च जप्त्वा प्रोक्षणमाचरेत्।
प्राणायामं ततः कुर्यात् षडङ्गेन समन्वितम्॥५९॥
अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या वृहतीच्छन्द ईरितम्।
नीलासरस्वती देवी त्रैलोक्ये च सुगोपिता॥६०॥
हूं बीजमस्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदम्।
मायाषड्दीर्घयुक्तेन षडङ्गन्यासमाचरेत्॥६१॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा ताराषोढां समाचरेत्।
विद्यया पुटितं कृत्वा षोढा च मातृकां न्यसेत्॥६२॥

क्रमोत्क्रमाद् वरारोहे ताराषोढा प्रकीर्तिता।
यस्त्वेवं कुरुते मन्त्री स तु तारा प्रकीर्तितः॥६३॥
तस्य लोके गुरुर्नास्ति स गुरुः सर्वयोगिनाम्।
बीजान्ते चैकजटायै हृदयं परिकीर्तितम्॥६४॥
तारिण्यै शिरसे स्वाहा तद्वद्वज्रोदके शिखा।
उग्रजटे च कवचं महाप्रतिसरे तथा॥६५॥
पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्तिते।
यथा काली तथा नीला तत्क्रमान्मातृकां न्यसेत्॥६६॥

अब अर्घ्य स्थापन विधि को कहता हूँ, जिसके द्वारा साधक को मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति होती है। हे परमेश्वरि! साधक अपने सम्मुख वाम भाग में त्रिकोण (वृत्त तथा चतुरस्र) रूप पृथ्वी पर मण्डल बनाये। उसके ऊपर आधार पात्र के रूप में तिपाई स्थापित कर उसके ऊपर प्रक्षालित महाशंख (नृकपाल) स्थापित करें। इसे तीन चौथाई भाग तक शुद्ध जल से पूरित करें। तत्पश्चात् देवी की प्रसन्नता के लिए इस स्थापित नर कपाल में रक्त चन्दन, पुष्पादि डालकर दश बार मूल विद्या का जप करके इस जल द्वारा पूजन-पदार्थों तथा स्वयं का प्रोक्षण करें। इसके बाद प्राणायाम करके मन्त्र का विनियोग, षडङ्ग न्यासादि करें।

इस नीलसरस्वती मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द बृहती तथा देवता त्रैलोक्य रक्षिका नीलसरस्वती है। 'हुं' बीज तथा 'फट्' शक्ति हैं, चर्तुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप) फल प्राप्ति के लिए इसका विनियोग करना चाहिए। षड्दीर्घ स्वरों से युक्त माया बीज द्वारा षडङ्ग न्यास करके मूल मन्त्र द्वारा सम्पुटित मातृकाओं द्वारा षोढा (छः बार) न्यास करें। मूल मन्त्र से मातृका वर्णों को क्रमशः सम्पुटित करके पहले सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम से मातृका न्यास करे। फिर स्थिति, सृष्टि तथा संहार क्रम से न्यास करे - यही तारा षोढा न्यास कहा जाता है। जो साधक तारा षोढान्यास का इस प्रकार अभ्यास करता है, वह साक्षात् तारा के ही समान है। उसका संसार में कोई गुरु नहीं होता अर्थात् किसी में भी उस साधक का गुरु बनने की क्षमता नहीं होती, वह स्वयं ही सभी योगियों के लिए गुरु-तुल्य हो जाता है। इस मन्त्र का षडङ्गन्सास निम्न प्रकार से करें-

हां एक जटायै हृदयाय नमः (हृत्स्पर्श)। **ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा**(शिरसि, शिर स्पर्श)। **हूं वज्रोदके शिखायै वषट्** (शिखायां, शिखा स्पर्श)। **हैं उग्रजटे कवचाय हुं** (वाह्वोः, बाहु स्पर्श)। **हौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्** (नेत्रेषु, नेत्र स्पर्श)। **हः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्** (दाहिने हाथ को शिर के चारों ओर वामावर्त्त घुमाकर बायीं हथेली पर दाहिने हाथ से त्रिताल दें।)।

यह न्यास नील सरस्वती को एक जटा का उपलक्षण (एक जटा रूप) मानकर दिया गया है। नील सरस्वती का न्यास अन्य रूप से किया जाता है। काली तथा नीला (तारा) को एक स्वरूप माना जाता है, अतः नील सरस्वती का मातृका न्यास भी काली क्रम के अनुसार ही करना चाहिए।

।। देव्याः पूजन क्रमं प्रदेय पुष्प नामानि च।।

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।६७।।
सर्व मन्त्रमयं कृत्वा देवतायै निवेदयेत्।
उपचारैःषोडशभिः पूजयेद् गन्धपुष्पतः।।६८।।
पाद्यार्घ्याचमस्नानवसनाभरणानि च।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनं ततः।।६९।।
ताम्बूलमर्चनास्तोत्रं तर्पणं च नमस्कृतम्।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश।।७०।।
गन्धादयो नैवेद्यान्ताः पूजा पञ्चोपचारिका।
पुष्पस्य नियमं देवि श्रृणुष्वैकमनाः प्रिये।।७१।।
कोकनदं च बन्धूकं कर्णिकाद्वयमेव च।
बकमन्दाररक्तानि करवीराणि शस्यते।।७२।।
मल्लिकात्रितयं जाती क्षौमपुष्पं जयन्तिका।
बिल्वपत्रं कुरुबकं मुनिपुष्पं च केसरम्।।७३।।
वासन्तीं चैव सौगन्धं काशपुष्पं मनोहरम्।
आमलकं च कादम्बं बहुलं मुथिकां तथा।।७४।।
बिल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः।
ओड्रपुष्पैर्विशेषेण वज्रपुष्पेण शोभितम्।।७५।।
सर्व पुष्पं प्रदद्याच्च भक्त्युक्तेन चेतसा।
जपापुष्पं महेशानि दद्याद् देव्यै विशेषतः।।७६।।

पूजन यन्त्र में **''ॐ (ह्रीं) देवेशि भक्ति सुलभे परिवार समन्विते याक्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव''** मन्त्र द्वारा देवी का (आवाहन के पश्चात्) स्थापन करके समस्त पूजन सामग्रियों को **'ॐ मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा'** बोल करके देवता को निवेदन करें। गन्ध पुष्पादि सहित षोडशोपचार द्वारा भगवती का पूजन करे। देवी को क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान (पुनः आचमन), वस्त्र, आभूषण (पुनः आचमन), गन्ध,

पुष्प (वस्त्राभूषण से पूर्व) धूप, दीप तथा नैवेद्य अर्पण करे। नैवेद्य के पश्चात् आचमन कराकर ताम्बूल प्रदान करे। देवी का तर्पण करके स्तोत्र पाठ तथा प्रणाम (साष्टाङ्ग) करें। अर्चना में शास्त्रानुमोदित षोडश उपचारों का प्रयोग करना चाहिए। गन्ध से लेकर नैवेद्य अर्पण तक की पूजा पञ्चोपचार पूजा कही जाती है। अब हे देवि! पूजन में प्रदेय पुष्पों के विषय में सुनो।

रक्त कमल, बन्धूक पुष्प, दोनों प्रकार के कर्णिकार (अमलतास), वकुल, मन्दार (श्वेत आक) तथा लाल कनेर ये पूजन के लिए श्रेष्ठ कहे गये हैं। तीनो प्रकार की मल्लिका, जाती (मालती-चमेली), अलसी पुष्प, जयन्तिका (वैजयन्ती), विल्व पत्र, मरुबक, अगस्त्य पुष्प, केशर, वासन्ती, सुन्दर सुगन्धित कास पुष्प, आंवला पुष्प, कदम्ब पुष्प, वकुल, यूथिका (जूही), विल्व पुष्प, विशेष रूप से औड्र पुष्प (जपा पुष्प-गुड़हल) तथा वज्र पुष्प से शोभित सभी प्रकार के पुष्प भक्तिपूर्वक देवी को अर्पित करना चाहिए, परन्तु तुलसी पुष्प (मञ्जरी) कभी भी नहीं प्रदान करना चाहिए। विशेषतः जपा पुष्प देवी को अवश्य ही प्रदान करना चाहिए।

पद्मं प्रियतरं देव्याः शेफाली बहुलं तथा।
रक्तोत्पलेन देवेशि पूजयेत् परमां शिवाम्।।७७।।
लक्षवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्।
शिरीषं परमं देव्याः प्रीतिदं तगरं तथा।।७८।।
स्थलपद्मं सुष्ठुतरं लक्षसंख्याक्रमेण च।
यदि दद्यान्महेशानि सर्वसिद्धिः सुरेश्वरि।।७९।।
तदैव मन्त्रसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।
विजातीं तुलसीं रम्यां तस्याः प्रीतिकीं पराम्।।८०।।
काञ्चनं रक्तवर्णं च अतिप्रियतरं महत्।
भक्तियुक्तो महेशानि सर्वं पुष्पं निवेदयेत्।।८१।।

देवी को कमल (रक्त) पुष्प अतिप्रिय है। इसी प्रकार शेफाली तथा वकुल भी प्रिय है। परमशक्ति रूपिणी देवी शिवा का रक्त कमल से अवश्य ही पूजन करना चाहिए। इसके द्वारा पूजन से एक लाख हजार वर्षों तक की गई पूजा का फल प्राप्त होता है। रक्त-कमल से पूजन तथा लक्षसहस्र वर्ष पूजन के फल की प्राप्ति वास्तव में मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर सहस्रार स्थित सहस्रदल कमल से संयुक्त करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। शिरीष भी देवी का परम प्रिय पुष्प है, इसी प्रकार तगर पुष्प भी देवी को

प्रसन्नता प्रदान करने वाला है। हे सुरेश्वरि! यदि देवी (तारा) के पूजन में कोई साधक एक लाख गुलाब (लाल) के सुन्दर पुष्पों को उन्हें अर्पित करता है तो उसे समस्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है। सुन्दर तथा मनोहारी विजातीय तुलसी (वन तुलसी–बर्बरा अथवा बर्बरी) भी देवी को अत्यन्त प्रिय है। विशेष रूप से स्वर्ण वर्ण तथा रक्तवर्ण पुष्प (अथवा स्वर्णरचित रक्त वर्ण पुष्प) देवी को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले हैं। इस प्रकार साधक को भक्ति पूर्वक सभी प्रकार के पुष्पार्पण द्वारा देवी की अर्चना करनी चाहिए।

।। देव्याः नैवेद्य-निरूपणम्।।

नैवेद्यं परमं रम्यं सुस्वादु सुमनोहरम्।
दद्याच्चैवं महादेव्यै भक्तियुक्तेन चेतसा।।८२।।
मधुपर्कं विशेषेण देवीप्रीतिकरं परम्।
संदेशमुष्णं दद्याच्च लड्डुकादिसमन्वितम्।।८३।।
पायसं कृसरं दद्याच्छर्करागुडसंयुतम्।
आज्यं दधि मधून्मिश्रं तथान्नानि निवेदयेत्।।८४।।
शालमत्स्यं च पाठीनं गोधिकामांसमुत्तमम्।
अन्नं च मधुना मिश्रं यत्नाद् दद्याच्च मन्त्रवित्।।८५।।
छागमांसं तथा देवि रोहितं मत्स्यभर्जितम।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ आज्ञां प्राप्य यथाविधि।।८६।।

साधक को भक्तिपूर्वक पवित्र अन्तःकरण से देखने में मनोहर उत्तम स्वाद युक्त पदार्थ नैवेद्य के रूप में देवी को अर्पित करना चाहिए। देवी को विशेष रूप से रुचिकर मधुपर्क प्रदान करना चाहिए। ताजा संदेश (संज्ञक मिष्ठान), लड्डू, खीर, गुड़ तथा शकर सहित खिचड़ी तथा घृत, दधि एवं मधु युक्त अन्न (पका हुआ) निवेदित करना चाहिए। शालमत्स्य तथा पाठीन (मत्स्य), गोधिका मांस तथा मधु मिश्रित अन्न निर्मित भोज्य पदार्थ देवी को अर्पित करे। छाग मांस तथा भुनी हुई रोहित (रोहू) मछली भी देवी को अर्पित करे, फिर योनिमुद्रा का प्रदर्शन कर उनसे (गुरुत्रय पूजन हेतु) आज्ञा प्राप्त करें।

।। गुरुत्रय पूजनार्थे अनुमतिम्।।

मातर्देवि महामाये बन्धमोक्षप्रवर्तिनि।
आज्ञापय महादेवि गुरुत्रयमनुत्तमम्।।८७।।
पूजयामि महामाये सर्वसारस्वतप्रदम्।
उवाच सादरं देवी भगवन्तमधोक्षजम्।।८८।।
गुरुत्रयं महादेव श्रोतुमिच्छामि यत्नतः।

हे देवि! माता महामाया स्वरूपिणि, बन्धन तथा मोक्ष दोनों का प्रवर्तन (व्यवहार) करने वाली महादेवि! समस्त विद्याओं को प्रदान करने वाले सर्वश्रेष्ठ गुरुत्रय के पूजन हेतु मुझे आज्ञा प्रदान करें।

[देवी (पार्वती) ने आदरपूर्वक विष्णु (स्वरूप शिव) से बोली–हे महादेव मैं गुरुत्रय के विषय में सुनना चाहती हूँ, कृपया आप यत्नपूर्वक (विस्तार से) इसका वर्णन करें।]

।। गुरु माहात्म्य सहित गुरुत्रय निरूपणम्।।

श्री भैरव उवाच

अज्ञात्वा गुरुदेवं च नष्टमार्गो भविष्यति।।८९।।
नष्टमार्गे मन्त्रविद्ये न तादृक् सिद्धिगोचरे।
गुरुणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिक्रमः।।९०।।
तन्त्रमन्त्राश्च विद्याश्च निष्फला नात्र सशयः।
अज्ञात्वा गुरुवंश्यानां शिष्यश्च नष्टसन्ततिः।।९१।।
स्ववंशादधिकं ज्ञेयं गुरुवंशं शुभावहम्।
सिद्धौघा गुरवो देवि दिव्यौघा गुरवस्तथा।।९२।।
ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः।
परापरगुरूणां च निर्णयं शृणु भैरवि।।९३।।
आदौ सर्वत्र देवेशि मन्त्रदः परमो गुरुः।
सर्वतन्त्रेषु मन्त्रेषु स्वयं प्रकृतिरूपिणी।।९४।।

जो साधक अपने गुरु (गुरु परम्परा) को नहीं जानता उसकी साधना का मार्ग विनष्ट हो जाता है। साधना–पथ के छिन्न–भिन्न हो जाने के कारण उस मन्त्रविद् साधक को यथोचित सिद्धि की भी प्राप्ति नहीं होती है। जिन गुरुओं की तथा (उनके) शिष्यों की आगे शिष्य परम्परा यदि नहीं होती है तो उनके मन्त्र तथा विद्या का ज्ञान एक तरह से निःसन्देह व्यर्थ हो जाता है। जिस शिष्य को अपने गुरु की वंश परम्परा का ज्ञान नहीं होता उसके आगे की शिष्य परम्परा भी विलीन हो जाती है। शिष्य के लिए अपनी वंश परम्परा के ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण तथा श्रेयस्कर गुरुवंश परम्परा का ज्ञान है। तारा विद्या के दृष्ट तथा अदृष्ट सभी फलों के प्रदाता सभी दिव्यौध, सिद्धौध तथा मानवौध गुरु मण्डलों का ज्ञान शिष्य को अवश्य होना चाहिए। ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ तथा वृषध्वज ये चार सिद्धिप्रद दिव्यौध गुरु कहे जाते हैं।

[वशिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर तथा हरिनाथ ये पाँच सिद्धौघ गुरु कहे गये हैं। तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, सुखानन्द, परानन्द, पारिजात, कुलेश्वर तथा फेरवी ये ग्यारह मानवौघ गुरु हैं। यन्त्रार्चन के समय पुरुष गुरुओं के नाम के साथ (पश्चात्) आनन्द नाथ तथा स्त्री गुरुओं के नाम के साथ अम्बा का संयोग करके भूपुर के बाहर बायीं ओर वायव्य से ईशान कोण तक (तीन पंक्तियों में) इनके पूजन का विधान है।]

हे देवि भैरवि! अब लौकिक परापर गुरुओं के विषय में सुनो। ये स्वगुरु, पर, परात्पर (परापर) तथा परम (परमेष्ठि) गुरु कहे जाते हैं। शिष्य को मन्त्र प्रदानकर्ता ही प्रथम स्वगुरु होता है। समस्त तन्त्रों में जिसे मूल प्रकृति रुपिणी आद्या (परा) शक्ति कहा जाता है, वही परम गुरु है।

।। यन्त्राष्टदले वैरोचनादि पूजनम्।।

पूर्वाद्यष्टदले चैव परिवारान् प्रपूजयेत्।
वैरोचनादीन् देवेशि पूजयेत् परमेश्वरि।।९५।।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तन्नाम तदनन्तरम्।
वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हुंफट्स्वाहावधिर्मनुः।।९६।।
अनेन मनुना देवि परिवारान् प्रपूजयेत्।
द्वार्षु पूर्वादितस्तद्वत् पद्मान्तकयमान्तकौ।।९७।।
विघ्नान्तकमथाभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम्।
नाजपात् सिध्यते मन्त्रो नाहुतश्च्च फलप्रदः।।९८।।

यन्त्रावरण के पूजन के समय अष्टदलों में पूर्वादि क्रम से वैरोचनादि परिवार (अङ्ग) देवताओं का पूजन करना चाहिए। पूजन के समय इनके नामों से पहले प्रणव **'ॐ'** (तथा अनुस्वार युक्त नाम का प्रथम वर्ण) लगाना चाहिए तथा नाम के पश्चात् **'वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का प्रयोग करके पूजन करना चाहिए। यथा -

[पूर्वादि चतुर्दल में वामावर्त क्रम से- **ॐ वैं वैरोचनं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। ॐ शं शंखपाण्डुरं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। ॐ पं पद्मनाभं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।** तथा **तां तारकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।**]

[इसी प्रकार आग्नेयादि चतुष्कोण दलों में - नामक, सामक, पाण्डुर तथा तारक का भी पूजन करना चाहिए।]

भूपुर के चारों द्वारों पर (भीतरी भाग में) पूर्ववत् पूर्वादि क्रम से पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक तथा नरान्तक संज्ञक देवताओं का पूजन

करें। यथा- **ॐ पं पद्मान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। ॐ यं यमान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। ॐ विं विघ्नान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।** तथा **ॐ नं नरकान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।**

यदि साधक यन्त्र पूजन के पश्चात् मन्त्र का जप तथा (जप का दशांश) हवन नहीं करता तो उसे मन्त्र की सिद्धि नहीं होती अथवा केवल मन्त्र का जप करने से अथवा मन्त्रों द्वारा केवल हवन करने से ही मन्त्र की सिद्धि नहीं होती है।

।। नित्य होम कथनम्।।

इष्टश्च यच्छते कामांस्तस्मात् त्रितयमाचरेत्।
नित्यहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वार्थं येन सिध्यति।।९९।।
सपर्यां सम्यगापाद्य बलेः पूर्वं चरेद्विधिम्।
ततो जपं तर्पणं च चरन् साधकसत्तमः।।१००।।
बलिवश्यादिकं चैव ब्राह्मणश्च समाचरेत्।
विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नम इति।।१०१।।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
भूमौ वा संस्तरेद् वह्नि व्याहृतित्रितयेन च।।१०२।।
स्वाहान्तेन त्रिधा हुत्वा षडङ्गहवनं तथा।
ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतिम्।।१०३।।
हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेदिन्दुमण्डले।

अभीष्ट सिद्धि के इच्छुक साधक को (नित्य) पूजन, मन्त्र जप तथा हवन तीनों क्रियायें विधिवत् करनी चाहिए। अब मैं सर्वार्थ सिद्धिप्रद नित्य हवन के विषय में कहता हूँ।

विधिपूर्वक बलि प्रदान सहित सविधि पूजन सम्पन्न करके साधक जप तथा तर्पण करे। ब्राह्मण को नित्य बलिवैश्यादि कर्म भी करना चाहिए। इसके पश्चात् विधिपूर्वक अग्नि लाकर **'क्रव्यादेभ्यो नमः'** से क्रव्य भाग निकालकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए शेष अग्नि को कुण्ड अथवा स्थण्डिल पर स्थापित कर दें। इसके बाद कुण्ड के चारों ओर कुशों द्वारा परिस्तरण करके अग्नि पर समिधा स्थापित कर (उसे प्रज्जवलित करके) तीनों व्याहुतियों द्वारा अन्त में स्वाहा का प्रयोग करते हुए तीन आहुतियाँ प्रदान करें (यथा **ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा** तथा **ॐ स्वः स्वाहा**)। इसके बाद षडङ्ग मन्त्रों से हवन करे। तत्पश्चात् अग्नि में देवी का आवाहन करके मूलमन्त्र द्वारा सोलह आहुतियाँ प्रदान करें। हवन के पश्चात् देवी की स्तुति -प्रणाम करके चन्द्रमण्डल में उसका विसर्जन कर दें।

।। समन्त्र बलि विधानम्।।

बलिं दद्याद् विधानेन छागादिं सुसमाहितः।।१०४।।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मायाबीजं ततः परम्।
एकजटे पदं पश्चान्महायक्षाधिपे ततः।।१०५।।
बलिं गृह्णपदद्वन्दं गृह्णापयपदद्वयम्।
मम शान्तिं कुरुकुरु परविद्यां पदं ततः।।१०६।।
आकृष्य च पदद्वन्द्वं त्रुटद्वन्द्वं ततः परम्।
छिन्धिद्वन्द्वं महेशानि सर्वपदमनन्तरम्।।१०७।।
जगत्पदं महेशानि वशमानय तत्परम्।
अनेन मनुना देवि बलिं दत्त्वा जपं चरेत्।।१०८।।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं शतं वापि महेश्वरि।
विंशत्या व जपेन्मन्त्रं ततो न्यूनं नचाचरेत्।।१०९।।
हृदा सरस्वती यावद् विद्याया व्याप्तिरुच्यते।
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात् स(ा)र्वज्ञयदायकम्।।११०।।

पूजन के पश्चात् संयतचित्त होकर छागादि की बलि विधिपूर्वक देनी चाहिए। बलि प्रदान के समय पहले प्रणव (ॐ) फिर मायाबीज **'ह्रीं'** तत्पश्चात् **'एकजटे महायक्षाधिपे'** इसके बाद **'बलिं गृह्ण-गृह्ण'** पुनः **'गृह्णापय-गृह्णापय'** बोले। तदुपरान्त **'मम शांतिं कुरु कुरु परविद्यां आकृष्य आकृष्य'** बोलकर **'त्रुट-त्रुट छिन्धि-छिन्धि'** तथा **'सर्वजगद् वशमानय'** बोलते हुए बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्रम् - **''ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपे मयोपनीत बलिं गृह्ण-गृह्ण गृह्णापय-गृह्णापय मम शान्तिं कुरु कुरु परविद्यां आकृष्य आकृष्य त्रुट-त्रुट छिन्धि-छिन्धि (क्रट-क्रट छिन्दि-छिन्दि) सर्व जगद् वशमानय ह्रीं स्वाहा।''**

उपर्युक्त मन्त्र से (तीन बार बोलकर) बलि प्रदान के पश्चात् साधक जप करे। जप की संख्या एक हजार (आठ) अथवा एक सौ (आठ) होनी चाहिए। किसी परिस्थितिवश यदि इतना जप सम्भव न हो तो बीस से कम की संख्या में जप नहीं करना चाहिए।

जिस प्रकार से सरस्वती हृदय में वास करते हुए विद्या रूप से साधक में व्याप्त हो जाती है तथा जिससे सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है, उस मन्त्रध्यान तथा जप के विषय में मैं अब कहता हूँ।

।। षट्चक्रेषु मन्त्र बीज ध्यानं तत्फलवर्णनञ्च।।

मन्त्रध्यानान्महेशानि शुध्यते ब्रह्महा यतः।
मूलचक्रे तु ह्ल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।।१११।।
स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयार्णं विभावयेत्।
नाभौ जीमूतसंकाशं कूर्चबीजं महाप्रभम्।।११२।।
अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम्।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वां विद्यां विभावयेत्।।११३।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम्।
(अथवा पूर्णचन्द्राभं कूर्चं मूर्ध्नि सुधाप्लुतम्।।११४।।
अथवा सर्वां विद्यां तां जिह्वायां दीपरूपिणीम्।
तत्प्रभापटलव्याप्तां जिह्वामपि विचिन्तयेत्।।११५।।
(जिह्वायां न्यसनाद् देवि मूकोऽपि सुकविर्भवेत्।)
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।।११६।।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि।
एतत्पूजाक्रमं रात्रौ यदि कुर्यात् परात्मिके।।११७।।
त(दे?दै)व सिद्धिमाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्।
स्तुतिं कुर्यान्महेशानि देव्यग्रे शुद्धमानसः।।११८।।

इस प्रकार (आगे वर्णित क्रमानुसार) से मन्त्र ध्यान करने से ब्रह्म हत्या करने वाला व्यक्ति भी पाप रहित शुद्ध (पवित्र) हो जाता है। साधक मूलाधार में (करोड़ों) सूर्य के समान आभायुक्त 'ह्रीं' का ध्यान करे। स्वाधिष्ठान चक्र में पीत वर्ण युक्त द्वितीय बीज 'स्त्रीं' की भावना करे। नाभिचक्र (मणिपुर) में मेघवर्ण तीव्र आभा सम्पन्न कूर्च बीज 'हूं' का तथा हृदय (अनाहत चक्र) में प्रलयाग्निवत् प्रकाशित अस्त्र बीज 'फट्' का ध्यान करे। इसके पश्चात् मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) पर्यन्त तक पूरे मन्त्र को (करोड़ों) सूर्य के समान आभा युक्त व्यापक रूप से, जैसा कि प्राचीन (पूर्व-पूर्व के) योगियों द्वारा अनुभूत है, अनुभव (ध्यान) करे अथवा पूर्ण-चन्द्रमा के समान प्रकाशित कूर्च बीज का मूर्ध्नि (शिखा) पर अमृत से पूर्णतः भीगा (डूबा) हुआ ध्यान करें अथवा सम्पूर्ण मन्त्र को दीप शिखा की भाँति जिह्वाग्र पर स्थित तथा उसकी आभा से पूरी जिह्वा को व्याप्त (प्रकाशित) सी अनुभव (चिन्तन) करे। इस प्रकार मन्त्र को जिह्वाग्र स्थित रूप से ध्यान करने वाला गूँगा व्यक्ति सुन्दर, सुरुचिपूर्ण काव्य-रचना सामर्थ्य प्राप्त कर सुकवि हो जाता है।

उपर्युक्त रूप से मन्त्र का ध्यान करने के पश्चात् आवश्यक संख्या में मन्त्र का जप करके देवी के वाम हाथ में जप को समर्पित कर देना चाहिए। मन्त्र जप समर्पण के लिए इस प्रकार बोलें – (दाहिने हाथ में जल अक्षत लेकर) **''गुह्याति गुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि।''**

इस प्रकार के पूजन-क्रम विधान द्वारा रात्रि में जो साधक परा देवी की पूजा-जपादि करता है, उसे ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। यह कथन निःसन्देह सत्य है, सर्वथा सत्य है। पूजन के पश्चात् देवी के सम्मुख इस प्रकार से स्तुति करनी चाहिए।

॥ देव्याः स्तुतिम्॥

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुवशङ्करि।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥११९॥
सुरासुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते।
जाड्यपापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥१२०॥
जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वानुकारिणि।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥१२१॥
सौम्यरूपे घोररूपे चण्डरूपे नमोऽस्तु ते।
दृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्॥१२२॥
जडानां जडतां हंसि भक्तानां भक्तवत्सले।
मूढतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥१२३॥
हूंहूंकारमये देवि बलिहोमप्रिये नमः।
उग्रतारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्॥१२४॥
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे।
कुबुद्धिं हर मेदेवि त्राहि मां शरणागतम्॥१२५॥
इन्द्रादि(दिवि?देव)सद्वृन्दवन्दिते करुणामयि।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम्॥१२६॥

भयंकर स्वरूप वाली, तीव्र (भयकारक) स्वर करने वाली, समस्त शत्रुओं को वशीभूत करने वाली तथा स्वभक्तों को अभीष्ट वर देने वाली हे देवि! मुझ शरणागत की रक्षा करें। सुरों (देवताओं) तथा असुरों (दैत्यों, दानवों तथा राक्षसों) सभी से पूजित होनी वाली, सिंद्धों तथा गन्धर्वों द्वारा सदा सेव्यमाना एवं भक्तों के अज्ञान तथा पाप का विनाश करने वाली हे देवि! मैं

आपकी शरण में आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें। शिर पर जटा समूहों से युक्त, बार-बार चञ्चल जिह्वा को बाहर निकालने वाली तथा बुद्धि का विकास करने वाली हे देवि! मैं आपकी शरण में हूँ, कृपया मेरी रक्षा करें। आपका स्वरूप देखने वाले की भावनानुसार सौम्य, घोर, प्रचण्ड तथा ज्ञान रूप है। हे देवि! आपको प्रणाम है, मुझ शरणागत की आप रक्षा करें। भक्तों के प्रति शिशुवत् भाव रखने वाली तथा उनकी (एवं अज्ञानियों की) मूर्खता (अज्ञान) का विनाश करने वाली हे देवि! मेरी अज्ञता का विनाश कर, शरण में आये हुए मुझ असहाय की रक्षा करें। बलि तथा होम से प्रीति करने वाली हूंकार रूपिणी हे देवि! आपको नमन है। हे उग्रतारे! आपको प्रणाम है, आप शरणागत स्वरूप मेरी रक्षा करें। हे देवि! मुझे बुद्धि (ज्ञान), यश तथा कवित्व शक्ति प्रदान करें। मेरी दुष्ट बुद्धि (बुद्धि के दोषों का) का विनाश कर आप मुझ शरण्य की रक्षा करें। इन्द्रादि देव समुदायों द्वारा नित्य वन्दनीय एवं करुणामयी तथा शिव में एकत्व रूप से सदा निवास करने वाली देवि तारे! मुझ शरणग्रहीत की रक्षा करें।

।। ताराष्टक स्तोत्र माहात्म्यं फलश्रुतिश्च।।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेत(सः?सा)।
षणमासैः सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।१२७।।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी धनमाप्नुयात्।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकाम्।।१२८।।
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु स(ततं?धनं) लभते नरः।
तस्य शत्रुः क्षयं याति महाप्रज्ञा च जायते।।१२९।।
पीडायां वापि संग्रामे जप्ये दाने तथा भये।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः।।१३०।।
स्तोत्रेणानेन देवेशि स्तुत्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
सर्वकाममवाप्नोति सर्वविद्यानिधिर्भवेत्।।१३१।।
इति ते कथितं दिव्यं स्तोत्रं सारस्वतप्रदम्।
अस्मात्परतरं स्तोत्रं नास्ति तन्त्रं महेश्वरि।।१३२।।
एवं स्तुत्वा महादेवीं दण्डवत् प्रणिपत्य च।
आत्मानं च समर्प्याथ योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।।१३३।।
अथ वक्ष्ये महेशानि ताराष्टकमिमं परम्।
पठनादस्य देवेशि शिवत्वं गतवान् (प्रिये?अहम्)।।१३४।।

शतकृ(ता?त्वः) प्रपठनाच्छत्रुनाशो भवेद् ध्रुवम्।
अष्टाविंशतिपाठाच्च राजा च दासतामियात्॥१३५॥
अष्टवारं प्रपठनात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
स्तवं शृणु वरारोहे येन राजा भविष्यति॥१३६॥

प्रत्येक मास (पक्ष) की अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी को इस स्तोत्र का अवश्य पाठ करना चाहिए। छः मास तक प्रतिदिन इस स्तोत्र का एकाग्रचित्त से पाठ करने वाले साधक को अपने अभीष्ट की सिद्धि अवश्य ही प्राप्त होती है। इस विषय में किसी भी प्रकार के विचार (सन्देह) करने की आवश्यकता नहीं है। इस स्तोत्र के पाठ से मोक्ष चाहने वाला मोक्ष, सम्पत्ति का इच्छुक सम्पत्ति तथा विद्यार्थी न्याय (दर्शन) व्याकरणादि अनेकों शास्त्रीय ज्ञानों को प्राप्त करता है। इस स्तोत्र के पाठ से साधक के सभी शत्रुओं का विनाश हो जाता है तथा वह लौकिक धन सम्पत्ति के साथ ही मुक्ति प्रदान करने वाली विवेकवती बुद्धि को भी प्राप्त कर लेता है। शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट के समय, युद्ध की परिस्थिति में, किसी प्रकार की भय की अवस्था में तथा जप-पूजन दानादि सत्कर्म करते समय जो भी साधक इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका निःसन्देह सदैव कल्याण होता है। इस ताराष्टक स्तोत्र द्वारा सुरेश्वरी देवी तारा की स्तुति करके (उन्हें प्रसन्न कर) साधक अपनी सभी कामनाओं की पूर्ति कर लेता है तथा वह सभी शास्त्रीय ज्ञानों का भण्डार (आश्रय) स्वरूप हो जाता है। हे महेश्वरि! तुमसे मैंने इस प्रकार जो दिव्य स्तोत्र को कहा है, किसी भी तन्त्रशास्त्र में इससे उच्चतर (श्रेष्ठ) अन्य कोई स्तोत्र नहीं है। इस प्रकार इस स्तोत्र द्वारा देवी की स्तुति करके उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर उनके चरणों (आश्रय) में स्वयं को सर्वतोभाव समर्पित कर उनके सम्मुख योनिमुद्रा का प्रदर्शन करें।

अब एक अन्य ताराष्टक स्तोत्र को कहता हूँ, जिसके नित्य पाठ के प्रभाव से ही मैंने शिवत्व प्राप्त किया है। हे महेशानि! इस स्तोत्र का (प्रतिदिन) सौ पाठ करने से निश्चित रूप से शत्रुओं का विनाश हो जाता है। अट्ठाईस दिनों तक इस प्रकार से पाठ करने पर राजा भी स्तोत्र पाठ करने वाले मनुष्य (साधक) का सेवक तुल्य हो जाता है। प्रतिदिन नियमपूर्वक (पूजनोपरान्त) आठ बार पाठ करने से कुछ काल के पश्चात् साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। जिस स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करने का अभ्यस्त साधक (अतिपुण्य प्रारब्ध होने पर इसी जन्म में अथवा अगले जन्म में) राजा हो जाता है, हे वरारोहे! उसे सुनो।

।। ताराष्टक-स्तोत्रम्।।

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्यसंपत्प्रदे
प्रत्यालीढपदस्थिते शिवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे।
फुल्लेन्दीवरलोचनत्रययुते क(तृं?र्त्रीं) कपालोत्पले
खड्गंचादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये।।१३७।।
वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि
गद्यप्राकृतपद्यजाति रचनासर्वार्थसिद्धिप्रदे।
नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते कारुण्यवारां निधे
सौभाग्यामृतवर्षणेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम्।।१३८।।

(शव रूप में स्थित) शिव के हृदय पर प्रत्यालीढ अवस्था में स्थित, सौभाग्य (भोग-मोक्ष उभय) रूप सम्पत्ति प्रदान करने वाली, मन्द मुस्कान से सुशोभित मुख कमल वाली, विकसित नीलकमल (दल) के समान सुन्दर तीन नेत्रों वाली तथा अपने चारो हाथों में कर्त्तरी, कपाल, कमल एवं खड्ग धारण की हुई समस्त चराचर सृष्टि की ईश्वरी (सृष्टि, स्थिति तथा संहार कारिणी) हे माता नील सरस्वति (तारे)! मैं केवल तुम्हारे (आपके) ही शरणापन्न हूँ।

वाणी (शब्द) रूप समस्त शास्त्रों (निगमागमों सहित) की स्वामिनी (उन्हें लोक में प्रकाशित करने वाली), स्वभक्तों के लिए (सर्वाभीष्ट प्रदा) कल्पलता (वृक्ष) के समान, सभी अर्थों (भोगों) तथा सिद्धियों (की एकमात्र प्रदाता होने के कारण उनकी) स्वामिनी, स्व साधक भक्तों को देववाणी सहित प्राकृत-लोकभाषा में भी गद्य तथा अनेकों प्रकार के रस-छन्द-अलङ्कारों सहित धारा प्रवाह पद्य रचना का सामर्थ्य तथा सभी प्रकार के ऐश्वर्यमय भोगों एवं सिद्धियों को प्रदान करने वाली, नील कमलवत् सुन्दर त्रिनेत्रों से युक्त, समुद्रवत् अक्षय करुणा से परिपूर्ण हे माता तारे! आपके शरण में आये हुए मुझ जैसे अकिञ्चन सेवक पर कृपा करके सौभाग्य रूपी अमृतवर्षा से उसे (मुझे) पूर्णतः परिसिञ्चित करे अर्थात् मेरे अन्तर्बाह्य सभी अभावों यहाँ तक कि अभाव-वृत्ति का भी समूल अभाव कर दें।

खर्वे गर्वसमूहपूरिततनो सर्पादिवेशोज्वले
व्याघ्रत्वक्परिवीतसुन्दरकटीव्याधूतघण्टाङ्किते।
सद्यः कृत्तगलद्रजःपरिमिलन्मुण्डद्वयीमूर्धज-
ग्रन्थिश्रेणिनृमुण्डदामललिते भीमे भयं नाशय।।१३९।।

मायानङ्गविकाररूपललना विन्द्वर्धचन्द्रात्मिके
हूंफट्कारमयि त्वमेव शरणं मन्त्रात्मिके मादृशः।
मूर्तिस्ते जननि त्रिधामघटितास्थूलातिसूक्ष्मा परा
वेदानां नहि गोचरा कथमपि प्राप्तां तु तामाश्रये॥१४०॥

छोटे (नाटे) कद (शरीर) वाली स्थूल प्रभावपूर्ण शक्ति युक्त शरीर वाली, सर्पों के आभूषणों से सुशोभित, व्याघ्र चर्म से आच्छादित सुन्दर कटि वाली जिसमें बजती हुई घण्टियों से युक्त मेखला (करधनी-कटिबन्ध) धारित है, अपने दो हाथों में शीघ्र ही काटे गये रक्त धारा प्रवाह करते हुए दो नरमुण्डों के केशों को पकड़कर उठाये हुए तथा नरमुण्डों से ग्रथित माला को गले में धारण कर शोभायमान प्रबल शक्ति सम्पन्ना हे माता! आप मेरे भय का सर्वथा विनाश करें।

ह्रीं, (क्रीं), स्त्रीं, बिन्दु, अर्धचन्द्र, हूं तथा फट् रूपिणी (अर्थात् ह्रीं स्त्रीं हूं फट् स्वरूपिणी), सर्वमन्त्र स्वरूपा, सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि रूप त्रितेज से निर्मित आपकी मूर्ति स्थूल सूक्ष्म तथा परा (प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर, मन्त्र स्वरूप तथा चिदात्मक) भेद से तीन प्रकार की है। आपकी परा मूर्ति तो वेदों के लिए भी अगोचर है। हे माता! मैं केवल आपके ही शरण हूँ। अपनी कृपामयी दृष्टि मुझ पर डालें। आपके ही सर्वथा आश्रित मुझ अत्यन्त असहाय साधना विहीन को आप कैसे प्राप्त होंगी अर्थात् मैं आपको किस प्रकार प्राप्त (साक्षात् दर्शन) कर सकूँ। इसका निर्णय आप ही करें।

त्वत्पादाम्बुजसेवया सुकृतिनो गच्छन्ति सायुज्यतां
तस्य श्रीपरमेश्वरि त्रिनयनब्रह्मादिसाम्यात्मनः।
संसाराम्बुधिमज्जनेऽपटुतनून् देवेन्द्रमुख्यान् सुरान्
मातस्त्वत्पदसेवने हि विमुखः किं मन्दधीःसेवते॥१४१॥
मातस्वत्पदपङ्कजद्वयरजोमुद्राङ्क कोटीरिण-
स्ते देवा जयसंगरे विजयिनो निःशङ्कमङ्के गताः।
देवोऽहं भुवने न मे सम इति स्पर्धा वहन्तः परे
तत्तुल्यां नियतं यथासुंभिरमी नाशं व्रजन्ति स्वयम्॥१४२॥

हे परमेश्वरि! उन रुद्र ब्रह्मादि के समान ज्ञानी तथा शुद्ध चित्त वाले सत्कर्मी पुण्यात्मा पुरुष लोग भी आपके चरण कमलों की सेवा के द्वारा ही सायुज्य रूप मुक्ति प्राप्त करने में सफल होते हैं। हे माता! कौन सा ऐसा अज्ञानी पुरुष होगा जो (साक्षात् मुक्ति प्रदान करने वाले) आपके चरणों की सेवा से

विमुख होकर (उसका परित्याग कर) संसार सागर में डूबे हुए, विनाशी शरीर वाले (जन्म-मृत्यु की धारा में बहते हुए) इन्द्रादि प्रमुख देवों की सेवा करेगा।

हे माता! आपके चरण कमलों की धूलि से घूसरित मुकुटों वाले (नित्य आपके चरण-कमलों में प्रणत होने वाले) वे देवता जो असुरों के साथ युद्ध में (आपकी ही कृपा से) विजयी होकर (परन्तु इसे न जानते हुए) निर्भय होकर गर्व से भरे हुए ''मैं देवता हूँ, संसार में मेरे समान (शक्तिशाली) कोई नहीं है'' इस प्रकार की वाणी बोलते हुए तथा दूसरों से इसकी (अपनी शक्ति की) तुलना करते हुए प्रतिद्वन्द्विता करते हैं, वे सभी देवता धूलकणों की तरह निश्चित ही स्वयं विनाश की ओर जा रहे हैं।

त्वन्नामस्मरणापलायनपरा द्रष्टुं च शक्ता न ते
भूतप्रेतपिशाचराक्षसगणा यक्षाश्च नागाधिपाः।
दैत्या दानवपुङ्गवाश्च खेचरा व्याघ्रादि जन्तवो
डाकिन्यः कुपितोऽन्तकश्च मनुजे मातः क्षणं भूतले॥१४३॥
लक्ष्मीः सिद्धिगणश्च वादकमुखस्तम्भस्तथा वैरिणः
स्तम्भश्चापि रणाङ्गने गजघटास्तंभस्तथा मोहनम्।
मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां सिध्यन्ति ते ते गुणाः
कान्तिः कान्तमनोभवस्य भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः॥१४४॥

हे माता! आपके नाम का स्मरण करते (सुनते) ही भाग खड़े होने वाले भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षसों के समूह, यक्ष, बड़े-बड़े नागराज, वीर दैत्य तथा दानवों के समूह, गगन चारी प्राणी, व्याघ्रादि वन पशु (प्राणी), डाकिनियों यहाँ तक कि क्रोध से भरा हुआ काल भी आपके नामों का नित्य स्मरण करने वाले मनुष्य को क्षण भर के लिए भी देखने में इस भूतल पर समर्थ नहीं है अर्थात् बड़ी से बड़ी दैवी शक्ति भी आपके भक्त का अहित करने में समर्थ नहीं हो सकती।

लक्ष्मी (धन सम्पत्ति प्राप्ति रूप), सिद्धि समूह (प्राप्ति रूप), प्रतिवादियों के मुख-स्तम्भन रूप, शत्रु स्तम्भक, युद्ध स्थल में हाथी (घोड़े रथादि) स्तम्भक, युद्ध के समय बजने वाले घंटों (जो प्रायः हाथियों के गले में बंधे होते हैं) आदि के स्वरों के स्तम्भक, सैन्य सम्मोहक आदि जो-जो सिद्धियाँ हैं, हे माता! जो मनुष्य आपके चरण कमलों की सेवा में रत (साधना उपासना में लीन) हैं, उन्हें ये सहज ही सिद्ध (प्राप्त) हो जाती हैं। आपकी सेवा के फलस्वरूप सामान्य रूप (कुरूप) वाला मनुष्य भी

(सुन्दरियों की दृष्टि में) कामदेव के समान सुन्दर रूपवान हो जाता है तथा क्षुद्र से क्षुद्र (अत्यन्त मन्द बुद्धि) मनुष्य भी बृहस्पति के समान ज्ञानी तथा विद्वानों के मध्य पूजनीय हो जाता है।

॥ताराष्टक स्तोत्र फल-श्रुतिः॥

ताराष्टकमिदं पुण्यं भक्तिमान् यः पठेन्नरः।
प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाह्ने नियतः शुचिः॥१४५॥
लभते कवितां दिव्यां सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत्।
लक्ष्मीमनश्वरां प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥१४६॥
कीर्तिं कान्तिं च नैरुज्यं सर्वेषां प्रियतां व्रजेत्।
विख्या(तं?तिं) चापि लोकेषु प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात्॥१४७॥
अनेन स्तवराजेन स्तुत्वा देवीं सरस्वतीम्।
इहैव सर्वकामान् वै भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥१४८॥
अस्मात् परतरं नास्ति स्तवेषु सुरवन्दिते।
कलौ तु सर्वयत्नेन सर्वं त्यक्त्वा स्तवं पठेत्॥१४९॥

इस पुण्यप्रद पवित्र ताराष्टक स्तोत्र का जो भी साधक प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह तथा सायंकाल में नियमपूर्वक शुद्ध हृदय से पाठ करता है।, उसे दिव्य कवित्व शक्ति के साथ ही समस्त शास्त्रों के विशेष रहस्यात्मक अर्थों का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। वह अपने जीवन में अचल-अविनाशी लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) को प्राप्त कर अभीष्ट भोगों को भोगता हुअ यश, शारीरिक सौन्दर्य तथा आरोग्य को उपलब्ध हो समस्त मनुष्यों का प्रिय पात्र हो जाता है। तीनों लोकों में अपनी कीर्ति का विस्तार कर अन्त में मृत्यूपरान्त मोक्ष को प्राप्त होता है। इस स्तव राज के द्वारा साधक देवी नील सरस्वती (तारा) की स्तुति करके यहीं इसी जीवन में सभी वाञ्छित भोगों का उपभोग कर अन्त में निश्चित रूप से मोक्ष को भी प्राप्त करता है। हे सर्वदेव पूजिते देवि! इस स्तोत्र से उत्तम अन्य कोई भी स्तोत्र (त्रिलोकी में भी) नहीं है। अतः साधक भक्त को सर्व प्रकार से पूरा प्रयत्न करते हुए अन्य सभी स्तोत्रों तथा साधनों का आश्रय त्याग कर इसी परमोत्तम ताराष्टक स्तोत्र का श्रद्धा-भक्ति सहित नित्य विधिवत् पाठ करना चाहिए।

॥सलक्षण साष्टाङ्ग प्रणामं निर्माल्यार्पणञ्च॥

अष्टाङ्गं प्रणिपत्यादौ भवेत् साक्षात् सदाशिवः।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा॥१५०॥

मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।
त्रिकोणाकारिका चैव तारायाः परिकीर्तिता॥१५१॥
एवं नतिं पुरस्कृत्य सुगन्धिं लेपयेत् ततः।
सुषुम्नामार्गकेणैव क्षमस्वेति हृदा नयेत्॥१५२॥
प्राणायामं पुनः कृत्वा स्वमात्मानं विभावयेत्।
पुष्पग्रहणमन्त्रं च शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥१५३॥
वाग्भवं प्रथमं दद्यान्निर्माल्यपदमन्तरम्।
वासिन्यै च पदस्यान्ते नम उच्चार्य पूजयेत्॥१५४॥
चर्व्यलेह्यान्नपानादि ताम्बूलस्रग्विलेपनम्।
निर्माल्यभोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया॥१५५॥
शिरोलग्नं ततः कृत्वा निर्माल्यं शिष्टमेव च।
विप्राय दद्यान्नेवेद्यं कुमारीभ्यस्तथैव च।
किञ्चित् स्वयं स्वीकृत्य विहरेन् सर्वदा भुवि॥१५६॥

इति श्री बृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(षोडशोपचारपूजास्तोत्रादिनिरूपणं) द्वितीयं पटलः॥

समस्त पूजनोपरान्त देवी को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए। इससे वह साधक साक्षात् सदा शिव के तुल्य हो जाता है। दोनों हाथों, दोनों पैरीं, दोनों घुटनों, हृदय, शिर, नेत्र, मन तथा वाणी इन आठ अंगों द्वारा (भूमि पर दण्ड के समान लेटकर) प्रणाम करना साष्टांग (दण्डवत) प्रणाम कहा जाता है। पञ्च भूतात्मक स्थूल शरीर, अहंकार तथा बुद्धिरूप चित्त (अथवा सूक्ष्म शरीर) तथा चेतन रूप जीवात्मा का देवी के चरणों में सर्वतोभाव समर्पण करना ही वास्तविक साष्टाङ्ग प्रणाम है। भगवती त्रिकोणाकार है अतः उन्हें योनिमुद्रा द्वारा प्रणाम करके फिर यन्त्रादि पर लगे हुए चन्दनादि का लेप स्वमस्तक तथा शरीर पर करके **'क्षमस्व'** बोलते हुए सुषुम्ना मार्ग द्वारा देवी को अपने हृदय में लाकर स्थापित कर दे। स्वयं को देवी के रूप में भावना करके फिर प्राणायाम करे। इसके बाद ईशान कोण में लाल चन्दन से त्रिकोण मण्डल बनाकर उस पर एक पात्र रखकर निर्माल्य पुष्प द्वारा **''ऐं निर्माल्य वासिन्यै चण्डेश्वर्य्यै नमः'** से उस पात्र का पूजन करके निर्माल्य का थोड़ा अंश उच्छिष्ट चाण्डालिनी को अर्पित करे। अर्पण के समय **''ऐं (ॐ) उच्छिष्ट चाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि! चर्व्य लेह्यान्न पानादि ताम्बूलस्रग विलेपनं निर्माल्य भोजनं तुभ्यं ददामि श्री शिवाज्ञया। इमं बलिं गृहृण गृहृण स्वाहा।''** मन्त्र

का उच्चारण करे। इसके पश्चात् निर्माल्य का एक (कुछ) पुष्प उठा कर स्वशिर पर धारित कर शेष भोज्य (नैवेद्य) रूप निर्माल्य ब्राह्मणों तथा कुमारी कन्याओं को देकर एवं थोड़ा स्वयं स्वीकार कर इच्छानुसार विहार (अन्य व्यवहारिक कर्म) करें।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद में षोडशोपचार
पूजास्तोत्रादि निरूपण नामक दूसरे पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

॥ तृतीयः पटलः॥

(दीक्षा-विधि-निरूपणम्)

॥ श्री देव्युवाच॥

देवदेव महादेव अनाथानां दयाकर।
दीक्षाविधिं महादेव कथयस्व समासतः॥१॥

हे देवाधिदेव महादेव! अनाथों (सर्वसाधनहीनों) पर भी दया करने वाले सुरेश्वर! अब आप कृपया संक्षेप में दीक्षा प्रदान करने की विधि का वर्णन करें।

॥ दीक्षा-माहात्म्य-वर्णनम्॥

॥ श्री भैरव उवाच॥

शृणु सुन्दरि सर्वेशि कथ्यमानं मयानघे।
तया विना महादेवि ह्यधिकारो न कर्मणि॥२॥
सर्वाश्रमेषु भूतेषु सर्वदेवेषु सुव्रते।
दीक्षां विना महादेवि सर्वं तस्य वृथा भवेत्॥३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्।
दीक्षामूलं जगत्सर्वं दीक्षामूलं परं तपः॥४॥
दीक्षामू(लं?ला) परा सिद्धिस्तस्माद् दीक्षां समाचरेत्।
दीक्षाहीनो महादेवि रौरवं नरकं व्रजेत्॥५॥
अदीक्षिताद्यदि शुभे किञ्चिदादाय भोजयेत्।
वृथा पानं भवेत् सर्व तस्मात् सर्व विवर्जयते्॥६॥
अदीक्षितकुलसङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते।
अन्नं विष्टासमं तेषां तोयं मूत्रसमं स्मृतम्॥७॥

हे सर्वपाप (दोष) रहिते, महादेवि, सर्वेश्वरि, सुन्दरि! मैं अब दीक्षा के विषय में कहूँगा। इसे प्राप्त किये बिना किसी भी मनुष्य को उपासना रूप पूजन कर्म करने का अधिकार नहीं है। प्राणी चाहे देवयोनि में स्थित हो अथवा मनुष्य योनि में, चाहे किसी भी आश्रम (ब्रह्मचर्यादि) में स्थित हो, दीक्षा प्राप्त किये बिना वह जो भी सत्कर्म (दान-यज्ञ-पूजनादि) करता है, वह सभी व्यर्थ (निष्फल) हो जाता है। इसलिए सर्व प्रकार से यत्नशील होकर सद्गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। समस्त सृष्टि, सभी प्रकार के

तपों तथा सम्पूर्ण उत्तमोत्तम सिद्धियों का मूल एक मात्र दीक्षा ही है। इसलिए दीक्षा अवश्य ही प्राप्त करनी चाहिए। हे महादेवि! दीक्षा विहीन व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् रौरव (भयानक) नरक को प्राप्त करता है। किसी शुभ कर्म में यदि कर्मकर्ता अदीक्षित व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई भी पदार्थ खाता अथवा पीता है तो उसका सारा शुभ कर्म व्यर्थ हो जाता है, इसलिए ऐसे अदीक्षित व्यक्ति से सर्वथा सम्बन्ध का परित्याग कर देना चाहिए। अदीक्षित व्यक्ति के कुल के भी किसी सदस्य (अथवा दीक्षा रहित स्त्री) से सम्बन्ध होने पर भी साधक के सिद्धि की हानि होती है। अदीक्षित व्यक्ति का (दिया हुआ) अन्न विष्ठा (मल) के समान तथा जल मूत्रवत् कहा जाता है।

।। सद्गुरू-प्रशंसनं स्वरूप वर्णनञ्च।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सद्गुरोर्दीक्षितो भवेत्।
सद्गुरोराहितदीक्षः सर्वकर्माणि कारयेत्।।८।।
गुरुं विना महादेवि वृथा दीक्षा च जायते।
कल्पे दृष्ट्वा तु मन्त्रं वै यो गृह्णाति नराधमः।।९।।
मन्वन्तरसहस्रेषु निष्कृ(ते?ति)नैव जायते।
गुरोर्मुखान्महाविद्या सर्वपापप्रणाशिनी।।१०।।
सद्गुरुं त्वं महादेवि कथ्यमानं मया श्रृणु।
बहिरिन्द्रियहर्ता च गुरुः सर्वत्र दुर्लभः।।११।।
अन्तरिन्दियहर्ता च गुरुः सर्वत्र शोभनः।
अनिन्दितवेशधारी कपटेन विनाकृतः।।१२।।
आचारवान महाविद्याराधनेषु च तत्परः।
तत्कल्पाचारशक्तश्च गुरुरित्यभिधीयते।।१३।।
कौलज्ञानी महायोगी गुरुरेव च दैवतम्।
कुलीनः सर्वमन्त्राणां दाता सर्वेषु सुन्दरि।।१४।।
दीक्षा(भ्र?प्र)भुः स एवात्मा नापरो वेदपारगः।
उत्पादकब्रह्मदात्रोगरीयान् कौलनायकः।।१५।।
तस्मान्मन्येत सततं पितुरप्यधिको गुरुः।
ध्यानमूलं गुरोमूर्तिः पूजामूलं गुरोः क्रिया।।१६।।

इसलिए साधक सर्वप्रकार से उपाय करके सद्गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त करे तथा दीक्षोपरान्त (गुरु के आदेश एवं उपदेशानुसार) सभी साधनात्मक क्रियाओं का सम्पादन करे। सद्गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त किये बिना जो मनुष्य

मानवों द्वारा रचित ग्रन्थों में मन्त्रों को देखकर, उन्हें ग्रहण करके, तदनुसार जप-पूजनादि साधना करने लगता है, उसके सभी कर्म व्यर्थ तो होते ही हैं हजारों मन्वन्तरों तक उसका इस संसार सागर से उद्धार भी नहीं होता है। गुरुमुख द्वारा उपदेश रूप से विधिवत् प्राप्त हुई महाविद्या ही समस्त पापों का विनाश करने में सक्षम होती है। हे महादेवि! वह सद्गुरु कैसा होना चाहिए, इस विषय में मैं कहता हूँ, तुम सुनो! जो शिष्य की बाह्य इन्द्रियों के दोषों (विषयासक्ति) के निवारण सहित आन्तरिक इन्द्रियों (अन्तःकरण) के दोषों का भी निवारण करने में समर्थ हो, ऐसा श्रेष्ठ गुरु सर्वत्र सुलभ नहीं है। सद्गुरु को निश्छल स्वभाव वाला, पाखण्डपूर्ण वेश-भूषा तथा आकृति से रहित सुन्दर-सुरुचिपूर्ण वस्त्राभूषणों को धारण करने वाला होना चाहिए। उसे सदाचरणशील महाविद्यास्वरूप तारा, काली आदि की आराधना में रत, उनके यन्त्रादि के निर्माण तथा पूजन एवं मन्त्रों के विविध प्रयोगों का ज्ञाता होने के साथ ही क्रियाविधि के सम्पादन में भी समर्थ होना चाहिए। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में श्रेष्ठ सद्गुरु कहा जाता है। जो सद्गुरु कुल परम्परा (सम्प्रदाय) के आम्नायों, विद्याओं, उनकी साधनात्मक प्रक्रियाओं का ज्ञाता है, वह कौलज्ञानी ही महायोगी है तथा वह साक्षात् देवतास्वरूप है। हे सुन्दरि! कौलिक गुरु सभी मनुष्यों को तथा सभी प्रकार के मन्त्रों को देने का अधिकारी होता है। कौलिक गुरु परमात्मा स्वरूप (शिववत्) है, वह सभी प्रकार की दीक्षा प्रदान करने में समर्थ होता है। वेदों का पारगामी (उसके परमतत्व स्वरूप ब्रह्म को जानने वाला) विद्वान भी उसके समान योग्य नहीं है अथवा कौलिक गुरु ही वास्तव में वेदों का पारगामी विद्वान है, अन्य कोई नहीं। मनुष्य को जन्म देने वाला (गुरुरूप) पिता तथा यज्ञोपवीत संस्कार सहित ब्रह्मगायत्री का उपदेश देने वाला आचार्य रूप गुरू, इन दोनों से कौलिक गुरु श्रेष्ठ (उच्चतर) है। इसलिए सद्गुरु को पिता (शिक्षक तथा आचार्य) से भी अधिक पूजनीय मानना चाहिए। सद्गुरु की मूर्ति (स्वरूप) का ध्यान करना ही वास्तविक ध्यान है तथा उनकी आज्ञाओं का पालन, उनकी सेवा तथा समस्त कर्म उनके लिए ही करना वास्तविक देवपूजा है।

।। कुलीन(शैव-शाक्त) गुरुणा दीक्षा श्रेयष्करा।।

(मूलंमन्त्रं?मन्त्रमूलं) गुरोर्वाक्यं तस्मादादौ गुरुं यजेत्।
शिवोऽपि परविद्यानामुपदेष्टा न संशयः।।१७।।
वैष्णवस्तन्मतस्थानां सौरः सौरविदां सताम्।
गाणपत्यस्तु देवेशि गणदीक्षाप्रवर्तकः।।१८।।

शैवः शाक्तस्तु सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत्।।१९।।
एकद्वित्रिचतुष्पञ्चवर्षाण्यालोक्य योग्यताम्।
योग्यं परीक्षयेच्छिष्यमन्यथा दुःखमाप्नुयात्।।२०।।
वृद्धिश्राद्धं ततः कृत्वा ब्राह्मणान् परितोष्य च।
गृह्णीयाच्च ततो दीक्षां नान्यथा फलमाप्नुयात्।।२१।।

मन्त्र का मूल उसका वास्तविक तत्व-स्वरूप श्री सद्गुरु के बचन रूप आदेश-उपदेश है। उनकी आज्ञाओं (आदेशों) का पालन करना, उपदेशों के अनुसार व्यवहार करना तथा निश्छल भाव से सदा उनकी पूजा (सेवा) में तत्पर रहना ही यथार्थ मन्त्र-साधना है। क्योंकि पराशक्ति स्वरूपा महाविद्या का उपदेश देने वाला सद्गुरू निःसन्देह मानव शरीर धारी शिव ही है। वैष्णव गुरु को स्वमत (सम्प्रदाय) के अनुसार वैष्णव मत को स्वीकार करने वालों को ही दीक्षा देने का अधिकार है। इसी प्रकार सौर (सूर्य) मताधिकारियों को सौर सम्प्रदायविद् गुरु तथा गाणपत्य (गणपति-गणेश) मत में आस्था रखने वालों को ही गाणपत्य सम्प्रदायविद् गुरु दीक्षा देने का अधिकारी है। परन्तु शैव तथा शाक्त सम्प्रदाय विद् गुरु सभी मनुष्यों को सभी मतों के अनुसार दीक्षा देने का अधिकारी होता है। इसलिए मनुष्य को उचित है कि वह किसी भी प्रकार से यथासम्भव कुलीन (कौलसम्प्रदायविद्) गुरु का वरण करे। गुरु को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार (अथवा वर्णानुसार) एक, दो, तीन, चार अथवा पाँच वर्षों तक शिष्य को अपने समीप रखते हुए उसकी योग्यता का निरीक्षण करे। इस प्रकार भली-भाँति शिष्य की योग्यता का परीक्षण करके उसी के अनुसार उसे दीक्षा प्रदान करनी चाहिए, अन्यथा (शिष्य के अयोग्य सिद्ध होने पर) गुरु को ही बाद में दुःख का भागी होना पड़ेगा। दीक्षा ग्रहण करने वाला मनुष्य पहले अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए वृद्धि-श्राद्ध (नान्दी श्राद्ध) कर ब्राह्मणों को दान-दक्षिणादि से सन्तुष्ट कर ले फिर सद्गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त करे। ऐसा न करने पर दीक्षा द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्यरूप फल की प्राप्ति उसे नहीं होती है।

।। दीक्षार्थे काल (मास-तिथि) निर्णयम्।।

चैत्रादीनां फलं ज्ञेयं मलमासं विवर्जयेत्।
विषुवेऽप्ययनद्वन्द्वे संक्रान्त्यां मदनोत्सवे।।२२।।
दीक्षा कार्या प्रयत्नेन पवित्रे गुरुपर्वणि।
षष्ठी भाद्रपदे मासि (त्रये?इषे) कृष्णचतुर्दशी।।२३।।

कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुल्कतृतीयिका।
पौषे च नवमी शुक्ला माघे वरचतुर्थिका॥२४॥
फाल्गुने नवमी शुक्ला चैत्रे कामत्रयोदशी।
वैशाखे चाक्षया शस्ता ज्येष्ठे दशहरा तिथिः॥२५॥
आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी।
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत्॥२६॥
निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्ति भूतले॥२७॥
पञ्चागशुद्धे दिवसे शोभने शशितारयोः।
गुरुशुक्रोदये चैव शस्यते मन्त्रसंस्क्रिया॥२८॥

दीक्षा प्राप्ति के लिए चैत्रादि मासों में गृहीत दीक्षा के फलों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। दीक्षा के लिए अग्राह्य अशुभ मलमास का परित्याग कर देना चाहिए। दोनों विषुव संक्रान्तियों, दोनों अयन संक्रान्तियों, मदनोत्सव पर्व पर तथा पवित्र गुरु पर्वों में विशेष प्रयत्न करके दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। भाद्रपद शुक्ल षष्ठी, आश्विन कृष्ण चतुर्दशी, कार्तिक शुक्ल नवमी, मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया, पौष शुक्ल नवमी, माघ शुक्ल वर चतुर्थी, फाल्गुन शुक्ल नवमी, चैत्र कामदा त्रयोदशी, वैशाख (शुक्ल) अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ मास में गंगा दशमी, आषाढ़ शुक्ल पंचमी तथा श्रावण कृष्ण पञ्चमी ये सभी तिथियाँ देवपर्व कही जाती हैं। इनमें दीक्षा ग्रहण करना करोड़ों तीर्थ भ्रमण (दर्शन) के समान फल प्रद होता है। निन्दित (अशुभ) कालों में भी यदि ग्रहण काल हो तो वे दीक्षा के लिए शुभ होते हैं। सूर्य ग्रहण काल के समान दीक्षा योग्य शुभ काल इस भूतल पर अन्य कोई काल नहीं है। पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण) के शुद्ध होने पर चन्द्र तथा नक्षत्रों की शुभ स्थिति तथा गुरु(बृहस्पति) एवं शुक्र के उदय काल में मन्त्र-संस्कार क्रिया (दीक्षा-कर्म) करना श्रेयस्कर होता है।

॥ दीक्षार्थे शुभ-स्थान-नक्षत्राणि च॥

स्थानं शृणु वरारोहे येन सिध्येन्न संशयः।
गोष्ठे शिवालये पुण्ये श्मशाने च नदीतटे॥२९॥
शून्ये च ग्रहणे पुण्ये गिरौ च सिद्धिलिप्सुकः।
जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति॥३०॥
रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
पुष्या शतभि(षा?षक्) चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते॥३१॥

क्रमं प्रवर्त्य विधिवत् पूजाहोमौ विधाय च।
विद्यां तां कथयेत् सम्यग्जीवकर्णे च तत्त्ववित्॥३२॥

हे वरारोहे! अब दीक्षा प्रदान करने के लिए उन शुभ स्थानों के विषय में सुनो जहाँ प्राप्त की गई दीक्षा निश्चित रूप से सिद्धि देने वाली होती है। गोशाला, शिवालय, पवित्र (तीर्थ) स्थान, श्मशान, पुण्य सलिला, नदी तट क्षेत्र, एकान्त जन शून्य स्थान, अरण्यादि तथा पर्वत शिखर इन विशेष स्थलों पर सिद्धि के इच्छुक साधक (मनुष्य) को दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अब दीक्षा ग्रहण के लिए शुभ काल (नक्षत्रों) के नाम सुनो। रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, तीनों उत्तरा नक्षत्र, पुष्य तथा शतभिषा नक्षत्र दीक्षा के लिए श्रेष्ठ कहे गये हैं। विधिवत् देवता का पूजन, होम आदि करके परम्परानुसार क्रम-दीक्षा विधि का पालन करते हुए विद्या-तत्व का ज्ञाता गुरु शिष्य के दक्षिण कर्ण में जिस विद्या (मन्त्र) की दीक्षा देना अभीष्ट हो, उसका कथन (उपदेश) करे।

॥ दीक्षा-विषये कुल्लुकादि ज्ञानं गुरु दक्षिणा माहात्म्यञ्च कथनम्॥

अज्ञात्वा कुल्लुकां देवीमनत्वा गुरुपादुकाम्।
अदत्त्वा दक्षिणां सम्यगकृत्वा कुलपूजनम्॥३३॥
योऽस्मिस्तन्त्रे प्रवर्तेत न तं पीडयसे ध्रुवम्।
इषे मासि विशेषेण धर्मकामार्थसिद्धये॥३४॥
नात्र कालविचारादि नच नक्षत्रशोधनम्।
अष्टोत्तरशतं होमं विल्वपत्रेण कारयेत्॥३५॥
अष्टावष्टादश कुर्यादष्टाविंशतिमेव च।
पायसं कृसरं दद्याद् गोधामांसमनुत्तमम्॥३६॥
रम्भापुष्पं शालमत्स्यं जुहुयाच्च प्रयत्नतः।
यवक्षीरं ततो दद्याच्छाल्यन्नं मधुना युतम्॥३७॥
नारिकेलफलं दद्यात् स्वर्णाद्याभरणं तथा।
गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः॥३८॥
दक्षिणा च विशेषेण दातव्येति महेश्वरि।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् प्रत्यक्षाय शिवात्मने॥३९॥
न चेत् संचारिणी शक्तिः कथमस्य भविष्यति।
सर्वस्वं दक्षिणां दद्याद् धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्॥४०॥
यदा ददाति संतुष्टः प्रसन्नवदनो मनुम्।
आसनं गुरवे दद्याद्रक्तकम्बलसंयुतम्॥४१॥

हाराद्याभरणं दद्याद् गां च दद्यात् पयस्विनीम्।
भूमिं वृत्तिकरीं दद्यात् पुत्रपौत्रानु(षा?या)यिनीम्॥४२॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात् सुवर्ण वाससा युतम्।
गुरुसंतोषमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती॥४३॥
अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादभिचाराय कल्पते।

विद्या की कुल्लुका का बिना ज्ञान प्राप्त किये, बिना गुरुपादुकाओं को प्रणाम किये (बिना गुरुपादुका मन्त्र का ज्ञान प्राप्त किये), सद्गुरु को बिना (यथोचित) दक्षिणा दिए तथा बिना कुल (शक्ति-कुमारी) पूजन किये जो साधक इस तन्त्र मार्ग में प्रविष्ट हो इसकी साधना करता है वह निश्चित रूप से कष्ट से पीड़ित (दुःखी) ही होता है। आश्विन मास में विशेष रूप से धर्म कामार्थ की प्राप्ति के लिए दीक्षा ग्रहण करने में मास-तिथि-नक्षत्र रूप काल-विचार-शोधन करने की आवश्यकता नहीं है। मन्त्र ग्रहण के पश्चात् आठ, अट्ठारह, अट्ठाईस अथवा सम्भव हो तो एक सौ आठ बार हवन बिल्व(बेल) पत्रों से करना चाहिए। स्वगुरु दक्षिणा (तथा भोजन) में खीर, खिचड़ी, गोधामांस, केला, शालमत्स्य, जव की खीर, मधुयुक्त शालि चावल का भात प्रदान करना चाहिए। गाय, भूमि, स्वर्ण (स्वर्ण निर्मित आभूषण), वस्त्रादि गुरु को प्रिय तथा उपयोगी पदार्थों को विशेष रूप से दक्षिणा के रूप में स्वगुरु को प्रदान कर उन्हें भली-भाँति सन्तुष्ट करना चाहिए। क्योंकि गुरु साक्षात् शिवरूप होता है। यदि शिष्य ऐसा नहीं करता है तो गुरु की आत्मिक शक्ति का शिष्य के अन्दर (चित्त में) सञ्चरण (प्रवाह-प्रवेश) कैसे होगा अर्थात् नहीं हो सकता। इसलिए शिष्य को चाहिए कि वह पयस्विनि (बछड़े सहित दूध देने वाली) गाय के साथ ही अपना सर्वस्व (तन-मन-धन) अर्पण कर गुरु को प्रसन्न करे। शय्या, आसन, रक्त, कम्बल, हारादि स्वर्ण रजत निर्मित आभूषण, पुत्र-पौत्रों तक उपयोग में आने वाली उपजाऊ भूमि, स्वर्ण-पात्र, वस्त्रादि गुरु को दक्षिणा में प्रदान करना चाहिए। गुरु जब पूर्णतः सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर विद्या प्रदान करता है तब ही वह सिद्धि तथा फलवती होती है अन्यथा नहीं। गुरु के असन्तुष्ट होने पर उससे प्राप्त विद्या केवल अभिचार के लिए ही होती है, वह मोक्ष-प्रद नहीं होती।

॥ पुनर्गुरुमाहात्म्यं तस्य सफल पूजाविधानञ्च॥

विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् बहुमानपुरःसरम्॥४४॥
सुवासिनीं कुमारीं च भोजयेन्मिष्टभोजनैः।
तस्य च्छायानुसारी स्यान्निकटे त्रिदिनं वसेत्॥४५॥

पश्चात् संचारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः।
गुरोः परतरं नास्ति त्रैलोक्ये च विशेषतः॥४६॥
गुरुणा परमेशानि देवतैक्यं विभावयेत्।
महादेवो गुरुः साक्षाच्छ्रीगुरुः सर्वदेवताः॥४७॥
गुरोश्च संनिधाने तु नान्यदेवं प्रपूजयेत्।
संनिधौ च गुरुं चैव पूजयेत् परमेश्वरि॥४८॥
गुरुपूजाफलं देवि यथावत् कथयामि ते।
गुरुपूजाविधानं च कथयामि वरानने॥४९॥

श्री गुरु को दक्षिणा प्रदान करने के पश्चात् मन्त्र ग्रहणकर्ता अतिसम्मानपूर्वक ब्राह्मणों, सुहागिन स्त्रियों तथा कुमारी कन्याओं को मिष्ठान्न युक्त स्वादिष्ट भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे। शिष्य स्वगुरु के समीप (कम से कम) तीन दिनों तक उनकी छाया की भाँति रहते (प्रत्येक क्षण उपस्थित तथा आज्ञा पालन करते) हुए निवास करे तब ही गुरु की सञ्चारिणी शक्ति शिष्य में प्रवेश करती है। तीनों लोकों में गुरु से श्रेष्ठ (तथा पूज्य एवं शिष्य का हितकारी) अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं है। शिष्य स्वगुरु तथा इष्ट देवता दोनों को एक रूप समझे। श्री गुरु को सर्वदेव रूप तथा साक्षात् महादेव (परमशिव) रूप माने। गुरु के समीप रहते हुए शिष्य किसी अन्य देवता की पूजा न करे बल्कि श्री गुरुदेव की ही पूजा करे। हे देवि! वरानने! अब मैं श्री गुरु के पूजन की विधि तथा पूजा से उपलब्ध होने वाले फलों का समुचित वर्णन करता हूँ।

आदौ भद्रासनं दद्यात् पाद्यं दद्यात्ततः परम्।
अर्घ्यं दद्याद् विशेषेण तथा चाचमनीयकम्॥५०॥
धूपं च गुग्गुलं दद्याद् दीपं दद्यात् सुशोभनम्।
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं दद्यान्मनोहरम्॥५१॥
नानाविधं फलं दद्यान्नानारससमन्वितम्।
भक्ष्यं भोज्यं विशेषेण दद्याच्चैव वरानने॥५२॥
पुष्पाणामञ्जलिं दद्याच्चन्दनेन समन्वितम्।
शय्यां दद्यान्महेशानि विचित्रां सर्वमोहिनीम्॥५३॥
खट्वां दद्यान्महेशानि विचित्राम्बरधारिणीम्।
पादसेवां गुरोः कुर्यादतियत्नेन सुन्दरि॥५४॥
गुरुवद् गुरुपुत्रेषु गुरुवत् तत्सुतादिषु।
गुरुपत्नीं विशेषेण पूजयेत् सर्वभोजनैः॥५५॥

गुरुपत्नी च युवती नाभिवाद्या च पादयोः।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता।
अत एव महेशानि न कुर्यात् पादसेवनम्॥५६॥

इति श्री बृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (दीक्षाविधिनिरूपणं)
तृतीयः पटलः॥३॥

सबसे पहले श्रीगुरु को बैठने के लिए उत्तम आसन प्रदान करे। इसके बाद क्रमशः उन्हें पाद्य, अर्घ्य तथा आचमन प्रदान करे। उनके सम्मुख (समीप) गुग्गुल का धूप तथा सुरुचिपूर्ण दीप प्रदान (प्रदर्शित) करे। नैवेद्य के रूप में चर्व्य, चोष्य, (भक्ष्य), लेह्य तथा पेय पाँचों प्रकार के भोज्य पदार्थ, अनेकों प्रकार के फल तथा षड्रस व्यञ्जन (भोजन) विशेष रूप से श्रीगुरु को प्रदान करे। अन्त में चन्दन से युक्त पुष्पों द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। श्रीगुरु को शयन (विश्राम) के लिए सुन्दर आकर्षक गद्दे, चादर, तकिये से युक्त खाट (चारपाई) शय्या के रूप में प्रदान करे। श्री गुरु के समान ही उनके पुत्रों-पौत्रों तथा पत्नी का भी पूजन तथा उन्हें विशेष रूप से भोजन प्रदान करे। गुरु पत्नी यदि युवती हो तो उसका चरण स्पर्श कर प्रणाम न करें और न ही पाद-सेवन करे। बीस वर्षों तक प्रतीक्षा करने के बाद गुण दोषों का विचार कर जैसा उचित हो वैसा करें।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद में दीक्षाविधि निरूपण नामक तृतीय पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

॥चतुर्थः पटलः॥

(पुरश्चर्या विधिनिरूपणम्)

॥पुरश्चर्या विधि वर्णनम्॥

॥श्री भैरव उवाच॥

अथ वक्ष्ये महेशानि पुरश्चर्याविधिं शिवे।
अकृत्वा तु पुरश्चर्यां मन्त्रं जपति नित्यशः॥१॥
कल्पकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।
जीवहीनो यथा देही (हः) सर्वकर्मसु न क्षमः॥२॥
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।
जपहोमौ तर्पणं चाभिषेको द्विजभोजनम्॥३॥
पञ्च कृत्यानि लोकेऽस्मिन् पुरश्चरणमुच्यते।
यद्यत्संख्यं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणं जपः॥४॥
कार्यो देवि वरारोहे सर्वेषां च विधिः स्मृतः।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात् साधकसत्तमः॥५॥
अपूर्वा च कुमारीं च भूषणैः परितोषयेत्।
मन्त्राणां कीलकं कुर्यान्मन्त्रार्चनपुरस्क्रियाम्॥६॥
ऋष्यादीनां महेशानि न्यासं कुर्यान्महेश्वरि।

श्री भैरव ने कहा–हे महेशानि अब मैं मन्त्र सिद्धि के लिए किये जाने वाले पुरश्चरण रूप कर्म विधि को कहता हूँ। हे शिवे! जो मनुष्य मन्त्र का पुरश्चरण किये बिना उसका नित्य जप करता है, उसके द्वारा इस प्रकार से करोड़ों कल्पों तक मन्त्र जप करने से भी उसे सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। जीव से रहित जैसे (मृत) शरीर कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरण क्रिया से रहित मन्त्र भी (मृतवत्) होने के कारण सिद्धि प्रदान करने में अक्षम होता है। मन्त्र का शास्त्र द्वारा निर्देशित संख्या में जप, यथोचित संख्या में हवन, तर्पण, मार्जन (अभिषेक) तथा ब्राह्मण भोजन इस पञ्च कर्म समूह का नाम ही पुरश्चरण है। जप की संख्या का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन के दशांश की संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। इसमें जप को

छोड़कर अन्य जिस-जिस (हवनादि) कर्म को करने में साधक किसी कारण वश असमर्थ होता है तो उस कर्म की संख्या का दो गुना मन्त्र जप और अधिक कर लेना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो एक ब्राह्मण को अवश्य ही भोजन-दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। हे देवि! सभी कार्यों को शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार ही करना चाहिए। इसके पश्चात् साधक को विस्तार से देवता की पूजा करनी चाहिए। पूजन के पश्चात् अविवाहित कुमारी कन्याओं को (भोजन वस्त्र तथा) आभूषणों के प्रदान द्वारा भली-भाँति प्रसन्न (सन्तुष्ट) करना चाहिए। मन्त्र-जप साधना से पहले मन्त्र का उत्कीलन, ऋष्यादि न्यासों सहित अन्य आवश्यक न्यासों को भी करना चाहिए।

॥ काली मन्त्र-स्वरूपं जप-विधानञ्च॥

शृणु वक्ष्यामि देवेशि कालीतन्त्रमनोः क्रमम्॥७॥
बिन्दुः श्रोत्रं नाद आस्यं ककारं हृदयं ततः।
वह्निं नेत्रं कीलकं तु दीर्घाकारं प्रियंवदे॥८॥
तकारं तारिणीतन्त्रे हृदयं विद्धि पार्वति।
हकारं विद्धि सर्वत्र शक्तिपक्षे सुरेश्वरि॥९॥
एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः।
ततः प्रयोगं सर्वेषां वश्यादीनां च कारयेत्॥१०॥
स्वेच्छाचारपरो मन्त्री पुरश्चरणसिद्धये।
रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत्॥११॥
एवं कृते महेशानि सिद्धमन्त्रो भविष्यति।
लभते श्रीमतीं वाणीं मन्त्रस्य लक्षजापतः॥१२॥
भावानवहितानां च क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसाम्।
चतुर्गुणो जपः प्रोक्तः सिद्धये नान्यथा भवेत्॥१३॥
महाचीनक्रमाशक्ता ब्राह्मणा अपि मोहने।
चतुर्गुणविधानेन कुर्वन्ति जपमुत्तमम्॥१४॥
जडो वा यदि मूकः स्याद् भावनावशतत्परः।
रहस्यमार्गे निरताः सर्वे वर्णा द्विजातयः॥१५॥
तदनुष्ठानविरताः सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्।
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसादाद् भविष्यति॥१६॥

हे देवि! काली तन्त्र में कहे गये भगवती काली के एकाक्षरी मन्त्र (क्रीं) के क्रमानुसार प्रत्येक वर्णों के स्वरूप को (भगवती काली के

एक-एक अङ्गो के रूप में) मैं कहता हूँ, सुनो! बिन्दु (भगवती काली का) श्रोत्र (कर्ण) है, नाद मुख है, ककार हृदय है, अग्नि (र) नेत्र है तथा हे प्रियंवदे (प्रिय बोलने वाली)! दीर्घ 'ईकार' सम्पूर्ण शरीर है। हे पार्वति! तारा के एकाक्षरी मन्त्र 'त्रीं' में 'तकार' को हृदय जाने तथा शक्ति पक्ष (शक्ति बीज-भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं') में 'हकार' को हृदय माने। इस प्रकार मन्त्रों के स्वरूप को समझकर शुद्ध सात्विक सुपाच्य भोजन देवताआ को अर्पित करने के बाद नैवेद्य रूप से स्वयं ग्रहण करने वाला अनन्य बुद्धि साधक मन्त्र (क्रीं, त्रीं अथवा ह्रीं) का एक लाख जप करे, इसके पश्चात् ही सर्वजन वशीकरणादि जो भी अभीष्ट प्रयोग कर्म साधक करना चाहता हो, अपनी इच्छानुसार उसे सम्पादित करे। स्नान-भोजन आदि अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र रूप से करता हुआ साधक काली (अथवा तारा) मन्त्र की साधना में महाशंख की माला से, पुरश्चरण के लिए नित्य जप करते हुए एक लाख जप करे। इस प्रकार करने से मन्त्र सिद्ध हो जायेगा। मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक को सुन्दर शब्दों तथा माधुर्य युक्त सर्वाकर्षक वाणी की प्राप्ति होती है। निम्नकोटि (वर्ण) के अल्प बुद्धि निर्बल चित्त (चित्त की एकाग्रता तथा इन्द्रिय संयम में कुछ असमर्थ) ऐसे साधक जो ध्यान क्रिया से रहित(सम्यक् ध्यान करने में अक्षम) हैं, उन्हें मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए अन्यथा मन्त्र की सिद्धि उनके लिए असम्भव है। महाचीन क्रम से तारा (मन्त्र) की साधना करने में असमर्थ ब्राह्मण को भी सम्मोहन की सिद्धि के लिए चार गुना (चार लाख) मन्त्र का जप करना चाहिए। साधक जड़ (अल्प बुद्धि वाला) हो अथवा मूक (गूँगा) हो यदि वह देवी के ध्यान का नित्य अभ्यास करने वाला है तथा देवी के सर्वगुह्य चक्र-पूजा में संलग्न है तो वे किसी भी वर्ण के हों, सभी ब्राह्मण माने जाते हैं। सभी साधकों का यह वर्ण एकत्व (ब्राह्मणत्व) केवल चक्र पूजन समकाल ही है। अनुष्ठान से अलग होते ही सभी साधकों की अलग-अलग (स्व) जाति ही मानी जाती है। मेरी (शिव-भैरव) की कृपा से (आदेशानुसार) ऐसा विधान विशेष रूप से कलियुग में मान्य होगा।

अस्मात् परतरो नास्ति सिद्धिमन्त्रो गणेश्वरि।
नक्तंभोजी हविष्यान्नो जपेद् विद्यां दिवा शुचिः।।१७।।
तत्कृत्वा सिद्धिमाप्नोति जपेच्च मनसा स्थिरम्।
भूमौ शयीत तत्काले त्यजेच्च युवतीं दिवा।।१८।।
प्रातर्जपं प्रकुर्वीत मुखं शुद्ध्यति तत्परम्।
हविष्यान्नं च संभुज्य ब्रह्मपुष्पं हुनेदथ।।१९।।

जपकाले महेशानि भार्यां यत्नेन वर्जयेत्।
विष्णुकल्पं वर्जयेत् तु तुलसीं च विवर्जयेत्॥२०॥
वर्जयेन्मालतीपुष्पमन्यदेवप्रपूजनम्।
हस्तप्रक्षालनं शौचमाचारं भक्तिमांश्चरेत्॥२१॥
देवीनां च तथा पुष्पं पृथक्पात्रे नियोजयेत्।
एकीभावं न कर्तव्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥२२॥
नैवेद्यादि फलैस्तोयैर्जानीयादेव एकभाक्।
हविर्नानाविधैर्गन्धैः पायसैर्मोदकादिभिः॥२३॥
एवं क्रमेण युञ्जीत दधि क्षीरं तथैव च।

हे गणेश्वरि! इससे अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है। साधक केवल रात्रि में एक बार हविष्यान्न का भोग करता हुआ स्थिर चित्त होकर पवित्र हुआ दिन के समय मन्त्र का जप करे। इस तरह जप करने से ही उसे मन्त्र-सिद्धि की प्राप्त होगी। मन्त्र-जप काल (पुरश्चरण काल) में साधक को भूमि पर शयन करना चाहिए तथा स्त्री-सङ्ग का दिन में परित्याग कर देना चाहिए। प्रातः काल जप करके ही मुख शुद्धि करनी चाहिए। रात्रि में हविष्यान्न का भोजन करके ब्रह्म-पुष्प द्वारा हवन करना चाहिए। जप काल में पत्नी-संसर्ग का भी परित्याग कर देना चाहिए। विष्णु से सम्बन्धित पूजन-प्रयोगादि तथा तुलसी का सर्वथा प्रयोग नहीं करना चाहिए। जपकाल में हाथ (पैर) धो लेना ही शुद्धि करण (शारीरिक शुद्धि) माना जाता है। इस साधना में मात्र भक्ति को प्रधानता है, अतः सभी साधनात्मक क्रियायें भक्तिपूर्वक करनी चाहिए। काली, तारा आदि देवियों के पृथक-पृथक पूजन हेतु उनके पुष्पों(तथा अन्य उपचारों) को पृथक-पृथक पात्र में रखना चाहिए। अपने कल्याण के इच्छुक साधक को इन उपचारों को एक ही पात्र में मिलाकर नहीं रखना चाहिए। नैवेद्य रूप फल-जलादि भी सभी के लिए एक जैसा जानना चाहिए। अनेकों प्रकार के सुगन्धित पके हुए हविष्यान्न, पायस (खीर), लड्डू, दही, दूध आदि नैवेद्य क्रम से अलग-अलग पात्रों में रखना चाहिए।

॥ माला-निरूपणम्॥

मालानां च महेशानि नियमं शृणु भैरवि॥२४॥
अकस्मादीहिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया।
पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वकामदा॥२५॥

युद्धे मृतस्य देवेशि चाण्डालस्यास्थिकेन च।
मस्तकस्य विशेषेण महाशङ्खः प्रकीर्तितः॥२६॥
अनया मालया देवि तारामन्त्रः प्रसिद्ध्यति।
तत्संस्कारं वरारोहे शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥२७॥
सूत्रेण ग्रथिता माला विप्रस्त्रीसूत्रनिर्मिता।
पट्टसूत्रैः कृता माला जगद्वश्याय कल्पते॥२८॥
स्वर्णसूत्रकृता माला साक्षाद्वैश्रवणो भवेत्।
मुखे मुखं तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत्॥२९॥
गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिर्भवेत्।
मातृकावर्णसंमिश्रेर्ग्रन्थिं कुर्याद् विधानतः॥३०॥
तत्सजातीय मेकाक्षं मेरुत्वेन प्रकल्पयेत्।
एवं क्रमेण ग्रथिता माला सर्वत्र शोभना॥३१॥

हे महेशानि! अब माला के नियम (निर्माण-विधि आदि) को सुनो। महाशंख माला द्वारा (तारा) मन्त्र जप करने से साधक को अकस्मात (सहज) ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। इसके लिए पचास मणियों से निर्मित माला सभी कामनाओं को पूरी करने वाली होती है। युद्ध में मरे हुए व्यक्ति अथवा मृत चाण्डाल मनुष्य के मस्तक के एक विशेष भाग की अस्थियों द्वारा निर्मित मणि से बनी हुई माला महाशंख माला कही जाती है। इस माला के द्वारा जपने से ही तारा के मन्त्रों की सिद्धि होती है। हे प्रिये! वरारोहे! अब उस माला के संस्कार (निर्माण आदि) की प्रक्रिया को एकाग्र होकर सुनो। किसी ब्राह्मणी स्त्री द्वारा निर्मित कपास-सूत्र द्वारा माला बनानी चाहिए। रेशम (अथवा कपास) सूत्र (धागे) से ग्रथित मालाजगद्वशी करण के लिए प्रयोग करनी चाहिए। स्वर्ण-सूत्र रचित माला से जप करने वाला साधक साक्षात् कुबेर के तुल्य हो जाता है। मणियों को सूत्र में ग्रन्थित करते समय उनके मुख परस्पर सम्मुख होने चाहिए, यही स्थिति उनके पुच्छ (पृष्ठ) भाग की भी होनी चाहिए। माला को गो-पुच्छ अथवा सर्पाकार (प्रारम्भ में मोटी तथा क्रमशः पतली होती हुई अन्त में सबसे पतली) होनी चाहिए। मणियों को धागे में पिरोते समय प्रत्येक मणि के साथ क्रमशः एक-एक मातृका वर्ण का उच्चारण करते रहना चाहिए। फिर विधि पूर्वक ग्रन्थि (गाँठ) लगानी चाहिए। जिस मणि की माला हो उसी के सजातीय मणि द्वारा सुमेरु निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार विधिवत् दीर्घ से लघु होते मणियों द्वारा क्रमशः बनी हुई माला श्रेष्ठ होती है।

एवं सा ग्रथिता माला मन्त्रसिद्धिप्रदायिनी।
एकैकं मणिमादाय ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्दिशेत्।।३२।।
अनुलोमविलोमेन मातृकान्तर्गतं जपेत्।
तेन सर्वगुणोपेता जायते सिद्धिभागिति।।३३।।
कुल्लुकां च ततो नत्वा मालापूजां विधाय च।
गृहणीयाद् दक्षिणेनाथ नच वामेन संस्पृशेत्।।३४।।
नाभितश्च शिरोदेशे कुल्लुकां परिकल्पयेत्।
पट्टसूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरी सदा।।३५।।
अभावे चापि शङ्खस्य स्फाटिक्या मालया जपेत्।
मालाविशेषं देवेशि भैरवि प्राणवल्लभे।।३६।।

एक-एक मणि को ग्रहण करते हुए अनुलोम विलोम मातृका वर्णों के मध्य मंत्रबीज को जपते हुए ब्रह्म ग्रन्थि लगानी चाहिए। इस प्रकार ग्रन्थित माला सर्वगुण सम्पन्न होती है तथा साधक को सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वाली होती है। इसके बाद कुल्लुका का जप करके माला का पूजन कर उसे दक्षिण हाथ में ग्रहण करे। वाम हस्त से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिए अर्थात् बांये हाथ में लेकर जप नहीं करना चाहिए। नाभि से लेकर शिर स्थान तक कुल्लुका का ध्यान करके (शिर में कुल्लुका का न्यास करके) मन्त्र जप करना चाहिए। रेशमी धागे से निर्मित माला देवी के लिए अति-प्रीतिकारक होती है। हे देवेशि! भैरवि! प्राणवल्लभे! महाशंख की माला के अभाव में स्फटिक की माला से जप करना चाहिए। यह मैंने तुमसे माला की विशेषता का वर्णन किया।

यया जप्तेन देवेशि सिद्धो भवति तत्क्षणात्।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये नास्ति सुन्दरि।।३७।।
कृपया परमेशानि तव स्नेहात् प्रकाश्यते।
परमं शृणु चार्वङ्गि शृणु पार्वति तत्त्वतः।।३८।।
येन विज्ञानमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति तत्क्षणात्।
अनुलोमविलोमेन मन्त्रमा(न्तविर्भे?त्रार्णभे)दतः।।३९।।
मन्त्रेणान्तरितान् वर्णान् वर्णेनान्तरितं मनुम्।
कुर्यान्मन्त्रमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रदीपनीम्।।४०।।
चरमार्णं मेरुरूपं न लङ्घयेच्च सर्वदा।
एतत्परं रहस्यं च मयोक्तं ते यशस्विनि।।४१।।
त्वया गुप्ततरं कार्यं नाख्येयं यस्य कस्यचित्।

इस विद्या (जप-विधि ज्ञान) के समान त्रिलोकी में भी अन्य कोई विद्या नहीं है। इस प्रकार से मन्त्र जप करने पर साधक शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। हे चार्वङ्गि (सुन्दर अङ्गों वाली) परमेशानि! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही मैं इसे तत्वतः (समुचित रूप से)प्रकाशित कर रहा हूँ, सुनो! इसके क्रियात्मक ज्ञान मात्र से ही तत्क्षण मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। पहले अनुलोम विधि से (अ से क्ष तक) फिर विलोम विधि से (क्ष से अ तक) एक-एक वर्ण को मन्त्र से सम्पुटित करके जप करे। तत्पश्चात् पुनः अनुलोम तथा विलोम विधि से एक-एक मातृका वर्ण द्वारा मन्त्र को सम्पुटित करके माला द्वारा जप करे। इस प्रकार मन्त्रमयी की हुई माला सभी मन्त्रों को प्रदीप्त (जागृत-सिद्धि प्रदान के सामर्थ्य युक्त) करने में सक्षम होती है। मातृका का अन्तिम वर्ण 'क्ष' मेरु रूप होता है, इसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए अर्थात् मेरु वर्ण क्षकार को सम्पुटित करके अथवा इसके द्वारा मन्त्र को सम्पुटित कर जप नहीं करना चाहिए। हे यशस्विनी मैंने तुमसे यह रहस्य की बात कही है। तुम्हें इसे भली-भाँति गुप्त ही रखनी चाहिए। हर किसी के सामने इसे प्रकट नहीं करना चाहिए।

।। मालायां प्राण-प्रतिष्ठा विधिः।।

शुभ काले शुभे लग्ने शुभर्क्षे च शुभे तिथौ।।४२।।
प्रतिष्ठां कारयेद्विद्वान स्वयं वा गुरुणापि वा।
अश्वत्थपत्रनवकं पद्माकारेण पातयेत्।।४३।।
तत्र संस्थापयेन्मन्त्री मातृकामन्त्रमुच्चरेत्।
वह्निं संस्कृत्य देवेशि हुनेत् सुरगणार्चिते।।४४।।
हुतशेषं प्रतिहुतौ प्रद्द्याद् देवताधिया।
तत्र देवीं समभ्यर्च्य ग्रहणेऽपि च पूजयेत्।।४५।।
अनुलोविलोमेन मातृकार्णेन मन्त्रयेत्।
मेरुं प्रेतेन संमन्त्र्य तां नयेद् देवतात्मताम्।।४६।।
एवं सर्वगुणोपेता जायते सर्वसिद्धये।
स्मृतिसूत्रं वीतिहोत्रमावृत्तित्रितयं ततः।।४७।।
दिवानिशाकरौ प्रोक्तौ तस्मात्तेजस्त्रयी शुभा।
गोप्तव्या ह्यनिशं सूत्रे जपमालेप्सिताप्तये।।४८।।
मातृमेयप्रमाणेन बिन्दुनादकलात्मिकाम्।
उच्चरेदनुसंस्कृत्य कुण्डलीयोगतः प्रिये।।४९।।

तेन विद्या लभेत् सिद्धिं नात्र कार्या विचारणा।
कण्ठदेशे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।।५०।।
सौषुम्णाध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति हि।
ईदृश्या च स्रजा यस्तु कुरुते जपमुत्तमम्।।५१।।
अपमृत्युकलिभ्यां च मुच्यते नात्र संशयः।

शुभ लग्न, नक्षत्र, तिथि, मासादि युक्त शुभ काल का निर्णय कर विद्वान साधक स्वयं अथवा स्वगुरु द्वारा माला की प्राण-प्रतिष्ठा करे (कराये)। पीपल के नव (९) पत्रों को कमलदल की भाँति बिछाकर उस पर मातृकावर्णों का उच्चारण करते हुए साधक माला को रखे। फिर कुण्ड अथवा वेदी पर अग्नि स्थापित कर उसका संस्कार करके मातृका के एक-एक वर्णों से घृत द्वारा हवन करे तथा प्रत्येक बार हुत-शेष (स्रुवा से टपकने वाले) घृत को देवता बुद्धि से माला पर अर्पण करे। फिर उस माला पर देवी का पूजन करके नवग्रहों का भी पूजन करे। इसके बाद प्रत्येक मणि पर अथवा पूरी माला पर अनुलोम-विलोम रूप से मातृका वर्णों का जप करे। मेरु को प्रेत मन्त्र 'ह्सौः' द्वारा अभिमन्त्रित करे (उस पर १०८ बार जप करे)। इस प्रकार माला को देवता स्वरूपता प्रदान करे। इस प्रकार सर्वगुण सम्पन्न माला से जप करने से अवश्य ही सिद्धि की उपलब्धि होती है। माला निर्मित करते समय पहले सूत्र को त्रिगुणित करे फिर पुनः उसे त्रिगुणित करे, इस प्रकार नव गुणित (9 सूत्र युक्त) माला का सूत्र बनाना चाहिए। इस प्रकार की त्रिगुणित माला में अग्नि, सूर्य, तथा चन्द्र रूप तीनों तेजों का वास होने से माला त्रितेज युक्त शुभ कही जाती है। सिद्धि की इच्छा वाले साधक को सदैव माला को गुप्त रखना चाहिए। माला को पुनः कुण्डलिनी योग द्वारा संस्कारित करना चाहिए। इसके लिए मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर सहस्रार में स्थित कर (स्थित रूप से ध्यान करते हुए) माला पर अनुस्वार युक्त मातृका वर्णों का (सुषुम्ना मार्ग द्वारा उच्चारित होता हुआ अनुभव करते हुए) पचास बार जप करना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध माला द्वारा जप करने से साधक को विद्या (मन्त्र) की सिद्धि निश्चित रूप से प्राप्त होती है, इस विषय में किसी भी प्रकार के संशय की संभावना नाममात्र भी नहीं करनी चाहिए। कण्ठ-स्थान से स्थित (वहाँ से उच्चारित) मन्त्र केवल वर्ण रूप ही होते हैं, परन्तु सुषुम्ना मार्ग द्वारा उच्चारित होने पर यही मन्त्र वर्ण देवता स्वरूप होकर सिद्धि प्रदान करने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से संस्कारित माला द्वारा जो साधक जप करता है, वह इस कलियुग में अकाल मृत्यु से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

।। कर मालायां अङ्गुलीनां निर्णयम्।।

अथ वक्ष्ये महेशानि अङ्गुलीनां च निर्णयम्।।५२।।
पर्वद्वयमनामायाः परिवर्तेन वै क्रमात्।
पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्जन्येकं समाचरेत्।।५३।।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वमन्त्रप्रदीपनी।
व्यग्रचित्तेन यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।।५४।।
तत्सर्वं निष्फलं याति इत्याहः परमेश्वरि।
पर्वद्वयं हि तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति।।५५।।
सिद्धये साधको जप्यान्मेरुं नत्वा पुनः पुनः।
तर्जन्यग्रं तथा मध्यं यो जपेत् सोऽपि पापकृत।।५६।।
नित्यं जपं करे कुर्यान्नतु काम्यं कदाचन।

हे महेशानि! अब मैं करमाला द्वारा जप करते समय किस प्रकार अङ्गुलियों का प्रयोग किया जाता है, इसके विषय में कहूँगा। अनामिका के दूसरे (मध्य) पर्व से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्त क्रम से जपते हुए (कनिष्ठा तथा) मध्यमा के तीनों पर्वों तथा तर्जनी के एक पर्व (मूल पर्व) तक जप शक्ति माला रूप जप कहा जाता है, इस प्रकार के जप से सभी मन्त्र तेजस्वी हो जाते हैं।

[सिद्धान्त सार के अनुसार अनामिका के मूल से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्त रुप से मध्यमा के मूल (आठ पर्वों) तक अथवा तर्जनी के मूल (नव पर्वों) तक जप शक्ति मन्त्रों में करना चाहिए।]

जप करते समय यदि चित्त विक्षिप्त (व्याकुल अथवा चञ्चल) होता है तथा मेरु का उल्लंघन किया जाता है, तो हे परमेश्वरि! इस प्रकार का जप कर्म निष्फल होता है। हे पार्वति! तर्जनी के ऊपर के दो पर्वों को सुमेरु के रूप में जानना चाहिए। जप करते समय सिद्धि के इच्छुक साधक को हर बार सुमेरु पर पहुँचने पर प्रणाम करना चाहिए। तर्जनी के अग्रभाग तथा मध्य पर्व पर जो साधक जप करता है, वह पाप का भागी होता है। करमाला द्वारा (किसी कारणवश अक्षमाला की अनुपस्थिति में) जप केवल नित्य-जप कर्म में ही करना चाहिए। काम्य-कर्म में करमाला द्वारा जप नहीं करना चाहिए।

।। कुल्लुका ज्ञानस्यानिवार्यताम्।।

कुल्लुकां च ततो नत्वा मालापूजां विधाय च।।५७।।
श्रीगु(रु?रो)श्चर(णं?णौ)ध्यात्वा मालाया मन्त्रमुच्चरेत्।

कुल्लुकां च न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः॥५८॥
पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्।
तारिणीचण्डिकायाश्च मन्त्रः कुल्लुकवर्जितः॥५९॥
मतिमान् यो द्विजातीनां नोपादेयः कथञ्चन।
कुल्लुकां शिरसि धृत्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥६०॥
नान्यो विचारः सर्वत्र विरूपाक्षस्य संमतः।
कुल्लुके वर्जिते पुंसां यद्येनोपस्थितिर्भवेत्॥६१॥
मम पूजा सदा व्यर्था मम यज्ञस्तथैव च।
तारामन्त्रस्य जानीयात् त्र्यक्षरं मन्त्रमुत्तमम्॥६२॥
न जानाति च यो मूढः कुल्लुकां तारिणीं जपेत्।
यावज्जीवं महेशानि न सिद्ध्यति कदाचन॥६३॥
महामन्त्रं परित्यज्य पूजयेद्यस्तु तारिणीम्।
पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्॥६४॥

मन्त्र जप करने से पहले कुल्लुका (मन्त्र) का शिर में न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् माला की सविधि पूजा करके श्री गुरुदेव के चरणों का ध्यान (एवं प्रणाम) करके माला मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। जो साधक कुल्लुका का बिना ज्ञान प्राप्त करे (कुल्लुका को बिना जपे) तारा के महामन्त्र का जप करता है, उसकी या तो मृत्यु हो जाती है अथवा वह प्रलापी पागल हो जाता है। तारा, काली आदि मन्त्रों को, बिना कुल्लुका का जप किए, जो साधक जप करता है, वह बुद्धिमान होते हुए भी द्विजातियों में गणना के योग्य (ब्राह्मण कहलाने योग्य) नहीं है। मन्त्र जप से पूर्व कुल्लुका का शिर में न्यास करने वाले साधक को सभी यज्ञों (सत्कर्मों) का फल प्राप्त होता है। ऐसा विरूपाक्ष शिव का मत है, इस विषय में इसके विपरीत किसी अन्य विचार की आवश्यकता नहीं है। यदि साधक कुल्लुका के ज्ञान से रहित (जपादि के समय उसका प्रयोग न करने वाला) है, तो उसके द्वारा की गई मेरी सारी पूजा तथा सभी यज्ञ (हवन, तर्पण, दानादि) व्यर्थ हो जाते हैं। तारा मन्त्र के तीन बीजाक्षरों (ह्रीं स्त्रीं हूँ) वाले श्रेष्ठ मन्त्र को ही कुल्लुका मन्त्र के रूप में जानना चाहिए। जो इस कुल्लुका को बिना जाने तारा-मन्त्रों का जप करता है। हे महेशानि! जीवन भर (मन्त्र जपने पर भी) उसके मन्त्र की सिद्धि नहीं होती। इस कुल्लुका रूप महामंत्र का परित्याग कर जो तारा की पूजा (जपादि) करता है, उसकी अवश्य ही शीघ्र मृत्यु हो जाती है अथवा वह अनर्गल प्रलाप करने वाला पागल सा हो जाता है।

।। कुल्लुका निरूपणं विद्या जपं तदन्तरकार्यवर्णनञ्च।।

कुल्लुका नाम सा देवी अनुभावस्वरूपिणी।
सवामकर्त्रिहस्ता च चतुर्बाहुसमन्विता।।६५।।
नीलोत्पलबपुः श्यामा सर्वालङ्कारभूषिता।
लिखेत् तत् त्र्यक्षरं मन्त्रं हरिद्राचन्दनेन वा।।६६।।
यावज्जीवं तु मन्त्रार्णं शिखायां धारयेत् सदा।
महतीविद्यया प्राप्तं जपेन्मन्त्रं त्रिलक्षकम्।।६७।।
लक्षमेकं जपेद्विद्वां हविष्याशी जितेन्द्रियः।
उ(च्छ?च्च)स्थानेषु देवेशि तदासनस्य संस्थितिः।।६८।।
पूर्वोक्तं पूजनं कृत्वा विप्राराधनतत्परः।
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत्।।६९।।
जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत् तद्दशांशतः।
तर्पणं चाभिषेकं च तत्तद्दशांशतो मनोः।।७०।।
प्रत्यहं भोजयेद् विप्रान् न्यूनाधिक्यप्रशान्तये।
अथैवं सर्वसंपूर्णं होमादिकमथाचरेत्।।७१।।

कुल्लुका नाम वाली जो देवी है वह मन्त्र के ऐश्वर्य शक्ति (सामर्थ्य शक्ति) की संकेत स्वरूपिणी है अथवा मन्त्र में निहित शक्ति स्वरूपा है। इस देवी का शरीर नीलकमलवत् श्यामवर्ण है। सभी आभूषणों से यथोचित आभूषित यह चार भुजाओं वाली है तथा वाम हाथ में कर्त्तरी लिए हुए है। हल्दी तथा चन्दन के मिश्रण से इसके त्र्यक्षरी मन्त्र को लिखकर जब तक तारा की साधना करने वाला साधक जीवित रहे उसे अपने शिर पर धारण करना चाहिए। अत्यधिक ज्ञान प्राप्ति के लिए इस विद्या का तीन लाख जप करना चाहिए।

ब्राह्मणों की सेवा (पूजा) में संलग्न रहते हुए साधक पूर्वोक्त रूप से कुल्लुका का शिर पर न्यास करके तारा विद्या (मन्त्र) का एक लाख जप करे। इसके पश्चात् दशांश क्रम से हवनादि अन्य कर्म करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो साधक प्रतिदिन जितना जप करे उसी दिन हवन तर्पण आदि क्रिया तद्दशांश क्रम से सम्पन्न कर ले। ब्राह्मणों को भी प्रतिदिन मार्जन की दशांश संख्या में अथवा सामर्थ्यानुसार एक अथवा अधिक संख्या में, कर्म में न्यूनता अथवा आधिक्य रूप आये दोषों की शान्ति के लिए भोजन प्रदान करे। जप संख्या एक लाख पूरी हो जाने पर भी इसी भाँति हवनादि कर्म करे।

रात्रौ बलिःसम(दाय?र्प्यस्तु) सर्वसिद्धिमभीप्सुभिः।
बिना दीपकमन्त्रेण अग्रे शून्यं न चार्चयेत्॥७२॥
विनानया महादेवि विना रुधिरवेदनैः।
त्रिवर्णमय्या दीपन्या मन्त्रिणी सा च कथ्यते॥७३॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटिजपेनापि कथं सिद्धिर्वरानने॥७४॥
गुप्तजीवाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।
मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः सदा॥७५॥
मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् स्वरूपप्रथ(मं?नं)भवेत्।
शते सहस्रे लक्षे वा कोटिजापे न तत्फलम्॥७६॥

हवन के पश्चात् सभी सिद्धियों की कामना वाले साधक को रात्रि में बलि प्रदान करना चाहिए। बिना दीपनी मन्त्र का जप किए देवता के आगे तथा खाली भूमि पर पूजन करके बलि नहीं देना चाहिए। बिना अन्नमय भोज्य पदार्थ तथा उसे कुङ्कुम आदि के द्वारा बिना रक्तिम किये (अथवा बिना रक्त के) भी बलि नहीं देना चाहिए। त्रिवर्ण मयी दीपनी मंत्र जिसे मन्त्रिणी कहा जाता है, इसके द्वारा बलि स्थान पर दीपक प्रदान करना चाहिए। जो साधक मन्त्र के अर्थ को, मन्त्र चैतन्य करने की विधि को तथा योनि मुद्रा को नहीं जानता है, सैकड़ों करोड़ मन्त्र का जप करने पर भी उसे अभीष्ट-सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। सभी मन्त्र प्रारम्भ में गुप्त (सुप्त) प्राण वाले चेतना शक्ति रहित (फल प्रदान करने की ऊर्जा से हीन) होते हैं। जब कुण्डलिनी योग द्वारा जप करके इन्हें चैतन्य कर लिया जाता है तब ही जप करने पर ये मन्त्र साधक को फल प्रदान करने में समर्थ होते हैं। चैतन्य मन्त्र का उच्चारण (जप) करने पर उसका जैसा प्रभाव प्रकट होता है वैसा प्रभाव सामान्य रूप से चैतन्यता रहित मन्त्र को सैकड़ों, हजारों, लाखों यहाँ तक कि करोड़ों बार जपने पर भी प्रकट नहीं होता और न ही वे चैतन्य मन्त्रों की भाँति फल देने में भी समर्थ होते हैं।

॥ चैतन्य मन्त्र माहात्म्यं तर्पणाभिषेकादि निरूपणञ्च॥

हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्वावयवभेदनम्।
आनन्दाश्रूणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरि॥७७॥
गदग्दोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः।
सकृदुच्चारिते चैवं मन्त्रे चैतन्यसंयुते॥७८॥

दृश्यते च महादेवि पारंपर्य तदुच्यते।
एवं जपं यथा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः।।७९।।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पणम्।
कालागुरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः ।।८०।।
तर्प(येत्) तां परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते।
जले चावाह्य विधिवत् पाद्याद्यैरुदकात्मकैः।।८१।।
संपूज्य विधिवद् देवीं परिवारान् सकृत्सकृत्।
संतर्प्य विधिवद्भक्त्या दशांशं तर्पयेत ततः।।८२।।
पुनरेकैकं संतर्प्य परिवारांस्तथा पुनः।
तारिणीमभिषिञ्चामि नमो मूर्ध्नि विनिःक्षिपेत्।।८३।।
अभिषेकोऽयमाख्यातः सर्वपापनिकृन्तनः।
अभिषेकदशांशेन साधकानां च भोजनम्।।८४।।
सुवासिनीं कुमारीं च भोजयेत् तदनन्तरम्।
क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।।८५।।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् बहुमानपुरःसरम्।
होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः।।८६।।
मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परम्।
स्वाहान्ते तर्पणं त्वेवमभिषेकं शृणुष्व मे।।८७।।
मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य सिञ्चामीति पदं ततः।
तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं च समाचरेत्।।८८।।
इत्येवं सिद्धमन्त्रः सन् सर्वान् कामांश्च साधयेत्।
विल्वपत्रं महेशानि दशांशं जुहुयात् ततः।।८९।।
अथ चैवं तिलाज्येन होमयेद्वाथ सुन्दरि।
सर्वस्वं गुरवे दद्यात् तदर्धं वा तदर्धतः।।९०।।
अज्ञात्वा कुल्लुकां देवीमजप्त्वा गुरुपादुकाम्।
न दत्त्वा दक्षिणां सम्यगकृत्वा चक्रपूजनम्।
योऽस्मिस्तन्त्रे प्रवर्तेत तत्स्वं पीडयते ध्रुवम्।।९१।।

जिस समय एकाग्रचित्त से देवता के ध्यान सहित साधक चैतन्य मन्त्र का जप करता है, उस समय (कुछ काल के निरन्तर अभ्यास के पश्चात्) कुण्डलिनी जागरण सहित सभी चक्रों तथा रूद्र, ब्रह्म एवं विष्णु ग्रन्थि भेद सहित हृदय ग्रन्थि का भेदन होने पर उसके सारे संशयों एवं अज्ञान का

विनाश (सा) हो जाता है। उसके सारे कर्म संस्कार के बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। सारा शरीर मन्त्र की ऊर्जा तथा हर्ष से व्याप्त हो जाता है, शरीर में रोमाञ्च तथा नेत्रों में आनन्द से अश्रु छलकने लगता है। उसकी वाणी गद्गद (अस्पष्ट सी) हो जाती है। ये लक्षण अचानक ही किसी दिन अवश्य ही प्रकट हो जाते हैं, फिर तो कभी भी एक बार भी चैतन्य मन्त्र का उच्चारण करते ही उस साधक की ऐसी ही अवस्था हो जाती है। हे महादेवि! चैतन्ययुक्त मन्त्र का बार-बार निरन्तर अभ्यास करने वाले साधक की ऐसी ही अवस्था की प्राप्ति देखी जाती है। इस प्रकार चैतन्य मन्त्र का अभीष्ट संख्या में जप करके सफेद कमल को घी में भिगोकर जप के दशांश संख्या में हवन तथा हवन की दशांश संख्या में तर्पण साधक को करना चाहिए। काला अगुरु तथा और भी सुगन्धित पदार्थों के रस से युक्त शुद्ध सुगन्धित जल में जिस प्रकार उस परा देवी का तर्पण करना चाहिए उसे मैं कहता हूँ। जल में देवी का आवाहन करके जलरूप पाद्यादि उपचारों द्वारा देवी का पूजन करके परिवार देवताओं का एक-एक बार तर्पण करे। फिर दशांश की संख्या में देवी का तर्पण करके पुनः परिवार देवताओं का भी एक-एक बार तर्पण करना चाहिए। इसके बाद साधक स्वयं को देवीरूप अनुभव करता हुआ 'तारिणीं अभिषिञ्चामि नमः' बोलते हुए अपने सिर का सिञ्चन (मार्जन) करे। यह अभिषेक संज्ञक क्रिया सभी पापों का विनाश करने वाली है। इस अभिषेक के दशांश की संख्या में देवी के साध कों (ब्राह्मणों) को भोजन कराना चाहिए । इसके पश्चात् सौभाग्यवती स्त्रियों तथा कुमारी कन्याओं को भी भोजन के रूप में घृतयुक्त खीर आदि मिष्ठान प्रदान करना चाहिए जिससे साधक को मन्त्रसिद्धि की प्राप्ति होती है। ससम्मान स्वगुरु को भी सामर्थ्यानुसार यथेष्ट दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। होम के समय साधक को मन्त्र के पश्चात् 'स्वाहा' तथा तर्पण के समय द्वितीयान्त देवता नाम सहित 'तर्पयामि स्वाहा' (अमुकं तर्पयामि स्वाहा) का प्रयोग करना चाहिए। न्यास तथा पूजन के समय 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए। अभिषेक (मार्जन) में मन्त्र के पश्चात् देवता का नाम तत्पश्चात् 'सिञ्चामि' (अमुकं सिञ्चामि) बोलना चाहिए।

इस प्रकार पुरश्चरण क्रिया के बाद मन्त्र के सिद्ध हो जाने के बाद सभी अभीष्ट काम्य कर्मों को करना चाहिए। सकाम कर्मों में भी यथेष्ट जप के पश्चात् उसके दशांश की संख्या में घृत-युक्त बेल के पत्तों द्वारा अथवा घृत मिश्रित तिल द्वारा हवन करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो साधक यथाविधि तर्पण, मार्जन तथा ब्राह्मण भोजन भी कराये जिससे काम्य कर्म की सिद्धि शीघ्र होती है। (मन्त्र दीक्षा के पश्चात्) साधक को स्वगुरु को अपनी

समस्त सम्पत्ति अथवा आधा अथवा एक चौथाई भाग गुरु-दक्षिणा के रूप में अर्पित करना चाहिए। इसी प्रकार किसी काम्य कर्म की समाप्ति पर भी स्वगुरु को यथोचित दक्षिणा देनी चाहिए।

जो साधक कुल्लुका के ज्ञान से रहित है, गुरु पादुका मन्त्र का जप नहीं करता है, गुरु को यथाविधि दक्षिणा प्रदान नहीं करता तथा चक्र-पूजन भी नहीं करता वह यदि इस साधना मार्ग का अनुसरण करता है तो निश्चित ही स्वयं को पीड़ित करने का कार्य करता है।

।। परदाराभिगमन विषये जिज्ञासा।।

श्रीदेव्युवाच

कथितं परमेशान परदारविधौ मयि।
न पापं जायते सुभ्रु परदारविधौ मम।।९२।।
परस्य दारान् संस्पृश्य जप्यते यदि साधकैः।
तदैव महती सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा।।९३।।
कालीकल्पप्रकाशे च कथितं यन्महेश्वर।
अत्रैव सम्यगाख्यानं कुरुष्व हृदयप्रिय।।९४।।

हे समस्त सृष्टि के परम शासक प्रभु! कालीकल्प के प्रकटीकरण (वर्णन) के समय परदार विधि के आख्यान में आपने मुझसे कहा था कि सुभ्रु (मनोहर स्वरूप वाली)! परदाराभिगमन रूप कर्म से मुझे कोई पाप नहीं लगता। पर स्त्री का स्पर्श करते हुए यदि साधकों द्वारा मन्त्र जप किया जाता है तो उसे महान सिद्धि की प्राप्ति होती है। अतः हे मेरे प्राणप्रिय! इस विषय को मुझसे आप स्पष्ट रूप से कहें कि ऐसा क्यों है?

।। परदाराभिगमन-व्यवस्था।।

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि महाभागे आपदुद्धारकारिणि।
अकथ्यं यन्महादेवि तव स्नेहात् प्रकाश्यते।।९५।।
परदारविधौ वेदनिन्दावादः प्रवर्तते।
तासां सङ्गान्महेशानि तामिस्रं नरकं भवेत्।।९६।।
वेदार्थमिति विज्ञाय कथं कुर्याच्च साधकः।
परदारान् नैव गच्छेद्, गच्छञ्जपेच्चेति वेदः।।९७।।
श्रुतिद्वयविरोधित्वाद्गच्छेरन् परयोषितः।
तस्माच्छृणु वरारोहे वेदार्थं कथयामि ते।।९८।।

स्वभक्तों की विपत्तियों से रक्षा करने वाली हे महादेवि! सुनो, जो वर्णन के अयोग्य होने के कारण कहने योग्य नहीं है, उस विषय को तुम्हारे प्रति अपने प्रेम के कारण मैं कहता हूँ। जो मनुष्य वेदों की निन्दा करने वाले हैं उन्हीं के द्वारा ही यह पर स्त्री सम्बन्ध की क्रिया प्रचलित की हुई है। 'जो मनुष्य पर-स्त्रियों का सङ्ग करता है, वह तामिस्र नरक का भागी होता है' वेदों में कहे गये इस अर्थ को जानने वाला भला कोई साधक कैसे पर स्त्री सम्बन्ध कर सकता है। 'पर स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए (उससे सम्बन्ध नहीं करना चाहिए)' तथा 'पर स्त्री से सम्बन्ध करते हुए जप करना चाहिए' इस प्रकार पर स्त्री सम्बन्ध के विषय वेद की दो परस्पर विरुद्ध श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। अतः वेद (श्रुतियों) का वास्तविक अर्थ (भाव) क्या है, हे वरारोहे! तुमसे कहता हूँ, सुनो!

।। वेदोत्पत्ति-कर्तादि विषये जिज्ञासा।।

श्रीदेव्युवाच

को वेदः कुत आयाति को वा तस्य प्रकाशकः।
कः कर्ता तस्य वेदस्य तत्सर्वं कथयस्व मे।।९९।।

हे देव! वेद किसे कहते हैं? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है, इसको प्रकट करने वाला तथा इसकी रचना करने वाला कौन है, ये सभी बातें आप मुझे बतायें।

श्री भैरव उवाच

एको वेदश्चतुर्धाभूद् यजुःसाम-ऋगादयः।
वेदो ब्रह्मेति साक्षाद्वै जानेऽहं नगनन्दिनि।।१००।।
स्वयं प्रवर्तते वेदस्तत्कर्ता नास्ति सुन्दरि।
स्वयंभूरीशो भगवान् वेदो गीतज्ञत(या?था)पुरा।।१०१।।
शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारोऽस्य न कारकाः।
प्रकाशका भवन्त्येते कृष्णाद्यास्त्रिदिवौकसः।।१०२।।
वैदिकप्रतिपाद्यश्च अर्थो धर्मः प्रकीर्तितः।
विपरीतं महेशानि अधर्मो भवति प्रिये।।१०३।।
परदारागमं वेदे तन्निषिद्धं सुरेश्वरि।
यद्धि वैधेतरं देवि तन्निषिद्धं महेश्वरि।।१०४।।

हे पर्वतराज हिमालय की पुत्रि! वेद वास्तव में एक ही है। उसी एक ही वेद के ऋग्वेद, यजुःवेद, सामवेद तथा अथर्ववेद नाम से चार भाग हो गये हैं। वेद साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है, ऐसा मैं जानता हूँ। वेद का प्रचलन (प्राकट्य) स्वयं ही होता है। हे सुन्दरि! इस वेद का रचनाकार कोई भी (यहाँ तक कि ईश्वर भी) नहीं होता है। अनादि अज निर्गुण निराकार ब्रह्म

के स्वयं ही सगुण साकार रूप हुए परमात्मा के मुख से स्वाभाविक रूप से निःश्वासवत् वेद का प्राकट्य प्राचीन काल (सृष्टि के आदि) में होता है। इसके पश्चात् होने वाले शिव से लेकर ऋषि पर्यन्त सभी इसके केवल स्मरण कर्ता होते हैं न कि रचनाकार। कृष्ण द्वैपायन (व्यास) तथा देवतागण भी वेद के प्रकाशक ही होते हैं। वेदों में जिन अर्थों का प्रतिपादन (कर्म-विधियों तथा निर्देशों का उल्लेख) किया गया है वे ही वास्तविक धर्म कहे जाते हैं। इसके विपरीत व्यवहार करना अधर्म कहा जाता है। वेद में परस्त्रीगमन का निषेध किया गया है। जो निषिद्ध कर्म हैं वही कुछ विशेष स्थितियों में वैध (उचित) भी हो जाता है।

परस्त्रियं महेशानि मनसा भावयञ्जपेत्।
तदैव सर्वसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥१०५॥
इति सिद्धान्तविद्भिश्च ज्ञेयं तन्त्रोपदेशिकम्।
महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत्फलम्॥१०६॥
तत्फलं नास्ति देवेशि त्रैलोक्ये सुरवन्दिते।
यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः॥१०७॥
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव च।
भ्रान्तिरत्र न कर्तव्या सिद्धिर्भवति निश्चितम्॥१०८॥
तस्मादनेन देवेशि पापं नास्ति महेश्वरि।
तस्मात् कुर्यात् साधकेन्द्रः परदारगमं शुभे॥१०९॥
अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेश्च लक्षणम्।
मातृकापुटितं कृत्वा स्वमन्त्रं प्रजपेत् सुधीः॥११०॥
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तदन्ते केवलं मनुम्।
एवं तु प्रत्यहं जप्याद् यावल्लक्षं समाप्यते॥१११॥
निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदेभिः।
पुरश्चर्याशतेनापि प्रयोगविधिना तथा॥११२॥
कल्पकोटिजपेनापि पूजायाः शतकेन च।
न सिद्धिर्जायते सुभ्रु! यदि भावो न जायते॥११३॥

इति श्री बृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (पुरश्चर्याविधिनिरूपणं) चतुर्थः पटलः॥४॥

मन्त्र का जप करते समय केवल मानसिक रूप से पर स्त्री का चिन्तन करना चाहिए। इसी से ही सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है, इसके विषय

में कोई अन्यथा विचार अथवा सन्देह नहीं करना चाहिए। ऐसा तन्त्र के उपदेशकों तथा उसके सिद्धान्तों (मूल तत्वों) को जानने वाले विद्वानों द्वारा समझा गया है। हे सुरों द्वारा पूजित देवि! महाचीन क्रम साधना मार्ग में 'वृक्ष-लता आलिङ्गन रूप' लता साधना द्वारा जिस उत्तम फल की प्राप्ति होती है, वैसे फल की प्राप्ति अन्य किसी साधना द्वारा त्रिलोकों में भी नहीं है। जिस मन्त्र की साधना में जैसे आचरण नियमों (कर्म विधानों) का निर्देश है, वैसा ही व्यवहार करना, उस मन्त्र की साधना में साधक के लिए धर्मरूप है। इस साधना द्वारा साधक स्वर्ग (स्वर्गीय भोग) तथा मोक्ष (अथवा इच्छानुसार स्वर्ग अथवा मोक्ष) रूप फल प्राप्त कर कृतार्थ (अभीष्ट को उपलब्ध) हो जाता है। इसमें किसी प्रकार से सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि इसमें अभीष्ट की सिद्धि अवश्य ही होती है। इसलिए श्रेष्ठ साधकों को इस शुभ परस्त्रीगमनरूप साधना को अवश्य करना चाहिए। हे देवेशि! इससे साधक को किसी भी प्रकार का पाप नहीं लगता है।

अब मैं मन्त्र की सिद्धि के लिए दूसरी विधि को कहता हूँ। अनुलोम विलोम रूप मातृका वर्णों द्वारा अपने अभीष्ट मन्त्र को सम्पुटित करके सौ बार जपना चाहिए। इसके बाद केवल मन्त्र का ही जप करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन जप करते हुए, जप की संख्या एक लाख पूरी होने पर निश्चित रूप से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। ऐसा तन्त्र के विद्वानों द्वारा कहा गया है। हे सुभ्रु! यदि साधक के चित्त में (श्रद्धा-विश्वास सहित) देवत्व भाव की जागृति नहीं होती है तो सैकड़ों पुरश्चरणों, प्रयोग विधियों सैकड़ों बार करने वाली पूजाओं तथा करोड़ों कल्पों तक मन्त्र जप की साधनाओं द्वारा भी मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद में पुरश्चर्या विधि निरूपण संज्ञक चतुर्थ पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

॥ पञ्चमः पटलः॥

(नैमित्तिकार्चन-पीठतदीश्वरीवर्णनम्)

॥ काम्यार्चन-निरूपणम्॥

श्री भैरव उवाच

नित्यार्चनरतो मन्त्री कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम्।
नैमित्तिकार्चने सिद्धिः कुर्यात् काम्यमखण्डितम्॥१॥
मासार्धमथवा मासं द्विगुणं त्रिगुणं तथा।
यावत्फलाप्तिभाग् योगी तावदेवं समाचरेत्॥२॥
नैमित्तिके च काम्ये च फलाप्तिर्मण्डलावधिः।
नचेत्तु द्विगुणीकृत्य यथा स्यात् फलभाक् सुधीः॥३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः।
यद्यत् प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति नित्यशः॥४॥
लभते मञ्जुलां वाणीमष्टम्यां च ततो जपेत्।
मध्याह्नसमये देव्याः पूजनं सिद्धिदायकम्॥५॥
प्रातःकाले महादेवि पूजा कार्या विधानतः।
सायाह्ने च महादेवि पूजा च शस्यते बुधैः॥६॥

स्वेष्ट देवता का नित्य अर्चन करने वाले साधक को पर्वों के अनुसार नैमित्तिक अर्चन भी करना चाहिए। नैमित्तिक अर्चन सिद्धि की प्राप्ति में उपयोगी होता है। इसी भाँति आवश्यकतानुसार सकाम जप-पूजन भी देवता का अखण्ड रूप से करना चाहिए। अर्धमास, एकमास अथवा दो-तीन मास जब तक कि कर्म के फल की प्राप्ति न हो जाए तक तक नित्य अखण्ड रूप से काम्यार्चन करते रहना चाहिए। सामान्यतः नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों की फल प्राप्ति चालीस दिनों में (अथवा उसके बाद ही) हो जाती है, परन्तु यदि ऐसा न हो तो पुनः चालीस दिनों तक अनुष्ठान करना चाहिए जिससे साधक अवश्य ही फल प्राप्ति का भागी होता है। अष्टमी तथा नवमी को देवी का विशेष रूप से प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिए, ऐसा करने पर साधक भगवती से जो भी कामना करता है, उसे अवश्य ही नित्य निरन्तर प्राप्त करता रहता है। अष्टमी को देवी का पूजन-जप करने वाला साधक मधुर,

मनोहर तथा सर्वजन आकर्षक वाणी को प्राप्त कर लेता है। दिन के तीनों कालों में, सम्भव हो तो देवी की अर्चना करनी चाहिए। प्रातः काल की पूजा पूरे विधि-विधान से करनी चाहिए। मध्याह्न के समय की गई पूजा सिद्धि-दायक होती है। विद्वानों द्वारा सायं काल की पूजा प्रशंसनीय मानी गई है।

अष्टम्यां पूजनं देव्याः सर्वकामफलप्रदम्।
रम्भापुष्पं बीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम्॥७॥
मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्यां च विशेषतः।
स्वर्णमालां महादेव्यै दद्याद् गन्धैर्विशेषतः॥८॥
फलं क्षीरं तथा दद्यादधिकं शर्करान्वितम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन संपत्त्यै पूजयेच्छिवाम्॥९॥
सूक्ष्मतण्डुलसिद्धार्थान् देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधि॥१०॥
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति ज(वा?पा)पुष्पं च वर्कराम्।
चन्दनं चार्ककुसुमं दद्यात् श्वेतापराजिताम्॥११॥
अर्घ्यं दद्याद्विशेषेण नित्यपूजा(च?सु) सर्वदा।
अष्टोत्तरशतं जप्यं यावज्जीवितसंख्यया॥१२॥

अष्टमी तिथि को देवी का पूजन करना समस्त इच्छित फलों को देने वाला होता है। पूजन के पश्चात् रम्भा, पुष्प, बीजपुर तथा अनेक सुगन्धित पदार्थों को मिश्रित कर विशेष रूप से अष्टमी को देवी को बलि प्रदान करना चाहिए। सुवासित स्वर्ण (निर्मित पुष्पों की) माला (अभाव में सुगन्धित पीले पुष्पों की माला) देवी को विशेष रूप से प्रदान करना चाहिए। ऋतु के अनुरूप फल, घृत-शक्कर युक्त खीर, महीन चावलों से पका भात तथा अन्य भोज्य पदार्थ आदि देवी को प्रदान करते हुए तारारूपिणी शिवा की हर प्रकार से अपने सामर्थ्यानुसार ऐश्वर्य मयी पूजा करनी चाहिए। अष्टमी तथा चतुर्दशी को विशेष रूप से सविधि यथोचित पूजन करना चाहिए। इस पूजन में देवी को जपा-पुष्प तथा वन-तुलसी प्रदान करने से साधक को आज्ञा-सिद्धि की प्राप्ति होती है। देवी को पूजन में रक्त चन्दन, आक(मदार) पुष्प तथा श्वेत अपराजिता भी अर्पित करना चाहिए। नित्य पूजा में विशेष रूप से सदैव अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। साधक जब तक जीवित रहे उसे नित्य मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए।

।। दुर्गा महाष्टमी प्रपूजन-माहात्म्यं तत्र आसव सहित बलि निरूपणञ्च।।

यस्तु संपूजयेद् दुर्गा महाष्टम्यां प्रयत्नतः।
स त्रिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत्।।१३
ये जपन्ति महामायां ज्ञात्वा तत्त्वेन भैरवम्।
मधुना पायसं चैव क्षीरमाज्यं च शर्कराम्।।१४।।
बलिं दद्याच्च गोधां वै चासवं च प्रशस्यते।
अत्रासवमवश्यं च ब्राह्मणस्तु विशेषतः।।१५।।
आसवं च महेशानि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।

जो साधक दुर्गा महाष्टमी (वसन्त तथा शरद् की नवरात्रियों की अष्टमी, विशेष रूप से शरदष्टमी) को भगवती का विधिपूर्वक भव्य पूजन करता है। उसका तीन जन्मों का संग्रहीत समस्त पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। इसी भाँति जो भी साधक महामाया रूपिणी देवी के परम तत्व को उनके भैरव के स्वरूप सहित भली-भाँति जानकर उनका जप करता है, उसके भी जन्मजन्मान्तर के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पूजन के पश्चात् महामाया को मधु सहित दुग्ध, घृत तथा शकर सहित खीर, गोधा का माँस तथा आसव बलि के रूप में प्रदान करना चाहिए। बलि के साथ, विशेष रूप से ब्राह्मण साधक देवीको आसव अवश्य अर्पित करे। हे महेशानि! आसव अर्पण के विषय में मेरे कथन को एकाग्रचित्त होकर सुनो।

।।आसवं प्रति देव्याः जिज्ञासा।।

श्रीभैरव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु।
केन रुपेण देवेश दद्याद् विप्रोऽथ चासवम्।।१६।।
विशेषं कथयस्वाग्रे सारात् सारतरं यतः।
कैतवं च परित्यज्य यदि स्नेहोस्ति मां प्रति।।१७।।
केन पेयमासवं च केनापेयं वदस्व मे।
अपेयं तन्महाबाहो पेयं वा तद्वदस्व मे।।१८।।
यस्मान्मे परमेशान दूरीभवति संश(व?यः)।
कोटीनां तिसृणां देव तन्त्राणां सारमुत्तमम्।
तस्मादत्र प्रकथ्यं ते सत्यं सुरगणार्चित।।१९।।

हे भगवन! समस्त शास्त्रों तथा आगमों में वर्णित धर्म के सर्वस्वरूप को जानने वाले देवेश! ब्राह्मण को किस प्रकार देवी को आसव अर्पित करना

चाहिए। यदि आपका मेरे प्रति प्रेम है तो इस विषय को मेरे समक्ष बिना कोई छल-कपट किए स्पष्ट रूप से अत्यन्त संक्षेप में कहिए। किन लोगों के लिए सुरा अपेय (पीने योग्य नहीं) है तथा कौन इसे पीने का पात्र है एवं जो सुरा अपेय कही गयी है वह किस प्रकार से पेय (पीने के योग्य) हो जाती है। हे महाबाहो! परमेशान! आप इस विषय में मेरे सन्देह का भली-भाँति निवारण करें। हे देवगणो द्वारा नित्य पूजित देव! तीन करोड़ तन्त्र शास्त्रों का जो अन्तिम सार रूप सर्वोत्तम तत्व (सुरा के विषय में है) उसे वास्तविक रूप से आप इस समय मुझसे कहें।

।।सुरायाः पेयत्वापेयत्वं तस्याः भेदानि च।।

श्रीभरैव उवाच

शृणु देवि महाभागे सर्वशास्त्रार्थगामिनि।
जिज्ञासितं परं तत्त्वं तन्मे निगदितं शृणु।।२०।।
"मद्यमदेयमपेयमनिर्ग्राह्यं चेति, जपे पेयं चेति।"
सुरा वै मलं सत्त्वानां पाप्मा तु मलमुच्यते।
तस्माद् ब्रह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरा पिबेत्।।२१।।
अस्यां शृणु वरारोहे सुरां सुगणार्चिताम्।
गौडी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधा सुरा।।२२।।
पातव्या हि महाभागे नतु कैश्चित् द्विजोत्तमैः।
पनसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम्।।२३।।
माक्षिकं तालमा(ध्वि?ध्वी)कं मैरेयं नारिकेलजम्।
समान्येव विजानीयान्मद्या(न्ने?न्ये)कादशैव तु।।२४।।

सभी शास्त्रों के तत्वार्थ को जानने वाली महाभागे हे देवि! तुमने जिस परम तत्व को जानने की अभिलाषा व्यक्त की है, सुरा विषयक उस ज्ञान को मैं कहता हूँ। सुनो! "मद्य अदेय अपेय तथा अग्राह्य (न किसी को देने योग्य, न पीने योग्य और न ही अन्य किसी भी प्रकार से ग्रहण करने योग्य) है" (परन्तु) "जप काल में पेय है", इस प्रकार सुरा के विषय में दो प्रकार के कथन हैं। सुरा सत्वमय पदार्थों अन्नादि का मल रूप है, और जो अपवित्र-पाप स्वरूप (जिसके सेवन से पाप की उत्पत्ति होती है) है, उसे ही मल कहा जाता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को सुरापान नहीं करना चाहिए। देवताओं द्वारा पूजित (सेवित) इस सुरा के विषय में हे वरारोहे! और भी सुनो! गौड़ी (गुड़ से बनी), पैष्टी (चावल, जौ आदि अन्न

को पीस कर बनाई गई) तथा माध्वी (पुष्प-परागों अथवा फलों के रस से बनी) ये तीन प्रकार की विशेष सुरा जाननी चाहिए। किसी भी द्विज (पूर्व के त्रिवर्ण) को इसे नहीं पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त पनस (कटहल), द्राक्षा (बड़ा अङ्गूर), महुआ, खजूर, ताड़फल, गन्ने के रस, शहद, ताड़ वृक्षों के रस, माधवी लता, मैरेय तथा नारियल के जल से निर्मित, ये ग्यारह प्रकार की सामान्य सुरा जाननी चाहिए।

।। अमन्त्रित सुरापाने दोषः तत्र शुक्रोपाख्यानम्।।

सुरापानविधौ देवि निन्दा केषां च संमता।
विशेषं शृणु देवेशि तव स्नेहात् प्रकाश्यते।।२५।।
तन्निषिद्धा महादेवि या च वैधेतरा भवेत्।
अमन्त्रितसुरापाने प्रायश्चि(तो?त्तं) विधीयते।।२६।।
शृणु देवि महाभागे पुरावृत्तं मनोहरम्।
शुक्रो दैत्यगुरुः पू(र्वे?र्वं) सिद्ध्यर्थं कृतवाञ्जपम्।।२७।।
कल्पकोटिजपेनापि नासिद्ध्यत कदाचन।
पीत्वासवं महादेवि प्रत्यहं जपतत्परः।।२८।।
चित्तोन्मादं तदा तस्य जातं परमकौतुकम्।
जपभ्रष्टोऽभवत्तत्र सस्मार वनितां शुभाम्।।२९।।
तथोर्वशी च स्वर्वेश्या तत्र गत्वा मनोरमम्।
वाक्यं सर्वरसस्वादु कथयित्वा सुशोभने!।।३०।।
शुक्रेण सार्धं देवेशि रमयामास चोर्वशी।
शुक्रोत्पत्तिश्च जायेत ज्ञानं य(ज)ज्ञे ततः परम्।।३१।।

हे देवि! किस प्रकार से सुरापान करना निन्दनीय है तथा किस विधि से पीना शास्त्र सम्मत (उचित) है, इस विषय को विशेष रूप से तुम्हारे प्रेम के कारण कह रहा हूँ, सुनो! जो सुरापान सामान्य रूप से निषिद्ध कहा गया है, वही विशेष परिस्थिति में विधेय (उचित, योग्य) हो जाता है। सुरा को (विशेष मन्त्रों द्वारा) बिना अभिमन्त्रित किये पीने पर प्रायश्चित करने का विधान किया गया है। हे देवि महाभागे! प्राचीन काल के एक वृतान्त (घटना, कथा) को मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो! पूर्व काल में दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने सिद्धि प्राप्ति के लिए मन्त्र-जप (करना प्रारम्भ) किया। कल्पान्त तक जप करने पर भी उन्हें किसी भी प्रकार से सिद्धि की प्राप्ति नहीं हुई। हे महादेवि! तब उन शुक्राचार्य ने सुरापान करते हुए प्रतिदिन मन्त्र जप करना प्रारम्भ कर दिया। उस सुरापान के कारण उनका चित्त विक्षिप्त (असन्तुलित) हो गया तब एक अति आश्चर्यजनक

(मनोरञ्जक) घटना घटित हुई। उन्होंने जप-कर्म का परित्याग कर एक सुन्दर स्त्री का स्मरण (कामना) किया। तब स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी उनके पास आकर सुरुचिपूर्ण मधुर रस पूर्ण वचनों द्वारा वार्तालाप करने लगी। हे सुशोभने! फिर उस उर्वशी ने शुक्राचार्य के साथ आनन्दपूर्वक रमण किया। वीर्य स्खलन होने के बाद उन्हें अपनी इस (साधन-पतित) अवस्था का ज्ञान हुआ।

तत्त्वं ज्ञात्वा ततः शुक्रः शशापासवमुत्तमम्।
तेन शापेन देवेशि शप्तं चासवमुत्तमम्।।३२।।
ततः प्र(भू?भृ)ति तद् देवि सिद्धये नच जायते।
एवं क्रमेण देवेशि शतवर्षं गतं प्रिये।।३३।।
ततः सा च भगवती काली कालस्वरूपिणी।
उवाच सादरं वाक्यं काली दैत्यगुरुं प्रति।।३४।।
शृणु वत्स महद्वाक्यं सावधा(ना?नो)ऽवधारय।
कथं शप्तं महाभाग चासवं देवदुर्लभम्।।३५।।

अपनी इस अवस्था का कारण सुरा को मानते हुए उसे सदोष जानकर शुक्राचार्य ने उस श्रेष्ठ सुरा को श्राप दे दिया। उसी शाप के कारण सुरा शप्त (शापित) कही जाती है। उसी समय से हे देवि! उन्हें सिद्धि की भी प्राप्ति नहीं हुई। इस प्रकार साधना करते-करते सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब हे देवि! वह कालस्वरूपिणी भगवती काली उन शुक्राचार्य के सम्मुख प्रकट होकर उनसे आदर सहित यह वचन बोली - हे पुत्र! मेरे वचन को ध्यान से सुनो, हे महाभाग! तुमने इस देव दुर्लभ सुरा को क्यों शाप दिया है।

।। श्रीशुक्राचार्येण देव्याः स्तुति।।

श्रीशुक्र उवाच

सर्वेशे सर्वभूतेशे सर्वभूतसमावृते।
ब्रह्मेशविष्णुनमिते प्रणमामि सदा शिवे।।३६।।
ब्रह्मविष्णुशिवानां च प्रसूते करुणामयि।
जडानां ज्ञानदे देवि त्राहि मां शरणागतम्।।३७।।
तारिणी त्वं महादेवि चात्र पूर्णा युगागमे।
अस्माकं ज्ञानदात्री च विष्णुमातर्नमोऽस्तु ते।।३८।।
त्वं श्रीस्त्वं(हि?चैव)सावित्री सती च त्वं सुरेश्वरि।
आद्ये भवाद्ये सर्वेशे विश्वमातर्नमोऽस्तु ते।।३९।।
शिवे शिवात्मिके घोरे सर्वविद्यानिधे शुभे।
प्रसन्ना भव सर्वज्ञे सर्वमन्त्रप्रकाशने।।४०।।

प्रसीद देवि चास्माकं महाकालीं करालिनीम्।।४१।।
दण्डवत् प्रणिपत्यादौ पुनराह गरीयसीम्।
आसवं च मया शप्तं कारणं शृणु भैरवि।।४२।।
पीत्वासवं महादेवि न सिद्धिर्जायते मम।
तस्माच्छप्तं महेशानि सर्वं निगदितं शृणु।।४३।।

देवी भगवती महाकाली को इस प्रकार अपने सम्मुख उपस्थित देखकर तथा उनके प्रश्न करने पर शुक्राचार्य ने पहले उनको प्रसन्न करने के लिए इस प्रकार से स्तुति करना प्रारम्भ किया – सभी देवताओं तथा सृष्टि के समस्त चराचर भूतों की स्वामिनी, सभी भूतों में व्याप्त रहने वाली तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र द्वारा प्रणम्य हे शिवे! मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ। आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव (सहित समस्त देवों) को उत्पन्न करने वाली हैं, आप करुणामयी तथा अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करके उनका कल्याण करने वाली हैं। हे देवि! मैं आपकी शरण में हूँ, आप मेरी रक्षा करें। हे महादेवि! आप ही तारिणी हैं। युग के प्रारम्भ में आपको ही पूर्णा कहा जाता है। हम सभी (अज्ञानी) प्राणियों को ज्ञान देने वाली विष्णु (को प्रकट करने के कारण उनकी) माता स्वरूपा आपको मेरा प्रणाम है। हे सुरेश्वरि! आप ही श्री (विष्णु शक्ति लक्ष्मी), सावित्री (ब्रह्मा की शक्ति), सती (रुद्र-शक्ति), आद्या परम शक्ति, सृष्टि का आदिकारण तथा समस्त सृष्टि की सञ्चालिका-प्रशासिका-स्वामिनी हैं। हे! विश्व की मातृस्वरूपा आपको प्रणाम है। हे शिवे (कल्याण रूपिणी)! शिव स्वरूपिणी! भयंकर स्वरूप वाली, सभी विद्याओं की आधार भूमि, सदा सौभाग्य प्रदान करने वाली, 'सर्व' अर्थात् सृष्टि रूपा तथा 'ज्ञ' अर्थात् शुद्ध ज्ञान स्वरूपा तथा सभी मन्त्रों (एवं तन्त्रों) को प्रकट करने वाली हे देवि! आप मुझ पर प्रसन्न हों। सभी जीवों पर कृपा करने वाली हे देवि! हम पर प्रसन्न हों। इस प्रकार स्वयं के द्वारा की हुई स्तुति से प्रसन्न हृदया कालस्वरूपा महाकाली को दण्डवत् प्रणाम करके शुक्राचार्य पुनः उनसे बोले-हे भैरवि! मैंने सुरा को क्यों शाप दिया इसका कारण सुनें। हे देवि! आसव का पान करने पर भी मुझे सिद्धि की प्राप्ति नहीं हुई, इसलिए हे महेशानि! मैंने सुरा को शाप दे दिया। मैंने आपसे सब कुछ स्पष्ट रूप से कह दिया है, अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।

।।महाकाल्याः शुक्राचार्यं प्रति-वचनम्।।

उवाच सा महासाध्वी काली कालस्वरूपिणी।
प्रहसन्तीव सा देवी शुक्रं दैत्यगुरुं प्रति।।४४।।

अमन्त्रिता सुरा वि(प्रो?प्र!) पीता परमदुर्लभा।
तेनैव हेतुना सिद्धिर्न जाता तव सुन्दर।।४५।।
अमन्त्रित सुरा पाने प्रायश्चित्तं विधीयते।
आयसे भाजने भद्रे स्वर्णे रूप्ये तथैव च।।४६।।
ब्राह्मणो वेदवांश्चव पिबेच्च वारुणीं शुभाम्।
तप्तां सुरां पिबेच्चैव नान्यथा सिद्धिमाप्नुयात्।।४७।।
इति ते कथितं दिव्यं सावृत्तान्तमुत्तमम्।
अपेया सा निषिद्धा सानाघ्रेया चेति च क्रमात्।।४८।।
अनिर्ग्राह्या च सा देवि या वै वैधेतरा भवेत्।
तस्माज्जपविधौ ज्ञेया सिद्धिकरी मता।।४९।।

शुक्राचार्य के कथन को सुनकर वह महासाध्वी, कालरूपिणी, महाकाली हंसती हुई सी उनसे बोली – हे सुन्दर! विप्र! आपने परम दुर्लभ सुरा को बिना अभिमंत्रित किए पान किया था, इसीलिए सुरा पान करके जप करने पर भी आपको सिद्धि की प्राप्ति नहीं हुई। बिना अभिमन्त्रित किये सुरा का पान करने वाले मनुष्य को प्रायश्चित करने का विधान कहा गया है। लोहा, सोना अथवा चाँदी किसी भी धातु द्वारा निर्मित पात्र से सुरा पान करने पर वेद के विद्वान ब्राह्मण को प्रायश्चित करना पड़ता है। इसके लिए अति सन्तप्त सुरा को उसे पान करना पड़ता है, अन्यथा उसे सिद्धि की प्राप्ति कभी भी नहीं होती है। हे भैरवि! यह मैंने पूर्वकाल में घटित श्रेष्ठ घटनाक्रम को संक्षिप्त रूप से तुमसे वर्णन किया है। सामान्य रूप से सुरा को पीना, उसे सूंघना अथवा अन्य किसी भी प्रकार से ग्रहण करना निषिद्ध है। परन्तु वही सुरा अभिमन्त्रित होकर ग्रहण के योग्य हो जाती है। इसलिए मन्त्र–जप के समय (अभिमन्त्रित) सुरा का पान सिद्धि प्रदान कारक कहा गया है।

।।आसवानुकल्पं, होमं, विशेष तिथि पूजन फलञ्च।।

सर्ववर्णमहेशानि देया च त्रिविधा सुरा।
अथवासवसंभूत्यै दद्याद्वापि गुडार्द्रकम्।।५०।।
तक्रं वा गुडसंमिश्रं दद्याद् देव्यै प्रयत्नतः।
नारिकेलोदकं कां(श्ये?स्ये)ताम्रे वा विसृजेन्मधु।।५१।।
तारामन्त्रेण काल्याश्च अत्र पूर्णाविधौ तथा।
अनुकल्पं चासवं च दद्यादतिमनोहरम्।।५२।।
रम्भाफलं शालमत्स्यं जुहुयान्मन्त्रवित्तमः।
सर्वां सिद्धिमनुक्रम्य अन्ते मोक्षमवाप्नुयात्।।५३।।

साज्यस्य बिल्वपत्रस्य होमेन जगती वशे।
सहस्रहोमे देवेशि लभते सिद्धिमुत्तमाम्।।५४।।
लभते मञ्जुलां वाणीं महाष्टम्यां च साधकः।
कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः।।५५।।
योगिनीपूजनं तत्र साधनं कुलपूजनम्।
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः।।५६।।
तथा कुलतिथौ शक्तिः पूजिता वरदायिनी।
कुलवारे चतुर्दश्यामष्टम्यां च विशेषतः।।५७।।
शङ्खस्थितं तोयपूर्णं ज(वा?पा)पुष्पं च बर्बरा।
चन्दनं चार्ककुसुमं शुक्ला चैवापराजिता।।५८।।
अ(न्न?र्घ्य)दानं विशेषेण नित्यपूजाक्रमः स्मृतः।
अष्टोत्तरशतं जप्यं यावज्जीवितसंख्यया।।५९
सहस्रं वा जपेन्मन्त्रं नित्यपूजाविधौ प्रिये।
महोग्रायाः सदा पूज्या पूजने कुल्लुका परा।।६०।।

देवी के पूजन में सभी वर्ण के मनुष्यों द्वारा पूर्वोक्त प्रमुख तीनों प्रकार की सुरा (में से कोई भी एक प्रकार की सुरा) देवी को अर्पित करना चाहिए अथवा आसव के समकक्ष माने गये गुड़ तथा अदरक (रस) का मिश्रण अथवा मट्ठा तथा गुड़ के मिश्रण को (अनुकल्प के रूप में) अर्पित करना चाहिए। कांसे के अथवा ताँबे के पात्र में रखा हुआ नारियल का जल तथा मधु भी सुरा के अनुकल्प के रूप में तारा, काली तथा पूर्णा के पूजन में उन्हें मन्त्र सहित अर्पण करना चाहिए। पूजन तथा जप के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को केला तथा शालमत्स्य द्वारा हवन करना चाहिए (नैवेद्य के रूप में अर्पित करना चाहिए)। इस प्रकार साधक क्रमशः समस्त सिद्धियों को क्रमशः प्राप्त कर उनके फलों का भोग करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।

अभीष्ट (शास्त्र द्वारा अनुमोदित) संख्या में मन्त्र जप के पश्चात् घृत सहित बिल्व पत्र द्वारा एक हजार (अथवा जप संख्या का दशांश) हवन करने से साधक को श्रेष्ठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा संसार उसके वशवर्ती हो जाता है। उसे मनोहर वाणी की भी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विष्णु के पर्वों तथा तिथियों में विष्णु का पूजनादि करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार महाष्टमी, कुलाष्टमी, चतुर्दशी तथा देवी-दिनों एवं विशेष-विशेष देवी तिथियों में योगिनी पूजन सहित देवी की साधना करना तथा सौभाग्यवती स्त्रियों एवं कन्याओं का पूजन करना साधक को मनोवाञ्छित

सिद्धि देने वाला होता है। कुल तिथियों में पूजन साधक को यथेष्ट वर देने वाला होता है। कुलवारों मङ्गल तथा शुक्रवार को जल-पूरित शंख में जपा पुष्प, पीला चन्दन (वन-तुलसी), आकपुष्प तथा श्वेत अपराजिता डालकर नित्य पूजन क्रमानुसार देवी को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। साधक को जीवन भर देवी का नित्य पूजन तथा पूजनोपरान्त एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार मन्त्र जप अवश्य करना चाहिए। पूजन न होने की स्थिति में भी एक सौ आठ बार मन्त्र जप जीवन भर तो अवश्य ही करते रहना चाहिए। महोग्रा रूप तारिणी के पूजन में कुल्लुका का जप-पूजन (शिर में न्यास) सदैव करना चाहिए।

।। अनुष्ठानादि कथनं पीठार्चनञ्च।।

स्तोत्रमन्त्रव्रतादीनामनुष्ठानं शृणु प्रिये।
अननुष्ठानतस्तस्याः सर्वं तन्निष्फलं भवेत।।६१।।
महाविद्यां च सुन्दर्या वासुदेवं च योऽर्चयेत्।
प्राप्नोति तत्फलं सर्व हरिसायुज्यतां व्रजेत्।।६२।।
वासुदेवो हरिर्ब्रह्मा तारिणी प्रकृतिः सदा।
एकमूर्तिः सदा चिन्त्या एकमूर्तिः सदा स्थिता।।६३।।
स्वर्गमोक्षप्रदा देवी धनविद्याप्रदायिनी।
धनविद्यायशोलक्ष्मीरायुरारोग्यवर्द्धिनी ।।६४।।
तस्मात्तां पूजयेद् देवीं गन्धपुश्पैश्च धूपकैः।
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्तया पूजयेत् तारिणीं सदा।।६५।।
आषाढे शयनं कुर्यात् सिंहे च परिवर्तनम्।
अश्विने बोधयेद् देवीं पशुपायसभोजनैः।।६६।।
रात्रौ पवित्रेण वरं जायते सुरसुन्दरि।
दिवा प्रबोधेऽपि तथा स्वप्नेऽपि च कदाचन।।६७।।
शुक्लाष्टम्यां घटाष्टम्यां घटस्य च विशेषतः।
माघमासस्य च विधो रात्रौ संपूजयेत् सुधीः।।६८।।

हे प्रिये! अब देवी के स्तोत्र, मन्त्र, व्रत तथा अनुष्ठानादि के विषय में सुनो। जो साधक समय-समय पर होने वाले देवी के विशेष अनुष्ठान-पूजन को नहीं करता उसके द्वारा किये जाने वाले अन्य जप-पूजन आदि कर्म प्रायः निष्फल से (अल्प फल देने वाले) हो जाते हैं। जो साधक महाविद्या स्वरूपा तारा, त्रिपुर सुन्दरी तथा वासुदेव का अर्चन करता है, वह सभी अभीष्ट फलों को इसी जीवन में प्राप्त करता हुआ अन्त में हरि के साथ सायुज्य (रूप मोक्ष) को प्राप्त करता है। वासुदेव, हरि, तारा, मूल प्रकृति (आदि) ये सभी

एक ही मूर्ति अर्थात् सच्चिदानन्द रूप एक ही तत्व के भिन्न-भिन्न काल्पनिक (उपासना भेदानुसार) नाम व रूप हैं। इनको सदैव एक ही रूप मानकर चिन्तन (ध्यान) करना चाहिए। इन सभी की एकात्म मूर्तिरूप देवी (तारिणी) धन, विद्या, यश, लक्ष्मी, आयु, आरोग्य आदि को प्रदान करने वाली सदैव वृद्धि करने वाली तथा इच्छानुसार साधक को मोक्ष अथवा स्वर्ग रूप फल देने वाली है। इसलिए उस देवी तारा की गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा अनेकों प्रकार के नैवेद्य सहित योग्य पदार्थों द्वारा भक्ति सहित नित्य पूजन करना चाहिए।

भगवती के साधक को आषाढ़ मास में देवी का शयनोत्सव तथा सूर्य के सिंह राशि मे प्रवेश करने पर परिवर्तन (करवट बदलने का) उत्सव मनाना चाहिए। आश्विन मास में देवी का प्रबोधन उत्सव करके पशु, खीर आदि भोज्य पदार्थ पवित्र भाव से रात्रि में प्रदान करना चाहिए। ऐसा करने पर देवी जागरण काल में प्रत्यक्ष अथवा स्वप्न में साधक को वर प्रदान करती है। माघ मास की शुक्ला अष्टमी -घटाष्टमी को रात्रि में साधक को विशेष रूप से घट में चन्द्रमा का पूजन करना चाहिए।

पीठार्चनं महादेवि यत्र सिद्धिरनुत्तमा।
पीठानां परमं पीठं कामरूपं महाफलम्।।६९।।
तत्र यत् क्रियते पूजा सकृद्वापि महेश्वरि।
विहाय सर्वपीठानि तस्य देहे वसाम्यहम्।।७०।।
तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डलम्।
तेषां फलं महेशानि वक्तुं किं शक्यते मया।।७१।।
तत्र कोटिगुणैः सार्धमाद्या वसति तारिणी।
मत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम्।।७२।।
यतो देवाश्च वेदाश्च मुनयश्चैव भावजाः।
सर्वेऽप्याविर्भवन्त्येते तेन गुप्तं सदा कुरु।।७३।।
द्विविधं चैव यत्पीठं गौप्तव्यं तन्महेश्वरि।
व्यक्ताद् गुप्तं महापुण्यं दुरापं साधकाधमैः।।७४।।
गुप्तं सर्वत्र देशे तु लभ्यते कुलसुन्दरि।
पीठप्रसङ्गाद् देवेशि पीठानि शृणु भैरवि।।७५।।

हे महादेवि! अब पीठार्चन के विषय में सुनो। जहाँ पूजन करने से साधक को सर्वोत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है। सभी पीठों में सर्वश्रेष्ठ पीठ कामरूप पीठ है। हे महेश्वरि! यहाँ एक बार भी की गई भगवती की पूजा अपार फल देने वाली होती है। जो साधक सभी पीठों को छोड़कर इस पीठ

में विशेष रूप से मेरा पूजन करता है, उसके शरीर में मैं निवास करती हूँ। इसीलिए कामाख्या योनि मण्डल (पीठ-क्षेत्र) अन्य सभी पीठों से सैंकड़ों गुना अधिक श्रेष्ठ तथा फलदायक कहा जाता है। यहाँ पूजन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन करने में मैं ही क्या, कोई भी समर्थ नहीं है। उस कामाख्या पीठ में आद्या शक्ति तारिणी अपने करोड़ों गुणों (सामर्थ्य) सहित निवास करती है। वहाँ गुप्त रूप से स्थित ब्रह्ममुख मेरा पीठ है जो सभी सुखों का आधार है। जिससे इन सभी देवता, वेद, मुनि, (ब्रह्मा के) मानस से उत्पन्न ऋषि आदि सभी का अविर्भाव (प्राकट्य) होता है, उसे इसी कारण से सदा गुप्त रखा जाता है। गुप्त तथा व्यक्त दो प्रकार पीठ कहे गये हैं, दोनों ही महापुण्य दायक हैं। इन्हें गुप्त ही रखना चाहिए। अधम साधकों के लिए ये दोनों ही अति दुर्लभ हैं। हे कुलसुन्दरि! जो गुप्त पीठ है, वह सभी स्थानों पर प्राप्य है। इस पीठ चर्चा में अब हे भैरवि! पीठों के नाम मैं कहता हूँ, सुनो!

।।सिद्धिप्रद स्थान (पीठ) नामानि।।

श्रृणु तानि महाप्राज्ञे श्रेष्ठस्थानानि यानि च।
सिद्धिप्रदानि साधूनां महद्भिः सेवितानि च।।७६।।
पुष्करं च गयाक्षेत्रमक्षया(द्य?दि)वटं तथा।
वराहपर्वतं चैव शिवं चामरकण्टकम्।।७७।।
नर्मदा यमुना गङ्गा गङ्गाद्वारं तथा प्रिये।
गङ्गासागरसङ्गं च कुशावर्तं च बिल्वकम्।।७८।।
श्रीनीलपर्वतं चैव कलम्बकुब्जके तथा।
भृगुतुङ्गं च केदारं सर्वप्रियमहालयम्।।७९।।
ललिता च सुगन्धा च शाकम्भरीपुरं प्रियम्।
कर्णतीर्थं महागङ्गा तिलिकाश्रममेव च।।८०।।
कुमाराख्यप्रभासौ च तथा धन्या सरस्वती।
अगस्त्याश्रममिष्टं मे काण्वाश्रममतः परम्।।८१।।
कौशिकीसरयूशोणज्योतिःसरःपुरःसरम् ।
कामोदकं प्रियं श्रीमत् प्रियमुत्तरमानसम्।।८२।।
मतङ्गवापी सप्तार्चिरन्यद्विष्णुपदं महत्।
वैद्यनाथं महातीर्थं प्रियः कालञ्जरो गिरिः।।८३।।

हे महाप्राज्ञे! उन श्रेष्ठ पीठ स्थानों के नाम सुनो, जो सभी सिद्धियों को देने वाले तथा सत्पुरुषों एवं साधुजनों से सदा सेवित हैं। पुष्कर, गया क्षेत्र, अक्षयवट, वाराह पर्वत, शिव क्षेत्र अमरकन्टक, नर्मदा, यमुना तथा गंगा तट, हरिद्वार, गङ्गासागर, कुशावर्त, बिल्व क्षेत्र, श्री नीलाचल, कलम्ब, कुब्जिका

क्षेत्र, भृगुतुङ्ग, सर्वप्रिय विशाल क्षेत्र केदारनाथ, ललितापुरी, सुगन्धापुरी, शाकम्भरी पुरी, कर्ण तीर्थ, महागङ्गा, तिलकाश्रम, कन्याकुमारी, प्रभास, श्रेष्ठ सरस्वती तट, अगस्त्याश्रम, कण्वाश्रम, कौशिकी, सरयू तट, शोण तट, ज्योतिष्पुर, ज्योतिःसर, कामोदक क्षेत्र, वैभवशाली प्रिय, मानसोत्तर क्षेत्र (मान सरोवर), मतङ्ग-वापी, सप्तार्चि, विष्णु पद, महातीर्थ वैद्यनाथ तथा प्रिय कालञ्जर गिरि।

वामोच्छेदं हरोच्छेदं गर्गोच्छेदं महानलम्।
भद्रेश्वरं महातीर्थं लक्ष्मणोच्छेदमेव च॥८४॥
जानीहि प्रियसृष्टा च कावेरी कपिलोदका।
सोमेश्वरं शुक्लतीर्थं कृष्णवीण्या प्रभेदकः॥८५॥
पाटला च महाबोधिर्नागतीर्थं मदन्तिका।
पुण्यं रामेश्वरं देवि तथा मेघवनं हरेः॥८६॥
ऐलं रमणकं चैव गोवर्द्धनमतिप्रियम्।
हरिश्चन्द्रं पुरश्चन्द्रं पृथूदकमतिप्रियम्॥८७॥
इन्द्रनीलं महानादं तथैव प्रियमेनकम्।
पम्पासरः पञ्चवटी वटीपर्वतिका तथा॥८८॥
गङ्गाबिल्वं च प्रासङ्गः प्रियनादवटस्तथा।
गङ्गावामाचलं चैव तथैव ऋणमोचनम्॥८९॥
गौतमेश्वरतीर्थं च वसिष्ठतीर्थमेव च।
हारीतकं तथा देवि ब्रह्मावर्तं शिवप्रदम्॥९०॥
कुशावर्तमतिश्रेष्ठं हंसतीर्थं तथैव च।
पिण्डावकरणं ख्यातं हरिद्वारं तथैव च॥९१॥

वामोच्छेद, हरोच्छेद, गर्गोच्छेद, महानल, महातीर्थ, भद्रेश्वर, लक्ष्मणोच्छेद तीर्थ, प्रिय सृष्टा, कावेरी, कपिला तट, सोमेश्वर, शुक्ल तीर्थ, कृष्ण वेणी तट, प्रभेदक, पाटलापुरी, महाबोधि क्षेत्र, नागतीर्थ, मदन्तिका, पुण्यतीर्थ रामेश्वर, द्वारिका क्षेत्र मेघवन, ऐल तीर्थ, रमणक तीर्थ (सरोवर), अत्यन्त प्रिय (कृष्ण क्षेत्र) गोवर्धन पर्वत, हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र क्षेत्र, अतिप्रिय पृथूदक तीर्थ, इन्द्रनील, महानाद, एनक क्षेत्र, पम्पासर, पञ्चवटी, पर्वतिका वटी क्षेत्र, गंगाबिल्व (गोमुख), प्रासङ्ग, प्रिय नादवट, गङ्गावामाचल, ऋणमोचन तीर्थ, गोतमेश्वर तीर्थ, वशिष्ठ तीर्थ, हारीत तीर्थ, शिवप्रद ब्रह्मावर्त तीर्थ, सर्वश्रेष्ठ कुशावर्त तीर्थ, हंस तीर्थ, पिण्डावकरण तीर्थ तथा प्रसिद्ध हरिद्वार।

तथैव बदरीतीर्थं वामतीर्थं तथैव च।
जयन्तं विजयन्तं च सर्वकल्याणदं प्रिये॥९२॥

विजया शारदातीर्थ भद्रकालीश्वरं तथा।
अश्वतीर्थ सुविख्यातं तथा वेदशिरः प्रियः।।९३।।
ओघवती नदी चैव तीर्थमत्रिपदं तथा।
छागलिङ्गं मातृगणं करवीरपुरं तथा।।९४।।
सप्तगोदावरं तीर्थं सर्वधर्मफलप्रदम्।
अयोध्या मथुरा माया दुर्गा द्वारावती हरेः।।९५।।
विद्यापुरमवन्ती च काञ्ची मङ्गलकोटकम्।
कालीघट्टं गुप्ततीर्थ सिद्धाख्यं सर्वमोहनम्।।९६।।
किरीटमुत्तरातीर्थ दक्षिणातीर्थमुत्तमम्।
विशालातीर्थ काल्याश्च वनं वृन्दावनं तथा।।९७।।
ज्वालामुखी हिङ्गुला च महातीर्थं गणेश्वरम्।
जानीहि सर्वसिद्धीनां हेतुस्थानानि सुन्दरि।।९८।।

इसी तरह बदरीतीर्थ (बदरिकाश्रम), वामतीर्थ, सर्वकल्याणप्रद जयन्त तीर्थ, विजयन्त तीर्थ (नर–नारायण तीर्थ), विजयशालिनी शारदा तीर्थ, भद्रकालीश्वर तीर्थ, अश्व तीर्थ, अतिप्रसिद्ध प्रिय वेदशिर तीर्थ, ओघवती नदीतट क्षेत्र, अत्रिपद तीर्थ, छागलिङ्ग तीर्थ, मातृगण तीर्थ, करवीरपुर, समस्त धर्मों (कर्मों) का फल देने वाला गुप्त गोदावरी तीर्थ, अयोध्या, मथुरा, मायापुरी, दुर्गा, द्वारावती (द्वारिका), विद्यापुर, अवन्तिका (उज्जैन), काञ्चीपुर, मङ्गलकोट, कालीघट्ट (कालीकट), गुप्त तीर्थ, सर्वमोहक सिद्धाश्रम क्षेत्र, किरिट तीर्थ, उत्तरा तीर्थ, उत्तम दक्षिणातीर्थ, विशाला (पुरी) तीर्थ, कालीवन, वृन्दावन, ज्वालामुखी, हिङ्गुलाज तथा महातीर्थ गणेश्वर हे सुन्दरि! इन सभी तीर्थों–क्षेत्रों को सभी सिद्धियों के कारण रूप स्थानवत् (सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाले सिद्ध स्थान के रूप में) जानो।

।।पीठानां माहात्म्यम्।।

अत्र सन्निहिता नित्यं सर्वे देवा महर्षयः।
पितरो योगिनश्चैव ये च सिद्धिपरायणाः।।९८।।
आशु सिद्ध्यन्ति कार्याणि श्रद्धाभक्तिमतां प्रिये।
पुण्यकाले पठेद् यस्तु तत्पुण्यमक्षयं भवेत्।।१००।।
श्राद्धकाले पठेद् यस्तु शृणुयाद्वापि भक्तितः।
अक्षयं तद्भवेद्वाक्यं पितृणां परमं सुखम्।।१०१।।
अस्मिन् स्थाने जपेद्यस्तु सिद्धिर्भवति तत्क्षणात्।
अथ वक्ष्ये महेशानि यत्र या देवता शृणु।।१०२।।

इन सभी तीर्थ-क्षेत्रों में सभी देवता तथा महर्षि नित्य गुप्त रूप से निवास करते हैं। सभी पितर योगिनियाँ तथा सिद्धि प्राप्त मनुष्य (सिद्धेश्वर) भी यहाँ गुप्त भाव से रहते हैं। जो भी साधक श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक यहाँ जप-पूजन आदि करते हैं, उनके कार्यों को ये देवता आदि शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करते हैं। पुण्य काल में (विशेष नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मों के पूजन आदि के समय) जो भी मनुष्य इन तीर्थ (पीठ) नामों का पाठ करता है, उसे अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। श्राद्ध के समय भक्ति सहित इसका पाठ अथवा श्रवण करने वाले साधक की वाणी अकाट्य (अनुल्लंघनीय) हो जाती है तथा उसके पितरों को परम सुख की प्राप्ति होती है। इन स्थानों पर मन्त्र का जप करने से साधक को अतिशीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। हे महेशानि! अब मैं इन तीर्थों में वास करने वाले देवताओं के नाम का वर्णन करूँगा, उसे तुम सावधान होकर सुनो।

।। पीठ-देवता-नामानि।।

यत्र ते यानि नामानि कथयिष्यामि तच्छृणु।
मग्नोऽहं परमानन्दे त्वत्कथामृतवारिधौ।।१०३।।
पुष्करे कमलाक्षी च गयायां च गयेश्वरी।
अक्षयाऽक्षयवटकेऽमरेशामरकण्ठके ।।१०४।।
वराहपर्वते च त्वं वाराही धरणीप्रिया।
दुर्मदा नर्मदायां च कालिन्दी यमुनाजले।।१०५।।
शिवामृता च गङ्गायामम्बा तु तिलिकाश्रमे।
कुमारधाम्नि कौमारी प्रभासे सुरपूजिता।।१०६।।
काश्यां चैवान्नपूर्णा च द्राविडे च सरस्वती।
महाविद्या मत्तमेधा अगस्त्याश्रमके तथा।।१०७।।
कौशिकीति प्रियं नाम कोशिकामृतकौशिके।
शारदा सरयूतीरे शोणे च कनकेश्वरी।।१०८।।

परमानन्द प्रदान करने वाले तुम्हारे कथा रूप अमृत समुद्र में डूबा हुआ मैं, जहाँ जिस क्षेत्र में जो देवता है, उनके नामों को कहता हूँ, सुनो! पुष्कर में कमलाक्षी, गया में गयेश्वरी, अक्षया अक्षय वट में तथा अमर कण्टक में अमरेशा का वास है। वाराह पर्वत में तुम ही धरणी प्रिया वाराही के रूप में बसती हो। नर्मदा (नदी) क्षेत्र में दुर्मदा (नर्मदा), यमुना में कालिन्दी पवित्र अमृतरूपिणी जल वाली गङ्गा में शिवामृता, तिलिकाश्रम में अम्बा, कन्याकुमारी में कौमारी, प्रभास क्षेत्र में सुरपूजिता, काशी में अन्नपूर्णा, द्राविड (दक्षिण) में सरस्वती तथा अगस्त्य आश्रम में महाविद्या मत्तमेधा वास करती है। कौशिकी में प्रिय कौशिकामृता सरयू में शारदा तथा शोण तट क्षेत्र में कनकेश्वरी वास करती है।

स्वप्रकाशवशाद् देवि ज्योतिष्मतीह सङ्गमे।
श्रीवहा श्रीगिरौ चैव काली कालोदके तथा॥१०९॥
महादेवि! महाबुद्धिर्नीला चोत्तरमानसे।
मातङ्गी स्यात् मतङ्गे च गुप्तार्चिर्विष्णुपादके॥११०॥
स्वर्गङ्गा स्वर्गमार्गे च गोदावर्यां गवेश्वरी।
विमुक्तिश्चैव गोमत्यां विप्रभावा महाबला॥१११॥
शतप्रभा शतरूपा चन्द्रभागा च तत्र वै।
ऐरावत्यां च ईर्नाम सिद्धिदा सिद्धितीरके॥११२॥
दक्षपञ्चनदे चैव दक्षिणा त्वं प्रकीर्तिता।
औजिसे वीर्यदा त्वं च सङ्गमा तीर्थसङ्गमे॥११३॥
बाहुदायामसन्ता(?) त्वं कुरुक्षेत्रे वपेक्षणा।
तपस्विनी पुण्यतमा भारती भरताश्रमे॥११४॥
सुकथा नैमिषारण्ये पाण्डौ च पाण्डवानना।
विशाल्यां च विशालाक्षी मुण्डपृष्ठे शिवात्मिका॥११५॥
श्रद्धा कनखले तीर्थे शुद्धबुद्धिर्मुनीश्वरे।
सुवेशा सुमना गौरी मानसे च सरोवरे॥११६॥
नन्दापुरे महानन्दा ललिता ललितापुरे।
ब्रह्माणी ब्रह्मशिरसि महापातकनाशिनी॥११७॥
पूर्णिमा चेन्दुमत्याद्यैः सिञ्चयन्ती प्रिया सदा।
जा(ह्नि?ह्न)वीसङ्गमे तृप्तिः स्वधा त्वं पितृतुष्टिदा॥११८॥

हे देवि! स्वप्रकाश से ही प्रकाशमान ज्योतिष्मती शोण तथा ज्योतिसर सङ्गम में, श्री गिरि पर श्री वहा, कालोदक में काली, उत्तर मानसरोवर में महाबुद्धिमती नीला, मतङ्गाश्रम में मातङ्गी, विष्णुपद में गुप्तार्चि, स्वर्माग में स्वर्गङ्गा, गोदावरी में गवेश्वरी, गोमती में विशेष प्रभाव तथा महाशक्तियुता विमुक्ति, चन्द्रभागा में अमिट प्रभावशाली शतरूपा, इरावती में 'ई' संज्ञका तथा सिद्ध तीर्थ में सिद्धिदा का निवास है। दक्षिण पञ्चनद क्षेत्र में तुम ही दक्षिणा (नाम से वास करने वाली) कही जाती हो, औजिस क्षेत्र में वीर्यदा तथा तीर्थसङ्गम में सङ्गमा नाम से तुम ही वास करती हो। बाहुदा में अनन्ता तथा कुरुक्षेत्र में तुम वपेक्षणा नाम वाली हो। भरताश्रम में पुण्यशीला तपस्विनी भारती, नैमिषारण्य में सुकथा तथा पाण्डु क्षेत्र में पाण्डवमुखी (पाण्डुरमुखी), विशालापुरी में विशालाक्षी तथा मुण्डपृष्ठ पर शिवात्मिका निवास करती है। कनखल में श्रद्धा तथा मुनि क्षेत्र में शुद्ध बुद्धिरूपा निवास करती है। मानस

सरोवर में सुन्दर वेश तथा मनवाली गौरी, नन्दापुर में महानन्दा, ललितापुरी में ललिता, ब्रह्मशिर में महापापनाशिनी ब्रह्माणी, पूर्णिमा तथा इन्दुमती आदि के द्वारा सदा सिञ्चित जाह्नवी सङ्गम में तृप्ति तथा पितृ क्षेत्र में पितरों को तुष्टि प्रदान करने वाली स्वधा रूपा तुम ही हो।

पुण्याहा वेणुवत्यां च प्रपायां पापनाशिनी।
शङ्खसंहारिणी घोररूपा चैव महोदरी॥११९॥
गर्गोच्छेदे महारात्रिः प्रबला च महावने।
भद्रा च भद्रकाली च भद्रेश्वरीश्वरप्रिया॥१२०॥
भद्रेश्वरे रमा विष्णुप्रिया विष्णुपदे तथा।
दारुणा नर्मदोच्छेदे कावेर्यां कपिलेश्वरी॥१२१॥
भेदिनी कृष्णवेण्यायां संभेदे शुभवासिनी।
शुद्धा वै शुक्लतीर्थे च प्रभा रामेश्वरे तथा॥१२२॥
महाबोधौ महाबुद्धिः पाटले पाटलेश्वरी।
सुरसा नागतीर्थे च नागेशी नागवन्दिता॥१२३॥
मदन्ते च मदन्ती च प्रमदा च मदन्तिका।
मेघस्वना मेघवने विद्युत्सौदामिनीच्छटा॥१२४॥
रामेश्वरे महा(वि?सि)द्धिर्वीरा चैलापुरे सती।
प्रिया रमणके दुर्गा सुवेशा सुरसुन्दरी॥१२५॥
कात्यायनी महादेवी गोवर्द्धनेऽम्बिका तथा।
शुभेश्वरी हरिश्चन्द्रे पुरश्चन्द्रे पुरेश्वरी॥१२६॥
पृथूदके महावेगा मेनाकेऽखिलवर्द्धिनी।
इन्द्रनीले महाकान्ते रत्नवेशा सुशोभना॥१२७॥

वेणुवती में पुण्यवहा, प्रपा(कुण्ड) में पापनाशिनी शंख हारिणी घोररूपा महोदरी, गर्गोच्छेद में महारात्रि, महावन में प्रबला, भद्रेश्वर में भद्रेश्वर प्रिया भद्रेश्वरी, भद्रा में भद्रकाली, विष्णुपद में विष्णुप्रिया रमा, नर्मदा में दारुणा, कावेरी में कल्पेश्वरी, कृष्ण वेणी में भेदिनी, संभेद में शुभवासिनी, शुक्लतीर्थ में शुद्धा, रामेश्वर में प्रभा, महाबोधि तीर्थ में महाबुद्धि तथा पाटल में पाटलेश्वरी, नागतीर्थ में नागवन्दिता नागेश्वरी सुरसा, मदन्त में मदन्ती प्रमदा मदन्तिका, मेघवन में आकाशीय विद्युत के समान कान्ति वाली मेघस्वना, रामेश्वर में महासिद्धि, एलापुर मे सती, रमणक में प्रिया, दुर्गा क्षेत्र में सुरसुन्दरी सुवेशा, गोवर्धन में अम्बिका कात्यायनी, हरिश्चन्द्र तीर्थ में शुभेश्वरी, पुरश्चन्द्र में पुरेश्वरी, पृथूदक में महावेगा, मेनाक पर अखिल वर्धिनी तथा महाकान्तिमान इन्द्रनील पर रत्नवेशा सुशोभना का वास है।

माहेश्वरी महानादे महातेजा महाबला।
पम्पासरसि शारङ्गा पञ्चवट्यां तपस्विनी॥१२८॥
वटीपर्वतिकायां च पञ्चवर्गा सुरङ्गिणी।
सङ्गमे विन्ध्यसङ्गायां विन्ध्यश्रीर्विन्ध्यवासिनी॥१२९॥
महानन्दा नन्दतटे गङ्गावामाचले शिवा।
आर्यावर्ते महार्या त्वं विमुक्तिर्ऋणमोचने॥१३०॥
अट्टहासे च चामुण्डा तन्त्रेशी गौतमेश्वरे।
वेदमयी ब्रह्मविद्या वशिष्ठे त्वमरुन्धती॥१३१॥
हारीते हरिणाक्षी च ब्रह्मावर्ते व्रतेश्वरी।
गायत्री चैव सावित्री कुशावर्ते कुशप्रिया॥१३२॥
हंसीश्वरी हंसतीर्थे परहंसीश्वरीति च।
पिण्डावकरणे धन्या सुरसा सुखदायिनी॥१३३॥
नारायणी वैष्णवी सा गङ्गाद्वारे विमुक्तिदा।
श्रीविद्या बदरीतीर्थे वामतीर्थे महाधृतिः॥१३४॥
जयन्ते च जयन्ती त्वं विजयन्तेऽपराजिता।
विजयायां महाशुद्धिः शारदायां च शारदा॥१३५॥
सुभद्रा भद्रदा भव्या भद्रकालीश्वरे तथा।
महाभद्रे भद्रकाली हयतीर्थे गिरीश्वरी॥१३६॥

महानाद में अति तेजस्विनी शक्तिमयी माहेश्वरी, पम्पासार में शारङ्गा, पञ्चवटी में तपस्विनी, पर्वतिका वटी में पञ्चवर्गा सुरङ्गिनी, विन्ध्यसङ्गा सङ्गम में विन्ध्यवासिनी, नंदा तट पर महानन्दा, गङ्गावामाचल में शिवा, आर्यावर्त में महार्या (महाआर्या), ऋणमोचन में विमुक्ति, अट्टहास में चामुण्डा, गौतमेश्वर में तन्त्रेशी, वशिष्ठाश्रम में वेदमयी ब्रह्मविद्यारूपिणी तुम ही अरुन्धती रूप से स्थित हो। हारीत आश्रम में हरिक्षाणी, ब्रह्मावर्त में व्रतेश्वरी, कुशावर्त में गायत्री-सावित्री रूपिणी कुशप्रिया, हंसतीर्थ में हंसीश्वरी (परम हंसीश्वरी), पिण्डावकरण में सुखदायिनी श्रेष्ठ सुरसा, गङ्गाद्वार में विमुक्तिदा वैष्णवी नारायणी, बदरीतीर्थ में श्रीविद्या, वामतीर्थ में महाधृति, जयन्त में जयन्ती, विजयन्त में अपराजिता, विजया में महाशुद्धि, शारदा क्षेत्र में शारदा, भद्रकालीश्वर में भव्य रूपिणी शुभ प्रदायिनी सुभद्रा, महाभद्र में भद्रकाली तथा हयतीर्थ में गिरीश्वरी वास करती है।

वेददा वेदमाता व वेदेशा वेदमस्तके।
ओघवत्यां महावीर्या महानद्यां महोदया॥१३७॥

चण्डा चात्रिपदे चैव छागलिङ्गे बलिप्रिया।
मातृदर्शे जगन्माता करवीरपुरे सती।।१३८।।
मलिनी रङ्गिणी वामा परमा परमेश्वरी।
सप्तगोदावरे तीर्थे देवशीर्षाखिलेश्वरी।।१३९।।
अयोध्यायां भवानी च जयदा जयमङ्गला।
माधवी मथुरायां च देवकी यादवेश्वरी।।१४०।।
वृन्दा गोपेश्वरी राधा रासवृन्दावने रसे।
कात्यायनी महामाया भद्रकाली कलावती।।१४१।।
चन्द्रमाला महाशान्तिर्महायोगिन्यधीश्वरी।
व्रजेश्वरी यशोदेति व्रजश्रीर्गोकुलेश्वरी।।१४२।।
काञ्च्यां कनककाञ्ची स्यादवन्त्यामतिपावनी।
विद्या विद्यापुरे चैव विमला नीलपर्वते।।१४३।।
राजेशे श्वेतगङ्गेशी विमला पुरुषोत्तमे।
विरजा याग(पू?पु)र्यां च भद्रेशे भद्रकर्णिका।।१४४।।

वेदमस्तक तीर्थ में वेददा वेदमाता वेदेश्वरी, ओघवती में महावीर्या, महानदी में महोदया, अत्रि पद में चण्डा, छागलिङ्ग में बलिप्रिया, मातृदर्श में जगन्माता, करवीर पुर में सती, सप्त गोदावरी तीर्थ में मलिनी, रङ्गिणी, वामा, परमा, परमेश्वरी, देवशीर्षा तथा अखिलेश्वरी, अयोध्या में जयदा जय मङ्गला भवानी, मथुरा में माधवी, यादवेश्वरी देवकी, रासस्थली वृन्दावन में वृन्दा, गोपेश्वरी राधा, ब्रज में कात्यायनी, महामाया, भद्रकाली, कलावती, चन्द्रमाला, महाशान्ति, महायोगिन्यधीश्वरी, व्रजश्री गोकुलेश्वरी व्रजेश्वरी यशोदा, काञ्ची में कनककाञ्ची, अवन्तीपुरी में अति पावनी, विद्यापुर में विद्या, नीलपर्वत में विमला, राजेश में श्वेत गंङ्गेशी, पुरुषोत्तम क्षेत्र में विमला, यागपुरी में विरजा तथा भद्रेश में भद्रकर्णिका स्थित है।

तमोलिप्ते तमोघ्नी च स्वाहा सागरसंगमे।
कुलश्रीवंशवृद्धिश्च माधवी माधवप्रिया।।१४५।।
मङ्गला मङ्गले कोटे राढे मङ्गलचण्डिका।
ज्वालामुखी शिवापीठे मन्दारे भुवनेश्वरी।।१४६।।
कालीघट्टे गुह्यकाली किरीटे च महेश्वरी।
किरीटेश्वरी महादेवी लिङ्गाख्ये लिङ्गवाहिनी।।१४७।।
साक्षात् सर्वत्र भक्तनामभक्तानां कुतोऽपि न।
अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि सिद्धिस्थानानि सुन्दरि।।१४८।।

तमोलिप्त क्षेत्र में तमोघ्नी, सागर सङ्गम में स्वाहा, मधुवन में कुलश्री वंश को वृद्धि करने वाली माधव प्रिया माधवी, मङ्गलकोट में मङ्गला, राढ में मङ्गल चण्डिका, शिवापीठ में ज्वालामुखी, मन्दार में भुवनेश्वरी, कालीघट्ट में गुह्य काली, किरीट में महेश्वरी किरीटेश्वरी महादेवी तथा लिङ्ग संज्ञक तीर्थ में लिङ्ग वाहिनी निवास करती है। भक्तों के लिए ये देवियाँ (देवता) साक्षात् सर्वत्र निवास करते हैं परन्तु अभक्तों के लिए ये कहीं पर भी नहीं हैं। हे सुन्दरि! अब मैं अन्य प्रकार से सिद्ध स्थानों के नामों को कहता हूँ।

सर्वपापविनाशा(र्थि?य)सर्वसिद्धिप्रदानि च।
निर्मितानि शिवेनेह सि(द्ध?द्धि)स्थानानि यानि च॥१४९॥
श्रुत्वा मनसि भाव्यानि प्रकाशान्यधिकारिषु।
अमरेशमहापीठे ईश ओंकारसंज्ञकः॥१५०॥
तत्र दुर्गाद्वयं नाम चण्डिका च महेश्वरी।
प्रभासे सोमनाथादौ देवी च पुष्करेक्षणा॥१५१॥
देवदेवाधिपः शम्भुर्नैमिषे च महेश्वरः।
तत्र प्रज्ञा च देवी च भवानी लिङ्गधारिणी॥१५२॥
पुष्करे च राजगन्धिः पुरुहूता महेश्वरी।
श्रीपर्वते प्रियं नाम शङ्करस्त्रिपुरान्तकः॥१५३॥
मायापि शङ्करी तत्र भक्तानामखिलार्थदा।
जप्येश्वरे महास्थाने शङ्करी च त्रिशूलिनी॥१५४॥
त्रिशूलः शङ्करस्तत्र सर्वपापविमोचकः।
आम्रातकपुरे सूक्ष्मः सूक्ष्माख्या परमेश्वरी॥१५५॥
महाकाले महाकालो महाकाली महेश्वरी।
मध्ये शिवश्च सर्वत्र शर्वाणी परमेश्वरी॥१५६॥

ये सभी सिद्ध स्थान इस संसार में शिव द्वारा निर्मित हैं। सभी स्थान समस्त सिद्धियों को देने वाले तथा सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाले हैं। इनके नामों का श्रवण करने से अधिकारी भक्तों के मन में दिव्य ज्ञानरूपी प्रकाश की उत्पत्ति होती है। अमरेश नामक महापीठ में ओंकार संज्ञक ईश्वर तथा चण्डिका और महेश्वरी नाम वाली दुर्गा की दो मूर्तियां वास करती हैं। प्रभास क्षेत्र में सोमनाथ तथा देवी पुष्करेक्षणा एवं नैमिष तीर्थ में देवाधिदेव महेश्वर शम्भु और प्रज्ञा देवी तथा लिङ्ग धारिणी भवानी वास करती है। पुष्कर में राजगन्धि तथा पुरुहूता (अनेकों के द्वारा आवाहिता) महेश्वरी, श्री पर्वत पर प्रियसंज्ञक त्रिपुरारि शंकर तथा भक्तों को सर्वस्व प्रदान करने वाली माया शङ्करी भी स्थित

है। महास्थान जप्येश्वर में त्रिशूलधारिणी शंकरी स्थित है, यहाँ त्रिशूल ही सर्वपापनाशक शंकर स्वरूप है। आम्रातक पुर में सूक्ष्म संज्ञक शिव तथा सूक्ष्मा नाम वाली परमेश्वरी स्थित है। महाकाल में महाकाल शिव तथा महेश्वरी महाकाली हैं। सब स्थानों के मध्य में शिव तथा परमेश्वरी शर्वाणी वास करती है।

केदारेश्वर ईशानो देवी सन्मार्गदायिनी।
भैरवे भैरवः शम्भुभैरवी परमेश्वरी॥१५७॥
गणक्षेत्रे मङ्गलाख्या शिवोऽहं प्रपितामहः।
कुरुक्षेत्रे शिवः स्थाणुः शिवा स्थाणुप्रिया परा॥१५८॥
इष्टलाभे स्वयंभूश्च देवी स्वायम्भुवा मता।
उग्रः कनखले प्रोक्तः शिवोग्रा शिववल्लभा॥१५९॥
विमलेश्वरे विश्वस्तु विश्वा विश्वप्रिया सदा।
अट्टहासे महानन्दो महानन्दा महेश्वरी॥१६०॥
महान्तको महेन्द्रे च पार्वती च महान्तका।
भीमेश्वरो भीमपीठे शिवा भीमेश्वरी तथा॥१६१॥
वस्त्रपादे भवो नाम भवानी भुवनेश्वरी।
अद्रिकूटे महायोगी रुद्राणी परमेश्वरी॥१६२॥
अविमुक्ते महादेवो विशालाक्षी शिवा परा।
महालये हरो रुद्रो महाभागा शिवा तथा॥१६३॥
महाबलश्च गोकर्णे शिवा ज्ञेया च चण्डिका।
भद्रवर्णे महादेवो भद्रा च कर्णिका तथा॥१६४॥
सुवर्णाख्ये सहस्राक्ष उत्पला परमेश्वरी।
स्थाणुसङ्के शिवः स्थाण्वीश्वरः स्थाण्वीश्वरा शिवा॥१६५॥

केदारेश्वर में ईशान (शिव) तथा देवी सन्मार्गदायिनी, भैरव क्षेत्र में भैरव रूप शिव तथा भैरवी परमेश्वरी, गणक्षेत्र में मङ्गला देवी तथा प्रपितामह (ब्रह्मा) रूप से मैं शिव, कुरुक्षेत्र में स्थाणु शिव तथा स्थाणु प्रिया परा देवी रूप में शिवा तथा इष्ट लाभ (प्राप्ति) में स्वयम्भू (शिव) तथा देवी स्वयम्भुवा स्थित हैं। कनखल में शिव उग्र तथा शिववल्लभा उग्रा कहलाती (हुई स्थित) है। विमलेश्वर (विश्वेश्वर) में (शिव रूप) विश्व तथा विश्व प्रिया विश्वा, अट्टहास में महानन्द (रूप से शिव) तथा महेश्वरी महानन्दा, महेन्द्र (पर्वत) पर (शिवरूप) महान्तक तथा महान्तका नाम से पार्वती, भीमपीठ पर भीमेश्वर तथा भीमेश्वरी रूप शिवा, वस्त्रपाद में भव (रूप शिव) तथा भुवनेश्वरी भवानी, अद्रिकूट पर महायोगी (रुद्र) तथा परमेश्वरी

रुद्राणी वास करती है। अविमुक्ति क्षेत्र में महादेव तथा विशालाक्षी रूप शिवा, महालय में हर रूप से रुद्र (शिव) तथा महाभागा (रूप से) शिवा गोकर्ण तीर्थ में महाबल रूप शिव तथा चण्डिका नाम से शिवा, भद्रवर्ण (भद्रकर्ण) में महादेव तथा भद्रकर्णिका, स्वर्ण क्षेत्र में सहस्राक्ष (शिव) तथा परमेश्वरी उत्पला एवं स्थाणु सङ्ग में स्थाण्वीश्वर (रूप) शिव तथा स्थाण्वीश्वरी रूप (नाम से) शिवा वास करती है।

कमलालये म(हास्नाने?हेशानो)कमलाक्षो महेश्वरः।
कमलाक्षी महेशानी सकलार्थप्रदायिनी॥१६६॥
छगलाण्डे कपर्दी च प्रसरा च महेश्वरी।
ऊर्ध्वरेता द्विरण्डे च सन्ध्याख्या परमेश्वरी॥१६७॥
माकोटाख्ये महाकोटः शिवा च मुण्डकेश्वरी।
मण्डलेश्वरपीठे च शङ्करः खाण्डवी शिवा॥१६८॥
कालञ्जरे नीलकण्ठो हरकाली शिवा मता।
स्थणवीश्व(रो?रे)स्थलो नाम्ना स्थलाख्या परमेश्वरी॥१६९॥
श्रीमद्व्याघ्रपुरे साक्षाद्धरनामा सभापतिः।
शिवः सभापतिर्नाम यत्र नृत्यति शङ्करः॥१७०॥
आत्मानन्दमहामोदपूर्णानन्दमहार्णवम् ।
नृत्यन्तं यत्र देवेशं देवेशी परिपश्यति॥१७१॥
यत्र आशु महादेवो भक्तानां वरदो भवेत्।
नृत्यन्तं यत्र देवेशं वीक्ष्य लोको विमुच्यते॥१७२॥

कमलालय (कमल सरोवर) में महेशान महेश्वर (शिव) कमलाक्ष नाम से तथा सभी पदार्थों को देने वाली महेशानी कमलाक्षी नाम से स्थित है। छगलाण्ड में कपर्दी तथा महेश्वरी प्रसरा (नाम से शिवा), द्विरण्ड में ऊर्ध्वरेता (शिव) तथा सन्ध्या नाम वाली परमेश्वरी (शिवा) महाकोट में महाकोट (शिव) तथा मुण्डकेश्वरी शिवा, मण्डलेश्वर पीठ में शङ्कर तथा खाण्डवी शिवा, कालञ्जर में नीलकण्ठ तथा हरकाली (नाम से) शिवा, स्थाण्वीश्वर में स्थल (शिव) तथा स्थला (संज्ञका) परमेश्वरी (शिवा) तथा श्रीमद्व्याघ्रपुर में साक्षात् हर सभापति नाम से वास करते हैं। यहाँ सभापति नाम वाले शिव (नित्य) नृत्य करते हैं।

परमानन्दरूप आत्मानन्द से पूरित अखण्डानन्द रूप महासागर में डूबकर यहाँ देवेश (शिव) नृत्य करते हैं और देवेशी (शिवा) उन्हें देखती है। यहाँ महादेव शीघ्र ही (प्रसन्न होकर) भक्तों के लिए वरदाता हो जाते हैं। इस नृत्य स्थल तीर्थ का दर्शन कर संसार (मनुष्य) मुक्त हो जाता है।

।। तीर्थ-माहात्म्य-वर्णनम्।।

पुण्यस्थानेषु सर्वेषु स्थानमेतन्महोत्तमम्।
यत्र कर्माणि सर्वाणि अक्षयाणि भवन्ति वै।।१७३।।
अस्मिन् महोत्तमे स्थाने शिवगङ्गाख्यमद्भुतम्।
तटाकमस्ति तत्तीरे दक्षिणे नृत्यतीश्वरः।।१७४।।
तटाकेऽस्मिन् वसन् स्नात्वा सभानाथं समीक्ष्य च।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेच्छ्रद्धासमन्वितः।।१७५।।
यानि ते कथितान्यत्र सदा तिष्ठन्ति देवताः।
पितरः सिद्धगन्धर्वाः सिद्धयः सर्वसिद्धिदा।।१७६।।
अत्र दत्तं हुतं जप्तं स्नानमक्षयपुण्यदम्।
यद्यत् प्रकीर्तितं नाम तेनैव परिपूज्य च।।१७७।।
प्रणवादिहृदन्तेन लभतेऽभीष्टमुत्तमम्।
भोजयेद् ब्राह्मणान् योऽत्र सोऽक्षयं फलमश्नुते।।१७८।।
इह नानासुखं भुक्त्वा हरगौरीपुरं व्रजेत्।
शोकदुःखविनाशाय करुणानिधिरीश्वरः।।१७९।।
निर्ममे सर्वसंपत्तौ पुण्यक्षेत्राणि भूतले।
अनेकपुण्यशुद्धानामनेककालसाधनैः ।।१८०।।
अस्तिकानां भवेदत्र निवासः साधनं श्रुतिः।
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यमत्र साधनमुत्तमैः।।१८१।।

सभी पुण्यप्रद स्थानों में इस (श्रीमद्व्याघ्रपुर नामक) स्थान का महत्व सर्वोत्तम है। इस स्थान पर किये सभी सत्कर्मों का पुण्य रूप फल अक्षय होता है। इसी स्थान पर शिवगङ्गा नाम का एक अद्भुत तालाब है। इसी के दक्षिण तट पर ईश्वर शिव नृत्य करते हैं। इस तालाब के निकट निवास करते हुए नित्य स्नान तथा नृत्यरत सभानाथ का दर्शन करके मनुष्य को श्रद्धा सहित अपने अभीष्ट मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिए। यहाँ जिन-जिन स्थानों के नाम कहे गये हैं, वहाँ सदैव देवता, पितर, सिद्ध, गन्धर्व तथा सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली सिद्धियाँ निवास करती हैं। इन तीर्थ स्थानों में जो जो देवता स्थित हैं, उनके चतुर्थी युक्त नाम से पूर्व 'ॐ' तथा पश्चात् में 'नमः' जोड़कर नाम मन्त्रों (ॐ अमुक अमुकाभ्यां-शिवा शिवाभ्यां नमः रूप से) द्वारा उनका पूजन (स्नानोपरान्त) करके जो कुछ भी जप, हवन, दानादि पुण्य कर्म किया जाता है, उन सबका फल अविनाशी होता है। जो मनुष्य यहाँ ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करता है उसे भी अक्षय फल की प्राप्ति होती है। वह पुण्यात्मा मनुष्य इस लोक में सभी सांसारिक

सुखों को भोगकर अन्त में शिव-शिवा के लोक को प्रस्थान करता है। अत्यन्त करुणाशील ईश्वर ने मनुष्यों पर कृपा करके उनके शोक तथा दुख का निवारण करने के लिए एवं सभी सम्पत्तियों (सुखों) को प्रदान करने के लिए ही इस पृथ्वी लोक में पुण्य-प्रद क्षेत्रों (तीर्थों) का निर्माण किया है। जन्म-जन्मान्तरों (तथा वर्तमान जन्म में भी) किये गये अनेकों पुण्यों तथा दीर्घकाल तक की गई साधनाओं के द्वारा शुद्ध चित्त हुए आस्तिक (ईश्वर पर आस्था रखने वाले भक्ति परायण) मनुष्य ही यहाँ निवास तथा साधन कर पाते हैं, ऐसा कहा जाता है। इसलिए उन मनुष्यों को जिन्हें यहाँ निवास करने का शुभ अवसर प्राप्त है, प्रयत्नपूर्वक श्रेष्ठ साधनों का सदैव अभ्यास करते रहना चाहिए।

॥ अक्षमालामयपीठ माहात्म्यं तन्नाम वर्णनञ्च॥

इदानीं शृणु चार्वङ्गि पीठं सर्वाङ्गसुन्दरम्।
अक्षमालामयं पीठं(ब्रूहि?विद्धि)मे परमेश्वरि॥१८२॥
यत्र सिद्धयन्ति कार्याणि स्थितिस्ते शङ्करस्य च।
विष्णोरगाधबोधस्य तत्क्रियाया महेश्वरि॥१८३॥
अन्येषां चैव देवानां युष्मत्पदनिवासिनाम्।
प्रसादो हि भवत्याशु तत्र मे प्रीतिरुत्तमा॥१८४॥
प्रिये ते कथिष्यामि अक्षमालात्मकं परम्।
सन्निध्यं यत्र सर्वेषां तस्मादादि दिवौकसाम्॥१८५॥
अस्माभिश्च महद्भिश्च यद्यत् स्थानमलंकृतम्।
तत्तन्महोत्तमं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदं प्रिये॥१८६॥
महान्तो यत्र तिष्ठन्ति साधयन्ति परं पदम्।
तत्तन्महोत्तमं स्थानं सर्व कल्याणप्रदं प्रिये॥१८७॥
अमरेशपुरं चैवसुरान्तकं पुरं तथा।
तत्तन्महोत्तमं स्थानं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥१८८॥

हे सुन्दर शरीराङ्ग वाली परमेश्वरि! अब तुम मेरे द्वारा अक्षमाला स्वरूप पीठों के नाम श्रवण करो। हे महेश्वरि! इन स्थानों पर अपने अपार ज्ञान तथा क्रियाशक्ति के साथ विष्णु, शंकर तथा तुम्हारी (भी) स्थिति होने के कारण साधकों के सभी कार्य सिद्ध होते हैं। वहाँ आपके चरणों में निवास करने वाले (चरणों की सेवा में रत रहने वाले) अन्य स्थित देवताओं की कृपा से साधक के चित्त में मेरे प्रति श्रेष्ठ भक्ति उत्पन्न हो जाती है। हे प्रिये! मैं उन अक्षमाला की भाँति स्थित स्थानों को, जिनके समीप सभी देवगण सदा स्थित रहते हैं, तुमसे अब कहूँगा। मुझ जैसे श्रेष्ठ देवताओं तथा महान पुरुषों

द्वारा सुशोभित सर्वसिद्धप्रद स्थानों को कहता हूँ। इन सभी उत्तम कल्याणप्रद स्थानों पर महान शुद्ध अन्तःकरण वाले साधक निवास करते हुए साधना करते हैं और इसके फलस्वरूप परम पद को प्राप्त करते हैं। अमरेशपुर तथा वैसे ही असुरान्तकपुर आदि उन-उन सभी स्थानों को जो मनुष्यों को सभी सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, मैं कहता हूँ।

सतीभिः साधुभिः कान्ते यद्यत् स्थानमलंकृतम्।
अम्बिकापीठमत्यन्तमनन्तपुरमेव च॥१८९॥
अनिरुद्धपुरं वेत्सि तथादितिपुरं परम्।
अणिमादिपुरं चैव अश्वमेधपुरं परम्॥१९०॥
अन्नपूर्णामहापीठमम्बुजाख्यपुरं तथा।
आदिपीठानन्दपीठौ चामोदावादिसूकरौ॥१९१॥
आशु सिद्धिपुरं चैव यथाद्यन्तपुरं मुखम्।
अकम्पादित्यपीठौ च आद्यादिनाथपीठकौ॥१९२॥
इष्टनामपुरं चैव इन्दिरापुरमेव च।
इलोदयगिरिश्चैव इलान्तेन्दुपुरे प्रिये॥१९३॥
इन्द्राणीन्द्रेश्वरश्चैव इन्द्रानन्दपुरं तथा।
पुरमिन्दुवती-नाम तथेन्दुविजयं पुरम्॥१९४॥
ईश्वरीश्वरयोगौ च ईशानन्देश्वरीपुरम्।
ईशान्यैशपुरं देवि कथितं पीठमुत्तमम्॥१९५॥
कामरूपं प्रियं वाराणसी नैपालमेव च।
पौण्ड्रवर्द्धनपीठं च पौरक्यं कान्यकुब्जकम्॥१९६॥
पुण्याद्रिमर्बुदं चैव एकाम्राम्रातकेश्वरम्।
त्रिस्रोतः कामकोटं च तथा भृगुपुरं वरम्॥१९७॥
कैलासपीठं केदारं शुभं चन्द्रपुरं तथा।
श्रीपुरं च तथा कन्यापुरं जालन्धरं तथा॥१९८॥

हे प्रिये! सदाचरणशीला साध्वियों तथा साधु पुरुषों द्वारा सुशोभित जो-जो स्थान हैं, उनके नामों को सुनो। अति उत्तम अम्बिका पीठ, अनन्तपुर, अनिरुद्धपुर तथा परम श्रेष्ठ अदितिपुर, अणिमादिपुर, परं अश्वमेघपुर, महापीठ रूप अन्नपूर्णा (पीठ), अम्बुजापुर, आदि पीठ तथा आनन्द पीठ, आमोद पीठ, आदिसूकर क्षेत्र, शीघ्र सिद्धिप्रद सिद्धिपुर, प्रसिद्ध आद्यन्तपुर, अकम्प पीठ, आदित्य पीठ, आद्या पीठ, आदिनाथ पीठ, इष्टनामपुर, इन्दरापुर, इलोदयगिरि, इलान्तपुर, इन्दुपुर, इन्द्राणी, इन्द्रयुक्त इन्द्रानन्दपुर, इन्दुवतीपुर, इन्दु विजयपुर,

ईश्वर तथा ईश्वरीयुक्त ईशानन्देश्वरीपुर, ईशान्यैशपुर जिसे उत्तम पीठ कहा जाता है। कामरूप पीठ, वाराणसी पीठ, नेपाल पीठ, पौण्ड्रवर्धन पीठ, मनोहर कान्यकुब्ज पीठ, पवित्र अर्बुद गिरि जो एकाम्रा तथा आम्रातकेश्वर से युक्त है, त्रिस्रोत युक्त कामकोट, श्रेष्ठ भृगुपुर, कैलास पीठ, केदार(नाथ), शुभ चन्द्रपुर, श्रीपुर, कन्यापुर (कन्याकुमारी) तथा जालन्धर पीठ।

मालवं बिल्वपीठं च देवीकोटं तथैव च।
गोकर्णं मारुतेशं च तथाट्टहासमेव च॥१९९॥
कोल्लानामकगोत्रं च एलापुरमतिप्रियम्।
महापथपुरं चैव ओंकारपुरमेव च॥२००॥
जयदं च जयपुरमुज्जयिनीपुरं तथा।
हरिद्रापीठकं चैव प्रियं क्षीरपुरं प्रियम्॥२०१॥
गजाह्वयपुरं चैव उड्डीशपुरमेव च।
प्रयागं च तथा षष्ठीपुरमेव शिवप्रदम्॥२०२॥
मायापुरमतिश्रेष्ठं पुरं च सौरभेश्वरम्।
श्रीशैलं मेरुपीठं च मलयं च महागिरिम्॥२०३॥
महेन्द्रपुरपीठं च तथा बलिपुरं प्रियम्।
हिरण्यपुरपीठं च महालक्ष्मीपुरं तथा॥२०४॥
चण्डीपुरमतिश्रेष्ठं तथा छायापुरं प्रिये।
ज्ञात्वा पीठमिदं देवि मद्भक्तेषु प्रकाशय॥२०५॥

मालव (अवन्तिका) पीठ, विल्व पीठ, देवी कोट, गोकर्ण क्षेत्र, मारुतेश, अट्टहास, कोल्ला नामक गोत्र (कोल्हापुर), अतिप्रिय एलापुर, महापथपुर, (स्वर्गारोहण तीर्थ), ओंकारपुर (ओंकारेश्वर), जयप्रद जयपुर, उज्जयिनी पुर, हरिद्रा पीठ, प्रिय क्षीरपुर, गजाह्वय (हस्तिना)पुर, उड्डीसपुर, प्रयाग, शिवप्रद षष्ठीपुर, अतिउत्तम मायापुरी, सौरभेश्वर, श्री शैल, मेरु पीठ, महागिरि मलयाचल, महेन्द्रपुर पीठ, प्रिय बलिपुर, हिरण्यपुर पीठ, महालक्ष्मीपुर, अतिश्रेष्ठ चण्डीपुर तथा छायापुर, हे प्रिय! इन पीठों को जानकर मेरे भक्तों में उनके कल्याण के लिए प्रकाशित (प्रकट) करो।

॥तीर्थानां प्राकट्य प्रयोजनं भक्ति स्वरूपं तत्फल निरूपणञ्च॥

समुद्धर इमाँल्लोकान् मत्सम्बन्धविधानतः।
संसारानलसंतप्तान् चिन्तावायुविघूर्णितान्॥२०६॥
कृपयामृतवर्षिण्या अभिषिच्योद्धर प्रिये।
पुण्यमस्ति महत् कान्ते यशोऽप्यस्ति महत्सुखम्॥२०७॥

महाजनप्रसादोऽस्ति मत्प्रीतिर्लोकरक्षणे।
मत्प्रसङ्गो मदालापो मत्सवो मदनुग्रहः॥२०८॥
मत्कर्म मम सम्बन्धो मन्नाम मम चिन्तनम्।
मत्कथा मदनुध्यानं मदावेशो मदर्चना॥२०९॥
मदीक्षणं मदैक्यं च मन्मतिर्मन्नतिः स्तुतिः।
मद्गानं मे पुरे नाट्यं मत्कर्मोद्योग एव च॥२१०॥
मन्नाम वै मन्मनवो मच्चेष्टा मत्प्रियस्पृहा।
एकनैव कृतार्थश्च मदनुग्रहभाग् भवेत्॥२११॥
यदिच्छेत् तीर्थपीठेषु तदाशु लभते प्रियम्।
मन्मन्त्रग्रहणादेव निष्पापो जायते पुनः॥२१२॥
साधनाल्लभते सिद्धिः सिद्धक्षेत्रेष्वदीर्घतः।
मन्मनुग्रहणं (न्यू?नूं)नं मत्तोषकारणं परम्॥२१३॥
गृहीत्वा नार्चयेद्यस्तु न जाने किं स मे पुनः।
स्वर्गतः सुरवृक्षोऽपि न वै भवति कामदः॥२१४॥
नाश्रयेद्यदि तन्मूलं को दोषस्तस्य तत् प्रिये।
चिन्तामणिर्गृहेऽप्यस्ति न तत्र कापि च स्पृहा॥२१५॥
को दोषस्तस्य यत्नेन सिध्यन्ति सकलाः क्रियाः।
तस्माद्यत कथितं तुभ्यं तत्र यत्नः फलप्रदः॥२१६॥

हे प्रिये! इस संसार के समस्त प्राणियों (मनुष्यों) की मेरे साथ भक्ति रूप सम्बन्ध से संयुक्त करके अर्थात् इन्हें मेरी भक्ति प्रदान कर, इनका उद्धार करो। ये सभी प्राणी सांसारिक दावानल से सन्तप्त (जन्म-मृत्यु रूपी कष्ट से पीड़ित) तथा आशा-कामना रूपी प्रबल झंझावात से विक्षिप्त चित्त हो रहे हैं, इन पर अपनी कृपा रुपी अमृत की वर्षा करके पूर्ण अभिषिक्त कर इनका उद्धार करो। इससे हे प्रिये! तुम्हें अति पुण्य, यश तथा महान सुख की प्राप्ति होगी। तुम्हारे इस कार्य से महान पुरुषों को प्रसन्नता होगी, यह मेरी प्रीति का कारण होगा तथा इससे लोक संरक्षण का कार्य भी सम्पन्न होगा।

मेरा संग करना अर्थात् मेरे तीर्थों में निवास करना (अथवा मेरी भक्ति करना) मेरे सम्बन्ध में वार्तालाप (मेरी कथाओं की चर्चा) करना, मेरे लिए यज्ञ पूजन तर्पणादि करना, मेरी कृपा का आकांक्षी (अथवा मेरे लिए ही कुछ ग्रहणशील) होना, मेरी प्रसन्नता के लिए ही कर्म करना, मुझसे सम्बन्धित (मेरे) नामों तथा मेरे स्वरूप का (स्मरण, चिन्तन ध्यान) करना, मेरी कथाओं को सुनना, उन पर सतत् मनन करना (अथवा मेरा निरन्तर ध्यान करना),

मुझसे सदा आवेशित रहना (स्वयं को शिवरूप-शिव से एकात्म समझना), मेरा पूजन करना, मेरा दर्शन करना, मुझसे अभेदभाव रखना, मुझमें ही अपनी मन-बुद्धि को लगाये रखना, मुझे प्रणाम तथा मेरी स्तुति करना, मेरे चरित्रों का गान, मेरे सम्मुख अभिनय, मेरे लिए ही कर्म करने का प्रयास, मेरे नाम तथा मन्त्रों का जप, मेरी प्रसन्नता के लिए ही किसी पदार्थ की अभिलाषा, यहाँ तक कि अपनी सभी शारीरिक व मानसिक क्रियाओं को मेरे लिए ही करना, इनमें से एक में भी यदि कोई मनुष्य पूर्ण रूप से सफल हो जाता है तो वह मेरी कृपा का भागी हो जाता है। ऐसा मनुष्य तीर्थ पीठों में जो भी कामना करता है उसे वह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। मनुष्य मन्त्र ग्रहण करते ही पापरहित हो जाता है, फिर जब वह सिद्धि क्षेत्रों में साधना करता है तो उसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। किसी मनुष्य द्वारा मेरा मन्त्र (दीक्षा द्वारा) ग्रहण करना मेरी परम सन्तुष्टि का कारण होता है। परन्तु इसके बाद यदि वह मेरा अर्चन नहीं करता है तो निश्चय ही वह मेरे प्रभाव को नहीं जानता, ऐसे में मैं भला उसके लिए क्या कर सकता हूँ। स्वर्ग में स्थित कल्पवृक्ष भी तब तक अभीष्ट फल नहीं प्रदान करता जब तक कि कोई उसके मूल का आश्रय नहीं लेता अर्थात् उसके समीप नीचे नहीं आता। यदि कोई ऐसा नहीं करता तो उसमें उस वृक्ष का क्या दोष है। चिन्तामणि के घर में होने पर भी यदि किसी को उसकी इच्छा ही नहीं है तो इसमे उस मणि का क्या दोष? सत्य तो यह है कि प्रयास करने पर ही सभी क्रियाएं (साधनायें) सिद्ध होती हैं। इसलिए जो तुमसे सिद्ध क्षेत्र की बात कही है, वहाँ प्रयास करने पर ही वे फलप्रद होते हैं।

॥ दुर्भगस्य नरस्य स्थितिम्॥

बिना यत्नेन किं किं स्यान्न जाने विजये सखि।
सन्ति तीर्थानि सर्वाणि भास्करोऽयं हुताशनः॥२१७॥
तारकाश्चन्द्रमा ज्योतिर्जलदा जलमेव च।
वसुधादिग्रहा येऽन्ये दिशो विदिश एव च॥२१८॥
तुलसी ब्राह्मणाश्चैव पुराणानि बहूनि च।
शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सारो धर्मः सनातनः॥२१९॥
मद्भक्त्यवितथश्रद्धाशरणाश्च निरन्तरम्।
उपाया विविधाः सन्ति स्वपरित्राणहेतवः॥२२०॥
तथापि न यतन्तेऽहो तथा चेच्छन्ति किल्विषम्।
राजकोपप्रशमार्थे किं किं न स्यात्तदर्थिनः॥२२१॥

हे विजये! सखि! बिना प्रयत्न (परिश्रम) किये क्या कभी कुछ प्राप्त करना संभव है, ऐसा तो मैं कुछ भी नहीं जानता। मनुष्य को स्वयं ही अपनी रक्षा के लिए के लिए, सांसारिक दुखों से मुक्त होकर सुख प्राप्ति के लिए सभी तीर्थ उपस्थित हैं, सूर्य (की उपासना), अग्नि (की उपासना), चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, मेघ, पृथ्वी आदि ग्रहों (की उपासना), दिशाएं-अन्तर्दिशाएं, तुलसी, ब्राह्मण (वेद स्मृति) पुराणादि शास्त्रों (के धर्मोपदेश) तथा सनातन धर्म के साररूप शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय की प्रचलित साधना पद्धतियाँ आदि अनेकों उपाय उपलब्ध हैं, फिर भी यदि वह अपने कल्याण का उपाय न करके पाप के मार्ग का अनुसरण करता है तो यह बड़े ही दुख की बात है। उपाय के इच्छुक मनुष्यों के लिए राजकोप (स्वदुर्भाग्य) के शमन हेतु क्या-क्या साधन उपलब्ध नहीं है अर्थात् अनेकों उपाय उपस्थित हैं।

सुखदुःखोपभोगश्च देशाद् देशान्तरं तथा।
प्राप्याप्राप्ये तथा वस्तू दिवा रात्रिस्तथैव च॥२२२॥
इन्द्रियस्पर्शभोगाश्च मेध्यामेध्यं च दर्शने।
यत्नायत्नकृतं कार्यं सिक्तासिक्तमहोदधिः॥२२३॥
भुक्ताभुक्तशरीरं तु सुवेशश्च कुवेशकः।
प्रियवागप्रियवाक् च दूरं निकटमेव च॥२२४॥
सुखं दुःखं तथा यच्च नानाकर्म प्रियाप्रियम्।
सर्वेषां हासवृद्धी च वपुषां निर्गमागमौ॥२२५॥
धनानां स्थितिनाशौ च गन्धानां च क्षयस्थिति।
वयोयौवनरूपाणां प्रक्रमं सर्वमेव च॥२२६॥
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्तो ज्ञानिनोऽज्ञानिनः सदा।
तस्माच्छ्रद्धामयं मन्त्रं(सर्वं)श्रद्धा हि भावसिद्धिदा॥२२७॥
अस्मासु भावना यस्य योऽस्मासु प्रतिपद्यते।
तस्मात् साधुपदे सद्भिर्गन्तव्यमतियत्नतः॥२२८॥

मनुष्य को अपने जीवन में अनेकों परस्पर विरुद्ध परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जीवन कभी सुख रूपी प्रकाश किरण से भर जाता है तो कभी दुख का घोर अन्धकार छा जाता है। एक स्थान से दूसरे स्थान सुख की प्राप्ति के लिए अथवा विवश होकर भटकना पड़ता है। जो वस्तु प्राप्त है उसके संरक्षण तथा अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के उपाय में दिन-रात चिन्तामग्न रहना पड़ता है। भोगों के प्रति इन्द्रियासक्ति के कारण पवित्र-अपवित्र वस्तुओं पर दृष्टि डालनी पड़ती है। इन शुद्ध-अशुद्ध रूप इन्द्रिय-भोगों की

प्राप्ति के लिए सत् असत् मार्गों का अवलम्बन लेना पड़ता है। उचित-अनुचित कर्म रूप महासागर में डूबा हुआ मनुष्य केवल कुछ ही कर्मों के लिए प्रयत्न कर पाता है, शेष के लिए तो केवल स्वप्न देखते ही जीवन व्यतीत हो जाता है। शरीर भी कभी भोगों के अनुकूल तो कभी प्रतिकूल होता है। कभी शरीर पर सुन्दर वेश धारित होता है तो कभी कुरुचिपूर्ण परिधान होता है। कभी प्रिय वाणी बोलनी तथा सुनने को मिलती है तो कभी अप्रिय कहना और सुनना पड़ता है। स्वार्थ वश किसी स्थान अथवा व्यक्ति से दूर होना पड़ता है तो कभी किसी के समीप होना पड़ता है। सुख-दुख के हेतु भूत अनेकों प्रकार के प्रिय तथा अप्रिय कर्म है जिसे मनुष्य को इच्छा-अनिच्छा से करने ही पड़ते हैं। इन सभी परिस्थितियों तथा पदार्थों में सदैव चक्रवत न्यूनता-महत्ता का क्रम चलता रहता है और इसी तरह ही मनुष्यों के जीवन-मरण का क्रम भी निरन्तर गतिशील रहता है। बड़े-बड़े वैभवशाली धनवान मनुष्य राजा-महाराजा अपने ऐश्वर्य से पतित (रहित) होकर भिक्षुक हो जाते हैं। सुगन्धित पदार्थों (सौन्दर्य-सुषमा युक्त वस्तुओं) की सुरभि (लावण्य) समय के साथ क्षीण हो जाती है। आयु, युवावस्था, शारीरिक सौन्दर्य, सभी अपने विनाश की ओर ही क्रमशः गतिमान हैं। यह सब देखते हुए भी जो नहीं देखता अर्थात् इन्हीं विनाशशील वस्तुओं की आशा-अभिलाषा तथा प्राप्ति के साधनों में ही अपना अमूल्य जीवन नष्ट करने में लीन है, वह मनुष्य लौकिक दृष्टि से ज्ञानी होते हुए भी वास्तव में अज्ञानी ही है। इसलिए सभी मन्त्रों (जो स्वयं भी श्रद्धा रूप ही है) तथा उनकी साधनाओं (एवं मन्त्राधिष्ठित देवताओं तथा स्वगुरु) के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास रखते हुए मुक्ति रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर संलग्न हो प्रयत्न करते रहना चाहिए। कहा भी गया है ''विश्वासो फलदायकः'। श्रद्धा एवं विश्वास ही वास्तव में साधना के माध्यम से साधक को फलप्रदान करता है। इसीलिए इन मन्त्रों तथा साधनाओं में जिन्हें पूर्ण विश्वास होता है वे ही इस मार्ग पर अग्रसर होते हैं। इसलिए जो सज्जन है, सद्विवेक सम्पन्न हैं उन्हें मोक्ष पद की प्राप्ति हेतु इस साधना मार्ग पर अत्यन्त उत्साह, लगन तथा परिश्रम से शीघ्र ही चल देना चाहिए।

।। मुक्त्यर्थे प्रवृत्त्युपदेशः।।

प्रमादादपि नासाधुपथे वै ज्ञानदृष्टिभिः।
इति सर्वं समालोच्य यथार्थं बुद्धय पण्डिते।।२२९।।
आचर स्वं प्रियं धर्मं प्रवर्तय शुचिव्रतम्।
मत्पदाम्बुजसेवासु व्रजन्तु मम सन्निधिम्।।२३०।।

क्रीडन्तु मज्जनैः सार्धं प्राप्नुयुः परनिर्वृतिम्।
एतैर्मदुपदेशैस्त्वं शृणु वार्तां महामते॥२३१॥
त्वत्प्रसादादिमे लोकाः सूरिणः स्युर्महाप्रिये।

ज्ञान-दृष्टि सम्पन्न सत्पुरुषों को भूलकर भी कभी असत् मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार सभी बातों पर भली-भाँति विचार करके जो मनुष्य अपने कल्याण के लिए गुरु तथा शास्त्रों के द्वारा उपदेशित मार्ग पर चलता है, वही यथार्थ ज्ञानी तथा पण्डित (सत् असत् विवेकवती बुद्धि युक्त) है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने प्रिय (शास्त्रानुमोदित वर्णाश्रमानुसार) धर्म का विधिवत् आचरण कर, पवित्र व्रत-नियमों का पालन करे तथा मेरे चरण कमलों की सेवा में निरन्तर संलग्न रहता हुआ मेरी समीपता (मेरे लोक की) प्राप्ति करे। मेरे भक्तों के साथ क्रीडा करते हुए (सत् साधनों को आनन्दपूर्वक क्रीडा की भाँति करते हुए मेरा ध्यान-पूजन-गुणानुवाद करते तथा आनन्द युक्त क्रीडावत् जीवन व्यतीत करते हुए) मोक्ष की प्राप्ति हेतु उपाय कर उसे उपलब्ध करे। हे महामते! महाप्रिये! मेरे इस उपदेश को सुनो और इस हमारी वार्ता (बात-चीत) को संसार में विस्तृत करो, तुम्हारी कृपा से इस संसार के सभी मनुष्य विद्वान हों तथा अपने परम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करें।

॥पीठेषु देव्याः प्रिय-नाम-वर्णनम्॥

अत्र ते प्रियनामानि शृणुष्व नगनन्दिनि॥२३२॥
कामेशा कामरूपे त्वं पूर्णा काश्यां विमुक्तिदा।
नेपाले पुण्यदा पुण्या सुवेशा पौण्ड्रवर्द्धने॥२३३॥
धर्मबुद्धिः सुधा चैव सुखदा पापमोचनी।
पौरक्ये परमानन्दा ब्रह्माणी कान्यकुब्जके॥२३४॥
पुण्याद्रौ च महापुण्या पूर्णा यज्ञफलेश्वरी।
कात्यायन्यर्बुदे देवि धनदा शिववल्लभा॥२३५॥
एका चैकाम्रके देशे सुरूपेशाम्रकेश्वरे।
त्रिपुरे सुन्दरी दिव्यरूपाखिलमनोहरा॥२३६॥
कामकोटे महापीठे प्रमदा मदनालसा।
कामेश्वरी रतिश्चैव भृगुपुर्यां व्रजेश्वरी॥२३७॥
व्रजेशा च तपोलक्ष्मीः कैलासे भुवनेश्वरी।
केदारे वरदा चैवामृता चन्द्रपुरे सिता॥२३८॥
कलावती प्रभेशा च श्रीपुरे श्रीरमा प्रिया।
कुमारी ब्रह्मचर्या च कन्या च कन्यकापुरे॥२३९॥

जालन्धरे महापीठे नागर्याग्निमुखी शुभा।
ज्वालामुखी लोलजिह्वा सुवेशा च सुरङ्गिणी।।२४०।।

हे पर्वतराज हिमालय-पुत्रि! अब तुम अपने प्रिय नामों को सुनो। कामरूप में तुम कामेश्वरी, काशी में विमुक्तिदा तथा अन्नपूर्णा, नेपाल में पुण्यदा, पुण्या तथा सुवेशा, पौण्ड्रवर्धन में धर्मबुद्धि, सुधा, सुखदा तथा पापमोचनी, पौरक्य में परमानन्दा, कान्यकुब्ज देश में ब्रह्माणी, पुण्याद्रि पर महापुण्या, पूर्णा तथा यज्ञफलेश्वरी, अर्बुदगिरि पर कात्यायनी धनदा तथा शिव वल्लभा, आम्रक में एका, आम्रकेश्वर में सुरूपेशा, त्रिपुर (त्रिस्रोत) में (त्रिपुर) सुन्दरी, दिव्य रूपा तथा अखिल मनोहरा, महापीठ कामकोटि में प्रमदा, मदनालसा, कामेश्वरी तथा रति, भृगपुरी में व्रजेश्वरी, व्रजेशा तथा तपोलक्ष्मी, कैलास में भुवनेश्वरी, केदार में वरदा तथा अमृता, चन्द्रपुर में सिता, कलावती तथा प्रभेशा, श्रीपुर में श्री रमा तथा प्रिया, कन्यकापुर में कुमारी, ब्रह्मचर्या तथा कन्या, महापीठ जालन्धर में नागरी, अग्निमुखी शुभा, ज्वालामुखी, लोल जिह्वा, सुवेशा तथा सुरङ्गिणी के नाम से प्रसिद्ध हो।

मालवे च महाविद्या बिल्वपीठे च रूपिणी।
रूपवती महादेवी देवीकोटेऽखिलेश्वरी।।२४१।।
गोकर्णे प्रियपीठे त्वं रुद्राणी सर्वमङ्गला।
पवने हरपीठे च गन्धश्रीश्च सुगन्धिका।।२४२।।
अट्टहासे महापीठे भीमकाली च कालिका।
विरजे मुक्तिहेतुश्च नमः-स्वस्ति-सुधामयी।।२४३।।
जयश्री राजलक्ष्मीश्च सुवेशा राजपर्वते।
एलापुरे महासंपत् माहेश्वरी महापथे।।२४४।।
गायत्री ब्रह्मरूपा च तत्सदोङ्कारपीठके।
जया जयपुरे देवी जयदा जयमङ्गला।।२४५।।
विजया मङ्गला गौरी उज्जयिन्यां सदा शिवा।
गौरीश्वरी महादेवी हरिद्रापीठके शिवा।।२४६।।
क्षीरपीठे युगाद्या च क्षीराख्या नियमप्रभा।
राजेश्वरी महालक्ष्मीर्हस्तिनापुरवासिनी।।२४७।।
कमला विमला भक्ती रौद्री च नीलपर्वते।
यागेश्वरी त्रिवेण्यां च त्रिःस्रोता ब्रह्मरूपिणी।।२४८।।
सिन्धुस्थ(ली?ले)कामधेनुः षष्ठी षष्ठीपुरे प्रिये।
माया मायापुरे देवी सुरभी सौरभेश्वरे।।२४९।।

मालव में महाविद्या, विल्वपीठ में रूपिणी, रूपवती तथा महादेवी, देवीकोट में अखिलेश्वरी, गोकर्ण पीठ में रुद्राणी तथा सर्वमङ्गला, पवन अथवा हर पीठ में गन्ध श्री तथा सुगन्धिका, महापीठ अट्टहास में भीमकाली तथा कालिका, विराज (विरजा) में मुक्ति हेतु, नमः स्वस्ति तथा सुधामयी, राजपर्वत पर जयश्री, राजलक्ष्मी तथा सुवेशा, एलापुर में महासम्पत् तथा महापथ में माहेश्वरी, ओंकार पीठ में गायत्री, ब्रह्मरूपा तथा तत्सत्, जयपुर में जय, जयदा, जयमङ्गला तथा विजया, उज्जयिनी में मङ्गला, गौरी, सदाशिवा, हरिद्रापीठ में गौरीश्वरी, महादेवी तथा शिवा, क्षीर पीठ में युगाद्या, क्षीरा, नियमप्रभा, हस्तिनापुर में राजेश्वरी, महालक्ष्मी तथा हस्तिनापुरवासिनी, नील पर्वत पर कमला, विमला, भक्ति तथा रौद्री, त्रिवेणी में यागेश्वरी, त्रिःस्रोता तथा ब्रह्मरूपिणी, सिन्धु स्थल में कामधेनु, षष्ठीपुर में षष्ठी, मायापुर में माया तथा सौरभेश्वर में तुम सुरभी (सुरभि) के नाम से प्रसिद्ध हो।

विलासिनी महानन्दा प्रियचन्दनपर्वते।
महाव्रजेश्वरी श्रेष्ठा शमनेश्पपरपीठके।।२५०।।
भवानी भवभक्ता व श्रीशैले शिववल्लभा।
देवता या स्वर्गलक्ष्मीः कनकामरपर्वते।।२५१।।
उमा गौरी सती सत्या पार्वती हिमपर्वते।
इन्द्रेश्वरी सुराराध्या माहेन्द्रे जगदीश्वरी।।२५२।।
अल्लाभोगेश्वरी नित्या श्रीमद्बलिपुरे शिवा।
सुवर्णा कनका वामा हिरण्यपुरपीठके।।२५३।।
महालक्ष्मीर्महेशानी महालक्ष्मीपुरेऽम्बिका।
चण्डीपुरे प्रचण्डा च चण्डा चण्डवती शिवा।।२५४।।
छत्रे मेघस्वना चैव मायाच्छत्रेश्वरी तथा।
कालीघट्टे महापीठे काली कालात्मिका तथा।।२५५।।
लिङ्गाख्ये भैरवी विद्या विजया जाह्नवीतटे।
इति ते कथितं दिव्यं पीठक्रममुदाहृतम्।।२५६।।
अतिगुह्यं महेशानि कथितं देववन्दिते।
मद्भक्तेभ्यो महेशानि प्रकाशमुपपादय।।२५७।।
तेषां भाग्यवशेनैव कथितं मन्मुखोदितम्।
अकथ्यं कथितं भद्रे अतिप्रियतमे शिवे।
सारात् सारतरं सर्वं कथितं तव सुन्दरि।।२५८।।

इति श्रीब्रहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(नैमित्तिकार्चन-पीठ-तदीश्वरीवर्णनं) पञ्चमः पटलः।।५।।

प्रिय चन्दन पर्वत (मलयगिर) पर विलासिनी तथा महानन्दा, शमनेश्वर पीठ पर महाव्रजेश्वरी तथा श्रेष्ठा, श्री शैल पर भवानी, भवभक्ता तथा शिव वल्लभा, कनकामर पर्वत (स्वर्णशैल) पर स्वर्गलक्ष्मी, हिमालय पर उमा, गौरी, सती, सत्या तथा पार्वती, महेन्द्र गिरि पर इन्द्रेश्वरी, सुराध्या तथा जगदीश्वरी, श्रीमद् बलिपुर में अल्ला, भोगेश्वरी, नित्या तथा शिवा, हिरण्यपुर पीठ में सुवर्णा, कनका तथा वामा, महालक्ष्मीपुर में महालक्ष्मी, महेशानी तथा अम्बिका, चण्डीपुर में प्रचण्डा, चण्डा, चण्डवती तथा शिवा, छत्र क्षेत्र में मेघस्वना, माया तथा छत्रेश्वरी, कालीघट्ट महापीठ में काली तथा कालात्मिका, लिङ्ग संज्ञक क्षेत्र में भैरवी तथा जान्हवी तट पर विद्या तथा विजया नाम से आपकी स्थिति है। इस प्रकार मैंने पीठों के नाम उल्लेख सहित तुम्हारे दिव्य नामों का वर्णन किया है। ये सभी पीठ तथा तुम्हारे नाम अत्यन्त गुप्त रखने योग्य हैं। सभी देवों द्वारा वन्दनीय हे देवि! इन्हे केवल मेरे भक्तों के सम्मुख ही प्रकाशित तथा उन्हें प्रदान करें। उन भक्तों के भाग्यवश ही वर्णन के रूप में ये मेरे मुख से प्रकट हुए हैं। हे शिवे! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो इसलिए गुह्य होने पर भी मैंने इसे अत्यन्त ही संक्षेप में सर्वसार रूप से तुमसे इन सब विषयों को कहा है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद में नैमित्तिकार्चन-पीठ-
तदीश्वरी वर्णन संज्ञक पञ्चम पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

।। षष्ठः पटलः।।

(कुलपूजा-शाक्ताचारादिविधि निरूपणम्)

।। कुल पूजनस्य जिज्ञासा।।

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि पूजनं कुलपूजनम्।।१।।
यत्कृ(ते?त्वा)साधका वीरः सद्यो मोक्षमवाप्नुयात्।
एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरव।
कथयस्व महादेव यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।।२।।

हे भगवन्! आप सभी शास्त्रों तथा उनमें वर्णित सकल धर्मों के ज्ञाता हैं। इस समय मैं आपसे उस कुल (शक्ति-स्त्री) पूजन के विषय में सुनना चाहती हूँ जिसको विधिवत् करके वीर साधक शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। मेरी दृष्टि में एकमात्र आप ही समस्त कुल शास्त्रों को जानने वाले तथा पूजनीय हैं। हे भैरव! महादेव! यदि आप वास्तव में मुझसे प्रेम करते हैं तो इसके सम्बन्ध में मुझे बताएं।

।। कुल (शक्ति) पूजन-माहात्म्यम्।।

श्री भैरव उवाच।

कथितव्यं महापुण्यं विस्तरेण तपोधने।
सर्व एव सुराः पूज्याः सत्यं ब्रह्मादयः शिवे।।३।।
एका चेद्युवती तत्र पूजिता चावलोकिता।
स(वै?र्वा ए)व परादेव्यः पूजिताः कुलभैरवि।।४।।
आदावन्ते च मध्ये च सा हि पूज्या विशेषतः।
न पूजयति चेत कान्तां बहुविघ्नैर्विलिप्यते।।५।।
पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परसाधने।
नवशक्तिर्महेशानि पञ्चशक्तिश्च भैरवि।।६।।
पूजिता विगुणं सर्वं सगुणं कारयेद्यतः।
पृथिवीं सस्यसंपन्नां ब्राह्मणे वेदपारगे।।७।।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं कौलिकार्चनात्।
अन्नदानं सहस्रेभ्यः शतेभ्यो यज्वनामपि।।८।।

तेषां भोजनदानेन तत्फलं कौलिकार्चनात्।
वापीकूपतडागानि कृत्वा च शिवकृष्णयोः॥९॥
दानाद् यत् फलमाप्नोति तत्फलं कौलिकार्चनात्।
यदि भाग्यवशेनैव वारमेकं प्रपूजयेत्॥१०॥
कृता(र्थो?र्था)स्ते हि निस्तीर्णा यान्ति देवीपुरे स्वयम्।

हे तपोधने (तप को ही एक मात्र वास्तविक धन मानने वाली तथा उससे समृद्ध अथवा तपस्वियों द्वारा प्राप्त की जाने वाली एक मात्र सम्पदास्वरुपा)! ब्रह्मादि त्रिदेव सहित सभी देवता पूजा के योग्य हैं, यह सत्य है, परन्तु इनके पूजन के साथ ही यदि एक भी युवती स्त्री का पूजन परिलक्षित होता है तो सभी देवियों सहित परा देवी की भी पूजा सम्पन्न हो जाती है। पराशक्ति के पूजन के आरम्भ में, मध्य में और (अथवा) अन्त में स्त्री रूप शक्ति अवश्य ही पूजनीय होती है। यदि कोई साधक स्त्री-शक्ति का पूजन नहीं करता है तो उसकी साधना में अनेकों विघ्न व्याप्त हो जाते हैं। उसे स्वयं के द्वारा ही पूर्व में किये गये सत्कर्मों से उत्पन्न होने वाले फलों की भी प्राप्ति नहीं हो पाती, बाद के सत्कर्मों (पूजनादि) की फल अवाप्ति की चर्चा करना तो व्यर्थ है। यदि साधक कन्या रूप नौ अथवा पाँच शक्तियों का पूजन परादेवी की पूजा के साथ ही करता है तो उसकी पराशक्ति के पूजन में प्रमादवश, उत्पन्न सभी दोष भी गुण में परिवर्तित हो जाता है। वेद के परम तत्व को जानने वाले ब्राह्मण को धान्य (अन्न) से सम्पन्न भूमि का दान करने से दाता को जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल को कौलिक कुल पूजन के द्वारा ही प्राप्त कर लेता है। हजारों मनुष्यों को अन्नदान (भोजन प्रदान) करने से, सैकड़ों यज्ञ करने से, बावड़ी, कुआँ, तालाब का निर्माण कराने से तथा शिव तथा कृष्ण (के समान उनके भक्तों) को दान देने से जिस परम फल की कर्ता (दाता) को प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति कौलिक को कुलपूजन करने से होती है। भाग्यवश यदि एक बार भी साधक सविधि कुल पूजन कर लेता है तो वह कृत्कृत्य हो जाता है तथा संसार से मुक्त होकर देवी के धाम मणिपुर को प्रस्थान कर जाता है।

पुरश्श्चरणकालेऽपि यदि स्यात् पीठपूजनम्॥११॥
तत्रैव पीठपूजा सा मनसापि न हीयते।
देवीकोटे महाभागा उड्डियाने च भैरवी॥१२॥
योगनिद्रा कामरूपे महिषासुरमर्दिनी।
कात्यायनी कामभूमौ कामाख्या कामरूपिणी॥१३॥

जालन्धरी च पूर्णेशी पूर्णशैले च चण्डिका।
कामरूपे ततो देवी पूज्या दिक्केरवासिनी॥१४॥
अथवा कामरूपस्य दर्शनं यदि भाग्यतः।
तदा भगादिदेवीनां पूजा तत्र विधीयते॥१५॥
यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिः प्रजायते।
तदैव मानसीं तत्र तासां च संप्रकल्पयेत्॥१६॥
भगिनीं भगजिह्वां च भगास्यां भगमालिनीम्।
भगदन्ता च भगाक्षीं च भगकर्णां भगत्वचम्॥१७॥
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम्।
तत्र संपूज्य गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च॥१८॥
नमस्कृत्य विधानेन स्वयमक्षोभितः सुधीः।
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं चतुर्दश्यामुमापतिम्॥१९॥
अष्टम्यां पूजयेच्छक्तिं सर्वसिद्धिप्रदां किल।
केशसंस्कारकर्माणि कारयेत् सर्वदा प्रिये॥२०॥

पुरश्चरण काल में भी यदि पीठ पूजन का अवसर उपलब्ध हो जाय तो उसे अवश्य करना चाहिए, मन से भी उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। देवी कोटि में महाभागा, उड्डीयान में भैरवी, कामभूमि कामरूप में योगनिद्रा (योनिमुद्रा) स्वरूपा महिषासुरमर्दिनी कात्यायनी कामरूपिणी कामाख्या की, जालन्धर पीठ पर जालन्धारी की तथा पूर्णशैल पर पूर्णेशी की एवं कामरूप स्वरूप मध्य में, (उस) युवमी में निवास करने वाली चण्डिका की पूजा करनी चाहिए। यदि भाग्यवश कामरूप का दर्शन उपलब्ध हो जाय तो वहाँ भगादि देवियों की विधिवत् पूजा करनी चाहिए। यदि भाग्यवश कुल शक्ति (योनि) का दर्शन (प्राप्ति) हो जाय तो उसमें उन भगादि देवियों की मानसिक कल्पना करके पूजन करना चाहिए।

भगिनी, भगजिह्वा, भगास्या, भगमालिनी, भगदन्ता, भगाक्षी, भगकर्णा, भगत्वक् (भगात्मिका), भगनासा, भगस्तनी, भगस्था तथा भगसर्पिणी देवियों का उसमें गन्धादि के द्वारा मानस पूजन कर गुरु का पूजन करना चाहिए। विधिवत् पूजन के पश्चात् उन्हें प्रणाम करना चाहिए। पूजन के समय बुद्धिमान साधक को उद्वेग रहित स्थिर चित्त रहना चाहिए। द्वादशी को विष्णु का पूजन, चतुर्दशी को शिव का पूजन तथा अष्टमी को कुलशक्ति का पूजन निश्चित रूप से सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है। हे प्रिये! साधक को सदा कुल शक्ति के केशों का संस्कार कर्म भी करना चाहिए।

।। कुल-शक्ति पूजनम्।।

आदावानीय देवेशि स्वकान्तां वा परस्त्रियम्।
प्रथमं चासनं दत्त्वा पाद्यं दद्यात्ततः परम्।।२१।।
अर्घ्यं दद्यान्महेशानि यथोक्तविधिना शिवे।
आचमनीयं च तथा दद्याच्च सुधया प्रिये।।२२।।
स्नानीयं परमेशानि वौषडन्तेन दापयेत्।
गन्धं दद्यान्महेशानि गन्धानामष्टकं तथा।।२३।।
पुष्पं दद्याद्वरारोहे गन्धयुक्तं मनोहरम्।
धूपं गुग्गुलुना दद्यात् महादेव्यै मनोहरम्।।२४।।
दीपं च सर्पिषा दद्यात ताम्राधारं सुशोभनम्।
नैवेद्यं परमं दद्यात् सुस्वादु सुमनोहरम्।।२५।।
नानाद्रव्ययुतं दद्यान्नारिकेलयुतं तथा।
रम्भाफलं बीजपूरं श्रीफलं श्रीनिकेतनम्।।२६।।
मधु दद्यान्महेशानि पलद्वयमितं शुभे।
घृत दद्यान्महेशानि नूतनं पलमानतः।।२७।।
नानोपहारसंयुक्तं दधिदुग्धयुतं तथा।
ताम्बूलं परमं दद्यात् सुस्वादु च सुवासितम्।।२८।।
कर्पूरादिसमायुक्तं गुवाकेन समन्वितम्।
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं दद्यान्महेश्वरि।।२९।।
जलं दद्याद्वरारोहे कर्पूरादिसुवासितम्।
यद्यदिच्छति तस्मिन् वै काले सुरगणार्चिते।।३०।।
तत्तद् दद्याद्विशेषेण येन तुष्यति सुन्दरी।

हे देवि! सबसे पहले साधक स्वपत्नी अथवा (पूर्व निमन्त्रित) पर स्त्री (युवती) को पूजन मण्डप में लाकर उसे आसन प्रदान करे। फिर विधि पूर्वक उसे पाद्य तथा अर्घ्य प्रदान करे। अमृत रूप शुद्ध जल (अथवा मद्य) से आचमन कराकर 'वौषट्' शब्द मन्त्र के अन्त में लगाकर स्नान के लिए जल प्रदान करे (स्नान कराये)। हे महेशानि! (स्नानोपरान्त वस्त्रादि धारण के पश्चात्) अष्ट गन्ध मिश्रित गन्ध (चन्दन) प्रदान करे। सुन्दर सुगन्ध युक्त पुष्प तथा गुग्गुल का धूप प्रदान करे। तांबे के आधार पात्र में घी का दीपक प्रदान करे। सुरुचिपूर्ण परम स्वादिष्ट देखने में मनोहर नैवेद्य प्रदान करे। नारियल, केला, बीजपूर (बड़ा नींबू, चकोतरा), बेल आदि सुन्दर नाना प्रकार के सरस फलों को प्रदान करें। अनेकों व्यञ्जनों सहित दो पल मधु, एक पल

नवीन घृत, दही तथा दूध भी अर्पित करे। नैवेद्य के पश्चात् (आचमन प्रदान करके) कपूर, सुपाड़ी आदि से युक्त सुगन्धित, सुस्वाद युक्त ताम्बूल प्रदान करे। नैवेद्य (अथवा भोजन में) चर्व्य, चोष्य, लेह्य, भक्ष्य तथा पेय पाँचों प्रकार के व्यञ्जन तथा कर्पूर आदि से सुवासित जल देना चाहिए। उस समय कुल शक्ति जिस-जिस वस्तु की इच्छा करे उसे वही वस्तु विशेष रूप से प्रदान करना चाहिए, जिससे वह कुलसुन्दरी पूर्णतया सन्तुष्टि प्राप्त करे।

।।शक्त्यर्चने षोडशवर्षा श्रेष्ठा।।

सप्तवर्षाष्टवर्षा वा नववर्षा च या भवेत्।।३१।।
दशवर्षा महेशानि एकादशगता तथा।
द्वादशे वर्षे संप्राप्ता तथा त्रयोदशे शुभे।।३२।।
चतुर्दशे तथा देवि(तथा?वर्षे) पञ्चदशे तथा।
षोडशवर्षा तथा देवि श्रेष्ठा कामप्रदा तु सा।।३३।।

शक्ति पूजन में सात, आठ, नौ तथा दश वर्षीया युवती (कन्या) सामान्य होती है। ग्यारह, बारह तथा तेरह वर्षीया शुभ होती है तथा चौदह, पन्द्रह एवं सोलह वर्षीया श्रेष्ठ होती है। इनमें सोलह वर्षीया युवती का पूजन अति श्रेष्ठ माना जाता है। इसका पूजन समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

।।केश संस्करणं युवत्यङ्गेषु बीज मन्त्र लेखनञ्च।।

केशसंस्करणं कुर्यान्नानाद्रव्यैर्मनोरमैः।
ततो दद्यात् महाद्रव्यं येन तुष्यति मानवी।।३४।।
स्तनद्वन्द्वे रमाबीजं हनुद्वये भग-द्वयम्।
कक्षाधः परमेशानि लिखेत् गङ्गाधर-द्वयम्।।३५।।
योन्यधः कामिनि-युग्ममूरुद्वये लिखेत् प्रिये।
पादपद्मतले विश्वबीजं परमदुर्लभम्।।३६।।
संलिख्य विधिवद्भक्तया शिरीषवृन्तकेन वै।
भगे लिखेन्महेशानि बालाबीजं महेश्वरि।।३७।।
ओष्ठद्वये भगं चैव लेखन्या कनकस्य च।
हस्तद्वये काकिनी व लेखनीया च देशिकैः।।३८।।
रक्तवस्त्रं महेशानि दद्याद्भद्रं मनोरमम्।
रक्ताख्यचन्दनेनैव लिखेत् बीजं सुरेश्वरि।।३९।।
भगे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणमेद् दण्डवद्भुवि।
एवं वारत्रयं कुर्यात् यावद् दृष्टिर्न जायते।।४०।।

ताम्बूलादि अर्पण के पश्चात् उस शक्ति के केशों को सुगन्धित सुन्दर द्रव्यों से संस्कारित (शृंगार) करना चाहिए। इसके बाद उसे महाद्रव्य (संस्कारित मद्य) प्रदान करना चाहिए जिससे वह मानवी शक्ति सन्तुष्ट हो। उसके स्तनद्वय में रमाबीज (श्रीं), हनुद्वय में 'ऐं' बीज, कक्ष के नीचे (दोनों पार्श्वों में) शिव बीज 'हौं', योनि के नीचे दोनों जाँघों पर कामिनी बीज 'स्त्रीं' लिखें। पाद तलों पर परम दुर्लभ विश्व बीज 'ॐ' (अथवा भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं') लिखें। इन बीजों को शिरीष पुष्प (अथवा पत्र) के वृन्त से लिखना चाहिए। इसके बाद भग के दोनों ओष्ठों पर (पार्श्व भागों पर) स्वर्ण लेखनी से बाला मन्त्र के तीनों बीजों (ऐं क्लीं सौः) को लिखे। दोनों हाथों पर काकिनी मन्त्र लिखे। इन सभी बीजों को लाल चन्दन से ही लिखना चाहिए। इसके पश्चात् सुन्दर, श्रेष्ठ, रक्त-वस्त्र प्रदान करे। तत्पश्चात् भग पर पुष्पाञ्जलि अर्पित कर भूमि पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम करे। इस प्रकार तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करे जब तक कि उसका दिखाई देना बन्द न हो जाय।

।। अङ्गेषु मन्त्र-जप-विधिः।।

मूलमन्त्रं महेशानि जपेत् पर्वतमस्तके।
सहस्रस्य प्रमाणेन जपेत् तत्र महेश्वरि।।४१।।
अष्टाविंशतिमानेन तदास्ये तु जपेत् प्रिये।
अष्टोत्तरशतं योनिगर्तमध्ये जपेत् प्रिये।।४२।।
तासामभीष्टसिद्ध्यर्थं कुर्यात् पर्वतमर्दनम्।
मूलं जपेन्महेशानि ताडयेद् योनिमण्डलम्।।४३।।
ततस्तत्त्वं पुरः क्षिप्त्वा सिद्धो भवति साधकः।
कालीप्रयोगमेतद्धि जानीहि सुरवन्दिते।।४४।।
काली तारा महाविद्या त्रिपुरार्णा महेश्वरी।
एतासां भैरवीणां च प्रयोगात् सिद्धिमाप्नुयात्।।४५।।

तत्पश्चात् उस युवती के स्तनों पर दृष्टि स्थिर रखते हुए (अथवा उसे स्पर्श करते हुए) मूल मन्त्र का एक हजार जप करे। इसके बाद मुख पर दृष्टि रखते हुए अट्ठाईस बार जप करे। योनि मध्य गर्त पर दृष्टि रखते हुए एक सौ आठ बार जप करे। जप के पश्चात् उस युवती की कामनापूर्ति (प्रसन्नता) के लिए उसके स्तनों का मर्दन करे। मूल मन्त्र का जप करते हुए उसकी योनि मण्डल पर आघात करे। इसके बाद 'तत्व' का प्रक्षेपण करे। इस प्रकार साधक सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार की क्रिया पद्धति का प्रयोग काली की साधना के लिए समझना चाहिए। काली, तारा, महाविद्या

त्रिपुर सुन्दरी, अन्नपूर्णा तथा महेश्वरी (भुवनेश्वरी) इन भैरवी रूपों की साधना में इस विधि से साधक सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है।

।। बलि-प्रदानम्।।

बलिं दद्यान्महेशानि सन्ध्याकाले शिवालये।
अदत्त्वा च महादेवि बलिं सर्वहितं प्रिये।।४६।।
शिवायै च बलिं दद्यात् सर्वयत्नपुरःस(रैः?रम्)!
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।।४७।।
प्रान्तरे बिल्वमूले वा श्मशाने वापि साधकः।
निर्जने वा वने घोरे हर्म्ये वा प्राङ्गणेऽपि वा।।४८।।
भित्त्यधो वा महेशानि बलिं दद्याद् विधानतः।
मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत्।।४९।।
कालि कालीति वक्तव्ये तत्र सा शिवरूपिणी।
पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह।।५०।।
भुक्त्वा रौति यदैशान्यां वायव्यां सुरवन्दिते।
ऐशान्यां सुखसंपत्तिर्वायवी भोगमोक्षदा।।५१।।
तदैव मङ्गलं तेषां भवत्येव न संशयः।
अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम्।।५२।।

समस्त पूजनादि क्रिया विधान के पश्चात् हे महेशानि! साधक को संध्या के समय शिवालय के समीप बलि प्रदान करना चाहिए। जो साधक इस बलि प्रदान रूप कर्म का पालन नहीं करता उसके समस्त कल्याण (सुख-सम्पत्ति, साधना-सिद्धि) का विनाश हो जाता है।

साधन क्रिया के पश्चात् शिवा (शिवाओं-मादासियारों अथवा गीदड़ों) के लिए सर्वप्रयत्न करके अवश्य ही बलि देना चाहिए। ऐसा न करने पर साधक की सारी सिद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसमें किसी प्रकार के संशय का स्थान नहीं है। जनशून्य मार्ग पर, विल्व वृक्ष के नीचे, श्मशान में निर्जन भयानक वन में अथवा किसी पुराने, मनुष्यों के वास से रहित प्रासाद-महल (जो प्रायः खण्डहर रूप से स्थित हो) के प्राङ्गण (आंगन-खुले विस्तृत क्षेत्र) में भूमि पर विधिवत् बलि प्रदान करना चाहिए। दिये जाने वाले बलि रूप नैवेद्य में माँस भी अवश्य होना चाहिए। बलि को भूमि पर रखने के बाद साधक को (हे) कालि! कालि! इस प्रकार उच्चस्वर से पुकारते हुए काली का आवाहन करना चाहिए। ऐसा करने पर वह काली पशुरूप शिवा (गीदड़ी) के रूप में अपने परिवार जनों के साथ आ जाती है। बलि ग्रहण करने के पश्चात् यदि

शिवा (शिवाएं) ईशान दिशा की ओर मुख करके आवाज निकालती हैं तो साधक को सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और यदि वे वायव्य दिशा की ओर ध्वनि करती है तो साधक को भोग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। अतः साधक को नित्य ही शिवाओं को बलि रूप से भोजन प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिए। इससे उसका हर प्रकार से कल्याण होता है, इसमें किसी भी प्रकार से कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

।। बलिदान-माहात्म्यं, अदाने हानिः।।

(नित्यश्राद्धं यथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम्।
तथेयं कुलदेवीनां नित्यता कुलपूजने।।५३।।
पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने)।
जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित सुकृतानि च।।५४।।
गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने।
शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम्।।५५।।
एकया भुज्यते यत्र शिवया देवि भैरवि।
तत्रैव सर्वदेवानां प्रीतिः परमदुर्लभा।।५६।।
पशुशक्तिर्नरशक्तिः पक्षिशक्तिश्च भैरवि।
पूजिता द्विगुणं कर्म साधयेत् परमेश्वरि।।५७।।
तेन सर्वं प्रयत्नेन कर्तव्यं पूजनं महत्।

जिस प्रकार मनुष्य के लिए श्राद्ध, सन्ध्या-पूजन तथा पितृ-तर्पण रूप कर्म करना अनिवार्य है, उसी प्रकार शक्ति-पूजन के समय शिवारूपिणी इन कुल देवियों की अर्चना भी अनिवार्य कर्म है। अतः बलि प्रदान रूप कर्म द्वारा पशुरूपा शिवा की भी अर्चना करनी चाहिए। ऐसा न करने पर जप-पूजनादि के द्वारा उपलब्ध फलों सहित, साधक के और जो कुछ भी पुण्य रूप फल हैं, उन सभी को ग्रहण कर उसे शाप देती हुई शिवा निर्जन स्थान में रोती है। शिवा के इस प्रकार उच्च स्वर में रोने (चीत्कार करने) से उस साधक की सभी सिद्धियों सहित सुख-सम्पत्ति का शीघ्र ही विनाश हो जाता है। हे देवि! भैरवि! यदि एक भी शिवा, साधक के द्वारा प्रदत्त बलि को ग्रहण कर लेती है, तो उसे (साधक को) सभी देवताओं की परम दुर्लभ प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है। हे भैरवि! (बलि प्रदान रूप अन्नदान के द्वारा) पशु शक्ति (पशु शरीर अथवा पशु आकार में स्थित पराशक्ति), नरशक्ति तथा पक्षी शक्ति की अर्चना करने पर साधक के सदोष कर्म (जप-पूजनादि) भी दोष मुक्त होकर सिद्धिप्रद हो जाते हैं। अतः साधक को सब प्रकार से बलिकर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

।। बलि-मन्त्र द्वय निरूपणम्।।

राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके।।५८।।
अशुभानि च कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत्।
बलिमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।।५९।।
येन सिद्ध्यति सर्वेशि नास्ति कालस्य निश्चयः।
आदौ कालीं समुद्धृत्य शिवे चेति ततः परम्।।६०।।
सर्वरूपधरे पश्चात् आगच्छेति पदद्वयम्।
मम-शब्दं ततो ब्रूयात् बलि-शब्दं ततः परम्।।६१।।
गृह्ण गृह्णेति द्वन्द्वं च बह्निजायावधिमनुः।
मन्त्रणानेन देवेशि बलिं दत्त्वा मनोहरम्।।६२।।
सर्वपापैः प्रमुच्येत सत्यं सत्यं महेश्वरि।
मन्त्रान्तरं प्रवक्ष्यामि बल्यर्थ यन्मनोहरम्।।६३।।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव।।६४।।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रियः।
यदा न भुज्यते देवि तदा नैव शुभं भवेत्।।६५।।
शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः।
एवं ज्ञात्वा महादेवि शान्तिं स्वस्त्ययनं चरेत्।।६६।।
इति ते कथितं देवि नैमित्तिकविधिं शिवे।
यत्कृते साधको वीरो जायते च निरापदः।।६७।।

राजभय (बलशाली दुष्ट पुरुषों से उत्पन्न भय), अन्य देशों में निवास के कारण उपस्थित सङ्कट के समय तथा जीवन में अशुभ काल उपस्थित होने पर अथवा अज्ञान (प्रमाद) वश कोई अशुभ कर्म हो जाने पर साधक को (भगवती का पूजन करके तदुपरान्त) बलि प्रदान करना चाहिए। अब मैं बलि प्रदान करने का मन्त्र कहता हूँ, सावधान होकर धारण करो (सुनो)। इस बलि प्रदान कर्म से सभी कार्य सफल हो जाते हैं, इसके लिए कोई विशेष काल नियत नहीं है। साधक को जब भी आवश्यकता तथा श्रद्धा हो वह इस कर्म को कर सकता है। बलि मंत्र के लिए पहले 'कालि' का उच्चारण करे फिर 'शिवे' तदुपरान्त 'सर्वरूप धरे' पुनः दो बार 'आगच्छ' इसके बाद 'मम' बोलकर 'बलिं' पुनः 'गृह्ण-गृह्ण' तथा वह्निजाया 'स्वाहा' कहें।

मन्त्र स्वरूप – **''कालि! शिवे! सर्वरूप धरे! आगच्छ-आगच्छ मम बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा''**।

हे देवेशि! इस मन्त्र द्वारा सुरुचिपूर्ण बलि प्रदान करके साधक समस्त पापों (भय सङ्कटों तथा अशुभ परिस्थितियों) से मुक्त हो जाता है। हे महेश्वरि! मेरा यह वचन पूर्ण तथा सत्य है। अब मैं बलि प्रदान हेतु एक अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र इस प्रकार है –

मन्त्र स्वरुप – **''गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि! शुभाशुभ फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव (एतत्)''।**

इस प्रकार मन्त्र बोलकर कुलजनों (शिवाओं) के लिए सुन्दर सुरुचिपूर्ण बलि प्रदान करना चाहिए। हे देवि! यदि शिवाएं बलि स्वीकार नहीं करती तो साधक के लिए यह शुभ नहीं होता। यदि सभी बलि पदार्थ को शिवाएं ग्रहण कर (भक्षण कर) लेती है तो साधक के लिए शुभ होता है। इस प्रकार शुभ-अशुभ फलों को जानकर (अशुभ की स्थिति में) साधक को शान्तिपाठ (कर्म) तथा स्वस्त्ययन कर्म कराना चाहिए। हे देवि शिवे! मैंने तुमसे यह नैमित्तिक कर्म विधि का वर्णन किया, इसको करने से वीर साधक सर्वथा संकट मुक्त रहता है।

।। शाक्ताचार क्रम-निरूपणम्।।

अथ वक्ष्ये महेशानि शाक्ताचारक्रमं शुभम्।
शाक्तानां कुलसर्वस्वं जानीहि नगनन्दिनी।।६८।।
प्रातरुत्थाय मन्त्रज्ञः कुलवृक्षं प्रणम्य च।
शिरःपद्मे गुरुं ध्यात्वा तत्सुधाप्लावितं स्मरेत्।।६९।।
मानसैरुपचारैस्तु तमाराध्य निरामयः।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभावयेत्।।७०।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां सुधाप्लावितविग्रहाम्।
तत्प्रभापटलव्याप्तं स्वशरीरं विचिन्तयेत्।।७१।।
श्लेष्मातक-करञ्जाक्ष-निम्बाश्वत्थकदम्बकाः।
बिल्वो वाप्यथवाऽशोक इत्यष्टौ कुलपादपाः।।७२।।
एवं ते कथितं भद्रे तन्त्रेऽन्यस्मिन् महेश्वरि।
बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा कुलसुन्दरीम्।।७३।।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत्।
तासां प्रहारो निन्दा वा कौटिल्यमप्रियं तथा।।७४।।
सर्वथा च न कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकः।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम्।।७५।।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि।
विपरीतरता सा तु भाविता हृदयोपरि।।७६।।

तद्धस्थावचितं द्रव्यं तद्धस्तावचितं जलम्।
तद्धस्थावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत्॥७७॥

हे हिमालय पुत्रि पार्वति! अब मैं शाक्त साधकों के प्रतिदिन के शुभदायक आचरण क्रम को, जो उनके साधनात्मक जीवन का सम्पूर्ण रूप से आधार है, (संक्षेप) में कहता हूँ। मन्त्रज्ञ साधक नित्य प्रातः काल उठकर कुल वृक्षों (जो उपलब्ध हों अथवा मानसिक रूप से) को प्रणाम करके शिरस्थ सहस्रदल कमल के मध्य में स्वगुर का ध्यान करके वहाँ से स्रवित होने वाले अमृत सुधा द्वारा स्वयं को पूर्णतः अभिषिक्त हुआ चिंतन करे। इस प्रकार शुद्ध चित्त हुआ वह साधक मानसोपचारों से गुरु का पूजन करके मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) तक उत्थित सूर्य के समान तीव्र आभायुक्त तथा सहस्रार स्रवित सुधा द्वारा अभिषिक्त विग्रह वाली कुण्डलिनी का मूल विद्या के रूप में ध्यान करे तथा उस कुण्डलिनी की प्रभा द्वारा स्वशरीर को पूर्णतः आच्छादित व्याप्त हुआ सा अनुभव करे। लिसोड़ा, करञ्ज(नक्तमाल), बहेड़ा, नीम, पीपल, कदम्ब, बेल तथा अशोक (नील सरस्वती तन्त्र में बहेड़ा न होकर बरगद नाम है) ये आठ वृक्ष कुल वृक्ष कहे जाते हैं।

कुमारी कन्या, यौवन से परिपूर्ण युवती अथवा वृद्धा किसी भी स्त्री को देखकर, वह चाहे कुरूप हो अथवा महादुष्ट (दुश्चरित्र) उसे मन ही मन प्रणाम करना चाहिए। स्त्रियों पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनसे कपट का व्यवहार तथा उनके प्रति अप्रिय वाणी का प्रयोग तथा आचरण कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर साधक की सिद्धि में बाधा पहुँचती है। स्त्रियां सभी देवता स्वरूपा हैं, प्राण स्वरूपा हैं तथा साधक एवं समाज की आभूषण रूपा हैं। साधक को सदैव स्त्री सङ्ग का ध्यान करना (अथवा स्त्री के साथ ही रहना) चाहिए अथवा स्व स्त्री को अपने हृदय पर विपरीतरता में स्थित रूप से कल्पना करनी चाहिए। स्त्री के हाथ से संचित किया (दिया) हुआ द्रव्य, जल तथा भोज्य पदार्थ देवता को अर्पित करना चाहिए।

अन्यमन्त्रपुरस्कारं निन्दां चैव विवर्जयेत्।
एतद् ब्रह्म तदेवैतन्नाहं वस्तु न सोऽपि च॥७८॥
नानाचारं न कर्तव्यं नाचारणमितस्ततः।
प्रायश्चितं भृगोः पातं तीर्थाभिगमनं तथा॥७९॥
पिण्डं वेदोदितं न्यासं कौले पञ्च विवर्जयेत्।
भूतहिंसा न कर्तव्या पशुहिंसा विशेषतः॥८०॥
बलिदानं बिना देव्या हिंसां सर्वत्र वर्जयेत्।
बलिदानाय या हिंसा न दोषाय प्रकीर्तिता॥८१॥

बलिदानाय हिंस्याच्च सदा देवि महापशून्।
इति वेदविदां देवि सिद्धान्तः सर्वसंमतः॥८२॥
वेदसंमतसिद्धान्तः स ममापि च संमतः।
पशुयागे महेशानि पशुं हन्यान्न संशयः॥८३॥
सा हिंसा निन्दिता वेदैर्या च वैधेतरा भवेत्।
वैधहिंसा च कर्तव्या संशयो नास्ति कश्चन॥८४॥

साधक को कभी किसी अन्य देवता तथा उसके मन्त्रों की प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं करनी चाहिए। यह सब कुछ ब्रह्मरूप, यहाँ न कुछ 'अहम्' रूप है और न ही कोई वस्तु 'इदं' रूप (ब्रह्म से पृथक अथवा अतिरिक्त) है, अत: किसी की प्रशंसा अथवा निन्दा का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। स्वसाधनात्मक आचारों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय सम्बन्धित अनेकों आचारों-व्यवहारों (कर्म-काण्डों) को नहीं अपनाना चाहिए। इधर-उधर व्यर्थ भ्रमणशील नहीं होना चाहिए। कौल साधक को (पापों के) प्रायश्चितस्वरूप कृच्छ, चान्द्रायण आदि उपवास रूप व्रत, व्यर्थ शुक्र-पात, तीर्थाटन, पिण्ड दान तथा वैदिक न्यासादि इन पाँच कर्मों को नहीं करना चाहिए। किसी भी प्राणी की हिंसा, विशेष रूप से (अनावश्यक) पशु-हिंसा नहीं करनी चाहिए। देवी को बलिदान के लिए की जाने वाली जीव हिंसा के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य के लिए की जाने वाली सभी जीव-हिंसाओं का परित्याग कर देना चाहिए। "देवता को बलि प्रदान करने के लिए की जाने वाली हिंसा में कोई दोष नहीं है। देवी को बलि प्रदान करने के लिए सदैव बड़े पशुओं की हिंसा करनी चाहिए" ऐसा सभी वेद के विद्वानों का सर्वसम्मत् सिद्धान्त (निर्णय) है। जो वेद से अनुमोदित सिद्धान्त है वही मेरे द्वारा भी सम्मत (मान्य) है। हे महेशानि! पशु-यज्ञ में पशु की हिंसा करनी चाहिए, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उद्देश्य के लिए जो हिंसा की जाती है, वह वेदों द्वारा निन्दित है। वेद-विधि द्वारा निर्देशित हिंसा बिना किसी संशय के नि:सङ्कोच कर्माङ्ग के रूप में साधक को अवश्य ही करनी चाहिए।

॥ समयाचार लक्षणम्॥

इदानीं शृणु चार्वङ्गि रहस्यं परमाद्भुतम्।
रहस्यं सर्वदेवीनां समयाचारलक्षणम्॥८५॥
येन बिना महेशानि न सिध्येन्मन्त्रमुत्तमम्।
कल्पकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते॥८६॥

मानवाः कुलशास्त्राणां कुलाचारानुचारिणाम्।
सिद्धाः स्युर्नास्ति संदेहो वैष्णवाचारतत्पराः।।८७।।
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा।
पर्वते विजने वापि निर्जने शून्यमण्डले।।८८।।
चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवान्महेश्वरि।
क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम्।।८९।।
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादतन्द्रितः।
क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम्।।९०।।
कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च।
कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये।।९१।।
कुलाचार प्रसन्नास्ये नमस्ते शंकरप्रिये।
श्मशाने च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन्।।९२।।
प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमवाप्नुयात्।
घोरदंष्ट्रे करालास्ये किटि-शब्दनिनादिनि।।९३।।
गुरुघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि।
रक्तवस्त्रां रक्तपुष्पां विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम्।।९४।।
प्रणम्य दण्डवद्भुमाविम मन्त्रं पठेन्नरः।
बन्धूकपुष्पसंकाशे त्रिपुरे भयनाशिनि।।९५।।
भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि।

हे चार्वङ्गि! अब मैं परम अद्भुत तथा रहस्ययुक्त (गोपनीय) सभी देवियों के (साधकों के द्वारा पालनीय) समयाचार लक्षण को कहता हूँ। इसका पालन किये बिना कल्पों तक मन्त्र जप करने पर भी न तो मन्त्र सिद्ध होता है और न ही साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य कुलशास्त्रों के ज्ञाता तथा कुलाचार के अनुकूल व्यवहार करने के साथ ही वैष्णवाचार के पालन में भी तत्पर रहते हैं, उन्हें निश्चित रूप से सिद्धि की प्राप्ति होती है। कौल साधक को दूसरों के द्वारा अपनी निन्दा को सुनकर क्रोध न करके सहनशील होना चाहिए। सदैव दूसरों की भलाई के लिए तत्पर रहना चाहिए। भाग्यवश पर्वत, वन, जनशून्य स्थान-भवन-प्रदेश, चौराहा तथा स्त्रियों के मध्य उपस्थित होने की स्थिति में थोड़ी देर स्थिर होकर देवी का ध्यान करके मूल मन्त्र का मानस जप करके प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ जाना चाहिए। अकस्मात् किसी स्थल स्थल पर गीध का दर्शन होने पर उसे महाकाली स्वरूप मानते हुए एकाग्रचित होकर प्रणाम करना चाहिए। इसी

भाँति क्षेमकरी, मादा गीदड़ (सियार), मादा कौवा, क्रौञ्च पक्षी, बाज, भूकाक (विशेष जाति का बगुला या कबूतर) अथवा काली बिल्ली का दर्शन होने पर ‘‘**कृशोदरि! महाचण्डे! मुक्तकेशि! बलिप्रिये! कुलाचार प्रसन्नास्ये! नमस्ते शंकरप्रिये!**’’ रूप अभिवादन मन्त्र बोलकर प्रणाम करना चाहिए। इससे साधक को प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। श्मशान में शव के दृश्य होने पर उसकी प्रदक्षिणा करके ‘‘**घोर दंष्ट्रे! करालास्ये! किटि-शब्द निनादिनि! घुरघोररवास्फारे! नमस्ते चितिवासिनि!**’’ बोलते हुए प्रणाम करना चाहिए, इससे उसे सुख की उपलब्धि होती है। रक्त वस्त्र अथवा रक्त पुष्प दिखाई देने पर उसे त्रिपुराम्बिका स्वरूप मानकर भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करके इस मन्त्र का उच्चारण करे-‘‘**बन्धूक पुष्प-सङ्काशे! त्रिपुरे! भयनाशिनि! भाग्योदयसमुत्पन्ने! नमस्ते वरवर्णिनि!**’’।

कृष्णवर्णं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम्।।९६।।
हस्त्यश्वरथशस्त्राणि करवीरं तथा शिवम्।
महिषं कुलनाथं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम्।।९७।।
प्रणम्य जयदुर्गां वा स तु विघ्नैर्न लिप्यते।
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते।।९८।।
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते।
मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यमांसं वरस्त्रियम्।।९९।।
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विन्यसेन्मनुम्।
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये।।१००।।
नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषते।
रक्तधारासमाकीर्णे वरदे त्वां नमाम्यहम्।।१०१।।
सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे।
एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रवर्तते।।१०२।।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते।
एतेषां हिंसनोच्चाटमारणं वागुरादिभिः।।१०३।।
क्रियते येन पापात्मा मद्भक्तः स कथं भवेत्।
प्रधानांशसमुद्भूता एते कुलजनप्रिये।।१०४।।

काला वस्त्र, काला पुष्प, राजा, राजपुत्र, हाथी, अश्व, रथ, शस्त्र, करवीर पुष्प, धतूरे का पुष्प (काला अथवा शिवलिङ्ग), भैंसा तथा शिव विग्रह (अथवा वृषभ) को देखकर मन ही मन जय दुर्गा अथवा महिषमर्दिनी को प्रणाम करे, इससे साधक जीवन में सदा विघ्नों से मुक्त रहता है। प्रणाम

करते समय इस मन्त्र का मन ही मन अथवा स्पष्ट उच्चारण करे- **''जय देवि जगद्धात्रि! त्रिपुराद्ये! त्रिदैवते! भक्तेभ्यो वरदे देवि! महिषघ्नि नमोऽस्तु ते''**।

मद्य पात्र, मांस, मत्स्य तथा श्रेष्ठ स्त्री के दृश्य होने पर भैरवी देवी का स्मरण कर उन्हें प्रणाम करते हुए यह मन्त्र उच्चारित करे- **''घोर(रोग) विघ्न विनाशाय कुलाचार समृद्धये नमामि वरदे देवि! मुण्ड माला विभूषिते। (कुल भक्त प्रसन्नास्ये! शङ्कर प्राणवल्लभे! कराल वदने श्यामे! नमस्ते सुरसुन्दरि!।) रक्तधारा (रक्तमांस) समाकीर्ण वदने! त्वां नमाम्यहम्। सर्वविघ्न हरे देवि! नमस्ते हरवल्लभे''**॥

उपर्युक्त इन सभी वस्तुओं का दर्शन होने पर यदि साधक प्रणामादि रूप उचित व्यवहार नहीं करता है तो पुरश्चरण करने पर भी उसे शक्ति मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। शिकार आदि के द्वारा इन पशु-पक्षियों की हिंसा, उच्चाटन तथा वध करने वाला साधक पापपूर्ण मनोवृत्ति वाला होता है, वह भला मेरा भक्त कैसे हो सकता है अर्थात् ऐसा मनुष्य कदापि मेरा साधक-उपासक भक्त कहलाने योग्य नहीं है। हे कुलजन प्रिये! ये सभी मेरे प्रधान अंश (प्रकृति-शक्ति अंश) से उत्पन्न हैं, अत: शक्ति का ही विनाश करने वाला शक्ति का भक्त नहीं हो सकता।

डाकिन्यश्च महादेवि त्वदंशाः सर्वतो दिशः।
लब्धसिद्धिसमायोगो डाकिनीदर्शनं यदि॥१०५॥
अथवा दानवानां च मद्भक्तानां विशेषतः।
बटुकानां देवतानां तस्य सिद्धिश्च जायते॥१०६॥
परयोषां समालोक्य षोडशाब्दां मनोहराम्।
रक्तवस्त्रां मृगाक्षीं च प्रणम्य च मनुं जपेत्॥१०७॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सिद्धिमाप्नोति निश्चितम्।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री सर्वकर्माणि साधयेत्॥१०८॥
वैशाखे मासि देवेशि तृतीयाक्षयसंज्ञिता।
तस्यां चावाह्य विधिवत् कालिकां भुवनेश्वरीम्॥१०९॥
प्रस्तुतिं कारयेद्विद्वान् सर्वकामफलप्रदाम्।
स्तुत्वा चावाह्य यत्नेन पूजयेत् परदेवताम्॥११०॥
चतुर्भुजां महादेवीं मुण्डमालाविभूषिताम्।
अभयं वरदं खड्गं मुण्डमालाधरां पराम्॥१११॥

हे महादेवि! तुम्हारी ही अंशभूता डाकिनियाँ सभी दिशाओं में चारो ओर व्याप्त हैं। यदि संयोगवश साधक को इनका दर्शन प्राप्त हो जाय तो निश्चित ही उसे सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त मेरे भक्त दानवों, बटुकों (ब्रह्मचारियों) तथा देवताओं का दर्शन होने पर भी उसे सिद्धि की उपलब्धि हो जाती है। षोडशवर्षीया, रक्त वस्त्र पहने हुए, हिरण के समान चञ्चल नेत्रों वाली सुन्दर परस्त्री को देखकर उसे प्रणाम करके मूलमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से भी साधक को निश्चित ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसके बाद साधक सभी काम्य कर्मों में सिद्धि-मन्त्रों के इच्छानुसार प्रयोग करे। हे देवि! वैशाख मास शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को अक्षय तिथि कहा जाता है। इस तिथि में समस्त काम्य कर्मों का फल प्रदान करने वाली भुवनेश्वरी कालिका का विधिवत आवाहन कर, परदेवता स्वरूप उनका विधिवत् पूजन तथा स्तुति करके, इस प्रकार बोलते हुए उन्हें प्रणाम करना चाहिए -

चतुर्भुजां महादेवीं मुण्डमाला विभूषिताम्। अभयं वरदं खड्गं मुण्डमालाधरां पराम्।। (तुभ्यं देवि नमाम्यहम्)

अपने चारों हाथों में अभय, वर, खड्ग तथा मुण्ड (कपाल) धारण करने वाली तथा नरमुण्डों की माला से विभूषित (कण्ठ वाली) महादेवी आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

।। महादेव्याः कालिकायाः पूजनम्।।

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग।
कालिकाया महादेव्याः पूजनं विस्तरेण तु।।११२।।
गुप्तबीजं गुप्तमन्त्रं मूलाधारबहिष्क्रियाम्।
कथयस्व समासेन येन तुष्यामि शंकर।।११३।।

हे भगवन्! आप सभी धर्मों (साधनात्मक जप पूजनादि के नियमों) के ज्ञाता तथा समस्त शास्त्रों के मूल तत्वों एवं सिद्धान्तों से पूर्णतया अवगत हैं। मैं आपसे महादेवी कालिका के गुप्त बीज, गुप्त मन्त्रों, मूलाधार से कुण्डलिनी के उत्थापन की क्रिया (तथा उससे मन्त्र जप की विधि) और उन देवी के पूजन की विधि को जानना चाहती हूँ। हे शंकर (समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले)! आप प्रसङ्गानुसार इसे संक्षेप एवं विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

श्री भैरव उवाच

मन्त्रन्यासं समाचर्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत्।
आदौ च आसनं दत्त्वा पूजयेत् परदेवताम्॥११४॥
अस्यां तिथौ महादेवि कालिकां यः प्रपूजयेत्।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् सर्वशत्रुक्षयो भवेत्॥११५॥
राजानोऽन्ये महेशानि दासत्वं प्राप्नुयुर्लघु।
न पूजयति चेत्कालीं दम्भाद्वाप्यथ भैरवि॥११६॥
सर्वनाशं करोत्याशु क्रुद्धा भवति कालिका।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन महाविभवविस्तरैः॥११७॥
पूजयेत् परमेशानीं सर्वकामसमृद्धिदाम्।
महापूजां महादेवि यदि कुर्याद्वरानने॥११८॥
तदैव महती सिद्धिर्भवत्येव न संशयः।
चतुर्वर्गस्य कामी हि पूजयेत् कालिकां मुदा॥११९॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणान् संस्थापयेद् बुधः।
न्यासजालं महादेव्याः शरीरे विनिवेश्य वै॥१२०॥
एवं च आत्मानो देहे न्यासजालं निवेशयेत्।
भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् प्राणायामं चरेत् त्रिधा॥१२१॥

मन्त्र का विनियोग करके ऋष्यादि न्यास तथा मन्त्र बीज अथवा मन्त्र वर्णों द्वारा षडङ्ग-न्यास मन्त्र वर्ण न्यासादि करके परा देवता स्वरूपा महाकाली का आवाहन कर उन्हें पुष्पासन प्रदान करके विधिवत् पूजन करना चाहिए। विशेष रूप से इस अक्षय तृतीया को महाकालिका का जो साधक पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएं सिद्ध होती हैं तथा उसके शत्रुओं का विनाश भी हो जाता है। जिस राज्य में साधक निवास करता है, उसके राजा भी स्व परिजनों तथा प्रजाओं सहित शीघ्र ही उसके सेवक हो जाते हैं। जो साधक अहंकार अथवा उपेक्षादि अन्य कारणवश महाकाली की पूजा नहीं करता है, महाकाली क्रोधित होकर शीघ्र ही उसका सर्वनाश कर देती है। इसलिए सभी प्रकार की अभीष्ट समृद्धि को प्रदान करने वाली परमेश्वरी महाकाली की सामर्थ्यानुसार वैभव तथा विस्तार सहित पूजन करना चाहिए। यदि साधक महाकाली की श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य उपचारों द्वारा विस्तारपूर्वक ऐश्वर्यमयी अर्चना करता है, तो हे वरानने! उसे महान सिद्धि की अवश्य ही प्राप्ति होती है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चारो पुरुषार्थों (अथवा किसी एक-दो ही) की इच्छा रखने वाले साधक को प्रसन्नतापूर्वक महाकाली की अर्चना अवश्य करनी चाहिए।

साधक पूजन से पहले (आसन शुद्धि, तत्व शुद्धि, आचमन आदि करके) मूल मन्त्र (अथवा प्रणव) से तीन बार प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। इसके पश्चात् भूतशुद्धि के द्वारा पूजन के योग्य सम्पन्न दिव्य देवतामय स्व शरीर में प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र के द्वारा प्राण रूप से इष्ट देवता महाकाली की स्थापना करे। इसके पश्चात् यन्त्र अथवा मूर्ति में देवी का आवाहन तथा प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा करके महादेवी के शरीर में मातृका न्यास, काली क्रमानुसार षोढा-महाषोढा न्यास, मन्त्र वर्ण अथवा बीज से षडङ्ग-न्यास, मन्त्र-वर्ण न्यास तथा अन्य जो भी काली क्रम के अनिवार्य न्यास तंत्रोक्त हैं, उन्हे करके स्वशरीर को भी न्यास जालों से आच्छादित कर पूर्ण देवमय निर्मित कर दे।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥१२२॥
विघ्नानुत्सार्य देवेशि पद्मं निर्माय यागवित्।
देवीसंमुखतो देवि ततः पूजां समारभेत्॥१२३॥
रात्रौ गते तु प्रहरे प्रथमे सुरवन्दिते।
आसनं प्रथमं दद्यात् स्वागतं तदनन्तरम्॥१२४॥
पाद्यार्घ्याचमनीयं च मधुपर्कं ततः परम्।
तथा चाचमनीयं च स्नानीयं च ततः परम्॥१२५॥
वसनं रक्तकं दद्याद् रजताभरणं तथा।
गन्धपुष्पे महादेवि धूपदीपौ ततः परम्॥१२६॥
नैवेद्यं विविधं दद्यात् सुस्वादु सुमनोहरम्।
ताम्बूलं परमं हृद्यं दद्याद् दैव्यै मनोहरम्॥१२७॥

इसके पश्चात् पूजन-स्थल से विघ्न कारक भूतों का निवारण करने के लिए ''**अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया**''। इस मन्त्र को बोलकर अपनी बायीं ओर बांये पैर द्वारा तीन बार भूमि पर आघात करे। [मन्त्रार्थ-साधन में विघ्न उत्पन्न करने वाले जो भी अदृश्य प्राणी इस भूमि (स्थल) पर उपस्थित हैं, वे सभी शिव की आज्ञा मानकर यहाँ से चले जायें अन्यथा शिवाज्ञा के उल्लंघन स्वरूप नष्ट हो जायें।]

इसके पश्चात् देवी के सम्मुख अष्टदल कमल बनाकर उस पर यन्त्र स्थापित कर पूजन प्रारम्भ करे। महाकाली का यह पूजन रात में एक प्रहर बीतने के पश्चात् द्वितीय प्रहर में करना चाहिए। हे सुरवन्दिते! पूजन के समय साधक अपने हाथों में पुष्पाञ्जलि लेकर दक्षिण नासिका मार्ग द्वारा हृदय से देवता को आवाहन मन्त्र द्वारा उस पुष्पाञ्जलि पर निकाल कर

सम्मुख बने हुए अष्ट दल कमल पर पुष्पासन देकर स्थापित कर दे। इसके बाद स्थापनी, सन्निधापिनी, संरोधिनी, सम्मुखीकरण, सकलीकरण आदि मुद्राओं का समन्त्र प्रदर्शन करके फिर अन्य कार्य करें। आसन प्रदान के पश्चात् देवी का स्वागत कर क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क पुनः आचमन तत्पश्चात् स्नानीय जल प्रदान करे। स्नान के बाद लाल वस्त्र (दो), रजत (अथवा स्वर्ण) आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप तथा दीप प्रदान करे। इसके पश्चात् विविध प्रकार के सुस्वादु तथा सुरुचिपूर्ण देखने में सुन्दर पदार्थ फल व्यञ्जनादि नैवेद्य के रूप में अर्पित करके देवी को मनोहर एवं प्रिय ताम्बूल प्रदान करना चाहिए।

।। बलिदान निरूपणम्।।

बलिदानं महादेव्यै कुर्यात् साधकसत्तमः।
छागं दद्यात्तथा मेषं महिषं गोधिकां तथा।।१२८।।
कपोतं च महेशानि दद्याद् देव्यै मनोहरम्।
मधूदकं महादेव्यै शर्करादिविनिर्मितम्।।१२९।।
ततः शत्रुबलिं राजा दद्यात् क्षीरेण निर्मितम्।
स्वयं छिन्द्यात् क्रोधदृष्टया प्रहारजनकेन च।।१३०।।
कोपेन च सकृद् देवि सत्यं सत्यं गणेश्वरि।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा वै शत्रुनाम्ना महेश्वरि।।१३१।।
शत्रुक्षयो महादेवि भवत्येव न संशयः।
मन्त्रं जप्त्वा विधानेन नमस्कुर्याच्छुचिस्मिते।।१३२।।
मद्यभाण्डं निवेद्यैव सर्वयत्नेन देशिकः।
ततः स साधको वीरो जायते नात्र संशयः।।१३३।।
सन्दर्शं परमं दद्याद् भृष्टद्रव्येण संयुतम्।
गुडक्षीरं मधु द्राक्षामिक्षुदण्डं पुरातनम्।।१३४।।
रम्भाफलं बीजपूरं तथा च नारिकेलकम्।
मधुयुक्तं नारिकेलं शस्यं दद्यान्महेश्वरि।।१३५।।
अवश्यं दापयेत् तत्तु देवीतोषो महान् भवेत्।

पूजनादि के अनन्तर देवी को बलि प्रदान अवश्य करना चाहिए। श्रेष्ठ साधक देवी को छाग (बकरा), भेड़, महिष (भैंसा), गोधिका, कबूतर आदि का माँस तथा मधु मिश्रित जल एवं शर्करादि से निर्मित मिष्ठान्न बलि के रूप में प्रदान करे। राजा शत्रुनाश हेतु देवी की विधिवत आराधना करके क्षीर (दूध वाले वृक्ष की काष्ठ से) से निर्मित शत्रु आकृति को स्वयं क्रोध पूर्ण

दृष्टि से देखते हुए खड्ग द्वारा एक ही बार तीव्र प्रहार करके उसे काट कर बलि रूप में देवि को अर्पित करना चाहिए। बलि से पूर्व उस शत्रु आकृति (पुतली) में शत्रु के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए तथा क्रोध पूर्वक एक ही बार में उसे खण्डित करना चाहिए। हे महादेवि! इस बलि प्रदान प्रक्रिया से सत्य ही शत्रु का विनाश हो जाता है, मेरा यह कथन निःसन्देह पूर्णतया सत्य है।

पुनः विधिपूर्वक मन्त्र जप करके देवी को प्रणाम कर उन्हें सुसंस्कृत मद्य-युक्त पात्र अर्पित करे। इससे साधक निश्चित रूप से 'वीरभाव' को प्राप्त होता है। साधक भुने अथवा तले हुए चर्वण योग्य पदार्थ के साथ ही गुड़, दूध, मधु, द्राक्षा, छिले हुए इक्षु-दण्ड-खण्ड, केला, बीजपूर फल नारियल तथा मधुयुक्त अन्न (निर्मित पदार्थ) देवी को अर्पित करे। देवी को इस प्रकार से बलि अवश्य देना चाहिए, इससे उन्हें परम सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है।

।। महाकाली(दक्षिणा काली)-मन्त्रोद्धारः।।

गुप्तमन्त्रं महेशानि जानीहि नगनन्दिनि।।१३६।।
भुवनेशी-द्वयं भद्रे कूचयुग्मं ततः परम्।
निजबीजत्रयं देवि दक्षिणे कालिकेति च।।१३७।।
संहारक्रमयोगेन पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
वेदादिश्च महामन्त्रो बह्निजायावधिः स्मृतः।।१३८।।
अस्मात् परतरं नास्ति कालीमन्त्रः परात्परः।
कल्पपादपनामायं भजतां कामदो मनुः।।१३९।।
अतिप्रियत्वात् कथितो न प्रकाश्यं वरानने।
गुप्तबीजमिदं काल्याः सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।।१४०।।
वश्यादि च महेशानि अनेन जायतेऽचिरात्।
अष्टोत्तरशतेनापि मूलाधारबहिष्क्रियाम्।।१४१।।
कर्तुं च शक्यते देवि सिद्धो भवति तत्क्षणात्।
कलौ काली तथा तारा चान्नपूर्णा च सुन्दरी।।१४२।।
एतासां सिद्धविद्यानां श्रीमन्त्रगृहणादपि।
शिवत्वं जायते सुभ्रु संशयो नास्ति कश्चन।।१४३।।
शीघ्रं सिद्धयन्ति मन्त्राश्च सत्यं सत्यं महेश्वरि।

हे नगनन्दिनि! अब मैं महाकाली के गुप्त मन्त्र को कहता हूँ, इसे जानो (सुनो-समझो)। सबसे पहले दो बार भुवनेशी बीज (ह्रीं ह्रीं) लिखे, इसके बाद दो बार कूर्च बीज (हूँ हूँ) तत्पश्चात् तीन बार काली का स्वबीज

(क्रीं क्रीं क्रीं) पुनः 'दक्षिणे कालिके' पद और फिर संहार क्रम से पूर्व के सातों बीजों का उच्चारण करे। इन सबके पूर्व प्रणव (ॐ) तथा पश्चात् में 'स्वाहा' का प्रयोग कर मन्त्र का उद्धार करे।

मन्त्र स्वरूपम् – **''ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा''।**

इस मन्त्र से श्रेष्ठ महाकाली का अन्य कोई मन्त्र नहीं है। इस 'कल्पपादप' नामक मन्त्र का सेवन (जपादि) सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला है। हे वरानने! तुम्हारे प्रति अति प्रेमवश मैंने इस मन्त्र को कहा है, यत्र-तत्र अनावश्यक रूप से इसको प्रकाशित नहीं करना चाहिए। काली का यह बीज (मन्त्र) समस्त तन्त्र शास्त्रों द्वारा गोपनीय ही रखा गया है। वशीकरणादि सभी (षट् कर्म तथा अन्य काम्य) कर्म इससे शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्र सिद्धि के लिए साधक को मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर सहस्रार तक ले जाकर पुनः मूलाधार में लाने की आरोहण-अवरोहण रूप प्रक्रिया के अभ्यास सहित कुण्डलिनी का मूल मन्त्र के रूप में ध्यान करते हुए मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। जो इस क्रिया को करने में समर्थ है उसे तुरन्त ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है। कलियुग में काली, तारा, अन्नपूर्णा तथा त्रिपुर सुन्दरी ये सिद्ध विद्यायें कही गयी हैं। मन्त्र ग्रहण करते ही ये साधक का कल्याण करने वाली तथा उसे शिवत्व प्रदान करने वाली है। यह भी सत्य है कि इनके मन्त्रों की सिद्धि शीघ्र ही होती है। हे सुभ्रु (सुन्दर भौंहो वाली)! इस विषय में किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

।। विशेषेषु मास-तिथिषु देव्याः पूजन-फलम्।।

माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।।१४४।।
तस्यां संपूजयेत् तारां महाविभवविस्तरैः।
चक्रवर्ती महाराजा भवत्येव न संशयः।।१४५।।
मार्गे मासि सिते पक्षे सप्तमी रविवल्लभा।
अन्नदां पूजयेद् भक्त्या पुत्रपौत्रसमन्वितः।।१४६।।
लक्ष्मीः स्थिरायतेऽवश्यं यावच्च सचराचरम्।
तावत्तस्य गृहे लक्ष्मीर्वैकृत्यं परिवर्ज्य च।।१४७।।
निश्चला च भवेद् देवि सत्यं सत्यं गणेश्वरि।
पूजा चास्या महेशानि कथिता तव सन्निधौ।।१४८।।
अन्नदाकल्पके सम्यग् जानीहि गणसुन्दरि।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य नवमी या सिता भवेत्।।१४९।।

तस्यां पूज्या महेशानि सुन्दरी परदेवता।
सुन्दर्याः पटले सम्यक् पूजा च कथिता शुभे॥१५०॥
इति ते कथितं किञ्चित् नैमित्तं परमं शुभम्।
अन्यद् वक्ष्यामि देवेशि जायन्ते च निरापदः॥१५१॥

जो साधक माघ मास के कृष्ण पक्ष की रटन्ती संज्ञका चतुर्दशी में भगवती तारा का विस्तार सहित ऐश्वर्य मयी अर्चना करता है, वह (जन्मान्तर में) चक्रवर्ती सम्राट होता है। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। मार्गशीर्ष मास शुक्ल पक्ष रवि सप्तमी को भक्तिपूर्वक अन्नदा का पूजन करने वाला व्यक्ति पुत्र-पौत्रों से युक्त होता है। जब तक इस चराचर सृष्टि की स्थिति है अर्थात् कल्प पर्यन्त उस व्यक्ति के वंशजों के गृह में लक्ष्मी अपनी विकृति (चञ्चल स्वभाव) का परित्याग करके निश्चल तथा स्थिर होकर निवास करती है। हे गणेश्वरि! यह कथन पूर्णतया सत्य है। हे महेशानि-गण सुन्दरि! अन्नदा कल्प के अन्तर्गत इसकी पूजा पद्धति का वर्णन तुमसे मैं पहले ही कर चुका हूँ।, यह तुम भली भाँति जानती हो। कार्तिक शुक्ल पक्ष नवमी (अक्षय नवमी) तिथि को परादेवता स्वरूपा त्रिपुर सुन्दरी की अर्चना करनी चाहिए। हे शुभे! त्रिपुर सुन्दरी पूजा पटल के अन्तर्गत इनकी सम्यक् अर्चना का कथन मैं तुमसे पहले ही कर चुका हूँ। हे देवि! इस प्रकार मैंने ये कुछ थोड़े से परम कल्याणकारी नैमित्तिक पूजन के विषय में वर्णन किया है। अब अन्य पूजन के विषय में कहता हूँ, जिसको करने से मनुष्य सभी सङ्कटों से मुक्त हो जाता है।

॥काम्यानुष्ठानरूप षट्कर्म स्वरूपं तेषां प्रयोगानां काल-निरूपणञ्च॥

इदानीं कथयिष्यामि काम्यानुष्ठानमुत्तमम्।
येनैव महता देवि सर्वविद्यामयो भवेत्॥१५२॥
होमतर्पण पूजा च भावना जप एव च।
मन्त्रस्य साधनं चैव मारणोच्चाटने तथा॥१५३॥
एतानि काम्यकर्माणि कुरुते साधकः सदा।
अर्धरात्रे शरत्कालो हेमन्तः स्यात् प्रभातके॥१५४॥
पूर्वाह्णे च वसन्तः स्यात् मध्याह्ने ग्रीष्म एव च।
प्रावृट्कालोपराह्णे स्यात् प्रदोषः शिशिरः स्मृतः॥१५५॥
उषायोगे च हेमन्तः प्रभाते शिशिरागमः।
प्रहरार्धे वसन्तश्च ग्रीष्मो मध्यन्दिनान्तरे॥१५६॥
तुर्ययामे च वर्षाख्या शरदस्तंगते रवौ।
एतत्ते कथितं सुभ्रु कालानां नियमं शृणु॥१५७॥

हे देवि! अब मैं कामनानुसार किये जाने वाले अनुष्ठानों के विषय में कहूँगा, जिसके प्रभाव से साधक समस्त विद्याओं (सिद्धियों) से सम्पन्न हो जाता है। मारण-उच्चाटनादि रूप जो ये काम्य कर्म कहे गये हैं, उनकी साधना (अनुष्ठान) में साधक को कर्म-अधिष्ठातृ देवता का ध्यान (पूजन सहित), मन्त्र-जप, हवन-तर्पणादि पुरश्चरण हेतु किये जाने वाले सभी पञ्चाङ्ग कर्मों को करना चाहिए।

प्रथम सूर्योदय से लेकर द्वितीय सूर्योदय तक दिन के चौबीस घण्टों में अर्धरात्रि को शरत्काल, प्रभात को हेमन्त, पूर्वाह्न को बसन्त, मध्याह्न को ग्रीष्म, अपराह्न काल को वर्षा तथा प्रदोष (सूर्यास्त के पश्चात् ४८ मिनट तक) काल को शिशिर ऋतु रूप (षट्कर्म प्रयोग हेतु) कहा गया है। मतान्तर से उषाकाल में हेमन्त ऋतु, प्रभात में शिशिर, दिन के आधे प्रहर के पश्चात् बसन्त, अर्ध दिन (मध्याह्न) के बाद ग्रीष्म, दिन के चौथे प्रहर में वर्षा तथा सूर्यास्त के पश्चात् शरत् काल माना गया है। हे सुभ्रु! यह मैंने तुमसे एक दिन (साठ घटी) के अन्तर्गत् तन्त्र-शास्त्रों द्वारा स्वीकृत ऋतु-काल नियमों के विषय में कहा है, अब आगे सुनो!

एवं ज्ञात्वा महेशानि सर्वकर्माणि कारयेत्।
शान्तिं पुष्टिं तथा वश्यमाकर्षोच्चाटनादिकम्॥१५८॥
षट्कर्माणि प्रयुक्तानि निग्रहो मारणं तथा।
रोगकृत्याक्षयादीनां निरासः शान्तिरीरिता॥१५९॥
पुष्टिर्धनजनादीनां वश्यादीनां च कथ्यते।
जनसंवननं चैवाकर्षणमात्मना कृतम्॥१६०॥
उच्चाटनादिकरणं निग्रहः परिकीर्तितः।
जनानां प्राणहरणं मारणं परिकीर्तितम्॥१६१॥
सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्याश्चाहोरात्रं दिने दिने॥१६२॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धेमन्तशैशिराः ।
हेमन्तो शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि॥१६३॥
शिशिरे स्तम्भनं प्रोक्तं विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः।
प्रावृट्उच्चाटने शस्ता शरन्मारणकर्मणि॥१६४॥

इस प्रकार (उपर्युक्त रूप से) दिनान्तर्गत ऋतु-काल नियमों को जानकर, हे महेशानि! शान्ति, पुष्टि, वश्य, आकर्षण, उच्चाटन (विद्वेषण), निग्रह, मारणादि रूप सभी षट् कर्मों को यथा विधि करना चाहिए।

शारीरिक-मानसिक तथा ग्रह-जनित रोग (दोष), कृत्या-अभिचार प्रयोग भौतिक हानि आदि के निवारण के लिए किये जाने वाले प्रयोग (साधन) कर्म को 'शान्ति-कर्म' कहा जाता है। परिवार में सुख-शान्ति-स्वास्थ्य, धन सम्पत्ति, वंश वृद्धि आदि के लिए किये जाने वाले कर्म को 'पुष्टि-कर्म' कहते हैं। मनुष्य अथवा मनुष्य (जन) समूह को स्वाभिमुख करना आकर्षण तथा उनके मन-बुद्धि तथा समस्त इन्द्रिय-व्यवहारों को स्वानुकूल कर लेना वशीकरण कहलाता है। किसी व्यक्ति के चित्त में अन्य व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न कर देना जिससे वह उस व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान का परित्याग कर अन्यत्र चला जाय, उच्चाटन कर्म कहा जाता है। जिस प्रयोग (साधन) कर्म द्वारा दो व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों के मध्य कलह उत्पन्न करके उनके परस्पर के प्रेम को नष्ट कर विलग कर दिया जाता है, उसे विद्वेषण कहते हैं। इन उच्चाटन विद्वेषण कर्मों को 'निग्रह' भी कहा जाता है। बिना किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किए केवल 'मन्त्र-यंत्र' के प्रयोग कर्म द्वारा किसी मनुष्य अथवा मनुष्य समूहों (अथवा किसी भी प्राणी) के प्राणों का हरण करना (मारना) 'मारण' कर्म कहा जाता है।

दो सूर्योदयों के मध्य अर्थात् एक दिन (२४ घण्टे) में साठ घटी का काल माना जाता है। सूर्योदय से प्रारम्भ करके क्रमशः प्रत्येक दश-दश घटी के काल को बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु काल के रूप में तन्त्र शास्त्रों में कल्पना की गई है। इस प्रकार षट्कर्मों को करने के लिए मासानुसार ऋतु काल की प्रतीक्षा न करके दिन के ही छः खण्डों में सभी छः ऋतुओं की कल्पना करके कर्मानुसार नियत खण्ड काल में साधना करने का विधान किया गया है। इस प्रकार शान्ति कर्म हेमन्त ऋतु खण्ड में, वशीकरण वसन्त खण्ड में, स्तम्भन शिशिर में, विद्वेषण ग्रीष्म में, उच्चाटन वर्षा में तथा मारण कर्म दिन के शरत् खण्ड काल में करना श्रेयस्कर माना गया है।

।। कर्मानुसारेण तद्देवता-ध्यानम्।।

वश्ये चाकर्षणे चैव रक्तवर्ण विभावयेत्।
निर्विषीकरणे शान्तौ पुष्टौ चाप्यायने सितम्।।१६५।।
पीतं स्तम्भनकार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मृतम्।
उन्मादे शक्रगोपाभं कृष्णवर्णाभकं मृतौ।।१६६।।
उत्थितं मारणे ध्येयं सुप्तमुच्चाटने स्मृतम्।
उपविष्टं सुरेशानि वश्यादौ परिचिन्तयेत्।।१६७।।

आसीनंश्वेतवर्णंतुज्ञेयंतुशान्ति(सात्वि)के शिवे।
वामपार्श्वेस्थितं कृष्णं तामसं परिकीर्तितम्।।१६८।।
सात्त्विकं मोक्षकामनां राजसं राज्यमिच्छताम्।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वव्याधिनिवारकम्।।१६९।।

वशीकरण तथा आकर्षण कर्म के समय कर्म के अधिष्ठातृ देवता (अथवा मन्त्र देवता) का ध्यान रक्त वर्ण में करना चाहिए। इसी प्रकार विष-निवारण, शान्ति, पुष्टि तथा आप्यायन (तृप्ति, तुष्टि, सम्पदा आदि की वृद्धि) कर्म-काल में श्वेत-वर्ण, स्तम्भन में पीत-वर्ण, उच्चाटन में धूम्र (धुआँ) वर्ण, उन्माद में इन्द्रगोप (वीर बहूटी नामक कीट के समान रक्त) वर्ण तथा मारण कर्म-काल में कृष्ण वर्ण में देवता का ध्यान करना चाहिए।

इसी भाँति मारण प्रयोग के समय सम्मुख खड़े हुए, उच्चाटन में शयन किये हुए, वशीकरण, आकर्षण आदि में बैठे हुए (स्थिति में) देवता का ध्यान करना चाहिए।

हे शिवे! सात्विक कर्म के समय देवता का श्वेत वर्ण स्वरूप में आसन पर बैठी हुई स्थिति में ध्यान करना चाहिए। राजस कर्म के समय यान मार्ग में स्थित (रथादि पर आरूढ़) रूप से तथा तामस कर्म के समय दण्ड के समान खड़े हुए (अथवा दण्ड धारण किये हुए) रौद्र रूप कृष्ण वर्ण में ध्यान करना चाहिए।

मोक्षार्थी को सात्विक ध्यान, राज्य (धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य) के इच्छुक को राजस ध्यान तथा शत्रु-नाश, सर्वव्याधि-उपद्रव के निवारण तथा ग्रह-दोष अभिचारादि के शमन हेतु तामस ध्यान करना चाहिए।

।। पल्लव-योगादि निरूपणम्।।

(मन्त्रान्ते योजनं नाम्नः पल्लवः स तु कथ्यते)
मारणे विषसंहारे भूतग्रहनिवारणे।
उच्चाटने च विद्वेषे पल्लवस्तु प्रयुज्यते।।१७०।।
मन्त्रान्ते नामसंस्थानं योग इत्यभिधीयते।
शान्तिके पौष्टिके वश्ये प्रायश्चित्तविशोधने।।१७१।।
मोहने दीपने योगं प्रयुञ्जन्ति मनीषिणः।
स्तम्भनोच्चाटनोच्छेदविद्वेषेषु स चोच्यते।।१७२।।
नाम्न आद्यन्तमध्ये च मन्त्रसांमुख्य उच्यते।
मन्त्राभिमुख्यकरणे सर्वपापप्रणाशने।।१७३।।
ज्वर एष विषकृत्याशान्तिके स च उच्यते।
संमीलने स एवाथ मन्त्राणामक्षराणि च।।१७४।।

एकैकान्तरितं मन्त्रग्रथनं तत् प्रकीर्तितम्।
यच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यन्ते यदा मनुः॥१७५॥
तत्संपुटं भवेत् तत्तु कीलकं परिभाषितम्।
स्तम्भे मृत्युजये द्विष्टौ रक्षणादिषु संपुटः॥१७६॥
द्वे द्वे मन्त्राक्षरे यत्र एकैकं साध्यनामकम्।
विदर्भ एष विज्ञेयो मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥१७७॥
[वश्याकर्षण पौष्टिके विदर्भस्तु प्रशस्यते।
एवं योगक्रमः प्रोक्तः सर्वकार्ये मनीषिभिः॥]

मन्त्र के अन्त में साध्य नाम जोड़ने की प्रक्रिया पल्लव कही जाती है। मारण, विष-निवारण, भूत-ग्रहादि-दोष शमन, उच्चाटन तथा विद्वेषण हेतु प्रयोग करते समय 'पल्लव' युक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

साध्य-नाम के पश्चात् मन्त्र संयोग करना 'योग' कहा जाता है। शान्ति, पुष्टि, प्रायश्चित कर्म, पाप (दोष) का शोधन, मोहन तथा दीपन कर्म के समय योग संज्ञक मन्त्र का प्रयोग बुद्धिमान साधक को करना चाहिए।

साध्य-नाम के आदि, अन्त तथा मध्य में मन्त्र संयोग करना 'रोध' कहा जाता है। स्तम्भन, उच्चाटन, उच्छेद, विद्वेषण, मन्त्राभिमुखीकरण, सर्वव्याधि, ज्वर, ग्रहदोष, विष-पीड़ा आदि के निवारण हेतु 'रोध' मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र के एक-एक वर्ण के पश्चात् क्रमशः साध्य-नाम के एक-एक वर्णों का संयोग करना 'ग्रथन' कहा जाता है। सम्मोहन हेतु 'ग्रथन' प्रक्रिया युक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

साध्य-नाम के आदि तथा अन्त में मन्त्र का संयोग करना सम्पुट कहा जाता है, इस प्रक्रिया को 'कीलक' (कीलन) भी कहते हैं। विभिन्न प्रकार की आपदाओं की शान्ति, स्तम्भन, मृत्यु-निवारण तथा दिव्य अभिचार प्रयोगों तथा अस्त्र शस्त्रादि से रक्षण हेतु 'सम्पुट' युक्त मन्त्र का प्रयोग करने का विधान किया गया है।

मन्त्र के दो-दो वर्णों के मध्य साध्य नाम के एक-एक वर्णों का क्रमशः समायोजन करने की क्रिया को तन्त्र-शास्त्रों के ज्ञाता मुनियों द्वारा 'विदर्भ' नाम दिया गया है। वशीकरण, आकर्षण तथा पौष्टिक कर्मों में 'विदर्भ' मन्त्रों का प्रयोग साधक को करना चाहिए। इस प्रकार सभी कर्मों के लिए यथोचित मन्त्र-योग क्रम का वर्णन विद्वानों के द्वारा किया गया है।

वह्निकार्ये जपेत् स्वाहा नमः सर्वत्र चार्चने।
शान्तिपुष्टिवशद्वेषमारणोच्चाटने तथा॥१७८॥
सुधा स्वाहा वषट् हुं च वौषट् फटं क्रमान् न्यसेत्।
पद्मासनं महादेवि पौष्टिके समुदाहृतम्॥१७९॥
वश्ये चैव महेशानि तथा च शान्तिके शिवे।
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं साक्षात् सिद्धिकरं तथा॥१८०॥
आकृष्टौ च महेशानि कम्बलं समुदाहृतम्।
वीरासनं महेशानि विद्वेषे समुदाहृतम्॥१८१॥
उच्चाटने मारणे च वीरासनं प्रशस्यते।

हवन करते समय मन्त्रों के साथ 'स्वाहा' तथा पूजन-अर्चन के समय सभी मन्त्रों के साथ पश्चात् में 'नमः' का संयोग करना चाहिए। शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण के प्रयोग-कर्मों के समय मन्त्र के पश्चात् क्रमशः स्वधा, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

पौष्टिक कर्म के समय जपादि के लिए पद्मासन में तथा वशीकरण एवं शान्ति कर्म के समय स्वस्तिकासन में बैठना प्रत्यक्ष सिद्धिकारक कहा जाता है। विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण क्रिया की साधनाकाल में साधक को वीरासन (शवासन पर) बैठना चाहिए। आकर्षणादि कर्मों में यथोचित कम्बल का आसन प्रयोग करना चाहिए।

॥ प्रयोग-काले देवता-ध्यानम्॥

शान्तिपौष्टिकवश्ये च सुन्दरी शोभनाशया॥१८२॥
सर्वाभरणसंदीप्ता प्राप्तकाममनोरथा।
ध्यातव्या देवता सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजा॥१८३॥
आकर्षणे च तद्वत् स्यात् प्रसारणे प्रशस्यते।
साध्य आकर्षणे द्वेषे प्रथितं तन्त्रवेदिभिः॥१८४॥
वर्जमानैर्जनैर्दान्तैर्ग्रथितस्तस्करेण च।
उलूकवायसारिष्टैर्ग्रस्तमुच्चाटने रिपुम्॥१८५॥
शिलयाक्रान्ति स्तम्भे तु कृष्ये पर्णादिवत् स्मरेत्।

शान्ति-पुष्टि तथा वशीकरण के प्रयोग काल में सुन्दर शोभा सम्पन्न, समस्त आभूषणों से सुसज्जित अङ्गोपाङ्ग युक्त देदीप्यमान, समस्त मानसिक कामनाओं को प्रदान करने के लिए तत्पर तथा अत्यन्त प्रसन्न मुख कमल युक्त देवता के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। सर्वाकर्षण हेतु भी इसी भाँति

सुमनोहर सौन्दर्य-मूर्ति रूप में ही ध्यान करना चाहिए। विद्वेषण कर्म में साध्य की जन-समूह (अथवा देवता) द्वारा भर्त्सना करते हुए रूप में ध्यान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जैसे चोर को नियन्त्रित (बाँध) कर दण्डित-पीड़ित किया जाता है, उसी रूप में साध्य का ध्यान करना चाहिए।

उच्चाटन कर्म में साध्य-शत्रु को उल्लू, कौवों तथा अनेकों हानिप्रद जीवों अथवा अमाङ्गलिक पदार्थों से घिरा हुआ सा ध्यान करना चाहिए। स्तम्भन में शत्रु को विशाल प्रस्तर खण्ड से दबा हुआ तथा आकर्षण में पत्ते के समान (उड़कर समीप आता हुआ सा) ध्यान करना चाहिए।

[मारण कर्म में साध्य को चोरो-लुटेरों (अथवा सर्पों) द्वारा, हिंसक प्राणियों व्याघ्रादि के द्वारा अथवा राजसैनिकों द्वारा घिरा हुआ तथा उनके द्वारा मारा जाता हुआ सा ध्यान करना चाहिए। मारण हेतु (अथवा क्रूर कर्म के समय) अपने दाँतों से होठों को दबाकर क्रोध-मुद्रा में जप करना चाहिए।]

।। तिथि-वार-निर्णयम्।।

इदानीं शृणु चार्वङ्गि तिथीनां नियमं शुभे।।१८६।।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा।
बुधेज्यवारसंयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता।।१८७।।
सप्तमी पौष्टिके शस्ता अष्टमी नवमी तथा।
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रादिसंयुता।।१८८।।
आकर्षणेऽप्यमावास्या नवमी प्रतिपत्तथा।
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि।।१८९।।
कृष्णा चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारका।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः।।१९०।।
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च।
मन्दसौरदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि।।१९१।।
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तभनकर्मणि।।१९२।।
शुभग्रहोदये कुर्यादशुभा अशुभोदये।
रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम्।।१९३।।
होमतर्पणपूजा च भावना जप एव च।
मन्त्रस्या धारणा चैव मारणोत्सादने तथा।।१९४।।
एतानि काम्यकर्माणि प्रयोगेऽन्यत् समर्चयेत्।

हे चार्वङ्गि! अब किस तिथि में कौन सा कर्म करना चाहिए, इसके विषय में सुनो। बुधवार अथवा गुरुवार (बृहस्पतिवार) से युक्त द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी तिथियों में शान्ति कर्म करना चाहिए।

रवि अथवा शुक्रवार से युक्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी तथा एकादशी तिथियाँ पौष्टिक कर्म के लिए श्रेष्ठ हैं।

आकर्षण कर्म के लिए सूर्य-शुक्रवार युक्त अमावस्या तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तथा नवमी श्रेष्ठ है। सूर्य-शनि युक्त पूर्णिमा विद्वेषण कर्म के लिए तथा उच्चाटन हेतु शनिवार युक्त कृष्णा चतुर्दशी तथा अष्टमी प्रदोष कालीन श्रेयस्कर है।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी-चतुर्दशी तथा अमावस्या जो शनि तथा सूर्य (अथवा मंगल) वार से युक्त हो मारण कार्य के लिए उपयुक्त है। सोम तथा बुधवार युक्त शुक्ल पक्ष की पञ्चमी-दशमी तथा पूर्णमासी तिथियाँ स्तम्भन कार्य के लिए उत्तम है।

जब साध्य के लिए शुभ ग्रह उदित हों तो उसके लिए शुभ कर्म तथा अशुभ ग्रह के उदय काल में अशुभ कर्म करना चाहिए। क्रूर कर्म विशेष रूप से रिक्ता तिथियों (चतुर्थी-नवमी तथा चतुर्दशी) तथा रविवार को करना चाहिए। मारण कर्म साध्य का मृत्यु योग होने पर ही करना चाहिए।

मारण-उच्चाटन आदि सभी काम्य कर्मों की सिद्धि के लिए देवता का ध्यान, पूजन, मन्त्र जप, हवन तथा तर्पण (मार्जन-ब्राह्मण भोजन भी) सभी कर्म विधिवत् करना चाहिए। जप के समय मन्त्र-वर्णों का स्पष्ट उच्चारण तथा उनका सम्यक् (अर्थ सहित) ध्यान भी करते रहना चाहिए।

।। वशीकरण-प्रयोग:।।

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम्।।१९५।।
येन विज्ञातमात्रेण मन्त्राः सिद्ध्यन्ति तत्क्षणात्।
प्रतिमां कारयेद् देवि पलेन रजतस्य च।।१९६।।
पलार्धेन महेशानि साध्यस्य प्रतिमां शिवे।
हरितालं पलार्धं च हरिद्राचूर्णकं तथा।।१९७।।
गर्तं कृत्वा सार्धहस्तं तत्र निक्षिप्य सुन्दरि।
रक्तासनं तत्र दत्त्वा वसेत् तद्गतमानसः।।१९८।।
चतुर्दिक्षु महेशानि पताकां विनिवेशयेत्।
रक्तासने चोपविश्य पूर्वास्यो जपमाचरेत्।।१९९।।
पूजायां नियमं देवि जानीहि नगनन्दिनि।
तिलपूर्णं घटं तत्र स्थापयेत् देवि देशिकः।।२००।।

ताम्रपात्रं ततो न्यस्य प्रतिष्ठामाचरेत् ततः।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणान् संस्थापयेद् बुधः॥२०१॥
अधः कृत्वा पूजयित्वा प्रवालमालया जपेत्।
दशसाहस्रजप्येन प्रयोगार्हो भवेत् ततः॥२०२॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मायाबीजं द्वितीयकम्।
कान्तं च लाकिनीयुक्तं वामकर्णेन्दुभूषितम्॥२०३॥
ततो रक्तपदं ब्रूयाच्चामुण्डे तदनन्तरम्।
साध्यनाम ततो न्यस्य वशमानय तत्परम्॥२०४॥
वह्निजायावधिर्मन्त्रो जपेद् दशसहस्रकम्।
दशांशादिप्रमाणेन होमादींश्च समाचरेत्॥२०५॥
प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जितेन्द्रियः।
प्रातः कालं समारभ्य जपेद् मध्यन्दिनावधि॥२०६॥
जपे समाप्ते देवेशि हुनेद् दिने दिने शुभे।
जातीकुसुमहोमेन वशयेन्नात्र संशयः॥२०७॥
कर्पूरमिश्रितैस्तोयैस्तर्पयेत् परदेवताम्।
पूर्वं प्रणवमुद्घृत्य चामुण्डां प्रवदेत् ततः॥२०८॥
तर्पयाम्यग्निजायान्तं मन्त्रं जानीहि भैरवि।
अनेनैव विधानेन सन्तर्प्य परदेवताम्॥२०९॥
सिद्धिप्रयोगो देवेशि जायते नात्र संशयः।
अभिषेकं ततः कुर्याद् भैरवि प्राणवल्लभे॥२१०॥
प्रणवं च महेशानि चामुण्डा तदनन्तरम्।
अभिषिञ्चामि तत्पश्चात् हृदन्तेनाभिषेचयेत्॥२११॥
तद्दशांशेन देवेशि ब्राह्मणान् भोजयेत् तदा।
एवं कृते महेशानि वशीकरणमुत्तमम्॥२१२॥

अब मैं वशीकरण के लिए एक उत्तम प्रयोग को कहता हूँ जिसके विज्ञान (सविधि सम्पूर्ण क्रिया को करके जानने) मात्र से वशीकरण के सारे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। सर्वप्रथम एक पल अथवा आधे पल की मात्रा में चाँदी लेकर उससे साध्य की प्रतिमा का निर्माण कराये। फिर डेढ़ हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें आधा पल हरताल तथा इतना ही हल्दी का चूर्ण डालकर उसे बन्द करके उस पर लाल वस्त्र बिछा दें। गड्ढे के चारों ओर पताकायें लगाकर उसके पश्चिम समीप ही लाल (कम्बल आदि का) आसन बिछाकर, पूर्व की ओर मुख करके बैठकर साध्य का चिन्तन करते हुए जप करे।

हे पर्वत पुत्रि पार्वति! जप से पहले किये जाने वाले पूजनादि कर्म को जानो (सुनो)। पहले अपने सम्मुख तिल से पूर्ण ताम्बे का घट स्थापित करे। इसके बाद उस घट के ऊपर ताम्रपात्र में प्रतिमा को रखकर प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र द्वारा उस प्रतिमा में साध्य के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करे। फिर उस प्रतिमा को नीचे रखकर उसका पूजन करके मूँगे की माला से जप करे। दश हजार की संख्या में मन्त्र जप करने से यह प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा - पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर फिर मायाबीज 'ह्रीं' का उच्चारण करे। तत्पश्चात् कान्त(क्), लाकिनी (ल्) तथा वामनेत्र (ई) एवं चन्द्र बिन्दु के संयोग से निष्पन्न 'क्लीं' का प्रयोग करे। पुनः 'रक्त' पद के साथ 'चामुण्डे' फिर साध्य नाम तत्पश्चात् 'वशमानय' तथा वह्नि जाया 'स्वाहा' का संयोग कर पूर्ण मन्त्र का उद्धार करे।
मन्त्र स्वरुप - **''ॐ ह्रीं क्लीं रक्त-चामुण्डे अमुकं वशमानय स्वाहा''**। (अमुकं के स्थान पर द्वितीया विभक्ति युक्त साध्य नाम प्रयोग किया जायेगा)

इस मन्त्र का दश हजार जप करने के पश्चात् तत्तद् दशांश रूप से हवन-तर्पणादि पञ्चाङ्ग कर्मों को करना चाहिए। साधक को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातः स्नानादि से पवित्र होकर प्रातः काल से मध्याह्न (दोपहर) तक जप करे। प्रतिदिन जप संख्या के दशांश नियमानुसार हवन तर्पणादि की क्रिया भी सम्पन्न कर ले। जप काल में साधक को हविष्यान्न भोजी तथा जितेन्द्रिय रहना चाहिए।

जाती पुष्पों के द्वारा हवन करने से साध्य अवश्य ही वशीकृत हो जाता है। कर्पूर मिश्रित जल से देवता का तर्पण करना चाहिए। तर्पण के समय **'ॐ चामुण्डां तर्पयामि स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। हे प्राणवल्लभे भैरवि! तर्पण के पश्चात् **'ॐ चामुण्डां अभिषिञ्चामि नमः'** मन्त्र से परादेवता का अभिषेक भी करना चाहिए। इस विधि से पर देवता का तर्पण तथा अभिषेक (मन्त्र जप तथा हवन के पश्चात्) करने से हे देवेशि! अवश्य ही प्रयोग सिद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण जप तथा अन्य क्रियायें पूर्ण हो जाने पर अभिषेक (मार्जन) की दशांश संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार से सम्पूर्ण कर्म के विधिवत् सम्पादित होने पर श्रेष्ठ वशीकरण प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

जायते नात्र संदेहः सत्यं सुरगणार्चिते।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपुणां शमनोपमः॥२१३॥
यावज्जीवितपर्यन्तं स्मरबाण इवेश्वरि।
जायते नात्र संदेहः सत्यं सुरगणार्चिते॥२१४॥

श्वेतापराजितामूलं पेषयेद् रोचनायुतम्।
शतेन मन्त्रितं कृत्वा तिलकं कारयेत् ततः॥२१५॥
वशयेद् नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं महेश्वरि।
चन्द्रसूर्यौ यदि वृथा तदा निष्फलभाग् भवेत्॥२१६॥
रक्तवस्त्रेण चामुण्डां तोषयेद् बहुयत्नतः।
सुवर्णदक्षिणा देया वित्तानुसारतः प्रिये॥२१७॥
आद्यन्ते महतीं पूजां कुर्यात् तस्य वरानने।
पञ्चदिनप्रयोगेण राजानं वशमानयेत्॥२१८॥
तव प्रीत्यै महादेवि कथितं भुवि दुर्लभम्।
विद्वेषणं विशेषेण शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥२१९॥

उपर्युक्त प्रयोग-विधान द्वारा वशीकरण-सिद्धि को प्राप्त साधक नारियों के मध्य कामदेव के समान (अपने वशीभूत करने में सक्षम) हो जाता है तथा अपने शत्रुओं को भी वशीकृत करके उनका पूर्ण रूप से शमन कर देता है। हे सुरगणपूजिते देवि! ऐसा सिद्ध साधक जब तक जीवित रहता है, काम-बाण के समान स्त्रियों को पीड़ित करने में समर्थ बना रहता है।

श्वेत (सफेद) अपराजिता के जड़ को गोरोचन के साथ पीसकर उसे पूर्वोक्त वशीकरण मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके तिलक करने वाला मनुष्य सभी प्राणियों को वशीकृत करने में समर्थ हो जाता है। हे महेश्वरि! मेरा यह कथन निःसन्देह पूर्णतः सत्य है। यदि सृष्टि में चन्द्र तथा सूर्य का होना व्यर्थ हो जाय अर्थात् ये प्रकाशहीन हो जाय तो ही यह प्रयोग निष्फल हो सकता है। परन्तु चन्द्र-सूर्य कभी (सृष्टि काल में) प्रकाशहीन हो नहीं सकते। अतः यह सिद्ध-प्रयोग भी कभी असफल (असत्य) नहीं हो सकता। प्रयोग के पूर्व तथा पश्चात् में साधक को अपने सामर्थ्यानुसार देवी की विशद् अर्चना कर उन्हें रक्त वस्त्र (तथा रक्तपुष्पाभूषणादि) समर्पित करके प्रसन्न करना चाहिए। पूजनोपरान्त गुरु तथा ब्राह्मणों को सुवर्ण (सामर्थ्य के अनुसार यथोचित) दक्षिणा भी देनी चाहिए। पाँच दिनों तक इस वशीकरण प्रयोग को करने वाला साधक राजा को भी अपने वश में कर लेता है। हे महादेवि! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही मैंने संसार में अतिदुर्लभ इस प्रयोग का वर्णन किया है। अब विशेष रूप से विद्वेषण-प्रयोग का वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर इसे श्रवण (तथा चित्त में धारण) करो।

॥ विद्वेषण-प्रयोगः॥

करञ्जकविषेणैव तथा धत्तूरकेण च।
काकोलूकौ सदा लेख्यौ भूर्जपत्रे महेश्वरि॥२२०॥

साध्यानां नामसहितं मन्त्रं संलिख्य साधकः।
एतयोर्यादृशं वैरं तादृशं चामुकयोर्भवेत्॥२२१॥
वह्निजायावधिर्मन्त्रः सर्वविद्वेषकारकः।
महाकाली देवता च पूजा तस्याः शुभप्रदा॥२२२॥
एवं सहस्रमानेन जपं कुर्याच्छुचिस्मिते।
मारणं सविशेषं च शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥२२३॥

करञ्ज विष तथा धतूरा-रस मिश्रण के द्वारा कौवे तथा उल्लू के पंखों से भोजपत्र पर पूर्वोक्त मन्त्र लिखे। साध्य नाम के स्थान पर 'अमुक-अमुकयोः' तथा 'वशमानय' के स्थान पर 'विद्वेषय' लिखे। अन्त में पूर्ववत् 'स्वाहा' का प्रयोग करे। यथा – **'ह्रीं क्लीं रक्त चामुण्डे अमुक-अमुकयोः विद्वेषय स्वाहा'।**

इसके बाद महाकाली का पूजन कर उस भोजपत्र को सम्मुख रखकर दोनों शत्रुओं की (जिनके मध्य विद्वेषण अभीष्ट है तथा जिनका साध्य रूप में नाम लिखा गया है उनकी) कौवे तथा उल्लू की आकृति रूप से कल्पना करते हुए उपर्युक्त रूप से मन्त्र का एक हजार (आठ) बार जप करे। ऐसा करने से जिस प्रकार कौवे तथा उल्लू में परस्पर बैर होता है, वैसी ही शत्रुता उनमें परस्पर उत्पन्न हो जायेगी। हे देवि! अब मारण प्रयोग को एकाग्रचित्त होकर सुनो।

निहत्य कृष्णमार्जारं मस्तकं तत्र तं नयेत्।
सिन्दूरेण समायुक्तं कुर्यात् साधकसत्तमः॥२२४॥
तज्जिह्वायां महादेवि साध्यनाम लिखेच्छिवे।
साध्यनाम लिखित्वा तु कालीमन्त्रं जपेन्मुदा॥२२५॥
निजबीजेन घटितमक्षरं प्रजपेत् ततः।
दशसाहस्रजापेन मारयेदरिमग्रतः॥२२६॥
श्मशानकालिकां तत्र चावाह्य पूजयेच्छुभे।
लौहालङ्कारसंयुक्तं वस्त्रं देव्यै प्रदापयेत्॥२२७॥
दक्षिणास्यो जपेद् मन्त्रं ततः सिद्धो भवेन्मनुः।
अन्नं पक्त्वा महादेवि निर्जनं दापयेत् प्रिये॥२२८॥
अर्धरात्रे बलिं दत्त्वा खनेद् वैरिगृहे यदि।
सप्ताहमध्ये देवेशि शत्रुर्याति यमालयम्॥२२९॥
इति ते कथितं देवि सारात् सारतरं मतम्।
तव स्नेहाद्वरारोहे प्रकाशितमिदं पुरः॥२३०॥

काले बिलाव (नर बिल्ली) को मारकर उसका मस्तक लाकर उसे सिन्दूर से पूरित (रञ्जित) करे। तत्पश्चात् उसकी जिह्वा पर साध्य नाम लिखे। इसके बाद (महाकाली की पूजा कर उस मस्तक को सम्मुख रखकर) काली मंत्र का प्रसन्नतापूर्वक जप करे। तत्पश्चात् **'ह्रीं क्रीं रक्त चामुण्डे अमुकं मारय-मारय स्वाहा'** मन्त्र का दश हजार जप करे। इसके बाद श्मशान काली का आवाहन करके पुनः पूजन करे। पूजन में देवी को रक्त वस्त्र अलङ्कार आदि का समर्पण करे। साधक को दक्षिण की दिशा में मुख करके जप करना चाहिए। इससे शीघ्र ही मन्त्र सिद्ध होता है। अन्न को पकाकर निर्जन स्थान में अर्धरात्रि में देवि को बलि प्रदान करना चाहिए। इस बलि को शत्रु के घर किसी प्रकार गुप्त रूप से जमीन में गाड़ देना चाहिए। इस प्रयोग से सात दिनों में ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

।।शान्ति-कर्म प्रयोगः।।

शान्तिकं शृणु सर्वज्ञे येन जीवति साधकः।
उर्वशीं प्रथमं नीत्वा युगान्तकारकं परम्।।२३१।।
स्तनद्वयेन संयुक्ता धूमिनी-त्रितयं ततः।
अस्य मन्त्रस्य देवेशि सहस्राष्टप्रमाणतः।।२३२।।
जपं कुर्याद् महेशानि अन्नपूर्णा च देवता।
पूजयेद् विविधैर्भक्ष्यैर्नानारससमन्वितैः।।२३३।।
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं द्रव्यं दद्यान्मनोहरम्।
दशांशादिप्रमाणेन होमादींश्चं समाचरेत्।।२३४।।
पद्मपुष्पस्य होमेन शान्तिर्भवति सुन्दरि।
मधुना तर्पयेद् देवीमन्नपूर्णां परां गतिम्।।२३५।।
प्रथमेऽहनि देवेशि जलेन पूरयेद् घटम्।
तद्घटे पूजयेद् देवीं पूज्यावाह्य सुरेश्वरीम्।।२३६।।
मन्त्रेणानेन देवेशि यदि कुर्यात् प्रयोगकम्।
सर्वव्याधिर्विनश्येत नात्र कार्या विचारणा।।२३७।।

हे सर्वज्ञे! अब शान्तिक कर्म के विषय में सुनो, जिसे करने पर साधक दीर्घायु वाला होता है। प्रथम उर्वशी (आ), तत्पश्चात् युगान्त कारक (स्फ्रें) पुनः तीन बार धूमिनी (धूं धूं धूं) तदुपरान्त स्तनद्वय अर्थात् ठद्वय (स्वाहा) का उद्धार करे। इस प्रकार प्राप्त

मन्त्र स्वरुप - **"आ स्फ्रें धूं धूं धूं स्वाहा"**।

हे देवेशि! अनेकों प्रकार के रसयुक्त सुस्वादु पदार्थों से युक्त

भक्ष्य-भोज्य, चर्व्यचोष्य तथा लेह्य आदि रुचिकर अन्नों को नैवेद्य रूप से अर्पित करते हुए भगवती अन्नपूर्णा की अर्चना करके साधक इस मन्त्र का आठ हजार जप करे। जप का दशांश हवन करे। कमल पुष्पों से हवन करने से शान्ति की प्राप्ति होती है। मधु के द्वारा देवी अन्नपूर्णा का तर्पण करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्रयोग के प्रथम दिन जलपूरित घट की स्थापना करके उसमें देवी का आवाहन कर सर्वोपचारों द्वारा इसी मन्त्र से अर्चन करना चाहिए। इससे निःसन्देह सर्व प्रकार के रोगों का विनाश हो जाता है।

॥ ज्योतिरूपा देवी दर्शनम्॥

रहस्यं शृणु देवेशि येन सत्य(युगं?पुरं)व्रजेत्।
साधनादि महेशानि बहुधा कथितं मया॥२३८॥
पुनः केन प्रकारेण ज्योतीरूपां विलोकयेत्।
तन्मे शृणु वरारोहे कृपया परमेश्वरि॥२३९॥
शृणु साध्वि महाभागे सर्वज्ञानान्तरस्थितम्।
वैष्णवे गाणपत्ये च शैवे वा शाम्भवेऽपि वा॥२४०॥
योगे संन्यासधर्मे वा कौलो धर्मः प्रशस्यते।
कुलीनधर्ममाश्रित्य जपेद् रात्रिन्दिवं शिवे॥२४१॥
नद्यादौ विजने शून्ये गेहे बिल्वतले तटे।
लतासंवेष्टितस्थाने शुद्धभावेन तां भजेत्॥२४२॥
श्मशाने निर्जने वापि सदा तिष्ठति सुन्दरी।
विकाररहिताश्चेत् त्वां भजन्ते सिद्धिकामिनः॥२४३॥
तदा त्वं साधकानां च भविता दृष्टिगोचरा।

हे महेशानि! मैंने तुमसे अनेकों प्रकार के साधनों का वर्णन किया। अब एक रहस्ययुक्त प्रयोग का वर्णन करता हूँ कि किस प्रकार से कोई साधक ज्योतिरूपा भगवती का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। हे साध्वि! समस्त ज्ञानों का जो सारभूत ज्ञान है, उसे सुनो। वैष्णव, गाणपत्य, सौर्य, शाम्भव (शैव), योग अथवा सन्यास जितने भी धर्म (सम्प्रदाय) हैं, उनमें कौल (शाक्त) धर्म सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है। अतः मनुष्य को अपने कल्याण के लिए कौल धर्म का आश्रय ग्रहण कर, उसी के अनुसार दिन-रात जप-पूजन आदि कर्म करना चाहिए। नदी आदि के तट तथा विल्व वृक्ष के मूल में, जो बिल्कुल जन शून्य स्थान हो, अथवा श्मशान में अथवा एकान्त गृह में सुन्दरी स्त्री के साथ आलिङ्गनबद्ध होकर, विकार रहित चित्त से, सिद्धि के इच्छुक साधक को साधना (जपादि) करना चाहिए। ऐसे साधकों को ही, हे देवि! तुम भविष्य में साधना के फलस्वरूप दृष्टि-गोचर होती हो अर्थात् उन्हें प्रत्यक्ष (अथवा ध्यान में) दर्शन देती हो।

साधनं च प्रवक्ष्यामि कथितं यत् तपोधने।।२४४।।
यतिभावेन वा देवि राजभावेन वा शिवे।
अभेददर्शी संभूय त्वां प्रपश्यति साधकः।।२४५।।
तीर्थपूर्णं नवघटं कुजवारेऽष्टमी यदि।
निधाय तत्र विधिवत् पूजां कृत्वा विधानतः।।२४६।।
विषिच्य वेदिकां तत्र तस्योपरि शुभासनम्।
आस्तीर्य निवसेत् तत्र ज्योतिर्मन्त्रपुरःसरम्।।२४७।।
फूत्कारेण चतुर्दिक्षु तन्मन्त्रमुच्चरन् धिया।
ध्यायेच्च सततं देवि तव रूपं प्रयत्नतः।।२४८।।
द्विभुजां सुन्दरीं श्यामां नानारत्नविभूषिताम्।
रक्तवस्त्रां स्मितमुखीं मातृवत् परिपालिनीम्।।२४९।।
भैरवी घोररूपां त्वां तदा जानाति भैरवि।
नासारन्ध्रोपरि ध्यायेत् तव तेजः स्वचक्षुषा।।२५०।।
कूर्चमध्येऽथवा पश्येत् तव ज्योतिरनामयम्।
चन्द्रकोटिप्रभं शीतं रविकोटिसमं खरम्।।२५१।।
उतुङ्गे च महाकालं स्वप्रकाशाचलं गुरुम्।
धीरेण चेतसा धार्यं काले काले विधानतः।।२५२।।
शून्यालये प्राङ्गणे वा वीथिकापालिकासु च।
शृंङ्गाट-हट्ट-शालेषु यथारुचि करोत्विति।।२५३।।

हे देवि! तुमसे मैं जिस साधन को कह रहा हूँ उसमें साधक यति भाव से (सन्यासी की भाँति बिना बाह्योपचार के मानसिक ध्यान-पूजन द्वारा दिव्य भाव से) अथवा राजोचित भाव से ऐश्वर्यमयी अर्चन-पूजन रूप साधना करे, वह अभेददर्शिता की अवस्था को प्राप्त होकर तुम्हारा दर्शन करता है।

मंगलवार से युक्त अष्टमी तिथि को तीर्थ (तीर्थजल अथवा मदिरा) से पूर्ण नौ(९) घंटों की विधिवत् स्थापना कर उस पर सविधि देवी का पूजन करे। उसी स्थान पर वेदी की रचना कर उस पर आसन बिछाकर बैठे। सभी दिशाओं में फूत्कार (फट्कार) पूर्वक रक्षण विधान करके मानसिक रूप से ज्योति मन्त्र का जप करते हुए, हे देवि! निरन्तर प्रयत्नपूर्वक तुम्हारा ध्यान करे।

इस प्रकार साधनारत साधक अनेकों रत्ननिर्मित आभूषणों से विभूषित, लाल वस्त्र धारण की हुई, दो भुजाओं से युक्त, मातृवत (विश्व का) पालन करने वाली तथा मुस्कान युक्त मुख वाली षोडश वर्षीया सुन्दर युवती के रूप में, घोररूपा भैरवी तुमको देखता है। तत्पश्चात् साधक को अपने

नासारन्ध्र के ऊपर दृष्टि स्थिर कर वहाँ तुम्हारे तेज स्वरूप का ध्यान करना चाहिए अथवा कूर्च 'हूं' कार के मध्य में स्वच्छ निर्मल तुम्हारी ज्योति का ध्यान करना चाहिए। वह तेजपुञ्ज (ज्योति) करोड़ों सूर्य के समान तीव्र होने पर भी करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल (आनन्ददायक) है। उसके ऊपर स्वप्रकाशमान मान महाकाल भारी गिरि शिखरवत् स्थित हैं। समय-समय पर बार-बार इस प्रकार ध्यान करते हुए धैर्यपूर्वक इस ध्यान स्वरूप को चित्त में स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ध्यान की स्थिरता हो जाने पर साधक शून्य गृह में, खुले प्राङ्गण (आंगन अथवा मैदान) में, चौराहे पर, पर्वत शिखर पर, बाजार में अथवा घरों में जहाँ भी उसकी रुचि हो ध्यान करे।

।।साधने हेतोः स्वीकार्यता तस्य नामानि च।।

किन्तु देवि बिना हेतुं चेतः कस्मात् प्रसीदति।
अन्तःशुद्धिर्मनःशुद्धिर्हेतुशून्या कथं भवेत्।।२५४।।
नाचारे हरति प्रीतिर्विगीते नास्ति मे रुचिः।
ततो हेतुं समाधाय सुगोप्यं जपमाचरेत्।।२५५
सुरा हेतुः कारणं च परमामृतमेव च।
ज्ञानदा शुभदा तीर्थं मदिरा मोदिनी सती।।२५६।।
शुण्डा प्रबहुकुल्याङ्गा पावनी तारिणीति च।
तव नामानि गोप्यानि जानीहि कुलभैरवि।।२५७।।
तत्स्वरूपां मदोन्मत्ता मदिरां शङ्खभूषणाम्।
ध्यायेत् प्रतिमुखीं स्मेरस्वप(सुद)तीं शुभदां शुभाम्।।
न च मे त्वापभाषेथा सदा शान्तन चेतसा।
भिक्षुत्वं राजता वापि तवाश्रया युगे युगे।।२५९।।
हेतुशून्या क्रिया नष्टा नान्तःशुद्धिर्नवा सुखम्।
देहं व्यर्थं विजानीहि देवि त्वत्साधनं बिना।।२६०।।
साधनं हि वृथा देवि हेतुवादं तथा शृणु।
भैरवैर्हेतुपतिभिर्मार्गैः सेव्यं च शङ्करि।।२६१।।
मिलित्वा पर्वतेऽरण्ये यो वै संयमितात्मना।
एकाकी नैव मद्यान्नं स्त्रीभिः(?) स्तोत्रं सुवर्णितम्।।२६२।।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि जापकस्य सुसंयुतम्।
समभावे जपेद् देवि नियतं द्वित्रिकैः सह।।२६३।।
किञ्चिद्ध्यानेन तत्सर्वं न द्विधा किञ्चिदीरितम्।
स्मृत्वा ततं ब्रह्ममयं भ्रान्तिरत्र न जायते।।२६४।।

स्वीकृत्य त्वमपि ध्यायेस्तदा द्रक्ष्यसि सुन्दरि।
एवं ध्यात्वा महेशानि प्रसन्नं यदि मे मनः॥२६५॥

हे देवि! यह तो सत्य है कि साधना से सिद्धि की उपलब्धि होती है, परन्तु जब तक अन्तः शुद्धि-मनः शुद्धि न हो, चित्त में साधना के प्रति तथा साधना काल में आनन्द का उल्लास न हो, साधना में न तो मन लगता है और न ही स्थिरता प्राप्त होती है। फलस्वरूप सफलता की भी प्राप्ति नहीं हो पाती। परन्तु 'हेतु' के बिना भला अन्तर्मन की शुद्धि तथा चित्त की प्रसन्नता कैसे प्राप्त हो सकती है। जो साधक इस 'हेतु' का व्यवहार (प्रयोग) नहीं करते, साधना के प्रति उनका पहले जो उत्साह(प्रेम) होता है, धीरे-धीरे वह क्षीण होने लगता है तथा जो इसकी निन्दा करते हुए इससे दूर रहते हैं, उनके प्रति मेरे चित्त में प्रेम नहीं होता अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि उनकी मेरे प्रति (साधना द्वारा वास्तव में मुझे प्राप्त करने के प्रति) रुचि नहीं है। अतः साधक को साधना के समय (चित्त में आनन्दोत्पत्ति तथा ध्यान की स्थिरता के लिए) 'हेतु' का ग्रहण करके गुप्त रूप से जप-पूजन आदि करना चाहिए। इस 'हेतु' के सुरा, हेतु, कारण, परमामृत, ज्ञानदा, शुभदा, तीर्थ, मदिरा, मोदिनी, सती, शुण्डा, प्रबहुकुल्याङ्गा, पावनी तथा तारणी ये जो नाम (पर्याय) कहे गये हैं, हे भैरवि! इन्हें तुम स्वयं के ही गुप्त नामों के रूप में जानों अर्थात् ये तुम्हारे ही नाम है, हेतु के रूप में तुम ही उपस्थित होती हो। कण्ठ को विभूषित करने वाली (अथवा शंख पात्र में विभूषित), आनन्द का संवर्धन करने वाली, कल्याण स्वरूपा तथा कल्याण को देने वाली मदिरा का (ग्रहण करते समय), आपके ही स्वरूप के समान सुन्दर दन्त पक्तियों से युक्त मुस्कान सहित अपनी ओर (स्वयं साधक की ओर) मुख किये हुए देखती हुई सी (साधक को) ध्यान करना चाहिए। हे देवि! प्रत्येक युग में चाहे भिक्षुक (अथवा यति) हो अथवा राजा सभी ने शान्त चित्त से साधना की पूर्णता के लिए तुम्हारा आश्रय ग्रहण किया है, यह तुमसे मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ, बल्कि मेरा कथन पूर्णतः सत्य है।

बिना हेतु ग्रहण किये की जाने वाली सभी साधनात्मक क्रियायें नष्ट प्राय सी हो जाती हैं। इनसे किसी भी तरह से समुचित फल की प्राप्ति नहीं होती। बिना हेतु के न तो अन्तः शुद्धि होती है और न ही साधक को सुख (आनन्द) की अनुभूति होती है। इस प्रकार हेतु के बिना साधन व्यर्थ हो जाता है और हे देवि! तुम्हारे साधन के बिना (उसके व्यर्थ हो जाने के कारण) इस शरीर का धारण करना भी मनुष्य के लिए व्यर्थ हो जाता है।

हे देवि! हेतुवाद (तार्किक प्रमाण-सिद्धान्त) के विषय में सुनो। साधना काल में साधक रूप भैरवों के द्वारा, तार्किक मनुष्यों के द्वारा तथा अनुसन्धान कर्ताओं द्वारा हेतु का सेवन अवश्य किया जाना चाहिए। मद्य का प्रयोग अन्न के साथ ही करना चाहिए तथा कभी भी अकेले पान नहीं करना चाहिए। पर्वत पर हों अथवा वन में (अथवा अन्य कहीं एकान्त स्थल में) सदैव स्त्रियों (शक्तियों) के साथ (अथवा साधकों के साथ) मिलकर संयमित चित्त के साथ मद्य का पान (हेतु ग्रहण) करना चाहिए।

समत्व भाव में स्थिर होकर (अथवा अपने समान भाव वाले) दो-तीन अथवा पाँच-दस साधकों के साथ बैठकर संयत चित्त हो (हेतु ग्रहण के पश्चात्) थोड़ी देर भगवती का ध्यान करके फिर समस्त पूजनादि करके जप करना चाहिए। साधक को चाहिए कि वह ध्यान के द्वारा समस्त सृष्टि को ब्रह्ममय तथा ब्रह्म से व्याप्त हुआ अनुभव करे। यहाँ द्वैत रूप से कुछ भी नहीं कहा गया है। इस प्रकार के ध्यान से उसके चित्त में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न नहीं होती। हे देवि! यदि तुम मेरे मन को प्रसन्न करना चाहती हो तो तुम्हें भी इसे स्वीकार करके ध्यान करना चाहिए। तब तुम भी इसी भाँति सृष्टि को ब्रह्ममय (स्वयं से ही व्याप्त) देखोगी।

।। सुरा-शोधनम्।।

शोधनं संप्रवक्ष्यामि ज्ञानात् सार्वज्ञदायकम्।
घटं पुरो निधायादौ त्रिर्जपन् मूलमुच्चरेत्।।२६६।।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ शुभमेनमुदीरयेत्।
नमस्ते ज्ञानदे शुद्धे शुद्धिभावविनिश्चते।।२६७।।
ज्योतीरूपे ध्वान्तहरे वरदेऽमृतरूपिणि।
अविद्यान्तरसंस्थाने महापातकनाशिनि।।२६८।।
सर्वपुण्यप्रसवने सर्वदामृतमानसे।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं प्रसीद परमेश्वरि।।२६९।।
ऋद्धिं देहि मनः शुद्धिं(देहि)दुद्रुव(?)ते नमः।
चराचरधृते पुण्ये धृतिदे धृतिनाशिनि।।२७०।।
सुरासुरनरैः सेव्ये व्यामोहं हर मेऽनघे।
अरुणाक्षि विशालाक्षि विलक्षे साक्षिणि स्वयम्।।२७१।।

अब मैं मदिरा शोधन की प्रक्रिया को कहता हूँ (क्योंकि मदिरा का बिना शोधन-संस्कार किए ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए)। इसके ज्ञान से साधक को सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। सर्वप्रथम मदिरा (हेतु) पूर्ण घट को अपने सामने स्थापित कर तीन बार मूल-मन्त्र का उच्चारण करे। फिर योनि

मुद्रा का प्रदर्शन करके इस शुभ स्तोत्र को बोले। हे ज्ञान देने वाली, शुद्ध स्वरूप वाली, चित्त में शुद्धि का भाव उत्पन्न करने वाली, ज्योति स्वरूप वाली, अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने वाली, वरदायिनी, अमृतरूपिणी, अविद्या के अन्तर में स्थित रहने वाली तथा महापापों का विनाश करने वाली आपको प्रणाम है। हे सर्वप्रकार के पुण्यों को उत्पन्न करने वाली तथा मन में सर्वदा अमृतपान जनित आनन्द उत्पन्न करने वाली (अथवा मन में अमरता-देवत्व भाव उत्पन्न करने वाली) देवी परमेश्वरी आप प्रसन्न हो, आपको पुनः पुनः नमस्कार है।

हे देवि! आप मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें, मेरे मन को शुद्धि प्रदान करें। (चित्त में स्थित) द्रोह-द्वेष भाव को जलाकर नष्ट कर देने वाली तुम्हें प्रणाम है। चराचर सृष्टि को धारण करने वाली, पुण्यशीला, धैर्य का विनाश करने वाली होते हुए भी संयमी साधकों को धीरता प्रदान करने वाली, सुर-असुर-नर सभी के द्वारा सेवनीय, अरुण तथा विशाल नेत्रों वाली, विलक्षण स्वरूप वाली (अथवा स्वयं अलक्षित रहते हुए) सर्वसाक्षिणी स्वरूप वाली हे निर्दोष-पाप रहित देवि! मेरे आन्तरिक मोह (अज्ञान) को दूर करें।

दिव्यशङ्खपरीधााने सुलज्जे प्रीयतां मयि।
तमःसंचयनाशिन्यै शिवारूपधृते परे॥२७२॥
नमस्ते कुलधर्मायै कालिकायै हवे वले।
ऐं स्त्रीं हूंह्रीं दिव्यरूपे महामाये महेश्वरि॥२७३॥
ह्रींकारात् सिद्धिमाप्नोति बुद्धिं देहि यशस्विनि।
अमृतत्वं प्रयाह्यत्र निधेहि सिद्धिमुत्तमाम्॥२७४॥
अपारेऽसारसंसारे तारे कामदुधेऽनघे।
सर्वदेवगणप्रीतेऽपरिमेयगुणाश्रये ॥२७५॥
ब्रह्मानन्दपरानन्दे नमस्तेऽस्तु पुनः पुनः।
चक्षुर्ध्वान्तं मनोध्वान्तं छिन्धि देवि सुरेश्वरि॥२७६॥
कुलाचारप्रसन्ना त्वं पुनीहि ब्रह्मवादिनि।
सत्यानन्दमयि श्रीदे कमले शूलधारिणि॥२७७॥
पूतक्रतो विश्वसेव्ये प्रसूतिमुनिमानसे।
नमो नित्यं जयायै ते परायै ते नमाम्यहम्॥२७८॥
शुद्धाचाररते गोप्ये पशूनां गणकण्ठके।
यथा ध्वान्ताद्विमुच्येऽहं तथा कुरु सुरार्चिते॥२७९॥

दिव्य शंखरूपी पात्र (अथवा गले) को वस्त्ररूप में धारण करने वाली अर्थात् दिव्य शंख रूप पात्र में स्थित हे लज्जाशीले! मुझ पर प्रसन्न हों। अज्ञान समूह का नाश करने वाली, कुल धर्माङ्गरूपिणी कालिका तुम्हें नमस्कार है। पराशक्तिरूपिणी शिवा का स्वरूप धारण करने वाली दिव्यरूपिणी, महामाया स्वरूपा, बलिरूपा हे महेश्वरि! 'ऐं स्त्रीं हूं ह्रीं' द्वारा आप आवाहित होने वाली हैं अथवा इस मन्त्र द्वारा मैं आप का आवाहन करता हूँ)। हे यशस्विनि! तुम्हारे 'ह्रींकार' स्वरूप से (इसके जप द्वारा) सिद्धि की प्राप्ति होती है। (अपने 'ऐंकार' स्वरूप द्वारा) आप मुझे बुद्धि प्रदान करें। मेरे जीवन में अमरता (अथवा आनन्द) की उत्पत्ति करें तथा मुझे उत्तम सिद्धियों की प्राप्ति करायें। हे देवि! सुरेश्वरि! आप पापों से रहित, (अभिलाषापूर्ति में) कामधेनु के समान, इस अगाध संसार से तारने वाली (तारा स्वरूप), समस्त देवसमुदायों की प्रीति भाजनी, अपरिमित गुणों की आश्रयभूता तथा परानन्द रूपिणी ब्रह्मानन्द स्वरूपा है। आपको बार-बार प्रणाम है। आप मेरे (ज्ञानरूपी) नेत्रों के अन्धकार (अज्ञान) को तथा काम-क्रोधादि दोष रूप मानसिक तम को छिन्न-भिन्न कर दें।

कुलाचार (तथा कुलाचार परायणों) से प्रसन्न होने वाली तुम मुझे पवित्र करो। हे ब्रह्मवादिनि! सत्-(चित्)-आनन्द रूपिणी, ऐश्वर्य (लक्ष्मी) प्रदान करने वाली लक्ष्मी रूपा, शूल धारण करने वाली (शिवा), यज्ञों (सत्कर्मों) को पवित्र करने वाली, विश्व द्वारा सदा सेवनीया (अथवा विश्व की सेवा-पालन करने वाली), मुनियों के मन से उत्पन्न (मुनि मानस कन्या), जय प्रदान करने वाली तथा पराशक्ति स्वरूपिणी तुम्हें मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

शुद्ध आचरण (व्यवहार) में संलग्न रहने वाली अथवा शुद्धाचरण(करने वालों) से प्रसन्न रहने वाली, सर्वदा गोपनीय प्रकृति वाली (अथवा गोप्य रूप से व्यवहृत होने वाली) पशु साधकों के कण्ठहार स्वरूप वाली तथा देवताओं द्वारा पूजनीया हे देवि! जिस प्रकार से मेरा अज्ञान नष्ट हो वैसा उपाय आप करें।

॥ हेतु शोधन-मन्त्राः॥

एवं स्तुत्वामहादेवि मूलेनैव विशोधयेत्।
ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥२८०॥
ॐ सूर्यमण्डलसंभूते वरुणालयसंभवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥२८१॥

ॐ वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन देवेशि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥२८२॥

इस प्रकार उपर्युक्त रूप से स्तुति करके पहले मूलमन्त्र से पुनः निम्नलिखित मन्त्रों से मद्य (हेतु) का विशोधन करे।

१. ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥

[हे देवि! सृष्टि में जो कुछ भी गोचर अथवा अगोचर रूप से स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से स्थित पदार्थ हैं, वे सभी निश्चित रूप से एक अद्वितीय परं ब्रह्मस्वरूप (ब्रह्ममय) ही हैं। (इस सत्य के प्रभाव से) बृहस्पति पुत्र कच की मृत्यु में कारण होने के फलस्वरूप उत्पन्न ब्रह्महत्या के स्पर्श रूप तुम्हारे दोषों को मैं नष्ट करता हूँ।]

२. ॐ सूर्यमण्डलसंभूते वरुणालयसंभवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥

[हे देवि! सूर्य मण्डल से तुम्हारी उत्पत्ति होने के कारण तुम सर्वतीर्थ मयी तथा सागर से उत्पन्न होने के कारण परम पवित्र अमृतमयी रस (आनन्द) रूपिणी हो। चन्द्रमा की षोडशी कला स्वरूपा पराशक्ति भी तुम्हीं हो (इस सत्य के प्रभाव से) मैं तुम्हें शुक्र (दैत्य गुरु शुक्राचार्य) के शाप से मुक्त करता हूँ।]

३. ॐ वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन देवेशि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥

[हे देवि! समस्त वेदों का बीज (मूल उत्पत्ति कारण) कहा जाने वाला प्रणव 'ॐ' यदि ब्रह्मानन्दमय (साक्षात् ब्रह्मस्वरुप) है, तो उस सत्य के प्रभाव से, हे देवेशि! आप ब्रह्महत्या रूपी दोष से मुक्त हों।]

ततस्तां पुरतः कृत्वा यथोक्तं जपमाचरेत्।
दिने दिने महादेवि यदि पूजां करोति हि॥२८३॥
अवश्यमेव तद्रूपं जानीयात् साधकोत्तमः।
शवानां साधनं देवि बहुधा कथितं मया॥२८४॥
वीरभावेन तद् देवि हेतुहीनं वृथागतम्।
इदानीं शवरूपेण ध्यायेत् त्वां सततं शिवे॥२८५॥
तदा क्रीडति(सि) मूर्त्या व शवोपरि त्रपान्विता।
ततो नित्यानुरागेण यद्भावाय प्रकल्पसे॥२८६॥

महानिशायां ब्राह्म्ये वा मुहूर्ते ध्यानतत्परः।
त्वद्रूपं परमानन्दं तदा पश्यति निश्चितम्॥२८७॥
रात्रिपूजा-जपध्यानैर्बहुशो हेतुभावितैः।
प्रसन्ना त्वं तदा देवि ततस्तत्र दृढा भवेत्॥२८८॥

तत्पश्चात् उस मद्य-पात्र को सम्मुख रखकर निर्देशानुसार मन्त्र जप करे। हे देवि! यदि साधक इसी भाँति प्रतिदिन श्रद्धा भाव से देवी की पूजा करता है तो अवश्य ही एक दिन उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। हे देवि! मैंने तुमसे अनेकों बार विविध प्रकार से शव-साधना के विषय में चर्चा की है, परन्तु इसकी साधना बिना 'वीरभाव' के तथा बिना 'हेतु' का ग्रहण किये व्यर्थ (असम्भव) ही होती है।

जब साधक शव पर स्थित होकर अथवा स्वशरीर को शव की भाँति बिल्कुल निश्चेष्ट (स्थिर) करके तुम्हारे ध्यान में पूर्णतः निमग्न हो जाता है तो 'ह्रीं' कार बीज के मध्य शव के ऊपर क्रीडा करती हुई तुम्हारी मूर्ति का उसे दर्शन होता है। इसके बाद नित्य अर्धरात्रि में अथवा ब्रह्म मुहूर्त में (जब कभी भी) प्रेम पूर्वक तुम्हारे ध्यान में तत्पर होकर, साधक जिस रूप में तुम्हारी कल्पना करता है, उसी रूप में परमानन्द स्वरूपिणी आपका निश्चित रूप से दर्शन करता है। इस प्रकार हेतु ग्रहण करके अनेकों बार बहुतायत से रात्रि में (तुम्हारी) पूजा करने वाले तथा जप एवं ध्यान में तत्पर रहने वाले साधकों की आराधना से जब तुम प्रसन्न हो जाती हो, तो हे देवि! उनके चित्त में तुम्हारा स्वरूप दृढ़ता से स्थिर हो जाता है।

॥ हेतु-ग्रहणं तदनन्तरे जप-पूजादि कर्माणि॥

सतीं दृष्टवा नमस्कुर्यात् स्पृष्टवा तां च शुचिर्भवेत्।
पीत्वा च परमानन्दं लभते प्राणनिर्वृतिम्॥२८९॥
मोदिनीपूरितघटं बिल्वशाखादिशोभितम्।
निधाय पुरतो मन्त्रैः पूजां कृत्वा विधानतः॥२९०॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिश्चैव शुद्धिभिः।
द्वाविंशतिशतं नित्यं जप्तव्यं वेदिकोपरि॥२९१॥
यथाशक्त्याथवा जप्यं लक्षमेकं सुसंयतम्।
तस्मादुत्थाय विधिवत् तिलाज्यैः श्रीफलैर्हुनेत्॥२९२॥
तत्तया सुरया देवि तर्पयेच्च विधानतः।
सन्तुष्टे मण्डले देवि संतुष्टा सिद्धिदा तदा॥२९३॥
निर्विघ्नं जायते तत्र निःशङ्कं निरुपद्रवम्।
निःशोकं निर्विकारं च परं चेतः प्रसीदति॥२९४॥

नैवेद्यं तु नमस्कुर्यात् त्वद्बुद्ध्या स्वीकरिष्यति।
भ्रमबुद्धिर्न कर्तव्या मनसापि कदाचन॥२९५॥

सती स्वरूपा मद्य (हेतु) को देखकर साधक को श्रद्धा से नमस्कार करना चाहिए। उसका स्पर्श करके वह पवित्र हो जाता है। पीने से उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा मन (अथवा जीव-आत्मा) को परम विश्रान्ति (सन्तुष्टि) की अनुभूति होती है।

मद्य-पूरित घट, जो विल्वपत्रादि से सुशोभित है, उसे अपने सामने स्थापित करके मन्त्रों सहित धूप-दीप-नैवेद्य-बलि-शुद्धि आदि के द्वारा (उसमें) देवी का विधि-पूर्वक पूजन करके, वेदी के ऊपर आसन स्थापित कर, उस पर विधिवत बैठ करके, साधक को नित्य (काली के बाईस वर्णात्मक) मन्त्र का बाईस सौ की संख्या में जप करना चाहिए अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति जप करते हुए एक निश्चित समयावधि में एक लाख की संख्या में जप पूर्ण करना चाहिए। जप पूर्ण होने पर (उसके दशांश की संख्या में) तिल, घृत तथा विल्व फल (के खण्डों के मिश्रण) द्वारा विधिवत् हवन करे। फिर उसी सुरा द्वारा देवी का यथा संख्या विधिपूर्वक तर्पण करे। सपरिवार (देवी का) पूजन तथा तर्पण करने से प्रसन्न हुई वह देवी साधक को सभी प्रकार की सिद्धियां प्रदान करने वाली होती है। इससे साधक के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। वह सभी प्रकार के उपद्रवों तथा मानसिक चिन्ताओं से रहित हो जाता है। उसका चित्त शोक तथा विकारों से शून्य हो जाता है। प्रसन्नता एवं आनन्द से व्याप्त हो जाता है। साधक को देवी का नैवेद्य तुम्हारा ही स्वरूप समझकर श्रद्धा सहित प्रणाम करके स्वीकार करना चाहिए। उसके प्रति किसी भी प्रकार की संशयात्मक भावना अथवा दोषबुद्धि की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए।

॥नैवेद्य-निन्दा-निषेधं देव्याः नैवेद्य-वर्णनञ्च॥

तन्नेवैद्यं चेतसापि यदि निन्दति कश्चन।
तदा तं चर्वयेत् काली निर्मूलं जायतेऽथवा॥२९६॥
तस्माद् दृष्ट्वा च श्रुत्वा च नच निन्दायते क्वचित्।
नरमार्जारमहिष-च्छागलैर्मेषकैस्तथा ॥२९७॥
कपोतकलविङ्काद्यैर्हंसमद्गुर-कुक्कुटैः ।
शालसजालशकुल - रोहितादिभिरण्डजैः॥२९८॥
बलिभिर्विविधैश्चान्यैः फलैश्च मधुराप्लुतैः।
सिक्तसंपक्कदग्धैश्च वित्वचैरिक्षुयष्टिभिः॥२९९॥
तारिणीं पुरतः कृत्वा शुद्धचित्तेन देशिकः।

भगवती के नैवेद्य की कभी मन से भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। यदि कोई इसकी निन्दा करता है तो काली उसका चर्वण कर (चबा) जाती है अथवा उसका समस्त पूजन-जपादि कर्म व्यर्थ हो जाता है। इसलिए देवी के नैवेद्य को देखकर अथवा उसके विषय में सुनकर भी उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

साधक को चाहिए कि वह शुद्ध मानसिक भाव से दोषबुद्धि से रहित होकर देवी तारा (अथवा काली) के सामने नैवेद्य-रूप में, नर बिल्ली (बिलाव), भैंसा, बकरा, भेड़ आदि निर्दिष्ट पशुओं का मांस, कबूतर, छोटे पक्षियों, हंस, जल कौवा, जल कुक्कुट (मुर्गा) आदि जलचरों के माँस, नदी-तालाबादि में होने वाली मछलियों शाल, शकुल (शष्कुली) रोहित आदि मछलियों तथा उनके अण्डों से निर्मित खाद्य पदार्थ, विविध प्रकार के मधुर रसों से पूर्ण फलों, भली-भाँति पकाये गये, सेके गये तथा भुने हुए खाद्य पदार्थों तथा छिल्के से रहित गन्ने के टुकड़ों को, समर्पित करे अथवा बलि रूप से इन्हें अर्पित करे।

।। स्त्रियः सर्वथा पूज्याः।।

स्त्रीणां मनो न हन्तव्यं स्त्रियश्चास्य विशेषतः।।३००।।
शक्तिरूपा हि त्वद्व्य(क्ता?क्तिः) यतः सर्वत्र शोभने।
पशुशक्तिः पक्षिशक्तिर्नरशक्तिश्च शोभने।।३०१।।
विगुणं पूजिता कर्म सगुणं जायते सदा।
तासां पूजा विधानेन कर्तव्या भक्तितः शुभे।।३०२।।
कौलिनीं सुभगां शक्तिं पुष्पेणापि न ताडयेत्।
यदि शक्तिर्भवेत् तुष्टा तुष्टां जानीहि तां शिवे।।३०३।।
नित्यपूजाविधानेन जपहोमपरायणम्।
कुलसङ्गं समाश्रित्य पुरश्चरणमाचरेत्।।३०४।।

स्त्रियों को कभी भी मानसिक पीड़ा (भी) नहीं देनी चाहिए अथवा मन में भी स्त्रियों को मारने अथवा कष्ट देने का भाव नहीं लाना चाहिए। विशेष रूप से स्व स्त्री के साथ साधक को कभी भी ऐसा व्यवहार (पीड़ा देना अथवा पीड़ित करने की कल्पना) नहीं करनी चाहिए। क्योंकि स्त्री, शक्ति रूपा भगवती का ही व्यक्त (प्रत्यक्ष प्रकट) रूप है। पशु-शक्ति, पक्षी-शक्ति तथा नर-शक्ति के रूप में (उनकी सहचरी भार्या रूप में) भगवती आद्या शक्ति ही सर्वत्र सुशोभित हो रही है। हे शुभे! (शुभ लक्षणों

वाली अथवा शुभ करने वाली) देवि! साधक को विधिपूर्वक भक्ति सहित उन स्त्रियों की पूजा (सत्कार) करना चाहिए। इससे उसके साधन-कर्म में जो न्यूनता अथवा दोष होता है, उसका परिमार्जन हो जाता है तथा गुणहीन कर्म भी गुण युक्त हो जाता है। स्त्री कुल (देवी) रूपा, सौभाग्य (ऐश्वर्य) रूपा तथा साक्षात् शक्ति रूपा होती है, अतः पुष्प प्रहार द्वारा भी उसे ताड़ित नहीं करना चाहिए। यदि शक्ति (स्वस्त्री सहित अन्य स्त्रियाँ भी) साधक के व्यवहार से प्रसन्न रहती है तो समझना चाहिए कि भगवती शिवा ही प्रसन्न हैं। स्व (अथवा पर) शक्ति (स्त्री) के साथ बैठकर ही साधक को नित्य पूजन-जप-हवनादि कर्मों का विधिवत आचरण करते हुए मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहिए।

क्षेमङ्करीं जम्बुकीं च काकोलं गृध्रमुत्तमम्।
दृष्ट्वा वैषां रुतं श्रुत्वा प्रणमेत् मन्त्रपूर्वकम्॥३०५॥
जपकाले महेशानि यद्येषां श्रूयते रवः।
तदैव सिद्धिं जानीहि न जपेत् स्तोत्रमाचरेत्॥३०६॥
बलिना मुण्डमालाभिर्गृहं कृत्वा जपं चरेत्।
कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशी बलिप्रिये॥३०७॥
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये।
दीपैरुद्दीपितं कृत्वा तन्मध्ये निवसन् पुनः॥३०८॥
परमानन्द चित्तेन तद्रूपस्य जपं चरेत्।
एकलक्षेन जप्तेन साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥३०९॥
रात्रौ जपं तथा पूजां रहस्यामृतसेवनम्।
यदि न स्यात् कुलानन्दसाधकः कौलिकः कथम्॥३१०॥
बहुधा कथितं देवि सत्यं जानीहि मद्वचः।
कुलामृतं बिना देवि चेतः कस्मात् प्रसीदति॥३११॥
ततो देवि समादाय पूजितां कुलपावनीम्।
अनन्यभावमाश्रित्य ममात्मा सुप्रसीदति॥३१२॥

क्षेमकरी (एक पक्षी विशेष), सियार (मादा), (पहाड़ी) कौवा तथा विशाल गीध इन पक्षियों को देखकर अथवा उनकी ध्वनि (बोली) को सुनकर मन्त्रोच्चारण सहित प्रणाम करना चाहिए। मन्त्र का जप करते समय यदि इनमें से किसी को भी ध्वनि सुनाई दे तो मन्त्र की सिद्धि जाननी (समझनी) चाहिए। उस समय जप न करके स्तोत्र पाठ करना चाहिए।

तत्पश्चात् "**कृशोदरी....................शङ्कर प्रिये॥**" (मूल के अनुसार) मन्त्र श्लोक [क्षीण कटि (उदर) वाली, अत्यधिक शक्ति तथा प्रभाव से सम्पन्ना, खुले शिरः केश वाली, बलि से प्रेम करने वाली तथा कुलाचार एवं कुलधर्म परायण साधकों को देखकर प्रसन्नमुख वाली हे शङ्कर प्रिये! आपको प्रणाम है।] बोलते हुए चारों ओर बलि स्थापित कर, मुण्डमालाओं द्वारा घेरा बनाकर तथा घेरे के अनुसार ही चारो ओर दीप प्रज्जवलित कर उसके मध्य में बैठकर, उसी प्राणि रूप का, जिसकी ध्वनि का श्रवण हुआ है, परमानन्द पूर्ण चित्त से ध्यान करते हुए जप करना चाहिए। एक लाख की संख्या में मन्त्र जप की पूर्णता द्वारा साधक को श्रेष्ठ सिद्धियों की प्राप्ति का साधन करना चाहिए।

रात्रि में एकान्त में स्थित हो गुप्त रूप से अमृत (हेतु) का सेवन करके पूजन-जपादि कर्म करना चाहिए। यदि कोई (शाक्त) साधक इस कुलानन्द का साधक (सेवन करने वाला) नहीं है तो भला वह किस प्रकार से कौलिक (कौल साधक) कहे जाने के योग्य है। हे देवि! इस विषय को तुमसे मैंने अनेकों प्रकार से कहा है। मेरे वचन को तुम सर्वथा सत्य समझो। हे देवि! कुलामृत के सेवन बिना भला चित्त कैसे प्रसन्न हो सकता है। इसलिए हे देवि! जो साधक हेतु का सेवन कर अनन्य भाव से आपका आश्रय ग्रहण कर कुलपावनी रूप आपका पूजन करता है, वह वास्तव में मेरी आत्मा को (मुझे ही) प्रसन्न करता है अथवा जो साधक इस पूजनीया कुलपावनी (मद्य) का अनन्य भाव से (अर्थात् कुछ अन्य नहीं बल्कि आपका ही स्वरूप आपसे अभिन्न समझते हुए) आश्रय ग्रहण कर स्वीकार करता है, वह सत्य ही मुझको ही प्रसन्न करता है।

॥साधने कारणस्य कारणता विषये देव्यासहतादात्म्य प्राप्त्युपाय विषये च प्रश्नम्॥

श्रीदेव्युवाच

किमर्थं बहुधा देव मोदिनीस्तुतिरीरिता।
तां बिना नैव सिद्धिः स्यादित्येवं कथितं कथम्॥३१३॥
तन्मे ब्रूहि महेशान येन तत्साधनं सदा।
क्रियते शान्तचित्तेन तद्रूपं दृश्यते मुदा॥३१४॥

हे देव! आप बार-बार विविध प्रकार से हेतु (मद्य) की स्तुति (प्रशंसा) करते हुए ऐसा किस प्रकार से (किस आधार पर) कह रहे हैं कि उस (हेतु) के बिना सिद्धि नहीं (प्राप्त) हो सकती है। हे महेशान! आप मुझे ऐसा साधन बताएं, शान्त चित्त से साधक जिसको करके प्रसन्नतापूर्वक देवी के

उस स्वरूप को देखता है अथवा उनके साथ तादात्म्यता का अनुभव करता है।

।। कारणस्य कारणता-विषये समाधानम्।।

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि परं गुह्यं कारणस्य च कारणम्।
येन ज्ञातेन शारीरं मानसं च महेश्वरि।।३१५।।
विनश्यति महा(देवि?मोहो)दिव्यं देहं च लप्स्यते।
सर्वागमार्थसारं च सर्वयोगस्य मातरम्।।३१६।।
शरीरं मलिनं विद्धि मनश्चञ्चलमेव च।
मलापकर्षणं नास्ति कुतो ध्यानं महेश्वरि।।३१७।।
शरीरभावा बहवः सुखदुःखात्मकाः शुभे।
चेतःसंमीलनं केन ज्ञायतां तव जन्तुषु।।३१८।।
भीतिलज्जाजुगुप्साद्या निद्रातन्द्राभ्रमादयः।
अविपाको विभ्रमश्च शोकचिन्तादिकाः परे।।३१९।।
भवन्ति विविधा भावा भूतानां देहधारिणाम्।
देहव्यपाये नयनं भूतानां देहधारणे।।३२०।।
तत्रैव मन एवाहमात्मारामा सनातनी।
अतस्तु तारिणीं देवि मम तेजःस्वरूपिणीम्।।३२१।।
जानीहि भक्तिसंयुक्तां तामाश्रय विधानतः।
मलापकर्षिते देहे सम्यग् दीपिततेजसि।।३२२।।

हे देवि! (शाक्त) साधना में 'मद्य' ग्रहण करने का कारण क्या है, इसे सुनो! इसके ज्ञान से (तथा ज्ञान के बाद सविधि सेवन से) साधक का मानसिक मोह तथा शारीरिक दोषों दोनों का विनाश हो जाता है तथा उसे दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। समस्त आगमों (तन्त्र शास्त्रों) द्वारा जो सार रूप प्राप्तव्य तत्व है तथा जिसकी प्राप्ति के साधन स्वरूप में सभी प्रकार के योगों का वर्णन किया गया है, उनका आधार मनुष्य का शरीर तथा मन है। परन्तु स्वभावतः शरीर मलिनता तथा मन चञ्चलता से युक्त है। जब तक इन दोषों का निराकरण नहीं हो जाता, हे महेश्वरि! तब तक भला ध्यान कहाँ हो सकता है।

शरीर तथा मन दोनों अनेकों प्रकार की सुख-दुखात्मक अवस्थाओं तथा भावों (वृत्तियों) से संयुक्त हैं, तो फिर हे शुभे! किस प्रकार चित्त को आपके ध्यान में लगाकर इन प्राणियों को आपका ज्ञान उपलब्ध हो। शरीरधारी प्राणियों (मनुष्यों) के साथ भय, लज्जा, घृणा (आदि पाश), निद्रा, तन्द्रा,

भ्रम, विभ्रम शोक-चिन्ता आदि (मानसिक वृत्तियाँ) तथा पूर्वकृत कर्मों की अपक्वता आदि अनेकों प्रकार के भाव सम्बद्ध हैं।

मनुष्यों के शरीर के विनाश (मृत्यु) तथा पुनः नवीन शरीर धारण (पुनर्जन्म) का कारण मन ही है। 'अहम्' रूप आत्मा, आप्त काम (पूर्ण काम-स्वयं में सन्तुष्टा) शाश्वतरूपा भगवती तारा हैं, जो वास्तव में मेरे ही तेज (शक्ति) के स्वरूप वाली हैं। जो विधिपूर्वक भक्ति सहित (ध्यान-पूजन-जपादि रूप आराधना से युक्त होकर) उसका आश्रय ग्रहण करते हैं, वही उसको तत्वतः जान पाते हैं। जब (शरीर तथा मन से) सभी प्रकार के मलों (दोषों) का निवारण हो जाता है तो इसी देह में वह भली-भाँति प्रकाशमान तेज के रूप में अनुभूत होती है।

॥ हेतु ग्रहणात् दोषापनयनम्॥

ध्यानयोगे स्थिरत्वं च बलित्वं चोपलभ्यते।
नाजीर्णो दुर्बलो रोगी भीरुश्चिन्तापरिप्लुतः॥३२३॥
सुरासंसेवनाद् देवि नैते दोषा भवन्ति हि।
अन्ये च बहवो दोषा नश्यन्ति मुक्तियोगतः॥३२४॥
शापाश्चञ्चलचित्तानां ब्रह्मादीनामिहोदिताः।
मन्त्रेण तां समुद्दिश्य मम पूजापरो भव॥३२५॥
त्वत्स्वरूपां महादेवि तां विद्धि सर्वदा प्रिये।
तया बिना मनो नित्यं मालिन्यं न परित्यजेत्॥३२६॥
परित्यक्ते तु मालिन्ये मनो देहं च रूपभाक्।
अतः सुरां समाश्रित्य साधनं कुरु यत्नतः॥३२७॥

ध्यान योग में स्थिरता (स्थिति तथा विषय दोनों में स्थायित्व) शक्ति सम्पन्न एवं सामर्थ्यशाली मनुष्यों को ही उपलब्ध हो पाती है। जो मनुष्य वृद्ध, दुर्बल (शक्तिहीन), रोगी, भयभीत हैं तथा सदैव मानसिक चिन्ताओं में व्याप्त रहते हैं, उन्हें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। विधिपूर्वक सुरा का सेवन करने से मनुष्यों में ये दोष नहीं होते तथा इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई शारीरिक व मानसिक (साधना बाधक) दोष हों, तो वे भी इसके योग से नष्ट हो जाते हैं। चञ्चल चित्त वाले ब्रह्मा (शुक्राचार्य) आदि के द्वारा सुरा को दिये गये शापों का यहाँ कहे गये मन्त्रों द्वारा निराकरण (सुरा-संस्कार) करके (उसका सेवन कर) साधक को मेरे पूजन में तत्पर होना चाहिए। हे महादेवि! प्रिये! उस सुरा को सर्वदा आपका ही स्वरूप जानना चाहिए। उसके

सेवन के बिना मन की जो स्वाभाविक मलिनता है, वह दूर नहीं हो पाती। जब मन और शरीर दोनों अपनी मलिनता का परित्याग कर स्वच्छ हो जाते हैं तो ध्येय का स्वरूप स्पष्टतः आभासित होने लगता है। इसलिए सुरा का सेवन करके ही साधन करने का प्रयत्न (अभ्यास) करना चाहिए।

।। शाक्ताचार-वर्णनम्।।

इदानीं शृणु चार्वङ्गि शाक्ताचारं वरानने।
येन बिना न सिद्धिः स्यात् कल्पकोटिशतैरपि।।३२८।।
मधु मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां च मैथुनं तथा।
पञ्चमानां समाकृत्या पञ्चमी त्वत्स्वरूपिणी।।३२९।।
नत्वा स्तुत्वा च तां देवीं पूजयित्वा सदा शुचिः।
सुरा जनी च शक्तिः स्यात्तव रूपस्वरूपिणी।।३३०।।
तां समाश्रित्य सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।
सुराभाण्डं नमस्कुर्यात् स्त्रियं च रक्तवाससम्।।३३१।।
कपिलां रोहिणीं गञ्जां गोष्ठं गां च पयस्विनीम्।
कुलवृक्षफलैः पूजा नैवेद्यमामिषं रसम्।।३३२।।
एका त्वं सर्वदेवानां सर्वदेवात्मिकापि च।
सर्वानन्दमयः साक्षात् सर्वकामपरायणः।।३३३।।
चतुष्पथजपासक्तः शुद्धः श्माशानिकः क्वचित्।
भूत्वैव भावयन्नात्मानं ततः स्याच्छक्तिपूजकः।।३३४।।

हे सुन्दर शरीराङ्गों वाली वरानने! अब 'शाक्ताचार' (शाक्त साधकों के आचरणों-व्यवहारों) के विषय में सुनो, जिसके बिना करोड़ों कल्पों तक साधना करने पर भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती। मधु (मदिरा), मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन (पञ्च 'मकार' शब्द से सम्बोधित किये जाने वाले) इन पञ्च तत्वों, जिसमें पञ्चम तत्वरूप शक्ति (स्त्री) जो तुम्हारा ही स्वरूप होती है, संग्रह करके, उस शक्तिरूपा देवी को प्रणाम, उसकी स्तुति तथा पवित्र भाव से उसकी पूजा करके, बिना (दोष भाव का) विचार किये, निःसंकोच भाव से साधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति हेतु, सुरा तथा स्त्री रूपा शक्ति, जो तुम्हारे ही स्वरूप हैं, उनका आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

सुराभाण्ड (वह पात्र घटादि जिसमें सुरा रखी गयी है), स्त्री, लालवस्त्र, कपिला गाय, रोहिणी (लाल रंग की गाय अथवा शकटाकृत रोहिणी नक्षत्रपुञ्ज अथवा प्रथम रजोधर्म वाली अथवा नौ वर्षीया कन्या), गञ्जा (मदिरा पात्र अथवा मधुशाला), गोशाला, दूध देने वाली गाय, फलों से युक्त

कुलवृक्ष, भगवती का पूजन, नैवेद्य, मांस, मदिरा (अथवा इक्षु रस) आदि को देखकर कौलसाधक को इन्हें प्रणाम करना चाहिए। शक्ति-पूजक (शाक्त-कौलसाधक) को प्रत्येक परिस्थिति में सदैव आनन्द से परिपूर्ण चित्तवाला तथा सभी सांसारिक भोगों के प्रति यथोचित भोग परायण होना चाहिए। वह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा सन्यास किसी भी मार्ग (आश्रम) में स्थित हो (अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र किसी भी वर्ण का हो), उसे भगवती के मन्त्रों का सदैव जप करना चाहिए। अथवा कौल साधक को चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए (अथवा चौराहे पर स्थित होकर) जप करने वाला तथा कभी-कभी श्मशान में भी निवास (तथा वहाँ स्थित होकर जप) करने वाला भी होना चाहिए। उसे अपनी इष्ट शक्ति को समस्त देवताओं में एकात्म रूप से स्थित समझते हुए उसके प्रति सर्वदेवात्मिका भाव (अर्थात् मेरा इष्ट ही सभी देव-विग्रह रूप में स्थित है) रखना चाहिए।

ब्रह्मानन्दो ब्रह्मरसः सुमनोऽस्थिविभूषितम्।
सुरासनं प्रेतमाला धार्यते शक्तिदेवतैः॥३३५॥
आत्मभूकुसुमैः शुक्रैर्बलिभिः पूजनं निशि।
परब्रह्मरसानन्दी करोति शक्तिसेवकः॥३३६॥
रात्रिपूजा विशेषेण कर्तव्या साधकोत्तमैः।
बलिभिः पञ्चमीवर्गैरन्नैर्विविधपिष्टकैः॥३३७॥
अशनैस्तुलितैः क्लिन्नै रसकेन च सारितैः।
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिस्तथा॥३३८॥
सानन्दैर्नृत्यगीताद्यैः शक्तिभिः साधकैः सह।
संपूज्य पर(मा?या) भक्त्यातर्पयेद्वर्गमाश्रितः॥३३९॥
कुलीनान् कुलसंबन्धान् विज्ञातान् द्वैतमानसान्।
महासत्त्वान् दृष्टपथान् मदेकभाविनोऽपि च॥३४०॥

शक्ति के उपासकों (कौल साधकों) को ब्रह्मचिन्तन रूपी रसानुभूति में डूबकर सदैव ब्रह्मानन्द में (अथवा ब्रह्मस्वरूपा मदिरा की रसानुभूति द्वारा परमानन्द में) निमग्न रहना चाहिए। उसे सभी मानसिक दोषों से रहित शुद्ध चित्त वाला, नरास्थियों को आभूषण की भाँति धारण करने वाला, हाथों में मदिरा पात्र तथा गले में शव पर पड़ी हुई माला (अथवा नरमुण्ड माला) धारण करने वाला होना चाहिए। उसे स्वयम्भू पुष्प, शुक्र तथा विभिन्न प्रकार की बलि (सामग्रियों-नैवेद्य) द्वारा रात्रि में शक्ति (देवी) का पूजन करके स्वशक्ति के साथ ब्रह्मानन्द (वत् आनन्द की अनुभूति) प्रदान करने वाली पञ्चमी क्रिया करनी चाहिए।

विभिन्न प्रकार की बलियों (बलि रूप से अर्पित पदार्थों) द्वारा, पञ्चमकारों, अनेकों प्रकार के अन्नों से निर्मित पिष्टकों, घृतादि रसों से सिक्त दिव्य सुस्वादु भोजनों तथा पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य द्वारा रात्रि में देवी की विशेष रुप से पूजा, शाक्त साधकों द्वारा अवश्य की जानी चाहिए। पूजन के पश्चात् देवी की प्रसन्नता के लिए अन्य साधकों के साथ उनके सम्मुख गीत-सङ्गीत सहित नृत्यादि भी करना चाहिए। इस तरह परम भक्तिपूर्वक देवी का पूजन करके कौल साधकों, उनके बन्धु-बान्धवों, परिचितों द्वैत बुद्धि वालों, उदार चित्त वालों-महात्माओं तथा उस समय जो भी मनुष्य दिखाई पड़ जाय (अथवा पूजन दर्शकों) एवं एकमात्र मुझमें ही भक्ति भाव रखने वालों इन सभी को पञ्च वर्ग के पदार्थों द्वारा तृप्त (सन्तुष्ट) करना चाहिए।

शक्तयः सर्वतः पूज्या मद्भावेन विशेषतः।
शक्तिश्च कुसुमैः पूज्या सिन्दूरैर्गन्धचन्दनैः॥३४१॥
अथ माल्यैरलङ्कारैः केवलं मातृभावतः।
कुमारीपूजनं नित्यं शक्तिं वान्यां प्रपूजयेत्॥३४२॥
एवं शक्तो यदा शक्तेः पूजनं भवमोचनम्।
परीवादः पराभूतिर्हठादाकर्षणं स्त्रियाः॥३४३॥
मनसापि न कर्तव्यं देवि सिद्धिं यदीच्छ(सि?ति)।
रात्रौ च भ्रमणं देवि रात्रौ च शक्तिपूजनम्॥३४४॥
न करोति यदा लोके साधकः कौलिकः कथम्।
अनिन्दा सर्वभूतानां सर्वत्रैव दयान्वितः॥३४५॥
बलिं बिना महादेव्या हिंसा सर्वत्र वर्जिता।
सदा सानन्दमनसा मम कामपरायणः॥३४६॥
चतुष्पथनमस्कारी श्मशानचारिपूजकः।
अन्धकारसमास्थायी गुहासेवनतत्परः॥३४७॥
परमामृतपूतात्मा मम प्रीतिपरायणः।
शालिग्रामे ब्राह्मणे च निन्दां चैव विवर्जयेत्॥३४८॥

जो मनुष्य विशेष रूप से मुझसे प्रेम करने वाले (मेरी भक्ति तथा उपासना करने वाले) हैं, उन्हें हर प्रकार से शक्तियों (स्त्रियों) की पूजा करनी चाहिए। उसे सिन्दूर, गन्ध, चन्दन, पुष्पों (आदि) के द्वारा (स्व) शक्ति की (भी) पूजा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त केवल मातृभाव से कुमारी कन्याओं तथा अन्य स्त्रियों की भी अर्चना करनी चाहिए। शाक्त साधकों द्वारा इस प्रकार से किया जा सकने वाला 'शक्त्यर्चन' संसार बन्धन से मुक्त करने

वाला होता है। हे देवि! यदि साधक सिद्धि का अभिलाषी है तो उसे (कभी भी) मन से भी (कल्पना में भी) स्त्रियों की निन्दा, तिरस्कार, अवहेलना, जबरदस्ती बल पूर्वक घसीटना आदि कर्म नहीं करना चाहिए। इस लोक में रहते हुए रात्रि में भ्रमण (शक्त्यालिंगन-सम्बन्ध) तथा रात्रि में शक्ति पूजन जो साधक नहीं करता, वह भला कौल साधक किस प्रकार कहा जा सकता है।

कौल साधक को किसी भी प्राणी (मनुष्य) की निन्दा नहीं करनी चाहिए तथा सभी प्राणियों के प्रति सर्वदा दयाभाव रखना चाहिए। देवी को बलि समर्पण हेतु की जाने वाली हिंसा के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं करनी चाहिए। उसे चतुष्पथ (चौराहे) को, अथवा चतुष्पथ साधक को अथवा चतुराश्रमी सन्यासी को (देखकर) प्रणाम करने वाला तथा श्मशान में रहने अथवा विचरण करने वाले कौल (शाक्त) साधकों की पूजा करने वाला होना चाहिए। कौल साधक को सदैव प्रसन्नचित्त रहते हुए मेरी ही प्राप्ति की कामना रखते हुए स्वसाधन में संलग्न रहना चाहिए। उसे अपने स्वरूप को लोगों से गुप्त रखते हुए गुफाओं (एकान्त जन्य शून्य स्थानों) में रहने का अभ्यासी होना चाहिए। मेरी प्रसन्नता (की प्राप्ति) के लिए ही मेरी भक्ति साधना में लीन रहने वाले तथा ध्यान-चिन्तन रूपी परमामृत (अथवा सहस्रारस्रवित अमृत) के नित्य सेवन से पवित्र हुए अन्तःकरण वाले साधकों को शालिग्राम (तथा इसके पूजक वैष्णवों) एवं ब्राह्मणों की निन्दा का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

एषां पूजां विशेषेण करोति कारयत्यपि।
ब्राह्मणो ब्रह्मभावेन क्षत्रः क्षात्रेण शङ्करि।।३४९।।
वैश्यश्च(शूद्र?वैश्य)भावेन प्रसन्नो विचरिष्यति।
दिवा हविष्यभोजी स्यात् न स्पृशेदन्यपूरुषम्।।३५०।।
रात्रौ स्वीयगणैर्युक्तः पञ्चमीमाश्रयेच्छिवे।
तव पूजापरो भूत्वा शक्तिभिः साधकैः सह।।३५१।।
नृत्यते गीयते यद्यत् तत् स्तोत्रं पूजनं तव।
बिना तीर्थाभिषेकेण नान्तः शुद्धयति भैरवि।।३५२।।
न भूतो याति शोकांश्च परत्र मोक्षभाग् भवेत्।
न रूपदर्शने देवि संशयो नास्ति कश्चन।।३५३।।
इति पूजां महेशानि कृत्वा देवीपुरं वसेत्।
अस्याः परतरा देवि नास्ति तन्त्रे महेश्वरि।।३५४।।
एषा पूजा हि देव्याश्च पूजैव सुरवन्दिते।
सर्वधर्मान् परित्यज्य पूजामेतां करोति यः।।३५५।।

स योगी च महात्मा च संसारात् त्रायते क्षणात्।
अगम्यागमने पापं नास्ति तस्य वरानने॥३५६॥
या कथा तव देवेशि तव स्तोत्रं वरानने।
इतस्ततो यद्गमनं प्रदक्षिणमुदाहृतम्॥३५७॥
ततः परं महादेवि धर्माधर्मो न जायते।
अप्रकाश्यं महेशानि तव स्नेहात् प्रकाशितम्॥३५८॥
मद्भक्तेभ्यो महेशानि प्रकाशमुपदाय च।
अभक्तेभ्यो न दद्याद्धि दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्॥३५९॥

कौल साधकों को इनकी (शालिग्राम तथा ब्राह्मणों की) विशेष रूप से पूजा स्वयं भी करनी तथा अन्य लोगों से करवानी चाहिए। उसे ब्राह्मण के साथ ब्राह्मण भाव से, क्षत्रियों के साथ क्षत्रिय भाव से तथा वैश्य के साथ वैश्यवत् व्यवहार करते हुए प्रसन्नचित्त सर्वत्र विचरण करना चाहिए। उसे दिन में अन्य पुरुषों का स्पर्श न करते हुए शुद्ध सात्विक पवित्रान्न भोजी होना चाहिए तथा रात्रि में स्वसाधक समूहों के साथ पञ्चमकारों का सेवन (अथवा स्व-स्व शक्तियों के साथ पञ्चमी का आश्रय ग्रहण) करना चाहिए। हे शिवे! आपकी पूजा में संलग्न होकर कौल साधक अन्य साधकों तथा शक्तियों के साथ मिलकर जो कुछ भी गान तथा नर्तन करता है वह सभी आपकी स्तुति में कहे गये स्तोत्र तथा किये गये पूजनवत् हो जाता है। परन्तु हे भैरवि! जब तक कौल साधक तीर्थाभिषेक (मद्य सेवन द्वारा स्वान्तः सिञ्चन) नहीं करता तब तक उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता।

ऐसा कौल साधक फिर कभी भी न तो इस लोक में और न ही परलोक में शोक का भागी होता है, उसे तो मोक्ष की ही उपलब्धि होती है। हे देवि! आपके स्वरूप दर्शन की प्राप्ति में भी उसे किसी प्रकार का संशय नहीं होता अर्थात् उसे आपका साक्षात् दर्शन भी इसी लोक में प्राप्त हो जाता है। हे महेशानि! इस प्रकार आपकी अर्चना करके (करता हुआ जीवन व्यतीत करने वाला) साधक अन्त में आपके ही धाम में निवास करता है। हे देवि! तन्त्र-शास्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य किसी भी पूजन का विधान नहीं है।

हे सुरवन्दिते! उपर्युक्त रूप से कही गयी पूजा ही देवी की वास्तविक पूजा है। जो साधक समस्त धर्मों (सत्कर्मों) का आश्रय छोड़कर, इस पूजन को करता है, वही वास्तव में योगी है तथा महात्मा है। वह शीघ्र ही संसार के कष्टों (बन्धनों) से मुक्त हो जाता है। हे वरानने! उसे किसी भी प्रकार से अगम्यागमन (पर स्त्री गमन) का पाप स्पर्श नहीं करता। वह व्यावहारिक रूप से भी जो कुछ

बोलता है, वह आपका स्तोत्र तथा उसका इधर-उधर भ्रमण करना भी आपकी प्रदक्षिणा हो जाती है। उसके किसी भी कर्म से, हे महादेवि! धर्माधर्म (पाप-पुण्य) की उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् उस साधक को स्वयं के द्वारा किये गये किसी भी कर्म से पुण्य अथवा पाप की प्राप्ति नहीं होती। हे महेशानि! अप्रकाश्य होते हुए भी तुम्हारे प्रति प्रेम होने के कारण ही मैंने इस विषय को तुम्हारे सम्मुख प्रकट किया है। कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे भक्तों के सामने ही इसे प्रकाशित तथा उन्हें ही प्रदान करना। अभक्तों तथा अपात्रों के सम्मुख इसे प्रकट करने वाला तथा उन्हें इसका ज्ञान देने वाला अवश्य ही मृत्यु का भागी होता है।

।। देव्याः होम-तर्पण विधानम्।।

इति ते कथितं देव्यास्तर्पणं शृणु भैरवि।
विद्याकामेन होतव्यं तिलाज्यं मधुसंयुतम्।।३६०।।
बिल्वपत्रं घृताक्तं च किंशुकं बकुलं तथा।
बन्धूकपुष्पहोमेन राजा च दासतामियात्।।३६१।।
सर्पिर्लवणहोमेन आकर्षयति कामिनीम्।
कर्णिकारस्य होमेन सौभाग्यं लभते नरः।।३६२।।
करवीरैश्च पुंनागैः पुष्टिमाप्नोत्यसंशयम्।
राजवृक्षस्य होमेन सर्वसंपत्तिमान् भवेत्।।३६३।।
दूर्वातिलाज्यहोमेन दीर्घायुष्यमवाप्नुयात्।
संपूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः।।३६४।।
सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमां गतिम्।
धृताक्तमालतीपुष्पहोमाद् द्रुतकविर्भवेत्।।३६५।।
तर्पणस्य प्रसङ्गेन होमोऽयं कथितः शिवे।

हे भैरवि! इस प्रकार उपर्युक्त रूप से मैंने देवी-पूजन तथा उसके माहात्म्य का तुमसे वर्णन किया। अब देवी के तर्पण-प्रसङ्ग के अन्तर्गत पहले हवन-कर्म के विषय में सुनो।

विद्या की कामना वाले साधक को मधु तथा घृत से युक्त तिलों द्वारा हवन करना चाहिए। घृत से भीगे हुए विल्व पत्र, किंशुक, बकुल तथा बन्धूक पुष्पों द्वारा हवन करने से राजा भी साधक का सेवक हो जाता है।

पिघले हुए (द्रवित) घी में नमक मिलाकर हवन करने से स्त्रियों का आकर्षण होता है। अमलतास के पुष्पों द्वारा (उन्हें घृत से सिक्त करके) हवन करने से मनुष्य को सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

घृत-सिक्त कनेर तथा पुन्नाग के पुष्पों से हवन करने से निश्चय ही पुष्टि की प्राप्ति होती है। राजवृक्ष (अमलतास) की समिधा तथा पुष्पों द्वारा हवन करने से साधक सर्वसम्पत्तिशाली होता है।

घृत-दूर्वा तथा तिल के मिश्रण द्वारा हवन करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। नित्य देवी का पूजन करके, घृत से भीगे हुए बेलपत्रों द्वारा मूल मन्त्र से एक हजार बार हवन (प्रतिदिन एक वर्ष तक) करने वाले साधक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। घृत-सिक्त मालती पुष्पों द्वारा हवन करने से आशुकवित्व की शक्ति (प्रतिभा) प्राप्त होती है। हे शिवे! तर्पण प्रसङ्ग के अन्तर्गत इस होम विधि का वर्णन किया गया है।

(नित्य पूजनोपरान्त कामनानुसार निर्देशित पदार्थों द्वारा महाकाली के मूल मन्त्र से कम से कम एक हजार आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए।)

मधुना तर्पणं कुर्यात् सर्वकामफलप्रदम्॥३६६॥
मन्त्रसिद्ध्ये महेशानि महापातकनाशनम्।
कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं प्रतर्पयेत्॥३६७॥
वशीकृत्य नृपान् सर्वान् भोगी स्याद् यावदायुषम्।
घृतैः पूर्णयशः सिद्ध्येद् दुग्धैरारोग्यमाप्नुयात्॥३६८॥
अगुरुमिश्रितं देवि सर्वकालं सुखी भवेत्।
नारिकेलोदकमिश्रैस्तोयैः सर्वार्थमाप्नुयात्॥३६९॥
मरीचमिश्रितैस्तोयैः सर्वाञ्छत्रून विनाशयेत्।
केवलैरुष्णतोयैश्च शत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात्॥३७०॥
ज्वराविष्टो भवेत् तेन दुग्धसेकात् शमं भवेत्।

मदिरा से देवी का तर्पण करना समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है। हे महेशानि! इस प्रकार के तर्पण से साधक को मन्त्रसिद्धि की प्राप्ति होती है तथा उसके बड़े से बड़े पापों का भी विनाश हो जाता है।

कपूर मिश्रित जल से देवी का एक मास तक तर्पण करने वाला साधक राजाओं को वशीकृत कर लेता है तथा जबतक जीवित रहता है, इच्छानुसार सभी भोगों को भोगने वाला होता है। घृत से तर्पण करने से पूर्ण यश की तथा दुग्ध से तर्पण करने पर आरोग्यता की प्राप्ति होती है।

अगुरु मिश्रित जल से तर्पण करने वाला सदैव सुखी रहता है तथा नारियल जल में पानी मिलाकर तर्पण करने से सभी प्रकार के भोगों (अथवा धन सम्पत्तियों) की प्राप्ति होती है। मरीचि (कालीमिर्च का चूर्ण) मिश्रित जल से तर्पण करने वाला साधक अपने सभी शत्रुओं को नष्ट कर देता है।

केवल गर्म जल से तर्पण करने पर शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है तथा वह ज्वर से पीड़ित भी हो जाता है। दुग्ध से मन्त्रोच्चारण सहित अभिषेक करने से उसे शान्ति की प्राप्ति होती है।

हविष्याशी मुक्तकेशो जपेदयुतमाचरेत्॥३७१॥
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी संत्रासयति केकरा॥३७२॥
विद्रावयति मुक्तास्या संभ्रामयति घूर्णिता।
विक्षोभयति संक्षुब्धा संतापयति सन्निभा॥३७३॥
संकोचयति संरुद्धा विप्ररुद्धा प्रबोधयेत्।
एतत् सर्व प्रकर्तव्यं भावनामात्रचिन्तनम्॥३७४॥
उच्चाटेषु च सर्वेषु चायुतं प्रजपेत् सुधीः।
शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकं नरः॥३७५॥
कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्याद् दासवत् प्रिये।
दन्तेनानीयते चूर्ण कीलकं तेन कारयेत्॥३७६॥
यथा मधुघृताक्तेन पद्मिनीपत्रमात्रके।
लिखेत् सूत्रावलीमध्ये मूलमन्त्रं विदर्भितम्॥३७७॥
तत् कुण्डचतुरस्रे च निक्षिप्य जुहुयादपि।
सहस्रं क्षीरिनीराक्तं पद्मानां लोहितात्विषाम्॥३७८॥
मन्त्रं शृणु वरारोहे येन सिद्ध्यति निश्चितम्।
ओं पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति माये तथा॥३७९॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रो नैमित्तिकफलप्रदः।
एवं यः कुरुते कर्म सद्यो द्रुतकविर्भवेत्॥३८०॥

जो साधक हविष्यान्न भोजी होकर, केशों को खुला रखते हुए मूल मन्त्र का दश हजार जप करता है, विद्वानों की सभा में उसके मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगती है।

उच्चाटन कर्म की सिद्धि के लिए पिंगल (रक्ताभ भूरे) वर्ण वाली नेत्रों से युक्त देवी का ध्यान करना चाहिए। वक्र दृष्टि युक्त देवी का ध्यान शत्रु के मन में सन्त्रासन (भय की उत्पत्ति) के लिए करे। विद्रावण के लिए खुले मुख से युक्त, तथा भ्रमोत्पादन के घूर्णित नेत्रों से युक्त देवी का ध्यान करे। शत्रु के चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने के लिए देवी के क्रुद्ध स्वरूप का तथा उसे सन्ताप (पीड़ा) प्रदान के लिए, प्रहार हेतु शस्त्र उठाये हुए स्वरूप में ध्यान करे। शत्रु को संकुचित (प्रभाव से क्षीण) करने के लिए संरुद्ध

करती हुई सी देवी का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार (जप काल में) देवी के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की कल्पना कर उसका ध्यान करना चाहिए। उपर्युक्त उच्चाटन आदि सभी कर्मों में मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए।

गोरोचन को सौ बार काली के मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसका तिलक करने से साधक जिसको भी देखता है उसको अपना सेवक बना लेता है।

श्लोक ३७६ की द्वितीय पंक्ति से श्लोक ३८० तक के श्लोक पूर्णतया अशुद्ध हैं। इसके द्वारा वर्णित प्रयोग भी अस्पष्ट है। शुद्ध प्रयोग विधि निम्नवत् है।

ग्रहण काल में किसी सरोवर में तैरती हुई पतली लकड़ी को लाकर उसके द्वारा लेखनी बनायें। इस लेखनी के द्वारा कमलिनी के पत्र पर तेल, मधु तथा मदिरा से तारा (अथवा काली) का मूल मन्त्र लिखकर, उसे मातृकावर्णों से वेष्टित (वृत्ताकार घेर) कर, चौकोर कुण्ड में उसे गाड़ दें। तत्पश्चात् कुण्ड में अग्नि स्थापित करके तारा के मूल मन्त्र से ही, गो-दुग्ध से भीगे रक्त कमलों द्वारा एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुए हवन करें। हवन के बाद विविध प्रकार के अन्न युक्त भोजन तथा माँस से निम्न मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्र - **''ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति माये स्वाहा''**।

इसके बाद अर्धरात्रि में भी **''ॐ ह्रीं एकजटेमहायक्षाधिपे ममोपनीतं बलिं गृह्ण-गृह्ण ह्रीं स्वाहा''** मन्त्र से बलि देना चाहिए। ऐसा करने पर साधक विद्वानों से अजेय तथा महाकवि (आशुकवि) हो जाता है। उसमें लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों वास करती हैं तथा वह जन-समूह को प्रसन्न करने की क्षमता वाला हो जाता है।

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत्।
(राजानं जप मात्रेण बलिना सकलं जगत्।)
रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम्॥३८१॥
मिश्रीकृत्स बलिं दद्यादष्टम्यां च विशेषतः।
प्रयोगबलिमन्त्रोऽयं प्रयोगान् साधयेद् यदि॥३८२॥
अर्धरात्रै ततो नित्यं बलिं दद्यात् चतुष्पथे।
परसैन्यग्रहारिष्ट - रोगकृत्यानिवारणम्॥३८३॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम्।
विकटदंष्ट्रे परपक्षं मोहय-द्वन्द्वमुच्चरेत्॥३८४॥
खादय-द्वन्द्वमुच्चार्य पचद्वन्द्वं वदेत् पुनः।
''ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान् हारय हूं फट् स्वाहा।
परविद्यामाकर्षय२ छेदय२ हन२ कपिले बलिं गृह्ण२ स्वाहा।''
अनेनैव च देवेशि बलिं दद्याद्महेश्वरि।

साधक स्वाधिकारानुसार मद्यादि विशेष पदार्थों द्वारा तारा(अथवा काली) मन्त्र से तर्पण करके राजपत्नी को (जप मात्र से राजा को तथा बलि प्रदान द्वारा सारे संसार को) वश में कर लेता है।

रम्भा(केला) जाती पुष्प तथा बीजपूर (नींबू अथवा विजौरा नीबू-चकोतरा) के साथ सुगन्धित पदार्थ (चन्दन अगुरु केसरादि) मिश्रित कर उपर्युक्त बलि मन्त्र से विशेष रूप से अष्टमी को (कार्यसिद्धि के लिए) बलि देना चाहिए।

पर (शत्रु) सैन्य, ग्रहदोष, विपत्ति, रोग, कृत्यादि के निवारण के लिए यथेष्ट जप तथा हवन करने के पश्चात् नित्य अर्द्धरात्रि को चौराहे पर बलि प्रदान करना चाहिए। बलि मन्त्र इस प्रकार है -

प्रथम प्रणव 'ॐ' का उच्चारण करके 'उग्रतारे' बोले। फिर 'विकट दंष्ट्रे पर पक्षं' तथा मोहय शब्द का दो बार (यथा मोहय मोहय) उच्चारण करे। तत्पश्चात् खादय शब्द को दो बार (खादय-खादय रूप से) तथा 'पच' शब्द को भी दो बार (पच-पच रूप से) बोले। इस प्रकार निष्पन्न मन्त्र का स्वरूप निम्नवत होगा।

मन्त्र स्वरूप - **ॐ उग्रतारे विकट दंष्ट्रे पर पक्षं मोहय-मोहय, खादय-खादय पच-पच॥''**

(ताराभक्ति सुधार्णव में 'पच-पच' के पश्चात् 'मथ-मथ' का भी प्रयोग है।)

(अन्य तन्त्र के अनुसार मन्त्र इस प्रकार है - **ॐ उग्रतारे विकट दंष्ट्रे मोहय मोहय मारय खादय शत्रून् पच-पच**)

इस मन्त्र के साथ निम्न मन्त्र भाग को संयुक्त करे-

''ये माँ हिंसतुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान् हारय हुं फट् स्वाहा। परविद्यामाकर्षय-आकर्षय छेदय-छेदय हन-हन कपिले बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा।''

हे महेश्वरि! इस (संयुक्त) मन्त्र द्वारा ही साधक बलि प्रदान करे।

।। शक्ति (खड्ग) पूजन-मन्त्राः।।

मायाबीजं समुच्चार्य कालि कालीति सुन्दरि।।३८५।।
वज्रेश्वरी-पदं पश्चाल्लोहदण्डायै नमः-पदम्।
इति संपूज्य देवेशि शक्तिं संपूजयेत् ततः।।३८६।।
हूँ बागीश्वरीब्रह्माभ्यां नमः। हूँ लक्ष्मीनारायणाभ्यां च।
ततो नमः-पदं ब्रूयाद् देवि चण्डे महेश्वरि।।३८७।।
ततोमामहेश्वराभ्यां नम इत्यादिनार्चयेत्।
प्रणवं च ततः पश्चात् कार्तिकेश्वराभ्यां नमः।।३८८।।
इत्यने(न?नैव)मन्त्रेण शक्तिं संपूजयेन्नरः।
इति खड्गं प्रपूज्यैव विशेषेण प्रपूजयेत्।।३८९।।
ओं खड्गाय खरनाशाय शक्तिकार्यार्थतत्पर।
पशुच्छेदस्त्वया कार्यः खड्गनाथ नमोऽस्तु ते।।३९०।।
अनेनैव तु मन्त्रेण प्रणमेत् खड्गमुत्तमम्।
गृहीत्वा ताम्रपात्रं च जलपूर्णमुदङ्मुखः।।३९१।।
हर्षकामो महादेव्यै पशोश्च प्रोक्षणं चरेत्।
प्रोक्षणं च पशोः कृत्वा चोत्सृजेद् देवताधिया।।३९२।।

सर्वप्रथम माया बीज 'ह्रीं' का उच्चारण करके 'कालि-कालि' बोले पुनः 'वज्रेश्वरि' पद के साथ 'लोहदण्डायै नमः' का उच्चारण करे। इस प्रकार मन्त्र **"ह्रीं कालि-कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः"** (तारा भक्ति सुधार्णव के अनुसार 'ह्रीं' से पूर्व 'ॐ' तथा 'दण्डायै' के स्थान पर 'दंष्ट्रायै' शब्द का प्रयोग है) से शक्ति (खड्ग) का गन्धपुष्पादि से पूजन करके (खड्ग के मुष्टि भाग पर) **'हूँ बागीश्वरी ब्रह्माभ्यां नमः'** से (मध्य भाग पर) **'हूँ लक्ष्मी नारायणाभ्यां नमः'** से तथा (अग्र भाग पर) **'हूँ उमा महेश्वराभ्यां नमः'** मन्त्र से पूजन करके पुनः **'ॐ कार्तिकेश्वराभ्यां नमः'** से खड्ग का पूजन करे। तत्पश्चात्-

"ॐ खड्गाय खर (असुर) नाशाय शक्ति कार्यार्थ तत्पर। पशुच्छेद स्त्वया कार्यः खड्गनाथ नमोऽस्तुते।।" इस मन्त्र द्वारा खड्ग को अभिमन्त्रित तथा प्रणाम करे।

इसके बाद किसी ताम्र पात्र में जल (कुश-अक्षतादि) लेकर उत्तर की ओर मुख करके (मूल मन्त्र के उच्चारण सहित सङ्कल्प कर) हर्ष की कामना वाला वह साधक उस जल के द्वारा महादेवी के लिए पशु का प्रोक्षण करे।(उसके सिर पर जल को गिराये)। फिर देवता बुद्धि से उस पशु को खुला छोड़ दे (पशु का उत्सर्ग करे)। तदुपरान्त मूल मन्त्र सहित **'तुभ्यं**

निवेदनमस्तु' बोलकर उस खड्ग के द्वारा (देवी का मन ही मन स्मरण करते हुए) पशु का शिर विच्छेद कर दे।

यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु निवेदनम्।
छिन्ने च पतिते वृद्धिर्वामभागे च निन्दितम्।।३९३।।
दैन्यं मध्ये च पतितं देवे छेदं स्मरेद् बुधः।
ततः कुण्डान्तिके गत्वा आहुतिर्दशपञ्चभिः।।३९४।।
तेनैवमुत्सृजन् दोषं बलिं लक्षेत् सलक्षणम्।
ततो रुधिरमाधाय बटुकादीन् समर्चयेत्।।३९५।।
नैर्ऋत्यां च महेशानि हूँ वाँ बटुकभैरवम्।
वायव्ये हूं यां योगिनीभ्यो नमः इत्यादिनार्चयेत्।।३९६।।
ऐशान्यां च महेशानि हूं क्षौं ँ क्षेत्रपालाय नमः।
इत्यादिना देवि (सम्यक्) गन्धपुष्पैः समर्चयेत्।।३९७।।
आग्नेय्यां हूँ गां गणेशाय नम इत्यादनार्चयेत्।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य बलिदानं समाचरेत्।
इति ते कथितो देवि बलिदानस्य निर्णयः।।३९८।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (कुलपूजा-शाक्ताचारा दिविधिनिरूपणं) षष्ठः पटलः।।६।।

(श्लोक की प्रथम पंक्ति का भाव ऊपर दिया जा चुका है) छेदन करने के पश्चात् यदि पशु का मस्तक साधक के दक्षिण ओर गिरे तो सौभाग्य की वृद्धि समझना चाहिए। यदि शिर वाम भाग की ओर गिरे तो निन्दनीय (दोषयुक्त) तथा मध्य में (सम्मुख) गिरने पर दैन्य भाव की प्राप्ति समझनी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में साधक को देवी के मन्त्र का जप करना चाहिए। तत्पश्चात् कुण्ड के समीप जाकर, बलि के लक्षण द्वारा सूचित दोषों के अनुसार, उसके शमन के लिए पन्द्रह आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिए।

इसके बाद नैर्ऋत्य दिशा में, **'हूँ वां वटुक भैरवाय नमः'** से, वायव्य दिशा में-**'हूँ याँ योगिनीभ्यो नमः'** से, ईशान कोण में - **'हूँ क्षाँ क्षेत्रपालाय नमः'** से तथा अग्नि कोण में **'हूँ गाँ गणेशाय (गणपतये) नमः'** से क्रमशः बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल तथा गणेश का गन्धाक्षत पुष्पादि से सम्यक पूजन करके पशु रुधिर के द्वारा उन्हें बलि अर्पित करना चाहिए। हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे बलिदान विधि का वर्णन किया।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत कुल पूजा-शाक्ताचारादि विधि निरूपण नामक छठे पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

॥ सप्तमः पटलः॥

(निग्रहादि प्रयोग-कुमारी पूजाक्रम निरूपणम्)

॥ शत्रु निग्रहोपायः - उच्चाटनम्॥

श्रीभैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि निग्रहोपायमुत्तमम्।
अवश्यमेव कर्तव्यं प्रयोगसाधनं तथा॥१॥
मङ्गल शनिवारे च श्मशानाङ्गारमानयेत्।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य वध्नीयाद्रक्ततन्तुना॥२॥
शताभिमन्त्रितं कृत्वा निःक्षिपेद् वैरिवेश्मनि।
सप्ताहाभ्यन्तरे तेषामुच्चाटनमिदं भवेत्॥३॥

हे महेशानि! अब मैं शत्रु-निग्रह-साधनों का वर्णन करता हूँ। आवश्यकतानुसार इन प्रयोग-साधनों को साधक द्वारा अवश्य करना चाहिए।

मङ्गल अथवा शनिवार की रात्रि में श्मशान से चिता के अङ्गार (कोयले) को लायें। उसे काले कपड़े में लपेटकर उसके ऊपर लाल धागा अच्छी तरह से बाँध दे। तत्पश्चात् काली (अथवा तारा) के मूल-मन्त्र द्वारा सौ बार अभिमन्त्रित कर उसे शत्रु के निवास स्थान (गृह) में फेंक (गुप्त रूप से रख) दें। सात दिनों में ही इस प्रयोग से उस गृह में स्थित सभी शत्रुओं का उच्चाटन हो जायेगा।

॥ मारणोपायः॥

नरास्थिनि विलिखेमन्त्रे क्षारयुक्तहरिद्रया।
सहस्रं परिजप्याथ निशायां शनिवासरे॥४॥
निक्षिप्यते यस्य गेहे तस्य मृत्युस्त्रिमासतः।
क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याज्जवहानिस्तुरङ्गमे॥५॥
धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयम्।

किसी मृत मनुष्य की हड्डी श्मशान से अर्धरात्रि में लाकर उस पर क्षार (बाज विष्ठा तथा लवण अथवा केवल सैंधव लवण) युक्त हल्दी द्वारा अपने इष्ट देवता (काली अथवा तारा) का मन्त्र साध्य नाम व कर्म सहित लिखे। लिखने की विधि यह है-मन्त्र के लज्जा बीज 'ह्रीं' के 'रेफ' के मध्य 'अमुकं (साध्य नाम) मारय-मारय' लिखें अथवा 'अमुकं मारय-मारय' लिखकर इसके पश्चात् मूल मन्त्र को लिखे। तत्पश्चात् शनिवार की रात्रि में एक हजार मंत्र जप (द्वारा उसे अभिमंत्रित) करके शत्रु के घर में गुप्त रूप से डाल दें। इस प्रकार

जिसके गृह में उसे डाला गया है उसकी (दो अथवा) तीन माह में मृत्यु हो जायेगी। इसी प्रकार उपर्युक्त यन्त्र को खेतों में फेंकने से फसल की हानि, घुड़साल में फेंकने से घोड़ों की गति की हानि, कोष (खजाने) में छोड़ने से धन की हानि तथा ग्राम के मध्य फेंक (गाड़) देने से पूरे ग्राम का विनाश हो जाता है।

।। विद्वेषणोपाय: तत्तत्कार्याथे मन्त्र स्वरूपाणि च।।

(द्वि?द्वे)षे तु विलिखेद् मन्त्रं प्रेतकर्पटके सुधीः।।६।।
द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम्ना तस्य द्वेषो महान् भवेत्।
मन्त्रं शृणु वरारोहे प्रयोगार्हो भवेद् यतः।।७।।
अमुकं मारयेत्यादौ मारयेति पदं ततः।
सहस्रं परिसंजप्य मन्त्रमेनं महेश्वरि।।८।।
द्वेषमन्त्रविशेषं तु शृणु चैकमनाः प्रिये।
अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु कुर्वित्यनन्तरम्।।९।।
मन्त्रमुच्चार्य देवेशि जपेद् देवि सहस्रकम्।
उच्चाटय-पदद्वन्द्वं पिङ्गाक्षि तदनन्तरम्।।१०।।
फट्-मन्त्रं मन्त्रमुच्चार्य साध्यसंज्ञान्वितं पुनः।
देशाद् देशान्तरं याति रिपुः काक इवापरः।।११।।

विद्वेषण के लिए बुद्धिमान साधक शव के वस्त्र पर द्वेष्य तथा द्वेषक (जिनमें परस्पर द्वेष उत्पन्न करना हो उन) दोनों का नाम पूर्ववत् (मारण प्रयोग की भाँति) लिखे। इससे दोनों व्यक्तियों में भयंकर शत्रुता उत्पन्न हो जाती है।

हे वरारोहे! अब प्रयुक्त किये जाने वाले उन मन्त्रों के विषय में सुनो जिससे प्रयोग सफल होते हैं। मारण प्रयोग में मूल मन्त्र के आरम्भ में **'अमुकं मारय-मारय'** पदों को जोड़कर एक हजार बार जप करके प्रयोग करे।

विद्वेषण प्रयोग के लिए भी इसी प्रकार मूल मन्त्र से पूर्व **'अमुकामयोः द्वेषं कुरु कुरु'** का संयोग करके एक हजार जप करे।

उच्चाटन के लिए **'अमुकं उच्चाटय-उच्चाटय पिङ्गाक्षि फट्'** मन्त्र को मूल मन्त्र से पूर्व संयुक्त करके जप करे। इससे शत्रु कौवे की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान को निरन्तर भटकता-फिरता है।

।। पर-मन्त्र-सिद्धि-विनाशक प्रयोगः।।

वह्निपुटै रिपोर्मन्त्रं लिखित्वा पत्रकेण तु।
श्मशाने मन्त्रमुच्चार्य पुटीकृत्य विदर्भ्य च।।१२।।
सहस्रजन्मभिर्जप्त्वा विद्या न हि फलप्रदा।
सिद्धयश्च विनश्यन्ति देवानामपि दुर्लभाः।।१३।।

किसी फलक (अथवा पत्ते) पर त्रिकोण के मध्य पर (शत्रु) मन्त्र को लिखें। तत्पश्चात् श्मशान में बैठकर पर (शत्रु) मन्त्र को स्वमन्त्र (काली अथवा तारा के मन्त्र) से सम्पुटित अथवा विदर्भित करके उसका यथोचित जप करे। इससे पर मन्त्र प्रभावहीन हो जाता है तथा हजार जन्मों तक जप करने पर भी वह फलप्रद नहीं होता। इससे शत्रु की सिद्धियाँ भी जो उस मन्त्र-जप से प्राप्त हुई थी, नष्ट हो जाती है। यह प्रयोग देवताओं के लिए भी दुर्लभ कहा जाता है।

।। मन्त्र-दोष-निवारक-प्रयोगः।।

मातृचक्रेऽमृतं लेख्यं भिन्नाञ्जनपुटीकृतम्।
जले निःक्षिप्य मन्त्रं तु पुनर्नव इतीरितः।।१४।।
जन्मलुप्तो मनुः स्निग्धो नवोदितशशी यथा।
क्षणे क्षणेऽपि तेजस्वी रिपुदृष्टिगतोऽपि च।।१५।।

प्रणव (ॐ) मातृकाएं तथा माया बीज (ह्रीं) इन्हें अमृतत्रय कहा जाता है। मातृका चक्र में किसी भी एक अमृत वर्ण से सम्पुटित करके दूषित मन्त्र के प्रत्येक वर्णों को लिखे। फिर इसे जल में डाल दे। पुनः जनन विधि से नवीन रूप से मन्त्र ग्रहण करे। पूर्व जन्म लुप्त तथा नवीन जन्म प्राप्त यह मन्त्र निरन्तर जपने से इसका प्रभाव, शत्रु दृष्टि गत होने पर भी, सुन्दर नवोदित चन्द्र की कलाओं की भाँति दिनों-दिन प्रतिक्षण बढ़ता रहता है।

(किसी भी दुष्ट-दोष युक्त मन्त्र को 'ॐ' से अथवा 'ह्रीं' से अथवा प्रत्येक मातृका वर्णों से सम्पुटित करके जपने से अथवा जप से पूर्व नित्य प्रातः काल तथा मध्याह्न काल में **'श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं'** - नौ वर्णात्मक मन्त्र का जप करने से, उस मन्त्र का दोष नष्ट हो जाता है।)

।। पुत्र-धन-रक्षादिकार्यार्थे धारण-यन्त्रम्।।

अथ वक्ष्ये मन्त्रमेकं धारयेत् सर्वदा प्रिये।
योनियुग्मे लिखेन्मन्त्रं मूलं हेमशलाकया।।१६।।
क्लीबहीनान् दीर्घभिन्नान् षट्कोणे च लिखेत्ततः।
अष्टपत्रेष्वष्टवर्णास्तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ।।१७।।
अष्टवज्र भूपुरे च विलिखेत् साधकोत्तमः।
स्वर्णपत्रेऽथवा भूर्जे रौप्ये वाप्यथ सुव्रते।।१८।।
विलिखेद् हेमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम्।
दूर्वाकाण्डेन संलिख्य कुशमूलेन वा पुनः।।१९।।

वेष्टितं पीतवस्त्रेण यत्नेन परिवेष्टयेत्।
वध्नीयात् पीतसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणम्॥२०॥
स्त्रीणां वामभुजे चैवमन्येषां दक्षिणे भुजे।
बन्ध्या तु लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत्॥२१॥
इयं रक्षा पुरा बद्धा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः।
कीर्त्यर्थं पार्थिवैश्चान्यैः संग्रामे जयकाङ्क्षिभिः॥२२॥

हे प्रिये! अब मैं एक विशेष मन्त्र को कहता हूँ जिसे यन्त्र में लिखकर सदा धारण करना चाहिए। सर्वप्रथम षट्कोण–अष्टदल पद्म–दो भूपुरो से युक्त यन्त्र की रचना करे। षट्कोणों में क्लीब वर्णों (स्वरों) को छोड़कर ह्रस्व स्वरों (अ, इ, उ, ए, ओ तथा अं) को लिखे। अष्टपत्रों में (आगे कहे जाने वाले मन्त्र के) आठ वर्णों को क्रमशः पूर्वादि क्रम से लिखे। भूपुर की आठो दिशाओं में अष्टवज्र बनायें। षट्कोण के मध्य में साध्य नाम कर्म सहित मूल मन्त्र को लिखे। यथा–मूल मन्त्र को लिखकर **'ह्रींकार'** के ह तथा रेफ के मध्य **'अमुकं रक्षां कुरु कुरु'**, **'अमुक्याः शुभंपुत्रमुत्पादयतु'** अथवा **'अस्य ज्ञानं कुरु कुरु'** रूप से अभीष्ट को लिखे अथवा अभीष्ट साध्य को लिखकर मूल मन्त्र लिखे। इस यन्त्र को लाक्षारस अथवा गन्धाष्टक से स्वर्ण लेखनी, दूर्वाखण्ड अथवा कुश मूल द्वारा भोजपत्र, स्वर्णपत्र अथवा रजत पत्र पर लिखना चाहिए। तत्पश्चात् इस पर पीला वस्त्रखण्ड लपेटकर उस पर अच्छी तरह से लाख का लेप कर दे। इस यन्त्र को पीले (रेशमी) धागे से बांधकर शिशु (बालकों) के गले में आभूषण की भाँति, स्त्री की बांयी भुजा में तथा पुरुषों की दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए। इससे बन्ध्या स्त्री को पुत्र लाभ, निर्धन को धन लाभ तथा मनुष्यों की रक्षा होती है। प्राचीन काल में गौतमादि ऋषियों ने स्वरक्षा तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए इसे धारण किया था। संग्राम में विजय के अभिलाषी राजाओं ने तथा अन्य अनेक मनुष्यों ने भी जय की इच्छा से इस यन्त्र को धारण किया था।

[उपर्युक्त यन्त्र की रचना में अन्य ग्रन्थों के अनुसार कुछ अन्तर है। नील सरस्वती तन्त्र के अनुसार षट्कोणों में दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ, औ तथा अः) को लिखना चाहिए। मन्त्र महोदधि के अनुसार षट्कोणों में साध्य नाम सहित मूल मन्त्र (तारा का) लिखकर पद्म के केशरों में स्वरों को तथा दलों पर कवर्गादि अष्ट वर्गों (प्रथम पाँच दलों पर पूर्वादि क्रम से प्रदक्षिणावत् क, च, ट, त तथा प वर्गों को, छठे दल पर य, र, ल, व सातवें दल पर श, ष, स, ह तथा आठवें दल पर ल, क्ष) को लिखना चाहिए।]

।। अष्टाक्षर मन्त्रोद्धारः।।

वाग्भवं कुलदेवी च तारकं वाग्भवं तथा।
हृल्लेखास्त्रमनुश्चैव वह्निजायावधिर्मनुः।।२३।।
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्राणां सार ईरितः।
कालिकामन्त्रतन्त्रोक्तान् प्रयोगानेव चाचरेत्।।२४।।

वाग्भव (ऐं), कुल देवी (ह्रीं), तारक (ॐ), वाग्भव (ऐं), हृल्लेखा (ह्रीं), अस्त्र (फट्) तथा वह्नि जाया (स्वाहा)। इस प्रकार प्राप्त अष्टाक्षर मन्त्र -'**ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा**'। यह सभी मन्त्रों का सार रूप मन्त्र है। यन्त्र के पद्मदलों में इसे ही लिखना चाहिए। यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा-पूजन आदि कालिका के अन्य मन्त्र-तन्त्र प्रयोगों की भाँति करना चाहिए।

।। वशीकरण-प्रयोगः।।

कालिकातन्त्रमन्त्रोक्तान् प्रयोगानिह चाचरेत्।
यथा काली तथा नीला भेदो नास्ति महेश्वरि।।२५।।
अविशेषेण कर्तव्यं सत्यं च कथितं मया।
अन्यच्छृणु वरारोहे वशीकरणमुत्तमम्।।२६।।
यत्कृते साधको वीरो धन्यो भवति निश्चितम्।
पुष्यार्के च महादेवि वीरमूलं समानयेत्।।२७।।
शोधितं पञ्चगव्येन शोषयेद् भास्करद्युतौ।
चूर्णयेद् मेषशृङ्गेण समादाय च तं शिवे।।२८।।
यन्त्रं संलिख्य देवेशि मातृकाख्यं सुशोभनम्।
यन्त्रं शृणु वरारोहे ध्यानात् सार्वज्ञयदायकम्।।२९।।
व्योमेन्द्वौरसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं
वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम्।
आशास्वस्त्रिषु लान्तटान्तसहितं क्षोणीपुरेणावृतं।
यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।३०।।

हे महेश्वरि! जैसी महाकाली (तात्विक स्वरूप में) है वैसी ही नीला (नील सरस्वती अथवा तारा) भी हैं। इनके वास्तविक स्वरूप में कोई भेद नहीं है तथा इनके मन्त्रों का प्रयोग एवं अर्चन पद्धतियों में भी कोई विशेष भेद नहीं है। अतः जिस कार्य की सिद्धि के लिए जिस प्रकार के प्रायोगिक रूप (जप, हवन, तर्पणादि) में काली मन्त्रों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार उन्हीं कार्यों की सिद्धि के लिए तारा-मन्त्रों का भी प्रयोग करना चाहिए। यह तुमसे सत्य ही कहता हूँ। हे वरारोहे! अब एक श्रेष्ठ वशीकरण (सर्वसिद्धि) कारक यन्त्र-प्रयोग के विषय में सुनो, जिसे करके साधक स्वयं को धन्य (सौभाग्यशाली) समझता है।

हे महादेवि! रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र होने पर उशीर (खस) अथवा नरकुल की जड़ लाकर उसे पञ्चगव्य से शोधित करके सूर्य के प्रकाश (धूप) में सुखाये। तत्पश्चात् मेष (भेड़) के सींग द्वारा उसे चूर्ण कर (उसे जल द्वारा गीला कर) उसके द्वारा 'मातृका' नामक यन्त्र लिखे। इस सर्वज्ञता दायक यन्त्र को लिखने की विधि, हे वरारोहे! ध्यान से सुनो।

सर्वप्रथम कर्णिका बनाकर उसमें, व्योम (ह), इन्दु (स), 'औ' तथा रसनार्ण विसर्ग से निष्पन्न **'ह्सौः'** लिखें। फिर उसके बाहर अष्टदल कमल तथा इसके बाहर भूपुर की रचना करें। अष्टदल कमल के प्रत्येक केशरों मे दो-दो स्वर वर्णों को तथा पत्रों में पूर्वादि क्रम से क्रमशः व्यञ्जन के अष्ट वर्गों (क, च, ट, त, प, य तथा श वर्ग एवं ल क्ष) को लिखकर भूपुर की चारों दिशाओं में 'वं' तथा कोण दिशाओं में 'ठं' लिखें। इस नील सरस्वती के विग्रह रूप यन्त्र को श्रेष्ठ सर्वार्थ सिद्धि यन्त्र भी कहा जाता है।

तेन चूर्णेन देवेशि यन्त्रं संलिख्य यत्नतः।
मृत्पात्रे च समालिख्य स्थापयेत् कुम्भकोपरि॥३१॥
तिलपूर्णं घटं तेन स्थापयेत् सुरवन्दिते।
पट्टवस्त्रेण चामुण्डां पूजयेच्छार्करोदकैः॥३२॥
तन्मन्त्रं परमेशानि जप्त्वा वशयेज्जगत्त्रयम्।
कपर्दिनं समुद्धृत्य कलहं तद्द्वितीयकम्॥३३॥
खड्गेति परमेशानि चामुण्डे च ततः परम्।
जयशब्दं समुच्चार्य वशमानय ठद्वयम्॥३४॥
अनेन मन्त्रराजेन कुर्यात् पौष्टिकमुत्तमम्।
भक्षं भोज्यं महादेव्यै दद्यात् सुरगणार्च्चिते॥३५॥
रक्तासने चोपविश्य सहस्राष्टौ जपेन्मुद्रा।
दशांशादिप्रमाणेन होमादीश्चं समाचरेत्॥३६॥
जापे समाप्ते देवेशि दद्याद् रजतदक्षिणाम्।
पलं वापि तदर्धं वा तदर्धं वापि शक्तितः॥३७॥
प्रवालमालया देवि जपं कुर्याच्छुचिस्मिते।
उष्णीषं लोहितं प्रोक्तमुत्तरीयं तथा प्रिये॥३८॥
रक्तवस्त्रं परीधाय जपेत् तद्गतमानसः।
कवित्वं जायते सुभ्रु! मन्त्रस्यास्य प्रसादतः॥३९॥
कविता वशमायाति नात्र कार्या विचारणा।

इस यन्त्र को मिट्टी के पात्र पर पूर्वोक्त चूर्ण से लिखकर, तिल पूर्ण घट स्थापित करके उसके ऊपर रखना चाहिए। घट के ऊपर रेशमी वस्त्र लपेट कर उसमें चामुण्डा का पूजन करके शकर तथा जल मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिए। पूजन के पश्चात् तथा तर्पण से पूर्व **"हौं हूं खड्ग चामुण्डे जय अमुकं वशमानय स्वाहा"** मन्त्र का जप करना चाहिए। इस मन्त्र के जप से साधक त्रिलोकी को भी वशीकृत कर सकता है। इस मन्त्र राज से पौष्टिक कर्म भी साधक को करना चाहिए। नैवेद्य के रूप में महादेवी को भक्ष्य-भोज्य आदि अनेकों प्रकार के अन्न प्रदान करना चाहिए। साधक को लाल आसन पर बैठकर प्रसन्न चित्त से एक हजार आठ (आठ हजार) जप करके दशांश क्रम से हवन आदि करना चाहिए।

साधक को जप के समय रक्त वस्त्र (अधोवस्त्र), उत्तरीय तथा रक्त वर्ण की ही पगड़ी (शिर ढकने का वस्त्र) भी धारण करना चाहिए। मन्त्र का जप लाल मूंगे की माला से करना चाहिए तथा समस्त कर्म की समाप्ति पर ब्राह्मण (अथवा स्वगुरु) को एक पल अथवा आधा पल अथवा चौथाई पल चाँदी की दक्षिणा देनी चाहिए। हे सुभ्रु! इस मन्त्र की कृपा से साधक में कवित्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है और कविता (कामिनी) उसके वशीभूत हो जाती है। हे देवि! इस विषय में तुम्हें किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

।। कवित्वप्रद-प्रयोगः।।

इदानीं शृणु चार्वङ्गि कविताकारकं परम्।।४०।।
प्रयोगं सर्वगोप्यं तव स्नेहात् प्रकाश्यते।
नटीं चण्डा(लीनं?लिनीं)चैव योगिनं सर्वमोहनम्।।४१।।
बीजत्रयं जपेद्रात्रौ मध्यरात्रौ रवेर्दिने।
अष्टाधिकसहस्रेण प्रमाणेन जपं चरेत्।।४२।।
शताभिमन्त्रितं कृत्वा पिबेच्च जलमुत्तमम्।
सप्तदिनप्रयोगेण कविता चित्तमोदिनी।।४३।।
जायते नात्र सन्देहः सत्यं सुरगणार्चिते।

हे सुन्दर अङ्गों वाली देवि! अब सबं प्रकार से परम गोपनीय कविता कारक प्रयोग को सुनो, जिसे तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण मैं प्रकाशित कर रहा हूँ। यह प्रयोग नटी, चण्डालिनी, योगिनी आदि सभी को मोहित करने वाला भी है। काली के त्रिवर्णात्मक मन्त्र **'क्रीं क्रीं क्रीं'** का रविवार के दिन अर्धरात्रि में एक हजार आठ बार जप करके इसी मन्त्र से सौ (एक सौ आठ) बार अभिमन्त्रित जल का पान करे। हे देवगणों द्वारा पूजिता देवि! इस प्रयोग को सात दिनों तक करने से निश्चय ही साधक

के मन में, सबके चित्त को आनन्द प्रदान करने वाली कविता करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

[तीन आद्य बीजात्मक मन्त्र **'क्रीं ह्रीं क्लीं'** के प्रत्येक बीज को त्रिगुणित करके (**क्रीं क्रीं क्रीं, ह्रीं ह्रीं ह्रीं तथा क्लीं क्लीं क्लीं**) किसी का भी जप करने से सर्वार्थ सिद्धि की प्राप्ति होती है।]

।। बाल्यकालादेव कवित्व-शक्ति-सम्भवार्थे प्रयोगः।।

पाणिना दक्षिणेनैव मध्वाजाभ्यां समानयेत्।।४४।।
प्रागेव नाडीच्छेदाद् बालं संस्कुर्याच्च साधकः।
कवित्वं जायते तेनाद्वितीयं सुरवन्दिते।।४५।।
जिह्वां संमार्ज्य देवेशि लिखेद् हेमशलाकया।
दूर्वया वा महादेवि जिह्वोष्ठयोः समालिखेत्।।४६।।
षङ्क्तिद्वयेन संलिख्य कुर्याच्च बालसंस्क्रियाम्।
एकादशाहे देवेशि द्वादशाहेऽथ वा पुनः।।४७।।
वर्णजात्यादिभेदेन मासान्तं संभविष्यति।
यथाशक्तयुपचारेण देवतां पूजयेत् पुरः।।४८।।
संपूज्य देवतां भक्त्या लिखेन्मन्त्रं महेश्वरि।
यदा पिता न देशस्थः पितृव्यो मातुलोऽपि वा।।४९।।
लिखित्वा परमेशानि कुर्याच्च बालसंस्क्रियाम्।
मूलमन्त्रं लिखेद् मन्त्री यस्योष्ठै श्वेतदूर्वया।।५०।।
वाक्योच्चाररतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत्।
जन्मसंस्कारकं नाम पुत्रे जाते प्रशस्यते।।५१।।
जिह्वायां तु लिखेद् मन्त्रं यज्ञदारु-कुशेन वा।
वारत्रयं सुसंमार्ज्य दक्षिणेनैव पाणिना।।५२।।
मन्त्रमुच्चार्य प्रत्येकं पङ्क्तिं कुर्यात् सुशोभनाम्।
आदौ संस्कारः कर्तव्यस्तदन्ते च लिखेन्मनुम्।।५३।।

बाल्यकाल से ही मनुष्य में कवित्व शक्ति उत्पन्न करने के लिए बालक के जन्म लेते ही नाल छेदन से पूर्व शिशु के जिह्वा को स्वच्छ करके उस पर स्वर्ण की शलाका (अथवा श्वेत दूर्वा खण्ड) द्वारा दाहिने हाथ से मधु तथा घृत के मिश्रण से मूल मन्त्र को लिखे। शिशु के ओष्ठों पर भी मन्त्र को लिखना चाहिए। इससे हे सुरवन्दिते! उस बालक में अद्वितीय कवित्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है। मन्त्र लेखन के पश्चात् ही उस नवजात शिशु के अन्य संस्कारों को यथा विधि करना चाहिए। अथवा-

वर्ण-जाति-भेद के अनुसार ग्यारहवें, बारहवें अथवा मासान्त में बालक के जन्म संस्कारों के पश्चात् नामकरण संस्कार के समय इसे करना चाहिए। यथा शक्ति उपलब्ध उपचारों द्वारा पहले भक्ति सहित देवता (काली) का पूजन करके जिह्वा पर मन्त्र लेखन का कार्य करे। इस लेखन कार्य को पिता द्वारा करना चाहिए। यदि किसी कारण वश पिता उपस्थित न हो तो चाचा अथवा मामा को यह कर्म करना चाहिए। श्वेत दूर्वा के द्वारा जिस बालक के ओष्ठों (तथा जिह्वा) पर यह मन्त्र लिखा जाता है, वह शिशु बोलना प्रारम्भ करते ही वक्ता तथा आशु कवि हो जाता है। अथवा-

शिशु के जन्म के समय ही प्रारम्भिक संस्कारों को करके शीघ्र ही (तीन दिन के मध्य) इस लेखन कर्म को करना श्रेष्ठ होता है। शिशु की जिह्वा को स्वच्छ करके दाहिने हाथ से तीन बार इस बीज मन्त्र (क्रीं) अथवा काली (अथवा तारा) के मूल मन्त्र को यज्ञीय काष्ठ की शलाका (अथवा कुश अथवा दूर्वा) से मन्त्र का उच्चारण करते हुए पंक्तिबद्ध सुन्दर ढंग से लिखना चाहिए।

।। मन्त्र-लेखनान्ते तारिणी-पूजनम्।।

गन्धचन्दनपुष्पैश्च पूजयेत् तारिणीं शिवाम्।
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थापयेत् पीठमुत्तमम्।।५४।।
पूजयेत् तारिणीं देवीं नानाभक्ष्यैः सुशोभनैः।
षोडशैरुपचारैश्च पूजयेद् भक्तिभावतः।।५५।।
धूपं दद्याद् गुग्गुलुना सर्वकर्मफलप्रदम्।
नारिकेलं तथा रम्भां बदरं बकुलं तथा।।५६।।
बीजपूरं कर्णिकारं शर्करां गन्धसंयुताम्।
मधूदकं कलायं च सिद्धान्नं पायसप्लुतम्।।५७।।
मांसं मत्स्यं पिष्टकं च दद्यादतिप्रियं महत्।
कविर्वाग्मी भवेत् पुत्रः सर्वकर्मप्रकारकः।।५८।।

कर्म-कर्ता (पिता आदि) को उत्तर की ओर मुख करके बैठ कर पीठ की स्थापना करके शिवा रूपिणी तारा (काली) की गन्ध-चन्दन-पुष्पादि षोडशोपचारों तथा विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों द्वारा तारिणी देवी का भक्ति सहित पूजन करना चाहिए। देवी को गुग्गुल का धूप प्रदान करना सर्वकर्म फल प्रदायक होता है। भगवती के अर्चन तथा नैवेद्य में (यथाशक्ति) वकुल तथा कर्णिकार के पुष्प एवं नारियल, केला, बेर, बीजपूर, सुगन्धित शर्करा (अथवा शकर से निर्मित मिष्ठान्न), मधु (शहद) युक्त जल, मटर, दुग्ध से

बने हुए (अथवा खीर सहित) पक्वान्न, मांस, मछली तथा पिष्टक (मोटी रोटी-रोट अथवा पूड़ी अथवा तिलकुट-तिल के लड्डू) आदि प्रिय पदार्थों को अर्पित करना चाहिए। इस प्रकार के लेखन तथा पूजन से बालक कवि, वाक्पटु तथा सभी प्रकार के (श्रेष्ठ) कार्यों को करने वाला होता है।

जितेन्द्रियः सत्यवादी धार्मिको जायते महान्।
पिता चैव पितुर्भ्राता मातुर्भ्राता पुनस्तथा॥५९॥
लिखेद् मन्त्रं महेशानि नान्यः सुरगणार्चिते।
भ्राता वापि लिखेद् मन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्॥६०॥
मातुः क्रोडे समादाय वस्त्रेणास्तीर्य यन्ततः।
शान्तिं कुर्याद् बालकस्य ब्राह्मणैः सह संयुतः॥६१॥
इमं पुत्रं कामयत कामजानामिहैव तु।
देवेभ्यश्च महेशानि पुष्णाति पदमन्तरम्॥६२॥
"शिवशान्तिस्तारायै केसरेभ्यस्तारायै शिवाय शिवयशसे"।
मन्त्रस्य लेखनान्ते तु शान्तिं कुर्याद् महेश्वरि।
इत्येतद् मत्स्यसूक्ते च कथितं विस्तरेण तु॥६३॥
तन्मातुर्वामकर्णे तु शान्तिस्तोत्रं पठेन्मुदा।

वह बालक भविष्य में जितेन्द्रिय, सत्यवादी तथा महान धार्मिक प्रकृति का होता है। शिशु की जिह्वा पर पिता, चाचा तथा मामा ही मन्त्र को लिखे दूसरा कोई भी व्यक्ति नहीं। हे सुरगणार्चिते! महेशानि! इन तीनों की अनुपस्थिति में बड़ा भाई भी शिशु की जिह्वा पर मन्त्र लिख सकता है। इसके बाद माता अपनी गोद में कुश बिछाकर उसके ऊपर शिशु को लेकर कई ब्राह्मणों के द्वारा संयुक्त रूप से एक साथ शान्ति कर्म कराये। सभी ब्राह्मण एक साथ शिशु की मङ्गल कामना तथा उसकी सर्व प्रकार की शान्ति हेतु कुशोदक से प्रोक्षण करते हुए बोलें - **"ॐ इमं पुत्रं कामयत कामजानां इहैव हि देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं मज्जननं शिवशक्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्यः उमायै शिवाय शिव यशसे।"** हे महेश्वरि! मत्स्यसूक्त में यह विस्तार पूर्वक कहा गया है। जिह्वा पर मन्त्र लेखन के पश्चात् इस शान्ति कर्म को करना चाहिए। तत्पश्चात् ब्राह्मण को माता के बायें कान में (इस निम्नलिखित) शान्ति स्तोत्र का प्रसन्न मन से पाठ करना (श्रवण कराना) चाहिए।

॥शान्ति स्तोत्रम्॥

मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे।
कृपया हर विघ्नं मे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६४॥

माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६५॥
कौमारि सर्वविद्येशे कौमारक्रीडने परे।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६६॥
विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६७॥
वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६८॥
शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥६९॥
चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥७०॥
महालक्ष्मि महोत्साहे शोकसंतापहारिणि।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥७१॥
मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते।
एके बहुतरे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते॥७२॥
इदं स्तोत्रं पठेद् यस्तु कर्मारम्भे महेश्वरि।
विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नो न जायते॥७३॥

हे ब्रह्मस्वरूपधारिणि, सर्वपाप (दोष) रहिते, देवि मातः! आपको प्रणाम है। आप कृपया मेरे (जीवन तथा साधन कर्मों में उपस्थित होने वाले सभी) विघ्नों को दूर कर मुझे मन्त्र-सिद्धि प्रदान करें। हे परमानन्द स्वरूपिणि-वरदायिनि-माहेश्वरि देवि! कृपया मेरे विघ्नों का विनाश कर मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। कुमार कार्तिकेय के साथ क्रीडारत रहने वाली, समस्त विद्याओं की स्वामिनी पराशक्ति स्वरूपा देवि कौमारि! कृपया मेरे विघ्नों का निराकरण कर मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। विष्णु का रूप धारण करने वाली तथा विनिता पुत्र गरुड पर आरूढ रहने वाली देवि! कृपया मेरी बाधाओं का उन्मूलन कर मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। अपनी (विशाल) दाढ़ों पर पृथिवी को धारण करने वाली वरदायिनी देवि वाराहि! कृपया मेरी आपदाओं का हरण कर मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। इन्द्रादि देवताओं द्वारा पूजित तथा इन्द्र का स्वरूप धारण करने वाली हे देवि! मेरी विपत्तियों का अपहरण करके कृपया मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। (नर) मुण्डमाला तथा रुधिर से सुशोभित सभी विघ्नों का विनाश करने वाली हे चामुण्डे! आप मेरी सभी बाधाओं का

मूलोच्छेदन कर कृपया मुझे मन्त्र सिद्धि अर्पित करें। सदैव अपार उत्साह (उल्लास-आनन्द) से पूर्ण रहने वाली तथा सभी प्रकार के शोक तथा दुखों का हरण करने वाली हे महालक्ष्मि! मेरे समस्त अवरोधों को धूलघूसरित कर मुझे मन्त्र सिद्धि प्रदान करने की कृपा करें। आप प्रमाण-प्रमेय रूप होते हुए भी इन प्रमाण-प्रमेयों से परे (इनके द्वारा अज्ञेय) हैं। एक (अद्वितीय स्वरूप) होते हुए भी (अपनी शक्ति अथवा लीला से) आप अनेक रूपों वाली हैं। सारा विश्व आपका ही स्वरूप है। हे विश्वरूपे! आपको प्रणाम है। किसी कर्म के आरम्भ में जो बुद्धिमान साधक इस स्तोत्र को पढ़ता है तथा भली-भाँति सोच समझकर कार्य करता है, उसके सामने किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होता। (इस स्तोत्र पाठ-श्रवण के पश्चात् शिशु के पितादि के द्वारा ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए।)

।। शान्ति-स्तोत्र-माहात्म्यम्।।

कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव सुन्दरि।
दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद् यदि।।७४।।
तस्य पूजाफलं देवि नीयते यक्षराक्षसैः।
शतवर्षजपाद् देवि न सिद्धिर्जायते प्रिये।।७५।।
महापदि समुत्पाते पठेत् स्तोत्रं गणेश्वरि।
आपदश्च पलायन्ते संशयो नास्ति कश्चन।।७६।।
विद्याकामेन देवेशि शतकृत्वः पठेत् स्तवम्।
इति ते कथितं मातुः स्तोत्रं कण्ठविभूषणम्।।७७।।
मद्भक्तेभ्यो महेशानि प्रकाशमुपपादय।
अप्रकाश्यमिदं स्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित्।।७८।।
दातव्यं हि सदा तस्मै भक्तिश्रद्धान्वितोऽपि यः।
सत्कुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिने।।७९।।
दद्यात् स्तोत्रं महेशानि नान्यथा फलभाग्भवेत्।
अष्टादशपुराणेषु वेदव्यासेन कीर्तितम्।।८०।।

हे सुन्दरि! कौल साधकों के लिए सिद्धिरूप गृह में प्रवेश हेतु द्वार-देवता स्वरूप इस स्तोत्र का मैंने तुमसे वर्णन किया। दीक्षाकाल तथा देवता पूजनादि के समय जो साधक इसका अर्चन (श्रद्धा सहित पाठ अथवा श्रवण) नहीं करता उसके सभी पूजनादि के फल को राक्षसों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ऐसा साधक यदि सौ वर्षों तक भी मन्त्र का जप करे तो भी उसे मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। हे गणेश्वरि! महान सङ्कट के उपस्थित होने पर भी यदि साधक इस स्तोत्र का पाठ करता है तो उसकी सारी

विपत्तियाँ भाग (दूर हो) जाती हैं। इसमें किसी भी प्रकार से सन्देह नहीं करना चाहिए। विद्याभिलाषी साधक को इस स्तोत्र का नित्य सौ पाठ करना चाहिए। हे देवेशि! कण्ठाभूषण स्वरूप इस मातृ-स्तोत्र का मैंने तुमसे वर्णन किया है। इसे सदैव गुप्त ही रखना। जिस किसी अपात्र के सामने इसे प्रकट न करना। जो मनुष्य मेरा भक्त हो, श्रद्धावान हो, कुलीन, शान्त, सरल तथा अहंकार (आत्म प्रशंसा के लिए धार्मिक आडम्बर करने की प्रकृति) से रहित हो, उसे ही इस स्तोत्र का ज्ञान प्रदान करना चाहिए। ऐसा न करने पर दाता अनिष्ट फल का भागी होता है। अट्ठारहो पुराणों में इस प्रकार का व्यास का कथन है।

॥ महाचीन क्रम-विषयक प्रश्नः॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव स्थितिसंहारकारक।
प्रश्नमेकं करोम्यत्र सकाशात् तव सुव्रत॥८१॥
कैतवं च परित्यज्य तत् कथ्यं भवनाशन।
महाचीनक्रमं देव कथितं न प्रकाशितम्।
कथयस्व तदिदानीं यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति॥८२॥

संसार की स्थिति (रक्षण) संहार तथा श्रेष्ठ व्रताचरणों का पालन करने वाले हे देवाधिदेव महादेव! अब मैं आपसे एक प्रश्न करती (पूछती) हूँ। हे सृष्टिसंहारक! आप छल प्रपञ्च का त्याग कर उसका उत्तर दें। हे देव! आपने महाचीन क्रम के विषय में सांकेतिक रूप से (पहले) वर्णन किया था, परन्तु स्पष्ट रूप से उसे प्रकट नहीं किया था। यदि मेरे प्रति आपका प्रेम है तो इस समय उसी महाचीन क्रम (रूप साधना) का वर्णन करें।

॥ महाचीन क्रम-वर्णनोपक्रमः॥

श्री भैरव उवाच

महाचीनक्रमं देवि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
यत् कृत्वा साधकाः सर्वे शिवत्वं यान्ति तत्क्षणात्॥८३॥
न वक्तव्यं महेशानि भुवनत्रितये शिवे।
शुद्धभावेन देवेशि वक्तव्यं तव गोचरे॥८४॥
नान्योऽस्ति मे प्रियः कोऽपि त्वदन्यः सुरवन्दिते।
इदानीं परमेशानि निधारय मनः शिवे॥८५॥
महाचीनक्रमं देवि कथितव्यं वरानने।
अहं देहो महेशानि देही त्वं सर्वरूपदृक्॥८६॥
मीनो यथा महादेवि पयसि प्रहृतो यथा।
सदात्मा त्वं महेशानि अकथ्यं नास्ति सुन्दरि॥८७॥

केचिद् देवा नरा केचिद् दानवा यक्षराक्षसाः।
नागलोकाः किन्नराश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥८८॥
ये वा पशुमृगाः पक्षा ये केचिज्जगतीगताः।
एते जडतराः सर्वे परस्परखलात्मकाः॥८९॥
कुकर्मनिरताः सर्वे कुमार्गदर्शनोत्सुकाः।
एतेषां ब्रह्म विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चित्सुखम्॥९०॥
न जानाति महेशानि तत् कां कथयामि ते।
नित्यमुक्तस्वभावोऽयं तदर्थमिदमीरितम्॥९१॥
क्षमस्व यदि चार्वङ्गि न वक्तव्यं महेश्वरि।

हे देवि! महाचीन क्रम (साधना पद्धति) सभी तन्त्र शास्त्रों में अत्यन्त गोपनीय कहा गया है। इस साधन क्रम को करके सभी साधक उसी क्षण शिवत्व को प्राप्त हो जाते हैं। इसे त्रिलोकी में भी (अशुद्ध भाव वाले)किसी व्यक्ति से नहीं कहना चाहिए, परन्तु हे देवेशि! तुम्हारा भाव (चित्त) शुद्ध है, अतः तुम्हारे सम्मुख इसे प्रकट कर रहा हूँ। हे सुरवन्दिते! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है। हे शिवे! इस बात को मन में अच्छी तरह धारण कर लो। हे देवि! वरानने! महाचीन क्रम को अब मैं तुमसे कहता हूँ। सर्वरूपों में दृष्टिगोचर होने वाली हे महेशानि! मैं शरीर रूप हूँ तथा तुम (इस शरीर में) जीव रूप से स्थित हो। हे महादेवि! सदात्मा रूप तुम्हारे बिना मेरी वैसी ही अवस्था है जैसी जल से बाहर निकाली गई मछली। हे सुन्दरि! तुमसे मेरे लिए कुछ भी अकथ्य नहीं है।

इस विश्व सृष्टि में स्थित (उत्पन्न हुए) देव, मनुष्य, दानव, यक्ष, राक्षस, नागलोकवासी, किन्नर, अप्सरा गन्धर्वों के समूह, पशु (पालतू) तथा वन्य पशु, पक्षी (जल-चर प्राणी) आदि सभी देहधारी जीव, ये सभी जड़ (विवेकहीन) तथा परस्पर दुष्प्रवृत्ति (हिंसक प्रकृति) वाले हैं। ये सभी प्राणी पाप तथा सांसारिक आसक्ति बढ़ाने वाले शास्त्र निषिद्ध कर्मों में ही निरन्तर लगे रहने वाले तथा अज्ञानतावश असन्मार्गों का ज्ञान कराने वाले उपदेशों तथा ग्रन्थों के प्रति ही उत्सुकता (उन्हें जानने की इच्छा) रखने वाले हैं। ये सभी लोग 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इस औपनिषद् वचन तथा चित्त के ब्रह्मानन्द स्वरूप परम सुख से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। अतः हे महेशानि! इस महाचीन क्रम को तुमसे (तुम्हारे माध्यम से अन्यों को उपदेश देने के लिए) मैं कैसे कहूँ। जो सर्वदा नित्यमुक्त स्वभाव वाले (जीवन्मुक्त) प्राणी हैं, उन्हीं के लिए ही इस 'महाचीन-क्रम' का वर्णन किया गया है। हे चार्वङ्गि! मुझे क्षमा करो, मैं इसका कथन नहीं कर सकता।

।। देव्या सतर्क प्रत्युत्तरान्ते पुनः प्रकाशनार्थे प्रार्थना।।

श्रीदेव्युवाच

नमस्ते शिवरूपाय नमस्ते गुरुरूपिणे।।९२।।
नमस्ते वरद स्वामिन् करुणानिधये नमः।
अन्यदेवरता ये च सर्वे त्वत्पदकाङ्क्षिणः।।९३।।
तेषामेवाधिकफलं मद्भक्तानां व्यवस्थितम्।
सिंहव्याघ्रादयो ये च ये च विघ्नानुसारिणः।।९४।।
विकाराश्च तथा सर्पास्तथान्ये दुष्टजन्तवः।
ते सर्वे विलयं यान्ति पतङ्गा इव पावके।।९५।।
देहं दीपशिखाकारं दृश्यते दुष्टजन्तुभिः।
केवलं प्रेमभावेन त्वयैव विभुणा प्रभो।।९६।।
किं वा शवमयो भूत्वा आसने पञ्चदेवताः।
पृथिवी जलतां याति जलं तेजोमयं भवेत्।।९७।।
तेजो वायुं तथा वायुराकाशं तत्प्रकाशकम्।
दानवा राक्षसाः सर्वे ये चान्ये (दानवा?देवता)गणाः।।९८।।
राजानश्च तथा चान्ये सर्वे त्वत्पादवर्तिनः।
आज्ञां भजन्ति गन्धर्वाः किं पुनर्नरकीटकाः।।९९।।
यत्र यत्र भवेद् वाञ्छा तत्तसिद्धिः करे स्थिता।
सदानुगामिनी वाणी भजते तं सुनिश्चितम्।।१००।।
द्विधाभावं परित्यज्य किमन्यद्बहुभाषितैः।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी धनमाप्नुयात्।।१०१।।
अन्ते तु जायते गौरीलोके शिव इवापरः।
सिद्धा भवन्ति यद्भक्ताः कथयस्व ममाग्रतः।।१०२।।

हे समस्त प्राणियों का कल्याण कारक होने के कारण 'शिव स्वरूप', ज्ञान रूप सभी शास्त्रों के उपदेशक होने के कारण 'गुरु रूप' , अपने सभी भक्तों को मनोवाञ्छित वर देने के कारण 'वरद' तथा अपार कृपा मय (कृपामूर्तिवत्) होने के कारण 'करुणानिधि' नाम से प्रसिद्ध स्वामिन्! आपको प्रणाम है, प्रणाम है, बारम्बार प्रणाम है।

जो लोग भिन्न-भिन्न (मेरे तथा आपके अतिरिक्त) अन्य देवताओं की आराधना में लगे हैं तथा वे सभी जो आपके चरणों की भक्ति (अथवा आपके शिवत्व पद) के अभिलाषी (होकर आपकी आराधना में रत) हैं, उन सभी से अधिक फल-प्राप्ति की व्यवस्था मेरे भक्तों के लिए है। सिंह-व्याघ्रादि

हिंसक पशु, विघ्न (बाधा-विपत्ति) उत्पन्न करने वाले प्राणी, विभिन्न प्रकार के दोष, सर्प तथा अन्य (विषैले) दुष्ट प्रकृति के जीव ये सभी प्राणी, मेरी कृपा से, मेरे भक्तों के निकट आते ही उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार से अग्नि के समीप पहुंचते ही पतङ्गे (क्षुद्रकीट) नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट प्रकृति वाले प्राणियों को मेरे भक्त का शरीर प्रज्वलित दीप (अग्नि) शिखा की भाँति दिखाई देता है जिससे वे मेरे भक्तों के पास आने का साहस भी नहीं कर पाते।

क्या यह सत्य नहीं है कि विभु स्वरूप आपके, मेरे प्रति केवल प्रेम के कारण ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव शव रूप होकर मेरे आसन (के रूप) में स्थित है। (प्रलय के समय अथवा यौगिक साधना के समय साधक द्वारा काल्पनिक रूप से) जब पृथ्वी जल में, जल तेज (अग्नि) में, तेज वायु में, वायु आकाश में तथा आकाश अहम् में इसी क्रम से सभी तत्वों के अपने-अपने कारण में ही विलीन होने (किये जाने) पर सर्वतत्व प्रकाशिका के रूप में एक मैं ही शेष रहती (दृश्य होती) हूँ। सभी दानवों, राक्षसों, देवताओं तथा गन्धर्वों के समूह एवं सभी महिपाल, आपके चरणों की सेवा करने वाले भक्तों की आज्ञा का पालन करने वाले होते हैं। फिर क्षुद्र कीड़ों के समान सामान्य मनुष्यों तथा अन्य जीव जन्तुओं के विषय में कहना ही क्या है। उनकी जब-जब जहाँ जिस किसी भी पदार्थ की इच्छा होती है, 'कर आमलकवत्' वह तत्क्षण पूर्ण हो जाती है। सरस्वती उसका अनुसरण करती हुई सदा उसकी सेवा करती है। अधिक कहने से क्या लाभ। हे देव! जिस 'महाचीन-क्रम' की भक्ति (साधना) करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, धनार्थी धन को तथा मोक्षार्थी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तथा अन्त में देहावसान के पश्चात् द्वितीय शिव-रूप होकर गौरी-लोक में निवास करता है, उसे संशय रहित होकर (संकोच त्यागकर) मेरे सम्मुख वर्णित करें।

।।महाचीन-क्रमे स्नान शुद्ध्यशुद्ध्यादि निरूपणम्।।

श्री भैरव उवाच

न वक्तव्यमभक्ताय परभक्ताय पापिने।
महाचीनक्रमं देवि विविधं कथितं शिवे।।१०३।।
स्नानादि मानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः।
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं कल्पनादिकम्।।१०४।।
सर्व एव शुभः कालो नाशुभो वर्तते क्वचित्।
न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि।।१०५।।

वस्त्रासनस्थानगे (हे?ह)देहस्पर्शादि वारिणः।
शुद्धिं नचाचरेदत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत्॥१०६॥
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति न चामेध्यादिदूषणम्।
य एवं चिन्तयेद् मन्त्री सर्वकामफलप्रदम्॥१०७॥
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः॥१०८॥
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।
सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः॥१०९॥
महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत्।
स्त्रीनिन्दां च न कुर्वीत तासां प्रेम विवर्द्धयेत्॥११०॥

हे देवि! इस विषय को किसी अभक्त अथवा अन्य देव भक्तों अथवा पापी पुरुषों के सामने कभी भी नहीं कहना चाहिए। हे शिवे! महाचीन क्रम विविध प्रकार (द्विविध-दो प्रकार) का कहा गया है। इस क्रम में मानसिक शुद्धि ही स्नानादि रूप पवित्रता है। मानस जप करना ही श्रेष्ठ जप क्रिया है। इसमें दिव्य मानसिक भावों (उपचारों) द्वारा ही पूजन तथा समस्त क्रियायें (तर्पणादि) की जाती है। इस साधना में सभी काल (समय) शुभ माना जाता है, कोई भी समय अशुभ नहीं होता। दिन, रात, सन्ध्या तथा अर्धरात्रि इनमें किसी भी प्रकार की विशेषता स्वीकार नहीं की जाती। साधक प्रत्येक समय इच्छानुसार साधना करने के लिए स्वतन्त्र है। इस क्रम में वस्त्र, आसन, स्थान, गृह, शरीरादि सभी केवल जल स्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाते हैं। अन्य किसी भी प्रकार के शुद्धाचरण की आवश्यकता नहीं है। संशय रहित (शुद्धि-अशुद्धि के विचार से पूर्णतः मुक्त)चित्त होकर व्यवहार करना चाहिए। यहाँ न तो किसी भी प्रकार के शुद्धि (पवित्रता) की आवश्यकता है और न ही इसमें अपवित्रता का दोष माना जाता है। इस प्रकार के भावों से युक्त होकर साधना करने (मन्त्र जप करने) वाला साधक सभी कर्मों का फल प्राप्त करने वाला होता है तथा विद्वत्सभा में उसकी वाणी गद्य-पद्य मय वक्तृत्व युक्त वाली स्वतः ही हो जाती है। उसके दर्शन-मात्र से ही विरोधियों (प्रतिवादियों) की वाणी निस्तेज हो जाती है। राजाओं के समूह भी उसकी दासता स्वीकार करके सेवा करने वाले हो जाते हैं, फिर अन्य सामान्यजनों की बात ही क्या है। बिना स्नान किये तथा भोजनादि करके ही सदैव देवी को स्नान कराकर पूजनादि करना चाहिए। अर्धरात्रि में अशुद्ध स्थान पर ही मन्त्रोच्चारण सहित बलि प्रदान करना चाहिए। कभी भी (स्व अथवा पर)

स्त्री की निन्दा नहीं करनी चाहिए। उसके (उनके) साथ सदैव प्रेम का संवर्धन करने वाला व्यवहार करना चाहिए।

।। महाचीन-क्रमे जपादि निरूपणम्।।

अत्युत्कटापराधेऽपि न तस्या द्वेषमाचरेत्।
स्त्रीद्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात् पूजयेत् स्त्रियः।।१११।।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत्।
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र कुत्रापि देशिकः।।११२।।
भक्षंस्ताम्बूलमन्यांश्च भ(क्ष?क्ष्य) द्रव्यं यथारुचि।
मांसमत्स्यदधिक्षौद्रभ(क्ष?क्ष्य)द्रव्यं यथारुचि।।११३।।
भुक्तान्नशेषभ(क्षा?क्ष्या)णि भुक्त्वा सर्वं जपं चरेत्।
दिक्कालनियमो नास्ति स्थित्यादिनियमो न च।।११४।।
न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि।
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने।।११५।।
नाधर्मो विद्यते सुभ्रु किञ्चिद् धर्मो महान् भवेत्।
स्वेच्छाचारस्थितो देवि प्रचरेद् हृष्टमानसः।।११६।।
(कृतार्थं?कार्तार्थ्यं) मन्यमानस्तु संतुष्टो जितमानसः।
जपं कृत्वा विशेषेण स्त्रिया च जपमाचरेत्।।११७।।

अत्यन्त भयंकर (प्रबल) अपराध होने पर भी उनके साथ द्वेष नहीं करना चाहिए। स्त्रियों से द्वेष न करके उनका विशेष रूप से पूजन (आदर) ही करना चाहिए। जप स्थान पर महाशंख (नरकपाल) स्थापित कर उसके ऊपर बैठकर जप करना चाहिए। स्त्री का स्पर्श करते हुए, उसे देखते हुए, (मार्ग में) चलते हुए, जिस किसी भी स्थान पर स्थित होकर, यथारुचि ताम्बूल, मांस, मत्स्य, दधि, मधु (संविद, आसव, रस) तथा और भी अन्य सभी भक्ष्य-भोज्य द्रव्यों को पहले स्त्रियों को खिलाकर फिर शेष का स्वयं भोग कर (खाकर) जप करना चाहिए।

इस महाचीन-क्रम साधना में जप करने के लिए न तो किसी काल विशेष का विधान है, न ही दिशा का और न ही विशेष स्थिति (किसी विशेष दिशा की ओर मुख करके विशेष आसन से बैठने) का। इसी प्रकार पूजन तथा बलि आदि के लिए भी विशेष दिशा-कालादि का नियम नहीं है। इस क्रम में महामन्त्र (काली तारादि के मन्त्र) की साधना के लिए केवल स्वेच्छाचारिता का ही नियम कहा गया है। इसमें किसी भी कर्म से अधर्म की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि महान धर्म की ही प्राप्ति होती है। साधक प्रसन्नचित्त होकर अपनी इच्छानुसार किसी भी समय, स्थिति, अवस्था में

जप-पूजन आदि सभी कर्मों का आचरण करे। साधक अपने मन को वशीकृत करकर सदैव सन्तुष्ट रहते हुए स्वयं को कृतार्थ (जो कुछ करना था कर लिया, पाना था पा लिया, अब कुछ भी करना अथवा प्राप्त करना शेष नहीं रहा ऐसा) माने। इस क्रम में साधक सदैव स्त्री के साथ बैठकर जप करे।

आसनं शृणु देवेशि प्राक् सिद्धयेज्जपमुत्तमम्।
पीठानामुत्तमं पीठं जपात् सार्वज्ञयदायकम्॥११८॥
योनिपीठे निवेश्यैव श्रोण्यां कमललोचने।
योन्यां संक्षिप्तलिङ्गस्तु जपेत् तद्गतमानसः॥११९॥
सहस्रं प्रत्यहं जप्त्वा कन्दर्पसदृशः पुमान्।
जायते नात्र संदेहः सत्यं सुरगणार्चिते॥१२०॥
चीनाचारविशेषं हि कथितं परमेश्वरि।
ताराकल्पे महेशानि विस्तरेण प्रकाशितम्॥१२१॥
अत्र चैव महेशानि विशेषः कथितो मया।
योनिकुन्तलमादाय गृह्णीयान्तरीयकम्॥१२२॥
एवं वत्सरपर्यन्तं जपेत् तद्गतमानसः।
नीलासरस्वती काली चान्नपूर्णा च भैरवी॥१२३॥
साधकाय प्रहृष्टाय प्रसीदति न संशयः।
साधकोऽपि महादेवि वत्सरात् तां प्रपश्यति॥१२४॥
इह ते संशयो नास्ति सत्यं सत्यं महेश्वरि।
अतिस्नेहात् सुरश्रेष्ठे प्रकाशितमिदं तव॥१२५॥

हे देवि! अब उस आसन के विषय में सुनो, जिसे जप कार्य के लिए स्वीकार करके पूर्वकाल में साधकों ने उत्तम सिद्धियाँ प्राप्त की थी। समस्त पीठों में सर्वोत्तम तथा सर्वज्ञताप्रद पीठ योनि पीठ है। स्त्री के योनिपीठ (अथवा) नितम्ब का आश्रय लेकर योनि में लिङ्ग को निवेशित करके उसी पर मन को केन्द्रित कर (बिना मानसिक एवं शारीरिक विकार को प्राप्त हुए) जो साधक प्रतिदिन एक हजार बार मन्त्र का जप करता है, वह कामदेव के समान रूपवान हो जाता है। हे सुरपूजिते देवि! मेरा यह कथन निःसन्देह सत्य है।इस चीनाचार (महाचीन क्रम) के विषय में मैने जो कुछ विशेष रूप से कहा है, ताराकल्प में उसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ उसी का वर्णन (आगे) मेरे द्वारा तुमसे किया जायेगा। स्त्री की योनि का केश तथा उसका अन्तरीय (अधो) वस्त्र लेकर, उस पर ध्यान केन्द्रित करके यदि साधक नील सरस्वती (तारा), काली (अन्नपूर्णा) अथवा भैरवी के मन्त्रों का

एक वर्ष तक जप करता है तो उस साधक को सभी प्रकार का सुख प्रदान कर हर्षित करने के लिए ये देवियाँ प्रसन्न हो जाती हैं। इसमें किसी भी प्रकार के संशय की संभावना नहीं है। साधक एक वर्ष के भीतर ही (अथवा वर्ष की समाप्ति पर) उनका दर्शन भी प्राप्त करता है। हे सुरश्रेष्ठे! तुम्हारे प्रति अतिस्नेह के कारण ही इस तथ्य को मैंने प्रकाशित किया है।

रहस्यं शृणु चार्वङ्गि येन सिद्ध्यति सुन्दरि।
रजस्वलां स्त्रियं वीक्ष्य सहस्रं प्रजपेद्यदि॥१२६॥
तदैव मन्त्रसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।
दिनैः षोडशभिर्देवि सिद्धिमाप्नोति साधकः॥१२७॥
पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः।
कवितां लभते सोऽपि अमृतत्वं च गच्छति॥१२८॥
नीलपद्मं तथा बिम्बं खञ्जनं शिखरं तथा।
चामरं रविबिम्बं च तिलपुष्पं सरोवरम्॥१२९॥
त्रिसूत्रं वीक्ष्य जप्त्वा तु सततं शुद्धभावतः।
सुखप्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यदम्॥१३०॥
सुकेशं सुगतिं कन्दं सुगन्धं सुखमेव च।
लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम्॥१३१॥

हे चार्वङ्गि! सुन्दरि! एक गुप्त तथ्य सुनो, जिससे साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है। यदि कोई साधक रजस्वला स्त्री (की योनि) को देखते हुए प्रतिदिन मूल मन्त्र का एक हजार जप करता है, तो उसे मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। इस विषय में किसी भी प्रकार के सोच-विचार (संशय) की आवश्यकता नहीं है। मात्र सोलह दिनों के प्रयोग से ही साधक को सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

स्त्री के स्तनों पर अपना हाथ स्थापित करके यदि साधक निर्भयता पूर्वक (बिना विचलित हुए) मन को नियन्त्रण में रखकर प्रतिदिन एक हजार जप करता है उसे कवित्व शक्ति तथा अमृतत्व (मोक्ष अथवा दीर्घायुष्य) की प्राप्ति होती है।

स्त्री के मुख, अधर, नेत्र, शिखर (शिर अथवा मस्तक अथवा स्तन), केश, सिन्दूर, नासिका, नाभि तथा उदरस्थ त्रिवली, एक-एक कर क्रमशः इन सभी अङ्गो पर दृष्टि स्थिर करके निरन्तर उसे देखता हुआ जो साधक सौ-सौ जप करता है वह सुख, प्रसन्नता, सुन्दर मुख (रूप), नेत्र, हास्य, केश (वेश), सुन्दर (सौभाग्यपूर्ण) स्थिति, सौगन्धिक द्रव्य (अथवा भोग) तथा सुख (अपनी इच्छानुसार) यथा क्रम प्राप्त करता है।

महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूज्य च।
तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः॥१३२॥
स भवेत् कुलदेवश्च कुलक्रमगतः शुचिः।
ब्रह्मतरोर्महामूले देवीं ध्यात्वा यथाविधि॥१३३॥
तत्सुधासारसारेण तर्पयेद् मातृकानने।
स भवेत् साधकश्रेष्ठो मातृणां च भवेत प्रियः॥१३४॥
महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः।
रात्रौ यदि जपेद् मन्त्रं सच कल्पद्रुमो भवेत्॥१३५॥
तिथिक्रमेण देवेशि लतया वेष्टितो भवेत्।
तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्रजपमानतः॥१३६॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि जप्यते।
तदैव महती सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा॥१३७॥
महाचीनद्रुमे बीजं लिखित्वा कुङ्कुमेन च।
तत्पार्श्वे साध्यमालिख्य ताडयेद् दृष्टिवृष्टिभिः॥१३८॥
तत्र गच्छति कामार्ता यत्र यत्रोपलभ्यते।
महाचीनद्रुमरसेनाक्तं पिण्डं विधाय च॥१३९॥
यन्नाम्ना दीयते देवि सोऽचिरान् मृत्युमाप्नुयात्।
महाचीनद्रुममूल - मज्जाभिर्बिल्वपत्रकैः॥१४०॥
सहस्रं देवीमभ्यचर्य श्मशाने साधकोत्तमः।
तदा राज्यमवाप्नोति यदि सा न पलायते॥१४१॥

महाचीन द्रुम (लिङ्ग) में देवी का ध्यान कर उसके पुष्प (वीर्य) द्वारा भक्ति भाव सहित देवी का पूजन करने वाला साधक कुलाचार को जानने वाला, तथा पवित्र भाव वाला तथा शिव तुल्य हो जाता है।

लिङ्ग मूल (मूलाधार) में देवी का ध्यान यथाविधि करके उसके अमृत रूप सार तत्व (वीर्य) से जो साधक स्त्री योनि का तर्पण करता है, वह सर्वश्रेष्ठ साधक होने के साथ ही मातृ-शक्तियों का प्रिय भी हो जाता है।

[सहस्रार में (परमशिव से संयुक्त) देवी का यथाविधि (कुण्डलिनी को उठाकर षट्चक्र भेदन प्रक्रिया द्वारा सहस्रार में लाकर) ध्यान करके वहाँ से स्रवित होने वाले सुधारस की धारा से चक्रों में स्थित मातृकाओं (वर्णों) का अथवा मूलाधार में तर्पण (सुधारस से तृप्त) करे। ऐसा साधक मातृकाओं का प्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ साधक हो जाता है।]

जो श्रेष्ठ साधक रात्रि में कुलयुवती से आलिङ्गित (सम्भोगावस्था में)

होकर मन्त्र का जप करता है, वह इस कर्म के फलस्वरूप स्वयं ही कल्पवृक्ष के समान (दूसरों की इच्छापूर्ति करने वाला) हो जाता है।

जो साधक तिथि क्रम के अनुसार (शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो, इसी प्रकार वृद्धि करते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह पुनः एक-एक करके कम करते हुए अमावस्या तक) कुल युवतियों द्वारा आवेष्टित (आलिङ्गनयुक्त अथवा घिरा हुआ) होकर एक मास तक आदर सहित एक हजार बार मन्त्र का प्रतिदिन (रात्रि) में जप करता है, उसे निश्चय ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। यदि साधक अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियों में द्विगुणित (दो हजार) जप करता है तो उसे देवताओं के लिए भी जो दुर्लभ है, ऐसी महान सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

महाचीनद्रुम (लिङ्ग) पर काली (अथवा तारा) के बीज मन्त्र को लिखकर उसके पार्श्व में दाहिने ओर साध्य (स्त्री) का नाम लिखे। तत्पश्चात् उस पर बार-बार तीव्र-दृष्टिपात करते हुए मूल-मन्त्र का जप करे। ऐसा करने पर वह साधक जहाँ-जहाँ भी होता है, वह साध्य स्त्री वहाँ-वहाँ कामपीड़ित होकर उसके पास आ जाती है।

महाचीनद्रुम के रस (वीर्य) से सिक्त (भीगा हुआ) पिण्ड बनाकर जिसके नाम से दिया जाता है, उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

महाचीनद्रुम मूल-मज्जा से सिक्त बेल पत्रों द्वारा, श्मशान में जो साधक श्रेष्ठ एक हजार बार देवी का पूजन (सहस्र विल्व पत्रों का क्रमशः मन्त्रोच्चारण सहित अर्पण) करता है, यदि किसी भयानक दृश्य के उपस्थित होने पर भयभीत होकर भागता नहीं तो उसे राज्य की प्राप्ति होती है।

(महाचीनद्रुमलता वेष्टनेन तु यत् फलम्।)
तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः।
शवासनाधिकफलं लतागेहप्रवेशनम्॥१४२॥
धनकामस्तु यो विद्यान् महदैश्वर्यकामुकः।
बृहस्पतिसमो यस्तु भवितुं कामयेद् नरः॥१४३॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वाकुलमामन्त्र्य मन्त्रवित्।
मैथुनं यः प्रयात्येवं स तु सर्वफलं लभेत्॥१४४॥
लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये।
लता यदि न संसर्गे तदा रेतः प्रयत्नतः॥१४५॥
समुत्सार्य जपेद् मन्त्रं धर्मकामार्थसिद्धये।
सुरतेषु प्रजप्तव्यं महापातकमुक्तये॥१४६॥

वरासनास्थां संवीक्ष्य तन्मूले स्वेष्टदेवताम्।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं पूजयेद् मनुम्॥१४७॥
लक्षपीठफलं देवि लभते नात्र संशयः।
वेतालपादुकासिद्धिः खड्गसिद्धिश्च जायते॥१४८॥

स्त्री के साथ सम्भोगरत होकर (अथवा उसके द्वारा आलिङ्गित होकर) जप साधना के द्वारा प्राप्त फल, शवसाधना से प्राप्त फल से सर्वथा अधिक होता है। शव-साधना तो इसके सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है।

जिसके मन में धन की कामना है, जो महान ऐश्वर्य का इच्छुक है तथा जो बृहस्पति के समान ज्ञानी होना चाहता है, वह मन्त्र साधक कुल युवती को आमन्त्रित कर उसके साथ मैथुन करते हुए मूल मन्त्र का जप करे। इस प्रकार वह साधक सभी इच्छित फलों को प्राप्त कर लेता है।

यदि संसर्ग के लिए स्त्री उपलब्ध न हो तो स्वयं ही रेत का उत्सर्जन करके धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिए साधक जप करे। सम्भोगावस्था में जप करने से साधक महापातकों से भी मुक्त हो जाता है।

जो साधक स्त्री को श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर उसकी योनि को देखते हुए उसमें अपने इष्ट देवता (काली, तारादि) का ध्यानकर उसकी तीन दिनों तक अर्द्धरात्रि में पूजन तथा जप करता है, हे देवि! उस साधक को एक लाख पीठों के पूजन का फल प्राप्त होता है। साथ ही उसे बेताल, पादुका तथा खड्ग सिद्धि की भी प्राप्ति हो जाती है।

अञ्जनं तिलकं गुप्तं प्रजप्य तु सहस्रकम्।
स्वदेहरुधिराक्तैश्च बिल्वपत्रैः सहस्रकैः॥१४९॥
श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीं तु वागीशसमतां व्रजेत्।
श्मशाने योषितं मन्त्री संपूज्य ऋतुगां शुभाम्॥१५०॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तवस्त्रैरलङ्कृताम्।
चारुपुष्पैर्मनुं प्रोच्य ततो ध्यायेश्च सुन्दरीम्॥१५१॥
रमित्वा तां लभेद्राज्यं यदि नात्र पलायते।
मेषमाहिषरक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते॥१५२॥
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते।
वचसा च भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः॥१५३॥
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेणैव मनोभवः।
बलेन पवनो ह्येष सर्वतत्त्वार्थसाधकः॥१५४॥
शोधितं साधितं दद्यात् सास्थि मांसं सदा बलिम्।
सर्व सास्थि प्रदातव्यं तथा लोमसमन्वितम्॥१५५॥

एवंभूतः सदा देवि साधको भुवि दुर्लभः।
यया कयाचित् दृष्टया वा यज्जपो भुवि दृश्यते।।१५६।।
(सोऽपि दासो भवेत् सद्यो येन वा दृश्यतेभुवि।)

जो साधक श्मशान में बैठकर स्त्री के अञ्जन (नेत्र), तिलक (भाल)तथा गुप्त प्रदेश को देखता हुआ क्रमशः एक-एक हजार जप करता है तथा स्वदेह के रक्त से सिक्त सहस्र बेल-पत्रों द्वारा देवी का पूजन करता है उसे वृहस्पति (अथवा ब्रह्मा) की समता प्राप्त हो जाती है।

जो साधक रात्रि में श्मशान में रजस्वला स्त्री को सम्मुख बैठाकर, उसके अङ्गो पर रक्त चन्दन का लेप कर तथा उसे सुन्दर रक्त वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत कर, सुन्दर पुष्पों द्वारा मन्त्रोच्चारण सहित, उसमें देवी का ध्यान करके, पूजन करता है तथा पूजनोपरान्त उसके साथ रमण करता है, यदि वह इन क्रियाओं के मध्य किसी कारणवश भयभीत होकर पलायन नहीं करता तो उसे निःसन्देह राज्य की प्राप्ति होती है।

भेड़ तथा भैंसे के रक्त से पूजन (बलि प्रदान) करने से साधक वाणी पर अधिकार (वाक् पटुता-प्रवचन शक्ति) की प्राप्ति होती है। वह साधक वाणी (बोलने) में वृहस्पति के समान, धन-सम्पत्ति में कुबेर के तुल्य, आदेश देने (आज्ञा पालन करवाने) में देवराज इन्द्र के सदृश, रूप (सौन्दर्य) में कामदेव के समकक्ष तथा बल में वायुवत् क्षमतावान होने के साथ ही सर्वतत्वों को जानने वाला तथा सर्वार्थ साधक (सभी कामनाओं की पूर्ति का सामर्थ्य रखने वाला) हो जाता है। बलि पशु के मांस का शोधन कर उसे पकाकर अस्थि तथा लोम (बाल) सहित देवी को बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार देवी की आराधना करने वाला साधक पृथ्वी पर दुर्लभ होता है। ऐसा साधक इस पृथिवी पर जिस किसी को भी देखता है, जिस किसी का भी नाम स्मरण करता है तथा जो कोई भी उसे देखता है, वे सभी प्राणी (मनुष्य) उसके वशीभूत होकर शीघ्र ही उसके दास हो जाते हैं।

।। अस्य साधनस्य प्रकाशने मृत्युः सर्वहानिश्च।।

एतत्प्रकाशनात् देवि मृत्युर्भवति नान्यथा।
एतत्साधकनिन्दां वा एतन्मन्त्रस्य वा पुनः।।१५७।।
महाभूतगणैः सार्धं तस्य सर्वं हराम्यहम्।
योगिनीचक्रसहिता स्वयं तद्वधकारिणी।।१५८।।

हे देवि! जो भी मनुष्य इस साधन क्रम को अनधिकारी के समक्ष प्रकाशित करता है, उसकी निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। जो व्यक्ति इसके

साधकों तथा (अथवा) मन्त्रों की निन्दा करता है, मैं अपने महानभूतगणों के साथ उसका सर्वस्व अपहरण कर लेता हूँ। योगिनी चक्र की शक्तियों सहित स्वयं मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी उस व्यक्ति का वध करने वाली होती है।

।। सारस्वत-प्रद प्रयोगः।।

रहस्यं शृणु देवेशि येन वाग्मी भवेत् सदा।
यस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये सुरेश्वरि।।१५९।।
सारस्वतप्रयोगोऽयं कथितो विश्वमोहने।
विशेषं कथयिष्यामि सावधानावधारय।।१६०।।
वीरतन्त्रे कथितं ते येन सर्वमयो भवेत्।
जिह्वायां भावयेद् यस्तु तारिणीं दीपरूपिणीम्।।१६१।।
मातृकासहितां विद्यां त्रिरावर्त्य जलं पिबेत्।
जलपानविधानेन मूकोऽपि सुकविर्भवेत्।।१६२।।
अजस्रभावनाभ्यासात् साधकः सुकृती सुधीः।
कविर्वाग्मी महायोगी मुक्तिभागी भवेन्नरः।।१६३।।
अब्दाच्चतुर्विधं तस्य पाण्डित्यमुपजायते।

हे देवेशि! अब एक गुप्त प्रयोग के विषय में सुनो। तन्त्र-शास्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई प्रयोग नहीं है। इसे सारस्वत प्रयोग कहा जाता है। वीर तन्त्र में वर्णित इस प्रयोग को, जिसके द्वारा साधक सर्वमय (सर्वज्ञ) हो जाता है, मैं तुमसे विशेष रूप से कहता हूँ, सावधान होकर इसे धारण करो। साधक अपनी जिह्वा (के अग्रभाग) पर दीपशिखा रूप में तारा (काली) का ध्यान करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मातृका सहित विद्या(मन्त्र) का तीन बार जप कर, (उसके द्वारा अभिमन्त्रित करके अथवा वैसे ही) जल का पान करे। इस प्रकार जल पीने की प्रक्रिया द्वारा गूँगा व्यक्ति भी सुकवि (सुन्दर काव्य रचना करने वाला श्रेष्ठ कवि) हो जाता है। निरन्तर इस प्रकार की भावना (ध्यान) तथा जलपान रूप कर्म का अभ्यास (प्रयोग) करने वाला पुण्यवान सत्कर्मी साधक बुद्धिमान, कवि, वाक्पटु (चतुर वक्ता), महायोगी तथा मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। एक वर्ष में ही चारों प्रकार की विद्वता (पढ़ना-लिखना-बोलना तथा समझना) उसमें उत्पन्न हो जाती है।

अथ वक्ष्ये महेशानि रहस्यं परमाद्भुतम्।।१६४।।
युवतीनां तु योनौ तु लिखेद् मन्त्रान् मनोरमान्।
संजप्य च महामन्त्रं सर्वसारस्वतप्रदम्।।१६५।।
सहस्रजपमानेन प्रयोगं च समाचरेत्।
पश्चाद् भ्रमणयोगेन ताडयेद् योनिमण्डलम्।।१६६।।

सहस्रं च जपेत् तावद्यावद् रेतो न जायते।
तेन तत्त्वेन देवेशि तर्पयेद् यतमानसः।।१६७।।
कवित्वं जायते सुभ्रु वाग्मित्वं च तथैव च।
पण्डि(त)त्वं महत्त्वं च जायते नात्र संशयः।।१६८।।
रक्तपुष्पैर्महेशानि योनिपूजनमाचरेत्।
युवतीरूपमास्थाय पूजयेद् बहुयत्नतः।।१६९।।
घृणां त्यक्त्वा महेशानि पूजयेद् योनिमण्डलम्।
रहस्यं शृणु चार्वङ्गि येन सिद्धो भवेद् मनुः।।१७०।।

हे महेशानि! अब मैं एक अन्य परम आश्चर्यजनक रहस्यमय सारस्वतप्रद प्रयोग का वर्णन करता हूँ। स्त्री की योनि पर सुन्दर ढंग से सारस्वत (तारा) मन्त्र को लिखकर उसका जप करे। इस विधि से मन्त्र का एक हजार जप करे। तत्पश्चात् भ्रमण योग द्वारा स्त्री के योनिमण्डल पर (स्व लिङ्ग द्वारा) ताड़न करे। पुनः जब तक वीर्य स्खलन न हो मन्त्र का एक हजार जप करे। इसके बाद संयमित चित्त होकर उसी तत्व (स्त्री रज मिश्रित वीर्य) द्वारा देवी का तर्पण करे। हे सुभ्रु! इस प्रयोग से साधक में निःसन्देह कवित्व शक्ति, वाक् चातुर्य तथा महान पाण्डित्य की उत्पत्ति होती है। युवती को सम्मुख बैठाकर करके घृणा का सर्वथा परित्याग कर रक्त पुष्पों तथा और भी अनेक नैवेद्यादि उपचारों द्वारा भली-भाँति उसकी योनि प्रदेश का पूजन साधक को करना चाहिए। हे चार्वङ्गि! अब एक अन्य गोपनीय प्रयोग को सुनो, जिसके द्वारा मन्त्र सिद्ध होता है।

।। निश्चित सिद्धि प्राप्त्युपाय रूप-प्रश्नम्।।

श्रीदेव्युवाच

भगवन् भूतभव्येश भूताधिप महाबल।
प्रसीद देवेदेवेश सर्वप्राणिहिते रत।
येनावश्यं भवेत् सिद्धिस्तदुपायं वद प्रभो!।।१७१।।

हे (समस्त) भूतों को उत्पन्न करने वाले, भूतों (प्राणियों) के स्वामी, महाशक्तिमान, सभी प्राणियों के कल्याण हेतु यत्नशील, देवाधिदेव भगवन! (आप मुझ पर) प्रसन्न हों। हे प्रभो! जिस साधन से निश्चित रूप से साधक को (मन्त्र) सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसे आप कृपा करके कहें।

।। मन्त्र सिद्धयर्थे मन्त्र-शिखायाः निरूपणम्।।

श्री भैरव उवाच।

शृणु देवि परं ज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमोत्तमम्।
येन विज्ञानमात्रेण शीघ्रं विद्या प्रसीदति।।१७२।।

मूलकन्दे च या शक्तिर्जगदाधाररूपिणी।
तद्भ्रमावर्तवातो यः प्राण इत्युच्यते बुधैः।।१७३।।
झिल्लीशब्दा व्यक्तरा कूजन्ती सततोत्थिता।
गच्छन्ती ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्ती स्वकेतनम्।।१७४।।
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम्।
तेन मन्त्रे शिखा जाता सर्वमन्त्रप्रदीपिका।।१७५।।
तमःपूर्णे गृहे यद्वद् न किञ्चिदपि भासते।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिध्यन्ति कदाचन।।१७६।।
शिखोपदेशः सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि।
तेन बिना नसिद्धिः स्याद् वर्षकोटिशतैरपि।।१७७।।
तस्मात् त्वयापि गिरिजे गोपनीयः प्रयत्नतः।
सुप्ता निद्रायिता मत्ता विद्रावणरता परा।।१७८।।
समस्तदोषजालेन ग्रथिता कुलसुन्दरि।
निशाचारं दिवाचारं सन्ध्याचारं च पल्लवम्।।१७९।।
दुर्लभं बीजसंयुक्तं भावसंयोगमेव च।
ज्ञात्वा प्रबोधयेद्वीरो गुरुस्तत्रैव कारणम्।।१८०।।

हे देवि! समस्त उत्तम ज्ञानों से उत्तम (सर्वोतम) परं ज्ञान को सुनो। जिसको विशेष रूप से जानने मात्र से ही मन्त्र देवता शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता है। मूलाधार में स्थित जगदाधार स्वरूप जो कुण्डलिनी-शक्ति है, उसके भ्रमावर्तन द्वारा उत्पन्न होने वाले वायु को विद्वानों ने प्राण कहा है। झींगुर के समान मधुर-मन्द-स्वर उत्पन्न करती हुई यह शक्ति निरन्तर नीचे से उठकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है पुनः स्वगृह (आधार स्थल) मूलाधार में प्रवेश करती है। यह क्रिया सतत चलती रहती है। शक्ति की इस आवागमन रूप क्रिया पर ध्यान केन्द्रित कर इसमें अपने मन को विलीन (वृत्ति शून्य) कर दे। मन के विलीन होने पर (विचार शून्य ध्यान चित्त में) सभी मन्त्रों को प्रकाशित करने वाली (दीप ज्योति के समान) मन्त्र शिखा की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार अन्धकारपूर्ण गृह में कोई वस्तु दिखाई नहीं देती उसी प्रकार जब तक यह मन्त्र शिखा उत्पन्न नहीं होती तथा मन्त्र का साक्षात्कार नहीं होता, मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता। यह शिखोपदेश सभी तन्त्रशास्त्रों में गुप्त ही रखा गया है। सैकडों करोड़ वर्षों तक जप करने पर भी इस मन्त्र शिखा के जागृत हुए बिना मन्त्र-सिद्धि नहीं प्राप्त होती। अतः हे गिरिजे! तुम्हें

भी इसे गुप्त ही रखना चाहिए। हे कुलसुन्दरि! विद्या (मन्त्र) प्रायः सुप्ता, निद्रिता, विद्रावणरता आदि अनेकों दोषों से युक्त होती है। निशाचार, दिवाचार, सन्ध्याचार, पल्लव, दुर्लभ बीजों का संयोग, भाव संयोग (ध्यान) आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त कर इनके द्वारा साधक को स्वविद्या का प्रबोधन (जागरण-चैतन्य) करना चाहिए। इनके ज्ञान का समुचित माध्यम गुरु ही है।

।। निशाचारादि निरूपणम्।।

निशाचारे महेशानि विशेषं कथयामि ते।
वामदक्षिणनासायामुदये देवि तत्त्वतः।।१८१।।
स्वापकाले तु मन्त्राणां जपोऽनर्थफलप्रदः।
स्वापकालो वामवाहो जागरो दक्षिणावहः।।१८२।।
आग्नेयस्य मनोः सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययः।
प्रबोधकालं जानीयाद् मन्त्रयोरुभयोरपि।।१८३।।
कर्मणोर्वह्नितारााद्याः वियत्प्रायाः समीरिताः।
आग्नेय्योऽपि च सौम्याः स्युर्भूयिष्ठेन्द्वमृताक्षराः।।१८४।।
एवं पञ्चाशदाग्नेय्यो विद्याः सौम्याः प्रकीर्त्तिताः।
वामवाहो यदा वायुदीर्घाणां योजनं तदा।।१८५।।
दक्षिणस्यां यदा वायुस्तदा ह्रस्वो नियोजितः।
उभयस्थो यदा वायुस्तदा स्युरुभयात्मिकाः।।१८६।।
प्रणवं मातृकादेवी हृल्लेखेत्यमृतत्रयम्।
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिद्ध्यति।।१८७।।

हे महेशानि! अब मैं निशाचारादि को विशेष रूप से स्पष्ट करके कहता हूँ। हे देवि! प्राण वायु कभी बायीं नासिका से तो कभी दांयी नासिका (नासाछिद्र) से प्रवाहित होता है। जब वायु का प्रवाह वाम नासिका से होता है, तो इसे सुप्त काल (निशाचार) कहा जाता है। परन्तु जब श्वास का प्रवाह दक्षिण नासिका से होता है तो इसे जागृत काल (दिवाचार) कहते हैं। सुप्त काल में मन्त्र का जप अनर्थ (विपरीत) फलदायी अथवा व्यर्थ होता है। मन्त्र कर्म के अनुसार दो प्रकार के होते हैं। आग्नेय (क्रूर) मन्त्र तथा सौम्य मन्त्र। जब दक्षिण नासिका से स्वर (वायु) चलता है तो आग्नेय मन्त्र तथा इसके विपरीत जब वाम नासिका से स्वर चलता है तब सौम्य मन्त्र प्रबुद्ध (जाग्रत-चैतन्य) होते हैं। जब दोनों न्यासारन्ध्रों से स्वर चलता है तो उसे प्रबोध काल (सन्ध्याचार) कहते हैं। इस अवस्था में दोनों प्रकार के मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं।

जिन मन्त्रों में रेफ, 'ॐ' कार, क्षकार तथा हकार की बहुलता होती है, वे आग्नेय मन्त्र कहे जाते हैं। सौम्य मन्त्रों में 'सकार' तथा 'वकार' की अधिकता होती है। पचास की संख्या में जो मातृका वर्ण हैं, उन्हें सौम्य तथा आग्नेय दोनों कहा जाता है। मन्त्र-चैतन्य के लिए इन मातृका वर्णों का मन्त्र के साथ संयोग कर अथवा प्रत्येक मातृका वर्ण द्वारा क्रमशः प्रत्येक मन्त्र वर्ण को सम्पुटित करके जप किया जाता है।

जब वाम स्वर चल रहा हो तब मन्त्र अथवा मन्त्र वर्णों के साथ दीर्घ स्वर युक्त मातृका वर्णों का संयोग करना चाहिए। दक्षिण स्वर के प्रवहमान होने पर ह्रस्व स्वर युक्त मातृकाओं का संयोग करना चाहिए। जब दोनों स्वर चल रहे हों तो इच्छानुसार ह्रस्व अथवा दीर्घ कोई भी स्वर संयोग करना चाहिए।

प्रणव (ॐ), मातृका वर्ण तथा हल्लेखा (ह्रीं) इन तीनों को 'अमृतत्रय' कहा जाता है। इनमें से किसी के भी द्वारा मन्त्र अथवा मन्त्र वर्णों को सम्पुटित (अथवा संयुक्त) करके जप करने से दोष युक्त मन्त्र भी सिद्ध (चैतन्य) हो जाता है।

।। योषिद्-ध्यानेन मन्त्र सिद्धिः।।

एवं शृणु वरारोहे सर्वसारं मनूत्तमम्।
नियमः पुरुषैर्ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन।।१८८।।
यद्वा तद्वा येन तेन सर्वतः सर्वतोऽपि च।
योषितां ध्यानमात्रेण सिद्धयः स्युर्न संशयः।।१८९।।
यथाऽयस्कान्तमात्रेण गूढविद्धशिलंत्वयः।
स्वयमेव बहिर्याति यथा वा सौरतेजसा।।१९०।।
सूर्यकान्तः स्फुटं भाति यथा चन्द्रस्य रश्मिभिः।
चन्द्रकान्तो द्रावयति यथा वर्षासु वारिदैः।।१९१।।
जलसेकातितृप्ता भू रसपूर्णा प्रचक्षते।
क्षुधार्तः क्षीरपानेन यथा तृप्तोऽभिजायते।।१९२।।
पुष्पदर्शनमात्रेण गन्धर्वश्च सुखी भवेत्।
कुलपुष्पप्रदानेन यथा शक्तिः प्रतुष्यति।।१९३।।
गुरुसेवैकमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यथा।
महापद्मवनं ध्यात्वा यथा सिद्धिश्वरो भवेत्।।१९४।।
त्रिपुराध्यानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिर्यथा भवेत्।
महादुर्गाप्रसादेन यथा सिद्धीश्वरो भवेत्।।१९५।।
युवतीध्यानमात्रेण यथा कुलपतिर्भवेत्।
गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते यथा।।१९६।।

तथाकर्षणमात्रेण शिव एव प्रजायते।
कामाख्या योनिपूजायां यथा तुष्यति भैरवि॥१९७॥
योषिच्चिन्तनमात्रेण तथैव वरदायिनी।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेद्(द्वि?नि)जकौलिकीम्॥१९८॥
अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते।
अनेनैव क्रमेणैव यः करोति क्रियां शुभाम्॥१९९॥
तस्य वंशे महेशानि बृहस्पतिसमः पुमान्।
जायते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं सुरार्चिते॥२००॥
एकदा नारदं प्राप्य गौरी सर्वसुखान्विता।
पप्रच्छ मधुरां भाषां शङ्करान्वेषणे रता॥२०१॥
देवर्षिरब्रवीद् वाक्यं शृणु हे नगनन्दिनि।
ताराप्रयोगमेतं हि येन सिद्धिर्भविष्यति॥२०२॥

हे वरारोहे! अब मन्त्र चैतन्य (सिद्धि) के लिए किये जाने वाले सभी उपायों के सार रूप उपाय को सुनो। इस नियम (उपाय) का ज्ञान केवल पुरुषों के लिए ही प्राप्तव्य है। स्त्रियों के लिए इसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जिस किसी भी साधक को जो कोई भी मन्त्र सिद्ध करना हो, वह सब प्रकार से स्त्री के ध्यान (करते हुए मन्त्र को जप करने) मात्र से ही निःसन्देह सिद्ध हो जाता है। जैसे चुम्बक के आकर्षण मात्र से शिलाओं में गुप्त रूप में बिद्ध लोहा स्वतः बाहर आ जाता है, सूर्य के तेज से सूर्यकान्त मणि प्रकाशित होने लगता है, चन्द्र रश्मियों द्वारा जैसे चन्द्रकान्त मणि द्रवित होने लगती है, वर्षाकाल में जैसे बादलों द्वारा जल-सिञ्चन करने से पृथिवी तृप्त तथा रसपूण दिखाई देती है, भूख से पीड़ित मनुष्य दुग्धपान करने से जिस प्रकार तृप्त (सन्तुष्ट-शान्त) हो जाता है, पुष्प (रज अथवा रजस्वला स्त्री) दर्शन मात्र से जैसे गन्धर्व गण प्रसन्न हो जाते हैं, कुल पुष्प (स्त्री-रज) प्रदान (द्वारा पूजन) करने से जैसे शक्ति (देवी) सन्तुष्ट होती है, गुरु की केवल सेवा करने से ही मन्त्र की जैसे सिद्धि हो जाती है, षट् चक्रस्थ पद्मों (अथवा सहस्रदल पद्म) का ध्यान करने से जैसे साधक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है, जिस प्रकार महात्रिपुरसुन्दरी के ध्यान (स्मरण) मात्र से साधक भुक्ति तथा मुक्ति दोनों का अधिकारी हो जाता है, महादुर्गा की कृपा प्रसाद मात्र से मनुष्य सिद्धीश्वर हो जाता है, युवती के ध्यान मात्र से जैसे साधारण कौल साधक कौलाधीश हो जाता है तथा 'गंगा-गंगा' इस प्रकार केवल स्मरण (जप) से ही मनुष्य जैसे सभी पापों से मुक्त हो जाता है वैसे ही स्त्री-आकर्षण (ध्यान) मात्र से ही साधक शिव-तुल्य ही हो जाता है।

हे भैरवि! (स्त्री) योनि-पूजा से जिस प्रकार कामाख्या सन्तुष्ट (प्रसन्न) होती है उसी प्रकार स्त्री का मात्र चिन्तन करने वाले साधक के प्रति वह वरदायिनी भी हो जाती है। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नशील होकर साधक स्वशक्ति (स्त्री) को कुल-मार्ग की दीक्षा प्रदान करे। दीक्षा रहित शक्ति के साथ साधना करने (अथवा रहने) से सिद्धियों की हानि होती है।

हे महेशानि! इस क्रम से जो मनुष्य साधना करता है, उसके वंश में उत्पन्न होने वाले सभी पुरुष वृहस्पति के समान (ज्ञानी तथा पूज्य) होते हैं। हे सुरार्चिते! मेरा यह कथन शत प्रतिशत सत्य है, इसमें किसी भी प्रकार के संशय की सम्भावना नहीं है।

एक बार सभी प्रकार के सुखों से सम्पन्न भगवती गौरी शंकर को ढूंढते-ढूंढते ऋषि नारद के पास पहुँच कर उनसे कुछ पूछा (प्रश्न किया)। प्रत्युत्तर में नारद ने जो कुछ कहा, हे पार्वति! उसे सुनो! इससे तारा की साधना में सिद्धि प्राप्त होगी।

।। श्री भ्रष्ट-इन्द्रेण वृहस्पतिं प्रति गमनम्।।

नारद उवाच

एकदेन्द्रः श्रिया भ्रष्टो विहाय चामरावतीम्।
हिरण्याक्षपुरेऽगच्छत् सहितो देवसैन्यकैः।।२०३।।
देवारिभिः समं तत्र विरोधः सुमहानभूत्।
पराजितो देवराजो बृहस्पतिपुरोधसः।।२०४।।
आश्रमे च पुनर्गत्वा विमृश्य विविधं शिवे।
उवाच सादरं वाक्यं गुरुं प्राप्य जगद्गुरुम्।।२०५।।

एक बार इन्द्र अमरावती (स्वर्ग) को छोड़कर (वहाँ से निकलकर) देव-सेना के साथ हिरण्याक्ष पुर गये। वहाँ देव शत्रुओं दैत्यों के साथ उनका महान युद्ध हुआ। उस युद्ध में दैत्यों से पराजित तथा स्वर्गीय श्री सम्पदा से रहित (प्रभावहीन) हुए देवराज इन्द्र देवताओं के पुरोहित (तथा गुरु) वृहस्पति के आश्रम में जाकर, अनेकों प्रकार से सोच विचारकर जगद्गुरु रूप स्वगुरु वृहस्पति से आदर सहित (यह) वचन कहा।

।।इन्द्रेण वृहस्पतिं प्रति पुनः इन्द्रत्वं प्राप्त्यर्थोपायरूप-प्रश्नम्।।

इन्द्र उवाच

विश्वेषां पावनस्त्वं हि जगत्यस्मिंश्चराचरे।
व्रजामि शरणं देव रक्ष मां भगवन् यतः।।२०६।।
उपायं ब्रूहि देवेश इन्द्रत्वं जायते यतः।
केन रूपेण देवेश मम त्राणं भविष्यति।।२०७।।

इस चराचर (जड़-चेतन रूप) जगत में, हे देव! एक आप ही सभी वैश्विक प्राणियों को पवित्र (शोक से मुक्त) करने वाले हैं। हे भगवन्! मैं क्योंकि आपके शरण में आया हूँ, अतः आप मेरी (हमारी) रक्षा करें। हे देवेश! मुझे किस प्रकार से इस विपत्ति से मुक्ति मिलेगी। जिस उपाय से मुझे पुनः इन्द्रत्व (अमरावती-स्वर्ग का अधिपत्व) प्राप्त हो, कृपया उसे बतायें।

।। नील साधनमकरेण इन्द्रत्व हानिः धर्मेण श्री वर्धनञ्च।।

बृहस्पतिरुवाच

देवेन्द्र शृणु मद्वाक्यं येन त्राणं भविष्यति।
हिरण्याक्षपुरे देव दैत्याः सर्वारिमर्दकाः।।२०८।।
तेषां पराभवं कर्तुं न क्षमो जगतीतले।
कारणं शृणु देवेश येनैव शृणु मद्वचः।।२०९।।
पुरा त्रेतायुगे राजन्नकरोर्नीलसाधनम्।
तेन पुण्यफलेनैव इन्द्रत्वं गतवान् प्रिय।।२१०।।
कालीतारासाधनं च नानारूपेणवि(स्तरं?स्तृतम्)।
अकरोद् दैत्यपुत्रोऽसौ तस्मात् पुण्यफलादिदम्।।२११।।
येनोपायेन देवेश इन्द्रत्वं प्राप्स्यसि स्वयम्।
तस्योपायं महाराज सावधानोऽवधारय।।२१२।।
धर्मेण वर्धते नित्यमधर्मान्न विवर्धते।
येन रूपेण दैत्योऽसौ धर्मं संत्यजति द्रुतम्।।२१३।।
तमुपायं जगद्वन्द्य(ब्रूहि?शृणु)सत्यं वचो मम।
वृद्धब्राह्मणरूपेण वञ्चयामि सुरेश्वर।।२१४।।

हे देवेन्द्र! उस साधन (उपाय) को सुनो, जिससे तुम्हारी रक्षा (तथा इस सङ्कट से मुक्ति) होगी। हिरण्याक्ष पुर में (रहने वाले) सभी दैत्य (देवरूप सम्पूर्ण) शत्रुओं का दमन करने वाले हैं। इस समय उन्हें पराजित (प्रभावहीन) करने में समर्थ कोई भी प्राणी संसार में नहीं है। ऐसा क्यों है, इसके कारण के रूप में मेरे वचनों को सुनो।

इससे पहले (किसी) त्रेतायुग में, हे राजन्! दैत्यों ने भगवती नील सरस्वती (तारा) की साधना (विधिवत आराधना) की थी। इसी पुण्य के फलस्वरुप उन्हें इन्द्रत्व की प्राप्ति हुई है। इन सभी दिति पुत्रों (दैत्यों) ने अनेकों प्रकार से विस्तारपूवक विधि-विधानों सहित काली तथा तारा की साधना की थी, इसी पुण्य के फलस्वरूप उन्हें इसकी (स्वर्ग की) प्राप्ति हुई है। अब हे देवेश! आपको

जिस उपाय से पुनः इन्द्र पद की प्राप्ति हो सकती है, उस साधन को सावधान होकर सुनो तथा चित्त में धारण करो। धर्म (करने) से ही सर्वदा (सभी प्राणियों की सब प्रकार से) वृद्धि उन्नति होती है, अधर्म से प्रगति नहीं होती। ये सभी दैत्य जिस प्रकार से शीघ्र ही धर्म का परित्याग कर दें, हे जगद्वन्द्य इन्द्र! तुम मेरे द्वारा कथित उस उपाय को सुनो। हे सुरेश्वर! मैं वृद्ध ब्राह्मण के रूप में (उनके समीप जाकर) उन्हें छलूँगा। मेरे इस वचन को तुम सत्य मानो।

।। वृहस्पतिना हिरण्याक्षपुर-गमनं अध्यापक वृत्त्यर्थे निवेदनञ्च।।

ततो विप्रो महान् भूत्वा वृद्धः पण्डितपावनः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो हिरक्ष्याक्षपुरं ययौ।।२१५।।
शृणु वत्स महद्वाक्यं येन भद्रं भविष्यति।
अहं तु सर्वशास्त्रज्ञो निर्धनत्वादिहागतः।।२१६।।
वृत्तिं दत्त्वाध्यापकत्वमिति भिक्षा कृता मया।
अध्यापकाय यो वृत्तिं दत्त्वाध्यापयति द्विजान्।।२१७।।
किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थमिच्छता।
पुण्यात् पुण्यतरं पुण्यं जानीहि सर्वसंमतम्।।२१८।।
तथाऽस्त्विति वचः (श्रु?कृ)त्वा चाददद् वृत्तिमुत्तमाम्।
अध्यापयामास द्विजान् दत्त्वा वृत्तिं मनोरमाम्।।२१९।।

तत्पश्चात् सर्वशास्त्रों के वास्तविक अर्थ एवं तत्वों के ज्ञाता तथा पण्डितों (विवेकशील विद्वानों) में आदरणीय वृद्ध ब्राह्मण के रूप में देवगुरु वृहस्पति हिरण्याक्षपुर में गये। (वहाँ पहुँचकर उन्होंने दैत्य राज से कहा) हे वत्स! मैं तुमसे जो कहता हूँ, उसे सुनो। इससे (अवश्य ही) तुम्हारा कल्याण होगा। मैं सभी शास्त्रों को जानने वाला हूँ, अपनी निर्धनता के कारण ही यहाँ (आपके पास) आया हूँ। मुझे भिक्षा के रूप में अध्यापक की वृत्ति प्रदान कर आप मुझ पर कृपा करें। जो व्यक्ति किसी विद्वान ब्राह्मण को अध्यापक-वृत्ति प्रदान कर ब्राह्मणों के अध्ययन की व्यवस्था करता है, उसे महान धर्म की प्राप्ति होती है। आप भी धर्म कामार्थ की अभिलाषा रखते हैं, अतः मुझे अध्यापक वृत्ति क्यों नहीं प्रदान करते। सभी धर्मज्ञों के विचार से यह कार्य समस्त पुण्यों से श्रेष्ठ पुण्य वाला है। वृद्ध ब्राह्मण रूप वृहस्पति के इस प्रकार कहने पर, दैत्य राज ने 'तथास्तु' (जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही हो) कहकर उन्हें श्रेष्ठ वृत्ति (नौकरी-सेवा) प्रदान की तथा कहा कि आप ब्राह्मणों को पढ़ायें, मैने आपके मनोनुकूल वृत्ति आपको प्रदान की।

॥ स्वकुतर्कैः वृहस्पतिना दैत्यराजं मोहनम्॥

कुतर्कः शतशो देवि कृतस्तेन महीयसा।
कुतर्केण महादेवि कुतर्कोऽयं महानपि॥२२०॥
मोहितो दैत्यराजेन्द्रो येन दानवपुङ्गवः।
कृते कर्मणि भूमिस्थैः स्वर्गे तृप्तिः कथं भवेत्॥२२१॥
तारिणी च महाकाली भवानी च महेश्वरी।
तासां पूजा वृथा देव किमर्थं क्रियतेऽशुभा॥२२२॥
एवं बहुविधेनैव कुतर्केण महानपि।
मोहितो दैत्यराजोऽसौ धर्मं त्यक्त्वा महेश्व(री?रि)॥२२३॥
अधर्मनिरताः सर्वे धर्मं त्यक्त्वा महेश्वरि।
कालक्रमेण तेषां तु आपदः परमाः शुभे॥२२४॥

कुतर्क महारथी इस ब्राह्मण (वृहस्पति) ने धर्माचरण के विरुद्ध सैकड़ों (कु) तर्क युक्त वचनों को उपस्थित कर अपने कुतर्कों से दानव श्रेष्ठ दैत्यराज को मोहित (बुद्धि को भ्रमित) कर दिया। उस ब्राह्मण ने कहा - पृथिवी पर स्थित (प्राणियों द्वारा किये गये) कर्मों से भला स्वर्ग में तृप्ति (आनन्द भोग) कैसे प्राप्त हो सकती है। महाकाली, तारा, भवानी, महेश्वरी इन सबकी पूजा करना व्यर्थ है। आप इन अशुभ देवियों की अशुभ क्रिया रूप पूजा क्यों किसलिए करते हैं। इस प्रकार अनेकों भाँति से बड़े-बड़े कुतर्कों के द्वारा मोहित हुआ (बुद्धि-भ्रमित-मूढ़ता को प्राप्त) वह दैत्य राज धर्म का परित्याग कर अधर्म कार्य करने में संलग्न हो गया। फलस्वरूप सभी दैत्यों ने धर्म का त्याग कर दिया। कुछ कालोपरान्त हे महेश्वरि! शुभे! वे सभी (अपने अधर्माचरण के कारण) अनेकों बड़ी-बड़ी विपत्तियों से ग्रसित हो गये।

॥ वृहस्पतिना देवराजं प्रति गमनं तारण्यादि पूजा-विधान-कथनञ्च॥

ततो बृहस्पतिर्देवो देवराजगृहं ययौ।
इन्द्राय सर्वमाचख्यौ दैत्यानां कर्मबन्धनम्॥२२५॥
शृणु चैकाग्रमनसा येन ते कुशलं महत्।
जायते नात्र संदेहो देवराज जगत्पते॥२२६॥
तारिणीं कालिकां चैवान्नपूर्णां भैरवीं पराम्।
संपूज्य विधिवद्भक्तया सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥२२७॥
पूजाविधानं देवेश श्रोतुमर्हस्यसंशयम्।
प्राङ्गने मध्यमे रात्रौ फाल्गुने मासि सुन्दर॥२२८॥
चतुर्दिक्षु महेशान कदलीस्तम्भमुत्तमम्।
आत्म(ने?नो)ऽग्रे च देवेश मण्डपं कारय प्रिय॥२२९॥

चूताश्वत्थवटैर्देवच्छन्नं कुर्याच्च मण्डपम्।
कुमारीवेष्टितं कुर्याद् मण्डपं सर्वमोहनम्॥२३०॥
तारामूर्तिं तथा कालीमूर्तिं वा देवराजक।
सर्वकार्यप्रदां देव तां कुरुष्व महेश्वर॥२३१॥

तत्पश्चात् देव गुरु वृहस्पति देवराज इन्द्र के निवास पर जाकर उनसे स्वयं के द्वारा किये सभी कर्मों तथा दैत्यों के द्वारा अधर्म रूप कर्म बन्धनों में पड़कर किये जाने वाले कार्यों का विस्तार सहित वर्णन किया। पुनः बोले-मेरे वचनों को एकाग्रचित्त होकर सुनो, जिससे तुम्हारा महान मङ्गल होगा। हे जगत्पते! देवराज! मेरी किसी भी बात पर शंका मत करना।

तारिणी (तारा), कालिका, अन्नपूर्णा और भैरवी इन पराशक्ति रूप देवताओं का भक्ति सहित विधिवत् पूजन करने से सब प्रकार की सिद्धि होती (सफलता प्राप्त होती) है। इस पूजा विधान को श्रवण करने तथा उसको विधि वत सम्पादित करने में निःसन्देह तुम सर्वथा समर्थ (योग्य अधिकारी) हो।

सुन्दर (सर्वसिद्धिदायक) फाल्गुन मास में (किसी शुभ तिथि की) रात्रि में गृह के प्राङ्गण (आंगन) में चारों ओर उत्तम कदली स्तम्भ का रोपण कर अपने सामने ही सुन्दर मण्डप का आप निर्माण करायें। आम, पीपल, बरगद आदि देववृक्षों के पल्लवों से मण्डप को सज्जित कर 'कुमारी' संज्ञक पौधों द्वारा उसे चारों ओर से घेर कर सर्वमोहक रूप से अलंकृत करें। सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाली तारा तथा (अथवा) काली की मूर्ति का भी हे देवराज! आप निर्माण करायें।

॥ संक्षिप्त पूजन-जपादि विधानम्॥

अन्नदामूर्तिमेतां हि कुरु वा सुरवन्दित।
वटपत्रे महादेव्यै बलिं यत्नेन दापयेत्॥२३२॥
आसनं कम्बलं दद्यात् स्वागतं मधुनिर्मितम्।
पाद्यं तु पयसा दद्यादर्घ्यं दद्यात् कुशेन च॥२३३॥
मधुपर्कं घृतेनैव जलेनाचमनीयकम्।
तक्रेण स्नानमाचर्य्य वसनं लोहितं स्मृतम्॥२३४॥
रतजाभरणं दद्यात् सर्वदेवमनोहरम्।
तण्डुलेन बिना देव्यै नैवेद्यं दापयेत् प्रिय॥२३५॥
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं दद्याद् मनोहरम्।
रक्तचन्दनबीजैश्च जपेदष्टसहस्रकम्॥२३६॥
शुक्लप्रतिपदारभ्यमष्टम्यां च समापयेत्।
बलिं दद्याद् महादेव्यै छागेन महिषेण वा॥२३७॥

अन्नं मत्स्यं तथा मांसं घृतं परमशोभनम्।
पिष्टकं परमं द्रव्यं दद्याद् देव्यै मनोहरम्।।२३८।।
होमयेद् देवदेवेश यथाशक्ति विधानतः।

अथवा हे सुरवन्दित इन्द्र! अन्नदा की मूर्ति निर्मित करायें। तत्पश्चात् इनकी स्थापना - प्राण प्रतिष्ठादि करके पूजन करें। महादेवी को वट-पत्र पर बलि प्रदान करें। देवी का स्वागत करके उन्हें आसन के रूप में कम्बल अर्पित करें। दुग्ध (जल) सहित पाद्य तथा कुश सहित जल से अर्घ्य प्रदान करें। घृत सहित मधुपर्क देकर जल से आचमन प्रदान करें। पहले तक्र (मट्ठे) से पुनः शुद्ध जल से स्नान कराकर लाल वस्त्र प्रदान करें। सभी देवों के मन को आकर्षित करने वाला रजत निर्मित आभूषण देवी को अर्पित करे। चावल के अतिरिक्त अन्य अन्नों से निर्मित भक्ष्य तथा चर्व्य चोष्य, लेह्य तथा पेय रूप मनोहारी रुचिकर स्वादिष्ट नैवेद्य देवी को समर्पित करें। पूजनादि के पश्चात् लाल चन्दन की मणियों से निर्मित माला द्वारा आठ हजार बार मन्त्र जप करें। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ कर अष्टमी तक प्रतिदिन इसी प्रकार पूजन-जप करते हुए साधना का समापन करें। इसके बाद बकरे अथवा भैंसे का देवी को बलि प्रदान करे तथा अन्न, मत्स्य, मांस, घृत, अति सुन्दर सुस्वादु पिष्टक तथा परम प्रिय मनोहर मद्य भी देवी को बलि रूप से प्रदान करें। तदुपरान्त विधिपूर्वक जप का दशांश अथवा यथाशक्ति हवन करें।

।। कुमारी पूजनम्।।

श्री भैरव उवाच

कुमारीं पूजयेद् यत्नैर्द्रव्यैर्बहुविधैरपि।।२३९।।
होमादिकं तु सकलं कुमारीपूजनं बिना।
परिपूर्णफलं नैव सकलं पूजनं भवेत्।।२४०।।
ततः सकलसिद्ध्यर्थे कुमारीं तु प्रपूजयेत्।
आनयेत् कन्यकां योग्यां कुमारीं तु सुवासिनीम्।।२४१।।
सुवासिनीं मदप्रौढां संशयं त्यज सुन्दरि।
कथयामि न सन्देहः कुमारीपूजनं शुभम्।।२४२।।
यस्याः पूजनमात्रेण त्रैलोक्यपूजनं भवेत्।
कुमारी च महेशानि त्रिधा मूर्तिर्व्यवस्थिता।।२४३।।
परापरात्मिका चैव तृतीया च परापरा।
यत्र काले न किञ्चित् स्याद् देवासुरमहोरगाः।।२४४।।

त्रैलोक्यं न त्वमहं तदा जाता कुमारिका।
आद्यसृष्टिकरीं या तु प्रत्यक्षा साभवत् त्रिधा॥२४५॥
उमाकला तु सा जातासृष्टिरूपा भवान्तरे।

होम बलि आदि क्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् सर्वप्रकार से प्रयत्न करके अनेकों प्रकार के पदार्थों द्वारा विविध विधि से कुमारी कन्याओं का पूजन करना चाहिए। कुमारी पूजन के बिना, देवी की साधक द्वारा सम्पन्न की गई समस्त पूजा-जप-होमादि कर्म अपना परिपूर्ण फल देने में असमर्थ होते हैं। अतः कर्म की पूर्ण सिद्धि के लिए (सम्पूर्णता से फल प्राप्ति हेतु) कुमारी पूजन विशेष रूप से करना चाहिए।

कुमारी पूजन के लिए साधक को शास्त्र के अनुसार विहित योग्य कुमारी कन्याओं तथा सुवासिनी स्त्रियों को आमन्त्रित करना चाहिए। सुवासिनी स्त्री यौवन मद से परिपूर्ण तथा संशय (संकोच) रहित होनी चाहिए। हे सुन्दरि! मैं शुभदायक कुमारी पूजन का निःसन्देह (अब) वर्णन करता हूँ।

जिसके एक मात्र पूजन से ही त्रिलोकी (के सभी प्राणियों) का पूजन हो जाता है, वह कुमारी, हे महेशानि! तीन प्रकार का स्वरूप धारण करके स्थित है। पहली मूर्ति 'परा', द्वितीय मूर्ति 'परात्मिका' तथा तीसरी मूर्ति 'परापरा' कही जाती है। विश्व सृष्टि से पूर्व जिस समय कुछ भी नहीं था, न तुम थी, न मैं था, न त्रिलोकी थी और न ही देव-असुर-नाग (मनुष्य-जीव-जन्तु आदि प्राणी) थे। उस समय केवल कुमारी का प्राकट्य हुआ था। विश्व सृष्टि करने वाली वह आद्या शक्ति प्रत्यक्ष रूप से तीन रूपों में विभक्त हो गयी। उसकी सृष्टि रूपा कला इस संसार में उमा नाम प्रसिद्ध हुई।

॥अवस्था भेदेन कन्यानां संज्ञाः॥

एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती॥२४६॥
त्रिवर्षा च त्रिधा मूर्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका।
सुभगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा तु उमा भवेत्॥२४७॥
सप्तभिर्मालिनी चैव अष्टवर्षा च कुब्जिका।
नवभिः कालसङ्कर्षा दशभिश्चापराजिता॥२४८॥
एकादशे तु रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी।
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पीठनायिका॥२४९॥
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चर्चिका मता।
एवं क्रमेण संपूज्या यावत्पुष्पं न जायते॥२५०॥
प्रतिपदादि पूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत्।
महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके॥२५१॥

एक वर्ष की कन्या सन्ध्या, द्विवर्षीया सरस्वती, त्रिवर्षीया (उपर्युक्त) त्रिमूर्ति (त्रिधा), चतुर्वर्षीया कालिका, पञ्चवर्षीया सुभगा, षड्वर्षीया उमा, सप्तवर्षीया मालिनी, अष्ट वर्षीया कुब्जिका, कालसङ्कर्षा नववर्षिणी, अपराजिता दश वर्षिणी, एकादश वर्षिणी रुद्राणी, द्वादशवर्षिणी भैरवी, त्रयोदशवार्षिकी महालक्ष्मी, द्विसप्त (चतुर्दश) वार्षिकी पीठ (कुल) नायिका, क्षेत्रज्ञा पञ्चदश वार्षिकी तथा षोडश वर्षीया कन्या चर्चिका (चण्डिका) के नाम से मानी (कही) जाती हैं। जब तक कन्या रजस्वला नहीं होती, इसी क्रम (तथा नाम) से पूजनीय होती है। प्रतिपदा से पूजन प्रारम्भ कर एक-एक कर आयु वृद्धि क्रम से (यथा प्रतिपदा को एक वर्षीया कन्या, द्वितीय को दो वर्षीया कन्या, तृतीया को तीन वर्षीया कन्या इसी प्रकार वृद्धि करते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह वर्षीया कन्या तथा अमावस्या को सोलह वर्षीया कन्या का) पूजन करना चाहिए। सभी महापर्वों (नवरात्रि आदि) तथा विशेष रूप से पवित्रक पर्व को सभी कन्याओं का पूजन करना चाहिए।

महानवम्यां देवेशि कुमारीं च प्रपूजयेत्।
पिङ्गलां पूजयेद् यस्तु षोडशे चैकभक्तिमान्॥२५२॥
भक्तितः पूजयित्वा तु सर्वसंपत्तिमान् भवेत्।
पूजयेत् कुलविद्यानामेकैकां कुलभैरवीम्॥२५३॥
एवं प्रणवयोगेन चैतन्य तत्त्वमर्चयेत्।
प्रणवस्य विशेषं हि जानीहि नगनन्दिनि॥२५४॥
यज्ज्ञानात् साधकाः सर्वे भवन्ति मुक्तिभागिनः।
योनिर्बिन्दुमती चैव मायाबीजं ततः परम्॥२५५॥
ततो लक्ष्मीं समुच्चार्य कूर्चं मायां महेश्वरि।
प्रणवाः पञ्च विख्याताः सर्वपापहराः शुभे॥२५६॥
भैरवीबीजमाख्यातं प्रेतबीजं मनोहरम्।
एकं द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव सप्तभिर्वाष्टभिः पुनः॥२५७॥
महाभयानि दुर्भिक्षाद्युत्पातानि कुलेश्वरि।
दुःस्वप्नमपमृत्युश्च अन्ये ये ये समुद्भवाः॥२५८॥
कुमारीपूजनादेव न तस्य प्रभवन्ति हि।
नित्यक्रमेण देवेशि पूजयेद्विधिपूर्वकम्॥२५९॥
घ्नन्ति विघ्नान् पूजितास्तास्तथा शत्रून् महोत्कटान्।
व्याधयः सर्वरिष्टानि दुर्निमित्तान्यसंशयम्॥२६०॥
ग्रहा यक्षाः क्षयं यान्ति भूतवेतालपन्नगाः।
असुरा गुह्यकाः प्रोक्ता योगिनी गुह्यडाकिनी॥२६१॥

अणिमादीनि वेतालभैरवादीनि चैव हि।
तुष्यन्ति दिव्यवेतालो भवेत् कुमारिकार्चनात्॥२६२॥

हे देवि! महानवमी को विशेष रूप से कन्याओं का पूजन करना चाहिए। जो मनुष्य भगवती का अनन्य भक्त होते हुए षोडश वर्षीया (अथवा सोलहवीं की संख्या में अथवा सोलह कन्याओं के साथ में ही एक) गणिका (वेश्या) का भी भक्ति सहित पूजन करता है, वह सभी प्रकार की लौकिक सम्पदाओं का स्वामी हो जाता है। साधक को कुल विद्याओं का एक-एक कुल भैरवी के रूप में पूजन करना चाहिए। पञ्च प्रणवों के योग तथा चैतन्य मन्त्र के द्वारा ही सभी अर्चन करे। हे पार्वति! इन प्रणवों के विषय में विशेष रूप से जानो (सुनो)। इसके ज्ञान से सभी साधक मोक्ष के भागी हो जाते हैं।

बिन्दु युक्त योनि अर्थात् 'ऐं', माया बीज 'ह्रीं', लक्ष्मी बीज 'श्रीं', कूर्च बीज 'हूँ' तथा पुनः माया 'ह्रीं' ये **(ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं)** पञ्च प्रणव सभी पापों को दूर करने वाले कहे जाते हैं। (तन्त्रान्तरानुसार पञ्च प्रणवों का क्रम इस प्रकार है - **ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं हूँ**)। भैरवी बीज **'सौः'** को चैतन्य मन्त्र कहा जाता है। कुछ तन्त्रों के अनुसार प्रेत बीज **'ह्सौः'** को पाँचवा प्रणव माना जाता है। जो साधक एक, दो, तीन, सात अथवा (ॐ सहित) आठ बीजों के (संयोग) द्वारा कुमारी पूजन करता है (अथवा इनका जप करता है) उसके ऊपर महाभयों, दुर्भिक्षादि उपद्रवों, दुःस्वप्नों, अपमृत्यु तथा अन्य भी उत्पन्न हुए अनेकों सङ्कटों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। नित्य तिथि क्रमानुसार जो साधक विधिपूर्वक कुमारियों का अर्चन करता है वह अपने सभी विघ्नों, प्रबल शत्रुओं, व्याधियों (रोगों), सभी अशुभों (दोषों) तथा अपशकुनों का निःसन्देह ही विनाश कर देता है। उसका अनिष्ट करने वाले सभी ग्रह (दोष) तथा यक्ष विनष्ट हो जाते हैं। भूत, वेताल, सर्प, असुर, गुह्यक, योगिनी, गुह्य डाकिनी, अणिमादि सिद्धियाँ, वेताल भैरव आदि सभी कुमारी अर्चक पर प्रसन्न रहते हैं। कुमारी अर्चना करने वाला साधक दिव्य-वेताल (सिद्ध) के समान हो जाता है।

॥कन्या-पूजने पञ्चाङ्ग-न्यासं-वक्त्र न्यासं-उपचारादि अर्पणम्॥

ऐंकारेण जलं देयं ह्रींकारात् पादशोधनम्।
श्रींकारेण महेशानि अर्घ्यं दद्याद् महेश्वरि॥२६३॥
कूर्चबीजेन देवेशि दद्याच्चन्दनमुत्तमम्।
शक्तिबीजेन पुष्पाणि सर्वैः धूपांश्च दापयेत्॥२६४॥
वाग्भवं च ततो मायां सुन्दरीति ततः परम्।
ङेऽन्तं पश्चिमवक्त्रं च हृदन्तेन न्यसेत् प्रि(य?ये)॥२६५॥

योनियुक्तः शान्तवर्णो बिन्दुयुक्तः सुरार्चिते।
कुमारिके पदं प्रोच्य शिरसे वह्निवल्लभा।।२६६।।
वेदादिं च ततो मायां स्वबीजं तदनन्तरम्।
शिखायै वषडित्युक्तं भैरवप्राणवन्दिते।।२६७।।
प्रणवं काकिनी चैव बिन्दुयुक्तां सनातनीम्।
वागीश्वरी-पदं चोक्त्वा कवचाय हुमीरितम्।।२६८।।
मायाबीजं समुच्चार्य अस्त्राय फडिति क्रमात्।
वाग्भवं च सिद्धि-पदं जयाय तदनन्तरम्।।२६९।।
पूर्ववक्त्राय देवेशि हृदन्तेन प्रपूजयेत्।
पुनर्वाग्भवबीजं ङेयुतमुत्तरवक्त्रकम्।।२७०।।
नमोन्तेन महादेवि पूजयेत् सुरसुन्दरीम्।
प्रणवं च महेशानि कालिके-पदमन्तरम्।।२७१।।
दक्षवक्त्राय तत्पश्चाद् नमोन्तं भैरवप्रिये।

[उपर्युक्त श्लोक अव्यवस्थित होने के साथ ही अस्पष्ट भावों से युक्त है। इसके अतिरिक्त इनमें वर्णित क्रिया-क्रम भी अव्यवस्थित है। अतः अन्य ग्रन्थों के आधार इन श्लोकों में वर्णित विधान को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।]

पहले कन्याओं का विधिवत् पूजन करें। **'ऐं कार'** से (ऐं आसनं प्रयच्छामि नमः बोलते हुए) आसन प्रदान करें, 'ह्रीं' से पाद्य अर्पित करें, 'श्रीं' से अर्घ्य दें, 'हूँ' से चन्दनादि अर्पित करे, 'ह्रीं' से पुष्पाञ्जलि अर्पित करे तथा चैतन्य मन्त्र 'सौः' से धूपदीपादि समर्पित करे। इसके बाद कन्याओं के अङ्गो में न्यास करे।

।।पञ्चाङ्ग-न्यास।।

ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः कुल कुमारिके हृदयाय नमः।
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः कुल नायिके शिरसे स्वाहा।
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः कुल भैरवि शिखायै वषट्।
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः कुल वागीश्वरि कवचाय हुम्।
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः कुल पालिके नेत्रत्रयाय वौषट्।

।।वक्त्र-न्यास।।

ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः पूर्व वक्त्राय सिद्धाजयायै नमः। (पूर्ववक्त्रे)
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः उत्तर वक्त्राय जयायै नमः। (उत्तरवक्त्रे)
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः पश्चिम वक्त्राय कुब्जिकायै नमः। (पश्चिमवक्त्रे)
ऐं ह्रीं श्रीं हूँ ह्रीं सौः दक्षिण वक्त्राय पञ्चमी कालिकायै नमः।(दक्षिणवक्त्रे)

वाग्भवेन रिपुक्षोभं मायाबीजे गुणाष्टकम्॥२७२॥
श्रीबीजेन श्रियो लाभो हूंबीजेनारिसंक्षयः।
भैरवेण तु बीजेन खड्गनामपराजितम्॥२७३॥
कुमारिकाष्टकं वाथ सदा त्वं च कुमारिका।
अष्टोत्तरशतं वापि एकां कन्यां प्रपूजयेत्॥२७४॥
पूजिताः पूजयन्त्येता निर्दहन्त्यवमानिताः।
कुमारी योगिनी साक्षात् कुमारी सर्वदेवताः॥२७५॥
भूर्भुवर्मूर्तिकां देवी कुमारी च प्रपूजिता।
असुरा दुष्टनागाश्च ये ये दुष्टग्रहा अपि॥२७६॥
भूतवेतालगन्धर्व-डाकिनीयक्षराक्षसाः ।
हृदयं देवताः सर्वे भूर्भुवश्चैव भैरवि॥२७७॥
पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः॥२७८॥
ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च कुमारीं यः प्रपूजयेत्।
कालाग्निशिवपर्यन्तं तथा गौर्यादिसंस्थितिः॥२७९॥
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च भुवनानि चतुर्दश।
विधिना वै कुमारीं च भोजयेच्चैव भैरवीम्॥२८०॥
पाद्यमर्घ्यं तथा धूपं कुङ्कुमं चन्दनं तथा।
भक्तिभावेन संपूज्य सर्वं त(स्य?स्या)निवेद्येत॥२८१॥
प्रदक्षिणत्रयं कुर्याद् आदौ मध्ये तथान्ततः।
पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतस्वर्णमौक्तिकैः॥२८२॥

वाग्भव से (पूजन करने पर) शत्रु को क्षोभ, 'ह्रीं' से अष्ट गुणों (अथवा सिद्धियों) की प्राप्ति, 'श्रीं' से ऐश्वर्य की उपलब्धि, 'हूँ' से शत्रुनाश तथा भैरव बीज (ह्सौः) से पूजन करने पर खड्ग धारियों से (युद्ध में) अपराजिता की प्राप्ति होती है। साधक को स्वसामर्थ्य तथा उपलब्धता के अनुसार आठ कुमारियों का, यदि सम्भव हो तो एक सौ आठ कुमारियों का पूजन करना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो तो कम से कम एक कुमारी कन्या का पूजन अवश्य करना चाहिए। जो साधक इन कुमारियों का पूजन करता है, उसके सभी निन्दक शत्रु (अथवा अपयश-कलङ्क)भस्म हो जाते हैं।

कुमारी साक्षात् योगिनी, सर्वदेवता स्वरूपा, भूर्भुवः (स्व) मूर्ति रूपिणी तथा देवी रूपा है। जो साधक कुमारी पूजन करता है उसके ऊपर असुर, दुष्ट नाग, जो-जो दुष्ट ग्रह हैं वे सभी, भूत-वेताल-गन्धर्व, डाकिनी, यक्ष, राक्षस,

इष्ट देवता, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के सभी देवता, पृथिवी सहित सम्पूर्ण चराचर ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदा शिव ये सभी प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि कुमारी पूजन से सारे ब्रह्माण्ड का पूजन तथा सन्तुष्टि हो जाती है। कालाग्नि से शिव पर्यन्त देवता, गौरी आदि के लोकों में स्थित प्राणी (देवियों), सातों द्वीपों, समुद्रों तथा चौदहों भुवनों के प्राणी, ये सभी कुमारी को भोजन प्रदान करने से तृप्त हो जाते हैं। अतः भक्तिभाव सहित पाद्य-अर्घ्य - (पुष्प), चन्दन, कुङ्कुम, धूप-दीप-नैवेद्य आदि निवेदित कर कुमारिकाओं का पूजन करना चाहिए। पूजन के आदि, मध्य तथा अन्त में उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए तथा पूजनोपरान्त दक्षिणा सहित चाँदी-सोना-मोती आदि से निर्मित आभूषणों (सहित वस्त्र) प्रदान करना चाहिए।

।। कन्यादान-फलम्।।

विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्या विनश्यति।
गवां हत्या स्त्रिया हत्या सर्व पापं प्रणश्यति।।२८३।।
माता चैव पिता चैव भ्रातरश्च विशेषतः।
ये च यत्र पुनः सर्वे कन्यादानं प्रकल्पयेत्।।२८४।।
भुक्तिमुक्तिफलं तस्य सौभाग्यं सर्वसंपदः।
रुद्रलोके वसेद् नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः।।२८५।।
षष्टिकोटिसहस्राणि अश्वमेधफलं लभेत्।
एतत् फलं लभेद् मर्त्यः कन्यां यस्तु विवाहयेत्।।२८६।।
बालुकाः सागरे यावत् तावदब्दं महेश्वरि।
एकैकं कुलमुद्धृत्य सत्यकल्पे गतोऽपि च।।२८७।।
तावत् स भुङ्क्ते भोगांश्च यावद्भूमिदिवौकसः।
कन्यादानं महादानं सर्वदानेषु चोत्तमम्।।२८८।।
दौर्भाग्यं नश्यति क्षिप्रं सौभाग्यं च प्रवर्धते।
राजद्वारे लभेत् पूजां राजलक्ष्मीः स्थिरायते।।२८९।।
सर्वाः कुमारिकाश्चैव पूजयेद् भक्तिभावतः।
महाभये समुत्पन्ने यस्तु कन्यां प्रपूजयेत्।।२९०।।
तत्क्षणाल्लभते मोक्षं सत्यं सत्यं न संशयः।
इति ते कथितं देवि कुमारीपूजनक्रमम्।।२९१।।
विशेषलक्षणं चैव कथयिष्यामि संशृणु।
तस्मात् परतरं नास्ति(म?त)न्त्रमध्ये महेश्वरि।।२९२।।

कुमारीं पूजयित्वा च शिवत्वं गतवाहनम्।
कृष्णत्वं गतवान् कृष्णो ब्रह्मत्वं गतवान्(मुद्रा?विधिः)॥२९३॥

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(निग्रहादिप्रयोग-कुमारीपूजा-क्रमनिरूपणं) सप्तमः पटलः॥७॥

जो साधक स्वयं धन व्यय (खर्च) करके किसी कन्या का विवाह कराता है उसका ब्रह्म हत्यारूपी पाप (भी) नष्ट हो जाता है। जो साधक जहाँ तहाँ बार-बार कन्यादान का सङ्कल्प करके अनेकों कन्याओं का विवाह कराता है उसके गो हत्या, स्त्री हत्या आदि रूपी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ विवाह के समय (साधक के) माता, पिता विशेषकर भाई जो भी उपस्थित हों, सभी को कन्यादान का संकल्प करना चाहिए। इससे उसे इस लोक में सभी प्रकार की सम्पत्ति, सौभाग्य तथा भोगों की प्राप्ति होती है तथा मुक्ति का भागी होकर वह त्रिनेत्रधारी शिव रूप होकर रुद्रलोक में निवास करता है। उसे छः हजार करोड़ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है जो मनुष्य दूसरे की कन्या का विवाह स्वयं कराता है। समुद्र में जितने बालू के कण हैं, उतने वर्षों तक अपने एक एक कुल का उद्धार करता हुआ वह सत्यलोक में जाकर (वहाँ रहते हुए) जबतक इस पृथिवी तथा देवताओं की स्थिति रहती है, तब तक वहाँ के भोगों को भोगता है। कन्यादान सभी दानों से महान है, सभी दानों से श्रेष्ठ है तथा शीघ्र ही दुर्भाग्य का विनाश कर सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है।

जो साधक सभी कुमारियों का भक्ति सहित पूजन करता है, उसे राजा के द्वारा भी (उनके पास जाने पर) पूजा (सम्मान) की प्राप्ति होती है, उसके गृह में राजलक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है। प्रबल विपत्ति-भय के उपस्थित होने पर जो मनुष्य कन्या का पूजन करता है, उसी क्षण उसे सङ्कट से मुक्ति मिल जाती है, यह मेरा वचन पूर्णतः सत्य एवं संशय रहित है।

हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे कुमारी पूजन का क्रमबद्ध वर्णन किया। तन्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई पूजन-प्रावधान नहीं है। हे महेश्वरि! कुमारी पूजन करके ही मैंने शिवत्व, कृष्ण ने कृष्णत्व तथा विधि (ब्रह्म) ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया है।

॥श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत निग्रहादि प्रयोग-
कुमारी पूजा क्रम निरूपण नामक सातवें पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥

* * *

।। अष्टमः पटलः।।

(यन्त्रमन्त्रान्तर प्रयोग-तत्संस्कारादि विधि निरूपणम्)

।। काली-यन्त्रोद्धारः।।

श्रीभैरव उवाच

यन्त्रं शृणु वरारोहे येन सिद्ध्यति निश्चितम्।
ततो लिखेद् यन्त्रराजं समस्तपुरुषार्थदम्।।१।।
यस्य विज्ञानमात्रेण सद्यः खेचरतां व्रजेत्।
आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्।।२।।
बहिस्त्रिकोणमालिख्य षट्कोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
मध्ये तु बैन्दवं चक्रं मायाबीजविभूषितम्।।३।।
षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं ततश्चाष्टदलं लिखेत्।
बहिर्वृत्तेन संयुक्तं भूपुरेणैव संवृतम्।।४।।
ज्ञात्वैवं मुक्तिमायाति यन्त्रमेतन्न संशयः।

हे वरारोहे! अब समस्त पुरुषार्थ प्रद तथा सिद्धिदायक उस यन्त्र के विषय में सुनो जिसके विज्ञान (विधिवत् साधन) से साधक आकाशचारी हो जाता है।

यन्त्र रचना के लिए साधक किसी विहित आधार (पटल) पर एक (अधो मुखी) त्रिकोण बनाये। इसके बाहर वैसा ही एक और त्रिकोण बनाकर पुनः उसके बाहर उसी प्रकार का तीसरा त्रिकोण बनायें। तत्पश्चात् इसके बाहर षट्कोण, वृत्त, अष्टदल कमल पुनः वृत्त तथा भूपुर की क्रमशः रचना करे। सबसे भीतरी त्रिकोण के मध्य बिन्दु चक्र की रचना करके वहाँ माया बीज 'ह्रीं' लिखें। इस यन्त्र को (प्रयोग विधि सहित) जानकर (तथा उसके अनुसार साधन करके) मनुष्य निःसन्देह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

।। यन्त्र लेखनं देव्यावाहनं पूजनञ्च।।

एतत्तु विलिखेत् ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते।।५।।
स्वयंभूकुसुमैर्युक्ते कुङ्कुमागुरुसंयुते।
शुद्धासने च पशुभिरदृष्टे पुरतो न्यसेत्।।६।।
अर्घ्यद्रव्यमर्घ्यपात्रे निक्षिपेत् पुरतः सुधीः।
ततोऽर्घ्यं कारयेद् मन्त्री तया नार्या सुवेशया।।७।।

कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं सुयंभूकुसुमं तथा।
नाधर्मो जायते सुभ्रु महामन्त्रस्य साधने॥८॥
ततो पीठक्रमणैव यन्त्रपूजां समाचरेत्।
ततो हृदयपद्मान्तः स्फुरन्तीं परमेश्वरीम्॥९॥
सुषुम्नावर्त्मना नीत्वा शिरःस्थानं महेश्वरि।
ततो वै स्वकराम्भोजपुष्पराशौ समानयेत्॥१०॥
नासया वामया देवि वायुबीजेन मन्त्रवित्।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते॥११॥
यावत् त्वां पूजयिष्यामि मातर्देवि इहावह।
इत्यनेन च मन्त्रेण देवीमावाहयेत् सुधीः॥१२॥
आवाह्य देवीं तामिष्ट्वा चोपचारैर्निवेश्य च।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्॥१३॥
विप्रचित्तां पूजयेच्च बहिः षट्कोणके तथा।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तन्मध्ये च त्रिकोणके॥१४॥
(नीलाघनाबणाकाञ्च पूजयेच्च पर त्रिके।)
मात्रां मुद्रां मितां चैव पूजयेदपर-त्रिके।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः॥१५॥
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यो दिगम्बराः।
देवतादक्षिणे भागे महाकालं समर्चयेत्॥१६॥
ततः स्तुत्वा नमस्कृत्य कुर्यात् संमेलनं धिया।
देवताग्रे तु संभोगं देवताप्रीतिकारकम्॥१७॥
संभोगं तु पुरस्कृत्य देवीमिह विसृज्य च।
कृतकृत्यो भवेनमन्त्री नात्र कार्या विचारणा॥१८॥

इस यन्त्र को कुण्डगोलोद्भव द्रव्य लिप्त ताम्र-पत्र पर स्वयम्भू पुष्प, कुंकुम तथा अगुरु के मिश्रण से लिखना चाहिए। फिर इस यन्त्र को शुद्धासन पर अपने सामने स्थापित करें। यन्त्र को ऐसे स्थान पर स्थापित कर पूजन करना चाहिए जहाँ पशुभाव से पूजन करने वाले साधकों की दृष्टि न पड़े। (यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करके) साधक अर्घ्यपात्र में अर्घ्य स्थापित करें। अर्घ्य पात्र में कुण्डगोलोद्भव द्रव्य तथा स्वयम्भू पुष्प भी डाले। हे सुभ्रु! महामन्त्र (काली-तारादि के मन्त्र) की साधना में इससे अधर्म नहीं होता। पहले पीठ देवताओं तथा शक्तियों का पूजन करके ही यन्त्र का पूजन करना चाहिए। इसके बाद हृदय कमल पर दीप्तिमाना परमेश्वरी को सुषुम्ना मार्ग से

शिरः पदम् में लाकर वायु बीज तथा वाम नासिका द्वारा अञ्जलि में स्थित पुष्प राशि पर लाकर – **"देवेशि भक्ति सुलभे परिवार समन्विते। यावत् त्वां पूजयिष्यामि मातर्देवि इहावय।"** (हे देवशि! आप केवल भक्ति के द्वारा ही साधकों के लिए सुलभ हैं, जब तक मैं आपकी अर्चना करुँ, आप यहाँ सपरिवार स्थित हों, हे मातः देवि! मैं यहाँ आपका आवाहन करता हूँ।) इस प्रकार बोल करके पुष्पाञ्जलि को यन्त्र पर स्थापित कर दें। (तत्पश्चात् मूल मन्त्र सहित आवाहिता भव, संस्थापिता भव, सन्निधापिता भव, सन्निरुद्धा भव, सम्मुखी भव तथा अवगुण्ठिता भव बोलते हुए तत्तत् मुद्राओं का प्रदर्शन करे। इसके बाद षडङ्ग न्यास द्वारा सकलीकरण करें।) तदुपरान्त प्राप्त उपचारों से देवी का पूजन करके यन्त्र का पूजन करें।

षट्कोण के बाह्य कोणों पर ॐ (अथवा ऐं ह्रीं श्रीं अथवा चारों बीज) काल्यै नमः (अथवा काली पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः), इसी प्रकार कपालिन्यै, कुल्लायै, कुरु कुल्लायै, विरोधिन्यै तथा विपचित्तायै बोलते हुए पूजन करे।

इसके बाद सबसे भीतर के त्रिकोण पर (देवी के आगे से प्रारम्भ कर दक्षिणावर्त क्रम से)– पूर्ववत एक, तीन अथवा चारों तारकों (प्रणवों) सहित उग्रायै नमः, उग्र प्रभायै नमः तथा दीप्तायै नमः। द्वितीय त्रिकोण पर–नीलायै नमः, घनायै नमः तथा बलाकायै नमः। तीसरे त्रिकोण पर – मात्रायै नमः, मुद्रायै नमः तथा मितायै नमः से पूजन करें।

ये सभी देवताएं श्याम वर्णीया (अथवा षोडश वर्षीया), मुण्ड माला धारण की हुई, दिगम्बरा (वस्त्र रहिता) दाहिने हाथ में खड्ग तथा बायें हाथ से तर्जनी मुद्रा धारण की हुई (अपने–अपने वाहनों पर विराजमान हंसते हुए मुखवाणी तथा अपवित्र स्वरूप वाली कही गई) हैं। इसी प्रकार इनका ध्यान करके पूजन करना चाहिए।

बिन्दु चक्र पर देवता के दक्षिण भाग में महाकाल का पूजन करके, स्तुति तथा प्रणाम कर उनके सम्मिलन की मानसिक भावना करनी चाहिए। देवता के सम्मुख सम्भोग करना उसकी प्रीति का कारण होता है, अतः (स्वशक्ति के साथ समस्त पूजनोपरान्त) सम्भोग क्रिया करके देवी का विसर्जन कर दे। इस प्रकार के पूजन से साधक इस लोक में कृतकृत्य हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार सन्देह नहीं करना चाहिए।

[उपर्युक्त यन्त्र पूजन में अष्टदल तथा भूपुर पर पूजन का वर्णन नहीं किया गया है, उन्हें इस प्रकार करें– अष्ट पत्रों पर पूर्वादि क्रम से–पूर्ववत् 'तार' योग सहित आं ब्राह्मये नमः, ई नारायण्यै नमः, ऊं माहेश्वर्यै नमः, ॠं चामुण्डायै नमः, ॡं कौमार्यै नमः, ऐं अपराजितायै नमः, औं वाराह्यै नमः तथा अः नारसिंह्यै नमः।

इसी प्रकार पत्राग्रों पर – ऐं ह्रीं असिताङ्गाय भैरवाय नमः, ऐसे ही रुरुवे, चण्डाय, क्रोधाय, उन्मत्ताय, कपालिने, भीषणाय तथा संहाराय।

पूर्वादि क्रम से ही भूपुर के बाहर – इन्द्रादि लोकपालों का उनके आयुधों सहित पूजन करे। बिन्दु चक्र पर देवी के अस्त्रों का पूजन – ऊर्ध्व वाम हस्त में – **ॐ खं खड्गाय नमः** तथा अधो वाम हस्त में – **ॐ नृं नृमुण्डाय नमः**। ऊर्ध्व दक्ष हस्त – **ॐ अं अभयाय नमः**, अधो दक्ष हस्त – **ॐ वं वराय नमः**।

इसके बाद षडङ्ग न्यास करके मूलमन्त्र से पञ्चोपचार द्वारा देवी का पूजन करें। तत्पश्चात् ही – **"हुँ क्षौं यां रां लां वां क्रौं महाकाल भैरव सर्वविघ्नान् नाशय-नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा"** इस मन्त्र से महाकाल का पूजन करें।]

॥ देव्याः उपचार निरूपणम्॥

इदानीं शृणु देवेशि उपचारान् विशेषतः।
प्रथमं तु सुरा पूज्या माध्वी गौडी तथैव च॥१९॥
पैष्टी तस्या अभावेन आतिदेशिकमाचरेत्।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु॥२०॥
गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं बिना।
ताम्बूलं च सकर्पूरं नारिकेलं सशर्करम्॥२१॥
पायसं सघृतं चैव आर्द्रकं सगुडं तथा।
तण्डुलं सतिलं चैव तालं खर्जूरमेव च॥२२॥
कदली तिन्तिडीं चैव श्रीफलं फलमुत्तमम्।
अन्यानि च सुगन्धीनि स्वादूनि च फलानि च॥२३॥
नरश्छागस्तथा मेषो महिषः शशकस्तथा।
शरभः शूकरश्चैव वलयः परिकीर्तिताः॥२४॥
कृष्णमार्जारकश्चैव ज्ञातव्या मन्त्रवित्तमैः।
एतेषां चैव रक्तानि देयानि परमेश्वरि॥२५॥
जलं सुवासितं देयं कुलक्षालनमेव च।
नैवेद्यानि प्रधानानि कथितानि मया प्रिये॥२६॥
येन संतुष्यते देवि कुमारी वरवर्णिनी।
तं दद्यात् परमेशानि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥२७॥

हे देवेशि! अब देवी को अर्पित किये जाने वाले (भोग अथवा नैवेद्य रूप) उपचारों (पदार्थों) के सम्बन्ध में विशेष रूप से श्रवण करो। देवी को सर्वप्रथम पवित्र सुरा प्रदान करनी चाहिए। यह सुरा प्रमुखतः तीन प्रकार की कही जाती है। १. माध्वी – मधु अथवा पुष्प रसों से निर्मित, २. गौडी –गुड

अथवा गन्ने के रस से निर्मित तथा ३. पैष्टी – पिसे हुए अन्नों के द्वारा बनी हुई। इसमें गौडी श्रेष्ठ मानी जाती है। सुरा के अभाव में उसका अनुकल्प (सुरा के स्थान पर स्वीकृत देय वस्तु) प्रदान करे। कांसे के पात्र में रखा हुआ नारियल का जल अथवा ताम्रपात्र में स्थित मधु अथवा घृत के अतिरिक्त अन्य गव्य पदार्थ (दूध तथा दधि) मदिरा के तुल्य (समान) कहे गये हैं। इसके पश्चात् कपूर युक्त ताम्बूल (पान), शकर सहित नारियल, घृत सहित खीर, गुड़ सहित अदरक, तिल सहित चावल (इनसे बने पदार्थ) ताड़, फल, खजूर, केला, इमली तथा उत्तम बेल का फल प्रदान करे। इसके अतिरिक्त अन्य भी जो सुगन्धित, सरस, सुरुचिपूर्ण तथा सुस्वादु फल हैं, उन्हें भी भक्ति पूर्वक अर्पित करे।

बकरा, भेड़, भैंस, खरगोश, शरभ तथा शूकर ये बलि पशु कहे गये हैं। देवी को इनकी (इनमें से किसी की भी) बलि देनी चाहिए। काले बिलाव का बलि विशेष रूप से कहा गया है। बलि के पश्चात् इन पशुओं का रक्त देवी को प्रदान करना चाहिए। योनि प्रक्षालित सुवासित जल देवी को प्रदान करे। हे प्रिये। देवी को अर्पित करने योग्य मुख्य-मुख्य नैवेद्यों का मैंने तुमसे वर्णन किया। सुन्दर (श्रेष्ठ) स्वरूप वाली देवी कुमारी जिससे सन्तुष्ट-प्रसन्न हों उन सभी पदार्थों को श्रद्धा सहित सेवा-पूजा में उन्हें अर्पित करना चाहिए। हे देवि! अब आप क्या सुनने (जानने) की अभिलाषा रखती हैं।

।। कतिपया: काम्य-प्रयोगा:।।

पुष्पितायाः कुलागारं स्पृष्ट्वा जपति यो नरः।
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः।।२८।।
केवलं शुद्धभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत्।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकास्तथा।।२९।।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा।
मुक्तकेशो हविष्याशी प्रजपेदयुतं नरः।।३०।।
नग्नां परस्त्रियं स्पृष्ट्वा प्रजपेत् स्थिरमानसः।
तस्यालोकनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः।।३१।।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।
धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्यकामुकः।।३२।।
बृहस्पतिसमो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः।
सुन्दरीं यौवनोन्मत्तां नारीमानीय यत्नतः।।३३।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामन्त्रय मन्त्रवित्।
मैथुनं यः करोत्येव स तु विद्यानिधिर्भवेत्।।३४।।

विपरीतरता सा तु भुवि श्रीर्हृदयोपरि।
तन्मुखे चुम्बनं दत्त्वा सहस्रं मानसं जपेत्॥३५॥
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा।
सर्वेषां साधनानां हि श्रेष्ठं स्यात् कुलसाधनम्॥३६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधयेत् तं समाहितः।

जो साधक स्थिर मन (ध्यान सहित एकाग्रचित्त) तथा मानसिक (तथा शारीरिक) विकारों से मुक्त रहते हुए केवल शुद्ध भाव से रजस्वला स्त्री की योनि को देखता हुआ मूल मन्त्र का दश हजार जप करता है, वह विद्याओं का भण्डार हो जाता है। संस्कृत, प्राकृत, लौकिक तथा वैदिक भाषा के जितने भी शब्द (शास्त्र) हैं, वे सभी उस साधक के वश में आ जाते हैं अर्थात् उसे इनका ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

अविकृत तथा अविचल रहते हुए स्थिर चित्त होकर, पर स्त्री को नग्नावस्था में देखते तथा उसे स्पर्श करते हुए दश हजार मन्त्र जप करने वाले साधक के देखते ही प्रतिवादी निष्प्रभ (तेज हीन) हो जाते हैं। अनेकों राजा उसके दास बनकर सेवा करते हैं, फिर अन्य मनुष्यों के विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है।

जिस विद्वान को धन की कामना है, जो महान ऐश्वर्य प्राप्ति का अभिलाषी है तथा जो मनुष्य वृहस्पति के समान विद्वान तथा पूज्य होने की आकांक्षा वाला है, वह यदि यौवनमद से परिपूर्ण सुन्दरी (पर) स्त्री को यत्नपूर्वक (आदर सहित) आमंत्रित कर, उसके सम्मुख मन्त्र का दश हजार जप करके उसके कुल में मन्त्र न्यास (अथवा देवी का आमन्त्रण) कर उसके साथ मैथुन करता है, तो विद्याओं का भण्डार (स्वामी-ज्ञाता) हो जाता है।

जो साधक उस स्त्री को पृथ्वी पर अपने हृदय पर (ऊपर) उल्टा विपरीत लिटाकर उसके (योनि, स्तन) मुख आदि का चुम्बन करते हुए मन्त्र का एक हजार मानस जप करता है, वह निश्चय ही सिद्धीश्वर (सिद्धियों का स्वामी) हो जाता है। सभी प्रकार की साधनाओं में कुल (स्त्री युक्त) साधना सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए साधक को स्थिर चित्त से साधना के प्रति एक निष्ठ होकर इस कुल साधन को अवश्य ही करना चाहिए।

।। तारा-साधन-विषये पुराख्यान-वर्णनम्।।

इदानीं शृणु देवेशि रहस्यमिदमुत्तमम्॥३७॥
पुरा दारुवने रम्ये उन्मत्ता रागमोहिताः।
परस्त्रियं घर्षयन्ति मद्यं स्वादन्ति नित्यशः॥३८॥
तद् दृष्ट्वानुचितं कर्म विष्णुना समुपस्थितम्।

हे देवेशि! अब एक रहस्यमय श्रेष्ठ प्राचीन उपाख्यान को सुनो। किसी समय (पूर्व काल में) विष्णु ने दारुवन में जाकर देखा कि वहाँ रहने वाले सभी मनुष्य (ऋषि-मुनि आदि भी) नित्य मदिरा-पान कर पर-स्त्रियों के साथ काम क्रीडारत रहते हैं। उनका यह (स्वविचार से) अनुचित कर्म देखकर वे मेरे पास उपस्थित हुए (आए और बोले)।

श्रीविष्णुरुवाच

देवदेव महादेव सर्वदेव दयानिधे॥३९॥
देवदारुवने पापा मद्यपानरतातुराः।
परस्त्रियं घर्षयन्ति मुनयो रागमोहिताः॥४०॥
दिगम्बरास्तथा मूढाः संप्रयास्यन्ति कां गतिम्।

हे दयानिधे! सर्वदेव! देवाधिदेव! महादेव! देवदारु वन में रहने वाले सभी मुनि राग (स्त्री के प्रति आसक्ति) से मोहित होकर (अज्ञान में डूबे हुए) मद्यपान में रत होकर कामातुर पुरुषों की भाँति पर स्त्रियों के साथ रमण करते हुए नित्य पापाचरण में लीन रहते हैं। सर्वदा-सर्वथा नग्न रहने वाले इन बुद्धिहीनों को (इनके इन कर्मों के फलस्वरूप) कौन सी गति (मृत्यु के बाद स्थिति) प्राप्त होगी।

॥ भैरवेण विष्णोर्शङ्का-समाधानम्॥

श्री भैरव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच त्वहं प्रिये॥४१॥
कालिका या महाविद्या ह्यनिरुद्धसरस्वती।
विद्याराज्ञीति या प्रोक्ता एते तन्मन्त्रजापकाः॥४२॥
परं मुक्ता भविष्यन्ति तद्गायत्रीं जपन्ति च।
एतस्यास्तु प्रभावेण सर्वे देवा विमोचिताः॥४३॥

हे प्रिये! विष्णु के द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचनों को सुनकर मैंने उनसे कहा- जो महाविद्या कालिका है वही 'अनिरुद्ध सरस्वती' है तथा उसी को ही 'विद्याराज्ञी' भी कहा जाता है। दारुवन में निवास करने वाले ये सभी मुनि इसी के मन्त्रों का निरन्तर जप करने वाले हैं। उस कालिका की गायत्री का जप करने वाले सभी मुनि परम मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। इसी गायत्री-जप के फलस्वरूप (पहले भी) सभी देवता पापों से मुक्त हुए थे।

॥ काली-गायत्री-मन्त्रेण पापेभ्यो मुक्तिः॥

निजमातृवधात् सोऽपि परशुरामो विमोचितः।
दत्तात्रेयश्चात्रिपुत्रः सुरापानाद् विमोचितः॥४४॥

गोतमस्त्रीघर्षणाश्च देवेन्द्रोऽपि विमोचित:।
चाण्डालीगमनात् पूर्वं वशिष्ठश्च विमोचित:।।४५।।
गुरुदाराघर्षणाच्च चन्द्रमाश्च विमोचित:।
ब्रह्मणस्तु शिरश्छेदाच् शिव: सोऽहं विमोचित:।।४६।।
रावणस्य वधाच्चापि रामचन्द्रो विमोचित:।
तमेव गूढं वक्ष्यामि श्रुत्वा गोप्य: सदा बुधै:।।४७।।

इसी कालिका गायत्री-जप के प्रभाव से अपनी माता के वध रूपी पाप से परशुराम मुक्त हुए थे। इसी के प्रभाव से अत्रिपुत्र दत्तात्रेय सुरापान के पाप से, गौतम की स्त्री अहिल्या के साथ रमण रूपी पाप से इन्द्र, वशिष्ठ मुनि चाण्डाली गमन के पाप से, चन्द्रमा गुरुपत्नी गमन के पाप से, ब्रह्मा का पाँचवा शिर काटने के पाप से मैं शिव स्वयं तथा रामचन्द्र रावण-वध के पाप से मुक्त हुये थे। उसी गुप्त मन्त्र को मैं कह रहा हूँ, जिसे सुनकर विद्वानों द्वारा सर्वदा गुप्त ही रखा जाता रहा है।

।। काली-गायत्री मन्त्रोद्धार:।।

कालिकायै पदं चोक्त्वा विद्महे तदनन्तरम्।
तत: श्मशानवासिन्यै धीमहीति पदं तत:।।४८।।
तन्नो घोरे-पदं चोक्त्वा तत: काम: प्रचोदयात्।
एषा तु कालीगायत्री दशधा जप्तयानया।।४९।।
ब्रह्महत्यादिपापानि खण्डं खण्डं व्रजन्ति हि।
अनया सदृशी विद्या अनेन सदृशो जप:।।५०।।
अनेन सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति।
अन्यच्च शृणु देवेशि यथा पानादिकर्मणि।।५१।।

पहले 'कलिकायै' बोले फिर 'विद्‌महे' का उच्चारण कर 'श्मशान वासिन्यै धीमहि' बोले। तदुपरान्त 'तन्नो घोरे' पुन: 'काम: प्रचोदयात्' कहे।

मन्त्र स्वरुप - (ॐ) **''कालिकायै विद्‌महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे (घोरा) प्रचोदयात्।।''**

इस कालिका गायत्री का (प्रतिदिन) दश बार जप करने से ही ब्रह्म हत्यादि महापाप खण्ड-खण्ड (होकर विनष्ट) हो जाते हैं। इसके समान कोई भी विद्या (मन्त्र), कोई भी जप तथा कोई भी ज्ञान न कभी हुआ है (न वर्तमान में है) और न ही भविष्य में होगा। हे देवि! अब अन्य पानादि कर्म-विषयक विधानों को सुनो।

।। साधन-निरूपणम्।।

कुमारीसाधनादीनि अनया साधयेच्छुभे।
लीलया च महेशानि सिद्धिर्भवति निश्चितम्।।५२।।
नटी कपालिनी वेश्या रजकी ब्राह्मणी शुभा।
शूद्रकन्या विशः स्त्री च क्षत्रि(यी?या) सर्वदायिनी।।५३।।
एतासां कांश्चिदानीय ततस्तद्योनिमण्डले।
पूजयित्वा महादेवीं ततो मैथुनमाचरेत्।।५४।।
धर्माधर्महविर्दी(प्ता?प्ते) आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।।५५।।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः।
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्।।५६।।
धर्माधर्मफलस्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहम्।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः।।५७।।
ततो गच्छेत् प्रियां गच्छन् देवीं त्रिभुवनेश्वरीम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्मा पुनरभ्यभाषत।।५८।।
नमोऽस्तु ते महादेव सर्वतन्त्रात्मरूपिणे।
त्वत्प्रसादादयं देव संशयो मे महान् गतः।।५९।।
अनुजानीहि देवेश गमिष्यामि यथासुखम्।
ततो मयाभ्यनुज्ञातः प्रणम्य च यथाविधि।।६०।।
ययौ स्वभवनं विष्णुरेतत् ते कथितं प्रिये।

इस मन्त्र के द्वारा कुमारी साधनादि अनेकों प्रकार की साधना करनी चाहिए क्योंकि इस मन्त्र की साधना से सहज ही अनायास सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

नटी, कपालिनी, वेश्या, रजकी, ब्राह्मणी, शूद्रा, वैश्या तथा क्षत्रिया ये आठ प्रकार की स्त्रियां (कन्याएं) स्त्री साधना के लिए शुभ तथा सर्वसिद्धि प्रदायिनी हैं। इनमें से किसी भी स्त्री को लाकर उसके योनि प्रदेश में महादेवी की पूजा करके उसके साथ मैथुन करना चाहिए। मैथुन के प्रारम्भ में **'धर्माधर्म हविर्दीप्ते'** से लेकर **'स्वाहा'** तक मन्त्र बोले- धर्म तथा अधर्म रूप हवि से प्रज्जवलित आत्मारूपी अग्नि में मन रूपी स्रुचा से सुषुम्ना मार्ग द्वारा (अपनी) नित्य की इन्द्रिय वृत्तियों (व्यवहारों) को मैं 'स्वाहा' बोलते हुए हवन करता हूँ। तत्पश्चात् देवी भुवनेश्वरी का स्मरण करते हुए स्त्री के पास जाना (मैथुन रत होना) चाहिए। शुक्र त्याग के समय

'**प्रकाशाकाश**' से लेकर '**स्वाहा**' तक मन्त्र का उच्चारण करके शुक्र त्याग करे। मन्त्रार्थ-प्रकाश तथा आकाश (अथवा अमर्श तथा विमर्श) रूपी दोनों हाथों से पकड़ कर उन्मनी रूपी स्रुक से धर्माधर्म कला रूपी स्नेह को पूर्ण अग्नि में 'स्वाहा' बालते हुए हवन करता हूँ।

इन वचनों को सुनकर विष्णु पुनः मुझसे बोले- हे सर्वतन्त्र स्वरूप (सभी प्रकार के तन्त्रों के ज्ञाता तथा उन्हें प्रकाशित करने वाले) महादेव! आपको प्रणाम है। आपकी कृपा से दारुवनस्थ मुनियों के विषय में उत्पन्न हुआ मेरा यह वृहत् संशय विलीन हो गया। आप मुझे अपना अनुचर (सेवक) समझें। हे देवेश! अब मैं प्रसन्नतापूर्वक जाता हूँ। तत्पश्चात् मेरी आज्ञा प्राप्त कर यथाविधि मुझे प्रणाम करके विष्णु अपने लोक को चले गये। हे प्रिये! इस प्रकार काली (तारा) साधना से सम्बन्धित यह कथा मैंने तुमसे कही।

।। वक्ष्यमाण-महामन्त्रस्य माहात्म्यम्।।

इदानीं शृणु देवेशि मन्त्रराजं मनोरमम्।।६१।।
अत्र श्रीमन्त्रराजस्य माहात्म्यं शृणु पार्वति।
श्रद्धया यत्र देवेशि परां मुक्तिमवाप्स्यति।।६२।।
अश्वमेधैश्च गोमेधैर्नरमेधैस्तथा परैः।
दानैश्च विविधैर्द्रव्यैर्होमैर्नानाविधैरपि।।६३।।
अनेकजन्मसाहस्रैस्तपोभिः प्राप्यते परा।
विद्याराज्ञी घोरकाली अनिरुद्धसरस्वती।।६४।।
ज्ञात्वैव मुक्तिमाप्नोति किं पुनः कथ्यते परम्।
अस्य ज्ञानप्रभावेण सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।।६५।।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते।
तस्यालोकेनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः।।६६।।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।
वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः।।६७।।
दिवारात्रिव्यत्ययं च वशीकर्तुं क्षमो भवेत्।
बृहस्पतिसमो वाग्मी सुकविर्भार्गवो भवेत्।।६८।।
धने कुबेरसदृशस्तेजसा भास्करोपमः।
बलेन सदृशो रामो विष्णुतुल्यपराक्रमः।।६९।।
ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुर्वङ्गनागमात् ।
सद्यो निर्दोषमायाति मन्त्रस्यास्य प्रसादतः।।७०।।

एवं संक्षेपतो वक्ष्ये नास्ति मन्त्रसमोऽधुना।
सौरे च गाणपत्ये च चान्द्रे वैष्णव एव च॥७१॥
नान्यद् विस्तरतो वक्तुं शक्यते परमेश्वरि।
वक्त्रैः कोटिसहस्रैस्तज्जिह्वाकोटिशतैरपि॥७२॥

हे देवेशि! अब कालिका के एक अन्य मन्त्रराज तथा उसके माहात्म्य (प्रभाव) को सुनो। श्रद्धा पूर्वक इसकी साधना करने से साधक को परा (कैवल्य) मुक्ति की प्राप्ति होती है। अश्वमेध, गोमेध, नरमेध रूप महान यज्ञों, बड़े-बड़े दानों, विविध प्रकार के पदार्थों द्वारा अनेकों प्रकार के हवन कर्मों तथा अनेकों हजार जन्मों की तपस्याओं द्वारा जिस महान पुण्य फल की प्राप्ति होती है, विद्याराज्ञी घोर काली अनिरुद्ध सरस्वती की साधना द्वारा उससे भी अधिक पुण्य की उपलब्धि होती है। इसके ज्ञान से तो साक्षात् मुक्ति ही मिल जाती है, फिर इससे श्रेष्ठ क्या है, जिसकी प्राप्ति के विषय में कुछ कहा जाय।

इसके ज्ञान के प्रभाव से साधक को अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति तथा पृथिवी पर विजय की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के साधक द्वारा देखने मात्र से ही उसका प्रतिवादी आभा रहित (ज्ञान शून्य सा) हो जाता है। सामान्य जन की बात छोड़िये अनेकों भूपति भी इसकी दासता स्वीकार करके सेवा करने लगते हैं। इस मन्त्र-साधना से सिद्धि प्राप्त साधक अग्नि को शीतल, जल को स्तम्भित (स्थिर), सूर्य-गति का स्तम्भन, दिन तथा रात्रि का परस्पर परिवर्तन तथा सभी प्राणियों को वशीभूत करने में समर्थ होता है। वह साधक बृहस्पति के समान (श्रेष्ठ) वक्ता (वाक्पटु), शुक्राचार्य के समान शास्त्रज्ञ, कुबेर के समान ऐश्वर्यवान, दिव्य तेज के कारण सूर्य के समान, शक्ति में राम (अथवा बलराम) के समान तथा वीरता (पराक्रम) में विष्णु के समान होता है। इस मन्त्र-साधना के प्रभाव से इसका साधक ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी तथा गुरु स्त्री गमन रूप महापापों से भी शीघ्र ही मुक्त होकर सर्वथा निर्दोष (सर्वपाप रहित) हो जाता है।

हे परमेश्वरि! मैंने बहुत थोड़े में ही इस मन्त्र की महिमा का वर्णन किया है। वर्तमान समय में इस मन्त्र से श्रेष्ठ क्या कहें समकक्ष भी अन्य कोई मन्त्र सूर्य, गणेश, चन्द्र तथा वैष्णव (विष्णु) के मन्त्र समुदाय में नहीं है। इसके महत्व का विस्तार सहित वर्णन, सैकड़ों करोड़ मुख तथा प्रत्येक मुख में सैकड़ों करोड़ जिह्वा वाला भी करने में समर्थ नहीं हो सकता।

।। त्र्यक्षर-मन्त्रोद्धारः।।

निजमुद्धृत्य देवेशि आगस्करं द्वितीयकम्।
वाणीं चैव महेशानि वर्णत्रयमुदाहृतम्।।७३।।
अनेन मन्त्रराजेन सदृशं नापरं प्रिये।
तव स्नेहाद् वरारोहे प्रकाशमुपपादितम्।।७४।।
न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं महेश्वरि।
तव स्नेहेन कथितं प्राणवद्धि सुरेश्वरि।।७५।।
कुमारीपूजनेनैव दक्षिणाविधिरुत्तमा।
कथिता देवि भद्रं ते अप्रकाश्यं प्रकाशितम्।।७६।।

प्रथम निजबीज 'क्रीं' का उद्धार कर, आगस्कर 'हूं' का उद्धार करे फिर वाणी 'ऐं' का उद्धार करके **'क्रीं हूं ऐं'** रूप त्रिवर्णात्मक मन्त्र को सम्पन्न करें। इस मन्त्रराज के तुल्य अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है। हे वरारोहे! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही मैंने इसके प्रकाशन का कार्य किया है। इसे किसी को भी बताना (वर्णन करना) नहीं चाहिए। 'न वक्तव्यं' का तीन बार प्रयोग पूर्णतः निषेध का सूचक है। हे सुरेश्वरि! तुम मेरे प्राण (आत्मा) के समान हो (प्राण से कुछ भी गुप्त नहीं रहता इसलिए) तुम्हारे स्नेह (मधुर प्रेम) के कारण ही मैंने इसे कहा है। कुमारी पूजन के द्वारा (अथवा साथ ही) दक्षिणा काली के उत्तम पूजन विधान का मैंने वर्णन किया है। हे देवि! आपका कल्याण हो, आपके अनुरोध पर ही इस अप्रकाश्य (गुह्य) विषय को प्रकाशित किया गया है।

।। देव्याः पूजन-ध्यान-हेतवे स्थानानां नाम्नां निरूपणम्।।

पूजाविधिरयं प्रोक्तः कुत्र वा पूज्यते शिवा।
कुत्र वा ध्यायते देवी तं शृणुष्व महेश्वरि।।७७।।
कामरूपे पूर्णगिरौ कोङ्कटे चोड्डीयानके।
वाराणस्यां तु लौहित्ये करतोयानदीजले।।७८।।
आर्यावर्ते प्रयागे च ब्रह्मावर्ते तथैव च।
अनन्तफलदा पूजा सर्वत्रैव जले स्थले।।७९।।
तद्भावे शून्यगेहे सिन्दूरादिविलेपिते।
कर्त्रिशूलधनुःखड्ग - घण्टाचामरकादिभिः।।८०।।
वितानध्वजसंकीर्णे कृष्णागुरुसुधूपिते।
सुदतीनां सुकेशीनां वेश्यानां गानशोभिते।।८१।।
घण्टानादरवाकीर्णे दीपावलीपरिष्कृते।
एवंभूतगृहे पूज्या तारा चैव सुशोभना।।८२।।

श्मशाने च सदा पूज्या पीठादप्यधिका मता।
तारिण्यास्तु श्मशानात्तु नान्यत् स्थानं प्रशस्यते॥८३॥
तस्माच् श्मशाने पूजा च कर्तव्या भूतिलिप्सुभिः।

हे महेश्वरि! जो यह पूजन विधि कही गई है, उसके अनुसार शिवारूपिणी देवी (काली अथवा तारा) का किस स्थान पर (स्थित होकर) ध्यान तथा पूजन करना चाहिए, उसे कहता हूँ, (एकाग्रचित्त होकर) सुनो।

कामरूप, पूर्णगिरि, कोकण, उड्डीयान, वाराणसी, प्राग्ज्योतिषपुर (ब्रह्मपुत्र नदी के पास का क्षेत्र), करतोया नदी तट, आर्यावत, प्रयाग तथा ब्रह्मावर्त इन सभी स्थानों के जल तथा स्थल क्षेत्रों में की गई पूजा अनन्त फलदायी होती है।

इन स्थानों के अभाव में एकान्त (जनशून्य) गृह, जो सिन्दूरादि रक्त वर्ण द्रव्यों से लिप्त हो, कर्त्रि (कैंची अथवा छुरिका), शूल, धनुष, खड्ग, घंटा, चामर आदि सज्जित, वितान (चँदोवा-चाँदनी) द्वारा ऊपर से आच्छादित, सघन पताकाओं (तथा छोटी-छोटी झण्डियों) से अलङ्कृत, काला अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थों से धूपित, सुन्दर दातों (से युक्त सुन्दर मुख) तथा केशराशि वाली वेश्याओं (सुन्दर वेश धारण की हुई कुल स्त्रियां) के गान से शोभित, बजते हुए घण्टों की ध्वनि से परिपूर्ण तथा दीपमालिकाओं से सुसज्जित हो, ऐसे गृह में सुन्दरी तारा की अर्चना करनी चाहिए। श्मशान में तारा की पूजा करना पीठादि स्थानों की पूजा से अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है। अतः ऐश्वर्य के अभिलाषी मनुष्य को तारा की आराधना (साधना) श्मशान में ही करनी चाहिए।

॥ काली-गायत्री साधना॥

गायत्री या पुरा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानस्वरूपिणी॥८४॥
श्रीकृष्णश्च ऋषिस्तस्या गायत्री च्छन्द उच्यते।
शिवशक्तिस्वरूपा हि देवता परिकीर्तिता॥८५॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि येनाशु फलमाप्नुयात्।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ताम्बूलपूरिताननः॥८६॥
खड्गहस्तः सुवाट्या तु दद्याद् मांसान्वितं बलिम्।
पूजयित्वा यथान्यायं तत आनीय सुन्दरीम्॥८७॥
कामिनीं यौवनोन्मत्तां सुवेशां चारुहासिनीम्।
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः॥८८॥
यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिः प्रजायते।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत्॥८९॥
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एवं विभूषणम्।
स्त्रीमेलनं सदा कुर्यात् सुन्दरीभिर्विशेषतः॥९०॥

तासां प्रहारो निन्दा च कौटिल्यमप्रियं ततः।
सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत्॥९१॥
तद्धस्तारचितं भोज्यं दैवतायै निवेदयेत्।
प्रातःकृत्यं ततः कृत्वा स्नात्वा चिरं यथाविधि॥९२॥
प्रयोगेण समागम्य कपालान्तःस्थले विशेत्।
दिक्कालनियमो नास्ति स्थित्यादिनियमो नच॥९३॥
न जपे कालनियमो नार्चनादिबलिष्वपि।
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने॥९४॥

पहले जिस ब्रह्मज्ञान स्वरूपिणी काली-गायत्री विद्या का मैंने वर्णन किया था, उसके ऋषि श्रीकृष्ण, छन्द गायत्री तथा शिव-शक्ति स्वरूपा (काली) देवता कहे गये हैं। अब मैं इसके श्रेष्ठ साधन को कहता हूँ जिससे साधक को शीघ्र ही फल की प्राप्ति होती है।

प्रातः काल ब्रह्म-मुहूर्त में (शयन से) उठकर सुन्दर उपवन (अथवा मार्ग) में (पर) माँस युक्त बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् यौवन के मद से उन्मत (आकुल), सुन्दर वेश वाली, सुन्दर मुस्कान वाली तथा कुल साधकों के गृह में उत्पन्न कामाभिलाषिनी सुन्दर युवती (के पास जाकर उस) को देखकर सावधानीपूर्वक नमस्कार करके तथा उसे आमन्त्रित कर स्वगृह में लाकर के यथा विधि उसका पूजन करे। यदि भाग्यवश कोई स्त्री (अथवा स्त्री योनि) दिखाई पड़ जाय तो उसमें वहीं देवी की मानसिक पूजा करें। स्त्रियाँ ही प्राण हैं, स्त्रियाँ ही देवता हैं तथा स्त्रियाँ ही मनुष्य (पुरुष) का आभूषण (उसकी शोभा) हैं। स्त्रियों, विशेषकर सुन्दर स्त्रियों के साथ सर्वदा मित्रता (प्रेम) का व्यवहार करना चाहिए। उन पर प्रहार (आघात), उनकी निन्दा, उनसे कुटिलता (छल-प्रपञ्च) तथा अप्रिय व्यवहार (उनको अप्रिय प्रतीत होने वाले कर्म) किसी भी प्रकार से नहीं करना चाहिए। अन्यथा साधक की सिद्धि में बाधा उत्पन्न हो जाती है। उसके (स्त्री के) हाथों से बने हुए भोज्य पदार्थों को देवता को अर्पित करना चाहिए।

इसके पश्चात् प्रातः कृत्य करके शीघ्र ही यथाविधि स्नान करके प्रयोग के लिए साधना स्थल पर आकर कपाल को भूमि में दबाकर उसके ऊपर आसन बिछाकर बैठे। इस साधन में दिशा, काल तथा स्थिति आदि का कोई नियम नहीं है। जप, पूजन, बलि आदि किसी भी कार्य के लिए किसी भी प्रकार का समय-दिशा आदि से सम्बन्धित नियम नहीं है। इस महामन्त्र की साधना में साधक को अपनी इच्छा (के अनुसार कर्म करना) ही नियम कहा गया है।

पूजयेद् विविधैः पुष्पैस्तुलसीवर्जितैः शुभैः।
एवं संपूज्य विधिवत् सञ्जपेत् परमेश्वरीम्॥९५॥
निशायां पूजयेद् देवीं जपेच्च प्रयतो नरः।
सिन्दूरभूषणो नित्यं तथा चैव दिगम्बरः॥९६॥
नारीं दिगम्बरीं कृत्वा विपरीतरतो भवेत्।
अभिघातं चुम्बनं च कुर्यात् स्वाभीष्टसिद्धये॥९७॥
निर्लज्जाकामबाणेन घृष्टं स्यात् मन्दिरं धनुः।
तस्मिन् काले साधकेन्द्रो जपेत् संशुद्धमानसः॥९८॥
संभोगं च स्वयं कुर्वञ्जपेत् सारस्वतप्रदाम्।
तस्माद् भाव्या महेशानि कथिता देवदुर्लभा॥९९॥
यस्याः प्रसादमासाद्य कलयामि जगत्त्रयम्।
शिवशक्त्यात्मिका देवी अनिरुद्धसरस्वती।
यां ज्ञात्वा मुक्तिमाप्नोति किमन्यत् कथयामि ते॥१००॥

तुलसी (पुष्प-पत्र) के अतिरिक्त सभी विविध प्रकार के सुन्दर फूलों से देवी की विधिवत् अर्चना करके परमेश्वरी के मन्त्र का जप करे। रात्रि में देवी की पूजा तथा दिन में मन्त्र जप करे। सिन्दूर का तिलक धारण करके स्वयं दिगम्बर होकर, स्त्री को भी दिगम्बरा करके विपरीत रत होकर अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उस पर अभिघात तथा उसका चुम्बन करे। लज्जा विहीन होकर काम-बाण द्वारा धनुष रूपी (काम) मन्दिर पर घर्षण करे। उस समय साधक श्रेष्ठ विकार रहित शुद्ध मन से मन्त्र का जप करता रहे। स्वयं सम्भोग करता हुआ इस सारस्वत (ज्ञान-विद्या) प्रद मन्त्र का जप करे। उसके द्वारा भविष्य मे होने वाली (सिद्धि प्राप्ति) देवताओं के लिए भी दुर्लभ कही गई है। जिसके कृपा प्रसाद को प्राप्त कर मैं तीनों लोकों की सृष्टि करता हूँ (अथवा तीनों लोकों को धारण करता हूँ) तथा जिसे जानकर मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, वह शिव-शक्ति स्वरूपा देवी अनिरुद्ध सरस्वती ही है। हे देवि! कहो, अब तुमसे क्या कहें।

।। कलियुगे प्रधान-देवता विषये देवी-प्रश्नम्।।

श्रीदेव्युवाच

इदानीं(शृणु?देव)कस्यास्ति घोरे कलियुगे शुभे।
प्राधान्यं परेमशान तद्वदस्व सदाशिव॥१०१॥

हे सदाशिव! इस घोर अशुभ कलियुग में किस देवता की प्रधानता है (जिसकी साधना करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त कर सके) उसके विषय में कहें, मैं सुनना चाहती हूँ।

।। कलियुगे काली तारिण्योः प्राधान्यम्।।

श्रीभैरव उवाच

कलिनाम्नि युगे देवि प्रधानां तारिणीं शुभाम्।
कालीं चैव महेशानि अनिरुद्धसरस्वतीम्।।१०२।।
श्मशानकालिकायास्तु प्राधान्यं शृणु भैरवि।
सर्वसिद्धेः कारणं हि अनिरुद्धसरस्वती।।१०३।।
तस्या मन्त्रेण मन्त्री स्यात् सर्वसिद्धिफलप्रदः।
तारामन्त्रं पूर्वमुक्तं कालीमन्त्रं शृणुष्व मे।।१०४।।

हे देवि! इस कलियुग में तारा, काली, अनिरुद्ध सरस्वती तथा श्मशान कालिका की ही विशेष रूप से प्रधानता है। अनिरुद्ध सरस्वती समस्त सिद्धियों का कारण है। इसके मन्त्र की साधना करने वाला सभी सिद्धियों के फल को प्राप्त करने में सक्षम होता है। हे देवि! इससे पहले मैंने तारा के मूल मन्त्र के विषय में कहा था, अब काली के मूल मन्त्र को सुनो।

।।काली (दक्षिणा कालिका) मन्त्रोद्धारः।।

मायाद्वन्द्वं कूर्चयुग्मं निजबीजत्रयं तथा।
दक्षिणे कालिके चेति संहारक्रमतः शुभे।।१०५।।
पूर्वबीजानि चोद्धृत्य स्वाहान्तोऽयं मनुः स्मृतः।
विद्याराज्ञीति विख्याता मन्त्रश्च कल्पपादपः।।१०६।।

दो बार मायाबीज (ह्रीं ह्रीं), दो बार कूर्च (हूं हूं), तीन बार काली का अपना बीज (क्रीं क्रीं क्रीं) इसके बाद 'दक्षिणे कालिके' पद तत्पश्चात् पूर्व सप्त बीजों को संहार क्रम से प्रयुक्त करके पुनः 'स्वाहा' लिखें। इस प्रकार काली के (मूल) मन्त्र का उद्धार करें।

मन्त्र-स्वरुप - **"ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा"।।**

कल्प वृक्ष के समान सर्वाभीष्ट प्रद यह विद्या (मन्त्र) 'विद्याराज्ञी' के नाम से प्रसिद्ध है।

।। विद्यायाः (मन्त्रस्य) माहात्म्यम्।।

अस्मात् परतरं नास्ति कालीमन्त्रं मनोरमम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मन्त्रराजं शृणुष्व मे।।१०७।।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः।
एषा विद्या(रहस्या तु)पूजने जपने तथा।।१०८।।

ध्यान तथा कुलाचारे सर्वविद्यागमेषु च।
उच्चाटनं मारणं च वशीकरणमुत्तमम्॥१०९॥
आकर्षणं स्तम्भनं च विद्वेषणमतः परम्।
अनया साधयेद् देवि सिद्धयत्येव न संशयः॥११०॥

काली का अन्य कोई भी मन्त्र (विद्या) इससे श्रेष्ठ (बढ़कर) नहीं है। इसलिए इस मन्त्र राज को मुझसे हर प्रकार से यत्न करके (सविधि) ग्रहण करो। इस गोपनीय विद्या से सम्बन्धित पूजन, जप, ध्यान तथा कुलाचार का वर्णन सभी तन्त्रशास्त्रों में उपलब्ध है। हे देवि! इस विद्या की साधना करने से वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन तथा मारण सभी कर्म निश्चित रूप से, बिना किसी संशय के सिद्ध हो जाते हैं।

।।मन्त्रेण साधिताः प्रयोगाः।।

पूजां च विविधां कुर्यात् स्वशाखोक्तक्रमेण च।
रक्तपुष्पैः पूजयित्वा सहस्रं होमयेदथ॥१११॥
सा तु काममयी नारी निर्लज्जा काममोहिता।
स्वयं(सान्त्याष्य?सन्त्यज्य)भर्तारं साधकं गच्छति ध्रुवम्॥११२॥
अयुतं च जपेद् देवि ध्यात्वा देवीं दिगम्बरीम्।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव पातालतलगा अपि॥११३॥
आकर्षयति मन्त्री च तत्क्षणाद् भुवि संस्थिताः।
जप्त्वा देवीं श्मशाने च ध्यात्वा देवीं दिगम्बरीम्॥११४॥
तद्भस्मलेपनं कुर्यात् ततः संहरते जगत्।
श्वेतापराजितापुष्पैः पूजयेद् भक्तिभावतः॥११५॥
हुत्वायुतं श्मशानेऽपि विश्वमुच्चाटयेद् ध्रुवम्।
नारीं नग्नां श्मशाने च स्पृष्ट्वा च योनिमण्डलम्॥११६॥
जपित्वा च वशीकुर्याद् यदि सा न पलायते।
कृष्णपुष्पैः पूजयित्वा ध्यात्वा चैव दिगम्बरीम्॥११७॥
जप्त्वायुतं श्मशानस्थः शत्रूणां मारणं चरेत्।
कालीकल्पस्वरूपं च कथितं सुन्दरि प्रिये॥११८॥
गोपेन सर्वसिद्धिः स्याद् नात्र कार्या विचारणा।
यथा काली तथा नीला चानिरुद्धसरस्वती॥११९॥

साधक अपनी शाखा (सम्प्रदाय-गुरु प्रोक्त विधि) के अनुसार देवी काली का (ध्यान तथा) लाल पुष्पों से पूजन करके (मन्त्र का दश हजार जप कर) एक हजार बार (रक्त पुष्पों से ही) हवन करें। ऐसा करने से जिस

साध्य (स्त्री) के उद्देश्य से कर्म किया गया है, वह स्त्री काम मोहित होकर, साक्षात् काम स्वरूपा सी हुई, अपने पति का परित्याग करके निर्लज्जता पूर्वक साधक के पास निश्चय ही आ जाती है। मन्त्र-पुरश्चरण के बाद ही काम्य-प्रयोग फलदायी होते हैं।

जो साधक दिगम्बर स्वरूप में देवी का ध्यान करता हुआ मन्त्र का दश हजार जप करता है (तथा जप के पश्चात् एक हजार बार हवन करता है) वह पृथिवी तथा पाताल में भी स्थित सभी स्थावर तथा जङ्गम (चराचर) प्राणियों का तत्काल ही आकर्षण करने में समर्थ हो जाता है।

जो साधक श्मशान भूमि में बैठकर तथा चिताभस्म को स्वशरीर पर लिप्त करके दिगम्बर रूप में देवी का ध्यान करता हुआ जप करता है, वह विश्व का भी संहार करने में समर्थ हो जाता है।

श्वेत अपराजिता-पुष्पों द्वारा भक्ति सहित देवी का पूजन करके, श्मशान में दश हजार बार मन्त्र का उच्चारण करते हुए हवन करने वाला साधक निश्चय ही विश्व का भी उच्चाटन करने की क्षमता रखता है।

श्मशान भूमि में अपने सम्मुख नग्न स्त्री को बैठाकर उसके योनि प्रदेश का स्पर्श करते हुए जप करने वाला साधक, यदि जप क्रिया के मध्य में भयभीत होकर न भागे तो वह विश्व का भी वशीकरण करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है।

शत्रु के मारण के लिए साधक श्मशान में काले-पुष्पों से देवी की पूजा कर, दिगम्बरा रूप में उनका ध्यान करते हुए (वहीं बैठकर) मन्त्र का दश हजार जप करे (अपनी सामर्थ्य के अनुसार साधक एक से अधिक दिनों में भी जप की संख्या पूरी कर सकता है, परन्तु जप की संख्या प्रत्येक दिन समान होनी चाहिए।

हे देवि! काली-मन्त्र के कुछ प्रयोगों के सम्बन्ध में मैंने तुमसे वर्णन किया। इसे गुप्त रखने से सभी सिद्धियों की प्राप्ति होती है (तथा वे स्थायी होती है, अन्यथा इनका लोप हो जाता है)। इस विषय में किसी भी प्रकार का सोच-विचार (सन्देह) नहीं करना चाहिए। जैसी काली है वैसी ही तारा तथा अनिरुद्ध सरस्वती भी हैं। इनमें केवल नाम, रूप तथा मन्त्रों का ही भेद है। इनके पूजन-प्रयोगादि में मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसीलिए कलियुग में आराधना, साधना एवं प्राधान्य का प्रश्न उपस्थित होने पर बार-बार 'काली-काली' ही कहा जाता है।

॥ कुण्डलिन्याः चक्र-निर्णयम्॥

तस्माच्च कथिता विद्या काली काली(कलौ युगे)।
रहस्यं शृणु चार्वङ्गि कुण्डल्याश्चक्रनिर्णये॥१२०॥

आसनं जीवनस्येदममृतं देहरक्षकम्।
निर्गुणं शाम्भवं चक्रं त्रिविधं शृणु पार्वति॥१२१॥
येन विज्ञानमात्रेण ध्रुवं ज्योतिर्मयो भवेत्।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये वर्णाश्च ज्योतीरूपिण:॥१२२॥
ज्योतीरूपाणि चक्राणि ज्योतिरूपा च कुण्डली।
चन्द्रत: सूर्यपर्यन्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश॥१२३॥
अत्रास्ति कुण्डलीशक्तिर्बीजरूपा निराकृति:।
परेयं कुण्डलीशक्तिश्चन्द्रमण्डलवर्तिनी॥१२४॥
इमं भेदं महेशानि यो जानाति स योगवित्।
दलं कोशं तथा वर्ण तथैव चक्रदेवता:॥१२५॥
तथैव पूर्ववज्ज्ञेयं सर्वचक्रेष्वयं विधि:।
चन्द्रतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश॥१२६॥
परापरेति विख्याता कुण्डली जीवसंज्ञका।
सूर्यतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश॥१२७॥
परमेष्ठी समाख्याता सूर्यमण्डलवर्तिनी।
नराकारस्वरूपेयं परज्योति:स्वरूपिणी॥१२८॥
गोलकान्तर्ग(तो?ता)देवी ज्योतिर्बिन्दुसमाश्रिता।
अत्रास्ति गोलकं चक्रं गोलोकं इव दृश्यते॥१२९॥

हे देवि! अब कुण्डलिनी के चक्र विवेचन का रहस्य सुनो। इस कुण्डलिनी चक्र का ज्ञान अमृतस्वरूप देह रक्षक तथा जीवन का आधार है। शाम्भव चक्र निर्गुण है, यह तीन प्रकार का है। इसके विज्ञान से आत्मा (अथवा मन्त्र) ज्योति स्वरूप हो जाता है। इडा तथा पिङ्गला नाड़ियों के मध्य में (सुषुम्ना में स्थित) सभी वर्ण ज्योतिरूप हैं। सभी चक्र तथा कुण्डलिनी भी ज्योतिरूपा ही है। चन्द्र से लेकर सूर्य पर्यन्त (इडा से पिङ्गला पर्यन्त) इसमें चौदह चक्र हैं। इसमें बीजरूपा निराकारा कुण्डलिनी शक्ति स्थित रहती है। इस चन्द्रमण्डल वर्तिनी (स्थित रहने वाली) परा कुण्डलिनी शक्ति को तथा इसके भेद को (चक्र–भेदन प्रक्रिया को) जो साधक जानता है, वही योगज्ञ (योग प्रक्रिया–साधन को जानने वाला) है। सभी चक्रों में स्थित पद्मदलों, कोशों, वर्णों तथा देवताओं को भी पूर्ववत् ज्योति स्वरूप ही जानना चाहिए।

चन्द्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक चौदह चक्रों की स्थिति है। यहाँ जीव संज्ञका कुण्डलिनी परापर के नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार सूर्य से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक चौदह चक्रों में सूर्य मण्डलवर्तिनी (कुण्डलिनी) परमेष्ठी कही जाती है। यह नराकार

रूपा तथा ज्योतिस्वरूपिणी है। गोलक (शरीर अथवा मूलाधार) के अन्तर्गत कुण्डलिनी देवी ज्योतिबिन्दु स्वरूप स्वयम्भू लिङ्ग को आश्रित करके स्थित है। यह जो गोलक चक्र है, वह गोलोक के समान दिखाई देता है।

इयं नारायणी काली तारा शून्यनिवासिनी।
सुन्दरी रक्तकाली च महिषमर्दिनी तथा॥१३०॥
मन(सः,सा)कल्पि(तो?ता)मूर्ति स्तेजोरूपाऽपरा च सा।
परमात्मैव रामोऽयं महाविष्णुर्महाशिवः॥१३१॥
निरञ्जनस्वरूपोऽयं कृष्णरूपा च तारिणी।
आत्मप्रकाशिनी नित्या नित्यानन्दस्वरूपिणी॥१३२॥
तस्या मन्त्राणि सुभगे मम मन्त्राणि यानि तु।
पूर्वाम्नायविधानेन शीघ्रकामफलप्रदा॥१३३॥
नानापापहरा देवी वीरस्तद्गतमानसः।
तत्त्वभावं समासाद्य फलतत्त्वं लभेन्नरः॥१३४॥
तव मन्त्राणि देवेशि सर्वार्थदायकानि च।
यथा स्वयंभुवा देवाश्चत्वारः परिकीर्तिताः॥१३५॥
ज्ञातव्याश्च प्रसिद्धाश्च पारम्पर्योपदेशतः।
पर्यायतोऽपि विज्ञेयाः श्रुतिवाङ्मयभेदतः॥१३६॥
तथा त्वयि मया प्रोक्ताः षडाम्नायाश्च सन्निधौ।
स चाम्नायः श्रुतिर्ज्ञेयः श्रुतिश्च वेद उच्यतं॥१३७॥
अतस्त्वयापि गिरिजे गोपनीयः स्वयोनिवत्।

इस ज्योतिर्मय बिन्दु के आश्रय में स्थित देवी को ही नारायणी, काली, तारा, मूल-प्रकृति रक्तकाली त्रिपुर सुन्दरी तथा महिषमर्दिनी दुर्गा कहा जाता है। मन के द्वारा कल्पित (इनकी) तेजोरूपा मूर्ति अपरा कही जाती है। अविनाशिनी, आत्मा का साक्षात्कार कराने वाली (आत्मा रूप से प्रकाशित होने वाली) तथा नित्यानन्द स्वरूपिणी तारा ही निरञ्जन (माया रहित) परमात्मा राम, महाविष्णु, महाशिव तथा कृष्णरूपा है। हे सुभगे! उसके सभी मन्त्र तथा मेरे भी जो सभी मन्त्र हैं, पूर्वाम्नाय विधान से उनकी साधना करने से वे सभी शीघ्र फल देने वाले हैं। इस अनेकों प्रकार के पापों का विनाश करने वाली देवी का जो वीर साधक उसके ध्यान में मन को विलीन कर, उससे तादात्म्य स्थापित करके साधना करता है, वह समस्त फलों के तत्व (सार) रूप फल मोक्ष (अथवा सभी कर्मों का वास्तविक फल) प्राप्त करता है। हे देवेशि! (तारिणी स्वरूपिणी) आप के मन्त्र चारों पुरुषार्थों को देने वाले हैं जैसे ब्रह्मा के देवता स्वरूप चार पुत्र – सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार है जो उनकी तपस्या

के फल स्वरूप सर्वप्रथम उत्पन्न (प्रकट) हुए थे।

सम्प्रदाय परम्परा के अनुसार गुरु-उपदेश द्वारा ही इनका ज्ञान प्राप्त करना प्रसिद्ध (कहा गया) है। वेदों तथा विविध प्रकार के तन्त्र शास्त्रों के बार बार अवलोकन (अध्ययन) से भी इसे जाना जा सकता है। इसी तरह मेरे तथा तुम्हारे द्वारा कहे गये षडाम्नाय (शास्त्रों) के सानिध्य से भी इसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। श्रुतियों के ज्ञान से आम्नायों का ज्ञान होता है तथा श्रुति को ही वेद कहा जाता है। अतः जैसे श्रुति गोपनीय है (अनधिकारी का इसमें प्रवेश नहीं है) उसी प्रकार यह ज्ञान भी गोपनीय है। इसलिए हे गिरजे! स्वयोनिवत् इसे गुप्त ही रखना।

।। मन्त्र दोषस्य कारणम्।।

अत ऊर्ध्वं तु सुभगे रहस्यं परमं श्रृणु॥१३८॥
महामन्त्री यदा देवि साधको दैवयोगतः।
तत्र कस्य जपं कुर्यात् पूजनादिकमेव च॥१३९॥
सर्वदेवनमस्कारं नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः।
जपादिकं तु तस्यैव यत्र शङ्काभिजायते॥१४०॥
गुरोर्गुहीतमन्त्रस्य प्रजपत्यपि साधकः।
भ्रष्टाचारं प्रमादाद्वा आलस्याद्वापि सुन्दरि॥१४१॥
शङ्करस्य गृहीतस्य कथितं यत्र कुत्रचित्।
हीनवीर्यमवाप्नोति मन्त्रादिश्च वरानने॥१४२॥
इत्यादिदोषनाशार्थं विधानं श्रृणु सांप्रतम्।

हे सुभगे! अब आगे एक और परम रहस्य की बात सुनो। भाग्यवश यदि कोई साधक इस महामन्त्र को प्राप्त कर, उसका जप करता है, उस समय यदि वह जप किसी अन्य देवता का तथा पूजनादि कर्म किसी अन्य का करता है तथा श्रद्धापूर्वक नित्य सभी देवताओं को नमस्कार करता है (फिर भी) तो (उसे सिद्धि नहीं मिलती, फलस्वरुप उसके मन में) जपादि कर्म तथा मन्त्र के प्रति शंका उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में मन्त्र निस्तेज होकर प्रभावहीन हो जाता है।

मन्त्र चाहे गुरुपदेश से प्राप्त हो अथवा साक्षात् शंकर से गृहीत हो, उसका जप करने वाला साधक यदि भ्रष्ट (शास्त्र निषिद्ध) आचरण वाला, प्रमादी (भूल-त्रुटि करने वाला) तथा आलसी प्रकृति वाला है एवं इधर-उधर, जहाँ-तहाँ हर किसी से अपने प्राप्त (जपने वाले) मन्त्र को कहता-फिरता है तो वह मन्त्र वीर्य (शक्ति-प्रभाव) हीन हो जाता है। इस प्रकार के (तथा अन्य भी किसी कारण से सिद्ध न होने वाले दूषित) मन्त्रों के दोष निवारण

के लिए किए जाने वाले विधान को, हे देवि! अब सुनो।

।। मन्त्राणां दश-संस्काराः।।

प्रथमं जननं नाम जीवने तु द्वितीयकम्।।१४३।।
तृतीयं ताडनं देवि चतुर्थं बोधनं तथा।
पञ्चमं त्वभिषेकस्तु विमलीकरणं तथा।।१४४।।
आप्यायनं सप्तमं तु अष्टमं तर्पणं स्मृतम्।
नवमं दीपनं प्रोक्तं दशमं गोपनं मतम्।।१४५।।
मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम्।
प्रणवान्तरितान् कृत्वा, मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः।।१४६।।
स्वरव्यञ्जनभेदेन जीवनं तदुदाहृतम्।
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा।।१४७।।
प्रत्येकं वायुबीजेन ताडनं नाम(तः?ततः) शृणु।
मन्त्रं विलिख्य विधिवत् प्रसूनैः करवीरजैः।।१४८।।
तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद्रेफेण बोधनम्।
स्वतन्त्रोक्तविधानेन तदा मन्त्रार्णसंख्यया।।१४९।।
अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद् विशुद्धये।
संचिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत्।।१५०।।
मन्त्रे मलत्रयं देवि विमलीकरणात्मकम्।
तारं व्योमाग्निमनुयुक् दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः।।१५१।।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षयेद् मनोः।
तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनं मतम्।।१५२।।
मनुना वारिणा पात्रे तर्पणं तर्पणं भवेत्।
तारमायारमायोगाद् मनोर्दीपनमुच्यते।।१५३।।
जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं चाप्रकाशनम्।
एते च दश संस्काराः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।।१५४।।
एतान् कृत्वा जपेद् मन्त्रं सदा परहितं प्रिये।

किसी भी दोषयुक्त मन्त्र के शोधन के लिए उसके दश संस्कार किये जाते हैं। जो इस प्रकार हैं – १. जनन, २. जीवन, ३. ताडन, ४. बोधन, ५. अभिषेक, ६. विमलीकरण, ७. आप्यायन, ८. तर्पण, ९. दीपन तथा १०. गोपन।

१. जनन – मातृका यन्त्र में सभी मातृकाओं को लिखकर एक-एक मन्त्र वर्णों का क्रमशः उद्धार करना जनन कहा जाता है। किसी शुभ पीठ पर कुंकुमरोचनादि से मातृका पद्म बनाकर उसमें सभी मातृका वर्णों को लिखे।

फिर जिस मन्त्र का शोधन (संस्कार) करना है, उसके एक-एक वर्ण को भोजपत्र पर पृथक-पृथक उद्धार करते हुए उसी द्रव्य से लिखें।

२. **जीवन** - मन्त्र के स्वर तथा व्यञ्जन वर्णों को पृथक-पृथक करके प्रत्येक वर्ण को प्रणव 'ॐ' से सम्पुटित कर एक सौ आठ बार जप करना 'जीवन' कहा जाता है।

३. **ताडन** - भोजपत्र पर पृथक-पृथक लिखे हुए प्रत्येक वर्ण को घिसे हुए चन्दन मिश्रित जल द्वारा वायुबीज 'यं' का उच्चारण (जप) करते हुए सौ-सौ बार ताडित करना ताडन कहा जाता है।

४. **बोधन** - सम्पूर्ण लिखित मन्त्र को रक्त करवीर के पुष्पों द्वारा अग्निबीज 'रं' का जप करते हुए, वर्णों की जितनी संख्या है, उतनी ही बार घात (चोट) करना बोधन संस्कार कहा जाता है। ताडन, बोधन आदि के लिए मन्त्र वर्णों को पुनः पुनः भोजपत्र पर लिखना चाहिए।

५. **अभिषेक** - पूर्ववत् भोजपत्र पर मन्त्रवर्णों को लिखकर क्रमशः प्रत्येक वर्ण का, वह मन्त्र जिस सम्प्रदाय का है, उसके तन्त्रानुसार (यथा शैव मन्त्र, शैव तन्त्रानुसार, शक्ति मन्त्र शाक्त तंत्रानुसार आदि आदि), मन्त्र में जितने वर्ण हैं उतनी ही संख्या में अश्वस्थ (पीपल) पत्रों को लेकर उनके द्वारा 'अमुष्य मन्त्रस्य अमुकं अक्षरं अभिषिञ्चामि' बोलते हुए (अमुष्य के स्थान पर जिस देवता का मन्त्र है उसका षष्ठी विभक्ति युक्त नाम-यथा 'शिवस्य' 'काल्या:' आदि तथा अमुक के स्थान पर अनुस्वार युक्त वर्ण यथा - 'कं', 'खं' आदि) सिञ्चन करना, अभिषेक कहा जाता है।

६. **विमलीकरण** - साधक के द्वारा मन्त्र का मानसिक चिन्तन (ध्यान) करके, ज्योतिर्मन्त्र (जिसे आगे स्पष्ट किया जायेगा) के द्वारा (उसका जप करते हुए मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर उसकी अग्नि के द्वारा) मन्त्र के सहज, आगन्तुक तथा मायीय रूप मलत्रय को जला देना विमलीकरण कहा जाता है।

तार (ॐ), व्योम (ह), अग्नि (र) तथा मनु (औ) से युक्त दण्डी (अनुस्वार) के द्वारा निष्पन्न मन्त्र "**ॐ ह्रौं**" को ज्योति मन्त्र कहते हैं।

७. **आप्यायन** - मूल मन्त्र का जप करते हुए कुशों द्वारा शुद्ध जल से प्रत्येक वर्ण का सात बार प्रोक्षण करना आप्यायन कहा जाता है। पिङ्गला मतानुसार एक सौ आठ बार प्रोक्षण करना चाहिए।

८. **तर्पण** - मूल मन्त्र का उच्चारण करके अमुं मन्त्रं तर्पयामि नमः (अमुं के स्थान पर मन्त्र देवता का द्वितीया विभक्तियुक्त नाम) बोलते हुए मन्त्र का

एक सौ आठ बार तर्पण करना 'तर्पण' संस्कार कहा जाता है।

९. दीपन – तार (ॐ), माया (ह्रीं) तथा रमा (श्रीं) इन तीन बीजों (ॐ ह्रीं श्रीं) को मन्त्र के आदि में संयुक्त करके सात बार जप करना 'दीपन' कहा जाता है।

१०. गोपन - जप किये जाने वाले मन्त्र को गुप्त रखना, किसी के सम्मुख उसे प्रकाशित(कथन) न करना 'गोपन' कहा जाता है।

मन्त्रों के ये दश संस्कार सभी तन्त्रशास्त्रों में गोपनीय कहे गये हैं। इनके द्वारा मंत्र के दोषों का निवारण करके सदैव परहित में संलग्न रहते हुए जप करना चाहिए।

।।ब्रह्मणः साकार-स्वरूप-निरूपणम्।।

निर्गुणं यत् परं ब्रह्म ज्योतीरूपं निराकृति।।१५५।।
साकारं यदि जायेत सर्वदेहेषु देवता।
रूपत्रयं सदा भूत्वा देहिनां देहभेदतः।।१५६।।
भगाकारं च यद् ब्रह्म लिङ्गाकारस्वरूपतः।
केचित् सेवन्ति सुभगे लिङ्गाकारस्य सर्वदा।।१५७।।
भगाकारं च सेवन्ते विविधा ज्ञानिनः सदा।
स्त्रीजातिरूपा सर्वत्र सर्वदेहेषु जानता।।१५८।।
(या?सा) शक्तिरूपा विज्ञेया पुरुषः शिवरूपधृक्।
तत्र तेषां विशेषार्थं नरदेहे वरानने।।१५९।।
शक्तिः शिवश्च विज्ञेयो मम संकेतमुत्तमम्।
भगं कुण्डं च सुभगे स्रुवं लिङ्गं प्रकीर्तितम्।।१६०।।
ऋतुरग्निश्च सुभगे गर्तमध्ये च क्षेपणम्।
आज्यरूपं मतं शुक्रं मनो होता प्रकीर्तितः।।१६१।।
फलरूपं च तत्रैव नानासंसारकामनाः।
विज्ञाय चैवं यो मन्त्री मनुश्च पीठब्रह्मवत्।।१६२।।
नित्यं च होमयेद् देवि तस्य रूपमनन्तकम्।
यं यं कामादिकं देवि मनसा चिन्त्य कारयेत्।।१६३।।
न दोषगुणविज्ञेयो (यं यं? तं तं) काममवाप्नुयात्।
यथोक्त देवतायाश्च यथोक्तफलमश्नुते।।१६४।।
आयुर्लक्ष्मीं यशो देवि कीर्तिं च मोक्षमाप्नुयात्।
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।।१६५।।
गोप्या गोप्या पुनर्गोप्या जननीजारगर्भवत्।
इति ते कथितं सम्यक् संस्कारक्रममुत्तमम्।।१६६।।

जिस ब्रह्म को निर्गुण, निराकार तथा ज्योतिर्मय कहा जाता है, वही साकार रूप होकर सभी (मानव) शरीरों में इष्ट देवता के रूप में स्थित है। वह सदैव तीन रूपों में विभक्त होकर शरीर-भेद के अनुसार प्राणियों में स्थित है। जो ब्रह्म 'भगाकार' में स्थित है, वही 'लिङ्गकार' में भी स्थित है। हे सुभगे! कुछ मनुष्य 'लिङ्गाकार' ब्रह्म की सेवा करने वाले अर्थात् शिवलिङ्ग की उपासना करने वाले (शैव) हैं तो कुछ ज्ञानी मनुष्य सदैव 'भगाकार' ब्रह्म की विविध प्रकार से सेवा करने वाले (शाक्त उपासक) हैं।

समस्त शरीरों में जो स्त्री रूप शरीर (वाला प्राणी) है उसे शक्ति स्वरूप तथा जो पुरुषाकृत है उसे शिव रूप जानना चाहिए। उन समस्त (स्त्री-पुरुषात्मक नर-मादारूप) शरीरों में मनुष्य का शरीर विशेष अर्थ युक्त (प्रयोजनीय) है। मेरे उत्तम संकेत (शिव-लिङ्ग) को शिव तथा शक्ति (दोनो रूप) जानना चाहिए।

हे सुभगे! 'भग' को (यज्ञीय) कुण्ड तथा लिङ्ग को स्रुवा कहा गया है। ऋतुकाल अग्नि है। 'शुक्र' (वीर्य) को घृत रूप माना जाता है, इसका भगरूप गर्त (कुण्ड) में छोड़ना (त्याग करना) 'आहुति प्रदान' रूप क्रिया है। यहाँ मनुष्य (पुरुष) के मन को ही 'होता' (हवन का कर्ता) कहा गया है। नाना प्रकार की सांसारिक कामनाओं (की पूर्ति) को ही फलरूप माना जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को जानकर जो मन्त्रवेत्ता साधक, बिना दोष-गुण का विचार किये ब्रह्मपीठ रूप योनि में नित्य हवन करता है, उसकी अनन्त प्रकार की कामनायें सिद्ध होती हैं। वह मन में जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उस-उस वस्तु को निश्चय ही प्राप्त करता है। जिस प्रकार का भोग देवताओं के लिए शास्त्रों में कहा गया है, वैसा ही फल भोग उस साधक को भी प्राप्त होता है। उसे इस जीवन काल में आयु, लक्ष्मी, यश-कीर्ति के साथ ही मरणोपरान्त मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। हे देवि! मैंने तुमसे मन्त्र संस्कार क्रम सहित यह जो कुछ भी कहा है उसे माता के जार-गर्भ (परपुरुष से प्राप्त गर्भ) की भाँति सदा गुप्त ही रखना चाहिए। क्योंकि यह विषय अत्यन्त ही गोपनीय कहा गया है।

इदानीं शाम्भवं चक्रं त्रिविधं शृणु पार्वति।
येन विज्ञानमात्रेण ध्रुवं ज्योतिर्मयो भवेत्॥१६७॥
इडापिङ्गलयोर्मध्ये वर्णाश्च ज्योतीरूपिणः।
ज्योतीरूपाणि चक्राणि ज्योतीरूपा च कुण्डली॥१६८॥
चन्द्रतः सूर्यपर्यन्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश।
तत्रास्ति कुण्डलीशक्तिर्बीजरूपा निराकृतिः॥१६९॥

पारेयं कुण्डलीशक्तिश्चन्द्रमण्डलवर्तिनी।
इमं भेदं महेशानि यो जानाति स योगवित्।।१७०।।
दलं कोषं तथा वर्णं तथैव च(न्द्र?क्र)देवताः।
तथैव पूर्ववज्ज्ञेयः सर्वचक्रेष्वयं विधिः।।१७१।।
चन्द्रतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश।
परापरेति विख्याता कुण्डली जीवसंज्ञका।।१७२।।
सूर्यतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं चक्राण्यत्र चतुर्दश।
परमेष्ठी समाख्याता सूर्यमण्डलवर्तिनी।।१७३।।
नराकारस्वरूपेयं परज्योतिःस्वरूपिणी।
गोलकान्तर्गता देवी ज्योतिर्बिन्दुसमाश्रिता।।१७४।।
अत्रास्ति गोलकं चक्रं गोलोक इव दृश्यते।
इयं नारायणी काली तारा स्याच्छून्यवासिनी।।१७५।।
सुन्दरी रक्तकालीयं भैरवी नादिनी तथा।
मन(सः?सा)कल्पिता मूर्तिस्तेजोरूपा परापरा।।१७६।।
परमात्मैव रामोऽयं महाविष्णुर्महाशिवः।
निरञ्जनस्वरूपोऽयं कृष्णरूपा च तारिणी।।१७७।।
आत्मप्रकाशिनी देवी नित्यानन्दस्वरूपिणी।
इति ते कथितं देवि रहस्यं परमाद्भुतम्।।१७८।।
अस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये सुरेश्वरि।
इदानीं शृणु देवेशि परं ब्रह्मस्वरूपकम्।।१७९।।

[श्लोक संख्या १६७ से १७८ की प्रथम पंक्ति तक ग्रन्थ (में वर्णित विषय) की पुनरावृत्ति है। इसका भाव पूर्व के श्लोकों (श्लोक १२१ की द्वितीय पंक्ति से लेकर श्लोक १३२ तक) में पहले ही आ चुका है। श्लोक १७९ का अर्थ सामान्य ही है, परन्तु इसकी दूसरी पंक्ति का सम्बन्ध श्लोक १५५ की दूसरी पंक्ति से होना चाहिए।]

।। ब्रह्मणः जीवत्व-रूपं तच्छक्ति-रूपं च निरूपणम्।।

प्राणस्तु परमेशानि आत्मज्ञानं शुचिस्मिते।
यस्तु प्राणो महेशानि स जीवः परिकीर्तितः।।१८०।।
प्रदीपकलिकाकारो हृदये विद्यते प्रिये।
परं ब्रह्म महेशानि प्रदीपकलिकाकृति।।१८१।।
आत्मान्तरात्मा देवेशि सर्वेषां हृदि वर्तते।
अन्तरात्मा परं ब्रह्म शरीरं व्याप्य तिष्ठति।।१८२।।

द्वये तेजो वरारोहे शक्तिं प्रकृतिरूपिणीम्।
प्राणायामस्य काले तु दृष्ट्वाश्चर्य वरानने॥१८३॥
यद् दृष्टं परमं गुह्यं तन्निशामय योगिनि।
आत्मा ब्रह्मसमो भूत्वा यद् दृष्टं परमेश्वरि॥१८४॥
तदक्षरं महेशानि दृष्टमानन्दमद्भुतम्।
मनो मया महेशानि कृत्वा तत्रैव पार्वति॥१८५॥
सुधार्णवे महेशानि मग्नो भूत्वा वरानने।
लक्षवर्षं महेशानि निर्गतं परमेश्वरि॥१८६॥
प्राणायामक्षणे देवि लक्षवर्षं गतं मम।
यद् दृष्टं परमेशानि निर्दिष्टं तच्छृणु प्रिये॥१८७॥
नातः परतरं किञ्चिद् विद्यते मम गोचरे।
पर्य्यङ्कं परमेशानि आश्चर्य परमाद्भुतम्॥१८८॥
पयःफेननिभा शय्या नानारत्नाविभूषिता।
या शय्या परमेशानि स एवं श्रीसदाशिवः॥१८९॥
तत्रोपरि महेशानि सूक्ष्मां त्रिपुरसुन्दरीम्।
जपायावकसिन्दूर - सदृशाकृतिरूपिणीम्॥१९०॥
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पञ्चबाणधनुर्धराम्।
वरदाभयहस्तां च धारिणीं परमेश्वरीम्॥१९१॥
दृष्ट्वानन्दमयीं लोलां लक्षवर्षं गतं मम।
यदा तु परमेशानि मम दृग्गोचरं गतः॥१९२॥
तदैव सहसा तत्र सूक्ष्मरूपत्वमागतः।
ध्यानभङ्गे महेशानि तदैव मम सुन्दरि॥१९३॥
तत्रैव दृष्टं ब्रह्माण्डं ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः।
शक्तिं बिना महेशानि नास्ति किञ्चिद् मम प्रिये॥१९४॥
शक्तिर्हि ब्रह्मणो रूपं शक्तिरूपं वरानने।
शक्तिं बिना महेशानि न किञ्चिद् मम गोचरे॥१९५॥

इस मनुष्य शरीर में साक्षात् ब्रह्म ही प्राण रूप से स्थित है। हे महेशानि! इस प्राण को ही जीव कहा जाता है। इसे ही आत्मा अथवा जीवात्मा भी कहा जाता है। इस जीवात्मा द्वारा विविध प्रकार की साधनाओं के आश्रय से उत्पन्न विवेक द्वारा स्वयं के वास्तविक (ब्रह्म) स्वरूप को जान लेना ही आत्मज्ञान है। यह जीव कलिकाकार दीप-शिखा की भाँति मनुष्य के हृदय में स्थित है। प्रदीप कलिकाकार (दीप ज्योति के समान) इस आत्मा

(जीव) के अन्तरात्मा रूप से परं ब्रह्म सभी मनुष्यों के हृदय में स्थित है। यह अन्तरात्मा रूप पर ब्रह्म पूर्ण शरीर को व्याप्त करके स्थित है। आत्मा तथा अन्तरात्मा इन दोनों में स्थित तेज प्रकृतिरूपिणी शक्ति है। हे वरानने! प्राणायाम काल में (योग साधना के समय) मैंने जो परम गोप्य अद्भुत दृश्य देखा उसे, हे योगिनि! सुनो।

ब्रह्म चिन्तन के समय उस ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त कर ब्रह्म-सम होकर मैंने देखा (अनुभव किया) कि वह अक्षर ब्रह्म अद्भुत आनन्द स्वरूप है। मन को उस आनन्द रूप अमृत मय समुद्र में लीन करके (समस्त बाह्य तथा अन्तर्वृत्तियों से शून्य हुआ मैं) निरन्तर एक लाख वर्षों तक डूबा रहा। इस (कुम्भक रूप) प्राणायाम में ही ये लक्ष वर्ष व्यतीत हो गये। उस अवस्था (काल) में मैंने जो कुछ भी देखा (अनुभव किया) उसे, हे प्रिये! कहता हूँ सुनो! मेरी दृष्टि में अभी तक इससे श्रेष्ठ (अद्भुत) कोई भी वस्तु (अथवा दृश्य) नहीं आई है।

मैंने वहाँ एक परम आश्चर्यजनक पर्यङ्क (पलङ्ग) देखा, जिस पर दूध के फेन (झाग) के समान (स्वच्छ धवल) शय्या (बिस्तर) स्थित थी तथा वह पर्यङ्क अनेकों प्रकार के रत्नों से अलङ्कृत था। पर्यङ्क पर स्थित उस शय्या के रूप में श्री सदाशिव ही विराजमान थे। उस शय्या रूप सदाशिव के ऊपर सूक्ष्मा त्रिपुर सुन्दरी विराजित थीं। उनके शरीर का वर्ण जपा कुसुम, यावक (लाख अथवा महावर) तथा (अथवा) सिन्दूर के समान रक्त था। वे त्रिनेत्र धारिणी तथा चार भुजाओं से युक्त थीं। उनकी भुजाओं में पञ्चपुष्प बाण, धनुष (इक्षुमय), वर तथा अभय मुद्रा धारित थी। उस आनन्दमयी मूर्ति को देखकर (आनन्द सागर में) डूबते-उतराते मेरे लाख वर्ष व्यतीत हो गये। हे परमेशानि! जब मैं उसे देख ही रहा था कि अचानक वह दृश्य अत्यन्त सूक्ष्म रूप को प्राप्त हो गया। तब हे सुन्दरि! उस दृश्य से मेरा ध्यान भङ्ग होने पर मैंने वहीं पर सारे ब्रह्माण्ड सहित ब्रह्मादि त्रिदेवों तथा सभी स्वर्ग के अन्य देवों को भी देखा। हे मम प्रिये! इस ब्रह्माण्ड में शक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी वस्तु (तत्व) नहीं है। निश्चित ही शक्ति ब्रह्मरूप है तथा ब्रह्म शक्ति रूप है, दोनों में कोई भेद नहीं है। मेरी दृष्टि में शक्ति के बिना किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है।

एवं हि क्रमतो देवि मातृकान्यासमुत्तमम्।
कृत्वा न्यासं महेशानि मातृका विश्वमोहिनी॥१९६॥
अतः परं महेशानि श्रीकण्ठन्यासमाचरेत्।
श्रीकण्ठन्यासमात्रेण शिवोऽहं कमलानने॥१९७॥
श्रीकण्ठं परमेशानि त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्।
पूर्वोक्तेन क्रमेणैव सर्वं कुर्यात् शुचिस्मिते॥१९८॥

सर्वं कुर्याद् महेशानि यत्नतः परमेश्वरि।
ध्यायेत् शिवां वरारोहां हृत्प(त्र?द्ये)कमलेक्षणे॥१९९॥
हृत्पद्मं परमं स्थानं ब्रह्मस्थानं सुरार्चिते।
जीवस्य स्थानमेतत्तु हृदयं परमं पदम्॥२००॥
हृत्पद्मं द्वादशदलं सहस्रादित्यवर्चसम्।
तन्मध्ये भावयेद् देवं शिवं मृत्युञ्जय प्रिये॥२०१॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं महाप्रभम्।
आजानुबाहुं देवेशि पद्मवक्त्रं सुवीक्षणम्॥२०२॥
किरीटनं कुण्डलिनं केयूराङ्गदशोभितम्।
सततं हास्ययुक्तं च दन्तपङ्क्तिविराजितम्॥२०३॥
रुद्राक्षशोभितोरस्कं जटाशोभितमस्तकम्।
व्याघ्रचर्मपरीधानं दशबाहुविराजितम्॥२०४॥
एवं ध्यात्वा महादेव सदा मृत्युञ्जयं प्रिये।
शक्तियुक्तं महादेवं सर्वाङ्गसर्वमोहनम्॥२०५॥
सर्वाङ्गचिन्तनं कृत्वा एकाङ्गं चिन्तयेत् ततः।
एकाङ्गं तु परित्यज्य समाधिर्जायते ततः॥२०६॥
समाधिकाले देवेशि यत्तेज उपपद्यते।
तन्निशामय देवेशि ज्ञानं परमदुर्लभम्॥२०७॥
सर्वाङ्गं तु परित्यज्य यत्तेज उपजायते।
स एव परमेशानि शिवो मृत्युञ्जयः प्रिये॥२०८॥
प्रदीपकलिकाकारां प्रकृतिं विद्धि पार्वति।
तत्र तेजसि देवेशि अन्तरात्मा सदा स्थितः॥२०९।॥
अन्तरात्मा महेशानि कार्यकारणवर्जितः।
भ्रमरे भ्रमरीं बद्ध्वा हृत्पद्मे परमेश्वरि॥२१०॥
योगस्थस्य महेशानि लक्षवर्षं गतं मम।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (यन्त्रमन्त्रान्तरप्रयोग-तत्संस्कारादिविधानरूपणं) अष्टमः पटलः॥८॥

[श्लोक संख्या १९६ से लेकर २१० तक में वर्णित विषय का, पूर्व के श्लोकों (१८० से १९५) में वर्णित प्रसङ्ग से किसी भी प्रकार से सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता। पूर्व के श्लोक स्वयं भैरव (शिव) द्वारा ध्यानावस्था में अनुभूत दृश्य से सम्बन्धित हैं जबकि वर्तमान श्लोक किसी साधक को साधन क्रिया का निर्देश करते हुए प्रतीत होते हैं। यदि इन्हें पूर्व प्रसङ्ग से स्वतन्त्र मान लिया

जाय तो 'एव हि क्रमतो' के आधार पर इससे पहले की क्रिया से सम्बन्धित श्लोक भी होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है। श्लोक संख्या २१० के पश्चात् स्वतंत्र रूप से लिखित पंक्ति ही इन श्लोकों का सम्बन्ध पूर्व के प्रसङ्ग से दर्शाती है। इस प्रकार यह पूरा लेखन ग्रन्थकर्ता के प्रमाद को ही प्रदर्शित करता है।

व्याख्या कर्ता द्वारा इन (१९६ से २१० तक) श्लोकों को पूर्व प्रसङ्ग से स्वतन्त्र मानते हुए व्याख्या की जा रही है।]

साधक भू शुद्धि, आसन शुद्धि आदि करके विहित आसन पर सुखासन (स्वानुकूल) आसन में बैठकर प्राणायाम करे। इसके पश्चात् क्रमशः अन्तर्मातृका न्यास तथा बहिर्मातृका (संहार-सृष्टि स्थित) न्यास करके श्रीकण्ठ न्यास करे। हे कमलानने! इस श्रीकण्ठ न्यास मात्र से ही मैं शिव स्वरूप (शिवत्व को प्राप्त) हूँ। हे परमेशानि! यह श्रीकण्ठ न्यास त्रैलोक्य में अत्यन्त दुर्लभ है। हे परमेश्वरि! पूवोक्त क्रम से (ग्रन्थ में इससे पूर्व कहीं भी इन न्यासों का वर्णन नहीं है) सभी न्यासों को प्रयत्नपूर्वक करे। तत्पश्चात् हे कमलेक्षणे! साधक को अपने हृदय कमल में (पर) सुन्दरी शिवा का ध्यान करना चाहिए। मनुष्य शरीर में स्थित सर्वोत्कृष्ट स्थान हृत्पद्म है, इसे ब्रह्मस्थान कहा जाता है। हृत्पद्म द्वादश (बारह) दलों वाला तथा हजारों सूर्य के समान तेजस्वी है। उसके मध्य में (पुनः) मृत्युञ्जय देव शिव की भावना (ध्यान) करे।

मृत्युञ्जय शिव के शरीर की आभा स्वच्छ स्फटिक के समान अत्यन्त धवल (गौर वर्ण) है। उनके देखने में सुन्दर पाँच मुख हैं। घुटनों तक लम्बी दश भुजाएं हैं। जटाओं से शोभित मस्तक (शिर) पर मुकुट, कानों में कुण्डल, रुद्राक्ष की मालाओं से अलङ्कृत हृदय प्रदेश तथा बाहों में केयूर सहित अङ्गद शोभायमान है। मुख (धवल) दन्त पंक्तियों से लसित तथा सुन्दर हास्य (मुस्कान) से युक्त है। वे शरीर पर व्याघ्र चर्म का परिधान (वस्त्र) धारण किये हुए हैं। हे प्रिये! इसी प्रकार (इसी स्वरूप में) सर्वदा मृत्युञ्जय देवता महादेव का ध्यान करना चाहिए। शक्ति सहित विराजमान महादेव के सभी अङ्ग सर्वजन मोहक हैं। ध्यान के लिए पहले सभी अङ्गों सहित सम्पूर्ण शरीर का ध्यान करे। फिर धीरे-धीरे ध्यान को एकाङ्ग पर स्थिर कर दे अर्थात् एक ही अङ्ग का ध्यान करे। धीरे-धीरे जब एकाङ्ग का भी ध्यान लुप्त हो (छूट) जाता है तो समाधि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। समाधि काल में जिस तेज की उत्पत्ति होती है, हे देवेशि! उसको सुनो, इसका ज्ञान परम दुर्लभ है। सर्वचिन्तन रहित होने पर (निर्विकल्प समाधि की अवस्था में) जिस उत्पन्न तेज (ज्योति) की अनुभूति होती है, हे प्रिये! वह मृत्युञ्जय शिव ही है। हृदय में प्रदीप

कलिकाकार जो ज्योति है, उसे प्रकृति जानना चाहिए। उस दीपशिखा रूपी तेज में (मृत्युञ्जय शिव रूप) अन्तरात्मा की सदा स्थिति है। हे महेशानि! अन्तरात्मा सर्वदा कार्य-कारण भाव से रहित है। भ्रमर तथा भ्रमरी जैसे परस्पर बद्ध हों उसी प्रकार हृदय-कमल में आत्मा (जीव) तथा अन्तरात्मा (परमात्मा) परस्पर संयुक्त रूप से स्थित होते हैं। इस तरह योगस्थ रहते हुए मेरे लाख वर्ष व्यतीत हुए।

।।श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
यन्त्रमन्त्रान्तर प्रयोग तत्संस्कारादि विधि निरूपण नामक
आठवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पन्न हुई।।

◆

॥ नवमः पटलः॥

(वीर साधन विधानम्)

॥ गृहान्तिके मन्त्र-साधनम्॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि साधनान्तरमुत्तमम्।
यत्कृते परमेशानि कृतार्थो नात्र संशयः॥१॥
प्रासादस्यान्तिके देवि कदलीस्तम्भनं भवेत्।
तत्र वेदिं महेशानि वृक्षं तत्र प्ररोपयेत्॥२॥
रक्तासने चोपविश्य साधयेद् वीरसाधनम्।
मातृकान्यासमाचर्य्यपूजयेत् परमेश्वरीम्॥३॥
षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेत् परदेवताम्।
पाद्यं दद्याद् महादेव्यै गोमूत्रमिश्रितं पयः॥४॥
ताम्रपात्रे मधु दत्त्वा दुग्धयुक्तं हविर्युतम्।
घनीभूतं महेशानि दधि दद्यात् सशर्करम्॥५॥
आचमनीयं देवेशि कांस्येनैव प्रदापयेत्।
नैवेद्यं परमं दद्यात् सुस्वादु सुमनोहरम्॥६॥
मधुयुक्तं नारिकेलं तक्रं च शर्करान्वितम्।
दत्त्वा देव्यै महेशानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥७॥
अन्नं दद्याद् महेशानि सामिषं परमं शुभे।
सप्ताहं व्याप्य तत्रैव जपेत् तद्गतमानसः॥८॥

हे देवि! अब मैं एक अन्य साधन का वर्णन करता हूँ, जिसके करने से साधक निःसन्देह कृतार्थ (स्वाभीष्ट प्राप्त) हो जाता है। अपने भवन के समीप खुले प्राङ्गण में चारों ओर कदली स्तम्भ तथा यज्ञीय वृक्षों का (पत्र पुष्पादि सहित वृक्ष की शाखाओं अथवा पौधों का) रोपण करके उसके मध्य में वेदी बनाकर उस पर लाल आसन बिछाकर 'वीर साधन' के लिए बैठे। अपने शरीर में मातृका न्यासादि (भूत शुद्ध्यादि पूर्वक) करके परमेश्वरी का पूजन करे। षोडशोपचारों द्वारा परदेवता का पूजन करना चाहिए। गोमूत्र मिश्रित जल पाद्य के लिए महादेवी को प्रदान करे। ताम्रपात्र में मधु अर्पित करके

मक्खन युक्त दुग्ध तथा शकर युक्त घनीभूत (गाढ़ा जमा हुआ) दधि प्रदान करे। कांसे के पात्र में आचमन के लिए सुवासित शुद्ध जल निवेदित करे। नैवेद्य में परम सुन्दर, रुचिकर तथा सुस्वादु युक्त पदार्थ प्रदान करे। मधु युक्त नारियल तथा शकर सहित तक्र (मट्ठा अथवा दही) नैवेद्य के रूप में महादेवी को समर्पित करके साधक निश्चित रूप से शीघ्र ही जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। देवी को नैवेद्य के रूप में मांस सहित अन्न स बने भोज्य पदार्थ भी प्रदान करना चाहिए। सम्पूर्ण पूजन के पश्चात् देवी के ध्यान में चित्त को लीन करके मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार यह पूजन तथा मन्त्र जप का क्रम सात दिनों तक करना चाहिए।

गते तु प्र(हरे?थमे)यामे द्वितीयप्रहरावधि।
रुद्राक्षमालया देवि जपेद् वीतभयः सदा॥९॥
सप्ताहाभ्यन्तरे देवि सिद्धो भवति मानवः।
मातृकाक्षरसंयुक्तां विद्यां यद्वा न्यसेत् ततः॥१०॥
मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेद् मन्त्रमनन्यधीः।
एकाक्षरं यदि भवेद् दिक्सहस्रं ततो जपेत्॥११॥
द्व्यक्षरे त्वष्टसाहस्रं त्र्यक्षरे त्वयुतार्धकम्।
ततः परं तु मन्त्राणां गजान्तकसहस्रकम्॥१२॥
निशायां जपमारभ्य उदयान्तं समाचरेत्।
जपादौ च बलिं दत्त्वा पश्चादपि बलिं हरेत्॥१३॥
जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषते।
तदापि च बलिं दद्याच् छागलं वापि माहिषम्॥१४॥
न दिक्षु वीक्षणं किञ्चिन् न वा बन्धुसमागमः।
गजारिदुष्टसर्पाणां मृगानां दंष्ट्रिणां तथा॥१५॥
पक्षिकीटपिशाचानां यद्यन्मनसि संस्थितम्।
तत्सर्वं स्वप्नवत् बु(द्धय?ध्वा)भयं सर्वत्र वर्जयेत्॥१६॥

हे देवि! साधक रात्रि का प्रथम प्रहर (याम) व्यतीत हो जाने पर जप प्रारम्भ करके द्वितीय प्रहर की समयावधि (लगभग तीन घण्टे) तक जप करे। बिना भयभीत हुए रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिए। इस प्रकार एक सप्ताह में मनुष्य मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

यदि साधक, मातृका वर्णों का पृथक-पृथक संयोग (अथवा उनसे सम्पुटित) करे मन्त्र का जप करता है (अथवा सम्पूर्ण मातृका वर्णों को अनुलोम विलोम करके उसके द्वारा सम्पुटित मन्त्र का जप करता है) तो एकाग्रचित्त होकर मन्त्र पर ही ध्यान को केन्द्रित करके जप करना चाहिए।

यदि एकाक्षरी (ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि रूप) मन्त्र है तो उसका दश हजार, द्वयक्षरी मन्त्र का आठ हजार, त्र्यक्षर मन्त्र का पाँच हजार तथा इससे अधिक वर्णात्मक मन्त्र होने पर एक हजार आठ बार जप करना चाहिए। रात्रि में जप का प्रारम्भ कर प्रातः सूर्योदय (रात्रि के अन्तिम प्रहर) तक जप करना चाहिए। जप के प्रारम्भ तथा समाप्ति पर (प्रतिदिन) बलि प्रदान करे। जप के मध्य अथवा अन्त में यदि 'देहि-देहि' की ध्वनि सुनाई दे तो उस स्थिति में बकरे अथवा भैंस की बलि प्रदान करना चाहिए। जप काल में तथा बलि के समय भी साधक को न तो इधर-उधर देखना चाहिए और न ही बन्धु-बान्धवों को साथ रखना चाहिए। सिंह, (भयङ्कर) दाढ़ों वाले पशुओं, दुष्ट सर्पों तथा पक्षी, कीटो, पिशाचों आदि जिन-जिन प्राणियों का, जप काल में मानसिक दर्शन हो, उन सभी को मन में स्थित स्वप्न के समान समझ कर सब प्रकार से भय का त्याग कर (निर्भय होकर) जप करना चाहिए।

समाप्य साधनं देवि दक्षिणां विभवावधि।
गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै चापि दापयेत्॥१७॥
सम्यक् सिद्धस्य मन्त्रस्य नासाध्यं विद्यते क्वचित्।
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा रुद्र एव सः॥१८॥
यतः सर्वत्र देवेशि गुरुपूजा गरीयसी।
तदग्रे मन्त्रतन्त्राणां भाषणं नैव कारयेत्॥१९॥
पूजिते गुरुपादे वै सर्वदैव सुखी भवेत्।
सर्वेषां तन्त्रमन्त्राणां प्रितासौ परमेश्वरः॥२०॥
अन्यदेवसपर्या वा चान्यदेवस्य कीर्त(नात्?नम्)।
गुरुदेवं बिना देवि तदग्रे नरके स्थितिः॥२१॥

साधन की समाप्ति पर साधक अपनी सामर्थ्य (वैभव) के अनुसार गुरु, गुरुपत्नी तथा (अथवा) गुरु पुत्र को दक्षिणा प्रदान करे। जिसने भली-भाँति एक भी मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर ली है, उस साधक के लिए संसार में कोई भी कर्म असाध्य नहीं है। परन्तु जिसने अनेकों मन्त्रों को सिद्ध कर लिया है, वह तो साक्षात् रुद्र ही है, उसके महत्व के विषय में कुछ कहना अनावश्यक ही है। क्योंकि हे देवेशि! सभी साधनाओं में गुरु की पूजा (सेवा) ही सर्वोच्च मानी जाती है। गुरु के सामने साधक (शिष्य) को तन्त्र-मन्त्रों (की साधनाओं तथा उसकी महिमा) के विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहिए। गुरु-चरणों की पूजा (सेवा) से ही साधक सर्वदा सुखी हो जाता है। गुरु, सभी तन्त्रों तथा मन्त्रों (एवं उनके शास्त्रों) को प्रकट करने वाले पितावत् परमेश्वर (शिव) के समान है। यदि कोई साधक (शिष्य) गुरु

की आज्ञा के बिना, उनके सम्मुख अपने इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्य देवता की पूजा तथा उसका कीर्तिगान (स्तुति अथवा स्तोत्रपाठ) करता है तो उसे नरक की ही प्राप्ति होती है।

।।शवासने वीरसाधनेन पुरश्चर्या साधनम्।।

शवारु(ढा?ढो)यदि भवेत् तद्विशेष इहोच्यते।
शून्यागारे बिल्वमूले नदीतीरे चतुष्पथे।।२२।।
शवासन(र?ग)तो मन्त्री चिन्तयेद् वीरसाधनम्।
चण्डालं चाभिभूतं वा शीघ्रसिद्धिफलप्रदम्।।२३।।
आनीय स्थापयेदादौ न्यासजालं समाचरेत्।
पीठमन्त्रं समालिख्य गन्धपुष्पादिनार्चयेत्।।२४।।
अभ्यर्च्य चासनं दत्त्वा आत्मरक्षां च कारयेत्।
ततः शवास्ये विधिवद् देवताप्यायनं ततः।।२५।।
मन्त्रान्ते भुवनेशी स्याद् फडन्तो मन्त्र ईरितः।
महानीलक्रमः देवि सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।२६।।
न कस्यचित् प्रवक्तव्यं गोप्तव्यं प्रीतये मम।
सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसधाने।।२७।।
ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेत् वीरसाधनम्।
महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधानं साधयेत् प्रिये।।२८।।
श्मशाने हि पुरश्चर्या कथिता भुवि दुर्लभा।
श्मशानसाधनं देवि मतं साधनमुत्तमम्।।२९।।
श्मशानस्थो यदि भवेत् जपन् मन्त्रमनन्यधीः।
स सर्वसाधनं कृत्वा देवीलोके महीयते।।३०।।

इति श्री बृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (वीरसाधनविधानं)
नवमः पटलः।।९।।

यदि साधक शव पर स्थित होकर साधन करने का इच्छुक है तो उसके विषय में यहाँ विशेष रूप से कहता हूँ। शून्य भवन (कक्ष) में, बेल-वृक्ष के नीचे, नदी तट पर अथवा (जन शून्य) चौराहे पर शवारूढ होकर साधक वीर साधन करे। चाण्डाल अथवा युद्ध में मृत व्यक्ति का शव शीघ्र ही सिद्धि रूप फल देने वाला होता है। ऐसा कोई भी शव लाकर साधन स्थल पर स्थापित करके यथाविधि विभिन्न प्रकार के न्यासों को (शव के शरीर में) करे। उस पर पीठ मन्त्र **'ॐ शवासनाय नमः'** लिखकर गन्ध पुष्पादि से उसका अर्चन करे। अर्चना के पश्चात् उस पर आसन बिछा करके आत्मरक्षा करे। इसके बाद शव के मुख में देवता के लिए तर्पण (पूजन)

करे। आसन पर बैठते समय **'ॐ शवासनाय नमः ह्रीं फट्'** मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। महानील क्रम से की गई साधना सभी सिद्धियों को देने वाली होती है। इसे सदैव गुप्त रखना चाहिए, किसी भी व्यक्ति के सम्मुख इसका वर्णन नहीं करना चाहिए। शव साधना में सभी प्राणियों (मनुष्यों) के जीव रहित (मृत) शरीर का प्रयोग किया जा सकता है। केवल ब्राह्मण का मृत शरीर वीर साधना में वर्जित है। क्योंकि ब्राह्मण को गाय के समकक्ष माना गया है। इस साधना के लिए चाण्डाल का शव विशिष्ट (मुख्य) कहा गया है। हे देवि! इस पृथ्वी पर दुर्लभ पुरश्चर्या हेतु श्मशान में की जाने वाली शवसाधना का मैंने वर्णन किया। हे देवि! श्मशान साधना (अथवा शव साधना) को सभी साधनाओं में श्रेष्ठ माना गया है। यदि महामन्त्र की साधना करने वाला साधक श्मशान में (अथवा शव पर) स्थित होकर जप करता है तो, समस्त साधनों के फलस्वरूप देवी लोक में महिमामण्डित होकर निवास करता है।

।।श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत
वीरसाधन विधान नामक नवम पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पन्न हुई।।

◆

॥ दशमः पटलः॥

(साधनान्तर-विधान निरूपणम्)

॥ शव-मुण्ड-साधनम्॥

श्रीभैरव उवाच

इदानीं शृणु चार्वङ्गि येन सिद्धो भवेद् मनुः।
शवमुण्डं समादाय मङ्गले वासरे निशि॥१॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनैकेन संयुतम्।
अर्द्धहस्तमिते गर्ते हरिद्रारोचनायुते॥२॥
क्षिपेत् तत्र शवमुण्डं रजतेन समन्वितम्।
मृत्तिकया पूरयित्वा सर्वं संस्कृत्य शोधयेत्॥३॥
तत्रोपरि विशेद् देवि क्रमेण हि समन्वितः।
सहस्रस्य प्रमाणेन जपं कुर्यात् समाहितः॥४॥
समाप्ते तु जपे तत्र पूजयेत् परमेश्वरीम्।
एवं त्रिदिनमध्ये तु सिद्धो भवति मानवः॥५॥
इति ते कथितं भद्रं प्रयोगं सिद्धिदायकम्।
अष्टमीसन्धिवेलायां अष्टोत्तरशतं जपेत्॥६॥
सप्तदिनप्रयोगेन सिद्धिमाप्नोति मानवः।

हे चार्वङ्गि! अब एक अन्य प्रयोग (साधन) सुनो, जिसके द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मङ्गलवार की रात्रि में (श्मशान से) शव मुण्ड लाकर, चन्दन मिश्रित पञ्चगव्य से उसे प्रक्षालित अथवा लिप्त करके, आधा हाथ गहरा गड्ढा खोद कर, उसमें हल्दी तथा गोरोचन का लेपन करके उस शव मुण्ड को उसमें रखकर गड्ढे को मिट्टी से पूरा भर दे। तत्पश्चात् उस स्थान का संस्कार करके शोधन कर उसके ऊपर (आसन बिछाकर) बैठे। तदुपरान्त यथा विधि सभी न्यासों को करके सावधानीपूर्वक एकाग्रचित्त होकर मन्त्र का एक हजार जप करे। जप की समाप्ति पर वहीं परमेश्वरी (मन्त्र देवता) का पूजन करे। इस प्रकार तीन दिनों तक साधना करने से मनुष्य मन्त्र-सिद्ध हो जाता है। हे देवि! तुमसे यह मैंने सिद्धिदायक कल्याणकारी (श्रेष्ठ) प्रयोग का वर्णन किया।

यदि साधक सन्ध्याकालीन (अथवा रात्रिकालीन) अष्टमी तिथि होने पर उस समय से जप प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करे तो, सात दिन के प्रयोग से साधक मन्त्र-सिद्ध हो जाता है।

॥ लतासाधनेन मन्त्र सिद्धिः॥

शनौ च सन्धिवेलायां गृहे लताख्यकं यजेत्॥७॥
जपेदेकाकी विजने लतासाधनतत्परः।
एवं कृते महादेवि सिद्धिमाप्नोति साधकः॥८॥
पूर्वोक्तकल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरन्।
केवलं कामदेवोऽसौ जप्त्वा चाष्टोत्तरं शतम्॥९॥
साप्ताहाभ्यन्तरे देवि महदैश्वर्य्यमाप्नुयात।

(अष्टमी युक्त) शनिवार को सांयकाल गृह में स्त्री को लाकर तथा विधिवत् उसकी पूजा करके एकान्त जन शून्य स्थान में प्रतिदिन लता साधन में तत्पर होकर एकाकी (अकेला) जप करे तो साधक शीघ्र ही (थोड़े दिनों में) सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

पूर्वोक्त कल्प (प्रयोग) का आश्रय लेकर स्त्री का पूजन आदि करके यदि कामदेव रूप वह साधक केवल मूल मन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करता है, तो सात दिनों के मध्य ही उसे महान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

विशेषं शृणु चार्वङ्गि तन्त्रेषु सर्वकामदम्॥१०॥
येन विज्ञानमात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।
तासां मूले तु देवेशि उग्रां संपूज्य साधकः॥११॥
महासिद्धिर्भवेद् देवि सत्यं सत्यं वरानने।
कुलाकृष्टलतागारे लिखित्वा मन्त्रमेव च॥१२॥
प्रपूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेदयेत्।
किञ्चित् जप्त्वं मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः॥१३॥
तां प्रपूज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः।
प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्भवेन् नृणाम्॥१४॥

हे चार्वङ्गि! तन्त्रशास्त्रों में कथित एक विशेष सर्वाभीष्ट प्रद साधन को सुनो। जिसके विज्ञान मात्र से ही आठों सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। हे देवेशि स्त्री के मूल में 'उग्रा' का पूजन करके साधक सत्य ही महासिद्ध हो जाता है। साधन हेतु कुल स्त्री को गृह में आमन्त्रित कर उसके मूल (योनि) पर तारा (उग्रा) का मन्त्र लिखकर उसमें देवी उग्रतारा का पूजन करे। तत्पश्चात् मद्य का संस्कार करके उसे प्रदान करे। स्वयं भी ग्रहण करके देवता के ध्यान में लीन होकर कुछ काल तक जप करे। तदुपरान्त पुनः

उसकी पूजा एवं नमस्कार करके मन्त्र का जप करे। प्रातः काल स्त्रियों को आमन्त्रित करके उनका सत्कार कर उन्हें बलि (भोजनादि) प्रदान करे। इस प्रकार मनुष्यों को मन्त्र की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

।। वीर (शव) साधनम्।।

भूमिपुत्रसमायुक्ता अमावास्या शुभप्रदा।
भाद्रे पुष्करयोगेन तस्यां वीरवरोत्तमः।।१५।।
विष्णुक्रान्तां समानीय निक्षिपेद् मृतभूमिषु।
तत्र तां सचितां कृत्वा तद्दिने मृतहट्टके।।१६।।
तत्र प्रसार्य तां मत्स्यत्वक्स्नेहेन दापयेत्।
तज्जलेनाभिषेकं च पूर्ववच्च शवोपरि।।१७।।
सचितां विजयां तस्य उदरे मुखवर्त्मना।
क्षिप्त्वा तत्रैव तत् मत्स्यमञ्जनान्वितलोचनः।।१८।।
तिलकं पूर्वद्रव्येण तथाजस्रं मनुं जपेत्।
स्वयमायाति भगवान् भैरवो भीमबाहुकः।।१९।।
गतभीतिस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेद् मनुम्।
यदि भाग्यवशाद् देवि लगुडस्तत्र लक्ष्यते।।२०।।
तदा स्वयं भैरवोऽसौ साक्षाद् वीरेश्वरो भवेत्।
मत्स्यमानीय देवेशि निक्षिपेत् पितृकानने।।२१।।
तत्रासकृज् जपित्वा च देवतामेलनं भवेत्।
निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः।।२२।।
दिग्वासा विमलो भस्मभूषणो मुक्तकेशकः।
कृपाणी खड्गहस्तश्च जपेन् मातृकया यदि।।२३।।
तदा तस्या महादेवि सर्वसिद्धिः करे स्थिता।
डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यां वा गणसुन्दरीम्।।२४।।
तत्र चानीय संपूज्य सर्वसिद्धिश्वरो भवेत्।

मङ्गलवार से युक्त अमावस्या किसी भी साधना के लिए शुभदायक होती है। भाद्रपद मास की ऐसी अमावस्या को पुष्कर (पद्म) योग होने पर श्रेष्ठ वीर साधक विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) को लाकर श्मशान भूमि पर रखे। फिर उसी दिन (रात्रि में) ही श्मशान में उसे चैतन्य (प्राण-प्रतिष्ठित) करे। इसके बाद साधना के लिए पहले से ही लाये हुए (अथवा वहीं पर उपलब्ध) शव को भूमि पर लिटा कर, उस पर मछली का तेल लगाकर फिर उसे 'ॐ मृतकाय नमः' मन्त्र द्वारा जल से स्नान कराकर उस प्राण-प्रतिष्ठित अपराजिता को मुख मार्ग द्वारा शव के उदर

में डाल दे। तदुपरान्त नेत्रों में मत्स्य-तेल का अञ्जन तथा उसी से तिलक लगाकर वहीं बैठकर के निरन्तर मन्त्र का जप करे। ऐसा करने पर बड़ी-बड़ी बलिष्ठ बाहों वाले भगवान भैरव स्वयं साधक के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। वीर साधक उन्हें देखकर बिना भयभीत हुए मन्त्र का जप करता रहे।

यदि जपकाल के मध्य साधक को लगुड (लाठी-दण्ड) का दर्शन हो तो उसे स्वयं साक्षात् वीरवर भैरव का ही स्वरूप समझना चाहिए। इस समय मछली की बलि उन्हें प्रदान करना चाहिए। इसके बाद निरन्तर जप करते रहने पर उसी रात्रि उस श्मशान भूमि में आनन्द से उन्मत्त (मतवाले), दिगम्बर, शरीर पर धवल भस्म लगाये हुए, खुले हुए शिरः केश वाले तथा हाथ में कृपाण एवं खड्ग लिए हुए भैरव देवता से साधक का साक्षात्कार (सम्मिलन) हो जाता है। उस समय (अथवा प्रारम्भ से ही) मातृका सहित मन्त्र का जप करने से साधक के लिए सभी सिद्धियाँ सहज ही उपलब्ध हो जाती हैं। इसके पश्चात् डाकिनी-योगिनी आदि शक्तियों का पूजन करके स्वगृह में सुन्दर स्त्रियों को आमन्त्रित करके उनका पूजन करे। इस प्रकार वह सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

।। श्री गुरुं तत्सम्बन्धिनश्च पूजनम्।।

गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजयेद् विभुम्।।२५।।
वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः स्वयं संतोषयेद् गुरुम्।
तत्सुतं तत्सुतां वापि तत्पत्नीं च विशेषतः।।२६।।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धिश्वरो भवेत्।
सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च।।२७।।
केवलं देवभावेन जप्त्वा सिद्धिश्वरो भवेत्।
गुरोरनुज्ञामात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिद्ध्यति।।२८।।
गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरैरपि।
एषां च मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि।।२९।।
गुरुवक्त्रं बिना देवि सिद्धिहानिः प्रजायेत।
एतत् तन्त्रं च मन्त्रं व शिष्येभ्योऽपि न दापयेत्।
अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम्।।३०।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(साधनान्तरविधाननिरूपणं) दशमः पटलः।।१०।।

तदुपरान्त साधक स्वगुरु को आदर सहित गृह में आमन्त्रित कर (अथवा स्वयं गुरु गृह जाकर) उन्हें आसन पर श्रद्धा सहित बैठाकर उनका

पूजन कर वस्त्राभूषण-स्वर्ण आदि प्रदान कर उन्हें प्रसन्न करें। इसी प्रकार उनके पुत्र-पुत्रियों तथा पत्नी का भी पूजन कर उन्हें भी वस्त्रादि अर्पित करे। इसके पश्चात् मन्त्र का जप करे। यदि किसी कारण वश गुरु उपस्थित न हो तो सहस्रार में श्री गुरु के पादपद्मों का ध्यान करके उसका मानस पूजन करके मन्त्र का जप करे। इस प्रकार श्री गुरु को देवता स्वरूप मानकर जप करने से साधक सिद्धीश्वर हो जाता है। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर (उन्हें ही देवतावत् मानकर) जप करने से दुष्ट (सदोष) मन्त्र भी सिद्ध हो जाता है। गुरु-आज्ञा का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति का इस तन्त्र साधना मार्ग में अधिकार नहीं है अर्थात् वह तन्त्र साधना के योग्य पात्र नहीं होता है। यदि कोई साधक गुरु-मुख से मन्त्रोपदेश प्राप्त किए बिना (अथवा उनकी आज्ञा प्राप्त किए बिना अथवा आज्ञा का उल्लंघन करके) स्वेच्छानुसार मन्त्र-तन्त्र की साधना करता है तो उसे सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती तथा यदि पूर्व में कोई सिद्धि प्राप्ति भी होती है तो वह भी नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त उसे अन्य प्रकार से भी हानि होने की सम्भावना रहती है। इन मन्त्र-तन्त्रों की साधना का उपदेश भी साधक अपने (अयोग्य) शिष्यों को कभी भी न दे तथा गुरु-आज्ञा के बिना योग्य शिष्यों को भी इसे नहीं प्रदान करना चाहिए। इन नियमों का उल्लंघन करने वाला साधक अवश्य ही मृत्यु लोक को गमन करने वाला होता है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत साधनान्तर विधान निरूपण नामक दसवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

* * *

॥ एकादशः पटलः॥

(मन्त्रोद्धार तत्प्रकारान्तर नीलिम-निरूपणम्)

॥ तारा-मन्त्रोद्धारः॥

श्रीभैरव उवाच

विशेषान् शृणु वक्ष्यामि येन सिद्ध्येज् जगत्त्रयम्।
यस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये न संशयः॥१॥
सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता।
मायाबीजं समुद्धृत्य तारकं वह्निसंयुतम्॥२॥
मायाबिन्द्वीश्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धृतम्।
रमां फट्कारकं चैव बीजपञ्चकमुत्तमम्॥३॥
पञ्चरश्मिसमाक्रान्ताऽज्ञानेन्धनप्रदीपकम् ।
तस्योद्धारमहं वक्ष्ये शृणु सार्वज्ञकारणम्॥४॥
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा चतुर्थस्वरभूषितम्।
रेफारूढं स्फुरद् दीप्तमिन्दुबिन्दुविराजितम्॥५॥
भगं चैव महेशानि चतुर्थस्वरसंयुतम्।
(दाहारूढं रयं चैव शक्तियुक्तं तु योजयेत्)॥६॥
नादबिन्दुसमायुक्तं हूंकारं योजयेत् ततः।
फट्कारं च ततो दद्यात् संपूर्णं सिद्धिदायकम्॥७॥

हे देवि! अब (भगवती तारा के) विशेष मन्त्रों को कहता हूँ सुनो। इससे तीनों लोकों की सिद्धि (प्राप्ति) की जा सकती है। तन्त्रशास्त्रों में इससे श्रेष्ठ निःसन्देह अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है। यह सभी आम्नायों में पूज्य, पवित्र सभी भाषाओं (विद्याओं) का ज्ञान प्रदान करने वाला है।

उपर्युक्त मन्त्रोद्धार के श्लोक अशुद्ध होने के साथ ही अस्पष्ट भी हैं। परन्तु इनसे तारिणी के पञ्चवर्णात्मक दो मन्त्र स्वरूपों के उद्धार का आभास होता है। प्रथम मन्त्रस्वरूप है - **'ह्रीं त्रीं हूं फट्'**। पञ्च रश्मि प्रणव 'ॐ' से युक्त होने पर यह मन्त्र अज्ञान रूप इन्धन (लकड़ी आदि) के लिए अग्नि के समान है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'पञ्च रश्मि' अथवा 'रश्मि

पञ्चक' से प्रणव 'ॐ' (अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद रूप पञ्चवर्णात्मक) का यहाँ निर्देश नहीं है। वास्तव में इस महाविद्या के मध्यम बीज 'त्रीं' में अमृत बीज 'स' छुपा हुआ है। इसलिए इसे 'पञ्च रश्मि' अथवा 'रश्मि पञ्चक' युक्त (पञ्चवर्णात्मक) कहा जाता है।

दूसरा स्वरूप, मन्त्र का इस प्रकार है - **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।'**

तारा मन्त्र का 'त्रीं' बीज वशिष्ठ द्वारा शापित होने के कारण 'त्रीं' के साथ 'सकार' का योग करके (स्त्रीं) ही मन्त्र जप करना सर्वसिद्धिप्रद कहा गया है। वैसे यह भी कथन प्राप्त होता है कि श्री कृष्ण-जन्म के अनन्तर यह मन्त्र शाप मुक्त हो गया है।

।।मन्त्र वर्ण संख्या भेदेन देवता (विद्या-नाम) भेदाः।।

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमुक्तिप्रदायिनी।।८।।
(उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता।)
वितारैकजटा चैषा महामुक्तिकरी सदा।।९।।
तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती।
ताराद्या पञ्चवर्णेयं श्रीमन्नीलसरस्वती।।१०।।
श्रीबीजाद्यापि देवेशि तदा श्रीःसर्वतोमुखी।
एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा।।११।।
वाग्भवाद्या यदा विद्या वाग्रूपा सर्ववाङ्मयी।
एतान् क्रमगतान्प्राप्ता(न्)मत भेदाञ् जगन्मयी।।१२।।

अनायास ही सहज साधना के द्वारा वाक् शक्ति प्रदान करने के कारणयह विद्या (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्) 'नील सरस्वती' कही जाती है। भोग के साथ ही मुक्ति प्रदान कर साधक को तारने वाली होने के कारण यह 'तारा' कही जाती है। भयङ्कर (महान) विपत्तियों से रक्षा करने के कारण इसे 'उग्रतारा' भी कहा जाता है। परन्तु जब यह विद्या तार (ॐ) से रहित ('ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' रूप में) होती है तो 'एकजटा' कही जाती है। तार (ॐ) तथा फट् से रहित (ह्रीं स्त्रीं हूं) त्र्यक्षरी विद्या महानीलसरस्वती कही जाती है। तार 'ॐ' आदि में होने पर पञ्चवर्णा विद्या को श्री नील सरस्वती कहते हैं।

हे देवि! जब इस विद्या के प्रारम्भ में (ॐ के स्थान पर) 'श्रीं' को युक्त करते हैं तो यह सभी प्रकार से समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली होती है। इसी प्रकार मन्त्र के आदि में 'ह्रीं' होने पर सर्वाभीष्टप्रद तथा 'ऐं' बीजाद्या होने पर वाग्रूपा होकर सर्वविद्याओं का ज्ञान देने वाली हो जाती है।

इस प्रकार इस जगन्मयी विद्या के वर्ण-क्रमानुसार अनेक भेद भिन्न-भिन्न मतानुसार प्राप्त होते हैं।

एषा पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी।
वधूबीजं मध्यबीजं सर्वबीजान्तिमं भवेत्॥१३॥
फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम्।
विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी॥१४॥
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते।

यह पञ्चाक्षरी विद्या समस्त पञ्चभूतों को प्रकाशित करने वाली है अर्थात् प्रकृति सहित सम्पूर्ण पञ्चभूतात्मक सृष्टि का ज्ञान प्रदान करने वाली है। **'स्त्रीं हूं फट्'** रूप में यह विद्या सभी विद्याओं को देने वाली, विजय के अभिलाषी को विजय प्रदान करने वाली तथा विष का विनाश करने वाली एवं अमृतत्व (दीर्घायु अथवा मुक्ति) प्रदान करने वाली है। इसके ज्ञान मात्र से ही मनुष्य इस संसार में सर्वत्र विजयी होता है।

॥ सप्ताक्षरी महाविद्योद्धारः॥

लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च॥१५॥
विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः।
एषा मता महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदा शुभा॥१६॥
सर्वमन्त्रमयी शुद्धा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
सिद्धिदा भजतामाशु संप्रदायविधानतः॥१७॥
ध्यानपूजादिकं सर्वं कुर्यात् साधकसत्तमः।

सर्वप्रथम 'खं' लिखकर कूर्च (हूं) लिखे। पुनः रौद्र (हौं), त्रैगुण्य (ॐ), विधि शक्ति (ऐं), विष्णु शक्ति (श्रीं) तथा रुद्र शक्ति (ह्रीं) लिखें। इस प्रकार सप्ताक्षरी महाविद्या (मंत्र) **''खं हूं हौं ॐ ऐं श्रीं ह्रीं''** का उद्धार करें।

यह पवित्र (कल्याण स्वरूपा) महाविद्या समस्त सिद्धियों को देने वाली है। यह सभी मंत्रों से युक्त (सर्वमन्त्र स्वरूपिणी) तथा सभी तन्त्रों में गोपनीय कही गयी है। स्वसम्प्रदाय विधि के अनुसार ध्यान-पूजन-जपादि सभी कर्म (साधन-भजन) करने वाले श्रेष्ठ साधकों को यह शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करने वाली है।

॥ भुवन तारिणी तारा-विद्योद्धारः॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि तारां भुवनतारिणीम्॥१८॥
यस्याः स्मरणमात्रेण भयमाशु विनाशयेत्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हल्लेखाबीजमुद्धरेत्॥१९॥

गगनं शेषसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम्।
कूर्चबीजं च हृदयं तारायै च समुद्धरेत्॥२०॥
महापद्मं समुद्धृत्य तारायै च समुद्धृतम्।
सकलदुस्तरांस्तारे तारयेति तथा पुनः॥२१॥
तरयुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते॥२२॥
चतुर्लक्षजपेनास्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।
ध्यानपूजादिकं सर्व पूर्ववत् समुपचारेत्॥२३॥

अब मैं पुनः भुवनतारिणी तारा की एक अन्य विद्या को कहता हूँ, जिसके स्मरण मात्र से शीघ्र ही भय का विनाश हो जाता है।

पहले प्रणव (ॐ) का उद्धार कर हल्लेखा (ह्रीं) का उद्धार करें। फिर गगन (ह) को शेष (आ) तथा नाद बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त कर 'हां' का उद्धार करके कूर्च बीज (हूं) के बाद हृदय (नमः) का उद्धार करे। तदुपरान्त 'तारायै सकल दुस्तरान् तारय तारय' पुनः तारयुग्म (ॐ ॐ) तथा 'स्वाहा' का उद्धार करके पूर्ण (पच्चीस अक्षरों वाले) मन्त्र का निष्पादन करे। यह मन्त्र (विद्या) कल्प वृक्ष के समान सर्वकामना पूरक कहा गया है। मन्त्र स्वरूप - **''ॐ ह्रीं हां हूं नमस्तारायै सकल दुस्तरं तारय-तारय ॐ ॐ स्वाहा।''**

(ग्रन्थ के अनुसार उद्धार किये गये मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा- **''ॐ ह्रीं हां हूं नमः तारायै महापद्मं तारायै सकल दुस्तरांस्तारे तारय तर तर स्वाहा।''** यह मन्त्र अशुद्ध प्रतीत होता है। पहले दिया हुआ मन्त्र ही उचित प्रतीत होता है।)

इस मन्त्र द्वारा सिद्धि प्राप्त साधक के मुख से सभा के मध्य में परस्पर वाद के समय अनायास ही गद्य-पद्यमयी (सुन्दर-आकर्षक) वाणी प्रवाहित होने लगती है। इसका चार लाख जप करने से अष्टसिद्धियों की प्राप्ति होती है। इसकी साधना से सम्बन्धित ध्यान-पूजनादि सभी कर्म पूर्ववत् (स्व सम्प्रदायवत् अथवा अन्य तारा मन्त्र साधनाओं की भाँति) ही होंगे।

॥दशाक्षर मन्त्रोद्धारः॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे उत्तारयेति च।
माया स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहृतः॥२४॥
स्मरणात् सर्वसत्त्वानां भयमाशु विनाशयेत्।
ध्यानपूजादिकं सर्व पूर्वमुक्तं सुरेश्वरि॥२५॥

उपर्युक्त श्लोकों से उद्धार किया हुआ मन्त्र इस प्रकार होगा–

मन्त्र स्वरूप – **"ॐ तारे उत्तारय ह्रीं स्वाहा"।**

मन्त्र कोष में यह दशाक्षरी मन्त्र **'ॐ तारे तारे तत्तारे स्वाहा'** रूप से दिया गया है।

तारा भक्ति सुधार्णव में (गन्धर्व तन्त्र से उद्धृत) यही मन्त्र **'ॐ तारे तत्तारे तुरे स्वाहा'** रूप में दिया है। जबकि ब्रह्म संहिता में **'ॐ तारे तुतारे तुरे स्वाहा'** दिया है।

आगम तत्व विलास में 'स्वतन्त्र तन्त्र' से उद्धृत यही मन्त्र **'ॐ तारे तु तारे तुत्ता स्वाहा'** रूप में दिया गया है।

यह दशाक्षरी विद्या स्मरण मात्र से सभी प्राणियों के (अथवा सभी प्राणियों से प्राप्त) भय का शीघ्र ही विनाश कर देती है। ध्यान–पूजनादि सभी कर्म पूर्ववत् ही किये जायेंगे।

।।अष्टाक्षरी विद्या–विद्यारत्नोद्धारः।।

विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि शृणु पर्वतनन्दिनि।
वागभवं कुलदेवीं च तारकं वाग्भवं तथा।।२६।।
हृल्लेखां चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः।
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो वेदमातुरनुत्तमः।।२७।।
पञ्चाङ्गं चास्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत्।
अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्यो भवेद् नरः।।२८।।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्वमुक्तं महेश्वरि।

हे पार्वति! अब मैं सभी विद्याओं में रत्नवत् अष्टाक्षरी विद्या 'विद्यारत्न' को कहता हूँ। वाग्भव (ऐं), कुल देवी (ह्रीं), तारक (ॐ), वाग्भव (ऐं), हृल्लेखा (ह्रीं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में वह्नि जाया (स्वाहा) का उद्धार कर अष्टाक्षरी मन्त्र– **'ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा'** निष्पन्न करे। इसे वेद माता गायत्री के समान सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। इसके पाँच बीजों को क्रमशः पञ्च अङ्गो का न्यास तथा अस्त्र न्यास 'फट् स्वाहा' से किया जायेगा। ध्यान पूजादि पूर्वोक्त क्रम से ही होगा।

।। सप्तदशाक्षरी महाविद्योद्धारः।।

कालिका सिद्धविद्या स्याद् महाकाली परा मता।।२९।।
तस्यास्तन्त्रे महाविद्या विज्ञेया साधकोत्तमैः।
सर्ववेदमयी विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता।।३०।।
रक्षाकरी च संप्रोक्ता यदा सेव्या च साधकैः।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पद्मे-युग्मं तथैव च।।३१।।

महापद्मे-पदं कुर्यात् पद्मावति-पदं ततः।
माये स्वाहेति मन्त्रोऽयं प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः॥३२॥
पूजा पूर्ववदुद्दिष्टा चार्धरात्रे चतुष्पथे।
जपमस्याश्चरेद् यस्तु शीघ्रं द्रुतकविर्भवेत्॥३३॥
बीजमन्त्राः स्वतन्त्राः स्युस्तारिण्याः सर्वसिद्धिदाः।
एते भेदा महोग्रायाः पुरुषार्थप्रवर्तकाः॥३४॥
आयुःश्रीकान्तिकविता-विद्यासौभाग्यदायिनी।
अन्ते निरामयं ब्रह्म जीवन्मुक्तिप्रदायिनी॥३५॥

कालिका सिद्ध विद्या है, महाकाली पराशक्ति मानी जाती है। महाकाली के तन्त्रशास्त्रों में इसे (आगे कही जाने वाली विद्या को) श्रेष्ठ साधकों द्वारा महाविद्या के रूप में जाना गया है। यह विद्या सर्वदेवमयी (इसकी आराधना से सभी देवताओं की आराधना हो जाती है) तथा सभी आम्नायों में पूजनीय (समादृत) है। साधकों द्वारा इसका सेवन (भजन) करने पर यह सर्वप्रकार से रक्षा करने वाली कही गयी है।

इस विद्या (मन्त्र) का उद्धार इस प्रकार है - पहले प्रणव 'ॐ' का उच्चारण करे फिर दो बार पद्मे (पद्मे-पद्मे) बोले। तत्पश्चात् 'महापद्मे' के साथ 'पद्मावति' का उच्चारण करके 'माये स्वाहा' बोले। इस प्रकार इस सप्तदशाक्षरी विद्या का उद्धार करे।

मन्त्र स्वरूप - **'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति माये स्वाहा'**।

पूर्ववत् तारा के अन्य मन्त्रों की साधन विधि के अनुसार ध्यान-पूजनादि करके चौराहे पर अर्धरात्रि में जप करे तो साधक शीघ्र ही आशु कवि हो जाता है।

तारिणी मन्त्र के सभी बीज स्वतन्त्र रूप से मन्त्र हैं तथा जप करने वाले साधक को सर्वसिद्धि देने वाले हैं। महोग्रा के ये सभी मन्त्र-भेद (विभिन्न प्रकार के मन्त्र) चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति कराने वाले हैं। इनकी साधना से आयु, लक्ष्मी, सौन्दर्य, काव्य-शक्ति, विद्या तथा सौभाग्य के साथ ही जीवन्मुक्ति का सहज आनन्द भी साधक को इसी जीवन में प्राप्त हो जाता है तथा अन्त में उसे विशुद्ध ब्रह्म की भी उपलब्धि (मोक्ष की प्राप्ति) हो जाती है।

॥ अष्टाक्षरी हंस तारा महाविद्योद्धारः॥

(शिवबीजं महेशानि शक्तिबीजं ततः परम्।
बिन्दु सर्ग समायुक्तं वेदाद्यं तदधः क्रमात्॥३६॥
माया स्त्रीं वर्मबीजान्ते हंसं बीजमुदीरितम्।
एषा त्वष्टाक्षरी विद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता॥३७॥)

आज्ञासिद्धिमवाप्नोति त्रैलोक्यं वशमानयेत्।
वशमायान्ति सहसा वेदविद्याश्चतुर्दश।।३८।।
हंसतारा महाविद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता।
कवितामाहरेत् पुंसां धनार्थी धनमाप्नुयात्।।३९।।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं नात्र कार्या विचारणा।
उग्रतारा महाविद्या कथ्यते मम पौरुषम्।।४०।।
पञ्चाक्षरी च या विद्या हंसाद्यन्ता महोदया।
केवलं त्वत्प्रयत्नेन तव स्नेहात् प्रकीर्तिता।।४१।।
अस्याश्च जपपूजादीन् पञ्चाक्षरीवदाचरेत्।
बीजयुक्ता महाविद्या त्रिताराद्या पृथक् पृथक्।।४२।।
त्रैलोक्ये कथिता सिद्धिदायिन्युत्तमभूतिदा।
षड्दीर्घमायया चैव षडङ्ग समुपाचरेत्।।४३।।
पूजा पूर्ववदुद्दिष्टा प्रयोगान् वापि तत्समान्।

शिव बीज (ह) को बिन्दु से तथा शक्ति बीज (स) को विसर्ग से युक्त कर ‘हंसः’ लिखें। तत्पश्चात् वेदाद्य ‘ॐ’ के बाद क्रमशः माया (ह्रीं), ‘स्त्रीं’ तथा वर्म (हूं) लिखकर अन्त में हंस बीज ‘हंसः’ लिखें। इस प्रकार प्राप्त मन्त्र (विद्या) **‘‘हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं हंसः’’** अष्टाक्षरी ‘हंसतारा महाविद्या’ कही जाती है। हे देवि! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही मैंने इसे प्रकाशित किया है। इस विद्या की साधना से साधक को आज्ञा-सिद्धि प्राप्त हो जाती है जिससे वह तीनों लोकों को वश में कर लेता है। वेद सहित चौदहों विद्यायें उसके वशीभूत हो जाती हैं तथा कवित्व शक्ति की भी उसे प्राप्ति हो जाती है। धनार्थी को इसके साधन से धन की उपलब्धि होती है। मोक्षार्थी भी निःसन्देह इसकी साधना से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

आदि तथा अन्त में ‘हंसः’ से युक्त जो पञ्चाक्षरी विद्या **(हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् हंसः)** है, उसे उग्रतारा की महाविद्या भी कहते हैं, यह मेरे पुरुषत्व (सामर्थ्य) का कारण है (मध्य में ‘फट्’ होने से यह नवाक्षरी होती है)। तुम्हारे आग्रह एवं स्नेह के कारण ही मैंने इसे प्रकाशित किया है।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों के ध्यान पूजनादि पञ्चाक्षरी मन्त्रवत् ही हैं। इस महाविद्या से पूर्व क्रमशः ऐं, ह्रीं तथा श्रीं को पृथक-पृथक लगाकर जपने से कवित्व शक्ति (ज्ञान), मन्त्र सिद्धि (अथवा सिद्धियां) तथा उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। माया (ह्रीं) को षड्दीर्घ स्वरों से युक्त कर (ह्रां ह्रीं हूं इत्यादि रूप से) षडङ्ग न्यास करना चाहिए तथा पूजा प्रयोगादि पूर्ववत् ही करना चाहिए।

।। चतुस्त्रिंशदक्षरी नील सरस्वती मन्त्रोद्धारः।।

वाङ्मायाकमलाबीजमीशो भृगुनिषेवितः।।४४।।
चतुर्दशेन्दुसंयुक्तः पश्चाद् भृगुः सहेश्वरः।
चतुर्दशविसर्गाद्यो वद-द्वन्द्वं च वाक्-पदम्।।४५।।
वादिनीति पदं पश्चात् त्रीं-पदत्रितयं ततः।
नीलसरस्वति-पदं त्रिधावृत्तिश्च त्राङ्मनोः।।४६।।
काहि-शब्दद्वयं पश्चात् कलरीमग्निवल्लभा।
चतुस्त्रिंशद्वर्णयुक्तो नीलसारस्वतो मनुः।।४७।।
षाट्कोशिकोऽयं विज्ञेयः षड्भिर्मन्त्रैर्यतः कृतः।
ऋषिच्छन्दोदेवतानां विभागं शृणु पार्वति।।४८।।

वाक् (ऐं), माया (ह्रीं), कमला (श्रीं), ईश (ह) से युक्त चतुर्दश स्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) सहित भृगु (स) अर्थात् ह्सौं, इसी प्रकार भृगु (स) से संलग्न चतुर्दश स्वर तथा इन्दु संयुक्त ईश्वर (ह) अर्थात् 'स्हौं', तत्पश्चात् दो बार वद अर्थात् 'वद-वद' फिर 'वाक्' तथा 'वादिनि' पद, तदुपरान्त तीन बार त्रीं अर्थात् 'त्रीं त्रीं त्रीं' इसके बाद 'नील सरस्वति' तथा तीन बार वाङमंत्र अर्थात् 'ऐं ऐं ऐं' पुनः 'काहि-काहि', 'कलरीं' तथा अग्निवल्लभा 'स्वाहा' का योग कर निष्पन्न मन्त्र - **'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं स्हौं वद वद वाग्वादिनि त्रीं त्रीं त्रीं नील सरस्वति ऐं ऐं ऐं काहि-काहि कलरीं स्वाहा।''** (कुछ ग्रन्थों में 'काहि' के स्थान पर 'कह' का प्रयोग मिलता है।)

चौंतीस वर्णों से युक्त यह नील सरस्वती का मन्त्र छः बीज मन्त्रों से निर्मित है, अतः इसे 'षाट्कोशिक' नाम से जाना जाता है। हे पार्वति! अब इस मन्त्र के ऋषि-छन्द तथा देवता आदि के विषय में सुनो।

।।मन्त्रस्य ऋषि छन्दादि-वर्णनम्।।

गङ्गाप्रवाहो नामर्षिर्मत्स्यरूपी जनार्दनः।
अत्यष्टिः कथिता छन्दो देवी नीलसरस्वती।।४९।।
सर्ववागैश्वर्यमयी समस्ताभीष्टदायिनी।
ऐं बीजं कीलकं ज्ञेयं ह्सौं शक्तिः समीरिता।।५०।।
नीलो वर्णश्च विज्ञेयस्त्वरितं कविताफलम्।
मुद्रा तु प्रति(वासी?राशी)नां मुखमुद्रा समीरिता।।५१।।
हृल्लेखया षडङ्गानि कुर्यात् षड्दीर्घयुक्त्या।
नीलांशुकां मणिमयीं व्याघ्रचर्मधरां शुभाम्।।५२।।

विद्यां ब्रह्मस्वरूपां च सर्वकामफलप्रदाम्।
नमस्कुर्यात् प्रयत्नेन सर्वकामवरेश्वरीम्।।५३।।

इस (उपर्युक्त नील सरस्वती) मन्त्र के ऋषि गङ्गा प्रवाह मत्स्य रूपी जनार्दन, छन्द अत्यष्टि (अथवा अतिशय-वाक्-कविता), देवता सर्व वागैश्वर्य मयी समस्ताभीष्टदायिनी नील सरस्वती, बीज ह्लीं, कीलक हूं तथा शक्ति ह्सौं (तारा भक्ति सुधार्णव के अनुसार) है। ह्लां ह्लीं ह्लूं इत्यादि से षडङ्ग न्यास करना चाहिए।

नील वर्ण (नील सरस्वती) शीघ्र ही कवित्व शक्ति प्रदान करने वाला जाना जाता है। प्रतिराशियों (प्रतिवादियों) की मुख मुद्रा ही यहाँ मुद्रा है।

यहाँ ध्यान स्वरूप के लिए एक ही पंक्ति दी गई है, वह भी अशुद्ध है, क्योंकि जो 'नीलांशुका' है वह 'व्याघ्रचर्म धरा' कैसे हो सकती है। इस देवता का ध्यान इस प्रकार है -

नीलाशुकां मणिमयीं च करेषु वीणां, मुद्राञ्च पात्रमथ पूर्ण सुधां दधानाम्।
उद्यच्चतुर्मुखवहत्कविता प्रवाहां नीलां भजामि हृदयेन सरस्वतीं ताम्।।

[जो नीले रेशमी वस्त्र को धारण किये हुए तथा मणिमय आभूषणों से अलङ्कृत है, जिसके हाथों में वीणा, मुद्रा तथा अमृत से भरा हुआ पान-पात्र (चषक) धारित है तथा जिसके सम्मुख उठे हुए चारों मुख से धारा प्रवाह कविता निकल रही है ऐसी नील वर्ण वाली (नील सरस्वती) का मैं हृदय से भजन (भक्ति) करता हूँ।]

यह विद्या ब्रह्मस्वरूपिणी, सभी कर्मों (साधनाओं) का फल देने वाली तथा समस्त अभीष्ट वरों को प्रदान करने वाली (एवं सम्पूर्ण श्रेष्ठभोगों की स्वामिनी) है, इसे सर्वदा प्रणाम करना चाहिए।

।।नील-सरस्वत्याविर्भावम्।।

अथ वक्ष्ये महेशानि नीलस्य भावमग्रतः।
पूर्वं देवासुरैर्युद्धे दानवा दितिजैः सह।।५४।।
चक्रेण चक्रिणा छिन्नाः कान्दिशीकाः प्रदुद्रुवुः।
सम्भूय ते दुष्टदैत्याः समुद्रकुहरोदरे।।५५।।
मन्त्रणां चक्रिरे पूर्वं देवानां परिभूतये।
वेदरूपा भगवती सर्वमन्त्रमयी शुभा।।५६।।
तत्रैव सर्वविप्राणां यज्ञकाण्डः प्रवर्तते।
तेषु यज्ञेषु संभूतैर्हविर्भिर्वलिनः सुराः।।५७।।
..।
सुरा ह्यस्मान् प्रबाधन्ते वयं निर्बलिनस्ततः।।५८

इति तेषां वचः श्रुत्वा दीनानां दितिजन्मनाम्।
हयग्रीवः सोमकश्च निर्वेदं भृशमापतुः।।५९।।
तावुभौ भ्रातरौ दुष्टौ तुरङ्गग्रीव-सोमकौ।
शब्दाकर्षणिकां देवीं समुद्दिश्यातपस्यताम्।।६०।।
तयोर्घोरतपःप्रीता शब्दाकर्षणिदेवता।
प्रोवाच व्रियतामत्र वाञ्छितो वरवल्लभः।।६१।।
ताभ्यामुक्ता भगवती वरप्रार्थनहेतवे।
सर्वशब्दाकर्षणार्थं वरोऽस्मभ्यं प्रदीयताम्।।६२।।
तथास्त्विति तया प्रोक्तौ दानवावतिदर्पितौ।
ततस्तस्य प्रभावेण भूलोकं समुपस्थितौ।।६३।।
स(र्वाः?र्वे)चाकर्षिताः शब्दा मन्त्ररूपा द्विजन्मनाम्।
सा शब्दरूपिणी देवी शुभ्ररूपा सरस्वती।।६४।।
मुखानि सर्वविप्राणां त्यक्त्वा दिव्यवपुर्धरा।
आयाता दैत्यवरयोर्दुष्टग्रहमुपागता।।६५।।

हे देवि! श्वेत वर्ण वाली सरस्वती किस प्रकार से नील भाव (वर्ण) को प्राप्त कर नील सरस्वती कहलायी, इस विषय का अब मैं वर्णन करता हूँ।

पूर्व के किसी काल में देवासुर सङ्ग्राम के समय जब विष्णु के चक्र से छिन्न-भिन्न हुए दानव गण दिति पुत्रों (दैत्यों) के साथ भयभीत होकर भाग खड़े हुए थे तब वे सभी दुष्ट दैत्य समुद्र के गर्भ गुफा में एकत्रित होकर देवताओं को पराजित करने के लिए विचार करने लगे। उन दैत्यों में से किसी ने कहा-वेदरूपा भगवती सर्वमन्त्र स्वरूपिणी हैं तथा (सत्पुरुषों का) कल्याण करने वाली हैं। उनके द्वारा ही सभी ब्राह्मणों का यज्ञ-कर्म सञ्चालित होता है। उन यज्ञों में दी हुई आहुतियों से उत्पन्न शक्ति को प्राप्त कर ही देवगण शक्तिशाली हैं। इसीलिए ये देवता हम निर्बलों को पीड़ित करते रहते हैं। अत्यन्त दीन दशा को प्राप्त उन दिति-पुत्रों (दैत्यों) के ऐसे वचनों को सुनकर हयग्रीव तथा सोमक नाम वाले दोनों दैत्य अत्यधिक दुखित हुए। तब वे (हयग्रीव तथा सोमक नाम वाले) दोनों दुष्ट भाई शब्दाकर्षिणी देवी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से तपस्या करने लगे। उन दोनों के कठोर तप से प्रसन्न हुई शब्दाकर्षिणी देवता (देवी) बोली-हे वर के इच्छुक दैत्यों! अपना अभीष्ट वर मांगो। भगवती द्वारा उन दोनो से वर मांगने के लिए कहने पर उन्होंने कहा कि हमें सभी शब्दों के आकर्षण के लिए (शक्ति सामर्थ्य रूप अथवा सर्व शब्दाकर्षण शस्त्र रूप) वर प्रदान करें।

देवी के तथास्तु कहते ही उस वर के प्रभाव से वे दोनों दानव अत्यन्त घमण्ड से भरकर पृथ्वी लोक पर आये। वहाँ उन्होंने सभी ब्राह्मणों के मन्त्र रूपी समस्त शब्दों को आकर्षित कर लिया। वह श्वेत वर्णा शब्द रूपिणी देवी सरस्वती दिव्य रूप धारण करके उन सभी ब्राह्मणों के मुख से बाहर निकलकर उन दोनों दुष्ट दैत्यों की अधीनता में आ गई।

क्रन्दन्तीं तां च विवशां नीत्वा पातालगोलके।
हालाहलविषैः कृत्वा कुण्डं नीलजलप्रभैः॥६६॥
तत्र तां विनिमज्यैव वद्ध्वा पन्नगरज्जुभिः।
पर्वतैर्निविडं कृत्वा पुनर्देवजिगीषया॥६७॥
तामासाद्य महादीप्तौ तुष्टुवतुः शुभावहम्।
शब्दाकर्षणबाणेन दैत्यानां पृथिवीतले॥६८॥
निःशब्दाश्चैव बाणेन वेदविस्मारिणो द्विजाः।
मन्त्रविस्मरणेनैव यज्ञविज्ञा निरासिता॥६९॥
तन्नाशतो हविर्भागवर्जिता बलहानितः।
निर्वीयाश्च निरुद्योगास्ताभ्यां देवा निराकृताः॥७०॥
इत्थं विद्राव्य विबुधांस्तौ हयग्रीवसोमकौ।
विष्णुचक्राङ्कितौ तौ च समुद्रान्तर्गृहे स्थितौ॥७१॥
ततो विष्णुर्महामत्स्यरूपधारी सदा प्रभुः।
यत्नं चकार देवेशि तदुद्धरणहेतवे॥७२॥

उस असहाय (पराधीन) तथा जोर-जोर से विलाप करती हुई देवी को उन दैत्यों ने पाताल लोक में ले जाकर, सर्परूपी रस्सियों (डोरियों) से बांधकर, नील (काले) अञ्जन (काजल) के समान हलाहल विष से भरे हुए कुण्ड में डुबोकर पुनः पर्वत जैसे बड़े-बड़े पत्थरों से उस कुण्ड को बन्द करके देवताओं को जीतने की इच्छा से उनके पास (स्वर्ग में) आकर, वे दोनों अत्यन्त गर्व में भरे हुए दैत्य अपने लिए शुभदायक काल जानकर बड़े प्रसन्न हुए। दैत्यों के शब्दाकर्षण बाण के द्वारा पृथिवी तल पर सभी ब्राह्मण (पहले ही) वेदों को विस्मृत कर मन्त्रहीन हो गये थे। मन्त्रों का विस्मरण हो जाने के कारण यज्ञ विद्या (कर्म) बन्द हो गयी थी। अतः हविभाग से रहित, भोजन न (प्राप्त) करने वाले शक्तिहीन, निस्तेज तथा (युद्ध करने के लिए) प्रयत्नरहित सभी देवता उन दोनों दैत्यों से पराजित हो गये। इस प्रकार सभी देवताओं को पराजित (स्वर्ग से भगा) कर, विष्णु के चक्र से भयभीत हुए वे दोनों दैत्य समुद्र के भीतर (बने हुए) गृह में रहने लगे। तब महामत्स्य रूप धारी, सबके स्वामी सर्वसमर्थ विष्णु ने उन देवों के उद्धार के लिए प्रयत्न किया।

सहस्रदंष्ट्रस्य झषस्य रूपं
पाठीननाम्नः परमोऽथ विष्णुः।
रूपं गृहीत्वा भगवाननन्तो
विवेश देवोद्धरणाय चाब्धिम्॥७३॥

इस श्लोक से पूर्व भी दो श्लोक और अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, जो अर्थ सहित नीचे दिये जा रहे हैं।

इत्थं सदा वेदमयीं विकृष्टा वचःप्रसूः सर्वमनुस्वरूपा।
यज्ञप्रणाशाद् व्यथिता सुरेन्द्रास्तदा हरिं तुष्टुवरादिदेवम्॥
श्रुत्वा वचः सोऽथ वरोरुमायो मायाविनौ तौ दितिजन्मवर्यौ।
वेदस्य चौरो मनसा विदित्वा चकार तस्य हरणाय यत्नम्॥

इस प्रकार सर्वमन्त्र स्वरूपिणी तथा सदा (वेद) वाक्य प्रसविनी साक्षात् वेद स्वरूपा सरस्वती को (दैत्यों द्वारा) बलात आकर्षित की हुई (आबद्धा) देखकर यज्ञों के विनाश से अत्यन्त पीड़ित (दुखी) सभी इन्द्रादि देवता आदि देव भगवान हरि (विष्णु) को प्रसन्न (करने के लिए उनकी स्तुति) करने लगे।

उन देवताओं के वचनों को सुनकर श्रेष्ठ ऊरु (जाँघ) वाले (पाठान्तर वरोरुगाय होने पर-श्रेष्ठ महान व्यक्तियों द्वारा स्तुत्य) हरि ने उन दोनों पराक्रमी मायावी दिति पुत्रों को वेद की चोरी करने वाला मानकर उस वेद के हरण (पुनरोद्धार) के लिए प्रयत्नशील हुए।

तत्पश्चात् अनन्त नाम वाले भगवान परम विष्णु ने हजार दाढ़ों से युक्त पाठीन नामक विशाल मत्स्य का रूप धारण करके वेदों के उद्धार हेतु समुद्र में प्रवेश कर गये।

वराहरूपेण यथाब्धिमग्नां
युगे युगे प्रोद्धृतवान् धरित्रीम्।
तथैव मत्स्याकृतिरम्बुजाक्षो
विलोडयामास समुद्रपूरम्॥७४॥
श्रीमत्स्यरूपस्य हरेः शरीरा-
दाविर्बभूवुश्च भुजाश्चतस्रः।
खड्गं तथा चक्रकशार्ङ्गचापौ
कौमोदकी बाहुचतुष्टयेन॥७५॥

जिस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ काल के प्रत्येक युग में कमलनयन भगवान हरि वाराह रूप धारण करके समुद्र में लीन हुई पृथ्वी का उद्धार करते हैं, उसी प्रकार मत्स्याकृत होकर उन्होंने सारे समुद्र को मथ डाला।

सुन्दर मत्स्यरूपधारी हरि के शरीर से चार भुजाएं प्रकट हुई थीं। उन चारों भुजाओं द्वारा वे नन्दन खड्ग, सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष तथा कौमोदकी गदा धारण किये हुए थे।

मत्स्यस्वरूपस्य जनार्दनस्य
वभूव युद्धं शरदां सहस्रम्।
ततश्च शब्दार्थविकर्षणास्त्रं
निःश्वासवातेन बलादगृहणात्॥७६॥
अप(ा)हृतौ तौ हरिचक्रकृत्तौ
कौमोदकीताडनमूर्च्छितौ च।
महाहवे नाशमुपागतौ तौ
दैत्यौ हयग्रीवक-सोमकाख्यौ॥७७॥

उन दोनों दैत्यों के साथ मत्स्य रूप जनार्दन विष्णु का सौ वर्ष तक युद्ध हुआ। इसके पश्चात् शब्दार्थ विकर्षण अस्त्र को उन्होंने (उसके) निःश्वास से बलपूर्वक ग्रहण कर (खींच) लिया।

इस प्रकार शस्त्र के अपहृत हो जाने पर, विष्णु के चक्र से कट कर, कौमोदकी गदा के प्रहार से मूर्छित होकर उस महासङ्ग्राम में हयग्रीव तथा सोमक नाम वाले दोनों दैत्य नाश को प्राप्त हुए अर्थात् उनकी मृत्यु हो गई।

अथाम्बुधेर्गर्भपुरान्तराले निवेशितां तां विषकुण्डमध्ये।
मत्स्यस्वरूपी भगवाननन्तः प्रोद्धृत्य निःश्वास निरस्पङ्कः॥
गरुत्मतालोकनशुद्ध्यमाने विषस्य कुण्डे विवशां शयानाम्।
निरस्तचेष्टां निभृताङ्गयष्टिं निःश्वासमात्रैकशरीरशेषाम्॥७८॥

समुद्र के गर्भ में स्थित नगर में विषकुण्ड के मध्य में पड़ी हुई उस सरस्वती का मत्स्यरूपी भगवान अनन्त ने उद्धार करके उनके शरीर पर लगे हुए कीचड़ को अपने निःश्वास द्वारा साफ करके उन्हें स्वच्छ किया।

पतली छड़ी के समान अङ्गो को धारण की हुई, निःश्वास मात्र अवशेष जीवन वाली, निष्क्रिय तथा विवश होकर विषकुण्ड के मध्य लेटी हुई (उस सरस्वती को बाहर निकाल कर) एवं गरुड के अवलोकन (देखने) मात्र से ही शुद्ध (विष रहित) होने पर -

आश्वासयामास स प्रीतिवाक्यै-
र्हरिः स्मितं प्राह सरस्वतीं ताम्।
त्रितारविद्यां प्रथमं जगाद
समस्तमन्त्रप्रकरस्य मूलम्॥७९॥

उस सरस्वती को प्रिय मधुर वचनों से धीरज (धैर्य) धारण कराकर, उससे मुस्कराते हुए भगवान हरि बोले। सबसे पहले उन्होंने समस्त मन्त्र समुदाय के मूल रूप त्रितार का (ऐं ह्रीं श्रीं) का उच्चारण किया।

तेनापि नो संविदमाप देवी प्रासादमन्त्रं पुनरुज्जगाद।
[तेनापि नो संविदमाप देवी बीजत्रयीमभ्यदधन् मुकुन्दः॥
तेनापि नो संविदमाप देवी वाचां त्रयीमभ्यदधन् महात्मा।]
तेनापि नो संविदमाप देवी कामेश्वरीं सोऽथ जगाद विष्णुः॥८०॥

त्रितार विद्या के द्वारा जब देवी को चैतन्य की प्राप्ति नहीं हुई तब महात्मा विष्णु ने प्रासाद मन्त्र का उच्चारण किया। इससे भी चैतन्य लाभ न होने पर मुकुन्द ने बीजत्रयी का उच्चारण किया। इससे भी चैतन्य लाभ न होने की स्थिति में उन महात्मा ने वाणीत्रय का उद्घोष किया। परन्तु जब इसके द्वारा भी देवी चैतन्य नहीं हुई तो विष्णु ने कामेश्वरी मन्त्र (बीज) का घोष किया।

एवं षडक्षरमनू प्रणीत्या संज्ञामवाय वचसां सवित्री।
उत्थाप्य तां सस्मितमावभासे नीलासिजाता विषकुण्डमग्ना।
सर्वाङ्गपूर्णासित शोभिताङ्गी मया हतौ तेऽपि च शत्रुमुख्यौ॥८१॥

इस प्रकार छः बीजाक्षर मन्त्रों से निर्मित वाणी द्वारा माता सरस्वती को चेतना प्राप्त हुई। तत्पश्चात् उन्हें उठाकर मुस्कराते हुए विष्णु ने कहा-विष कुण्ड में डूबी रहने के कारण तुम नीलवर्णा हो गयी हो। सम्पूर्ण अङ्गो के असित (नील) वर्ण हो जाने के कारण तुम्हारा शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। मैंने तुम्हारे दोनों प्रमुख शत्रुओं को मार दिया है।

यथा पुरा सर्वमहीसुराणां मुखान्तरे जाग्रति वीत शङ्का।
यत्नं समुल्लासय देवताभ्य इत्यादि वाणीं हरिराह देवीम्॥८२॥
मत्स्यावतारेण सुरक्षिताऽहं त्वया भजस्वेह फलं समस्तम्।
किंस्त्विन्दु शोभाकृतिरप्यधीश नीलत्वयाप्तास्मि नितान्तनिद्यम्॥८३॥

भगवान हरि ने देवी से कहा - हे देवि! अब आप शङ्का रहित होकर ऐसा यत्न (उपाय) करें जिससे, जैसे पूर्व (सृष्टि) काल में ब्राह्मणों के मुख से वेदवाणी (स्वतः) प्रकट हुई थी उसी प्रकार इस समय भी जागृत हो जाय। आप अपने इस कार्य से देवताओं को आनन्दित करें।

(हरि के इन वचनों को सुनकर देवी उनसे बोली) हे देवाधीश! आपके इस मत्स्यावतार के द्वारा अब मैं पूर्णतया सुरक्षित हो गयी हूँ। आप सभी देवता यहाँ सभी फलों का भोग करें। चन्द्रमा के समान शुद्ध शोभा सम्पन्न होते हुए भी किस तरह मैं निन्दनीय नील वर्ण को प्राप्त हो गई हूँ।

निवेशिताहं विषकुण्डमध्ये तद्येन दूरीभवति क्षणेन।
तथा कुरुष्व प्रथितैरुपायैरित्युक्त ईशोऽपि जगाद भूयः॥८४॥

मैं विषकुण्ड के मध्य में पड़ी हुई थी (सम्भवतः) इसीलिए यह नील वर्ण प्राप्त हुआ है। जिन विशेष उपायों से यह शीघ्र ही दूर हो जाय, आप वैसा करें। सरस्वती के इस प्रकार कहने पर परमेश्वर विष्णु पुनः बोले।

मा त्वं शुचं याहि चिरात् सवित्रि
प्रागस्त्यपूर्व शशिशुद्धवर्णा।
उग्रेण हालाहलकर्षणेन
नीलत्वमाप्तासि कुतोऽत्र दोषः॥८५॥
नानाविधान्याभरणानि शोभां
पुष्णान्ति नीले खलु देह एव।
नीला मृडानी जगतां सवित्री
नीलं च कण्ठे पुरशासनस्य॥८६॥

हे सावित्री! अब तुम अधिक शोक मत करो। पहले तुम्हारा वर्ण स्वच्छ चन्द्रमा के समान अपूर्व (अद्‌भुत-अति सुन्दर) था। तीव्र हलाहल विष के प्रभाव से अब तुम नील वर्ण वाली हो गई हो। परन्तु इस नील वर्णत्व में किसी भी प्रकार से दोष नहीं है।

आपके नीले शरीर पर स्थित अनेकों प्रकार के आभूषण उसकी शोभा को और भी अधिक सम्वर्धित कर रहे हैं। संसार को उत्पन्न करने वाली (मृड-शिव की पत्नी) काली भी नीलवर्णा है। इसी प्रकार त्रिपुर का शासन (उसे नियन्त्रित) करने वाले शिव का कण्ठ भी नीला है।

नीलो महेन्द्रः सुरचक्रवर्ती
नीला जगज्जीवनदाश्च मेघाः।
नीलं नभः सर्वजनावकाशो
नीलः कलङ्कः शशिदीप्तिहेतुः॥८७॥
नीलोऽप्यहं सत्त्वगुणाश्रयश्च
नीलस्य वर्णस्य कुतोऽस्ति दोषः।
अशेषभूषामणिभूषिताङ्ग्यो
विनाञ्जनेनाक्षि निवेशितेन।
न रूपवत्यो नच वा युवत्यो
विलासवत्यो नवयौवनाश्च॥८८॥

समस्त देवताओं का एकमात्र शासक महेन्द्र (इन्द्र) भी नील वर्ण

वाले हैं। संसार को जीवन (अमृतस्वरूप जल) प्रदान करने वाला मेघ भी नीला है। सभी प्राणियों तथा पदार्थों को अवकाश (स्थित के लिए रिक्त स्थान) देने वाला आकाश नीला ही है। चन्द्रमा में स्थित नील रूप कलङ्क तो उसकी शोभा वृद्धि का ही कारण हो गया है।

सत्वगुण से युक्त होते हुए भी मैं नीलवर्ण हूँ। भला नील वर्ण में कैसे कोई दोष हो सकता है। सम्पूर्ण आभूषणों से शोभित शरीराङ्ग वाली होने पर भी कोई काम कला प्रिय सौन्दर्यवान नवयौवना तब तक रूपवती (सुन्दर) तथा युवती प्रतीत नहीं होती जब तक उसके नेत्र काजल से पूरित नहीं होते। जबकि काजल भी नीलवर्ण वाला ही है।

अतश्च ते नीलसरस्वतीति
ख्यातिर्भवित्री भुवनत्रयेऽपि।
त्वदर्थमेव प्रयतं मयार्ये
षाट्कौषिकी बालमृगाक्षि नित्या॥८९॥
षडर्णयोगेन हि जीवतासि
विनष्टचेष्टा विषकुण्डमध्ये।
इत्थं समाश्व(ा)स्य वचोभिराद्यां
प्रणम्य चादाय सरस्वतीं ताम्॥९०॥
प्रवर्तयामास मुखे द्विजानां
पुनः सुराणां सुखहव्यल(ब्धौ?ब्ध्यै)।
ततः प्रभृत्येव जगत्प्रतीता
मोक्षप्रदा नीलसरस्वतीति॥९१॥

अतः हे सावित्रि! अब 'नील सरस्वती' इस नाम से त्रिभुवन में तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। हे मृगशावकवत् चञ्चल नेत्रों वाली आर्ये! मैंने तुम्हारे लिए ही अति विशिष्ट इस षाटकौशिकी विद्या को प्रस्तुत (प्रकट) किया है।

विषकुण्ड के मध्य में पड़ी हुई तुम निष्क्रिय चेतना रहित सी हो गई थी। इन षड्वर्णों (बीजाक्षरों) के संयोग से ही तुम जीवित (हुई) हो। इस प्रकार के वचनों से उन आद्या शक्ति स्वरूपा सरस्वती को धैर्य धारण कराकर, प्रसन्न चित्त करके तथा प्रणाम करके उन्हें (पुनः) द्विजगणों (ब्राह्मणों) के मुख में संस्थापित कर दिया जिससे सभी देवगण फिर से (पूर्व की भाँति) हव्य की प्राप्ति से सुखी हो गये। उसी समय से ही मोक्ष प्रदान करने वाली ये देवी संसार में 'नील सरस्वती' के नाम जानी गई अर्थात् प्रसिद्ध हुई।

।। अस्याः गुप्त मन्त्रस्योद्धार-प्रयोगश्च।।

अस्या गुप्तं महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्।
यस्य स्मरणमात्रेण विजयी भुवि जायते।।९२।।
शृणु वक्ष्यामि देवेशि उपायं साधने प्रिये।
येन देवेशि भद्रं ते भविष्यति सुनिश्चितम्।।९३।।
मन्त्रं शृणु वरारोहे जपात् सार्वज्ञदायकम्।
विष्णुशक्तिर्महाशक्तिर्वह्निबीजं फडन्तकम्।।९४।।
वर्णपञ्चकमेतत् तु सार्वज्ञकारणं महत्।
यदाक्षमालया देवि दिक्सहस्रं जपेद् मनुम्।।९५।।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
षण्मासात् परतो देवि महाराजत्वमाप्नुयात्।।९६।।
अनेन सदृशं ज्ञानमनेन सदृशं तपः।
नास्ति नास्ति महामाये तन्त्रमध्ये सुरेश्वरि।।९७।।
अनेन मन्त्रराजेन वश्यादिकं समाचरेत्।
ततः सिद्धो भवेद् मर्त्यो नात्र चिन्ताविधिः स्मृतः।।९८।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(मन्त्रोद्धारतत्प्रकारान्तर-नीलिम-निरूपणं एकादशः पटलः।।११।।

हे देवि! अब इसके गुप्त मन्त्र को तथा प्रयोग एवं साधन को कहता हूँ, सुनो! यह महामंत्र सभी कर्मों के फल को देने वाला है तथा इसके स्मरण मात्र से ही साधक इस पृथिवी लोक में विजय प्राप्त कर लेता है। हे देवेशि! इसके ज्ञान से निश्चित ही तुम्हारा कल्याण होगा। हे वरारोहे! यह मन्त्र जप करने वाले के लिए सार्वज्ञदायक भी है।

विष्णु शक्ति (श्रीं), महाशक्ति (ह्रीं) पुनः 'फट्' तथा अन्त में वह्निशक्ति 'स्वाहा' इस प्रकार उद्धृत मन्त्र – **'श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा'** हुआ। पाँच वर्ण वाला यह मन्त्र सार्वज्ञ (प्रदान करने) का कारण है। जब साधक अक्ष (मातृका-वर्ण) माला द्वारा इसका दश हजार जप करता है तो उसे आज्ञासिद्धि की भी प्राप्ति हो जाती है। छः महीने तक जप करने के पश्चात् उसे महाराज पद की भी प्राप्ति हो जाती है। हे महामाये! सुरेश्वरि! इस विद्या के समान तन्त्रों में अन्य कोई ज्ञान तथा इसके साधन के समान अन्य कोई तप-कर्म नहीं है। इस मन्त्र राज के जप से मनुष्य (साधक) सिद्ध होकर वशीकरणादि सभी कर्म कर सकता है। इस विषय में किसी भी प्रकार के संशय की कुछ भी संभावना नहीं है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र में भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत मन्त्रोद्धार
तत्प्रकारान्तर नीलिम-निरूपण नामक ग्यारहवें पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पन्न हुई।।

॥ द्वादशः पटलः॥

(विद्योत्पत्ति-सृष्टिक्रम-पूजादि साधन-निरूपणम्)

॥ श्री महाविद्योत्पत्ति-निरूपणम्॥

श्रीभैरव उवाच

इदानीं शृणु वक्ष्यामि विद्योत्पत्तिं वरानने।
महाकाली जगद्धात्री तेजोरूपा जगन्मयी॥१॥
ब्रह्मरूपा महादेवी सर्वकल्याणहेतुका।
गोलोकादुपरि स्थानं मणिमुक्तादिशोभितम्॥२॥
चतुर्द्वारं चतुष्काण्डं चतुरस्रं मनोरमम्।
चतुर्भित्तिसमाकीर्णं मुक्ताहा(रं?रै)र्महोज्ज्वलम्॥३॥
स्फटिकस्तम्भसंक्रान्तं नृत्यगीतादिसंयुतम्।
निर्मुक्तं परमेशानि परमं नात्र संशयः॥४॥
इति ते कथितं दिव्यं कैलासस्थानमुत्तमम्।
गते जगति सर्वांशे प्रलये परमेऽनघे॥५॥
ब्रह्मविष्णुशिवास्तत्र न्यवसंस्तत्र भैरवि।
भीमनामा महाराजा धार्मिकः परमः पुमान्॥६॥
तस्य द्वारि महादेवि शिवाद्याः सकलेष्टदाः।
तपसा च महादेवि प्रीतास्ते भद्रकेकये॥७॥
प्रलये च गते देवि राजानं रक्षितुं शिवे।
ब्रह्माद्याः परमेशानि उपायं चक्रिरे शिवे॥८॥
अन्तस्तत्त्वं समीक्ष्यैव उपायं च वरानने।
न्यवसंस्तत्र संप्राप्ता देवीरूपं मनोरमम्॥९॥
विभागं परमेशानि वटपत्रोदरे स्थिताः।
भगवत्या(:) पदं ध्यात्वा लक्षवर्ष ततोऽभवत्॥१०॥

हे वरानने! अब मैं महाविद्या की उत्पत्ति के विषय में कहता हूँ, सुनो! विश्व को धारण करने वाली, विश्वरूपिणी, (शिव) तेजस्वरूपा, ब्रह्मरूपा, सर्वप्राणि कल्याण कारिणी जो महादेवी हैं, उन्हें ही महाकाली कहा जाता है। मणियों-मोतियों आदि रत्नों के अपार समूहों के द्वारा सुसज्जित उनका निवास

स्थान गोलोक से (भी) ऊपर है। उनका निवास स्थल (भवन) परम मनोहर (नीचे से ऊपर तक) चार खण्डों (मञ्जिलों) तथा चार द्वारों से युक्त चतुरस्र (चौकोर) है। वह चारों ओर से, अत्यन्त धवल मोतियों की मालाओं से सुशोभित चहारदीवारी (परकोटे)से युक्त है। इस भवन में अनेकों स्फटिक के स्तम्भ लगे हुए हैं तथा यहाँ सदैव भगवती की प्रसन्नता के लिए होने वाले नृत्य-गीतादि रूप उत्सवों के कारण उल्लास का वातावरण छाया रहता है। यहाँ के सभी निवासी परम मोक्ष प्राप्त (जीव) हैं। हे देवेशि! यह निश्चित रूप से समस्त सृष्टि से परे परमोच्च स्थान है। इस प्रकार तुमसे मैंने महाकाली के दिव्य स्थान जिसे कैलाश भी कहा जाता है, उसका वर्णन किया।

हे विशुद्ध पर शक्ति रूपिणि! सम्पूर्ण रूप से जगत का प्रलय होने पर (ब्रह्माविष्णुशिव) ये त्रिदेव यहीं निवास करते हैं। सृष्टि प्रलय के सन्निकट काल में (पृथ्वी पर) भीम नाम के परम धार्मिक श्रेष्ठ पुरुष महाराजा (राज्य करते) थे। उस राजा की तपस्या से प्रसन्न हुए, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले शिव आदि देवता प्रलय होने पर उस राजा की रक्षा के लिए भद्रकैकय देश मे उसके राजभवन द्वारा पर आये। हे परमेशानि! उन ब्रह्मादि देवताओं ने अपने हृदय में भली-भाँति विचार करके उसकी रक्षा का उपाय करने के लिए वहीं निवास करने लगे। वहाँ पर निवास करते समय ही प्रलयोपरान्त उस प्रलय जल के मध्य स्थित विशाल वट वृक्ष के पत्ते के बीच में (वट-पत्र के बने हुए दोने में) विराजमान मनोरम अङ्गो से युक्त देवी के स्वरूप को उन्होंने देखा। तब वे सभी देवता देवी के चरण कमलों के ध्यान में लीन हो गये और इस प्रकार भगवती के चरणों का ध्यान करते हुए एक लाख वर्ष व्यतीत हो गये।

।।काल्याः प्राकट्यं देवताभिः स्तवनञ्च।।

जाता काली परा नित्या प्रत्यक्षा तत्र भैरवि।
प्राह देव महादेव भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।।११।।
ततस्तां दृष्टिपथगां ज्ञात्वा ब्रह्मादयः सुराः।
स्तवं चक्रुः परं तत्र भगवत्याः पदेऽभवन्।।१२।।
नमस्तुभ्यं महेशानि परमानन्दरूपिणि।
अस्माकं प्राणरक्षार्थमागतासि जलोपरि।।१३।।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः।
नमस्तेऽस्तु महारौद्रि कालरात्रि नमोऽस्तु ते।।१४।।
त्वां बिना परमे रौद्रि प्रेतत्वं गतवान् भवः।
रक्ष रक्ष परे विद्ये त्रैलोक्यभुवनोदरे।।१५।।

मधुकैटभसंहित्रि निशुम्भासुरमर्दिनि।
देवैश्वर्यप्रदे देवि नमस्ते शङ्करप्रिये॥१६॥
चन्द्रसूर्यमये देवि परज्योतिःस्वरूपिणि।
स्तवाभिभावभूता त्वं प्रसीद परेश्वरि॥१७॥
इत्युक्त्वा प्रणिपत्यादि प्रणमन्तः पुनः पुनः।
किरीटेनार्कवर्णेन कालीपदेऽस्पृशन् प्रिये॥१८॥
वरं वृणु महाभागा भगवत्योक्तमुत्तमम्।
रक्षां कुरु महामाये नमस्ते शङ्करप्रिये॥१९।
तथास्त्विति वचः कृत्वा सृष्टयादी(न्)कुरुतानघाः!।

तत्पश्चात् पराशक्ति स्वरूपिणी शाश्वत रूपा (महा) काली प्रत्यक्ष प्रकट हो गई और बोलीं- हे देव महादेव! आप लोगों के द्वारा यहाँ किसकी (किस देवता की) स्तुति की जा रही है। तदुपरान्त उस भगवती काली को अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष जानकर वे ब्रह्मादि सभी देवता भगवती के चरणों में स्थित होकर (प्रणाम करके) उस पराशक्ति की स्तुति करने लगे।

हे महेशानि! परमानन्द (ब्रह्म) ही आपका वास्तविक स्वरूप है। हम लोगों की प्राण रक्षा के लिए ही आप इस समय इस प्रलय-जलराशि पर आयी (प्रकट हुई) हैं। आपको नमस्कार है, (पुनः) नमस्कार है, (बार-बार) नमस्कार है तथा (अनन्त बार) नमस्कार है। हे महारौद्रि! आपको प्रणाम है। हे कालरात्रि आपको प्रणाम है। हे परमे रौद्रि! आपके बिना तो शिव प्रेतत्व (शव अवस्था) को प्राप्त हैं। हे पराविद्या (ब्रह्म-विद्या) स्वरूपिणी त्रिलोकी को अपने उदर में धारण करने वाली (अथवा त्रिलोकी में व्याप्त रहने वाली) हमारी रक्षा करें, रक्षा करें। मधु तथा कैटभ नामक असुरों का संहार करने वाली हे देवि शङ्कर प्रिये! आपको प्रणाम है। पराज्योतिस्वरूप (ब्रह्मतेजस्वरूप) वाली हे देवि! चन्द्र तथा सूर्य के रूप में आप ही स्थित हैं। हम लोगों के द्वारा की गई इस स्तुति से प्रभावित होकर, हे परमेश्वरि! आप (हम देवताओं पर) प्रसन्न हों।

ऐसा कहकर सभी देवता भगवती के सामने झुककर प्रणाम करते हुए बार-बार अपने मुकुटों की अनेक वर्णीय प्रकाश किरणों से उनके चरणों को स्पर्श करने लगे। इस प्रकार प्रणाम करते हुए देवताओं से भगवती बोलीं-हे महाभाग्यशाली देवताओं, वरदान माँगो। तब देवताओं ने कहा - हे शङ्करप्रिये! महामाये! आपको प्रणाम है, आप हमारी रक्षा करें। देवताओं के ऐसा कहने पर 'तथास्तु' (जैसा तुम चाहते हो वैसा ही हो) कहकर देवी ने पुनः देवताओं से कहा-हे निर्दोष देवताओं, तुम विश्व की सृष्ट्यादि कर्म करो।

।। सृष्टि क्रम-निरूपणम्।।

ब्रह्मोवाच

केन रूपेण देवेशि सृष्टिस्थित्यादिकं भवेत्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा भवानी भवमोहिनी।।२०।।
कथयामास सर्वांस्तान् वरदा सा सुरान् वरान्।
मम पादरजो नीत्वा उपादानात्मकं शिवम्।।२१।।
सृष्ट्यादीन कुरुत प्राज्ञा येन सिद्धिर्भविष्यति।
तत्पादप्रभवं नीत्वा रजो देवि शिवे शुभे।।२२।।
सृष्टिं कर्तुं ततो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुः प्रवर्तकः।
संहारे रुद्र एवासौ प्रावर्तयत सत्वरम्।।२३।।
सृष्टिराविर्वभूवाथ सर्वदेववरोत्तमैः।
सनकाद्या सनन्दाद्या सन्ध्या चापि व्यजायत।।२४।।
प्रजाः ससर्ज देवेशः सर्वभूतमयीः शुभाः।
स्थितिं विष्णुर्महाभागश्चकार जगतां विभुः।।२५।।
प्रसंहरति रुद्रश्च सृष्टेरेवं क्रमं शृणु।
स्वर्गे देवा महादेवि इन्द्रो राजा तु तत्र वै।।२६।।
मर्त्यलोकं सनाथाद्यं राजा च भगवान् मनुः।
पातालं सर्वनागाद्यं निर्ममे जगतां विभुः।।२७।।
तत्र राजा विराधाख्यः प्रजापालनतत्परः।
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव सदाशिवः।।२८।।
स्वस्वकर्मणि घूर्णन्ते प्रभवन्ति गणेश्वरि।

भगवती काली द्वारा सृष्ट्यादि का आदेश देने पर ब्रह्मा बोले-हे देवेशि! विश्व की सृष्टि स्थित्यादि किस प्रकार से होती है अर्थात् हम देवता किस प्रकार करें। ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर, विश्व को मोहित करने वाली भवानी ने उन देवताओं को अनेकों वरदान (शक्ति सामर्थ्य) देकर, उनसे कहने लगी कि हे प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न देवताओं सृष्टि के मङ्गलमय उपादन स्वरूप मेरे चरण रज को लेकर सृष्टि आदि कर्म करो, इससे तुम अपने कर्म में अवश्य सफल होगे। तदुपरान्त भगवती के चरणों से उत्पन्न रज को लेकर, हे देवि! शिवे! ब्रह्मा विश्व की सृष्टि करने के लिए, विष्णु उसकी स्थित क्रिया में तथा रुद्र उसके संहार कर्म में शीघ्र ही प्रवृत्त हो गये।

सृष्टि के प्रारम्भ में पहले श्रेष्ठ देवताओं की उत्पत्ति हुई, फिर सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार इन ब्रह्मपुत्रों की उत्पत्ति हुई। इसी क्रम से

दिन-रात्रि सहित दोनों सन्ध्याएं भी उत्पन्न हुई। देवेश ब्रह्मा ने सर्व (पञ्च) भूतमय (अथवा समस्त चराचर प्राणियों सहित) सारी प्रजाओं को उत्पन्न किया। सर्व व्यापक महाभाग विष्णु ने जगत की स्थित का कार्य किया तथा रुद्र इसका संहार करते हैं। हे देवि! इस प्रकार आपने इस सृष्टि क्रम को सुना। हे महादेवि! स्वर्ग में देवता निवास करते हैं, वहाँ इन्द्र उनके राजा हैं। मर्त्य (पृथिवी) लोक मनुष्यों से व्याप्त है, यहाँ राजा मनु हुए। पाताल नागों से भरा हुआ है। इस तरह विभु (महान) ब्रह्मा ने जगत का निर्माण किया। उस पाताल लोक में प्रजापालन में तत्पर विराध नामक राजा राज्य करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र एवं सदाशिव अपने-अपने कर्मों में संलग्न रहते हुए जगत की वृद्धि तथा उसका कल्याण करते हुए प्रभावी (पूजित) होते हैं।

।। असुरैः पराजिता देवताभिः काल्यन्तिकं गमनम्।।

ततस्तु परमेशानि रौद्री रात्रिरुदीरिता।।२९।।
असुरास्तत्र देवेशि प्रदुद्रुवुर्महाभयाः।
स्वर्गान्निराकृतास्तैस्तु भयानकभयार्दिताः।।३०।।
इन्द्रादयः सुरगणा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
आगच्छंस्तु महादेवीं स्वस्वकार्यार्थसाधकाः।।३१।।
त्वमेव जगतां नाथस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
त्वमेव हव्यंहोताच भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।।३२।।
वेद्यं वेदयिता चासि ध्याता ध्येयं च तत्परः।
त्वं पितृणामपि पिता देवानामपि देवता।।३३।।
परतोऽपि परश्चापि विधाता वेधसामपि।
परब्रह्मस्वरूपस्त्वं प्रसीद परमेश्वरि।।३४।।
इति तेषां वचः श्रुत्वा देवी चादितिजन्मनाम्।
प्राह देवाः! परो धर्मः परात् परतरोऽपि च।।३५।।
किं कारणं महाभागाः! यत्नं कुरुत सादरम्।
एवं श्रुत्वा ततो ब्रह्मा प्रोवाच वदतां वरः।।३६।।

तत्पश्चात् (किसी समय) देवताओं की (के लिए) भयानक रात्रि आयी, तब प्रबल हुए महाभयानक असुरों ने (स्वर्ग पर आक्रमण करके वहाँ से) देवताओं को भगा दिया। उन भयङ्कर असुरों के भय से पीड़ित तथा स्वर्ग से निरादरपूर्वक निकाले गये अपने-अपने ही कार्य सिद्धि में लगे रहने वाले (स्वार्थी) वे इन्द्रादि देव गण ब्रह्मा विष्णु शिव (त्रिदेव) स्वरूपा महादेवी के पास आकर उसकी स्तुति करते हुए बोले-हे देवि! आप ही इस जगत की

संरक्षिका-स्वामिनी हैं। सारा विश्व आप में ही प्रतिष्ठित है। आप ही (यज्ञ कर्मों में) हविरूप हैं तथा होता रूप भी। आप ही (भोजन) भोज्य तथा शाश्वत भोक्ता हैं। वेदों के द्वारा जानने योग्य तत्व तथा ध्यान करने वाले व्यक्ति की ध्येय वस्तु (ध्यान का विषय)तथा उससे भी परे (जो कुछ भी वस्तु है वह) आप ही हैं। आप पितरों की भी पिता (पूर्वज) तथा सभी देवताओं की भी परम देवता हैं। आप पर (कार्य ब्रह्म) से भी परे (परतर-कारण ब्रह्म रूप) हैं। आप विधाता (ब्रह्मा) की भी विधाता (उन्हें उत्पन्न करने वाली) हैं। हे परमेश्वरि! आप ही परब्रह्मस्वरूप हैं, आप हम देवताओं पर प्रसन्न हों।

उन देवताओं के इस प्रकार कहे गये वचनों को सुनकर देवी ने कहा-हे देवों! इस विश्व में पर, परतर और परम ब्रह्म रूप से यदि कोई तत्व है तो वह धर्म ही है। आप लोग किस कारण से धर्म नहीं करते। हे महाभागों! श्रद्धा सहित धर्म-पालन का यत्न करो। देवी के इन वचनों को सुनकर वक्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा बोले।

॥ब्रह्मणा सह देवताभिः विष्णु-शिव-समीपं गमनम्॥

महेन्द्रस्य न चैश्वर्यं शाम्यते न च तेन सा।
विष्णवादिको महान् भूतस्तेन शाम्येन्न संशयः॥३७॥
ययौ ब्रह्मा महेन्द्रेण गोलोकं सहितो मुदा।
नानाविधैर्महेशानि वाक्यैश्च परमेश्वरम्॥३८॥
तुष्टाव परमानन्दं स्वकार्योद्धरणाय च।
इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥३९॥
उवाच सादरं विष्णुर्न मया शक्तये विभो।
ब्रह्मविष्णू महेशानि आगतौ मम गोचरे॥४०॥
स्तवैर्बहुविधैर्दिव्यैस्तुष्टुवतुः परं शुभे।
मयोक्तं परमेशानि एतान् हन्तुं न शक्यते॥४१॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णू समाहितौ।
प्राञ्जलिं च ततो वद्ध्वा प्रतुष्टुवतुर्मां चिरम्॥४२॥
ततः परं महादेवि कथितं सर्वमोहनम्।
न शक्तिर्मम तत्रास्ति समर्था तद्विमर्दने॥४३॥
अस्ति काली महातीर्थे कैलासे भवगेहिनी।
परमे च शिवे देवी संस्थिता विश्वमोहिनी॥४४॥
सैव काली महाविद्याऽज्ञानेन्धनप्रदीपनी।

महेन्द्र में अब वह ऐश्वर्य (सामर्थ्य) नहीं (रह गया) है जिससे वे इस विपत्ति का शमन कर सकें। विष्णु आदि महान ऐश्वर्य वाले देवता हैं, उनके द्वारा अवश्य ही इस सङ्कट का समाधान (निराकरण) हो सकता है। ऐसा विचार कर महेन्द्र के साथ ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक गोलोक (वैकुण्ठ) को गये। वहाँ अपने कार्य की सिद्धि के लिए अनेकों प्रकार से स्तुति करके परमानन्द स्वरूप परमेश्वर (विष्णु) को प्रसन्न किया। उन परमेष्ठि ब्रह्मा के वचनों को सुनकर, विष्णु ने उनका सम्मान करते हुए कहा-हे विभो! मेरे द्वारा आपकी कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। तब वे ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों (देवताओं के साथ) मेरे पास आये। हे शुभे! उनके द्वारा अनेकों प्रकार के किये गये दिव्य स्तुतियों से परम प्रसन्न होकर मैंने उनसे कहा - इन असुरों को मारने में मैं समर्थ नहीं हूँ। मेरे इस वचन को सुनकर ब्रह्मा और विष्णु दोनों हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त होकर बहुत देर तक मुझको प्रसन्न करने के लिए स्तुति करते रहे। तत्पश्चात् हे महादेवि! मैंने उन सभी को मोहित (प्रसन्न) करने वाली वाणी में कहा मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उनका विनाश करने में समर्थ हो सकूँ। उन असुरों का मर्दन करने में समर्थ महाकाली हैं जो कैलास नामक महातीर्थ में शिव-पत्नी के रूप में निवास करती हैं। हे शिवे! वह विश्वमोहिनी देवी काली महाविद्यारूपिणी है तथा अज्ञान रूपी इन्धन के लिए वह अग्नि के समान, उन्हें जलाकर नष्ट करने वाली हैं।

।। ब्रह्मादि-देवताभिः कालीसमीपागमनम्।।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रोऽहं परमेश्वरि।।४५।।
महाकालीदर्शनाय वयं तत्र गताः शुभे।
तेजोरूपधरे देवि महानाथे हरप्रिये।।४६।।
देवदानवगन्धर्वहिताय परमेश्वरि।
प्रसीद सर्वकल्याणि नमस्ते शारदेऽनघे।।४७।।
इति तेषां वचः श्रुत्वा महाकाली महाशिवा।
देवानां प्रीतये देवि प्रत्यक्षरूपतां गता।।४८।।

हे परमेश्वरि! तदुपरान्त ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं रुद्र (भी) महाकाली के दर्शन के लिए वहाँ (कैलास पर) गये। वहाँ जाकर हम सभी ने महाकाली की स्तुति करते हुए कहा-हे दिव्य तेजयुक्त स्वरूप धारण करने वाली, विश्व की एकमात्र स्वामिनी (संरक्षिका), शिव-प्रिया, सभी प्राणियों का कल्याण करने वाली, विशुद्ध स्वरूप वाली, समस्त कर्म बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने वाली शारदा रूपा परमेश्वरि देवि! आपको प्रणाम है। देव-दानव-गन्धर्वों

(सहित सभी प्राणियों) के कल्याण हेतु आप प्रसन्न हों। हे देवि! उन देवताओं के इस प्रकार कहे गये वचनों को सुनकर महाशिवा महाकाली उन देवताओं की प्रसन्नता के लिए प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो गई।

देवी उवाच

किं याचत सुराः सर्वे वरं वृणु तपोधनाः!।
यद्यत् कामयमानाः स्थ तत् सर्ववदतामराः।।४९।।

तत्पश्चात् उस महाकाली ने देवताओं से पूछा- हे देवताओं, आप क्या माँगते हैं। हे तपोधनों, आप सभी वरदान वरण करे (वरदान माँगें)। आपकी जो भी कामना हो, उन सभी को, हे देवताओं, आप कहें।

।। देवताभिः स्वविपत्ति-निवेदनं काल्या नील सरस्वती विषये कथनञ्च।।

देवा ऊचुः

भीता महासुरैर्देवि यज्ञकाण्डं निवर्तितम्।
तेषां वधाय देवि त्वं प्रसीद सर्वगोचरे।।५०।।
इति तेषां वचः श्रुत्वा देवी चादितिजन्मनाम्।
प्रसन्ना सा महादेवि नीलरूपा वराङ्गना।।५१।।
नीलसरस्वती ख्याता सृष्टसर्वविमोहिनी।
तस्या उत्थाय सा देवी नीलवाणीति शब्दिता।।५२।।
किमाज्ञापय देवि त्वं तत् करोमि प्रहेलया।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा महाकालीति चिन्मयी।।५३।।
उवाच सादरं देवि स्नेहगद्गदया गिरा।
लीलया वाक्प्रदा चेति तस्मान्नीलसरस्वती।।५४।।
देवित्वं प्रथिता साध्वि नीलवाणीति(भाविनी?तारिणी)।
तस्याः प्रभाववृन्दैश्च व्याप्तं सर्वं जगत्त्रयम्।।५५।।
गच्छ त्वं परमेशानि मत्स्वरूपा वरानने।
देवकार्यहितार्थाय निर्मिता त्वं शुचिस्मिते।।५६।।

महाकाली के द्वारा इस प्रकार कहने पर देवताओं ने उनसे कहा-हे देवि! हम सभी देवता असुरों के कारण बहुत डरे हुए (विपत्तिग्रस्त) हैं। उन असुरों के कारण ही सभी यज्ञ (आदि सत्) कर्म अवरुद्ध (बन्द) हो गये हैं। समस्त प्राणियों के इन्द्रियों में (शरीर में) शक्ति रूप से निवास करती हुई उन्हें सक्रिय बनाने वाली हे देवि! आप प्रसन्न हों तथा उन असुरों का वध करने के लिए उपाय करें।

उन देवताओं के इन वचनों को सुनकर उन पर प्रसन्न हुई उस महादेवी ने सम्पूर्ण विश्व को (अपने सौन्दर्य अथवा माया से) मोहित करने

वाली नीलवर्णा नवयौवना सुन्दरी (जो नील सरस्वती के नाम से बाद में प्रसिद्ध हुई) को (स्वशरीर से प्रकट कर अथवा समीप में स्थित हुई को) उठाकर उस देवी को नील वाणी (सरस्वती) के नाम से सम्बोधित किया। तब उस देवी नील सरस्वती ने महाकाली से कहा – हे देवि! क्या आज्ञा प्रदान कर रही हैं। आप जैसा कहेंगी वैसा मैं खेल–खेल में ही सरलता से कर दूँगी। उस नील सरस्वती के वचन को सुनकर चिन्मयी महाकाली ने स्नेह के कारण (भरे हुए कण्ठ से) गद्गद् वाणी में आदर पूर्वक कहा–हे देवि! साध्वि! लीला पूर्वक (क्रीड़ा रूप अत्यन्त सरल साधना से ही अपने भक्तों को) वाक्शक्ति प्रदान करने वाली होने के कारण तुम तारिणी नील सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध होवोगी। उस ख्याति के प्रभाव से तुम तीनों लोकों में व्याप्त होकर रहोगी। पवित्र मुस्कान वाली हे परमेशानि! तुम मेरा ही स्वरूप हो। देवताओं की कार्यसिद्धि तथा उनका कल्याण करने के लिए ही तुम्हारी सृष्टि हुई है। जाओ! देव–कार्य सिद्ध करो।

।। नील सरस्वत्याः माहात्म्यं तयाश्वासिताभिर्देवताभिर्पुनरागमनञ्च।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा तारिणी विश्वमोहिनी।
देवान् प्राह महाभागाः! गच्छत यत्र तेऽसुरा।।५७।।
अहं तत्र गमिष्यामि सर्वथा सन्निधौ सुराः।
इत्युक्त्वा सा महादेवी तारिणी कामचारिणी।।५८।।
अन्तर्हिता महामाया मायारूपवती च सा।
महामाया सदानन्दा सर्वदेवमयी शुभा।।५९।।
ए(या?षा) च सर्वदेवानां गायत्री च मनोरमा।
गायत्री सैव सावित्री सैव ब्रह्मस्वरूपिणी।।६०।।
यामासाद्य महात्मानो धर्मकामार्थमुक्तिषु।
नासाद्यं मेनिरे किञ्चित् त्रिषु लोकेषु सुन्दरि।।६१।।
कवित्वं परमैश्वर्यं महादेव्याः प्रसादतः।
ईशत्वं गतवान् इन्द्रः विष्णुत्वं गतवान् हरिः।।६२।।
शिवत्वं गतवान् रुद्रः सर्वैश्वर्ययुतो महान्।
इति तद्वचनं श्रुत्वा देवाः सर्वैर्नमस्कृताः।।६३।।
किरीटेनार्कवर्णेन स्पृशन्तस्तत्पदाम्बुजम्।
नमस्कृत्य नमस्कृत्य पुनर्नत्वा महेश्वरीम्।।६४।।
सर्वं कार्यं महादेवि न किञ्चिद्वशिष्यते।
संस्मृता संस्मृता देवि हिंसेथाः परमापदः।।६५।।

इति नत्वा महादेवीं सर्वकामवरेश्वरीम्।
आगतास्ते पुनस्तत्र स्थितिर्यत्र शिवे(नघे?नगे)।।६६।।

इस प्रकार महाकाली के वचन को सुनकर उस तारिणी विश्वमोहिनी (नील सरस्वती) ने देवताओं से कहा-हे महाभागों! जहाँ वे असुर हैं वहाँ जाओ। मैं भी तुम देवताओं के समीप वहीं आऊँगी। ऐसा कहकर, अपनी माया से विभिन्न रूप धारण करने वाली, स्वेच्छानुसार व्यवहार करने वाली वह महामाया, महादेवी तारिणी अन्तर्धान (दृष्टि से ओझल) हो गयी।

यह महामाया सदानन्द (सत् आनन्द) रूपिणी, सर्वदेवमयी, कल्याण रूपा, सभी प्राणियों के मन को रमाने (आनन्दित करने) वाली (अथवा मन में रमने वाली) तथा सभी देवताओं की गायत्री (उनके शरीरों की संरक्षिका) है। वह गायत्री ही सावित्री है तथा वही ब्रह्मस्वरूपिणी है। इसी को प्राप्त कर लेने पर महात्मा पुरुषों द्वारा धर्मार्थ काममोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय तथा तीनों लोकों में कोई भी वस्तु प्राप्त करना असाध्य नहीं माना जाता।

इसी महादेवी की कृपा से कवित्व (शास्त्र ज्ञान) की प्राप्ति होती है। तथा इसी की कृपा से इन्द्र को परमैश्वर्य(देवताओं का) स्वामित्व अथवा शासकत्व प्राप्त हुआ है। हरि को विष्णुत्व (सृष्टि में व्यापकत्व) तथा रुद्र को शिवत्व एवं सभी ऐश्वर्यों की प्राप्ति हुई।

महाकाली द्वारा कहे गये (पूर्वोक्त) वचनों को सुनकर सभी देवता अपने मुकुट के शीर्षकोणों के द्वारा उस देवी के पादपद्मों को स्पर्श करते हुए बार-बार नमस्कार करते हुए बोले-हे देवि! आपकी कृपा से (मानो) हमारे सारे कार्य सिद्ध हो गये, अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा। हे देवि! इन परम विपत्ति रूप असुरों को आप मार डालें। इस प्रकार सर्व कामवरेश्वरी महादेवी को प्रणाम कर बार-बार उसका स्मरण करते हुए उसी पर्वत पर आ गये जहाँ पहले स्थित (निवास करते) थे।

।। देवताभिः देवी नीलसरस्वत्याः पूजनम्।।

पञ्चवर्ष गतं तत्र देवानां दिव्यजन्मननाम्।
भ्रष्टराज्याः परातङ्का मर्त्या इव नगोपरि।।६७।।
इन्द्रादयः सुरगणाः पुनर्देवीं समस्मरन्।
गताः सर्वे नगं शुद्धं यत्रास्ते सुन्दरी शिवा।।६८।।
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमस्नान-वसनाभरणानि च।।६९।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं शिवे।
षोडशैरुपचारैश्च देवीं नीलसरस्वतीम्।।७०।।

पूजयित्वा बलिं दत्त्वा शिवायै विविधैः शुभैः।
जपं चकार देवेशि देववृन्दः सुरोत्तमः॥७१॥
महामन्त्रं पूर्वमुक्तं लक्षं जप्त्वा महेश्वरि।
अयुतं चाजुहोदाज्यैः पद्मपुष्पैर्मनोरमैः॥७२॥
होमं चक्रुस्तिलयुक्तैः शर्करासहितैरपि।
एवं हुत्वा महादेवि दशांशेनाभिषेचनम्॥७३॥
दशांशैस्तर्पणं देवि कृतं सर्वैर्महेश्वरि।
समाप्ते च ततो देवीं पूजयित्वा महानिशि॥७४॥
बलिं दत्त्वा महादेव्यै सुराहाराः सुरास्तथा।
एवं नियममानेन कृतं कर्म मनोरमम्॥७५॥
ततो भगवती देवी देवैः स्मृता महेश्वरि।
सन्तुष्टा सा महादेवी नीलरूपा महोदरी॥७६॥
देवाग्रे परमेशानि प्रत्यक्षत्वमुपागता।
किं करोमि क्व गच्छामि ब्रूत देवाः! समाहवे॥७७॥

उस स्थान पर निवास करते हुए देवताओं के पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। स्वर्ग के राज्य से पतित तथा असुरों से भयभीत सामान्य मनुष्यों की भाँति उस पर्वत पर रहने वाले इन्द्रादि सभी देव समुदाय पुनः देवी का स्मरण करते हुए उस पवित्र पर्वत पर गये जहाँ सुन्दरी देवी नील सरस्वती निवास कर रही थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देवी का पूजन करना प्रारम्भ किया।

आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा स्तुति-प्रणाम रूप षोडशोपचारों द्वारा देवी नील सरस्वती की पूजा करके, विविध प्रकार से शिवा के लिए शुभ बलि प्रदान करके, हे देवेशि! सभी देवगणों ने देवी के मन्त्र का जप किया। देवी के पूर्वोक्त मन्त्र का एक लाख जप करके तत्तत् दशांश के क्रम से पहले पद्म पुष्पों तथा घृत से दश हजार की संख्या में हवन करके पुनः तिल तथा शकर के मिश्रण से हवन किया। तत्पश्चात् तर्पण तथा अभिषेक करके पूजन कर्म को सम्पूर्ण किया। हे महेश्वरि! इसके पश्चात् पुनः अर्द्ध रात्रि में पूजन करके महादेवी के लिए देवों के योग्य आहार (भोजन) तथा सुरा बलि के रूप में प्रदान किया। इस प्रकार सभी कर्म विधिवत् सुन्दर ढंग से सम्पन्न किया। तत्पश्चात् हे महेश्वरि! देवों के द्वारा स्मरण करने पर उनसे सन्तुष्ट हुई वह भगवती देवी महोदरी (समस्त सृष्टि को अपने अन्दर धारण करने वाली) नीलवर्णा नील सरस्वती देवताओं के सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हो गयी। फिर उन्हें सम्बोधित करती हुई बोली-हे देवताओं! बोलो मैं (तुम्हारे लिए) क्या करुँ, कहाँ जाऊँ।

।। सिद्धविद्यानिरूपणं देव्यासुरान्निहत्य सुरान् संस्थापनञ्च।।

देवा ऊचुः

प्रणमा(मि?मो)महादेवि प्रसन्ना भव चेश्वरि।
ततो भगवती देवी नीलरूपा मनोरमा।।७८।।
दृष्ट्वा सुरसमूहान् सा तारिणी सर्वकामदा।
स्वदेहतः पराः सृष्टा विद्या द्वादश ईरिताः।।७९।।
काली चैव महादेवी महाविद्या तथैव च।
षोडशी भुवनेशानी भैरवी च्छिन्नमस्तका।।८०।।
धूमावती च बगला मातङ्गी कमलात्मिका।
एता विद्या महादेवि सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः।।८१।।
महादेव्याः सरस्वत्या देहोद्भूता वरानने।
अन्याश्च मातरस्तस्या देहाज्जाता वरानने।।८२।।
सर्वा देव्याः परानन्दे नृत्यन्ति चरणान्तिके।
ततोऽसुरान् निहत्यैव पुनर्देवान् महेश्वरि।।८३।।
संस्थापयामास तदा स्वस्वस्थानं गतास्तदा।
इति प्रकारं देवेशि शृणु भैरवि मन्मुखात्।।८४।।
तव स्नेहाद् वरारोहे प्रकाशमुपपादितम्।
एतत्ते कथितं देवि विद्योत्पत्तिर्महेश्वरि।।८५।।
सर्वतन्त्रेषु देवेशि गोपनीया सुरेश्वरि।
तस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये महेश्वरि।।८६।।
एषा ते कथिता विद्या सर्वसारोत्तमोत्तमा।

तत्पश्चात् देवताओं ने कहा – हे महादेवि! हम आपको प्रणाम करते हैं। हे ईश्वरि! आप हम पर प्रसन्न हों। तब सभी कामनाओं को प्रदान करने वाली उस देवी तारिणी ने अपने शरीर से (अन्य) विद्याओं की सृष्टि की जो सभी परा विद्या कही जाती हैं। काली, महादेवी, महाविद्या, षोडशी, भुवनेशी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी तथा कमला, हे महादेवि! ये स्वयं नीलसरस्वती सहित बारहों विद्याएं सिद्धविद्या कही जाती हैं। हे वरानने! ये सभी विद्याएं महादेवी सरस्वती के शरीर से उत्पन्न हुई हैं। अन्य माताएं (ब्राह्मी आदि) भी इन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई हैं। ये सभी उत्पन्न हुई विद्याएं, मातृ शक्तियाँ आदि देवी के परमानन्द में मग्न हुई सी उनके चरणों के पास में नृत्य करती रहती हैं।

हे महेश्वरि! इसके बाद देवी ने असुरों को मार कर देवताओं को पुनः स्वर्ग में संस्थापित किया जिससे सभी देवता अपने-अपने स्थान को गये। इस प्रकार हे देवि! मैंने तुम्हें यह विद्योत्पत्ति का प्रसङ्ग सुनाया। तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही इसे मैंने प्रकाशित किया है। हे देवि! तुमसे मैंने जो यह विद्योत्पत्ति कही है वह सभी तन्त्रों में गोपनीय है। यह विद्या प्रसङ्ग जो मैंने कहा है वह सभी ज्ञानों के सार के भी सार से सर्वोत्तम है। तन्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई ज्ञान नहीं है।

।। सार्वज्ञ-प्राप्ति-प्रयोगः।।

इदानीं श्रृणु देवेशि सार्वज्ञकारणं मतम्।।८७।।
रात्रौ प्रथमयामे तु मङ्गले वासरे शिवे।
चतुर्हस्तप्रमाणां हि वेदीं कृत्वा मनोरमाम्।।८८।।
सिन्दूरेण महेशानि यन्त्रं निर्माय साधकः।
ताम्रस्योपरि संस्थाप्य वेष्टयेद् रक्तवाससा।।८९।।
तिलपूर्ण घटं तत्र स्थापयेत् सुरवन्दिते।
पूर्वमुक्तं मन्त्रबीजं तेनैव जपमाचरेत्।।९०।।
पूर्वास्यो हि जपं कुर्याद् विशेद् रक्तासने सुधीः।
भूर्जे विलिख्य देवेशि साध्यनाम विदर्भितम्।।९१।।
तदधः स्थापयेद् देवि विशेत् तदुपरि प्रिये।
रक्तवस्त्रं परिधाय उष्णीषं लोहितं शिवे।।९२।।
जपेत् पूर्वमुखो देवि पूजयेत् परमेश्वरीम्।
सिन्दूरारुणविग्रहां करतले वामे च मुण्डं तथा
कर्णे सव्ये शवेशं परिणमितजटाकेशपाशेन युक्ता(म्)।
ध्यायेदट्टाट्टहासां(.......?)रक्तधाराविशेषा
रक्ताख्या पूर्णमूला विदधतु(?)(सु)वरं कामरूपावराङ्गी।।९३।।
इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेत परमेश्वरीम्।
दशसाहस्रजाप्येन जपं कुर्याच्शुचिस्मिते।।९४।।
होमयेत् तद्दशांशेन दशांशैस्तर्पणं चरेत्।
तद्दशांशैर्महेशानि अभिषेचनमाचरेत्।।९५।।
ततो देवि महाभागे जपहोमादिकं चरेत्।
पञ्चदिनप्रयोगेण सिद्धो भवति साधकः।।९६।।
इति ते कथितं देवि प्रयोगसारमुत्तमम्।
सर्वसिद्धिप्रदं देवि सर्वापद्विनिवारकम्।।९७।।

पुष्पवन्तौ यदि वृथा तदा निष्फलभाग् भवेत्।
अस्मात् परतरं नास्ति सत्यं सुरगणार्चिते॥९८॥

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (विद्योत्पत्ति-सृष्टिक्रम पूजादिसाधन-निरूपणं) द्वादशः पटलः॥१२॥

हे देवि! अब सर्वज्ञता प्राप्ति कारक प्रयोग को सुनो। मंगलवार की रात्रि के प्रथम प्रहर में चार हाथ लम्बी व चार हाथ चौड़ी वेदी का निर्माण करे। फिर ताम्र पत्र पर सिन्दूर से तारा (नील सरस्वती) यन्त्र का निर्माण करके उसे लाल वस्त्र में लपेटकर वेदी पर स्थापित करे। तत्पश्चात् उस यन्त्र पर तिल पूर्ण घट स्थापित करें। इसके बाद पूर्व की ओर मुख करके लाल आसन पर बैठकर, साध्य नाम को मन्त्र से विदर्भित करके भोजपत्र पर लिख करके उसे आसन के नीचे रखें। साधना के समय साधक लाल वस्त्र तथा सिर पर लाल पगड़ी धारण करे। पूर्व मुख बैठकर पूजन तथा जप करते समय इस प्रकार ध्यान करे।

देवी का शरीर सिन्दूर के समान लाल है। इनके बायें हाथ में नरमुण्ड तथा दाहिने हाथ में कर्त्री है। ये शव रूप शिव पर स्थित हैं तथा रस्सियों के समान बटी हुई जटायें बिखरी हुई हैं। ये रक्त धारा से स्नान की हुई घोर अट्टहास कर रही हैं। ऐसी सुन्दर अङ्गों वाली पूर्णा कामरूपा मूल प्रकृति रूपिणी रक्ता नाम वाली महाकाली हमें श्रेष्ठ वर प्रदान करे।

हे पवित्र मुस्कान वाली देवि! परमेश्वरी महादेवी का इस प्रकार ध्यान करके उनका पूजन कर मन्त्र का दश हजार जप करे। जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशांश अभिषेक करे। इस प्रकार पाँच दिनों तक प्रयोग करने वाला साधक सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार हे देवि! सभी सिद्धियों को देने वाले तथा समस्त विपत्तियों का निवारण करने वाले उत्तम प्रयोग का मैंने तुमसे वर्णन किया। देवगणों द्वारा पूजित हे देवि! इससे श्रेष्ठ अन्य कोइ प्रयोग नहीं है। यदि पुष्पिता स्त्री भी संतान उत्पन्न करने में अयोग्य हो जाय तो ही यह प्रयोग निष्फल कहा जा सकता है अर्थात् जैसे पुष्पिता स्त्री पुत्र रूप फल देने में समर्थ होती है उसी प्रकार यह प्रयोग भी अपना फल देने में निश्चित रूप से समर्थ है।

॥ श्री बृहन्नील तन्त्र में भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
विद्योत्पत्ति-सृष्टि-क्रम-पूजनादि साधन-निरूपण
नामक बारहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

* * *

॥ त्रयोदशः पटलः॥

(महाकालीमन्त्र-तत्पुरश्चरणादि प्रयोग-वीर साधन निरूपणम्)

॥ महाकाल्याः मन्त्रोद्धारः॥

श्रीभैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि सावधानावधारय।
महाकाल्याः परं मन्त्रं सर्वसारस्वतप्रदम्॥१॥
यामाहुताराद्यां प्रकृतिं वराङ्गनां
प्रमातुराद्यां सकलां तुरीयाम्।
परापराम्बां वरदां वरेण्यां
वीरेश्वरीं साधकसिद्धिदात्रीम्॥२॥
यामाद्यां प्रकृतिं प्राहुः कालीं कालस्वरूपिणीम्।
तस्या मन्त्रं महामन्त्रं मन्त्रसारमिमं प्रिये॥३॥
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं प्रापुर्महर्षयः।
शिवरूपा शवारूढा वरदा भयनाशिनी॥४॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वविस्मयकारिणी।
नात्र चित्तादिशुद्धिः स्याद् न चामित्रादिदूषणम्॥५॥
न कालनियमस्तत्र महामन्त्रस्य साधने।
न वारं नच नक्षत्रं नच तिथ्यादिदूषणम्॥६॥
गुरुचिन्ता न चैवात्र महाकाल्याश्च साधने।
मन्त्रं शृणु वरारोहे सर्वसारस्वतप्रदम्॥७॥
मायाशक्तिद्वयं देवि शब्दबीजद्वयं ततः।
निजबीजत्रयं चैव दक्षिणे कालिके-पदम्॥८॥
संहारक्रमयोगेन पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
वर्तुलाद्यं महामन्त्रं वह्निप्रियान्तकं शिवे॥९॥
त्रयोविंशत्यक्षरात्मा मनुः परमशोभनः।
अनेन मन्त्रराजेन शिवोऽहं नात्र संशयः॥१०॥

हे महेशानि! सावधान होकर सुनो। अब मैं महाकाली के सारस्वतप्रद महामन्त्र को कहता हूँ।

वेद-शास्त्रों के ज्ञाता जिसे आद्या (मूल) प्रकृति कहते हैं, जो सभी प्रमाणों से परे (अप्रमेया) है, पर, अपर तथा परापर रूप सकल ब्रह्मरूपा होते हुए भी उससे परे तुरीय रूपा है, पर तथा अपर मातृ रूपा है, (साधकों को अभीष्ट) वर देने वाली अथवा वर देने वाली सभी देवियों (देवताओं) में सर्वश्रेष्ठा है, वीर-साधकों की अधिष्ठात्री (स्वामिनी-इष्टरूपिणी) तथा समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली है, वह कालस्वरूपिणी सुन्दरी ही काली कही जाती है।

हे प्रिये! उसी के इस सर्वमन्त्र-सार रूप महामन्त्र को मैं कहता हूँ, जिसे जानकर के (पूर्वकाल में) सभी साधक महर्षियों ने सिद्धि प्राप्ति की थी। यह देवी शिव स्वरूपा (अथवा कल्याणरूपा), शव पर आरूढ़ रहने वाली (अथवा शिवरूप शव पर आरूढ़ रहने वाली), वरदायिनी, भय का नाश करने वाली, सभी भोगों (अथवा कामनाओं के फल) को देने वाली तथा (अपनी शक्ति, स्वरूप, कर्म सिद्धि दानादि से) सभी को आश्चर्य में डालने वाली अथवा जगत् सृष्ट्यादि सभी अद्भुत कार्य करने वाली है।

इसकी साधना में न तो (शरीर सहित) चित्तादि शुद्धि आवश्यक है और न ही मन्त्र के विषय में मित्र-अरि आदि दोषों के विचार की आवश्यकता है। तिथि, वार, नक्षत्र आदि रूप काल नियम के विषय में भी सदोष-निर्दोष आदि के निर्णय की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तक कि यदि किसी कारणवश योग्य गुरु की प्राप्ति न हो सके तब भी बिना गुरु (दीक्षा) की चिन्ता किये महाकाली की (स्वविवेक तथा शास्त्रानुशीलन से प्राप्त ज्ञान के अनुकूल) साधना करनी चाहिए। हे वरारोहे! अब इस सारस्वतप्रद मंत्र (के उद्धार विधि) को सुनो।

दो बार मायाशक्ति (ह्रीं ह्रीं), दो बार शब्दबीज (हूँ हूँ), तीन बार काली का स्व बीज (क्रीं क्रीं क्रीं), तत्पश्चात् 'दक्षिणे कालिके' पद पुनः संहार क्रम से पूर्व (सातों) बीजों को लिखकर आदि में वर्तुल (ॐ) तथा अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) का योग करके तेईस अक्षर वाले परमसुन्दर महामन्त्र का उद्धार करे। हे देवि! इसी मन्त्रराज के प्रभाव से मैं शिवस्वरुप (शिवत्व प्राप्त) हूँ।

मन्त्र-स्वरूप - **"ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे-कालिके**
क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।"

।। ऋषि-छन्द-ध्यानादिकम्।।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो उष्णिक् छन्द उदाहृतम्।
महाकाली देवता च लज्जाबीजं तु बीजकम्।।११।।

हूँबीजं मन्त्रशक्तिः स्याद् विनियोगः प्रकीर्तितः।
ध्यानं शृणु वरारोहे जपात् सिद्धिप्रदायकम्।
यस्याभ्यासवशाद् देवि पशवो वीरतां गताः॥१२॥
मेघाङ्गीं विगताम्बरां शवशिवारूढां त्रिनेत्रां(परां)
कर्णालम्बितबालयुग्मशुभदां मुण्डस्रजा मालिनीम्।
वामेऽधोर्ध्वकराम्बुजे नरशिरः खड्गं च सव्येतरे
दानाभीति विमुक्तकेशनिचयां वन्दे महासुन्दरीम्॥१३॥
इति ध्यानेन संपूज्य तोषयेत् परमेश्वरीम्।

इस महाकाली मन्त्र के ऋषि भैरव छन्द उष्णिक्, देवता महाकाली, बीज ह्रीं, शक्ति हूं तथा कीलक क्रीं है, सर्वकामना सिद्धयर्थ अथवा पुरुषार्थ चतुष्टय के लिए इसका विनियोग करना चाहिए। अब महाकाली के ध्यान को सुनो।

मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, वस्त्र रहित दिगम्बर (नग्न) रहने वाली, शवरूप शिव पर आरूढ, तीन नेत्रों वाली, कानों में लटकती हुई दो (बाल शव-रूप) बालियों से सुशोभित, नरमुण्डों की माला धारण की हुई, बांयी ओर के नीचे तथा ऊपर के कर-कमलों में नरमुण्ड तथा खड्ग एवं दायीं ओर के हाथों में वर तथा अभय मुद्रा धारण की हुई तथा खुले हुए (शिर के) केश समूहों वाली महासुन्दरी (काली) की मैं वन्दना (स्तुति) करता हूँ।

इस प्रकार परमेश्वरी का ध्यान करके विधिवत् पूजन कर उन्हें प्रसन्न करे। इसके बाद यथेष्ट जप करने से साधक को अवश्य ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र का नित्य जप करने वाले पशु साधकों को भी वीर भाव की प्राप्ति हो जाती है।

॥ काली-गायत्री-मन्त्रोद्धारः॥

गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि जपात् सार्वज्ञदायिकाम्॥१४॥
कालिकायै-पदं चोक्त्वा विद्महे-पदमन्तरम्।
श्मशानान्ते च वासिन्यै धीमहीति पदं ततः॥१५॥
तन्नो घोरा च देवेशि प्रचोदयादनन्तरम्।
जप्ता विंशतिधा देवी सर्वसंपत्प्रदायिनी॥१६॥

हे चार्वङ्गि (सुन्दर अङ्गो-शरीर वाली)! अब काली-गायत्री को सुनो, जिसके जप से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है।

सर्वप्रथम 'कालिकायै' बोलकर 'विद्महे' बोले। फिर 'श्मशान' पद के पश्चात् 'वासिन्यै धीमहि' बोलकर, हे देवेशि! 'तन्नो घोरा प्रचोदयात्' पदों को बोलकर मन्त्र का उद्धार करे। मन्त्र – **"कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरा प्रचोदयात्॥"** जो साधक प्रतिदिन (कम से कम) बीस बार इस गायत्री-मन्त्र (विद्या) का जप करता है, उसे यह विद्या सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करती है।

।। मूल मन्त्रस्य पुरश्चरणं तत्साधनञ्च।।

जपेद् विंशतिसाहस्रं पुरश्चरणसिद्धये।
होमयेत् तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पयेत्।।१७।।
दशांशेनाभिषेकं च भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः।
तदन्ते महतीं पूजां कृत्वा सर्वं समाचरेत्।।१८।।
ततो विसर्जयेद् देवि घटं चैव जले क्षिपेत्।
तत्प्रयोगमहं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम्।।१९।।
साधिते च प्रयोगेऽस्मिन् मन्त्राः सिद्ध्यन्ति नान्यथा।
गते तु(प्रहरे?प्रथमे)यामे तृतीयप्रहरावधि।।२०।।
प्राङ्गने चाथवा भूमौ साधयेद् वीरसाधनम्।
कदलीस्तम्भमारोप्य वेदिकां च महेश्वरि।।२१।।
घटं तत्र च संस्थाप्य सिन्दूरेण समन्वितम्।
आम्रपल्लवमेतस्मिन् पानसं खादिरं तथा।।२२।।
अश्वत्थबदरीपत्रं क्षिपेत् कुम्भे गणेश्वरि।
स्वर्ण रुप्यं तथा मुक्तां प्रवालं स्फटिकं तथा।।२३।।
एतत् सर्वं समुत्क्षिप्य साधयेद् वीरसाधनम्।
संलिख्य मातृकायन्त्रं तत्रोपरि विशेन्मुदा।।२४।।
कम्बले संविशेन्मन्त्री उत्तराशामुखः स्थितः।
नानाद्रव्यैः पूजयित्वा अन्नव्यञ्जनसंयुतम्।।२५।।
छागमांसं तथा सान्नं परमान्नं मनोरमम्।
पायसं च तथा देवि महादेव्यै प्रदापयेत्।।२६।।
आनीय युवतीं रम्यां नानालङ्कारभूषिताम्।
केशसंस्करणं कृत्वा ताम्बूलं च प्रदापयेत्।।२७।।
स्तनद्वये रमाबीजं मुखे वाग्भवबीजकम्।
भगपार्श्वद्वये देवि लिखेत् कामद्वयं शिवे।।२८।।
कुन्तलाकर्षणं कुर्यात् स्तनमर्दनपूर्वकम्।
संक्षिप्य लिङ्गं तद्योनौ घातं कुर्याच्शुचिस्मिते।।२९।।
सहस्रस्य प्रमाणेन जपं कुर्याद् वरानने।
सप्तदिनप्रयोगेण मन्त्रसिद्धिर्भवेत् प्रिये।।३०।।
अथवा प्रजपेत् मन्त्रं यावत्पत्रं न दृश्यते।
पत्रे जाते महेशानि मन्त्रसिद्धिर्न संशयः।।३१।।

इस मूलमन्त्र के पुरश्चरण के लिए देवी का विधिवत् पूजन करके इसका बीस हजार जप करना चाहिए। जप के पश्चात् तत्तद् दशांश के क्रम से हवन, तर्पण तथा अभिषेक (मार्जन) एवं ब्राह्मण भोज करे। तत्पश्चात् पुनः विस्तृत पूजन करके देवी का विसर्जन करके घट को (जिसमें देवी का पूजन किया गया है) जल में विसर्जित कर देना चाहिए।

दृष्ट तथा अदृष्ट (प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अथवा लौकिक एवं पारलौकिक) दोनों प्रकार के फलों को देने वाले उस प्रयोग को अब मैं कहता हूँ, जिसकी साधना करने से सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। अन्य साधनों से मन्त्र सिद्धि असम्भव (कठिन) ही होती है।

गृह के प्राङ्गण अथवा भूमि के नीचे निर्मित विशाल कक्ष में (ऐसे स्थान पर जहाँ किसी अन्य व्यक्ति अथवा पशु साधक की दृष्टि न पड़े), रात्रि के प्रथम प्रहर के पश्चात् से तीसरे प्रहर तक (दो प्रहर तक लगभग छः घण्टे) वीर साधना करे। साधना स्थल के चारों तरफ केले के स्तम्भ को रोपित करके मध्य में वेदी का निर्माण करे। उस वेदी पर सिन्दूर से लिप्त करके घट स्थापित करे। हे गणेश्वरि! उस घट में स्वर्ण, रजत मुक्ता, प्रवाल, स्फटिक आदि रत्न डालकर उसके ऊपर आम, कटहल, खैर, पीपल तथा बेर के पत्रों को स्थापित करे। फिर किसी समुचित पटल (भोज पत्रादि) पर मातृका यन्त्र लिखकर उसे घट के ऊपर स्थापित करे। इसके बाद कम्बल का आसन बिछाकर उस पर उत्तर दिशा की ओर मुख करे बैठे। तत्पश्चात् अनेकों प्रकार के उपचार योग्य पदार्थों से देवी का उस यन्त्र पर पूजन कर नैवेद्य-रूप में विभिन्न प्रकार के अन्नों से बने व्यञ्जन, खीर, दुग्ध आदि सहित बकरे का मांस अर्पित करे। तत्पश्चात् विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलङ्कृत सुन्दर युवती को लाकर उसके केशों का संस्कार करके उसे ताम्बूल अर्पित करे। उसके दोनों स्तनों पर रमाबीज (श्रीं), मुख में वाग्भव बीज (ऐं) तथा भग के दोनों पार्श्वों पर कामबीज (क्लीं) लिखे। तदुपरान्त् केश-कर्षण, स्तनमर्दन आदि रूप केलि क्रिया के बाद उसकी योनि में लिङ्ग को प्रक्षिप्त करके आघात करते हुए मन्त्र का एक हजार बार जप करे अथवा उस समय तक जप करता रहे जब तक कि वीर्यपात न हो जाय। वीर्यपात (एक हजार जप के पश्चात ही) होने पर निश्चित ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रयोग को सात दिनों तक करने से मन्त्र की सिद्धि अवश्य ही हो जाती है।

।।मन्त्रस्य माहात्म्यम्।।

इति ते कथितं देवि रहस्यं सर्वकामदम्।
न प्रकाश्यं महेशानि न प्रकाश्यं कदाचन।।३२।।
भवभीतिर्महेशानि नास्ति हे नगनन्दिनि।
प्रयोगोऽयं महेशानि सर्वसिद्धिप्रदायकः।।३३।।
मूलमन्त्रस्य माहात्म्यं कथितु नैव शक्यते।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।।३४।।
तथापि वक्तुं शक्नोमि नच वै परमेश्वरि।
अस्ति गुह्यतमं स्थानं त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्।।३५।।
कामरूपं महापीठं सर्वकामफलप्रदम्।
एवं जप्तं महेशानि अनन्तफलदं भवेत्।।३६।।
यदि भाग्यवशेनैव पीठं प्राप्नेति मानवः।
तत्र जप्तं महेशानि अनन्तफलदं भवेत्।।३७।।
सिद्धिर्यत्र महेशानि तत्र तिष्ठति भैरवी।
तस्मात् परतरं स्थानं तन्त्रेऽस्मिन्नात्र संशयः।।३८।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (महाकालीमन्त्र-तत्पुरश्चरणादिप्रयोग-वीरसाधननिरूपणं) त्रयोदशः पटलः।।१३।।

हे देवि! तुमसे मैंने यह जिस सर्वकामप्रद गुप्त प्रयोग (साधन) का वर्णन किया है उसे कभी प्रकाशित न करना। हे महेशानि! (मैं पुनः कहता हूँ) इसे कभी प्रकट नहीं करना। यह प्रयोग सर्वसिद्धिदायक (तो) है ही साथ ही इसके साधक को सांसारिक भय की भी प्राप्ति नहीं होती अर्थात् सभी भयों से वह मुक्त रहता है। महाकाली के इस मूल मन्त्र की महिमा कहने में मैं असमर्थ हूँ। यदि मेरे हजारों करोड़ मुख हो जाय तथा प्रत्येक मुख में सैकड़ों करोड़ जिह्वायें हो जायें तो भी मैं इस मन्त्र की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता।

इस त्रिलोकी में एक अत्यन्त गुप्त स्थान है जिसे कामरूप पीठ कहा जाता है। यहाँ की साधना सभी कर्मों का फल देने वाली है। यहाँ किया गया जप अनन्त फल देने वाला होता है। यदि सौभाग्यवश इस कामरूप पीठ की प्राप्ति हो जाय तो साधक को यहाँ जप अवश्य करना चाहिए। यहाँ सिद्धियाँ साक्षात् निवास करती हैं। जहाँ सिद्धि होती है वहीं भैरवी भी स्थित होती है। तन्त्र शास्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य किसी भी स्थान का सङ्केत नहीं प्राप्त होता है। इस कथन पर किसी भी प्रकार से संशय करने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीबृहन्नीलतन्त्र में भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत महाकालीमन्त्रतत्पुरश्चरणादि प्रयोग वीरसाधननिरूपण नामक तेरहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

।। चतुर्दशः पटलः।।

(कामाख्यामन्त्र-त्रिपुरामण्डल पूजादि निरूपणम्)

।। कामाख्याः पञ्च भैरवं तद्यन्त्र-मंत्र-स्वरूपञ्च।।

श्री भैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महादेवि कामाख्यामन्त्रमुत्तमम्।
कामाख्यापञ्चमूर्तीनां रूपकं पञ्चभैरव(म्)।।१।।
कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटी(ह?कृ)तम्।
कामेन कामयेत् कामी कामं कामेन कामयेत्।।२।।
ज्येष्ठं तु व्यञ्जनं ब्रह्मा अपरः शक्र उच्यते।
प्रथमं पुरतः कुर्यात् संसक्तं वसुधामयम्।।३।।
प्रजापतिस्तथा शक्रबीजसंस्थाक्षिसंयुतम्।
चन्द्रार्धसहितं बीजं कामाख्यायाः प्रचक्षते।।४।।

हे देवि! अब मैं कामाख्या के श्रेष्ठ (उत्तम) मन्त्र (यन्त्र को भी) कहता हूँ। कामाख्या की पाँच मूर्तियाँ (रूप) हैं, इसी के आधार पर इनके पाँच भैरव कहे जाते हैं। यहाँ जिस कामाख्या अथवा कामराज यन्त्र का संकेत किया गया है, उसमें 'काम' शब्द से बीज पञ्चक (ह्रीं, क्लीं, ऐं, ब्लूं तथा स्त्रीं) से साध्य (काम), वेष्टन, सन्धि, षट्कोण तथा चक्र अभिप्रेत हैं। ये बीज पञ्चक ही पञ्चकाम - काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज तथा मोहन (महाकाम अथवा मीन केतु) हैं तथा ये ही कामाख्या की पञ्चमूर्तियों के पञ्च भैरव हैं।

यन्त्र स्वरूप - प्रथम काम ह्रींकार के रेफ तथा हकार के मध्य साध्य नाम लिखकर उसके दोनों ओर द्वितीय काम 'क्लीं' लिखें। तत्पश्चात् इन्हें बाहर से (तृतीय काम) षट्कोण द्वारा घेरकर, षट्कोण के सभी कोणों में 'ब्लूं' (चतुर्थ काम) लिखें। तदुपरान्त इन सभी को वृत्त द्वारा वेष्टित करके वृत्त पर (अथवा दो वृत्तों से आवेष्टित करके वृतान्तराल में) 'स्त्रीं' (पञ्चम काम) लिखे।

मन्त्रोद्धार का तीसरा श्लोक यहाँ अनावश्यक ही प्रयोग हुआ है क्योंकि चौथे श्लोक से ही मन्त्र (बीज) स्पष्ट हो जाता है। (ज्येष्ठ व्यञ्जन, ब्रह्मा) प्रजापति 'क' को शक्र (वसुधा) बीज 'ल', अक्षि 'ई' तथा अर्धचन्द्र (बिन्दु) से संयुक्त कर बीज 'क्लीं' का उद्धार करें। यहाँ कामाख्या के बीज रूप में 'क्लीं' का उद्धार बताया गया है जबकि क्लीं (अथवा क्रीं) महाकाली का बीज कहा जाता है।

कामख्या तन्त्र के द्वितीय पटल के श्लोक '१०' के अनुसार कामाख्या का बीज 'त्रीं' कहा गया है - **''जुम्भणान्तं व्यक्तपार्श्वं यात्रावारणरोहकम्। वामनेत्रयुतं देवि नादविन्दु युतं पुनः॥''**

॥ मन्त्र-माहात्म्यम्॥

इदं धर्मप्रदं काममोक्षा(र्थी?र्थ)संप्रदायकम्।
इदं रहस्यं परममन्यतस्तु सुदुर्लभम्॥५॥
स्तुत्यमिदं यः शृणुयाद् गुरुवक्त्राद् वरोत्तमम्।
स कामान् निखिलान् प्राप्य परे लोके महीयते॥६॥
कालीतन्त्रस्य मन्त्रस्य यथापूर्वं मयोदितम्।

यह मन्त्र धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है। इससे श्रेष्ठ तथा गोपनीय अन्य मन्त्र दुर्लभ ही है। जो मनुष्य गुरु मुख से इसे प्राप्त करके इसकी साधना करता है, वह इस लोक सभी वाञ्छित कामनाओं को भोग करके देहावसानोपरान्त पर लोक में भी निवास करते हुए महिमामण्डित होता है। पूर्वोक्त काली तन्त्र में कथित मन्त्र-साधना की भाँति ही इसकी भी साधना (जप-पूजनादि) करना चाहिए।

॥कामाख्या-यन्त्र-पूजनम्॥

मण्डलं प्रतिपत्त्या तु पर्याय आलयस्य च॥७॥
स एव प्रथमः कार्यः शिलायां पुष्पचन्दनैः।
पात्रादीनां प्रतिष्ठार्थं तथैवात्रापि योजयेत्॥८॥
तत्र ताः सकलाः ग्राह्या आसनादेश्च पूजनम्।
प्रथमं भास्करायार्घ्यं प्रदद्याच्श्वेतसर्षपैः॥९॥
रक्तचन्दनपुष्पौश्च सगणाय महात्मने।
आसनार्चनशेषे तु पीठोक्ताः सर्वदेवताः॥१०॥
पीठनाम्ना तु संपूज्य मण्डलस्य तु मध्यतः।
ध्यानस्वरूपं भिन्नं तु महाकाल्या वरानने॥११॥
कामाख्यासर्वसाम्ये तु महामायास्तवोद्गतम्।
योगिनीस्तु चतुःष्षिटं पूजयेत् परमेश्वरि॥१२॥

गुहं मनोभ(वो?वं) देवि महोच्छ्वासां तथा सखीम्।
अनन्तरं पूजयेत्तु दिक्पालांश्च नवग्रहान्॥१३॥

उपर्युक्त श्लोकों से यह पूर्णत: स्पष्ट नहीं होता है कि इनमें जिस पूजन विधान का वर्णन किया गया है वह कामाख्या भवन (मन्दिर) में प्रत्यक्ष कामाख्या शिला पर किया जायेगा अथवा कामाख्या यन्त्र की रचना करके उस पर किया जायेगा। एक सामान्य साधक के लिए प्रत्यक्ष कामाख्या शिला पर विधिवत् पूजन करना तो आज की परिस्थिति में असम्भव ही है। ऊपर श्लोक संख्या २ (कामस्थ काम-मध्यस्थं इत्यादि) द्वारा जिस यन्त्र का संकेत प्राप्त होता है उसके मध्य 'त्रिकोण' की स्थिति स्पष्ट नहीं है। 'श्री मधुसूदन कौल' द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में 'कामाख्या यन्त्र' पर पूजन करने का संकेत प्राप्त होता है। अत: पूजन का आधार यन्त्र को ही मानकर आगे श्लोकों की व्याख्या की जा रही है।

सर्वप्रथम पत्थर की शिला (फलक) पर स्वयम्भू पुष्प तथा रक्त चन्दन के मिश्रण से अधोमुखी त्रिकोण बनाकर उसके मध्य पूर्वोकत रूप से प्रथम तथा द्वितीय काम को लिखते हुए उपर्युक्त यन्त्र बनाकर उसके बाहर एक रेखात्मक चतुरस्र तथा चार द्वारों से युक्त भूपुर की रचना करें। विधिवत् पात्रादि (सामान्य अर्घ्य, विशेष अर्घ्य, कलशादि) की स्थापना करके, इसी यन्त्र पर आसन प्रदानादि से लेकर सभी उपचारों द्वारा कामाख्या का पूजन करना चाहिए।

पूजन के प्रारम्भ में सबसे पहले सफेद सरसों, रक्त चन्दन तथा रक्त पुष्प युक्त जल से गणों (ग्रह-नक्षत्रों आदि) सहित सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। इसके बाद यन्त्र को आसन (पीठ) पर रखकर त्रिकोण के मध्य में नाम-मन्त्र द्वारा पीठ देवताओं तथा पीठ-शक्तियों का पूजन करके पीठ-नाम (ॐ कामाख्या पीठाय नम:) से पूजन करना चाहिए। वैसे तो कामाख्या का ध्यान स्वरूप महाकाली के ध्यान स्वरूप से भिन्न है परन्तु हे वरानने! महामाया स्वरूप महाकाली तथा कामाख्या (सहित सभी शक्तियों) की उत्पत्ति (प्राकट्य) तुम्हारे द्वारा ही हुई है तथा कामाख्या का ध्यान स्वरूप सर्वसाम्य होने के कारण महाकाली के रूप में भी इनका ध्यान किया जा सकता है।

ध्यान के पश्चात् योनि गुहा (त्रिकोण) में चौसठ योगिनियों का पूजन करके महोच्छ्वासा तथा उनकी सखियों (अङ्गदेवताओं) का पूजन करे। इसके बाद दिक्पालों तथा नवग्रहों का पूजन करे।

रूपस्तान् समुद्दिश्य पूजयेत् स गणाधिपे।
पूर्वद्वारे गणपतिं प्रथमं पूजयेच्शिवे॥१४॥
नन्दिनं च हनूमन्तं पश्चिमद्वारि पूजयेत्।
भृङ्गी चोत्तरतः पूज्यो महाकालस्तु दक्षिणे॥१५॥
एते मम द्वारपालास्तव द्वारे प्रपूजयेत्।
पात्रामृतीकृतवि(धौ?धिं) कुर्याद्वै काममुद्रया॥१६॥
भूतापसरणं कुर्यात् पूर्वं तालयत्रेण तु।
वामहस्ते दक्षिणेन पाणिना तालमाचरेत्॥१७॥
हूँहूँ फडिति मन्त्रेण वेतालादींश्च सर्पयेत्।
अत्रोक्तेन स्वरूपेण प्राणायामान्तमाचरेत्॥१८॥
स्थापयेत् प्रथमं देवीं मूलमन्त्रेण पूजकः।
मधुक्षीराज्यदधिभिर्गोमूत्रैर्गोमयैस्तथा ॥१९॥
रत्नोदकैः शर्करादिगुडरत्नकुशोदकैः।
सितसर्षपमुग्दाभ्यां तिलक्षीरैस्तथा यवैः॥२०॥
रक्तचन्दनपुष्पैश्च दूर्वागोरोचनायुतैः।
नवभिर्वितरेदर्घ्यं शिलाया योनिसन्निधौ॥२१॥

हे गणाधिपे! इन सभी का ध्यान सहित पूजन करना चाहिए। भूपुर के पूर्व द्वारा पर गणेश का, पश्चिम द्वार पर नन्दी (तथा हनुमान) का, उत्तर द्वार पर भृङ्गी का तथा दक्षिण द्वार पर महाकाल का, जो मेरे भी द्वार पाल कहे जाते हैं, पूजन करना चाहिए। किसी ताम्र पात्र में जल लेकर (उसमें तीर्थादि का आवाहन करके) योनिमुद्रा द्वारा उसका अमृतीकरण करके इसी जल से पूजन आदि करना चाहिए। पूजन से पूर्व बांये हाथ (करतल) पर दाहिने हाथ से तीन ताल देकर 'हूं हूं फट्' मन्त्र का उच्चारण करके वेतालादि भूतों का अपसरण करना चाहिए। इसके पश्चात् पूर्वोक्त विधि से अन्तः प्राणायाम द्वारा देवी को हृदय से बाहर निकाल कर मूलमन्त्र से पीठ पर स्थापित करना चाहिए। इसके बाद मधु, दुग्ध, घृत, दधि, गोमूत्र, गोबर, शुद्ध जल, शकर, गुड़, सफेद सरसों, मूँग, तिल, जौ, रक्त, चन्दन, पुष्प, दूर्वा तथा गोरोचन युक्त अर्घ्य शिला (यन्त्र) पर योनि के समीप नौ बार प्रदान करें।

आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम्।
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं चन्दनभूषणे॥२२॥
पुष्पं धूपं च दीपं च नेत्राञ्जनमतः परम्।
नैवेद्याचमनीये तु प्रदक्षिणानमस्कृती॥२३॥

एते षोडश निर्दिष्टा उपचारास्तु सुन्दरि।
आवाहयेद् महादेवि गायत्र्या कामरूपया॥२४॥
तामेवं विद्धि वेतालगुह्यदैवतभैरवैः।
कामाख्ये त्वमिहागच्छ यथावन्मम संनिधौ॥२५॥
पूजाकर्मणि सान्निध्यमिह कल्पय कामिनि।
पूजावसाने च बलिं देवीप्रीत्यै निवेदयेत्॥२६॥
रुद्राक्षमालया जप्यमाधायैव समापयेत्।
त्र्यक्षरैर्मूलमन्त्रस्य त्रिरावृत्तैः प्रपूजयेत्॥२७॥

आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, चन्दन-आभूषण, पुष्प, धूप, दीप, नेत्राञ्जन, नैवेद्य, आचमन, प्रदक्षिणा तथा नमस्कार इन कहे गये षोडशोपचारों से देवी की अर्चना करनी चाहिए। कामाख्या गायत्री मन्त्र द्वारा देवी का आवाहन करना चाहिए। पहले कामाख्या गायत्री (अथवा मूल मन्त्र) बोलें फिर-'**वेताल-गुह्य दैवत सह कामाख्ये त्वमिहागच्छ यथावत् मम सन्निधौ पूजाकर्मणि सानिध्यमिह कल्पय कामिनि।**' बोलकर प्रतिष्ठित करना चाहिए।

पूजन की समाप्ति पर देवी की प्रसन्नता के लिए बलि प्रदान करना चाहिए। रुद्राक्ष माला से जप करके (जप देवी को समर्पित कर) ही पूजन सम्पन्न करे। समस्त पूजन मूलमन्त्र (बीजमन्त्र) की तीन बार आवृत्ति करके (क्लीं क्लीं क्लीं) करना चाहिए।

महाकाल्याः षडङ्गानि स्वाङ्गनामन्तरे तथा।
नीलमन्त्रस्य मन्त्रस्य कराङ्गन्यासयोश्च ये॥२८॥
स्वरैः प्रोक्ता महादेवि सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः।
मूलमन्त्राद्यक्षराभ्यां युगपद्भुवि योजयेत्॥२९॥
कनिष्ठादिक्रमेणैव त्वङ्गन्यासं समाचरेत्।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा पश्चातु साधकः॥३०॥
हृच्छिरस्तु शिखा वर्म नेत्रास्योदरपृष्ठतः।
वाह्वोः पार्श्वयोर्जङ्घयोः पादयोश्चापि विन्यसेत्॥३१॥
अभयं वरदं हस्तमक्षमालां सुरेश्वरि।
पूजयेच्च शिवं सूर्यं शिवाश्चन्द्रकलास्तथा॥३२॥
रक्तपद्मं शरं चैव लोहितं ब्रह्मपुत्रकम्।
मनोभवशिलां तत्र शक्तिहस्तां सुमध्यमाम्॥३३॥

देव्याः प्रपूजयेद् भक्तः करवालं च पार्श्वतः।
पीठाधिदेवतास्तत्र यजेत् कामेश्वरीं शुभाम्॥३४॥
त्रिपुरां पूजयेन् मध्ये पीठे प्रत्यधिदेवताम्।
शारदां च महोच्छवासां मध्य एवं प्रपूजयेत्॥३५॥
चण्डेश्वरी महादेवी देव्या निर्माल्यधारिणी।
योनिमुद्रा समाख्याता निर्माल्यस्य विसर्जने॥३६॥
इदं द्रव्यं तु सिन्दूर अङ्गरागं तु कुङ्कुमैः।
इति योऽत्र मया प्रोक्तो विशेषः परिपूजने॥३७॥
एतैर्विशेषैः सहितं महादेव्याः प्रपूजने।
सर्वं कल्पं समासाद्य कालिकां परिपूजयेत्॥३८॥
मनोभवगुहामध्ये स याति परमां गतिम्।

मन्त्र जप से पहले महाकाली मन्त्र के बीज (ह्रीं) को छः दीर्घ स्वरों तथा अनुस्वार से युक्त करके अथवा मूल-मन्त्र के तीन खण्ड (प्रथम ॐ सहित सप्त बीजाक्षर, द्वितीय 'दक्षिण कालिके' तथा तृतीय विलोम रूप सप्त बीज सहित स्वाहा) करके उसकी दो आवृत्तियों द्वारा अपने शरीर (अङ्गो में) षडङ्ग न्यास करें। इसके पश्चात् नील सरस्वती के मन्त्रों अखिल वाग्रूपिण्यै, अखण्ड वाग्रूपिण्यै, ब्रह्मवाग्रूपिण्यै, विष्णु वाग्रूपिण्यै, रुद्र वाग्रूपिण्यै तथा सर्व वाग्रूपिण्यै के पूर्व 'ॐ' सहित क्रमशः ह्रां ह्रीं ह्रूं इत्यादि का योग करके कर-षडङ्ग न्यास करें। काली तारा के मन्त्रों के आदि बीज वर्णों को छः दीर्घ स्वरों से युक्त कर उनके पूर्व 'ॐ' को योग करके कनिष्ठादि क्रम से षडङ्ग मन्त्रों का संयोग करके न्यास करें। यथा -

हृदयाय नमः कनिष्ठयोः, शिरसे स्वाहा तर्जन्यनामिकासु, शिखायै वषट्, मध्यमयोः कवचाय हुं, तर्जन्यनामिकासु तथा अस्त्राय फट् हस्ततलयोः। (योगिनी तन्त्र)

इसके पश्चात् बिन्दु युक्त मातृका वर्णों से न्यास करें। यथा -

अं आं..........लृं लॄं नमः - हृदि (१० वर्ण), एं ऐं..........घं नमः-दक्षिण भुजे (१० वर्ण), ङं चं................ढं नमः - वामभुजे, णं तं.........भं नमः दक्षिण पादे मं..........क्षं नमः - वाम पादे (११ वर्ण)। (इसे कर-षडङ्ग न्यास से पहले ही कर लेना चाहिए।)

इसके उपरान्त मनोभव शिला (शिला पर निर्मित यन्त्र के त्रिकोण) पर अभय तथा वरद मुद्राओं, अक्षमाला, शिव, सूर्य, शिवा, उन की चन्द्रकला, रक्त पद्म, शर, लोहित ब्रह्मपुत्र, हाथ में शक्ति धारण की हुई

सुन्दर कटि वाली सहायक देवियों की अर्चना करके पार्श्व में तलवार लिए हुए स्थित भक्तों तथा पीठ की अधिदेवता कामेश्वरी (कामाख्या) की पूजा करे। पीठ के मध्य में प्रत्यधिदेवता त्रिपुरा का पूजन करके शारदा तथा महोच्छ्वासा का मध्य में ही पूजन करे। इसके पश्चात् निर्माल्यधारिणी चण्डेश्वरी महादेवी को योनिमुद्रा प्रदर्शन सहित निर्माल्य अर्पित करे। मेरे द्वारा कहे गये इस विशेष पूजन विधान द्वारा सिन्दूर, अंगराग, कुंकमादि विशेष उपचार सामग्रियों सहित अन्य भी अनेक उपचारों के द्वारा जो मनोभव गुहा-मध्य में (प्रत्यक्ष स्त्री योनि पर) काली का विधिवत पूजन करता है, वह परमगति को प्राप्त करता है।

।। योगिनी नामानि तासां पूजनञ्च।।

ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च।।३९।।
कौमारी वैष्णवी दुर्गा नारसिंही च कालिका।
चामुण्डा शिवदूती च वाराही कार्तिकी तथा।।४०।।
माहेश्वरी शङ्करी च जयन्ती सर्वमङ्गला।
काली (क)पालिनी मेधा शिवा शाकम्भरी तथा।।४१।।
भीमा शान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चाम्बिका तथा।
क्षेमा धात्री तथा स्वाहा स्वधाऽपर्णा महोदरी।।४२।।
घोररूपा महाकाली भद्रकाली भयङ्करी।
क्षेमङ्करी चोग्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका।।४३।।
चण्डा चण्डवती चण्डी महाप्रियङ्करी तथा।
बलविकरणी देवी बलप्रमथनी तथा।।४४।।
मनोन्मथनी चैव हि सर्वभूतस्य दमनी।
उमा तारा महानिद्रा विजया च जया तथा।।४५।।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्या योगिन्यष्टौ तथा क्रमात्।
ताभिराभिश्च सहिताश्चतुष्षष्टिं च योगिनीः।।४६।।
पूजयेद् मण्डलस्या(न्ता?न्तः) सर्वकामार्थसिद्धये।

मण्डल के मध्य में इन चौंसठ योगिनियों का भी, समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए, साधक को पूजन करना चाहिए। यहाँ दिये गये योगिनियों के नाम अपूर्ण तथा अशुद्ध प्रतीत होते हैं। शैल पुत्री आदि अष्ट योगिनियों के नाम इससे पूर्व कहीं भी वर्णित नहीं है। इसके अतिरिक्त शैलपुत्री आदि नौ नाम नौ दुर्गाओं के कहे जाते हैं। यहाँ चौंसठ योगिनियों के नाम 'पुरश्चर्यार्णव' से दिये जा रहे हैं।

१. ब्रह्माणी, २. चण्डिका, ३. रौद्री, ४. गौरी, ५. इन्द्राणी, ६. कौमारी, ७. भैरवी, ८. दुर्गा, ९. नारसिंही, १०. कालिका, ११. चामुण्डा, १२. शिवदूती, १३. वाराही, १४. कौशिकी, १५. माहेश्वरी, १६. शङ्करी, १७. जयन्ती, १८. मङ्गला, १९. करालिनी, २०. मुक्तकेशी, २१. शिवा, २२. शाकम्भरी, २३. भीमा, २४. शान्ता, २५. भ्रामरी, २६. रुद्राणी, २७. चण्डरूपिणी, २८. क्षमा, २९. धात्री, ३०. स्वधा, ३१. स्वाहा, ३२. अपर्णा, ३३. महोदरी, ३४. घोररूपा, ३५. महाकाली, ३६. विद्युज्जिह्वा, ३७. कपालिनी, ३८. क्षेमकरी, ३९. महामाया, ४०. मेघमाला, ४१. बलाकिनी, ४२. शुष्कोदरी, ४३. चण्डघण्टा, ४४. महाप्रेता, ४५. प्रियङ्करी, ४६. खरतुण्डी, ४७. ऋक्षकर्णी, ४८. बलप्रमथनी, ४९. मनोन्मथनी, ५०. सर्वभूतदमनी, ५१. उमा, ५२. तारा, ५३. महानिद्रा, ५४. विजया, ५५. जया, ५६. शैलपुत्री, ५७. महोल्का, ५८. त्रिशूलिनी, ५९. अञ्जनप्रभा, ६०. कूष्माण्डी, ६१. विश्वसन्त्रासा, ६२. कात्यायनी, ६३. कालरात्रि, ६४. महागौरी।

नानाविधं तु नैवेद्यं पानं पायसमेव च॥४७॥
मोदकापूपपिष्टादि देव्यै सम्यक् प्रदापयेत्।
एवं तु पूजयेद् देवीं कालिकां कामदायिनीम्॥४८॥
भक्तियुक्तो नरो भूत्वा सर्वान् स लभते प्रियान्।
महोच्छ्वासा महादेवी महामाया तु सा स्मृता॥४९॥
कालिकातन्त्रमन्त्रेण संपूज्य योनिमण्डले।
तदेव मण्डलं चास्या ह्यङ्गन्यासं तदेव च॥५०॥
स एव पूजापर्यायस्तद्ध्यानं सैव देवता।
मण्डलादि विसर्गान्तं महामायाः प्रपूजने॥५१॥
यत् प्रोक्तं तेन तां देवीं महोच्छ्वासां तु मण्डले।
स्नानपूर्वं पूजयेत् तु मध्वाज्यादिभिरासवैः॥५२॥
शृणुष्वेकमनाः कान्ते त्रिपुरायाः प्रपूजनम्।
एतस्या मूलम(न्त्रेण?न्त्रं तु) पूर्वमुत्तरतन्त्रके॥५३॥
वाग्भवं कामबीजं च डामरं चेति तत्त्रयम्।
सर्वधर्मार्थकामादिसाधनं कुण्डलीयुतम्॥५४॥
त्रीणयस्याः पूजने दद्यात् स्वर्गा(?)ख्याता महेश्वरी।
त्रिपुरेति ततः ख्याता कामाख्या कामरूपिणी॥५५॥

अनेकों प्रकार के नैवेद्य, पेय पदार्थ (मद्यादि), खीर, लड्डू, पूड़ी, पुआ, पिष्टकादि समर्पित करते हुए, समस्त अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाली देवी कालिका का विधिवत् पूजन करना चाहिए। जो साधक भक्तिपूर्वक देवी की सम्यक् आराधना करता है, वह अपने सभी अभीष्ट कामनाओं को अवश्य ही प्राप्त करता है। देवी महोच्छ्वासा को भी महामाया रूप ही माना जाता है। योनि मण्डल पर इनका षडङ्ग न्यास (पूजन) करके कालिका तन्त्र विधान से ही योनि को देवता स्वरूप मानकर उसी पर समस्त ध्यान पूजन आदि करना चाहिए। आदि से लेकर विसर्जन पर्यन्त महामाया के पूजन में जैसा विधान कहा गया है, उसी प्रकार योनि मण्डल पर महोच्छ्वासा का पूजन करना चाहिए। योनिमण्डल पर मधु, आज्य, आसव आदि के द्वारा पहले स्नान कराकर फिर आगे पूजन करना चाहिए।

हे प्रिये! अब त्रिपुरा के पूजन के विषय में एकाग्रचित्त होकर सुनो। इसका मूल मन्त्र उत्तर तन्त्र के पूर्व भाग में वर्णित है। कुण्डलिनी जागरण सहित सभी धर्म-अर्थ तथा कामरूपी साधनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाला इसका मूलमन्त्र 'ऐं क्लीं ह्रीं' (ऐं क्लीं सौः) है। इन तीन बीजाक्षर मन्त्रों से त्रिपुरा का पूजन जो साधक ध्यानपूर्वक करता है, उसे यह माहेश्वरी स्वर्ग (मोक्ष) प्रदान करने वाली होती है। तीन बीजात्मक वर्ण मन्त्रों से पूजित होने के कारण कामरूपिणी कामाख्या त्रिपुरा भी कही जाती है।

तस्यास्तु स्नापनं यादृङ् महाकाल्याः प्रकीर्तितम्।
तेनैव स्नापनं कुर्याद् मूलमन्त्रेण साधकः॥५६॥
त्रिकोणमण्डलं चास्यास्त्रिपुरं च त्रिरेखकम्।
मन्त्रस्तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं तथा रूपत्रयं ततः॥५७॥
त्रिविधा कुण्डलीशक्तिस्त्रिदेवानां च भूतये।
सर्व त्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात् सा त्रिपुरा मता॥५८॥
उदीच्याद्यथ पू(र्णा?र्वा)न्ता रेखाः कार्यास्तु मण्डले।
त्रिस्त्रिरेखास्तु कर्तव्याः स्युः पुनः पुष्पचन्दनैः॥५९॥
ऐशान्याद्यथ नैर्ऋत्यां यन्त्रं कृत्वाञ्ज(सो)ल्लिखेत्।
नैर्ऋत्या चैव वायव्यां तत ऐशान्यगाः पुनः॥६०॥
एवं त्रिकोणं विलिखेद् मण्डलस्यान्तरे पुनः।
ऐशान्यां या तु देवेशि सा शक्तिः परमेश्वरी॥६१॥
एवं क्रमेण देवेशि वेतालादीन् प्रपूजयेत।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे(कामाख्यमन्त्र-त्रिपुरामण्डलपुजादि निरूपणं) चतुर्दशः पटलः॥१४॥

त्रिपुरा के पूजन के समय देवी के स्नान के लिए उन्हीं पदार्थों का प्रयोग किया जाता है जिनके द्वारा महाकाली को स्नान कराया जाता है। साधक मूल मन्त्र (त्रिपुरा के) द्वारा देवी को स्नान कराये। कामाख्या का त्रिकोण मण्डल त्रिरेखात्मक (तीन भूपुरों से युक्त) होने के कारण इसे त्रिपुरा भी कहा जाता है। इसका मन्त्र भी त्र्यक्षरात्मक ('ऐं क्लीं सौः')जानना चाहिए तथा इनका स्वरूप भी त्रिविध त्रिपुर भैरवी, त्रिपुरा बाला (अथवा काली तारा) तथा त्रिपुर सुन्दरी रूप है। कुण्डली शक्ति रूपिणी ये वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री रूपात्मक त्रिविध शक्ति रूपिणी हैं तथा त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र को भी ये उत्पन्न करने वाली हैं। इस सृष्टि में त्रिवर्गात्मक जो कुछ भी है सब इसी के द्वारा उत्पन्न तथा इसी का स्वरूप होने के कारण इसे त्रिपुरा कहा जाता है।

श्लोक ५९, ६० तथा ६१ में कथित यन्त्र की रचना तथा पूजन विधि पूर्णतः अस्पष्ट है। सम्भवतः इन श्लोकों द्वारा तीन चतुरस्रों (भूपुरों) के मध्य त्रिकोण युक्त यन्त्र-रचना की बात कही गयी है। इसके ईशान कोण में परमेश्वरी शक्ति की स्थिति है। इस यन्त्र में क्रमानुसार वेताल आदि का पूजन करना चाहिए।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत
कामाख्या मन्त्र-त्रिपुरामण्डल पूजादि निरूपण नामक
चौदहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

* * *

॥ पञ्चदशः पटलः॥

(साधन स्थानान्तर निरूपणम्)

॥ दर्पणाख्य-पर्वतस्य माहात्म्यम्॥

श्रीभैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि साधनस्थानमुत्तमम्।
यत्र जप्तं महेशानि हठात् सिद्धिप्रदायकम्॥१॥
दर्पणो देवि नाम्ना तु पर्वतः परमेश्वरि।
कुबेरो यत्र वसति लोकपालैर्युतः शिवे॥२॥
रोहितो मध्यदेशे तु तस्मिन्नास्ते महेश्वरि।
रक्तवर्णो महेशानि लोहाकृतिरिवारपरः॥३॥
पर्वतस्य महेशानि माहात्म्यात् स्वर्गतिं गतः।
हिमालयेन सदृशः सर्वकर्मसुसाधकः॥४॥
समुत्पन्नं तु लौहित्यं सर्वैर्देवगणैर्हरिः।
सर्वतीर्थोदकैः सम्यक् स्नापयामास तं सुतम्॥५॥
तस्य स्नानात् महेशानि पापदर्पस्य पाटनात्।
तेनायं दर्पणो नाम सर्वैर्देवगणैः कृतः॥६॥
तस्मिन् जप्ते महेशानि तत्क्षणात् सिद्धिमाप्नुयात्।
रोहितो नाम दैत्योऽसौ देवीमन्त्रं प्रजप्तवान्॥७॥
तत्र देवीवरं प्राप्य तत्क्षणात् स्वर्ग(तं?तिं) गतः।
अधिष्ठाने तु देव्यास्तु दर्पणाख्या तदाभवत्॥८॥

हे महेशानि! अब मैं साधन के योग्य उन उत्तम स्थानों का वर्णन करता हूँ, जहाँ जप करने से वरवश ही (निश्चित रूप से) सिद्धि की प्राप्ति होती है। हे देवि! 'दर्पण' नाम वाला एक पर्वत है, जहाँ कुबेर लोकपालों के साथ निवास करते हैं। उस पर्वत के मध्य भाग में रोहित (नाम का दैत्य) रहता था, जिसके शरीर का वर्ण लाल था। वह देखने में ऐसा प्रतीत होता था मानो लोहे से निर्मित कोई (विशाल) मूर्ति हो। इस पर्वत की महिमा के कारण ही उसने स्वर्ग की प्राप्ति की। हिमालय के समान ही सभी कर्मों को सिद्धि करने वाला उस दैत्य का लौहित्य नामक पुत्र था। सभी देवगणों के साथ हरि

ने समस्त तीर्थों के जल से उस पुत्र को स्नान कराया। उसे स्नान कराने से उसके सभी पापदर्प (पाप से उत्पन्न पीड़ा-क्षोभ) नष्ट हो गये जिसके कारण सभी देव समूहों द्वारा इसका 'दर्पण' नामकरण किया गया।

हे महेशानि! उस स्थान पर जप करने से शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। रोहित नाम वाला दैत्य भी देवी-मन्त्र का जप करते हुए देवी से वर प्राप्त कर शीघ्र ही स्वर्ग को प्राप्त हो गया। उसी समय से उस स्थान पर देवी का 'दर्पणा' नाम प्रसिद्ध हो गया।

।। दर्पणं परितः स्थितीनां क्षेत्राणां माहात्म्यम्।।

दर्पणाद् दिशि पूर्वस्यामग्निज्वालामयो गिरिः।
सर्पाकारशतज्वालादीर्घाकृतिः कृतः स्मृतः।।९।।
यत्र तिष्ठति वै वह्निरूर्ध्वभागे महेश्वरि।
सिन्दूरपुञ्जसंकाशे चारुदारुशिलातले।।१०।।
तस्मिन् गिरिवरे वह्निर्नित्यमद्यापि शोभते।
भैरवस्य हितार्थाय महाकाली महोज्ज्वला।।११।।
तत्र तिष्ठति देवेशि रक्तवर्णा महोज्ज्वला।
पूर्वमेव स्थितस्तत्र साक्षाद्वह्निर्महोज्ज्वलः।।१२।।
लौहित्यनिकटे कुण्डः सर्वसारस्वतप्रदः।
तत्र स्नात्वा महेशानि साक्षाद् देवमयो भवेत्।।१३।।
पुरस्तादग्निस्थानस्य कुण्डकं वरुणाह्वयम्।
तस्य तीरे गिरिः श्रेष्ठो नाम्ना कंशवरः पुरा।।१४।।
वरुणस्तत्र वसति नित्यमेव जलाधिपः।
तस्मिन् कंशवरे सम्यक् पूजयित्वा प्रचेतसम्।।१५।।
स्नात्वा च वारुणे कुण्डे वारुणं लोकमाप्नुयात्।

उस दर्पण नाम पर्वत की पूर्व दिशा में अग्निज्वालाओं से युक्त पर्वत है। वहाँ सर्पाकार ऊँची-ऊँची सैकड़ों ज्वालाएं निकलती रहती हैं, ऐसा कहा जाता है। यहाँ उसके ऊपरी भाग में सिन्दूर राशि (की आभा) के समान अग्नि देवता सुन्दर काष्ठ शिला के नीचे स्थित हैं। उस गिरि श्रेष्ठ पर आज भी अग्नि देव पूर्व की ही भाँति सुशोभित (विराजमान) हैं। तीव्र आभायुक्त रक्तवर्णा महाकाली भैरव के हितार्थ वहाँ निवास करती है। इसके पूर्व में साक्षात् अग्नि देव प्रकाशमान रूप से स्थित हैं। उस लौहित्य पर्वत के निकट ही सारस्वतप्रद कुण्ड है। उसमें स्नान करके मनुष्य साक्षात् देवतास्वरूप हो जाता है। उस अग्निस्थल के आगे वरुण नामक कुण्ड है। उस कुण्ड के तट

पर कंशवर नाम वाला प्राचीन पर्वत-श्रेष्ठ स्थित है। वहाँ जल के अधिपति (अधिष्ठात्रि देवता स्वामी) वरुण सदैव निवास करते हैं। उस वरुण कुण्ड में स्नान करके कंशवर गिरि पर वरुण देवता का पूजन करने से वरुण लोक की प्राप्ति होती है।

आद्यं व्यञ्जनमेवात्र पञ्चमस्वरसंयुतम्।।१६।।
शशिचूडाशिखायुक्तं कौबेरं बीजमुच्यते।
सप्तमो यः पकारस्य बिन्दुचन्द्रार्धसंयुतः।।१७।।
वह्निबीजमिति ख्यातस्तेन वह्निं प्रपूजयेत्।
मकारपञ्चमः सोमबिन्दुभ्यां वारुणः स्मृतः।।१८।।
एभिर्मन्त्रैरिमान् देवान् नित्यमेव प्रपूजयेत्।
वायुकूटो नाम गिरिः पूर्वस्यां वारुणाचलात्।।१९।।
खड्गीशवायुबीजेन मण्डलेन समन्वितः।
वायुलोकः स्थितस्तत्र यस्माद् निःसृत्य मारुतः।।२०।।
ऊर्ध्वाधोभागमासाद्य नित्यं वहति भूतले।
तत्र वायुं समभ्यर्च्य वायुलोकमवाप्नुयात्।।२१।।
पूर्वाद्वायुगिरेः शैलश्चाश्वकूट इति स्मृतः।
त्रिकोणश्चाश्वसंकाशस्तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डलम्।।२२।।
कूर्मं च बिन्दुसंयुक्तं मन्त्रं संजप्य सुन्दरि।
चन्द्रबीजमिति ख्यातं विद्धि तं परमेश्वरि।।२३।।
अद्यापि तं महादेवि प्रतिदर्शे च चन्द्रमाः।
प्रदक्षिणीकृत्य महादेवि याति निशापतिः।।२४।।

आद्य स्वर 'क' को पञ्चम स्वर 'उ' तथा चन्द्रबिन्दु से युक्त करने पर कुबेर का बीज 'कुँ' निष्पन्न होता है। इस बीज मन्त्र से कुबेर का पूजन करना चाहिए। 'प' कार से सातवाँ वर्ण 'र' है, इसे अर्धचन्द्रबिन्दुयुक्त करने 'रँ' बनता है। इस प्रसिद्ध अग्नि बीज से अग्निदेवता का वहाँ पूजन करे। 'म' कार से पाँचवे वर्ण 'व' को चन्द्रबिन्दु से सम्पन्न कर 'वँ' बीज से वरुण देवता का पूजन करे। वरुणाचल पर्वत की पूर्व दिशा में वायुकूट नामक पर्वत है जो 'यं' इस वायुदेवता के बीज द्वारा चारों ओर से घिरा है। इस वायुलोक में वायु देवता स्थित हैं, यहाँ से वायु निकलकर ऊपर-नीचे सभी स्थानों में पहुँचकर पृथ्वी पर नित्य बहती रहती है। यहाँ वायु की विधिवत् अर्चना करने से मनुष्य वायु लोक को प्राप्त करता है। वायु गिरि से पूर्व की ओर स्थित शैल (पर्वत) को 'अश्व कूट' के नाम से जाना जाता है। त्रिकोणाकार

अश्वाकृति वाले इस पर्वत से ऊपर चन्द्र मण्डल स्थित है। कूर्म 'च' को बिन्दु से संयुक्त करने पर निष्पन्न 'चं' को चन्द्रबीज कहा जाता है, यहाँ इसका जप करना चाहिए। हे महादेवि! आज भी निशापति चन्द्र प्रति अमावस्या को इसकी परिक्रमा करके स्वलोक को जाते हैं।

महाकाली घोररूपा तत्र तिष्ठति सुन्दरि।
शिवेन सार्धं देवेशि क्रीडायुक्ता महानिशि॥२५॥
तत्र गत्वा मनुं जप्त्वा सिद्धो भवति साधकः।
रहस्यं शृणु देवेशि सर्वाह्लादकरं परम्॥२६॥
तस्यैव पूर्वभागे तु सोमकुण्डाह्वयं सरः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्तिमाप्नोति मानवः॥२७॥
चन्द्रो देवि महेन्द्रस्तु रोहिणीसहितः प्रिये।
भगवत्याः पदं तत्र अञ्चितौ मुक्तिदायिनौ॥२८॥
कृते कार्ये महादेवि भगवत्या महोल्कया।
रोहिण्या सहितो देवि चन्द्रः सर्वप्रकाशकः॥२९॥
अभिषेकं महाकाल्याः कृतवान् परमेश्वरि।
दधिना परमेशानि दुग्धेनैव महेश्वरि॥३०॥
तेजोऽसीति घृतेनैव शर्करासहितेन च।
फलोदकैर्महेशानि श्रीपुष्पसहितैस्तथा॥३१॥
नानातीर्थोदकैश्चैव अभिषिञ्चेद् अनन्तरम्।
तञ्जलैः सहितं कुण्डं महापुण्यफलप्रदम्॥३२॥

शिव के साथ में अर्धरात्रि में क्रीड़ायुत रहने वाली घोररूपा महाकाली वहाँ निवास करती है। हे देवेशि! सब प्रकार से (सभी को) आनन्द प्रदान करने वाले रहस्य को सुनो, उस स्थान के पूर्व भाग में सोम कुण्ड नामक सरोवर है। उसमें स्नान करके तथा उसका जल पीकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वहाँ भगवती के मुक्तिदायक सुन्दर चरण कमलों की अर्चना महेन्द्र तथा रोहिणी सहित चन्द्रदेव करते हैं। भगवती महोल्का की कृपा से ही रोहिणी सहित चन्द्रमा सर्व प्रकाशक रूप से स्थित है।

हे परमेश्वरि! दूध से, दही से, 'तेजोऽसीति' मन्त्र बोलते हुए शकर सहित घृत से, लौंग सहित फलों के रस से तथा अनेकों प्रकार क तीर्थों के जल से महाकाली का अभिषेक करके पुनः सोम कुण्ड के जल से अभिषेक करना महान पुण्य देने वाला होता है।

चन्द्रकुण्डस्य तीरे तु महाभीमः सिताकृतिः।
प्रतिदर्शे पूजयित्वा लभेद् मुक्तिं महेश्वरि॥३३॥
तस्यैव निकटे देवि भस्मकूटो महागिरिः।
यत्र तिष्ठति भूतेशो महादेवो महामतिः॥३४॥
दक्षिणे तस्य कूटस्य देवी पीयूषधारिणी।
उर्वशी नाम विख्याता महेन्द्रो यत्र तिष्ठति॥३५॥
महाकाल्या महेशानि चोर्वशी तत्र तिष्ठति।
महाकाल्या महादेवि यत्र तिष्ठति भाविनी॥३६॥
सा चैवामृतराशिस्तु कृत्वा किंचन किंचन।
उपस्थापयते नित्यं कामाख्या-योनिमण्डले॥३७॥
सुधाशिलान्तरस्था तु उर्वशी कुण्डवासिनी।
उर्वशीकुण्डकूटस्य मध्ये कुण्डं सुधाकृतम्॥३८॥
(द्वि?द्वा) त्रिंशद्धनुर्विस्तीर्णं पञ्शाद्धनुरायतम्
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कामरूपो भवेद् नरः॥३९॥
चन्द्रकुण्डस्य चैशान्यां मणिकूटो महागिरिः।
मणिकर्णेशो महांस्तत्र सदा तिष्ठति सुन्दरि॥४०॥
सद्योजात इति ख्यातः कालिका तत्र तिष्ठति।
जपं पूजां प्रशस्तां च साधयेत् साधनं परम्॥४१॥
सद्योजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदाशिवः।
मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति साधकः॥४२॥

चन्द्रकुण्ड के तट पर ही श्वेतमूर्ति महाभीम की स्थिति है। हे महेश्वरि! प्रत्येक अमावस्या को इसका पूजन करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसके निकट ही भस्मकूट नामक विशाल पर्वत है जिस पर महाज्ञानी तथा सभी भूतों (प्राणियों) के स्वामी महादेव स्थित हैं। उस भस्मकूट गिरि के दक्षिण में पीयूष (अमृत) धारिणी प्रसिद्ध उर्वशी कुण्ड है, जहाँ महेन्द्र (इन्द्र) स्थित हैं। वहीं महाकाली के साथ उर्वशी की भी स्थिति है। वहाँ महाकाली के द्वारा उस उर्वशी कुण्ड से थोड़ा-थोड़ा करके अमृतराशि को कामाख्या योनिमण्डल में नित्य स्थापित किया जाता है। उस सुधा शिला के नीचे कुण्डवासिनी उर्वशी स्थित है। उर्वशी कुण्ड पर्वत के मध्य अमृत से परिपूर्ण है चन्द्रकार चन्द्रकुण्ड स्थित जो तीस धनुष (एक सौ बीस हाथ) चौड़ा तथा पचास धनुष (दौ सौ हाथ) लम्बा है। उसमें नित्य स्नान करने तथा उसका जल पीने से मनुष्य कामदेव के समान रूपवान हो

जाता है। चन्द्रकुण्ड के ईशान कोण में मणिकूट नामक महापर्वत है। यहाँ पर मणिकर्णेश (महादेव) स्थित हैं। यहाँ कालिका 'सद्योजात' नाम से अथवा सद्योजात नाम से प्रसिद्ध शिव के साथ कालिका यहाँ स्थित हैं। यहाँ जप-पूजन आदि करना श्रेष्ठ माना जाता है। साधक को यहाँ उत्तम साधना करनी चाहिए। यहाँ सद्योजात मन्त्र से सदाशिव का पूजन तथा मणिकर्णेश्वर का दर्शन करके साधक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

नदीषु मङ्गला नाम हिमपर्वतनिर्गता।
पूर्वस्यां मणिकूटस्य सदा स्रवति शोभना।।४३।।
मणिकूटं समारुह्य यः पश्यति शुभां नदीम्।
स गङ्गास्नानजं पुण्यमवाप्य त्रिदिवं व्रजेत्।।४४।।
मणिकूटाचलात् पूर्वं मत्स्यध्वजकुलाचलम्।
निर्दग्धो यत्र मदनो हरनेत्राग्निना पुनः।।४५।।
शरीरं प्राप्य तपसा समाराध्य वृषध्वजम्।
तत्र मत्स्यस्वरूपेण कामदेवेन संस्थितम्।।४६।।
अधित्यकायां पृथिवी वीक्ष्यमाणा ह्यनन्ततः।
नदी तु शाश्वती नाम्ना तत्रास्ते दक्षिणस्रवा।।४७।।
शिवः कामधरोः नाम तस्मिन् शैले व्यवस्थितः।
शाश्वत्यां विविधं स्नात्वा पीत्वा कामधराम्भसि।।४८।।
विमुक्तपापः शुद्धात्मा शिवलोके महीयते।
इति यः परमं तत्त्वं जानाति परमेश्वरि।।४९।।
स विमुक्तो महापापात् सत्यं सत्यं भवेद् नरः।

नदियों में मङ्गला नाम वाली सुन्दर नदी हिमालय से निकलकर मणिकूट पर्वत की पूर्व दिशा में सदैव बहती रहती है। जो व्यक्ति मणिकूट पर्वत पर चढ़कर इस शुभ नदी का दर्शन करता है, उसे गंगा स्नान का फल (पुण्य) प्राप्त होता है तथा उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है। मणिकूट पर्वत की पूर्व दिशा में मत्स्यध्वज (कामदेव नामक) कुल पर्वत है। जहाँ शिव के नेत्र से जले हुए कामदेव ने तपस्या द्वारा वृषभध्वज शिव की सम्यक् आराधना करके पुनः शरीर प्राप्त किया था। यहाँ मत्स्य रूप से कामदेव की स्थिति है। उस पर्वत के ऊपर दूर-दूर तक फैली हुई अनन्त रूप से जो समतल भूमि दिखाई देती है, उसमें दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली शाश्वती नाम वाली नदी बहती है। उस पर्वत पर 'कामधर' नाम से शिव स्थित हैं। उस शाश्वती नदी में विविध प्रकार से (नित्य अनेकों बार) स्नान करने वाला

तथा 'कामधर' शिव पर अर्पित जल को पीने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त तथा शुद्ध अन्तः करण वाला होकर शिव लोक में महिमा मण्डित होता है। हे परमेश्वरि! मेरे द्वारा कथित इस परमतत्व को जो मनुष्य जानता है (तथा इसके अनुसार कार्य करता है) वह सभी महापातकों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। मेरा यह कथन अकाट्य सत्य है।

इदानीं शृणु चार्वङ्गि रहस्यं सर्वमोहनम्।।५०।
गन्धमादनपूर्वस्यां सुकान्तो नाम पर्वतः।
तत्प्रान्ते वासवं कुण्डं वासवामृतभोजनम्।।५१।।
यत्र स्थित्वा दक्षिणस्यां पुरा शक्रः शचीपतिः।
अमृतं श्रान्तदेहस्तु कामरूपान्तरे पपौ।।५२।।
तत्पर्वते महादेवीं प्रपूज्य परमेश्वरि।
पुरश्चरणमेकं तु कृत्वा निर्वाणमाप्नुयात्।।५३।।
पूर्वस्यां तु सुकान्तस्य रक्षःकूटाह्व(को?यो) गिरिः।
यत्रास्ते सततं देवो निर्ऋ(तो?तिः) राक्षसेश्वरः।।५४।।
खड्गहस्तो महाकायो वामे चर्मधरस्तथा।
जटाजूटसमायुक्तः (पा?प्रां)शुः कृष्णाचलोपमः।।५५।।
द्विभुजः कृष्णवर्णस्तु शवस्योपरि संस्थितः।
रक्षःकूटं समारुह्य निर्ऋतिं राक्षसेश्वरम्।।५६।।
यः पूजयेद् महादेवीं कालिकां कालरूपिणीम्।
नास्ति तस्य च रक्षोभ्यो भयं सुरगणार्चिते।।५७।।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेतालाश्च (ग?वि)नायकाः।
तां दृष्ट्वा च महाकालीं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५८।।

हे चार्वङ्गि! अब अन्य सर्वमोहक रहस्यपूर्ण (अद्भुत) प्रसङ्ग को सुनो। गन्धमादन पर्वत की पूर्व दिशा में सुकान्त नामक पर्वत स्थित है। उसके किनारे (सीमान्त क्षेत्र में) इन्द्र के भोज्य रूप अमृत से पूर्ण वासव कुण्ड स्थित है। कामरूप के दक्षिण में स्थित इस कुण्ड के अमृत को प्राचीन काल में किसी समय शचीपति इन्द्र ने थकित (म्लान) शरीर होने पर पिया था। उस स्थान (पर्वत) पर निवास करते हुए महादेवी की अर्चना करके तथा मन्त्र का एक बार ही पुरश्चरण करके उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया था। सुकान्त पर्वत की पूर्व दिशा में 'रक्षः कूट' नामक पर्वत स्थित है। यहाँ राक्षसों के स्वामी निर्ऋति देव सदैव निवास करते हैं। इनके दाहिने हाथ में खड्ग

तथा बायें हाथ में ढाल है। शिर बंधी हुई जटाओं से युक्त है। शरीर का वर्ण काला तथा काले पर्वत के समान विशाल ऊँचा है। दो भुजाओं वाले ये निर्ऋति देव शव पर स्थित हैं। देवगणों द्वारा पूजित हे देवि! जो मनुष्य इस पर्वत पर आरूढ होकर राक्षसेश्वर निर्ऋति तथा कालरूपिणी काली का (यहाँ) पूजन करता है उसे राक्षसों, पिशाचों, वेतालों, विनायकों आदि किसी से भी भय प्राप्त नहीं होता है। महाकाली को देखकर (उनका दर्शन) कर वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

रक्षःकूटात् पूर्वदिशि भैरवो नाम (साधक?पर्वतः)।
पाण्डुनाथ इति ख्यातो यथारूपेण संस्थितः॥५९॥
तत्रैव पूजयेद् देवं पाण्डुनाथाह्वयं गिरिम्।
वर्णेन घनवर्णेन गदापद्मधरः करे॥६०॥
दक्षिणे कमला देवी बाहुभ्यामपि विभ्रतम्।
चतुर्भुजं रक्तपद्मसंस्थितं मुकुटाकुलम्॥६१॥
कुण्डले विभ्रतं शुद्धे श्रीवत्सोरस्कमुत्तमम्।
नमो नारायणायेति मूलबीजेन वै हरेः॥६२॥
एवं संपूजयेद् देवं चतुर्वर्गस्य सिद्धये।
पाण्डुनाथस्योत्तरस्यां ब्रह्मकूटाह्वयो गिरिः॥६३॥
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं वासार्थं स्वर्गवासिनाम्।
आयामेन शतव्यामं विस्तारेण तदर्धकम्॥६४॥
सर्वपापहरं पुण्यं देवसेकात् समागतम्।
कमण्डलुसमुद्भूत ब्रह्मकुण्डामृतोदर॥६५॥
हर मे सर्वपापानि पुण्यं शुद्धं च साधय।
इति देवि प्रकारेण ब्रह्मकूटं महागिरिम्॥६६॥
प्रदक्षिणेन संपूज्य देवीसायुज्यमाप्नुयात्।
पाण्डुनाथात् पूर्वदिशि गिरिश्चित्रमहो हरिः॥६७॥
सततं यत्र वसति विष्णुर्वाराहरूपधृक्।
ततस्तु नीलकूटाख्यं कामाख्यानिलयं परम्॥६८॥
तत्पूर्वभागे वसति ब्रह्मा ब्रह्मगिरिः पुनः।
ब्रह्मशैलस्य पूर्वस्यां भूमिपीठो व्यवस्थितः॥६९॥
चारुलिङ्गं शुभ्रवर्णं कामाख्यानाभिमण्डलम्।
तत्रोग्रताराररूपेण रमते परमेश्वरी॥७०॥

रक्षः कूट (रक्षः पर्वत) से पूर्व की दिशा में भैरव नाम का पर्वत है। इस पर्वत का वर्ण पाण्डु होने के कारण यहाँ स्थित देवता (नारायण) का

नाम पाण्डु नाथ प्रसिद्ध है। इस गिरि (पर्वत) पर पाण्डुनाथ का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए। उनका स्वरूप इस प्रकार है - इनके शरीर का वर्णन मेघ के समान श्याम है, इनकी चार भुजाएं हैं। दाहिनी दो भुजाओं में गदा तथा पद्म धारण किये हुए हैं तथा बायीं दोनों भुजाओं से साथ में स्थित लक्ष्मी को पकड़े हुए रक्त कमल पर आसीन हैं। शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल तथा वक्ष पर श्री वत्स चिह्न सुशोभित है। 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र से, चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति के लिए इन नारायण देव का पूजन करना चाहिए। पाण्डुनाथ की उत्तर दिशा में 'ब्रह्मकूट' नाम का पर्वत है जिसे स्वर्ग के देवताओं के निवास हेतु ब्रह्मा ने निर्मित किया था। इसकी लम्बाई सौ व्याम तथा चौड़ाई इसका आधा है। यहाँ पर स्थित ब्रह्मकुण्ड के अमृत से, जो ब्रह्मा के कमण्डल से उत्पन्न है, देवताओं का अभिषेक करना सर्वपापनाशक तथा पुण्यप्रद है। **'हर में सर्व पापानि पुण्यं शुद्धं (देहि सिद्धिं) च साधय'** इस प्रकार बोलते हुए ब्रह्म-कूट की प्रदक्षिणा करने तथा उसकी पूजा करने से देवी सायुज्य की प्राप्ति होती है। पाण्डुनाथ से पूर्व दिशा की ओर एक महान अद्भुत हरि पर्वत है। यहाँ विष्णु वाराह रूप धारण करके सदैव निवास करते हैं। उसके आगे नीलाचल नामक पर्वत है जो कामाख्या के निवास स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। उसके पूर्व भाग में ब्रह्मा के निवास भूत ब्रह्मगिरि स्थित है। ब्रह्म-पर्वत की पूर्व दिशा में भूमिपीठ की स्थिति है। यहाँ एक शुभ्र वर्ण सुन्दर लिङ्ग स्थित है। इस क्षेत्र को कामाख्या का नाभिमण्डल (अथवा मध्य भाग) कहा जाता है। यहाँपरमेश्वरी उग्रतारा के रूप में रमण करती हैं।

तत्र तेनैव रूपेण पूजितव्या शुभात्मिका।
रूपं शृणु वरारोहे तत्र ध्येया सदाशिवा॥७१॥
कृष्णा लम्बोदरी दीर्घा विह्वला रक्तदन्तिका।
चतुर्भुजा कृशाङ्गी च दक्षिणे कर्त्रिखर्परौ॥७२॥
खड्ग चेन्दीवरं वामे शीर्षे चैव जटा पुनः।
वामपादं शवस्योर्वोर्निधायोत्तमदक्षिणम्॥७३॥
शवस्य हृदये न्यस्य साट्टहासं प्रकुर्वती।
नागहारशिरोमाला भूतिदा कामदा परा॥७४॥
त्रिकोणमण्डलं चास्याः हुंकारमध्यबीजकम्।
द्वारेनाना योगिनानां नामान्यासां तु तन्त्रके॥७५॥

ज्ञेयानि नरशार्दूलैर्यत् प्रोक्तं चास्य गोचरे।
उर्वश्या विधिवत् स्नात्वा स्पृष्ट्वा पाण्डुशिलास्तथा।।७६।।
नीलकूटं समारुह्य पुनर्योनौ न जायते।
तत्र देवीं पूजयित्वा सर्वसिद्धिश्वरो भवेत्।।७७।।

वहाँ उग्रतारा स्वरूप में देवी का पूजन करना चाहिए जिससे साधक को कल्याण की प्राप्ति होती है। पूजन के समय उन सदाशिवा का जिस रूप में ध्यान करना चाहिए उस स्वरूप को कहता हूँ, सुनो! भगवती के शरीर का वर्ण काला (श्याम) है। शरीर क्षीण (पतला) एवं लम्बा (ऊँचा) तथा पेट बाहर की ओर बढ़ा हुआ वृहदाकार है। देखने में विक्षुब्ध (अशान्त) सी प्रतीत होती हैं। उनके चार भुजाएं हैं, दाहिनी दो भुजाओं मे कर्त्रि तथा खप्पर एवं बायीं भुजाओं में खड्ग तथा नीलकमल धारण की हुई हैं। शिर जटाओं से युक्त हैं। बाँया पैर (ऊर्ध्व मुख पड़े हुए) शव के घुटनों के पास (पञ्जों तथा घुटनों के मध्य) तथा दाहिना पैर हृदय पर स्थित करके वे खड़ी हुई हैं। गले में नागों तथा नरमुण्डों की माला धारण किये हुए, निजभक्तों को ऐश्वर्य तथा सभी भोगों को देने वाली (अथवा सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली) पराशक्ति रूपिणी अट्टहास करती हुई भगवती का इसके त्रिकोण मण्डल में हूंकार बीज के मध्य स्थित रूप से ध्यान करे। भगवती के द्वार पर इनके मुख का अवलोकन करती हुई अनेकों प्रकार की योगिनियाँ स्थित हैं, विद्वान श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा कहे गये इनके नाम विभिन्न तन्त्र शास्त्रों द्वारा ज्ञेय है। जो मनुष्य उर्वशी कुण्ड में स्नान कर पाण्डुशिला का स्पर्श करके फिर नील कूट पर चढ़कर वहाँ देवी का पूजन करता है, वह सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है तथा उसका पुनर्जन्म भी नहीं होता अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

पुरन्दरपुरीयाते वाराङ्गनाकुलाधिके।
सुधासंकीर्णतोऽमोघे पापं हर मनोहरे।।७८।।
अमृतेनामृतं चाद्य देहि देवि ममोर्वशि।
पुरन्दरप्रिये देवि वाराङ्गनाकुलाधिके।।७९।।
लौहित्यह्रदसंकीर्णे पापं हर ममोर्वशि।
इत्येभिः स्तुतिमन्त्रैश्च स्नात्वा पुण्योर्वशीवने।।८०।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके विराजते।
उर्वशी द्विभुजा प्रोक्ता स्वर्णकङ्कणधारिणी।।८१।।
शुक्लवस्त्रा गौरवर्णा पीनोन्नतपयोधरा।
सर्वाङ्गसुन्दरी शुद्धा सर्वाभरणभूषिता।।८२।।

उमामिन्द्रस्तु गदितं मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम्।
गणेशः पूर्वदेशस्थः कामाख्यापर्वतस्य च॥८३॥
तत्रैव चाग्निवेतालः स्थितः द्वारि मनोहरः।
तयोः रूपं च मन्त्रं च यथोक्तं च महेश्वरि॥८४॥
तदहं प्रतिवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।
प्रणवं परमेशानि हृदयं तदनन्तरम्॥८५॥
हस्तिमुखायेति तदा निजबीजादिसंयुतः।
मन्त्रं सि(द्धि?द्ध)गणेशस्य द्वारस्थस्य प्रकीर्त्तितम्॥८६॥

उपर्युक्त श्लोकों की प्रथम पाँच पंक्तियों में कथित स्तुति मन्त्र (हे उर्वशी! तुम्हारी उत्पत्ति इसी उर्वशी कुण्ड से हुई है, यहीं से तुम पुरन्दरपुरी–स्वर्ग में गई हो। तुम सभी सुन्दर रमणियों–अप्सराओं में श्रेष्ठ तथा अव्यर्थ प्रभाव वाले अमृत से परिपूर्ण हो। हे मनोहर स्वरूप वाली उर्वशी आज अपने अमृत के द्वारा मेरे सारे पापों को दूर कर मुझे अमरता प्रदान करो। हे पुरन्दर प्रिये! तुम्हारा प्रभाव क्षेत्र लौहित्यह्रद तक विस्तृत है। तुम मेरे पापों का विनाश करो) को बोलते हुए उर्वशी कुण्ड में स्नान करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में निवास करता है।

उर्वशी दो भुजाओं वाली है। भुजाओं में स्वर्णनिर्मित कङ्कन धारण किये हुए है। सारा अङ्ग सुन्दर तथा निर्दोष है एवं यथोचित सभी प्रकार के आभूषणों से अलङ्कृत है। शरीर का वर्ण गौर है तथा स्तनद्वय उन्नत एवं पुष्ट हैं। उर्वशी के इस मन्त्र को इन्द्र ने उमा से कहा था, ऐसा प्रसिद्ध है।

कामाख्या पर्वत के पूर्व भाग में गणेश स्थित हैं। वहीं पर अग्नि वेताल भी द्वार पर स्थित हैं। उन दोनों के जैसे रूप तथा मन्त्र हैं, उन्हें मैं कहता हूँ, हे प्रिये! एकाग्रचित्त होकर सुनो। सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) लिखे, तत्पश्चात् गणेश बीज 'गं' इसे बाद हृदय (नमः) पुनः 'हस्तिमुखाय' लिखे। इस प्रकार प्राप्त मन्त्र **'ॐ गं नमः हस्तिमुखाय'** द्वार पर स्थित सिद्ध गणेश का मन्त्र कहा गया है।

रूपं तस्य प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्।
लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥८७॥
शूर्पकर्णं बृहत्तुण्डमेकदन्तं पृथूदरम्।
दक्षिणे करिदन्तं च उत्पलं च तथा परे॥८८॥
लड्डुकं परशुं चैव वामतः परिकीर्तयेत्।
वृहद्वक्षस्त्रिनयनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिनम्॥८९॥

युक्तं बर्हिकुरङ्गीभ्यां मध्यस्थमूषकान्वितम्।
मन्त्रस्तु यादृशः प्रोक्तः पञ्चवक्त्रस्य पूजने।।९०।।
स एव मन्त्रो ग्राह्यस्तु तादृग्विधिनिषेवणम्।
द्विभुजो पीनवदनो रक्तनेत्रो भयङ्करः।।९१।।
छुरिका दक्षिणे पाणौ वामे रुधिरपात्रकम्।
दंष्ट्राकरालवदनः कृशो धमनिसन्ततः।।९२।।
जटां दीर्घां मूर्ध्नि विभ्रद् घोररावयुतः परः।
यः पूजयेत् तस्य पुनर्भूतादिभ्यो भयं नहि।।९३।।

अब मैं सिद्ध गणेश के ध्यानस्वरूप को कहता हूँ। सिद्धि गणेश का मुख हाथी के मुख के समान है तथा इनके तीन नेत्र हैं। इनकी चार भुजाएं हैं। पेट बाहर की ओर बढ़ा हुआ वृहद् रूप है। सूप के समान कान, लम्बी सूँड तथा बाहर की ओर निकला हुआ दाँत एक ही है। शरीर पर सर्प रूप यज्ञोपवीत धारण किए हुए हैं। दाहिने हाथों में हाथी का दाँत तथा कमल एवं बायें दोनों हाथों में लड्डू तथा परशु लिए हुए हैं। वक्ष चौड़ा, तीनों नेत्र विशाल तथा कन्धे, चरण एवं हाथ माँसल-पुष्ट हैं। इनके दोनों ओर स्वशक्तियाँ स्थित हैं तथा ये मूषक रूप स्ववाहन पर स्थित हैं। पञ्चवक्त्र के पूजन का जैसा मन्त्र कहा गया है, वैसा ही (वही) मन्त्र अग्निवेताल के लिए भी प्रयुक्त होगा। उसी प्रकार पूजन विधि भी प्रयुक्त होगी। ध्यान-स्वरूप इस प्रकार कहा गया है-

अग्निवेताल का स्वरूप देखने में भयङ्कर है। इसकी दो भुजाओं, दक्षिण में छुरिका तथा वाम में रक्तपूर्ण पात्र है। दाढ़ों के कारण विशाल भारी मुख भयङ्कर दिखाई देता है। शरीर क्षीण है तथा शरीर की नाड़ियाँ फैली हुई स्पष्ट दिखाई देती है अथवा वे बार-बार निरन्तर साँस ले रहे है। शिर पर बड़ी-बड़ी जटाएं स्थित हैं तथा वे तीव्र (भयानक) ध्वनि कर रहे हैं। जो मनुष्य इन अग्निवेताल का पूजन करता है, उसे कभी भी भूत-पिशाचादि से भय प्राप्त नहीं होता।

अथ वक्ष्ये महेशानि योगिनीतत्त्वमुत्तमम्।
शैलपुत्रीप्रमुख्यानां मन्त्राण्यष्टाक्षराणि च।।९४।।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्राणि पूर्वप्रोक्तानि तानि च।
शैलपुत्र्यास्तथा चाङ्गं मन्त्रं प्राक्प्रतिपादितम्।।९५।।
रूपसदृशवर्णानां योगिनीनां विशेषतः।
प्रत्यक्षरेण बीजेन दुर्गातन्त्रोक्तवर्त्मना।।९६।।

नैजबीजेनैव पूज्या योगिन्यश्च महेश्वरि।
कात्यायनीपादयुग्मं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत्॥९७॥
तदेव पूजनं रूपं तत्पूर्वं प्रतिपादितम्।
प्रणवं पुर्वमुद्धृत्य छान्तवर्णं समादिशेत्॥९८॥
वामगण्डेन संयुक्तं चन्द्रबिन्दुविभूषितम्।
हंसशेषविसर्गान्तं मन्त्रं सर्वप्रियं शिवे॥९९॥
कालरात्रिं पूजयित्वा सर्वैश्वर्ययुतो भवेत्।
अनेनैव विधानेन पूजयेद् भुवनेश्वरीम्॥१००॥
महाशक्तिं समुद्धृत्य वाग्भवं तदनन्तरम्।
पुनयोनिं समासाद्य बीजत्रयमुदाहृतम्॥१०१॥
अनेन मन्त्रराजेन पूजयेद् भुवनेश्वरीम्।
एताः सर्वास्तु योगिन्यः कामाख्यावत् फलप्रदाः॥१०२॥

हे महेशानि! अब मैं उत्तम योगिनी तत्व को कहता हूँ। शैल पुत्री आदि प्रमुख जो अष्ट शक्तियाँ (योगिनियाँ) हैं, उनके नामों के प्रथमाक्षर रूप अष्ट अक्षर ही उनके मन्त्र हैं। वैष्णवी तन्त्र के जो मन्त्र हैं, वे पहले कहे जा चुके हैं। शैलपुत्री के अङ्ग-मन्त्र पहले ही कहे जा चुके हैं। योगिनियों के नामों के अनुसार, नाम के प्रथमाक्षर को बीज रूप से ग्रहण करके दुर्गा तन्त्रोक्त विधि से उनका पूजन करना चाहिए। दुर्गा तन्त्र (मन्त्र) विधान से ही कात्यायनी के चरण कमलों का भी पूजन करना चाहिए। इनके पूजन तथा रूप का प्रतिपादन पहले ही हो चुका है। अग्रिम तीन पंक्तियों से स्पष्ट मन्त्रोद्धार प्रतीत नहीं होता है। सम्भवतः यहाँ मन्त्र 'ॐ जूं सः' का उद्धार ग्रन्थकार को अभीष्ट हो। हे देवि! यह मन्त्र सभी देवताओं को प्रिय है। इस मन्त्र से शिव सहित यहाँ कालरात्रि का पूजन करके मनुष्य सभी ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार भुवनेश्वरी का भी पूजन करना चाहिए। तीन बीजों से युक्त मन्त्र 'ह्रीं ऐं ऐं' (सम्भवतः ऐं ह्रीं श्रीं) से भुवनेश्वरी का पूजन करना चाहिए। ये सभी योगिनियाँ पूजित होने पर कामाख्या के समान ही फल देने वाली हैं।

विशेषो यत्र नैवोक्तो रूपे तन्त्रे च पूजने।
नीलातन्त्रोक्तरूपेण तत्र पूजां समाचरेत्॥१०३॥
प्रत्येकं योगिनीं यस्तु पूजयेत् सुरवन्दिते।
स सर्वयज्ञस्य फलं लभते नात्र संशयः॥१०४॥
नीलशैलस्य रूपस्य स्वरूपं प्रतिपादितम्।
नाभिमण्डलपूर्वस्यां भस्मकूटस्य दक्षिणम्॥१०५॥

पूर्वस्यां कपटो नाम पर्वतो यः स्वरूपधृक्।
तत्र याम्या शिला कृष्णा नीलाञ्जनसमप्रभा॥१०६॥
अधित्यकायां राजेन्द्रं व्यासपञ्चसुरान्तकम्।
पूजयेत् तत्र शमनं पा(शौ?शं)दण्डं सदैव यः॥१०७॥
घत्ते तु पाणिना नित्यं प्राणिदण्डस्य साधनम्।
कृष्णवर्णं तु द्विभुजं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥१०८॥
दधतं चासिपत्रं च वामपाणौ सदैव हि।
कृष्णवर्णं स्थूलपादं बहिर्निःसृतदन्तकम्॥१०९॥
भयाभयप्रदं नित्यं नृणां महिषवाहनम्।
पूजयेत् परया भक्त्या यमबीजेन सुन्दरि॥११०॥
उपान्त्यवर्गस्यान्ते यो वर्णो बिन्द्विन्दुसंयुतः।
यमबीजमिति ख्यातं यमस्य प्रीतिकारकम्॥१११॥
अनेनैव तु मन्त्रेण यमं हि पूज(येत्?यन्)शिवे।
कपटाख्याचलवरे नापमृत्युं समाप्नुयात्॥११२॥
पूर्वस्यां कपटाख्यस्य शैलोऽर्चिष इति स्मृतः।
यः पूर्वभाग्यैः प्राप्तो भृङ्गेश्याग्नेय्यामवस्थितः॥११३॥
अस्मिन् वसन्ति सततं ग्रहाश्चैव यथेच्छया।
एतांश्च पूजयेद् यस्तु स नाप्नोत्यापदं क्वचित्॥११४॥

जहाँ तन्त्र (साधन पूजनादि की प्रक्रिया) में विशेष विधि का वर्णन नहीं है वहाँ इन योगिनियों का पूजनादि नील तन्त्र में कही गई विधि के अनुसार ही करनी चाहिए जो साधक यहाँ पृथक-पृथक प्रत्येक योगिनी का पूजन करता है, उसे सभी यज्ञकर्म का फल प्राप्त होता है।

अब नील शैल के स्वरूप को कहता हूँ। नाभिमण्डल के पूर्व तथा भस्म कूट के दक्षिण पूर्व में स्थित कपट नामक पर्वत का जो स्वरूप है वही स्वरूप नील शैल का है वहाँ दक्षिण की ओर नीले अञ्जन के समान कृष्णा शिला है। उसके ऊपरी समतल भूमि पर यम का वास स्थान है। इनका (ध्यान) स्वरूप इस प्रकार है -

यमदेव प्राणियों (मनुष्यों) का नियन्त्रण करने तथा उन्हें दण्ड देने के साधन रूप में पाश तथा दण्ड सदैव दाहिने हाथ में धारण किये रहते हैं। ये बांये हाथ में गन्ना लिए हुए रहते हैं। इनके शरीर का वर्ण कृष्ण है तथा शिर पर दीप्तिमान मुकुट सुशोभित है। इनके चरण स्थूल (भारी-मोटे) तथा दाँत बाहर की ओर निकले हुए हैं। ये मनुष्यों को इनके कर्मों के अनुसार भय

तथा अभय दोनों देने वाले हैं। इनका वाहन भैंसा है। यम बीज मन्त्र से परमभक्ति सहित इनका पूजन करना चाहिए।

अन्तिम वर्ग पवर्ग उसका अन्त्य वर्ण 'म' के समीप का वर्ण 'य'। इसे चन्द्र बिन्दु से युक्त करने पर यमबीज 'यँ' की प्राप्ति होती है। यम को अत्यन्त प्रीतिकर इसी बीज मन्त्र द्वारा यमराज का पूजन करना चाहिए। इस कपट पर्वत पर पूजन करने से कभी अकाल (अथवा निकृष्ट अवस्था में) मृत्यु नहीं प्राप्त होती। कपट पर्वत की पूर्व दिशा में अर्चिष नाम वाला पर्वत है। इसका दर्शन पूर्व जन्मों में अर्जित पुण्य के कारण ही होता है। इसके अग्निकोण में भृङ्गेशी स्थित हैं। इस पर्वत पर सभी ग्रह स्वेच्छा से सदैव वास करते हैं। यहाँ इन ग्रहों का जो मनुष्य पूजन करता है, उसे कभी भी विपत्ति प्राप्त नहीं होती।

अथ वक्ष्ये महेशानि सूर्यस्यापि च मन्त्रकम्।
रूपं मन्त्रं च तन्त्रं च सूर्यस्यापि च संशृणु॥११५॥
सप्तानामितरेषां तु मन्त्ररूपं शृणुष्व मे।
रक्ताम्भोजधरः शूली शक्तिमांश्च गदाधरः॥११६॥
चतुर्भुजो भानुरयं वरदो मेऽस्तु मङ्गलः।
प्रणवं पूर्वमुद्घृत्य हान्तवर्णं ततो न्यसेत्॥११७॥
चन्द्रेण पुटितं बीजं द्वितीयं बीजमुत्तमम्।
तृतीयं शृणु चार्वङ्गि वह्निबीजं महात्मकम्॥११८॥
अनेन मन्त्रराजेन सूर्यस्य पूजनं भवेत्।
इदानीं कथयिष्यामि कज्जलाचलमुत्तमम्॥११९॥
यत्र गौरी महादुर्गा शिवेन सहिता सती।
सर्वे विद्याधराद्यास्तु सन्त्यत्र देवयोनयः॥१२०॥
तं पर्वतं दिव्यरूपं समीक्ष्य च जपेद् दश।
सहस्रान्तं मनुं प्रोक्तं सर्वसर्वस्वगोचरे॥१२१॥
थान्तबीजं समुद्धृत्य वामगण्डविभूषितम्।
अर्धचन्द्रेण पुटितं बीजमाद्यं प्रियङ्करम्॥१२२॥
महाशक्तिं वरारोहे द्वितीयं बीजमुद्धृतम्।
वह्निजायावधि मन्त्रं दुर्गाया बीजमुत्तमम्॥१२३॥
तेन बीजेन देवेशि कालिकां पूजयेत् शिवे।
सहस्रस्य प्रमाणेन जपं कुर्यात् शुचिस्मिते॥१२४॥

तत्र जप्ते महेशानि मोक्षमाप्नोति साधकः।
एकस्मिंश्च महेशानि पुरश्चरणके कृते॥१२५॥
पुरश्चरणलक्षाणां फलं तत्र भविष्यति।

हे महेशानि! अब मैं सूर्य के मन्त्र तथा उसके (ध्यान) स्वरूप को कहता हूँ, सुनो! हाथों में लाल कमल, शूल, शक्ति तथा गदा धारण किये हुए चतुर्भुज भगवान सूर्य मेरे लिए वरदायक तथा मङ्गलकारी हों।

मन्त्रोद्धार को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ भ्रामक हैं। ग्रन्थकार का संकेत संभवतः **'ॐ हंसः स्वाहा'** मन्त्र से है। वैसे सूर्य का त्र्यक्षरी मन्त्र **'ह्राँ ह्रीं सः'** तथा चतुरक्षरी मन्त्र **'ॐ ह्रीं हंसः'** है। इस मन्त्रराज से यहाँ सूर्य का पूजन करना चाहिए।

अब मैं उत्तम कज्जल पर्वत के विषय में कहता हूँ। यहाँ शिव के साथ सती गौरी महादुर्गा निवास करती है। सभी विद्याधर तथा अन्य देवयोनियाँ भी यहाँ निवास करती हैं। उस दिव्य रूप पर्वत को देखकर (वहाँ पहुँच कर) आगे कहे जाने वाले मन्त्र का दश हजार जप करने से उस पर्वत पर स्थित सभी देवताओं का दर्शन होता है। (अथवा मन्त्र के जपने से सर्वज्ञता प्राप्त होती है)।

यहाँ भी मन्त्रोद्धार की पंक्तियाँ भ्रामक प्रतीत होती हैं। सम्भवतः ग्रन्थकार का आशय 'दुँ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र से है। हे देवेशि! इस मन्त्र से कालिका (महादुर्गा) का पूजन करके मन्त्र का दश हजार जप करे। इससे साधक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस स्थान पर किसी भी मन्त्र का एक पुरश्चरण करने से साधक को एक लाख पुश्चरण का फल प्राप्त होता है।

[श्लोक ११६ की प्रथम पंक्ति में सम्भवतः सूर्य-चन्द्र के अतिरिक्त अन्य सात ग्रहों के मन्त्र कहने की बात कही गयी है, परन्तु किसी भी ग्रह का मन्त्र (रूप-ध्यानादि) नहीं कहा गया है।]

तस्य पूर्वे महेशानि शुभपर्वतके शुभे॥१२६॥
शच्या सार्धं पुरा रेमे यत्र शक्रः सुरेश्वरः।
तत्पूर्वं सा महादेवि नदी कपिलसंज्ञिता॥१२७॥
तस्यां स्नात्वा जलं पीत्वा देवीलोके महीयते।
कालिकानिलयात् पूर्वदक्षिणस्यां तथा दिशि॥१२८॥
विद्यते महदावृत्तं पवित्रं भूबिलं महत्।
पञ्चविंशतिमानेन योजनानां गणेश्वरि॥१२९॥
तस्मादायाति स्म नदी सर्वदेवनमस्कृता।
को ब्रह्मा कीर्तितो देवैर्यस्मात् तस्य पिला स्मृता॥१३०॥

गङ्गेव फलदा यस्मात् तस्मात् कपिलसंज्ञिता।
स्नात्वा कपिलगङ्गाया पूर्वमन्यतरासु च॥१३१॥
नरः स्वर्गमवाप्यादौ देवीलोकं ततो व्रजेत्।
अभीष्टदा नदीपूर्वभागे दमनिकाह्वया॥१३२॥
नदी महाहृष्टतोया पापानां शमनी तथा।
ततो ब्रह्माह्वया चाभूद् अपरा सरिदुत्तमा॥१३३॥
तस्या नद्याः पूर्वभागे गङ्गावत् फलदायिनी।
माघमासं तु सकलं नद्यां स्नात्वा महेश्वरि॥१३४॥
तथा दमनिकायां तु परं निर्वाणमाप्नुयात्।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(साधनस्थानान्तरनिरूपणं) पञ्चदशः पटलः॥१५॥

हे महेशानि! उस कज्जलाचल की पूर्व दिशा में स्थित शुभ पर्वत पर प्राचीन काल में (किसी समय) देवराज इन्द्र ने शची के साथ आनन्दपूर्वक विहार किया था। हे महादेवी उस पर्वत के पूर्व भाग में कपिला नाम की नदी है। उसमें स्नान करने तथा उसका जलपीने से मनुष्य देवलोक में पूजित होता है।

कालिकाभवन से पूर्व दक्षिण भाग में विशाल वृत्ताकार पवित्र भूविवर (पृथ्वी में गहरा गड्ढा जैसा स्थान) है। जिसका विस्तार पचीस योजन (सौ कोश–तीन हजार दो सौ किलोमीटर) है। समस्त देवों से नमस्कृत वह नदी उसी विवर से निकलती है। 'क' वर्ण ब्रह्मा का संकेतक है, उन्हीं के द्वारा यह नदी प्रवाहित की गई है। (पिला शब्द 'पिल्' धातु से निर्मित है) अतः देवताओं ने इसका 'कपिला' नामकरण किया है। यह गङ्गा के समान ही पुण्य फल देने वाली है। कपिला तथा गङ्गा दोनों में से किसी में भी स्नान करने वाला मनुष्य पहले स्वर्ग लोक में इसके पश्चात् देवी लोक में जाता है। इस नदी के पूर्व भाग में 'दमनिका' नाम वाली नदी है। इसका जल परम आनन्दप्रद है। यह पापों का विनाश करने वाली तथा अभीष्ट को प्रदान करने वाली है। उस नदी के पूर्व भाग में ब्रह्मा नाम वाली एक अन्य उत्तम सरिता है। यह भी गंङ्गा के समान ही फलदायिनी है। माघ मास में सभी नदियों में स्नान करने से, जिन फलों की प्राप्ति होती है, विशेष रूप से दमनिका में स्नान करने से उन सभी फलों के साथ ही परम मोक्ष की भी प्राप्ति होती है।

॥ श्री बृहन्नील तन्त्र में भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत साधन स्थानान्तर निरूपण नामक पन्द्रहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

* * *

।। षोडशः पटलः।।

(प्रयोगान्तर-द्वादश मासविधि निरूपणम्)

।। विविधाचारं पर्व-विशेषेषु पूजनादिनिरूपणञ्च।।

श्रीभैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि सारस्वतपदप्रदम्।
आचारं परमेशानि शृणुष्वैकमना यतः।।१।।
यान्यवश्यं महेशानि कर्तव्यानीति निश्चितम्।
साधवः क्षीणदोषाश्च स्वच्छन्दाः साधुवादकाः।।२।।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते।
समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तद्गृहान्तवत्।।३।।
कुर्याद् विधिनिषेधाभ्यां निषेधादिविधिं तथा।
षट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः।।४।।
तथैव क्षत्रियादीनि स्वे स्वे कर्मणि योजयेत्।
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत्।।५।।
स दण्डयः परमेशानि शतं दण्डेन दण्डयेत्।
सांवत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान् समाचरेत्।।६।।
अवश्यं पार्थिवः कुर्यात् तान् विशेषान् महेश्वरि।

अब मैं उन कर्तव्य रूप विशेष आचरणों को कहता हूँ जिनका पालन करने से साधकों को ज्ञान की प्राप्ति (उनकी ज्ञान-वृद्धि) होती है। हे महेशानि! एकाग्र चित्त होकर सुनो! साधकों के लिए जो अनिवार्यतः कर्त्तव्य रूप कर्म हैं, उन्हें ही आचार अथवा सदाचार कहा जाता है।

जो व्यक्ति काम-क्रोधादि रूप षड्रिपुओं सहित सभी मानसिक दोषों से मुक्त है, वही साधु अथवा सत्पुरुष कहलाने के योग्य है। जो व्यक्ति अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुसार सभी कर्मों को पाप-पुण्य, लाभ-हानि आदि के विचार से रहित होकर स्वतन्त्रता पूर्वक स्वविवेक के आधार पर अपना कर्तव्य समझ कर करता है, वही वास्तविक रूप से साधुवाद का अधिकारी

(धन्यवाद का पात्र) होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रेष्ठ (सत्) पुरुषों द्वारा किये जाने वाले आचरण (कर्म-व्यवहार) का नाम ही सदाचार है। साधकों को भी गृहस्थ पुरुषों की भाँति ही शास्त्रों में कहे गये सदाचारों को ग्रहण (उसका ज्ञान प्राप्त) कर, विधि-निषेध रूप आदेशों के अनुसार ही कर्म करना चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि वह सभी ब्राह्मणों को सब प्रकार से षट्कर्म-साधनों में नियुक्त करे। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि वर्णों को भी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरित करे। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रमोचित धर्म (कर्तव्य कर्म) का परित्याग कर अन्य वर्णाश्रम का धर्म-पालन करे उसे राजा दण्डित करे तथा न्यूनतम सौ मुद्राओं का अर्थदण्ड लगाये। इसी प्रकार वर्ष भर में पड़ने वाले विशेष-विशेष तिथियों, पर्वों आदि से सम्बन्धित आचरणों (पूजनादि कर्मों) को राजा स्वयं तो करे ही अपनी प्रजा को भी इसमें लगाये - प्रेरित करे।

शरत्काले महाष्टम्यां दुर्गायाः परिपूजनम्॥७॥
नीराजनं दशम्यां तु कुर्याद् वै बलवृद्धये।
पौषे मास्यसिते पक्षे तृतीया या महेश्वरि॥८॥
पुष्येण युक्ता देवेशि तत्र देवीं प्रपूज्य च।
सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वं भवति निश्चितम्॥९॥
ज्यैष्ठे दशहरायां तु कालिकाया महेश्वरि।
तथा नीलसरस्वत्याः पूजनं विधिवच्चरेत्॥१०॥
अवश्यं राजभिः कार्यमन्यथा नश्यति ध्रुवम्।
एभिः कृत्यैर्बलं राज्यं कोषश्चापि विवर्धते॥११॥
अकृते च महादेवि दुर्भिक्षं मरकं भवेत्।
जायन्ते चेतयः सर्वा विशिष्यैतान् समाचरेत्॥१२॥
शरत्काले महाष्टम्यां नीलायाः पूजने विधिः।
पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम्॥१३॥
विधिं नीराजनस्य त्वं शृणु हे नगनन्दिनि।
कृतेन येन चास्माकं गजानामपि वर्धनम्॥१४॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य तृतीयां स्नाति योगिनी।
ऐशान्यां ससुरा सैव गृह्णीयात् स्नानमुत्तमम्॥१५॥
नीराजनं ततः कुर्यात संप्राप्ते दिवसेऽष्टमे।
नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव॥१६॥

राजा का कर्तव्य है कि वह शरत्काल की महा-अष्टमी (आश्विन शुक्ल-पक्ष) को दुर्गा का पूजन करे तथा दशमी को शक्ति (सेना)-वृद्धि के लिए देवी का नीराजन करें। पौष मास शुक्ल पक्ष की पुष्य नक्षत्र युक्त तृतीया तिथि में देवी का पूजन करके, हे देवेशि! मनुष्य अपनी सभी कामनाओं की पूर्ति कर लेता है। ज्येष्ठ मास के गङ्गा दशहरा (शुक्ल पक्ष दशमी) को कालिका तथा नीलसरस्वती का विधिवत पूजन राजाओं को अवश्य करना चाहिए। ऐसा न करने पर निश्चित ही उनका विनाश हो जाता है। इन पूजन-कर्मों को करने से राजा की सेना, राज्य तथा कोष (मुद्रा-भण्डार) की वृद्धि होती है। हे महादेवि! ऐसा न करने पर राज्य में अकाल पड़ता है तथा महामारी (संक्रामक रोग) फैल जाती है। अतः इन पार्वण आचारों को विशेष रूप से करना चाहिए। शरत्काल की महाष्टमी को नीला (तारा) का पूजन पूर्वोक्त विधि से भली-भाँति करना चाहिए। हे पार्वति! अब नीराजन की विधि सुनो, जिसको करने से हाथियों की वृद्धि होती है। आश्विनि मास शुक्ल पक्ष तृतीया को योगिनी स्नान करती है। ईशान दिशा में सुरा के द्वारा उसे (योगिनी) को स्नान कराना चाहिए। इसके बाद अष्टमी तिथि प्राप्त होने पर (अथवा आठवाँ दिन आने पर अर्थात् दशमी को) नीराजन करना चाहिए। नीराजन का काल मेरे द्वारा तुमसे पहले ही कहा जा चुका है।

विधानमात्रं देवेशि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।
एकं हयं महासत्त्वं सुमनोहरमेव वा॥१७॥
पूजयेत सप्त दिवसान् गन्धपुष्पांशुकादिभिः।
तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत् तं यज्ञमण्डलम्॥१८॥
चेष्टा निरूपयंस्तस्य जानीयात् तु शुभाशुभम्।
परराष्ट्राभिमर्दः स्याद् अश्वो यदि पलायते॥१९॥
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि लेडानि मुञ्चति।
नीयमानो न गच्छेच्चेद् महिषीमरणं तथा॥२०॥
तथैव मुखनासाक्षिशब्दं कुर्याद् हयो यदि।
यत्काष्ठाभिमुखं कुर्यात् तत्काष्ठायां जयेद् रिपून्॥२१॥
इति ते कथितं देवि राजत्वस्य प्रदायकम्।
प्रयोगं मम सर्वस्वं जानीहि नगनन्दिनि॥२२॥

हे प्रिये! अब एक अन्य विधान को एकाग्रचित्त होकर सुनो। एक सुन्दर, आकर्षक, महाबलशाली अश्व का सात दिनों तक पूजन करना चाहिए। अश्व पर सुन्दर (रेशमी) वस्त्र आच्छादित करके गन्ध-पुष्पादि से

उसका तृतीया तिथि से पूजन प्रारम्भ करना चाहिए। तत्पश्चात् दशमी तिथि को उसे यज्ञ मण्डप में लाकर उसकी चेष्टाओं (व्यवहारों-शारीरिक क्रियाओं) का निरीक्षण कर (राजा को) अपने शुभ-अशुभ को जानना चाहिए। यदि अश्व इधर-उधर भागने का प्रयत्न करता है तो दूसरे राष्ट्र (राज्य) द्वारा आक्रमण कर स्वराष्ट्र के दमन का सङ्केत समझना चाहिए। यदि अश्व मल-त्याग करता है तो राजपुत्र का मरण होना समझना चाहिए। यदि यज्ञ मण्डप में लाते समय (अथवा यज्ञ मण्डप में ही इधर-उधर ले जाते हुए अर्थात् उसे चलाने पर) वह अड़ जाता है अर्थात् गति नहीं करता है तो रानी की मृत्यु की सम्भावना जाननी चाहिए। इसी प्रकार यदि अश्व मुख-नाक से ध्वनि करता है तो वह जिस दिशा (राज्य) की ओर मुख करके ध्वनि कर रहा है, उस दिशा (राज्य) के शत्रुओं पर विजय प्राप्ति का सङ्केत प्राप्त होता है। हे पार्वति! मैने तुमसे यह राजत्व प्रदान करने वाले प्रयोग का वर्णन किया।

।।ज्येष्ठ पूर्णिमायां महाकाली स्नापनात् प्राप्य-पुण्य-फल-निरूपणम्।।

अन्यं शृणु वरारोहे येन सिद्धयति साधकः।
ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे ज्येष्ठायुक्ता च सुन्दरि।।२३।।
पौर्णमासी महेशानि तस्यां स्नानं महाफलम्।
चन्दनागुरुकक्कोलैर्दूर्वया श्वेतसर्षपैः।।२४।।
आमलक्या महेशानि हरिद्राचूर्णकेन च।
तिलतैलैर्विष्णुतैलैरन्यैश्च गन्धसंयुतै।।२५।।
नारायणेन तैलेन स्नपयेत् परमेश्वरीम्।
नारिकेलोदकेनैव स्नपयेद् यदि कालिकाम्।।२६।।
लक्षवर्षसहस्रैश्च देवीलोके महीयते।
दध्ना च परमेशानि स्नपयित्वा सुरेश्वरीम्।।२७।।
कल्पकोटिशतेनापि सायुज्याच्च न हीयते।
दुग्धेन स्नपयेद् देवीं महाकालीं महोज्ज्वलाम्।।२८।।
तस्य लक्ष्मीर्विशेषेण स्थिरा स्याद् नात्र संशयः।
घृतेन स्नपयेद् देवीं सर्वकामार्थसिद्धये।।२९।।
तथा शर्करया देवि फलमाप्नोति साधकः।
मधुना स्नपयित्वा तु सर्वकामवरेश्वरीम्।।३०।।
कालिकां परमेशानि तथा चैव सरस्वतीम्।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः स्वर्गे लोके महीयते।।३१।।

सुगन्धिपुष्पतोयेन स्नपयेत् परमेश्वरीम्।
तस्य पुण्यफलं देवि शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥३२॥
कल्पकोटिसहस्रैस्तु देवीसायुज्यमाप्नुयात्।
भुङ्क्ते च विविधान् भोगान् यावदाभूतसंप्लवम्॥३३॥

हे वरारोहे! अब एक अन्य प्रयोग सुनो, जिसको करने से साधक सिद्ध हो जाता है। ज्येष्ठ मास की ज्येष्ठा युक्त पूर्णिमा तिथि में देवी को स्नान कराने से महान (पुण्य रूप) फल की प्राप्ति होती है। चन्दन, अगुरु, कक्कोल, दूर्वा, श्वेत सरसों, आवला (चूर्ण अथवा रस), हल्दी चूर्ण आदि के मिश्रण द्वारा तथा तिल तेल, विष्णु तेल, नारायण तेल तथा अन्य भी सुगन्धयुक्त तेलों के द्वारा पृथक-पृथक परमेश्वरी को स्नान कराना चाहिए। नारियल के जल से, यदि साधक कालिका को स्नान कराता है तो वह एक लाख वर्ष तक देवी लोक में पूजित होता है। दधि के द्वारा सुरेश्वरी कालिका को स्नान कराने से सौ करोड़ कल्प के पश्चात् भी प्राप्त देवी सायुज्य से रहित नहीं होता।

महातेजस्विता महाकाली को दुग्ध के द्वारा स्नान कराने वाले साधक के गृह में लक्ष्मी विशेष रूप से अचला होकर वास करती है। घृत से स्नान कराने पर सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। शकर से स्नान कराने से भी इसी फल की प्राप्ति होती है। समस्त कामनाओं का वरदान देने वाली कालिका तथा नीलसरस्वती को मधु द्वारा स्नान कराने से साधक सभी दुखों (पापों) से रहित होकर स्वर्ग में वास करता हुआ पूजित होता है।

हे देवि! जो मनुष्य पुष्पों द्वारा सुगन्धित जल से परमेश्वरी महाकाली को स्नान कराता है, उसे प्राप्त होने वाले पुण्यों को एकाग्रचित्त होकर सुनो। वह हजारों करोड़ वर्षों तक जब तक सभी तत्वों सहित सम्पूर्ण सृष्टि का प्रलय नहीं हो जाता देवी का सायुज्य (सामीप्य) प्राप्त कर अनेकों प्रकार के भोगों का उपयोग करता है।

सचन्दनजलेनैव स्नपयित्वा सुरेश्वरीम्।
यमलोकं परित्यज्य कैलासे वसतिर्भवेत्॥३४॥
वैशाखे मासि देवेशि स्नपयेत् शीतलैर्जलैः।
नारिकेलोदकं दिव्यं तस्यै दद्याद् मनोहरम्॥३५॥
प्रातः संपूजयेद् देवीं सायाह्ने संप्रकाशयेत्।
ज्यैष्ठे मासि सुरश्रेष्ठे मल्लिकां मालतीं तथा॥३६॥

दापयेत् परमेशानि दध्ना च स्नानमाचरेत्।
तथा कर्पूरसंमिश्रैस्तोयैश्च स्नपयेत् शिवाम्।।३७।।
एवं क्रमेण देवेशीं स्नपयित्वा सुखं भवेत्।

चन्दन मिश्रित जल से सुरेश्वरी को स्नान कराने वाला साधक सभी पापों से मुक्त हो जाने के कारण यमलोक का परित्याग कर (यमलोक-नरक में न जाकर) कैलास मे निवास करता है।

वैशाख मास में भगवती को शीतल जल तथा शुद्ध नारियल जल एवं विभिन्न प्रकार के दिव्य सुगन्धों से युक्त जल से स्नान कराये। प्रातः देवी को स्नान कराकर उनका पूजन करे तथा सायंकाल में देवी के आस पास दीप प्रज्ज्वलित कर प्रकाश (अथवा नीराजन) करे।

ज्येष्ठ मास में देवी को दधि से तथा कपूर मिश्रित जल से स्नान कराकर मल्लिका, मालती आदि पुष्प अर्पित करे। इस प्रकार प्रतिदिन स्नान (पूजन) कराने वाला साधक सदैव इस लोक में (तथा परलोक में भी) सुखी रहता है।

।। आषाढ़ादि मासेषु देवी-स्नपनात् प्राप्तव्यानि फलानि।।

शुचौ मासि महादेव्यै शर्करासहितं दधि।।३८।।
दद्याच्च परमेशानि स्नपयेत् श्वेतसर्षपैः।
शर्करासहिताँल्लाजान् महादेव्यै प्रदापयेत्।।३९।।
एवं क्रमेण देवेशि पुरश्चर्याफलं लभेत्।
श्रावणे परमेशानि घृतेन स्नपयेत् शिवाम्।।४०।।
तथा मसूरचूर्णेन स्नपयित्वा महेश्वरीम्।
भुक्त्वा च विविधान् भोगान् दुर्गालोके महीयते।।४१।।
पिष्टकैः सगुडैर्देवि तोषयेत् परमेश्वरीम्।
नभस्ये परमेशानि स्नपयेत् सुरसुन्दरीम्।।४२।।
हरिद्रामलकेनैव मथनेनैव सुन्दरि।
क्षीरं दद्याद् महादेव्यै शर्करासहितं प्रिये।।४३।।
छागमांसं पलान्नं च सूक्ष्मान्नसहितेन च।
दद्याच्च पिष्टकं मौग्दं क्षीराज्यपरिभूषितम्।।४४।।
एवं क्रमेण यो दद्याद् देवीलोकमवाप्नुयात्।
इषे मासि प्रवृत्ते तु महादेवीं सरस्वतीम्।।४५।।
स्नपयेत् च कषायेण कल्पामृतरसेन च।
नारायणेन तैलेन विष्णुतैलेन वा पुनः।।४६।।

अन्येन गन्धतैलेन स्नपयेद् भवमोहिनीम्।
दद्याच्च परमं हृद्यं सन्देशं रसनासुखम्।।४७।।
लड्डुकं परमं तस्यै दापयेत् सुरनायिके।
नानाविधैश्च बलिभिः पूजयेत् शांकरीं शिवाम्।।४८।।
एवं पूजां नरः कृत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि।

आषाढ़ मास में देवी को शकर युक्त दधि प्रदान करना चाहिए तथा सफेद सरसों से स्नान कराकर उन्हें शकर सहित लाजा (धान का लावा) प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार एक मास तक इस क्रम को करने से साधक (मन्त्र) पुरश्चरण का फल प्राप्त करता है।

श्रावण मास में जो साधक महेश्वरी शिवा को घृत तथा मसूर के चूर्ण से स्नान कराता है, वह इस क्रम-साधना से प्राप्त पुण्य-बल से इस लोक में विविध प्रकार के भोगों को भोगकर अन्त में दुर्गालोक में प्रतिष्ठित होता है।

भाद्रपद मास में प्रतिदिन सुरसुन्दरी परमेश्वरी को हल्दी तथा आँवले के मिश्रित चूर्ण से स्नान कराकर उन्हें गुड सहित पिष्टक तथा शकर सहित दुग्ध प्रदान करना चाहिए। बकरे का मांस, अन्नयुक्त अन्य वैध मांस, सूक्ष्म अन्नों से निर्मित भोज्य पदार्थ तथा दूध, घी आदि से परिभूषित (पूर्ण एवं सुशोभित) पिष्टक, मूँग से निर्मित पदार्थ आदि जो-जो देवी को प्रिय हो, प्रदान करना चाहिए। इस क्रम से पूर्ण मास तक आराधना करने वाला मनुष्य देवी लोक को प्राप्त करता है।

आश्विन मास के प्रारम्भ होने पर प्रत्येक दिन जो मनुष्य महादेवी सरस्वती को कषाय पदार्थों के चूर्ण से युक्त पवित्र शुद्ध (तीर्थ) जल से, नारायण तेल, विष्णु तेल तथा अन्य भी सुगन्धित तेलों से स्नान कराकर, उस भवमोहिनी की, स्वादिष्ट, मनोरम संदेश लड्डू तथा विविध प्रकार की बलि प्रदान करते हुए पूजन करता है, वह इस पूजनादि के प्रभाव से दश हजार कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है।

कार्तिके मासि देवेशि स्नपयेदुष्णदुग्धकैः।।४९।।
यक्षकर्दमकैर्वापि स्नपयेत् कार्तिके शिवे।
भ्रष्टद्रव्यं महादेवि गोधूमादिविकारजम्।।५०।।
क्षीरेण सहितं दद्याद् महादेव्यै प्रियङ्करम्।
नारिकेलं तथा रम्भां गुवाकमिक्षुदण्डकम्।।५१।।
जम्भीरं नागरङ्गं च दद्याद् देव्यै सुशोभनम्।
कदुष्णं परमान्नं च पिष्टकेन च संयुतम्।।५२।।

भ्रष्टमत्स्यादिकं तस्यै दापयेद् यत्नतः शिवे।
एवं कृत्वा नरः सद्यो जीवन्मुक्तो भविष्यति॥५३॥
न तस्य पापपुण्यादि जायते नात्र संशयः।

हे देवेशि! कार्तिक मास में कुछ गरम दूध अथवा यक्ष कर्दम[1] (कपूर, अगुरु, कस्तूरी तथा कक्कोल के मिश्रण अथवा कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी, कपूर तथा चन्दन के मिश्रण) द्वारा देवी शिवा को स्नान कराना चाहिए। गेहूँ आदि से निर्मित भुने हुए पदार्थ जो महादेवी के लिए प्रीतिकर हों उन्हें दूध सहित अर्पित करना चाहिए। नारियल, केला, सुपारी, गन्ना, बड़ा नींबू (चकोतरा) तथा नारङ्गी (संतरा) आदि सुन्दर फल प्रदान करना चाहिए। थोड़ा गरम परमान्न (भात अथवा खीर) सहित पिष्टक तथा भुनी हुई मछली आदि प्रयत्नपूर्वक देवी को निवेदित करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य शीघ्र ही जीवन्मुक्त प्रकृति वाला हो जाता है, फिर निःसन्देह उसे किसी भी, स्वयं के द्वारा किये गये कर्म से, पाप-पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है।

मार्गशीर्षे महादेवि मासश्रेष्ठे च सुन्दरीम्॥५४॥
स्नपयेद् उष्णतोयैश्च वस्त्रपूतैः सुगन्धिभिः।
कुङ्कुमादिभिरायुक्तैः पुष्पमाल्यमनोहरैः॥५५॥
हरिद्रासहितैश्चारग्वधबीजैः सशर्करैः।
स्नपयेत् परमेशानीं घृताक्तं चान्नमुत्तमम्॥५६॥
व्यञ्जनं च घृताक्तं च सगुडं शुक्तिकायुतम्।
वार्ताकीभ्रष्टद्रव्येण तोषयेत् परमेश्वरीम्॥५७॥
मूलकं परमं तस्यै दापयेद् यत्नतः शिवे।
नैवेद्यैर्विविधैर्देवि चणकादिविभूषितैः॥५८॥
कदलीसहितैर्देवि दद्यात् परमसुन्दरि।
सूक्ष्मवस्त्रं महादेव्यै खट्वां दद्यात् सुशोभनाम्॥५९॥
शय्यायुक्तां महेशानि दापयेत् सुरवन्दिते।
एवं क्रमेण यो देवि मार्गे मासि प्रदापयेत्॥६०॥
तस्य पुण्यफलं देवि शृणु हे नगनन्दिनि।
इह लोके सुखं भुक्त्वा महाराजत्वमाप्नुयात्॥६१॥
इति ते कथितं देवि सर्वसिद्धिप्रदायकम्।

---

[1] यक्ष कर्दम - कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलैर्यक्षकर्दमः - अमर०।
कुंकुमागुरुकस्तूरीकर्पूरं चन्दनं तथा।
महासुगन्धमित्युक्तं नामतो यक्षकर्दमः॥

हे महादेवि! इस श्रेष्ठ मास मार्गशीर्ष में वस्त्र से छने हुए शुद्ध (थोड़े) गरम जल से, जो कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों, पुष्प राशियों, हल्दी चूर्ण, आरग्वध के बीजों तथा शर्करा से युक्त हो, परमेश्वरी को स्नान कराना चाहिए। देवी को घृत से प्लुत श्रेष्ठ अन्नों से बने पकवान, गुड, सिरका (अम्लीय पदार्थ) सहित भुने हुए बैंगन तथा अन्य भी भुने हुए प्रिय सुस्वादु युक्त पदार्थों को प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए। परमेश्वरी को मूली, चने से बने विभिन्न खाद्य पदार्थ, केला आदि सहित अनेकों प्रकार के नैवेद्य प्रदान करना चाहिए। महादेवी को सुन्दर सूक्ष्म वस्त्र तथा शय्या (बिस्तर) सहित सुन्दर खाट प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार मार्गशीर्ष मास में जो मनुष्य परमेश्वरी को विविध प्रकार के पदार्थ समर्पित कर उन्हें सन्तुष्ट करता है, उसे प्राप्त होने वाले पुण्य-फलों को सुनो। वह इस लोक में विविध प्रकार के मनोवाञ्छित भोगों को भोगता हुआ (पुण्य की अतिशयता के कारण) इसी जन्म में अथवा अगले जन्म में महाराज पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार हे देवि! मैंने यह सर्वसिद्धि दायक मास-पूजन रूप कर्म (आचरण) का वर्णन किया, अब और आगे सुनो।

पौषे मासि महादेवीं स्नपयेदुक्तया दिशा॥६२॥
पूपयावकद्रव्यादि दापयेत् सुरमोहिनि।
दिवा रात्रौ महादेव्यै दापयेत् भक्तमुत्तमम्॥६३॥
सघृतं परमं हृद्यं ताम्बूलादियुतं प्रिये।
नैवेद्यं परमं दद्यात् सयत्नैः साधकोत्तमैः॥६४॥
माघे मासि महादेवि स्नपयेद् घृतपायसैः।
गन्धयुक्तैर्जलैश्चापि स्नपयित्वा परां शिवाम्॥६५॥
देवीसायुज्यमेवात्र प्राप्नुयाद् नात्र संशयः।
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं दद्याद् मनोरमम्॥६६॥
अन्नं पिष्टादिकं दद्याद् महादेव्यै प्रियङ्करम्।
एवं क्रमेण देवेशीं तोषयेद् बहुयत्नतः॥६७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमाप्नुयात्।
फाल्गुने मासि देवेशि स्नपयेत् परमेश्वरीम्॥६८॥
घृतेन पयसा वापि स्नपयेत् परमेश्वरीम्।
नैवेद्यं परमं दिव्यं सुस्वादु सुमनोहरम्॥६९॥

नानाद्रव्ययुतं भद्रे सर्वद्रव्यं सुशोभनम्।
दद्याद् देव्यै महेशानि सुखमाप्नोति साधकः।।७०।।
चैत्रे मासि महेशानि दद्याच्च घृतपायसम्।
दधि क्षीरं मधु द्रव्यं पायसं शर्करां तथा।।७१।।
दद्याद् देव्यै महेशानि परं द्रव्यं सुशोभनम्।
एवं क्रमेण देवेशि पूजयेद् यस्तु साधकः।।७२।।
स मोक्षभाग भवत्येव सत्यं सत्यं महेश्वरि।
इति ते कथितं दिव्यं सर्वपापप्रमोचनम्।।७३।।
प्रयोगं यः करोत्येवं स सुखी नात्र संशयः।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (प्रयोगान्तर-द्वादश-मासविधिनिरूपणं) षोडशः पटलः।।१६।।

हे देवि! पौष मास में भी महादेवी को पूर्वोक्त मार्गशीर्ष मासवत् स्नान कराना चाहिए। इसके पश्चात् देवी को पूप (पूड़ी मालपुआ आदि) तथा जौ से बने पदार्थ अर्पित करना चाहिए। दिन तथा रात्रि में महादेवी को घृत सहित परम मनोहर रुचिकर भात प्रदान करना चाहिए। भोजन के पश्चात् देवी को ताम्बूल निवेदित करना चाहिए। साधक को सयत्न उत्तम नैवेद्यों के प्रदान द्वारा परमेश्वरी को भली भाँति सन्तुष्ट करना चाहिए।

हे महादेवि! माघ मास में घृत युक्त खीर तथा सुगन्धित जल से शिवा को स्नान कराकर चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय आदि सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ, अन्न, पिष्टकादि जो जो महादेवी को रुचिकर हो, प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार अति परिश्रम पूर्वक देवी को सन्तोष प्रदान करने वाला मनुष्य इस लोक में सभी सुखों को भोगकर अन्त में देवी सायुज्य रूप मोक्ष प्राप्त करता है।

फाल्गुन मास में घी अथवा दूध (अथवा दोनों) से परमेश्वरी को स्नान कराकर सुन्दर, आकर्षक, पवित्र, शुद्ध तथा स्वादिष्ट नैवेद्य प्रदान करे। देवी के सेवा योग्य अनेकों प्रकार के पदार्थों को अर्पित करके मनुष्य सभी प्रकार के सुखों का भागी हो जाता है।

चैत्र मास में भी पूर्ववत् फाल्गुन मास की भाँति स्नान कराकर देवी को दधि, दूध, मधु, खीर, शकर आदि परम सुन्दर पदार्थ समर्पित करना चाहिए। हे देवि! इस प्रकार प्रतिमास क्रम सहित जो साधक देवी का पूजन (स्नानादि कराकर) करता है वह निश्चय ही मोक्ष का भागी होता है। हे महेश्वरि! मेरा यह कथन पूर्णतया सत्य है।

हे देवि! यह मैंने तुमसे सभी पापों से मुक्त करने वाले दिव्य प्रयोगों का वर्णन किया है। जो मनुष्य इनकी साधना करता है, वह निःसन्देह जीवन में सभी प्रकार के सुखों का उपभोग करता है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
प्रयोगान्तर द्वादश मास विधि निरूपण नामक
सोलहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

◆

।। सप्तदश: पटल:।।

(काली ध्यानादि पूजा-कुण्ड मेखला योनि निर्णय-अग्नि कार्यादि निरूपणम्)

।। सार्वज्ञ मन्त्र-प्रयोग:।।

श्रीभैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि सार्वज्ञकारणं परम्।
रात्रौ देवि वरारोहे प्रथमे प्रहरे गते।।१।।
मध्यरात्रौ विशेषेण सहस्रं यदि साधक:।
प्रजपेत् परया भक्त्या मन्त्रमेनं समाहित:।।२।।
योनिं पूर्वं पुनर्योनिं बीजयुग्मात्मकं मनुम्।
प्रजपेद् मध्यरात्रौ च मन्त्रपूतं जलं पिवेत्।।३।।
षणमासाभ्यन्तरं देवि सर्वज्ञत्वं समाप्नुयात्।
इति सत्यं महादेवि संशयो नास्ति कश्चन।।४।।
चन्द्रसूर्यौ यदि वृथा तदा निष्फलभाग् भवेत्।

हे देवि! अब मैं सर्वज्ञता प्राप्ति के कारण रूप मन्त्र-प्रयोग का वर्णन करता हूँ, सुनो! रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो जाने पर विशेष रूप से मध्य रात्रि में साधक पूर्ण श्रद्धा भक्ति सहित एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्र का एकहजार जप करे। योनि (ऐं) के पश्चात् पुन: योनि (ऐं) अर्थात् द्विबीजात्मक मन्त्र **'ऐं ऐं'** का जप करे। जप के पश्चात् इसी मन्त्र से जल को (एक सौ आठ बार) अभिमन्त्रित करके पान करे। छ: मास तक इस प्रयोग को करने से उसे सर्वज्ञता की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हे महादेवि! मेरा यह कथन सत्य है, इसमें किसी भी प्रकार से सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।यदि सृष्टि में चन्द्र-सूर्य व्यर्थ हो जायें अर्थात् वे प्रकाशहीन हो जायें तभी यह प्रयोग विफल हो सकता है। परन्तु चन्द्र-सूर्य का प्रकाशहीन होना असम्भव है, अत: इस प्रयोग का भी निष्फल होना असम्भव ही है।

।। कार्तिक मासे महाकाली-पूजनम्।।

रहस्यं शृणु चार्वङ्गि महाकाल्याः प्रियङ्करम्।।५।।
येन सिद्ध्यति देवेशि साधको वीतमत्सरः।
कार्तिके मासि देवेशि अमावास्या च या तिथिः।।६।।
तस्यां रात्रौ विशेषेण पूजयेत् कालिकां पराम्।
प्रथमे प्रहरे देव्याः स्नानाय परमेश्वरीम्।।७।।
समाराध्य महेशानि संकल्पस्तदनन्तरम्।
तत्समीपे (मण्डपे तु) पद्मं निर्माय सुन्दरि।।८।।
अथवा सर्वतोभद्रं निर्माय मण्डलं शुभम्।
भद्रासने महादेवीं संस्थाप्य परमेश्वरि।।९।।
स्नपयेद् दर्पणे शुभ्रे हरिद्रामलकेन च।
तैलेन परमेशानि गन्धयुक्तेन सुन्दरि।।१०।।
शीतलैः सुजलैर्देवीं कालिकां स्नपयेद् मुदा।
एवमुक्तप्रकारैश्च नीलावत् पूजयेत् सुधीः।।११।।
ध्यानं शृणु वरारोहे सारस्वतप्रदायकम्।
येन ध्यायेन देवेशि साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।१२।।
मेघवर्णां स्मितमुखीं मुक्तकेशीं दिगम्बराम्।
अट्टाट्टहासवदनां स्मेरा(रुण?नन)सरोरुहाम्।।१३।।
त्रिनेत्रां वरदां नित्यां महादेवोपरि स्थिताम्।
कर्णालम्बितबालाढ्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।१४।।
वामोर्ध्वे कर्त्रिकां दिव्यां तद(र्धे?धो) मुण्डधारिणीम्।
अभयं वरदं हस्ते विभ्रतीं दक्षिणेन च।।१५।।
त्रैलोक्यमोहिनीं देवीं मालां दिव्यां सुविभ्रतीम्।
एवं ध्यायेद् महाकालीं प्रसन्नवदनां शुभाम्।।१६।।

हे देवि! महाकाली को प्रसन्न करने वाले एक (और) रहस्यमय पूजन-प्रयोग को सुनो, जिसको करने से ईर्ष्यादि दोषों से रहित शुद्ध चित्तवाला साधक सिद्ध हो जाता है। कार्तिक मास की अमावस्या को (दीपावली के दिन) अर्धरात्रि में विशेष रूप से पराशक्ति (देवता) महाकाली की पूजा करनी चाहिए।

रात्रि के प्रथम प्रहर में देवी के स्नान-पूजनादि का सङ्कल्प करके मंडप (पूजागृह) के मध्य अष्टदल कमल अथवा सर्वतोभद्र मण्डल बना करके उस पर दर्पण के समान स्वच्छ श्रेष्ठ आसन (यज्ञीय काष्ठ से निर्मित

पाटा आदि) रखकर उस पर देवी–मूर्ति को स्थापित करके हल्दी, आँवला, सुगन्धित तेल तथा शुद्ध शीतल जलसे उन्हें स्नान कराना चाहिए तथा सम्पूर्ण पूजन क्रिया नील सरस्वती (तारिणी) के पूजन की भाँति ही करनी चाहिए। हे वरारोहे! अब पूजन से पूर्व किये जाने वाले देवी के ध्यान स्वरूप को सुनो।

ध्यान – भगवती के शरीर का वर्ण मेघ के समान (कृष्ण) है। मुख पर मुस्कान, शिर के केश खुले हुए तथा वे निरावरण हैं। संहार के समय उनके विकसित कमल के समान मुख पर अट्टहास (तीव्र स्वर जनित हास) परिलक्षित होता है। तीन नेत्रों से युक्त, स्वभक्तों के लिए वरप्रद भगवती (शव–रूप) महादेव के ऊपर खड़ी हैं। कानों में बड़ी–बड़ी बालाएं (कुण्डल) तथा गले में नरमुण्डों की माला सुशोभित है। बायीं ओर के ऊपर के हाथ में कर्त्री तथा नीचे के हाथ में नरमुण्ड, इसी प्रकार दाहिने हाथों में अभय तथा वर मुद्रा धारण की हुई हैं। त्रैलोक्य मोहिनी ये भगवती दिव्य मालायें भी धारण की हुई हैं। इस प्रकार प्रसन्न मुखवाली तथा मङ्गलरूपिणी (कारिणी) महाकाली का ध्यान करना चाहिए। सामान्यत: शान्ति कर्म में 'स्मितमुखी' तथा घोर कर्म के समय 'अट्टहास वदना' रूप से ध्यान करना चाहिए।

मण्डपं परमेशानि निर्माय विधिवत् शिवे।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं मुकुटाङ्कितमूर्द्धजाम्।।१७।।
परमे मण्डपे देवि पूजयेत् परमेश्वरीम्।
विविधै: पूजयेद् द्रव्यै: पुष्पधूपासनादिभि:।।१८।।
नैवेद्यं परमं दद्याद् नानाद्रव्योपशोभितम्।
पक्कान्नं परमं दिव्यं नानारससमन्वितम्।।१९।।
सन्देशं परमं हृद्यं सुस्वादु सुमनोहरम्।
अपर्याप्तं महेशानि नाभिमात्रप्रमाणत:।।२०।।
प्रहरे प्रहरे पूजां जपं चैव समाचरेत्।
नानाविधैश्च बलिभि: पूजयेत् कालिकां शिवाम्।।२१।।
होमयेत् परमेशानि पायसाज्येन सुन्दरीम्।
बिल्वपत्रैर्महेशानि होमयेच्च महेश्वरीम्।।२२।।
स्तवं पठेद् महेशानि (भ?भु)क्तिमुक्तिप्रदायकम्।
ततो विसर्जयेद् धीमान् महादेवीं मनोहराम्।।२३।।
इति ते कथितं दिव्यं कालिकाया: प्रपूजनम्।
य: करोति महादेवि स मोक्षं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्।।२४।।
इह लोके सुखं देवि भवेद् नीलाविधौ प्रिये।

भगवती के पूजन हेतु चौकोर, चारद्वारों से युक्त तथा द्वारों के ऊपर शीर्ष पर मुकुट (तथा तोरण) स्थित रूप मण्डप बनाकर उसी के अन्दर ही देवी की अर्चनादि करना चाहिए। पुष्प, धूप, आसनादि विभिन्न पदार्थों के द्वारा देवी का पूजन कर अनेकों प्रकार के दिव्य पदार्थ नैवेद्य के रूप में देवी को अर्पित करना चाहिए। विविध प्रकार के पक्वान्न, परम दिव्य, दर्शनीय, सुस्वादुयुक्त विभिन्न प्रकार के रसों से पूर्ण भोज्य पदार्थ, नाभिमात्र आकार वाले सन्देश आदि चित्ताकर्षक, रुचिकर मिष्ठान्न देवी को निवेदित करना चाहिए। इस प्रकार अनेकों प्रकार से बलि अर्पित करते हुए प्रत्येक प्रहर में पूजन तथा जप करना चाहिए। पूजनादि के पश्चात् घृत, खीर तथा विल्व पत्रों से हवन करना चाहिए। इसके बाद भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाले देवी को प्रीतिकर स्तोत्रों आदि का पाठ कर परम सुन्दरी भगवती महाकाली का विसर्जन करना चाहिए। यह सम्पूर्ण पूजन विधि नील-पूजन क्रमवत् करना चाहिए। हे देवि! जो साधक इस प्रकार देवी का पूजन करता है, वह इस जीवन में सभी सुखों का भोग तो करता ही है, मृत्यु के पश्चात् उसे मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है।

।। मण्डप-कुण्डादि निरूपणम्।।

अथ वक्ष्ये महादेवि कुण्डानां निर्णयं तथा।।२५।।
होमार्थं परमेशानि सरस्वत्याः शिवप्रिये।
होमस्यैव विधिंवक्ष्ये कुण्डेन सहितं (विभो?शिवे)।।२६।।
आदौ भूमिं परीक्षेत वास्तुलक्षणतत्परः।
शल्योद्धारं प्रकुर्वीत चाथवा परमेश्वरि।।२७।।
पौरुषेण प्रमाणेन खनेत् सुरगणार्चिते।
वास्तुपूर्वदिशि महादेवि कुण्डं प्रकल्पयेत्।।२८।।
ऐशान्यां वा महेशानि कुण्डं कुर्याद् यथाविधि।
सप्तहस्तं नव तथा पञ्च पञ्च विभेदतः।।२९।।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं निश्छिद्रं तु प्रकल्पयेत्।
संस्तरेद् दर्भकेणैव सूत्रेणैव प्रकल्पयेत्।।३०।।
एककुण्डमिते नान्यत् पञ्चहस्तगृहं भवेत्।
चतुरस्रे महेशानि सर्वकर्माणि साधयेत्।।३१।।
प्रमाणं शृणु देवेशि येन सिद्धो भवेद् मनुः।
कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्माङ्गुलिपर्वणः।।३२।।

मध्यस्य दीर्घमानेन मानाङ्गुलिनिरूपणम्।
अष्टभिश्च यवै(र्देवि) एकाङ्गुलमिति स्मृतम्॥३३॥

हे महादेवि! अब मैं कुण्डों के निर्माण आदि के विषय में शास्त्रीय निर्णयों (नियमों) को कहता हूँ। कुण्ड निर्माण विधि सहित (नील) सरस्वती के होम विधि का भी मैं निरूपण करूंगा। पहले मण्डप-कुण्डादि के निर्माण हेतु भूमि परीक्षण, वास्तु पूजन बलि आदि कर्म यथा विधि करना चाहिए। भूमि परीक्षण हेतु शल्योद्धार क्रिया में पुरुष की लम्बाई के बराबर भूमि खोदना चाहिए। हे देवि! वास्तु पुरुष की पूर्व दिशा में अथवा ईशान कोण में यथाविधि कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। मण्डप का आकार बारह हाथ अथवा चौदह हाथ परिमाण का चौकोर (वर्गाकार) तथा चार द्वारों से युक्त बनाना चाहिए। उसे चारों ओर से तथा ऊपर से दर्भ (कुश-काश) आदि से आच्छादित करना चाहिए। एक कुण्ड वाले मण्डप वाले का माप सामान्यतः पाँच हाथ रखना चाहिए। हे देवि! अब (अंगुलि) प्रमाण को सुनो, जिसके ज्ञान से मन्त्र सिद्ध होता है। कर्म-कर्ता के दक्षिण हाथ की मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व की लम्बाई के बराबर ही अंगुलि का प्रमाण जानना चाहिए। एक अंगुलि का मान आठ यवों के बराबर माना जाता है। (चौबीस अंगुलि का एक हाथ होता है। इस प्रकार कर्ता के हाथ-परिमाण के आधार पर ही मण्डप-कुण्ड आदि का निर्माण करना चाहिए।)

प्रत्येकसूत्रमास्फाल्य तन्मध्ये साधयेत् सुधीः।
भागत्रयेण तन्मध्ये विधाय चैव पार्वति॥३४॥
दिशोर्मत्स्ययुगं कुर्यात्(तस्यान्या?तन्मत्स्या)दनयोः क्वचित्।
दक्षिणोत्तरंग सूत्रं यथानालं निपातयेत्॥३५॥
तत्सूत्राग्रेषु संस्थाप्य कोणेषु मकरांल्लिखेत्।
कोणस्य मकरस्थानि दिक्षु सूत्राणि पातयेत्॥३६॥
एवं कृते चतुष्कोष्ठं चतुरस्रं च जायते।
एतत् कुण्डं महेशानि चतुरस्रं सुलक्षणम्॥३७॥
कुण्डविस्तारमानं हि तादृशं परमेश्वरि।
तन्मानं परमेशानि तादृग्रूपा च मेखला॥३८॥
पञ्चत्रिमेखलं कुर्यात् तन्त्रवित् साधकोत्तमः।
मेखलात्रितयं चैव महाहोमे महेश्वरि॥३९॥
वेदाग्निनयनोत्सेधविस्तारा हस्तमात्रके।
अन्तर्नवाङ्गुलोत्सेधा विस्तृता तु नवाङ्गुला॥४०॥

सर्वत्रैवंविधं क्षेत्रं कुण्डानामनुरूपतः।
एकाङ्गुल परित्यज्य कुण्डान्तर्मेखला भवेत्॥४१॥
एकहस्ते तु कुण्डे वै ह्यन्यत् कुण्डे विवर्जयेत्।
अर्द्धाङ्गुलप्रमाणे तु कुण्डं कुर्याच्च मन्त्रवित्॥४२॥

यहाँ चतुरस्र कुण्ड बनाने की विधि का वर्णन (अस्पष्ट तथा अपूर्ण) है। इसके निर्माण की स्पष्ट विधि इस प्रकार है। सर्वप्रथम एक हस्त (चौबीस अंगुलि) प्रमाण वाले चतुरस्र कुण्ड निर्माण के लिए भूमि पर पूर्व से पश्चिम की ओर सूत्र स्थापित कर चौबीस अंगुल से कुछ बड़ी रेखा खींच कर उसके मध्य में बिन्दु अंकित करें। फिर उस मध्य बिन्दु से पूर्व तथा पश्चिम की दिशा में रेखा पर बारह-बारह अंगुल की दूरी पर चिन्ह (बिन्दु) लगायें तथा दोनों ओर के बढ़े हुए शेष भाग को मिटा दें। फिर परकार (अथवा सूत्र) द्वारा बारह अंगुल से कुछ अधिक मान लेकर रेखा के पूर्व तथा पश्चिम बिन्दुओं को केन्द्र मानकर दो वृत्त बनायें। ये दोनों वृत्त जहाँ एक दूसरे को काटते हों वहाँ दो बिन्दुओं को अंकित कर इन दोनों को मिलाती हुई तथा प्रथम रेखा के मध्य विन्दु को स्पर्श करती हुई दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बी रेखा खींचे। इस रेखा पर भी मध्य बिन्दु से दक्षिण तथा उत्तर की ओर बारह-बारह अंगुल की दूरी पर बिन्दु अङ्कित करें। तत्पश्चात् पूर्व-पश्चिम रेखा के अग्र बिन्दुओं को केन्द्र मानकर बारह अंगुल मान से उसके दक्षिण तथा उत्तर की ओर चाप लगायें। इसी प्रकार दक्षिण-उत्तर रेखा के अग्र बिन्दुओं को केन्द्र मानकर उसी माप से पूर्व तथा पश्चिम की ओर दो चाप लगायें। इस प्रकार पूर्व के चारो चापों को पश्चात् के चारो चापों द्वारा काटने पर चारों कोणों पर चार बिन्दु प्राप्त होंगे। पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण इन बिन्दुओं को मिलाते हुए चार रेखायें खींचे। इस प्रकार चार कोष्ठों से युक्त चतुरस्र आकृति प्राप्त होगी।

इस चतुरस्र के मध्य कुण्ड के मान के अनुसार अर्थात् चौबीस अंगुल मान का गहरा चतुरस्र खात (खुदाई करके गड्ढा) बनायें। तत्पश्चात् इसके चारों ओर एक अंगुल भूमि (कण्ठ) छोड़कर तीन मेखला बनायें। इसमें प्रथम (बाह्य) मेखला भूमि से नव अंगुल ऊँची तथा चार अंगुल चौड़ी, दूसरी (मध्य) पाँच अंगुल ऊँची तथा तीन अंगुल चौड़ी तथा तीसरी मेखला दो अंगुल चौड़ी तथा दो अंगुल ऊँची होनी चाहिए। (प्रपञ्चसार के अनुसार क्रमशः बारह, आठ तथा चार अंगुल ऊँची तथा चार अंगुल विस्तार चौड़ाई वाली मेखलायें सभी सिद्धियों को देने वाली होती हैं।)

पञ्चमेखला पक्ष में इनका विस्तार छः, पाँच, चार, तीन तथा दो अंगुल मान के अनुसार रखना चाहिए। कुण्ड के मानानुसार ही मेखला का भी विस्तार (लम्बाई) होना चाहिए एवं कुण्डाकृति के अनुरूप ही मेखला भी होनी चाहिए।

एक हाथ से अधिक मान वाले कुण्डों में कण्ठ का मान क्रमशः आधा-आधा अंगुल बढ़ाते रहना चाहिए।

सात्त्विकी मेखला पूर्वा द्वितीया राजसी तथा।
तृतीया तामसी प्रोक्ता मेखलानां तु निर्णयः॥४३॥
इति ते कथितं दिव्यं मेखलानिर्णयं तथा।
अथ वक्ष्ये महेशानि योनिनिर्णयमुत्तमम्॥४४॥
प्रथमे योनिं कुण्डे तु मेखलान्तरपूर्वतः।
कुर्याद् गजोष्ठवर्णं तु कुण्डवित् सर्वलक्षणम्॥४५॥
योनिः षडङ्गुला प्रोक्ता चतुरङ्गुविस्तृता।
उन्नता व्यङ्गुला प्रोक्ता कुण्डे हस्तमिते बुधैः॥४६॥
नाभिं कुण्डोदरे कुर्यात् सुधीरष्टदलाब्जवत्।
तत्तकुण्डानरूपां वा नाभिं तत्र विचक्षणः॥४७॥
नेत्रवेदाङ्गुलोत्सेधविस्तारा नभिरत्र वै।
द्विहस्तादिषु कुण्डेषु योनिं संवर्धयेत् क्रमात्॥४८॥
एकैकाङ्गुलिमानेन तथा नाभिं च वर्धयेत्।
कुण्डस्थले बहिःस्थानं स्थलं विद्धि महेश्वरि॥४९॥
चतुरस्रस्थलारब्धं नालमध्ये सरन्ध्रकम्।
स्थूलमूला च सूक्ष्माग्रा उन्नतिः स्याद् मनोहरा॥५०॥
बहिःस्थले मेखलायाः स्थानमारभ्य कारयेत्।
योनिमध्ये बिलं कुर्यात् तद्वाह्ये ग्राहिसंज्ञकम्॥५१॥
योन्यग्रं वर्धयेद् विद्वान नाभिर्वृत्ताकृतिर्भवेत्।

कुण्ड की प्रथम मेखला (बाह्य) सात्विकी, द्वितीय राजसी तथा तृतीय तामसी कही जाती है। हे देवि! यह मैंने मेखला के विषय में शास्त्र निर्णय का वर्णन किया, अब योनि के विषय में शास्त्रीय मत सुनो। प्रथम मेखला से प्रारम्भ कर कुण्ड तक [कुण्ड में थोड़ी (लगभग एक अंगुल) प्रविष्ट हुई सी] योनि की लम्बाई (एक हाथ परिमाप वाले कुण्ड के लिए) बारह अंगुल, विस्तार (चौड़ाई, मूल में) आठ अंगुल तथा ऊँचाई (मेखला से) दो

अंगुल होनी चाहिए। (ग्रन्थ में कथित छः अंगुल लम्बी तथा चार अंगुल चौड़ी योनि एक मेखला वाले कुण्ड के लिए कहा गया है) योनि मूल से आगे की ओर क्रमशः संकुचित होती हुई अग्रभाग में एक अंगुल विस्तार की होनी चाहिए। इसकी आकृति हाथी के ओष्ठ (अथवा पीपल के पत्ते) की भाँति होनी चाहिए। योनि मूल से कुण्ड की ओर थोड़ी (एक अंगुल) झुकी हुई (कुछ ढलान युक्त) होनी चाहिए। इसके मूल में अर्धावृत्ताकार पार्श्वों में दो कुम्भाकृति बनानी चाहिए तथा योनि के ऊपर चारों ओर एक अंगुल चौड़ी तथा एक ही अंगुल ऊँची नेमि (घेरा) बनानी चाहिए। कुण्ड के मान वृद्धि के अनुसार एक-एक अंगुल योनिमान तथा दो-दो यव योन्याग्र बढ़ाते रहना चाहिए।

कुण्ड के मान तथा आकृति के अनुसार ही मध्य में नाभि बनाना चाहिए। एक हाथ मान वाले कुण्ड में दो अंगुल ऊँचाई तथा चार अंगुल विस्तार युक्त अष्ट दल कमल रूप नाभि बनाना चाहिए। (शारदा तिलक के अनुसार) नाभि क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके मध्य के भाग में कर्णिका तथा बाह्य के दोनों अंशों में अष्ट पत्र बनाना चाहिए। कुण्ड के विस्तार के अनुसार नाभि का भी दो-दो यव विस्तार करना चाहिए।

कुण्ड के बाहर का स्थान स्थल जानना चाहिए। कुण्ड से बाहर वाली प्रथम मेखला (जो दो अंगुल ऊँची तथा दो अंगुल चौड़ी है) पर मध्य में चतुरस्र वेदी बनाकर उसके मध्य में (योनि मध्य में) सरन्ध्र नाल (कमल नाल वत्) कुण्ड से योनि की ऊँचाई तक के माप बराबर स्थापित करना चाहिए। योनि के अग्रभाग में स्थित छिद्र से संलग्न नाल की स्थिति होती है।

॥ आहुति-मानेन कुण्ड-मानं सदोषे हानिश्च॥

हस्तमात्रे सहस्रं तु द्विहस्ते चायुतं स्मृतम्॥५२॥
चतुर्हस्ते लक्षमात्रं षट्करे दशलक्षकम्।
दशहस्ते महेशानि कोटिहोमं समाचरेत्॥५३॥
दशहस्तात् परं नास्ति तन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि।
खाताधिके भवेद् रोगी हीने धेनुधनक्षयः॥५४॥
वक्रकुण्डे तु संतापो बन्धुहा हीनमेखले।
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः॥५५॥
भार्याविनाशकं कुण्डं योन्याः शून्यं महेश्वरि।
अपत्यध्वंसनं कुण्डं यदि तत् कण्ठवर्जितम्॥५६॥

उच्चाटः स्फुटिते छिद्रसंकुले वा मृतिर्भवेत्।
तस्माद् हि परमेशानि ज्ञात्वा कुण्डं प्रसाधयेत्।।५७।।
देवीप्रीतिकरं कुण्डं सर्वदेवनमस्कृतम्।
मन्त्रसिद्धिकरं कुण्डं सर्वसारस्वतप्रदम्।।५८।।

एक सहस्र आहुति वाले हवन कार्य के लिए एक हाथ मान का कुण्ड, दश हजार आहुति के लिए दो हाथ मान का, एक लाख आहुतियों के लिए चार हाथ का, दश लाख आहुतियों के लिए छः हाथ मान का तथा एक करोड़ आहुतियों वाले होम कार्य हेतु दश हाथ मान का कुण्ड बनाना चाहिए। हे परमेश्वरि! तन्त्र में दश हाथ से अधिक मान का कुण्ड नहीं होता।

कुण्ड के निर्माण में दोष होने से कर्ता की हानि होती है। खात का मान अधिक होने पर कर्ता रोगी हो जाता है। मान कम होने पर कर्ता के गायों तथा धन की क्षति होती है। कुण्ड के वक्र होने पर सन्ताप (कष्ट-दुख), मेखला की माप न्यून (अथवा छिन्न मेखला) होने पर बन्धुनाश (अथवा कर्ता की मृत्यु), मेखला रहित कुण्ड होने पर अत्यधिक दुख, मेखला के अधिक (मान) होने पर धन नाश, योनि रहित कुण्ड होने पर पत्नी का विनाश, कण्ठ रहित कुण्ड होने पर सन्तान का विनाश, कुण्ड के टूटे-फूटे होने से उच्चाटन तथा दोष की अधिकता होने से कर्ता की मृत्यु हो जाती है। अतः कुण्ड निर्माण की सम्पूर्ण विधि को भली-भाँति जानकर निर्दोष कुण्ड का निर्माण करके ही हवन कार्य करना चाहिए। कुण्ड देवी को प्रसन्न करने वाला, सभी देवताओं के द्वारा नमस्कृत (पूज्य), सभी सिद्धियों को देने वाला तथा ज्ञानप्रद कहा गया है।

।। कुण्ड संस्काराः।।

अथ वक्ष्ये महेशानि ह्यग्निकार्यं सुशोभनम्।
यस्मिन् हुत्वा वरारोहे सर्वविद्यामहो भवेत्।।५९।।
मण्डपस्योत्तरे भागे कुण्डान् कृत्वा यथोदितान्।
नित्यनैमित्तिककाम्यान् संस्कारं तत्र चाचरेत्।।६०।।
अष्टादश स्युः संस्काराः कुण्डानां तन्त्रवर्त्मना।
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं चरेत्।।६१।।
तेनैव ताडनं दर्भैर्वर्मणाभ्युक्षणं मतम्।
अस्त्रेण खननोद्धारौ हृन्मन्त्रेण प्रपूरणम्।।६२।।
समीकरणमस्त्रेण सेचनं वर्मणा मतम्।
कुट्टनं हेतिमन्त्रेण वर्ममन्त्रेण मार्जनम्।।६३।।

विलेपनं कलारूपकल्पनं तदनन्तरम्।
त्रिसूत्रीकरणं पश्चाद् हृदयेनार्चनं भवेत्॥६४॥
अस्त्रेण वज्रीकरणं हृन्मन्त्रेण जलैः शुभैः।
योनिकुण्डानि देवेशि संस्कुर्यात् साधकोत्तमः॥६५॥

हे महेशानि! अब मैं सुन्दर 'अग्निकार्य' (कुण्ड संस्कार, अग्नि संस्कार, हवनादि) के सम्बन्ध में वर्णन करूँगा, क्योंकि उस अग्नि में हवन करने से साधक सभी विद्याओं (मन्त्र सिद्धियों) से सम्पन्न हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मों के लिए मण्डप के उत्तर भाग में शास्त्र निर्देशानुसार कुण्ड की रचना करके उसका विधिवत् संस्कार करना चाहिए। तन्त्र पद्धति के अनुसार कुण्ड के अट्ठारह संस्कार किये जाते हैं।

१. मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्ड को देखना **'वीक्षण'**। २. 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए **'प्रोक्षण'**। ३. 'फट्' का ही उच्चारण करते हुए दर्भों के द्वारा कुण्ड पर तीन बार प्रहार करना **'ताड़न'**। ४. 'हुं' इस कवच मन्त्र द्वारा **अभ्युक्षण**। ५. 'फट्' मन्त्र से कुण्ड के मध्य एक अंगुल मान से खोदना **'खनन'**। ६. इसी 'फट्' का उच्चारण कर अंगुष्ठ तथा अनामिका द्वारा कुण्ड से मिट्टी निकालना **'मृत्तिकोद्धरण'**। ७. 'नमः' इस हृन्मन्त्र से पुनः मिट्टी द्वारा खुदे भाग को पूरा करना **'पूरण'**। ८. 'फट्' मन्त्र बोलकर उसे बराबर करना **'समीकरण'**। ९. 'हुं' मन्त्र बोलकर जल द्वारा सिञ्चित करना **'सेचन'**। १०. काष्ठादि से अथवा हाथ से पीटकर उसे दृढ़ करना **'कुट्टन'**। ११. 'हुं' इस कवच मन्त्र से कुशमुष्टि द्वारा कुण्ड में मिट्टी का मार्जन करना **'मार्जन'**। १२. 'हुं' मन्त्र से ही गोबर-जल द्वारा कुण्ड को लीपना **'विलेपन'**। १३. 'हुं' मन्त्र का ही उच्चारण करते हुए कुण्ड के मध्य में सोम-सूर्य-अग्नि की कलाओं का चिन्तन (भावना) करना **'कलारूप कल्पन'**। १४. 'हुं' इस कवच मन्त्र का उच्चारण करते हुए त्रिसूत्रीकृत सूत्र द्वारा कुण्ड की प्रत्येक मेखला को वेष्टित करना (लपेटना-घेरना) **त्रिसूत्रीकरण**। १५. ॐ अमुककुण्डाय नमः इस मन्त्र से कुण्ड का पूजन करना **'अर्चन'**। इस अर्चन के पश्चात् 'ॐ अमुककुण्डनाभये नमः' तथा 'ॐ अमुककुण्डमेखलाभ्यो नमः' से नाभि तथा मेखलाओं का भी पूजन करना चाहिए। १६. 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करके कुण्ड के वज्रवत् दृढ़ होने की भावना करना **'वज्रीकरण'**। १७. 'नमः' मन्त्र से पूजन करना **'चतुष्पथीकरण'** तथा १८. अस्त्र मन्त्र 'फट्' से अभिमन्त्रित अग्रभाग अच्छिन्न

कुशों को कवच मन्त्र 'हुं' का उच्चारण करते हुए मेखलाओं पर बिछाना **'क्षपाटन'**। कुण्ड के ये अट्ठारह संस्कार कहे जाते हैं। 'नमः' मन्त्र बोलकर शुद्ध जल से योनि का संस्कार करना चाहिए।

।।कुण्ड मध्ये रेखाङ्कन-पीठार्चन-अग्न्युद्धरणादयः।।

तस्मिन् कुण्डे महेशानि रेखात्रयं समाचरेत्।
प्रागग्रा उदगग्रा वा तिस्रो रेखा लिखेत् ततः।।६६।।
प्रागग्राणां स्मृता देवा मुकुन्देशपुरन्दराः।
रेखाणामुदगग्राणां ब्रह्मवैवस्वतेन्दवः।।६७।।
अथवा त्रिकोणवृत्तं चतुरस्रं लिखेत् ततः।
तत्र वह्नेर्योगपीठमर्चयेत् प्राणवल्लभे।।६८।।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च अम्बिका शक्तयः क्रमात्।
ततो देवि महाभागे ताराकुण्डं प्रपूजयेत्।।६९।।
तन्मध्ये परमेशानीं नीलां वागीश्वरीं यजेत्।
ततश्च श्रोत्रियो वह्निं तद्बीजेनैव चोद्धरेत्।।७०।।
हूँफट्कारेण देवेशि क्रव्यादेभ्यस्ततः परम्।
वह्निजायावधिर्मन्त्रं वह्नेः सं(त्य?ते)जनं जपेत्।।७१।।
तमग्निं शोधयेत् तत्र धेनुमुद्रावगुण्ठनम्।
वारुणेनैव मन्त्रेण अमृतीकरणं मतम्।।७२।।
कराभ्यां च समुद्घृत्य भ्रामयेद् उपरि त्रिधा।
शिवस्य बीजबुद्धया तु तद्योनौ परमेश्वरि।।७३।।
ह्रींबीजमादौ संजप्य वह्निमूर्तिं च ङेयुताम्।
इत्यभ्यर्च्य महादेवि इडयाकृष्य सुन्दरि।।७४।।
ततः कुम्भकयोगेन कूर्चबीजं समुच्चरन्।
वह्नेश्चैतन्यापादान्ते ङेयुते परमेश्वरि।।७५।।
ततस्तु ज्वालयेद् वह्निं चिन्मन्त्रेण महेश्वरि।
चिन्मन्त्रं परमेशानि शृणुष्वैकमना: प्रिये।।७६।।

"चित् पिङ्गल हन् हन् दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा।"

कुण्ड संस्कार के पश्चात् कुण्ड के मध्य में दर्भ के मूल से अथवा स्रुव के मूल से पश्चिम से पूर्व की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर तीन-तीन रेखायें खींचे। प्रागग्रा (पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर खींची गई) तीनों रेखायें दक्षिण से प्रारम्भ कर उत्तर की ओर बढ़ते हुए खींचनी चाहिए। इसी प्रकार उदगग्रा रेखाएं पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते क्रम से खींचनी चाहिए।

प्रागग्रा (पूर्वाग्रा) तीनों रेखायें मुकुन्द, ईश्वर तथा पुरन्दर स्वरूप एवं उदगग्रा (उत्तराग्रा) तीनों रेखायें ब्रह्मा, वैवश्वत तथा इन्दु रूप मानी जाती है। इन रेखाओं पर गन्धपुष्पादि द्वारा **'ॐ मुकुन्दाय नमः'** इस प्रकार से उनके नामों द्वारा पूजन करना चाहिए। अथवा इन रेखाओं का अङ्कन न करके त्रिकोण के मध्य वृत्त तथा वृत्त के मध्य षटकोण लिखे (शा०ति०) अथवा उक्त छः रेखाओं के स्थान पर षट्कोण का अङ्कन करे (मेरु तन्त्र)।

तत्पश्चात् अग्नि-योग-पीठ के देवताओं तथा अग्नि-पीठ-शक्तियों का पूजन करे। इसके बाद क्रमशः वामा, ज्येष्ठा, रौद्री तथा अम्बिका शक्तियों का पूजन पूर्वादि दक्षिणाक्रम से मेखलाओं पर करके **'ॐ तारा कुण्डाय नमः'** से कुण्ड का पूजन कर उसके मध्य में नील सरस्वती का पूजन (**ॐ नील सरस्वत्यै नमः**) करें। शाक्त साधक को 'ॐ' के स्थान पर **'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं'** अथवा **'ऐं ह्रीं श्रीं'** का प्रयोग करना चाहिए।

इसके उपरान्त श्रोत्रिय ब्राह्मण अग्नि बीज 'रं' से अग्नि का उद्धार अर्थात् अग्नि उत्पन्न करे (अथवा किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के गृह से स्वर्णादि के पात्र में अग्नि रखकर तथा उसे दूसरे पात्र से ढककर लायें)। तत्पश्चात् उस अग्नि को 'फट्' मन्त्र से स्वदक्षिण में रखकर 'हुं' से आच्छादित कर उसमें से क्रव्याद अंश लेकर 'हुं फट् (स्वाहा)' बोलते हुए नैर्ऋत्य दिशा में फेंक दें।

[इसके पश्चात् शेष अग्नि को देवांश मान (भावना) कर मूल मन्त्र से सामने स्थापित करके वीक्षणादि चार संस्कार करके उदराग्नि, वैन्दवाग्नि (भूमध्यस्थ अग्नि) तथा भौमाग्नि तीनों में ऐक्य की भावना करके **'रं वह्नि चैतन्यं कल्पयामि'** अथवा **'हं रं चैतन्य ते नमः'** मन्त्र से पावक चैतन्य को जोड़कर **'ॐ'** से एक सौ आठ बार अथवा दश बार अभिमन्त्रित करके]
'वं' वारुण बीज तथा **'धेनुमुद्रा'** से अमृतीकरण करके, **'फट्'** से संरक्षण तथा **'हुं'** से अवगुण्ठन करके तत्पश्चात् **'रं (अथवा ह्रीं) वह्नि मूर्तये नमः'** से गन्धपुष्पादि द्वारा अभ्यर्चना कर अग्निपात्र को दोनों हाथों से उठाकर, कुण्ड के ऊपर प्रदक्षिणावत् तीन बार घुमाकर, घुटनों को भूमि से स्पर्श करते हुए रखकर प्रणव (**ॐ**) का उच्चारण पूर्वक अपने सम्मुख, अग्नि की शिव बीज रूप से भावना करके देवी की योनि (कुण्ड योनि) में छोड़ दे। इसके पश्चात् (**ह्रीं वागीश्वरी वागीश्वराभ्यां आचमनीयं नमः**' से आचमन देकर **'वह्नि रूप देवता'** को देवी के गर्भ में धारित हुआ ध्यान कर गर्भ रक्षार्थ दर्भ का कङ्कण स्थापित कर) वाम नासिका से श्वास खींचकर कुम्भक योग द्वारा 'हूं' के

उच्चारण सहित **'वह्नेश्चैतन्याय नमः'** बोलकर निम्न मन्त्र से ज्वालिनी मुद्रा द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करें-

"चित्त पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा।"

॥ वह्नि मन्त्रस्य न्यासादि निरूपणम्॥

वह्न्यङ्गे परमेशानि न्यासं कुर्याद् वरानने।
सहस्रार्चिषे हृदयाय न्योऽन्तं न्यासमुत्तमम्॥७७॥
स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहान्तोऽयं मनुः स्मृतः।
उत्तिष्ठ पुरुषायेति शिखायै वषडित्यपि॥७८॥
धूमव्यापिने कवचाय हुमित्येव सुन्दरि।
सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषडिति प्रिये॥७९॥
धनुर्धराय अस्त्राय फडित्यङ्गानि संन्यसेत्।
आवाहनस्य मन्त्रं वै शृणु हे नगनन्दिनि॥८०॥
प्रणवं पूर्णमुद्धृत्य वैश्वानर ततः परम्।
जातवेद लोहिताक्ष इहावह ततः परम्॥८१॥
सर्वकर्माणि साधय वह्निजायावधिर्मनुः।

श्लोक संख्या '७७' से यह स्पष्ट नहीं होता कि दिये गये (अग्नि) मन्त्रों द्वारा साधक स्वशरीर में न्यास करेगा अथवा अग्नि में षडङ्ग न्यास करेगा। परन्तु बिना अग्नि का आवाहन, ध्यान पूजनादि किये षडङ्ग न्यास (अथवा पूजन) किस प्रकार से उचित होगा। अतः इसके दोनों भावों (पहले साधक स्वशरीर में न्यास करे फिर अग्नि के आवाहन पूजनादि के पश्चात् इन्हीं मन्त्रों से अग्नि का भी षडङ्ग न्यास करे) को ग्रहण करके अर्थ दिया जा रहा है। इससे पूर्व भी कुछ क्रियायें साधक द्वारा की जानी चाहिए, उसे भी नीचे स्पष्ट किया गया है।

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करके हाथ जोड़कर बोले-

ॐ अग्नि प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥

इस मन्त्र से वह्नि (अग्नि) का उपस्थापन करना चाहिए।

इसके बाद प्रादेश मात्र लम्बी समिधा के अग्र तथा मूल को घृत में डुबोकर, मौन होकर उसे अग्नि में हवन करके पूजन विधि के अनुसार ही गणेशादिवन्दन, दिग्बन्धन, भूत-शुद्धि, प्राणायाम, मातृका न्यास, मूल मन्त्र न्यासादि करके स्वशरीर में अग्नि की जिह्वाओं का न्यास करे। सात्विक जिह्वाओं का न्यास इस प्रकार होगा -

स्प्रूँ हिरण्यायै नमः (लिङ्गे)। **ष्प्रूं गगनायै नमः** (पायौ)। **श्प्रूँ रक्तायै नमः** (मूर्ध्नि)। **व्प्रूँ कृष्णायै नमः** (वक्त्रे)। **ल्प्रूँ सुप्रभायै नमः** (घ्राणे)। **प्रूँ बहुरूपायै नमः** (नेत्रे)। **य्प्रूँ अतिरिक्तायै नमः** (सर्वाङ्गे)। सात्विक कर्मों में इन सात्विक जिह्वाओं का न्यास किया जाता है।

काम्य कर्मों में – **पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी** तथा **करालिका** नाम वाली राजस जिह्वाओं का पूर्वोक्त **'स्प्रूँ'** आदि बीज क्रमानुसार न्यास करना चाहिए।

क्रूर कर्मों में – **विश्वमूर्तिः, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, लोहिता, कराला** तथा **काली** नाम वाली तामसी जिह्वाओं का न्यास करना चाहिए।

इसके पश्चात् पूर्वोक्त शरीराङ्गो में पूर्वोक्त बीज क्रमानुसार –

'अमर्त्त्य, पितृ, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच तथा **राक्षस'** इन सात जिह्वा–धिष्ठातृ देवताओं का भी न्यास करना चाहिए। यथा – **'स्प्रूँ अमर्त्त्याय नमः'** इत्यादि।

तत्पश्चात् अग्निमन्त्र का विनियोग न्यासादि करें।

विनियोग – **ॐ अस्य अग्निमन्त्रस्य भृगु ऋषिः, गायत्री छन्दः, अग्निर्देवता, 'रं' बीजं, 'स्वाहा' शक्तिः, अग्नियजने विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यास – **भृगवे ऋषये नमः** – शिरसि। **गायत्री छन्दसे नमः** – मुखे। **अग्नये देवतायै नमः** – हृदि। **रं बीजाय नमः** – गुह्ये। **स्वाहा शक्त्यै नमः** – पादयोः। **अग्नियजने विनियोगाय नमः** – (अञ्जलौ – बद्धाञ्जलिः)

कर षडङ्ग न्यास

ॐ सहस्रार्चिषे	**अंगुष्ठाभ्यां नमः।**	**हृदयाय नमः।**
ॐ स्वस्ति पूर्णाय	**तर्जनीभ्यां स्वाहा।**	**शिरसे स्वाहा।**
ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय	**मध्यमाभ्यां वषट्।**	**शिखायै वषट्।**
ॐ धूम्रव्यापिने	**अनामिकाभ्यां हुं।**	**कवचाय हुम्।**
ॐ सप्त जिह्वाय	**कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।**	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
ॐ धनुर्धराय	**करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।**	**अस्त्राय फट्।**

मूर्ति न्यास – **ॐ अग्नये जातवेदसे नमः** – मूर्ध्नि। **ॐ अग्नये सप्त जिह्वाय नमः** – दक्षांसे। **ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः** – दक्षपार्श्वे। **ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः** – दक्ष करौ। **ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः** – लिङ्गे। **ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः** – वाम करौ। **ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः** – वाम पार्श्वे। **ॐ अग्नये देवमुखाय नमः** – वामांशे।

तपश्चात् स्वदेह में अग्निपीठ का न्यास करे।

हृदय में - **ॐ आधार शक्तये नमः, ॐ मूल प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ वराहाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीर समुद्राय नमः, ॐ श्वेत द्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ मणिवेदिकायै नमः** तथा **ॐ रत्नसिंहासनाय नमः।**

पुनः **ॐ धर्माय नमः** (दक्ष स्कन्धे)। **ॐ ज्ञानाय नमः** (वामस्कन्धे)। **ॐ वैराग्याय नमः** (वामोरौ)। **ॐ ऐश्वर्याय नमः** (दक्षोरौ)। **ॐ अधर्माय नमः** (मुखे)। **ॐ अज्ञानाय नमः** (वाम पार्श्वे)। **ॐ अवैराग्याय नमः** (नाभौ)। **ॐ अनैश्वर्याय नमः** (दक्षिण पार्श्वे)। तदुपरान्त पुनः हृदय में -

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ सर्वतत्वात्मक पद्माय नमः, ॐ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नमः, ॐ विकारमय केशरेभ्यो नमः, ॐ पञ्चाशद्वर्णबीजाद्य कर्णिकायै नमः, ॐ अं सूर्य मण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः, ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः तथा **ॐ मं (रं) वहि्नमण्डलाय दश कलात्मने नमः।**

इसके बाद हृत्कमल के पूर्वादि केशरों में पीठ शक्तियों का न्यास करें।

ॐ पीतायै नमः इसी प्रकार **श्वेतायै, अरुणायै, कृष्णायै, धूम्रायै, तीव्रायै, स्फुलिङ्गिन्यै, रुचिरायै** तथा **ज्वालिन्यै** (मध्य में)।

तत्पश्चात् **'रं वह्नेर्योगपीठाय नमः'** से हृदय में ही पीठ न्यास करके अग्नि देवता का ध्यान करे। ध्यान के लिए मन्त्र आगे कहे जायेंगे।

ध्यान के पश्चात् स्वयं की अग्नि देवता रूप में भावना करके स्वयं का (नैवेद्य रहित) मानसोपचार पूजन, मेखलाओं पर कुशों का परिस्तरण, मेखलाओं का पूजन, कुण्ड में अग्नि को आसन प्रदान, कुण्ड के मध्य में चतुर्द्वार युक्त तीन चतुरस्रों (भूपुरों) के मध्य अष्ट-दल-पद्म की भावना, पीठोक्त देवताओं तथा शक्तियों का पूजन आदि क्रियायें करके-

'रं वह्नेर्मूर्ति कल्पयामि नमः' मन्त्र से पीठ पर (कुण्ड के मध्य पद्म पर) अग्नि मूर्ति की कल्पना करके पुनः अग्नि का ध्यान करे। तत्पश्चात्-

''ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा, भवन्नग्ने इहागच्छागच्छ - ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा'' इस मन्त्र को बोलते हुए कुण्ड के मध्य में पीठ पर अग्नि का आवाहन करके **'रं आवाहितो भव'**, **'रं संस्थापितो भव'** इत्यादि मन्त्र रूप से तत्तद् मुद्राओं का प्रदर्शन करते हुए अग्नि का

आवाहन, संस्थापन, सन्निरोधन, सन्निधापन, अवगुण्ठन आदि करके फिर अग्नि की प्राण-प्रतिष्ठा कर **'ॐ वैश्वानर०'** इत्यादि मन्त्र से उसका षोडशोपचार पूजन करें। इसके बाद **'ॐ वैश्वानर....स्वाहा श्री पादुकां पूजयामि नमः'** बोलकर तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करें।

।। अग्नि-देवतायाः ध्यानम्।।

इत्यनेन च सम्पूज्य ध्यायेद् वह्नि समाहितः।।८२।।
ध्यानं शृणु महेशानि ध्यानात् सार्वज्ञ कारकम्।
बन्धूकपुष्पसङ्काशं सुतप्तकनकप्रभम्।।८३।।
पद्मस्थं महाबाहुं वदनद्वयशोभितम्।
सप्तछन्दोमयं देवं वसतित्रय विग्रहम्।।८४।।
त्रिधा ज्ञात्वा त्रिपादाब्जं हव्यकव्यविवाहकम्।
ब्रह्माध्वर्यूद्गातृहोतृ-चतुःशृङ्गविराजितम् ।।८५।।
पञ्चरात्रं पाशुपतं कापिलं च महामतम्।
बौद्धं वैदिकमित्येतत् षट्पिङ्गललोचनम्।।८६।।
वेदार्थ च चतुःश्रोतं श्रौतशास्त्रमयध्वनिम्।
सपाटलजटाबद्ध - मौलिकोटीरभास्वरम्।।८७।।
हेमालङ्कारसंयुक्तं हेमकुण्डलमण्डितम्।
रक्ताम्भोरुहमध्यस्थं स्वस्तिकासनसंस्थितम्।।८८।।
पृष्ठदेशसमालम्बि - तार्तीयचरणाम्बुजम्।
[शक्तिं वज्रं स्रुक्स्रुवं च चतुर्भिर्दक्षबाहुभिः।]
तोमरं तालवृत्तं च सौवर्णघृतपात्रकम्।।८९।।
वामैस्त्रिभिर्बाहुभिश्च दधानं रक्तवाससम्।
महाशब्दायमानं तु एधमानं स्वतेजसा।।९०।।
[हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा दक्षानने स्थिता।
सुप्रभा चातिरिक्ता च बहुरूपा च जिह्विका।।
इमा रसज्ञास्तद्वामवदने नित्यमास्थिताः।]
एताभिः सप्तजिह्वाभिरुपेतं पाटिताननम्।
एवं ध्यायेद् महावह्निं चतुर्वर्गफलप्रदम्।।९१।।

हे महेशानि! इस प्रकार पूजन करके अग्नि का ध्यान करना चाहिए। अग्नि का यह ध्यान सर्वज्ञता प्रदान करने वाला है। इस ध्यान स्वरूप को (मैं कहता हूँ) सावधान होकर सुनो।

अग्निदेवता के शरीर का वर्ण बन्धूक पुष्प तथा अत्यधिक तप्त किये हुए स्वर्ण के समान है। विशाल भुजाओं तथा दो मुख वाले अग्नि देव कमल पर स्थित हैं। इनका शरीर (अथवा हाथ) सप्त छन्दमय है। इनके तीन पैर हैं। ये अग्निदेव तीन प्रकार के शरीर धारण करके रहते हैं। जिनके नाम हैं- आहवनीय अग्नि, दक्षिणाग्नि तथा गार्हपत्याग्नि। हव्य, कव्य तथा वैवाहिक कर्म में क्रमशः इनका विनियोग किया जाता है। यज्ञ कर्म में सहायक रूप ब्रह्मा, अध्वर्य, उद्गाता तथा होता ही इन अग्नि देव के चार श्रृङ्ग (सींग) हैं। पञ्चरात्र, पाशुपत, कपिलमत (सांख्य मत), महामत (शाक्तमत-कौल मत), बौद्ध मत तथा वैदिक मत ही इनके पिङ्गल (भूरे अथवा पीत) वर्ण वाले छः नेत्र हैं। वेदार्थ (चारों वेद के अर्थ) ही इनके चतुष्कर्ण (चार कान) हैं। श्रुत्यनुकूल शास्त्र ही इनकी ध्वनि है। शिर पर बंधी हुई लाल रंग की जटायें मुकुट की भाँति शोभायमान (प्रकाशमान) हैं। शरीर पर स्वर्णरचित आभूषण तथा कानों में स्वर्ण कुण्डल धारण किये हुए हैं। ये लाल कमल के मध्य स्थित स्वस्तिका कार आसन पर विराजमान हैं। इनका तृतीय चरण कमल पृष्ठ भाग पर स्थित है। ये अपने ही दिव्य तेज से प्रज्वलित ईधन के समान प्रतीत हो रहे हैं तथा निरन्तर ध्वनि कर रहे हैं। सप्तभुजाधारी इन अग्निदेव के दाहिने चार हाथों में शक्ति, वज्र, स्रुक तथा स्रुवा तथा बायी ओर के तीन हाथों में तोमर (भाला), तालवृन्त (ताड़ का पंखा) तथा स्वर्ण रचित घृत पात्र गृहीत है तथा ये लाल वस्त्र धारण किए हुए हैं। इनके दाहिने मुख में हिरण्या, कनका (गगना), रक्ता तथा कृष्णा नाम वाली जिह्वायें तथा वाम मुख में सुप्रभा, अतिरिक्ता एवं बहुरूपा नाम वाली जिह्वाएं स्थित है। इन सात जिह्वाओं से व्याप्त इनका लाल वर्ण वाला दोनों मुख खुला हुआ सा रहता है। इस प्रकार चारों पुरुषार्थों को देने वाले महान अग्नि देव का ध्यान करना चाहिए।

अग्नि का पूजन करने के पश्चात् षडङ्ग न्यास (पूजन) करें। यथा-

ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः - (आग्नेये)। **ॐ स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा** - (ईशाने)। **ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्** - (नैर्ऋत्यै)। **ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं** - (वायव्ये)। **ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्** - (मध्ये)। **ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्** - (चतुर्दिक्षु)।

॥ अग्नेः सप्तजिह्वाष्टमातृकादि पूजनम्॥

सप्त जिह्वाः प्रपूज्याथ पूर्वादिदिक्षु सुन्दरि।
ब्राह्म्याद्याः पूजयेद् देवि स्वकर्मसिद्धये प्रिये॥९२॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चैव सुन्दरि॥९३॥
महालक्ष्मीर्महेशानि पूजयेत् परमेश्वरि।
बहिर्देशे पुनर्लक्ष्मीस्तथा चैव सरस्वती॥९४॥
रति प्रीतिश्च कीर्तिश्च शान्तिः पुष्टिश्च सुन्दरि।
तुष्टिश्चैव महेशानि बहिर्देशे प्रपूजयेत॥९५॥
मेखलासु महेशानि ब्रह्माणं पूजयेत सुधीः।
मेखलासु च सर्वासु वेष्टयेद् दर्भसंकुलैः॥९६॥

हे देवि! सुन्दरि! अग्नि का षडङ्ग पूजन करने के पश्चात् उसकी सप्त जिह्वाओं का यथाविधि पूजन करना चाहिए। (तदुपरान्त पूर्वोक्त अग्नि की अष्ट मूर्तियों का पूजन करना चाहिए।) इसके बाद स्वकार्य सिद्धि के लिए पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी नाम वाली अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए। तदुपरान्त कुण्ड के बाहर लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि संज्ञका शक्तियों का पूजन करना चाहिए। (तत्पश्चात् मेखला पर बिछे कुशों पर पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि देवताओं तथा उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।) इसके पश्चात् सभी मेखलाओं पर (त्रिमेखलात्मक कुण्ड में मध्य मेखला पर ही कुशों द्वारा परिस्तरण का विधान उपलब्ध होता है) कुशों द्वारा परिस्तरण करना चाहिए। मेखला के दक्षिणोत्तर भाग पर पूर्वाग्र तथा पूर्व-पश्चिम भाग पर (उत्तराग्र) कुश बिछाना चाहिए तथा कुश का मूल (जड़) भाग अग्रभाग से आच्छादित रखना चाहिए। (इसके पश्चात् पलाश आदि वृक्ष की हस्तमात्र मान की परिधियों को कुशों सहित, पूर्व दिशा को छोड़कर दक्षिण-उत्तर तथा पश्चिम दिशा में मेखलाओं पर स्थापित करना चाहिए।) इसके पश्चात् प्रदक्षिणावत् -

ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ रुद्राय नमः। ॐ ज्येष्ठायै नमः।

से उन पर पूजन करना चाहिए।

[इसके बाद सभी मेखलाओं पर पूर्वादि क्रम से - **ॐ वामायै नमः। ॐ ज्येष्ठायै नमः। ॐ रौद्र्यै नमः। ॐ अम्बिकायै नमः।** से पूजन करना चाहिए। कुशों का परिस्तरण मेखलाओं का पूजनादि अग्नि के आवाहन से पूर्व ही कर लिये जाते हैं।]

॥ स्रुक-स्रुवाज्याग्न्यादि संस्कारम्॥

त्रिपंक्त्याचरितं कुण्डं ततो व्याहृतिभिर्हुनेत्।
त्रिः प्रताप्य महेशानि स्रुवं च प्रोक्षयेज्जलैः॥९७॥

वामदक्षिणहस्ताभ्यां पुनः प्रताप्य सुन्दरि।
दक्षिणे परमेशानि स्थापयेच्च स्रुवसुचौ॥९८॥
अस्त्रमन्त्रेण देवेशि आज्यपात्रस्य प्रोक्षणम्।
ततः पवित्रं तस्मिन् वै क्षिप्त्वा वह्नौ च निक्षिपेत्॥९९॥
स्रुवेण परमेशानि हृदन्तेन महेश्वरि।
तत्पात्रादाज्यमानीय हुनेद्वह्नौ महेश्वरि॥१००॥
अग्नये च महेशानि सोमाय च ततः परम्।
अग्नीषोमपदौ ङेन्तौ वह्निजायावधिः प्रिये॥१०१॥
वामदक्षिणमध्यात् तु गृहणीयाद् आज्यमुत्तमम्।
अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा हुनेत् सुरगणार्चिते॥१०२॥
मायाबीजं महेशानि हृदन्तेन महेश्वरि।
गर्भाधानादिकं कर्म कल्पयामि महेश्वरि॥१०३॥
सप्तसप्ताहुतीर्दद्यादन्येषां परमेश्वरि।
विवाहान्तं कर्मगणं प्रोच्य संस्कारमाचरेत्॥१०४॥

इसके पश्चात् साधक को पात्रासादन करना चाहिए। इसके लिए अपने वाम भाग में पूर्वाग्र दर्भ बिछाकर उस पर 'फट्' से प्रक्षालित स्रुक-स्रुव, प्रोक्षणी, प्रणीता आज्यस्थाली, चरुस्थाली आदि पात्रों को अधोमुख रखना चाहिए। तत्पश्चात् पवित्री द्वारा इनको सीधा कर, प्रक्षालित करके पूर्व स्थापित सामान्य अर्घ्य जल से प्रोक्षण करना चाहिए।

तत्पश्चात् 'नमः' मन्त्र से प्रोक्षणी पात्र में जल भरकर उसे आधार पर रखकर आधार, पात्र तथा जल में क्रमशः अग्नि-सूर्य-चन्द्र कलाओं का पूजन, जल में तीर्थों का आवाहन, संरक्षण, अवगुण्ठन, गन्धपुष्पादि निःक्षेपण, प्रणव से अभिमन्त्रण, अमृतीकरण आदि करके प्रणीतापात्र में भी शुद्ध जल भरकर उसमें गन्धपुष्पादि निःक्षेप कर उसमें से थोड़ा जल प्रोक्षणीपात्र में डालकर उस जल से मूल मन्त्र तथा 'नमः' द्वारा याग-द्रव्यों का प्रोक्षण करना चाहिए। इन सब क्रियाओं के सम्यक् ज्ञान के लिए अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए।

[यहाँ व्याहृतियों द्वारा हवन की बात कही गयी है। बिना स्रुक-स्रुवा, आज्य तथा अग्नि का संस्कार किये हवन करना विधि के विपरीत है। मूल ग्रन्थ में इसी प्रकार अनेकों क्रियायें क्रम बद्धता से रहित, अपूर्ण, अशुद्ध तथा अस्पष्ट वर्णित है। जहाँ तक सम्भव हो सका है ग्रन्थ में कथित क्रियाओं-प्रयोगों, मन्त्रों आदि को शुद्ध तथा स्पष्ट लिखने का प्रयत्न किया गया है।]

अब सबसे पहले स्रुक-स्रुव का संस्कार करे। दोनों हाथों में स्रुक तथा स्रुव को ऊर्ध्व मुख लेकर फिर उसे अधोमुख करके अग्नि में तीन बार तपायें। तदुपरान्त दोनों को बायें हाथ में लेकर, दाहिने हाथ में दर्भ लेकर, दर्भ के अग्रभाग, मूलभाग तथा मध्य भाग द्वारा क्रमशः स्रुक-स्रुव के अग्र, मूल तथा मध्य भाग का शोधन करे। इसके पश्चात् सामान्य-अर्घ्य जल तथा प्रोक्षणी पात्र के जल से स्रुक-स्रुव प्रोक्षण कर पुनः अग्नि में तप्त कर उन्हें अपने दाहिनी ओर बिछे हुए कुशों पर स्थापित कर दें तथा शोधनार्थ गृहीत कुशों को अग्नि में डाल दें।

इसके बाद आज्य संस्कार करें। **'फट्'** मन्त्र से आज्यस्थाली का प्रोक्षण कर उसमें आज्य (पिघला हुआ घृत) लेकर **'मूलमन्त्र'** से **'वीक्षण'**, **'अस्त्राय फट्'** से प्रोक्षण, इसी मन्त्र से दर्भों द्वारा 'संताड़न' तथा **'हुं'** से अर्घ्य जल से 'अभ्युक्षण' इन चारों संस्कारों को करके कुण्ड से कुछ अङ्गारों को निकालकर उन्हें वायव्य कोण में रखकर उसके ऊपर **'नमः'** मन्त्र से आज्य स्थाली रखकर 'तापन' करे तत्पश्चात् दो दर्भ लेकर उसे जलाकर (प्रज्वलित) कर) आज्य में डालकर तथा जलने से बचे हुए शेष भाग को **'नमः'** बोलकर अग्नि में डाल दें। यह 'पवित्रीकरण' संस्कार है। इसके पश्चात् दो दर्भ प्रज्वलित करके उसके द्वारा **'हुं'** का उच्चारण करते हुए आज्य का नीराजन करके उसे अग्नि में डाल दें, यह 'अभिद्योतन' संस्कार है। पुनः प्रज्वलित कुशमुष्टि लेकर 'अस्त्राय फट्' बोलते हुए आज्य के सम्मुख प्रदर्शित कर कुशों को अग्नि कमें डाल दें, यह 'उद्योतन' है।

इसके बाद अङ्गारों पर से आज्यस्थाली उठाकर स्वसम्मुख रखकर उन अङ्गारों को अग्नि में डाल दे तथा अङ्गार स्थल का मार्जन करके हाथ धो लें। तदुपरान्त दोनों हाथों को उत्तान करके अंगुष्ठ तथा कनिष्ठा के पास प्रादेश मात्र पृथक-पृथक पवित्री को रखकर **'अस्त्राय फट्'** बोलते हुए अग्नि के सम्मुख आज्य का उत्प्लवन करें। इसके बाद पवित्री को अलग स्थान पर रखकर पुनः उसी प्रकार दो दर्भों को लेकर उन दोनों दर्भों के द्वारा 'नमः' का उच्चारण करते हुए अपने सम्मुख घृत का सम्प्लावन करें, फिर पहले की दोनों पवित्री तथा इन दोनों पवित्रियों (दर्भों) को अग्नि में डाल दें। इस 'उत्प्लवन-सम्प्लवन' क्रिया को 'प्लावन संस्कार' कहा जाता है।

इसके उपरान्त प्रादेश मात्र ग्रन्थियुक्त दो दर्भों को आज्यस्थाली में घृत के मध्य डालकर, आज्य के दक्षिण भाग की शुक्ल पक्ष तथा वाम भाग की

कृष्ण पक्ष रुप भावना कर बायीं ओर इडा, दाहिनी ओर पिङ्गला तथा मध्य में सुषुम्ना का ध्यान करके होम करें। यथा –

'नमः' बोलते हुए स्रुव द्वारा दक्षिण भाग से घृत लेकर –

'ॐ अग्नये स्वाहा अग्नये इदं नमः' बोलकर अग्नि के दक्षिण नेत्र में आहुति डाले तथा सम्पात आज्य को आज्यस्थाली के दक्षिण भाग में ही निक्षेप करें। पुनः –

'नमः' बोलकर वाम भाग से स्रुव द्वारा आज्य ग्रहण करके–

'ॐ सोमाय नमः सोमाय इदं नमः' से अग्नि वाम नेत्र में आहुति डालें। सम्पात आज्य को बायी ओर स्थापित करें। पुनः इसी प्रकार मध्य भाग से आज्य लेकर–

'ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा अग्निषोमाभ्यां इदं नमः' बोलकर अग्नि के ललाटस्थ नेत्र में हवन करें तथा सम्पात आज्य को मध्य भाग में डालें। पुनः–

'नमः' बोलकर दक्षिण भाग से आज्य लेकर –

'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा अग्नये स्विष्टकृते इदं नमः' बोलकर अग्नि के मुख में हवन करें। ('स्वाहा' बोलते समय 'स्वा' उच्चारण के साथ आहुति डालें तथा 'हा' उच्चारण के साथ घृत का सम्पात करें। सम्पात का तात्पर्य है आहुति के पश्चात् स्रुव से टपकने वाले आज्य को निर्दिष्ट पात्र व स्थान में गिराना।)

इसके पश्चात् प्रणव रहित व्यस्त–समस्त व्याहृतियों से पाँच आहुतियाँ अग्नि में दें। यथा –

ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। तत्पश्चात्–

'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस अग्निमन्त्र से तीन बार आहुति देकर अग्नि के गर्भाधान से लेकर विवाह पर्यन्त संस्कार करें।

'ह्रीं अग्नेर्गर्भाधानं कल्पयामि नमः स्वाहा' इस प्रकार प्रत्येक संस्कार मंत्र बोलते हुए, प्रत्येक संस्कार के लिए आठ–आठ आहुतियों से हवन करें। इसके बाद घृत से भीगी हुई मूल तथा अग्रभाग वाली समिधा लेकर –

'ॐ ह्रीं वागीश वागीश्वरीभ्यां स्वाहा' मन्त्र से तीन बार हवन करें।

इसके बाद अग्नि के पितरों (माता–पिता रूप) वागीश–वागेश्वरी का पञ्चोपचार पूजन–प्रणाम कर अपने हृदय में उद्वासित कर लें।

(इसके अनन्तर अग्नि की जिह्वाओं, अङ्ग मन्त्रों, अग्नि मूर्तियों, लोकपालों तथा उनके अस्त्रों आदि के लिए भी समन्त्र आहुतियाँ दी जाती

हैं। पुनः महागणपति मन्त्र को दशधा विभक्त कर हवन का विधान है। इसके लिए अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करें।)

॥ अग्नौ देवी पूजनं हवन-विधिश्च॥

तस्मिन्नग्नौ महेशानि देवीं संपूजयेन्नरः।
तद्वह्नेरात्मना चैक्यं विभाव्य परिकल्पयेत्॥१०५॥
ततश्च मूलमन्त्रेण जुहुयात् षोडशाहुतीः।
सतिलैश्च त्रिमध्वक्तैः सरक्तैः करवीरकैः॥१०६॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तथा।
जुहुयाद् मूलमन्त्रेण महादेव्यै महेश्वरि॥१०७॥
पृथक् कृत्वा महेशानि हुनेदावरणादिकम्।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य अग्नये चैतदेव हि॥१०८॥
पृथिव्यै चैव महते स्वाहान्तोऽयं मनुः स्मृतः।
भुवश्च वायवे चैव अन्तरिक्षाय चैव हि॥१०९॥
दिवे चैव महेशानि वह्निजायावधिर्मनुः।
स्वर्गाय चैव सूर्याय तथा चन्द्रमसे प्रिये॥११०॥
नक्षत्रेभ्यो महेशानि वह्निजायावधिर्मनुः।
तदन्ते महतीं पूर्वां (जा) कुर्यात् चैव वरानने॥१११॥
तद्वह्निं रक्षयेद् धीमान् यथाशक्ति विधानतः।
न्युब्जेन पाणिना देवि होमयेत् सुरवन्दिते॥११२॥
उत्तानेनैव हस्तेन यदि होमं करोति च।
तदा तज्जनितं पुण्यं न भवेत् परमेश्वरि॥११३॥
इति ते कथितं दिव्यं कुण्डादीनां निरूपणम्।
प्रयत्नात् परमेशानि कर्तव्यं होमकर्मणि॥११४॥

इसके पश्चात् उस अग्नि में देवी की पूजा करके अग्नि तथा स्वात्मा के एकत्व की भावना करे। तत्पश्चात् मूल मन्त्र बोलते हुए आज्य द्वारा सोलह आहुतियाँ प्रदान करें। इसके बाद त्रिमधु युक्त (मधु, शकर तथा घृत, किसी-किसी ग्रन्थ में घृत के स्थान पर दूध का उल्लेख है) तिल तथा लाल करवीर (कनेर) पुष्पों के मिश्रण से मूल मन्त्र द्वारा एक हजार आठ या एक सौ आठ बार हवन करे। तदुपरान्त पृथक-पृथक आवरण देवताओं के लिए भी हवन करें। पुनः अग्नये, पृथिव्यै, महते, भुवाय, वायवे, अन्तरिक्षाय, दिवे, स्वर्गाय, सूर्याय, चन्द्रमसे तथा नक्षत्रेभ्य

शब्दों से पूर्व 'ॐ' तथा पश्चात् में 'स्वाहा' जोड़कर अग्नि, पृथ्वी आदि देवताओं के लिए एक-एक आहुतियों से हवन करें। इसके बाद पुनः देवी की विशेष रूप से विस्तृत पूजा करके उस अग्नि का विधिवत् यत्न सहित संरक्षण करे। हवन के समय आहुति डालते समय हाथ आगे की ओर झुका होना चाहिए। हे परमेश्वरि! यदि साधक उत्तान (ऊपर उठे) हाथों से हवन करता है तो उस कर्म से पुण्य की उत्पत्ति नहीं होती है। हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे यह कुण्ड आदि के विषय में शास्त्रीय विधानों का निरूपण किया, इसे प्रयत्नपूर्वक भली-भाँति जानकर उसी के अनुसार ही हवन-कार्य का सम्पादन करना चाहिए।

।। माघ-मासि शुक्ल पक्षे सप्तमी तिथौ देव्याः पूजनम्।।

अथ वक्ष्ये महेशानि सावधानावधारय।
माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी या तिथिर्भवेत्।।११५।।
तस्यां रात्रौ महादेवीं पूजयेत् परमेश्वरीम्।
चतुर्भुजां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।।११६।।
मुण्डाभयखड्गवरान् दधतीं परमेश्वरीम्।
मुण्डमालासमाकीर्णां लोचनत्रयसंयुताम्।।११७।।
गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि।
पूजयेत् परमेशानीं महाविभवविस्तरैः।।११८।।
पूर्वोक्तपूजया देवि पूजयेत् कालरात्रिकाम्।
सहस्रस्य प्रमाणेन जपं कुर्यात् शुचिस्मिते।।११९।।
होमयेत् परमेशानि पूर्वोक्तेन महेश्वरि।
नैवेद्यं परमं देवि भ्रष्टद्रव्यादिकं प्रिये।।१२०।।
दद्यात् प्रियतरं वस्तु महामायाप्रियंकरम्।
अकुर्वन् निरयं याति सत्यं सत्यं महेश्वरि।।१२१।।

हे महेशानि! अब मैं एक और पूजन-प्रसङ्ग को कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि की रात्रि में परमेश्वरी महादेवी की पूजा करनी चाहिए। पूजा से पहले देवी का (इस प्रकार) ध्यान करना चाहिए।

श्मशान भूमि में निवास करने वाली देवी चतुर्भुजा हैं। देखने में वह (रौद्री) क्रोध से भरी हुई भयानक प्रतीत होती हैं। हाथों में नरमुण्ड, अभय, खड्ग तथा वर (मुद्रा) धारण की हुई हैं। शरीर पर (गले में) नरमुण्डों की माला धारण की हुई तथा तीन नेत्रों वाली हैं। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो

जाने पर दूसरे से तीसरे प्रहर तक परमेश्वरी की महदैश्वर्य युक्त विस्तार पूर्वक अर्चना करनी चाहिए। हे देवि! पूर्व में कथित विधि के अनुसार कालरात्रि (महाकाली) का पूजन करके एक हजार जप करना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि से हवन करना चाहिए। नैवेद्य के रूप में देवी को भुने हुए अनेकों प्रकार के पदार्थ (मद्य सहित) प्रदान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ महामायाके लिए प्रीतिकर पदार्थ कहे गये हैं, उन्हें भी अर्पित करना चाहिए। हे देवि! जो शाक्त साधक इस पूजन को नहीं करता वह नरक में जाता है। मेरा यह कहना, हे महेश्वरि! पूर्णतः सत्य है।

।। सन्ध्योपसनादि निरूपणम्।।

अथ ते कथयिष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम्।
आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा दिवसे परमेश्वरि॥१२२॥
रात्रौ उदङ्मुखः कुर्याद् आह्निकं प्रियमुत्तमम्।
अन्येषां पापराशीनां नाशकं विद्धि पार्वति॥१२३॥
भ्रूणहत्या सुरापानं सुवर्णहरणं तथा।
गुरुदाराभिगमनं यच्चान्यद् दुष्कृतं कृतम्॥१२४॥
सर्वमेतत् पुनातीयं महाभैरवरूपधृत्।
द्विभुजां पीतवसनां नानालङ्कारभूषिताम्॥१२५॥
रक्तवर्णां कृशाङ्गी च त्रिवलीवलयोज्ज्वलाम्।
पुस्तकं परमं दिव्यं दक्षिणे विभ्रतीं शुभाम्॥१२६॥
शिक्षासूत्रं तथा वामे विभ्रतीं नयनत्रयाम्।
कौशेयवसनां चापि देवीं सन्ध्यां विभावयेत्॥१२७॥
इति ते कथितं दिव्यं ध्यानं सुरगणार्चिते।
ध्यात्वा सन्ध्यां विशेषेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥१२८॥

अब मैं सन्ध्योपासना विधि को कहता हूँ। हे परमेश्वरी! दिन में पूर्वमुख तथा रात्रि में उत्तर मुख आसन पर बैठकर आचमन करके आह्निक (दैनिक सन्ध्योपासनादि) कर्म करना चाहिए। हे पार्वति! इस कर्म को अन्य (पूर्व-पूर्व) जन्मों के पाप राशियों को (भी) नष्ट करने वाला जानना चाहिए। भ्रूण हत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी, गुरु पत्नी गमन जैसे महापाप तथा अन्य भी अनेकों प्रकार के दुष्कर्म जनित पापों से यह आह्निक कर्म, महाभैरव रूप धारण करके साधक को मुक्त कर, उसे पवित्र कर देता है।

सन्ध्या-कर्म के समय परमेश्वरी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए।

देवी का शरीर पतला (क्षीण) तथा रक्त वर्ण है। ये रेशमी पीला वस्त्र धारण की हुई है। शरीराङ्ग विविध प्रकार के आभूषणों से यथोचित भूषित है। इनकी दो भुजाएं हैं, दायीं भुजा में पुस्तक तथा बांये हाथ में शिक्षासूत्र लिए हुए है। इनके तीन नेत्र हैं तथा उदर पर आभामय त्रिवली शोभित हैं। इस प्रकार सन्ध्या देवी की भावना (ध्यान) करनी चाहिए। हे देवि! सुरगणार्चिते! मैंने सन्ध्या देवी के जिस दिव्य ध्यान का तुमसे वर्णन किया है, सन्ध्या करते समय उसका विशेष रूप से ध्यान करने से सभी पापों का नाश हो जाता है।

।। अभिषेकाघमर्षणार्घ्यादि निरूपणम्।।

आचमनं तथा वापि तीर्थस्यावाहनं ततः।
प्राणायामं षडङ्गस्य न्यासमुत्तमकं ततः।।१२९।।
हस्ततले जलं नीत्वा मन्त्रमुच्चार्य पञ्चधा।
गलितोदकतो देवि मूर्धानमभिषेचयेत्।।१३०।।
तज्जलं दक्षिणे हस्ते आदाय परमेश्वरि।
तेजोरूपं तज्जलं तु कर्षयेद् इडया प्रिये।।१३१।।
प्रक्षाल्य पापं देहान्तः रेचयेत् पिङ्गलान्तरात्।
हस्तस्य क्षालनं कुर्याद् अर्घ्यं सूर्याय दापयेत्।।१३२।।
महादेव्यै त्रिरावृत्या चार्घ्यं दद्यात् सुरेश्वरि।
गायत्रीं ध्यानसंयुक्तां प्रजपेत् तदनन्तरम्।।१३३।।
ततो देवान् प्रतर्प्यैव इष्टदेवं त्रिः तर्पयेत्।
जपं समर्प्य देवेशि मूलमन्त्रं जपेत् ततः।।१३४।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या प्रजप्य मन्त्रमुत्तमम्।
ततो जपं समर्प्यैवं प्रणमेद् दण्डवद् भुवि।।१३५।।
प्राणायामं षडङ्गं च कुर्याच्चान्ते महेश्वरि।
अमावस्या पौर्णमासी श्राद्धीयदिवसे तथा।।१३६।।
संक्रान्तौ परमेशानी सन्ध्यां चैव समाचरेत्।
चतुर्विधानि कर्माणि देवका(ष्टे?र्ये)षु पार्वति।।१३७।।
आगमं नु तथा विद्धि यतो नित्यागमक्रिया।
सन्ध्यां सायन्तनीं कुर्याद् द्वादश्यादिष्वपि प्रिये।।१३८।।
अकुर्वन् निरयं याति एकमेव हि मद्वचः।
इति ते कथितं दिव्यमाह्निकाचारमुत्तमम्।।१३९।।

साधक पूर्वमुख (प्रातः सन्ध्या में) आसन पर बैठकर मूल मन्त्र से

तीन बार आचमन करके (शिखा बांधकर) किसी पात्र में शुद्ध जल लेकर उसमें तीर्थों का आवाहन, धेनुमुद्रा से अमृतीकरणादि करके मूल मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से प्राणायाम कर-षडङ्ग न्यासादि करके उस जल में से थोड़ा जल दाहिने हाथ में लेकर 'हं यं वं लं रं' इन पञ्च भूतात्मक बीजों से सात बार तथा मूल मन्त्र से सात (पाँच) बार अभिमन्त्रित करके फिर उस जल को बांये हाथ में लेकर उसके गिरते हुए बिन्दुओं से दाहिने हाथ द्वारा मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिर पर प्रोक्षण (अभिषेचन) करें। पुनः अवशेष जल को दाहिने हाथ में लेकर वाम नासिका के पास लाकर धीरे से अन्दर की ओर खींचे। तत्पश्चात् उस तेजो रूप जल द्वारा अन्तर में प्रविष्ट होकर सभी मलों को शोधित कर दिया गया है तथा कृष्ण वर्ण होकर वह दक्ष नासापुट से निर्गत हो रहा है, ऐसी भावना करके दक्षहस्तगत उस जल को अपनी बायीं ओर कल्पित वज्रशिला पर 'फट्' बोलते हुए पटक दें। इसके बाद हाथ धोकर आचमन करके **"ॐ ह्रां ह्रीं (हं) सः सग्रहराशिनक्षत्र योगकरण परिवृतासनास्थित सूर्याय एष तेऽर्घः स्वाहा"** इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य देकर पुनः सूर्य मण्डल में स्वेष्ट देवता देवी को स्थित मान कर उसकी गायत्री (काली गायत्री, तारा गायत्री आदि) अथवा मूल मन्त्र से तीन बार अर्घ्य प्रदान करें। इसके बाद अङ्ग देवताओं (आवरण देवताओं) का एक-एक बार तर्पण करके तीन बार मूल मन्त्र के पश्चात् 'अमुकीं' तर्पयामि (यथा कालीं तर्पयामि) जोड़कर देवी का तर्पण (वाम कर से) करें। तदुपरान्त अट्ठाईस बार ध्यान सहित देवता-गायत्री का जप करके देवता को जप समर्पित करें। पुनः मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके उसे भी देवी को अर्पित कर दें। इसके बाद पृथ्वी पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम करें। जपआदि के बाद पुनः प्राणायाम षडङ्ग न्यासादि करना चाहिए।

अमावस्या, पूर्णमासी, श्राद्ध-दिन तथा सूर्य संक्रान्ति के दिन, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष हेतु कर्म काल में, देव कार्यों के समय तथा द्वादशी तिथि में भी प्रातः सन्ध्या के साथ ही सायं सन्ध्या भी करनी चाहिए। आगम (तन्त्र) ग्रन्थों में संध्या कर्म नित्य कर्म रूप से कहा गया है, अतः इन ग्रन्थों के द्वारा विधिवत् इनका ज्ञान प्राप्त करके अनिवार्य रूप से सन्ध्या क्रिया करनी चाहिए। जो व्यक्ति इसे नहीं करता उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसके लिए मेरा एक बार ही कहना पर्याप्त है। हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे उत्तम आह्निक आचार के विषय में सम्यक रूप से वर्णन किया।

।। संक्षिप्त-पूजन-विधि-निरूपणम्।।

त्रि:सन्ध्यां परमेशानि कुर्यात् साधकसत्तमः।
नास्ति यस्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते।।१४०।।
क्रुद्धा भगवती तस्य कामान् इष्टान् निहन्ति वै।
संक्षेपेणैव देवेशि शृणु पूजाविधिं शिवे।।१४१।।
आदौ ऋष्यादिविन्यासः करशुद्धिस्ततः परम्।
अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च।।१४२।।
तालत्रयं च दिग्बन्धनः प्राणायामस्ततः परम्।
ध्यानं पूजा जपश्चैतत् सर्वतन्त्रेष्वयं क्रमः।।१४३।।
बलिदानं तथा कार्यं यथावत् तन्त्रवेदिभिः।
पूजयेद् भैरवं दुर्गा तथा चैव महेश्वरीम्।।१४४।।
वृषभं नन्दिनं चैव अतियत्नेन पूजयेत्।
महाकालं यजेद् धीमान् सर्वागमविशारदः।।१४५।।
चक्रराजं पूजयित्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
आदौ लिङ्गं महादेवं पूजयेद् यत्नतः शिवे।।१४६।।
तस्मिंश्चैव हि समये स्वेष्टदेवं प्रपूजयेत्।
तस्माद् निर्माल्यपुष्पं च गृह्णीयाद् भक्तिभावतः।
इष्टपूजां बिना लिङ्गनिर्माल्यं च निषिध्यते।।१४७।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (कालीध्यानादिपूजा-कुण्डमेखलायोनिनिर्णय-अग्निकार्यादिनिरूपणं)
सप्तदशः पटलः।।१७।।

ब्राह्मण को तथा श्रेष्ठ साधक को भी यथा सम्भव त्रिकाल (प्रातः, मध्याहन तथा सायं) सन्ध्या करनी चाहिए। जिसके मन में इसके प्रति आदर (श्रद्धा) का भाव नहीं है, अर्थात् जो आलस्य, अनादर अथवा प्रमाद वश इस सन्ध्या कर्म को नहीं करता, वह ब्राह्मण (साथ ही साधक भी) कहलाने का अधिकारी नहीं है। ऐसे साधक पर भगवती क्रोधित होकर उसके सभी भोगों को (पूर्वार्जित पुण्यफलों सहित) नष्ट कर देती है। अतः साधक को भगवती की प्रसन्नता तथा अपने कल्याण हेतु इस सन्ध्या कर्म को अवश्य ही करना चाहिए।

हे शिवे! अब मैं संक्षेप में सारी पूजन विधि को (पुनः) तुमसे कहता हूँ।

साधक विधिवत् शुद्धासन पर पूर्व अथवा उत्तर मुख (अथवा इष्ट देवी के सम्मुख) बैठकर आचमन-प्राणायामादि करके पूजन-जपादि का

सङ्कल्प कर विनियोग करके ऋष्यादि न्यास, कर-न्यास, हृदयादि (षडङ्ग) न्यास, व्यापक न्यास, करशुद्धि आदि करके तालत्रय द्वारा दिगबन्धन कर देवी का ध्यान करके पूजन करे। इसके पश्चात् मन्त्र का यथोचित जप करे। इसके बाद तन्त्र विधि का सम्यक् ज्ञान रखने वाले साधक द्वारा यथा विधि बलि देना चाहिए। देवी महेश्वरी के पूजन के साथ ही भैरव, दुर्गा, वृषभ रूप नन्दी तथा महाकाल का भी पूजन करना चाहिए। देवी (इष्ट देवता) के पूजन के पूर्व सम्भव हो तो अङ्ग देवताओं का भी पूजन करें। चक्रराज (पूजा-यन्त्र) का अर्चन करने वाला साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। इष्ट देव के पूजन के समय पहले शिव लिङ्ग रूप महादेव का पूजन अवश्य करना चाहिए। उस शिव लिङ्ग के निर्माल्य को भी श्रद्धा-भक्ति पूर्ण चित्त से ग्रहण करना चाहिए। बिना इष्ट-देवता का पूजन किये शिव-निर्माल्य ग्रहण करना निषिद्ध (मना) है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र में भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
काली-ध्यानादि पूजा-कुण्ड मेखला योनि निर्णय-अग्नि कार्यादि
निरूपण नामक सत्रहवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

◆

॥ अष्टदशः पटलः॥

(तारा सहस्रनाम - निरूपणम्)

॥ तारा-सहस्रनाम वर्णनाय निवेदनम्॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
प्रसङ्गेन महादेव्या विस्तरं कथितं मयि॥१॥
देव्या नीलसरस्वत्याः सहस्रं परमेश्वर।
नाम्नां श्रोतुं महेशान प्रसादः क्रियतां मयि।
कथयस्व महादेव मद्यहं तव वल्लभा॥२॥

इस संसार की सृष्टि-स्थिति (पालन) तथा संहार करने वाले हे देवाधिदेव! महादेव! आपने महादेवी तारा के वर्णन-प्रसङ्ग में उनके सहस्र नामों की चर्चा की थी। हे महेशान-महादेव! यदि मैं आपकी प्रियतमा होऊँ तो आप मुझ पर कृपा करें और देवी नील सरस्वती (तारा) के सहस्र नामों का मुझसे कथन करें। मुझे इन नामों को सुनने की बहुत ही उत्कण्ठा है।

॥तारासहस्रनाम्नः गोपनीयत्वं प्रकाशनाद् हानिश्च॥

श्रीभैरव उवाच

साधु पृष्टं महादेवि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
नाम्नां सहस्रं तारायाः कथितुं नैव शक्यते॥३॥
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् श्रिया च परिहीयते।
प्रकाशयति यो मोहात् षण्मासाद् मृत्युमाप्नुयात्॥४॥
अकथ्यं परमेशानि अकथ्यं चैव सुन्दरि।
क्षमस्व वरदे देवि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति॥५॥
सर्वस्वं शृणु हे देवि सर्वागमविदां वरे।
धनसारं महादेवि गोप्तव्यं परमेश्वरि॥६॥
आयुर्गोप्यं गृहच्छिद्रं गोप्यं न पापभाग् भवेत्।
सुगोप्यं परमेशानि गोपनात् सिद्धिमश्नुते॥७॥

प्रकाशात् कार्यहानिश्च प्रकाशात् प्रलयं भवेत्।
तस्माद् भद्रे महेशानि न प्रकाश्यं कदाचन॥८॥

हे महादेवि! तारा (नील सरस्वती) सहस्रनाम के विषय में तुमने जो प्रश्न किया तथा उसे श्रवण करने की अभिलाषा प्रकट की, वह कार्य तो प्रशंसनीय है, परन्तु इस तारा सहस्रनाम का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। जो भी व्यक्ति इसका प्रकाशन (अन्य के समक्ष कथन) करता है, उसके सिद्धि की हानि तथा वह ऐश्वर्य से रहित हो जाता है। फिर भी मोहवश (अपनी अज्ञानता के कारण) जो इसका वर्णन करता है, छः मास में उसकी मृत्यु हो जाती है। हे परमेशानि-सुन्दरि! यह सहस्रनाम पूर्णतया अवर्णनीय है। सभी मनुष्यों को जीवन तथा ऐश्वर्य का वरदान देने वाली हे देवि! यदि आपके मन में मेरे प्रति वास्तव में प्रेम है तो मुझे क्षमा करें, मैं इसका वर्णन नहीं कर सकता। समस्त शास्त्रों के परम रहस्य को जानने वालों में श्रेष्ठ हे देवि! समस्त सम्पत्तियों का सार रूप जो जीवन रूप सम्पत्ति है उसकी सदैव रक्षा करनी चाहिए। अपनी आयु की रक्षा करने तथा घर-परिवार के दोषों को गुप्त रखने से मनुष्य पाप का भागी नहीं होता। इसलिए हे परमेशानि इसे गुप्त ही रखना चाहिए, क्योंकि इसे गुप्त रखने वाला मनुष्य ही सिद्धि के फल का भोग करने वाला होता है। इसे प्रकट करने से मनुष्य को अपने कार्यों में असफलता तथा मृत्यु की भी प्राप्ति हो सकती है। इसलिए हे महेशानि भद्रे! (आप तो सबका कल्याण करने व चाहने वाली हैं, इसलिए मुझे प्रेरित न करें।) मैं इस तारासहस्र नाम का वर्णन (प्रकाशन) कभी नहीं कर सकता।

॥भैरवस्य वचनं श्रुत्वा देव्याः विषण्णम्॥

इति देववचः श्रुत्वा देवी परमसुन्दरी।
विस्मिता परमेशानि विषण्णा तत्र जायते॥९॥
शृणु हे परमेशान कृपासागरपारग।
तव स्नेहो महादेव मयि नास्त्यत्र निश्चितम्॥१०॥
भद्रं भद्रं महादेव इति कृत्वा महेश्वरी।
विमुखीभूय देवेशी तत्रास्ते शैलजा शुभा॥११॥

श्री भैरव (शिव) के द्वारा तारा सहस्र नाम कथन के प्रति स्पष्टतया अस्वीकृत रूप वचन को सुनकर परम सुन्दरी देवी आश्चर्य चकित (हक्की-बक्की) सी हाने के साथ ही खिन्न (दुखी-उदास) सी हो गयीं। उन्होंने कहा-हे परमेशान महादेव! आप तो अपार कृपासिन्धु (कहे जाते) हैं।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि निश्चय ही मुझ पर आपका स्नेह (प्रेम-कृपा) कुछ भी नहीं है। आप मेरे साथ सदैव (प्रेम का पाखण्डपूर्ण प्रदर्शन करते हुए) छल करते रहे हैं। ऐसा कहकर सुन्दरी महेश्वरी देवेशी शैलपुत्री पार्वती महादेव से विमुख होकर (मुख फेरकर) वहीं बैठ गयीं।

।। महादेवेन देवी-माननम्।।

विलोक्य विमुखीं देवीं महादेव्यो महेश्वरः।
प्रहस्य परमेशानीं परिष्वज्य प्रियां कथाम्।।१३।।
कथयामास तत्रैव महादेव्यै महेश्वरि।
मम सर्वस्वरूपा त्वं जानीहि नगनन्दिनि।।१४।।
यथा प्राणो महेशानि देहे तिष्ठति सुन्दरि।
तथा त्वं जगतामाद्ये चरणे पतितोऽस्म्यहम्।।१५।।
इति मत्वा महादेवि रक्ष मां तव किङ्करम्।
ततो देवी महेशानी त्रैलोक्यमोहिनी शिवा।।१६।।
महादेवं परिष्वज्य प्राह गद्गद्या गिरा।
सदा देहस्वरूपाहं देही त्वं परमेश्वर।।१७।।
तथापि वञ्चनां कर्तु मामित्थं वदसि प्रियम्।
महादेवः पुनः प्राह भैरवि प्राणवल्लभे।।१८।।
नाम्नां सहस्रं ताराया: श्रोतुमिच्छस्यशेषतः।

देवी को इस प्रकार स्वयं से पराङ्मुख देखकर महेश्वर महादेव ने हंस करके 'प्रिया' कहते हुए परमेशानी को आलिङ्गन में लेकर उन महादेवी से बोले हे महेश्वरि, हिमाचलसुते! तुम मेरी सर्वस्व हो, ऐसा तुम्हें (भी) ज्ञात है। हे महादेवि! मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूँ कि तुम्हारे बिना मैं मृतक समान हूँ। हे परमानन्द स्वरूपिणी पर्वतपुत्रि! मुझे (मेरी धृष्टता के लिए) क्षमा करें। जैसे प्राण की शरीर में स्थित (होने के कारण मनुष्य की स्थिति) है, हे सुन्दरि! उसी प्रकार जगत के कारण रूप से इस विश्व में आपकी स्थित (होने के कारण ही इस संसार की स्थिति) है। मैं आपके चरणों में पतित (नतमस्तक) होता हूँ। ऐसा मानकर हे महादेवि! मेरी रक्षा करें, मैं आपका सेवक हूँ। महादेव के इस प्रकार कहने पर त्रिलोकी को (अपने सौन्दर्य अथवा माया से) मोहित करने वाली महेश-पत्नी देवी शिवा ने महादेव का (प्रेमपूर्वक) आलिङ्गन कर, गद्गद् वाणी (अत्यन्त भावुक होकर भरे हुए गले) से बोलीं। हे परमेश्वर! मैं सदैव शरीर रूप में हूँ तथा आप

इस शरीर में जीव (आत्मा) रूप से स्थित हैं। आप और मैं कभी भी पृथक नहीं हो सकते फिर भी स्वयं के मृत्यु की कल्पना कर मुझसे छल करते हुए से ऐसा वचन क्यों बोलते हैं। तत्पश्चात् महादेव पुनः बोले – हे प्राणवल्लभे-भैरवि! क्या सत्य ही तुम सम्पूर्ण रूप से तारा सहस्र नाम काश्रवण करना चाहती हो।

॥ तारा सहस्रनाम प्रकाशनाय पुनर्निवेदनम्॥

श्रीदेवी (पार्वत्युवाच)

न श्रुतं परमेशान तारानामसहस्रकम्।
कथयस्व महाभाग सत्यं परमसुन्दरम्॥१९॥
कथमीशान सर्वज्ञ लभन्ते सिद्धिमुत्तमाम्।
साधकाः सर्वदा येन तन्मे कथय सुन्दर॥२०॥
यस्मात् परतरं नास्ति स्तोत्रं तन्त्रेषु निश्चितम्।
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वापद्विनिवारकम्॥२१॥
सर्वज्ञानकरं पुण्यं सर्वमङ्गलसंयुतम्।
पुरश्चर्याशतैस्तुल्यं स्तोत्रं सर्वप्रियङ्करम्॥२२॥
वश्यप्रदं मारणदमुच्चाटनप्रदं महत्।
नाम्नां सहस्रं तारायाः कथयस्व सुरेश्वर॥२३॥

हे परमेशान-महाभाग! मैंने (आपके मुख से) तारा सहस्रनाम का श्रवण नहीं किया है, अतः आप इस परमसुन्दर सत्य स्वरूप (आद्या शक्ति-रूपी ब्रह्मस्वरूप, क्योंकि वाच्य तथा वाचक में अभेद होता है) सहस्र नाम का मेरे प्रति कथन करें।

हे सुन्दर(नाम से सम्बोधित किये जाने वाले) शिव! जिस साधन के द्वारा साधकों को सर्वज्ञता तथा श्रेष्ठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है, उसे आप कहें। तन्त्रशास्त्रों में जिससे श्रेष्ठतर अन्य कोई स्तोत्र नहीं है, जो दिव्य, सभी पापों का निवारण करने वाला, समस्त आपदाओं का उन्मूलन करने वाला, सर्वज्ञान प्रदायक, पुण्यप्रद, सम्पूर्ण कल्याणों से युक्त (उन्हें देनेवाला) सैकड़ों पुरश्चरण के समान (सर्वसिद्धि कारक) सर्वप्रियकारक तथा वशीकरण, मारण, उच्चाटन (आदि कर्मों) का साधक है, उस तारा के सहस्र नाम स्तोत्र को, हे सुरेश्वर! आप मुझसे कहें।

॥ तारासहस्रनाम-स्तोत्रस्य माहात्म्यम्॥

श्रीमहादेव उवाच

नाम्नां सहस्रं तारायाः स्तोत्रपाठाद् भविष्यति।
नाम्ना सहस्रं तारायाः कथयिष्याम्यशेषतः॥२४॥

शृणु देवि सदा भक्त्या भक्तानां परमं हितम्।
बिना पूजोपहारेण बिना जा(पे ?प्ये)न यत् फलम्॥२५॥
तत् फलं सकलं देवि कथयिष्यामि तच्छृणु।

हे देवि! तारा के सहस्र नामों को मैं सम्पूर्ण रूप से कहूँगा। इन सहस्र नामों के पाठ से साधक को जिन-जिन फलों की भविष्य में प्राप्ति होती है, उसका भी वर्णन करूँगा। भक्तों के लिए परम कल्याणकारी इस स्तोत्र का भक्ति पूर्वक केवल पाठ करने से ही बिना उपचारों के अर्पण तथा पूजन एवं भगवती के मंत्रों का बिना जप किए ही, भक्तों को जिन फलों की प्राप्ति होती है, उन सभी को मैं कहूँगा (कहता हूँ), तुम सुनो।

विनियोगः **ॐ अस्य श्री तारादेव्याः भक्तिकुलसर्वस्व नाम्नः (सहस्रनाम) स्तोत्रस्य, अक्षोभ्य ऋषिः, वृहती-उष्णिक् छन्दः, श्री उग्रतारा श्रीमदेकजटा श्री नीलसरस्वती देवता पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।**

॥तारा-सहस्र नामानि॥

तारा रात्रिर्महारात्रिर्कालरात्रिर्महामतिः।
कालिका कामदा माया महामाया महास्मृतिः॥२६॥
महादानरता यज्ञा यज्ञोत्सवविभूषिता।
चन्द्रवक्त्रा चकोराक्षी चारुनेत्रा सुलोचना॥२७॥
त्रिनेत्रा महती देवी कुरङ्गाक्षी मनोरमा।
ब्राह्मी नारायणी ज्योत्सना चारुकेशी सुमूर्धजा॥२८॥
वाराही वारुणी विद्या महाविद्या महेश्वरी।
सिद्धा कुञ्चितकेशा च महायज्ञस्वरूपिणी॥२९॥
गौरी चम्पकवर्णा च कृशाङ्गी शिवमोहिनी।
सर्वानन्दस्वरूपा च सर्वशङ्कैकतारिणी॥३०॥
विद्यानन्दमयी नन्दा भद्रकाली स्वरूपिणी।
गायत्री सुचरित्रा च कौलव्रतपरायणा॥३१॥
हिरण्यगर्भा भूगर्भा महागर्भा सुलोचनी।
हिमवत्तनया दिव्या महामेघस्वरूपिणी॥३२॥
जगन्माता जगदात्री जगतामुपकारिणी।
ऐन्द्री सौम्या तथा घोरा वारुणी माधवी तथा॥३३॥
आग्नेयी वैनतेयी च ऐशानी चण्डिकात्मिका।
सुमेरुतनया नित्या सर्वेषामुपकारिणी॥३४॥

ललज्जिह्वा सरोजाक्षी मुण्डस्रक्परिभूषिता।
सर्वानन्दमयी सर्वा सर्वानन्दस्वरूपिणी।।३५।।
धृतिर्मेधा तथा लक्ष्मी: श्रद्धा पन्नगगामिनी।
रुक्मिणी जानकी दुर्गाम्बिका सत्यवती रति:।।३६।।
कामाख्या कामदा नन्दा नारसिंही सरस्वती।
महादेवरता चण्डी चण्डदोर्दण्डखण्डिनी।।३७।।
दीर्घकेशी सुकेशी च पिङ्गकेशी महाकचा।
भवानी भवपत्नी च भवभीतिहरा सती।।३८।।

तारा सहस्रनाम स्तोत्र पाठ के पश्चात् (अथवा पूजनादि के उपरान्त) चतुर्थ्यन्त नामों के पहले ॐ तथा बाद में नम: लगाकर पाठ करना अति श्रेयष्कर होता है। साधक यदि चाहे तो स्तोत्र का पाठ न करके केवल नाम-पाठ भी उपर्युक्त रूप से कर सकता है। अत: यहाँ सभी नामों को चतुर्थी विभक्ति के रूप में दिया जा रहा है।

तारायै, रात्र्यै, महारात्र्यै, कालरात्र्यै, महामत्यै, कालिकायै, कामदायै, मायायै, महामायायै, महास्मृत्यै, महादानरतायै, यज्ञायै, यज्ञोत्सवविभूषितायै, चन्द्रवक्त्रायै, चकोराक्ष्यै, चारुनेत्रायै, सुलोचनायै, त्रिनेत्रायै, महत्यै, देव्यै, कुरङ्गाक्ष्यै, मनोरमायै, ब्राह्म्यै, नारायण्यै, ज्योत्सनायै, चारुकेश्यै, सुमूर्धजायै, वाराह्यै, वारुण्यै, विद्यायै, महाविद्यायै, महेश्वर्यै, सिद्धायै, कुञ्चितकेशायै, महायज्ञस्वरूपिण्यै, गौर्यै, चम्पकवर्णायै, कृशाङ्ग्यै, शिवमोहिन्यै, सर्वानन्द स्वरूपायै, सर्वशङ्कैकतारिण्यै, विद्यानन्दमय्यै, नन्दायै, भद्रकालीस्वरूपिण्यै, गायत्र्यै, सुचरित्रायै, कौलवृतपरायणायै, हिरण्यगर्भायै, भूगर्भायै, महागर्भायै, सुलोचन्यै, हिमवत्तनयायै, दिव्यायै, महामेघस्वरूपिण्यै, जगन्मातायै, जगद्धात्र्यै, जगतामुपकारिण्यै, ऐन्द्र्यै, सौम्यायै, घोरायै, वारुण्यै, माधव्यै, आग्नेय्यै, वैनतेय्यै, ऐशान्यै, चण्डिकात्मिकायै, सुमेरुतनयायै, नित्यायै, सर्वेषामुपकारिण्यै, ललज्जिह्वायै, सरोजाक्ष्यै, मुण्डस्रकपरिभूषितायै, सर्वानन्दमय्यै, सर्वायै, सर्वानन्दस्वरूपिण्यै, धृत्यै, मेधायै, लक्ष्म्यै, श्रद्धायै, पन्नगगामिन्यै, रुक्मिण्यै, जानक्यै, दुर्गायै, अम्बिकायै, सत्यवत्यै, रत्यै, कामाख्यै, कामदायै, नन्दायै, नारसिंह्यै, सरस्वत्यै, महादेवरतायै, चण्ड्यै, चण्डदोर्दण्डखण्डिन्यै, दीर्घकेश्यै, सुकेश्यै, पिङ्गकेश्यै, महाकचायै, भवान्यै, भवपत्न्यै, भवभीतिहरायै तथा सत्यै।।१०२।।

पौरन्दरी तथा विष्णोर्जाया माहेश्वरी तथा।
सर्वेषां जननी विद्या चार्वङ्गी दैत्यनाशिनी।।३९।।

सर्वरूपा महेशानी कामिनी वरवर्णिनी।
महाविद्या महामाया महामेधा महोत्सवा॥४०॥
विरूपा विश्वरूपा च मृडानी मृडवल्लभा।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशा शतसूर्यप्रकाशिनी॥४१॥
जह्नुकन्या महोग्रा च पार्वती विश्वमोहिनी।
कामरूपा महेशानी नित्योत्साहा मनस्विनी॥४२॥
बैकुण्ठनाथपत्नी च तथा शङ्करमोहिनी।
काश्यपी कमला कृष्णा कृष्णरूपा च कालिनी॥४३॥
माहेश्वरी वृषारूढा सर्वविस्मयकारिणी।
मान्या मानवती शुद्धा कन्या हिमगिरेस्तथा॥४४॥
अपर्णा पद्मपत्राक्षी नागयज्ञोपवीतिनी।
महाशङ्खधरा कान्ता कमनीया नगात्मजा॥४५॥
ब्रह्माणी वैष्णवी शम्भोर्जाया गङ्गा जलेश्वरी।
भागीरथी मनोबुद्धिर्नित्या विद्यामयी तथा॥४६॥
हरप्रिया गिरिसुता हरपत्नी तपस्विनी।
महाव्याधिहरा देवी महाघोरस्वरूपिणी॥४७॥
महापुण्यप्रभा भीमा मधुकैटभनाशिनी।
शङ्खिनी वज्रिणी धात्री तथा पुस्तकधारिणी॥४८॥
चामुण्डा चपला तुङ्गा शुम्भदैत्यनिकृन्तनी।
शान्तिर्निद्रा महानिद्रा पूर्णनिद्रा च रेणुका॥४९॥
कौमारी कुलजा कुन्ती कौलव्रतपरायणा।
वनदुर्गा सदाचारा द्रौपदी द्रुपदात्मजा॥५०॥
यशस्विनी यशस्या च यशोधात्री यशःप्रदा।
सृष्टिरूपा महागौरी निशुम्भप्राणनाशिनी॥५१॥

पौरन्दर्यै, विष्णोर्जायायै, माहेश्वर्यै, सर्वेषाञ्जनन्यै, विद्यायै, चार्वङ्ग्यै, दैत्यनाशिन्यै, सर्वरूपायै, महेशान्यै, कामिन्यै, वरवर्णिन्यै, महाविद्यायै, महामायायै, महामेधायै, महोत्सवायै, विरूपायै, विश्वरूपायै, मृडान्यै, मृडवल्लभायै, कोटिचन्द्रप्रतीकाशायै, शतसूर्यप्रकाशिन्यै, जह्नुकन्यायै, महोग्रायै, पार्वत्यै, विश्वमोहिन्यै, कामरूपायै, महेशान्यै, नित्योत्साहायै, मनस्विन्यै, वैकुण्ठनाथपत्न्यै, शंकर मोहिन्यै, काश्यप्यै, कमलायै, कृष्णायै, कृष्णरूपायै, कालिन्यै, माहेश्वर्यै, वृषारूढायै, सर्वविस्मयकारिण्यै, मान्यायै, मानवत्यै, शुद्धायै, हिमगिरिकन्यायै,

अपर्णायै, पद्मपत्राक्ष्यै, नागयज्ञोपवीतिन्यै, महाशंखधरायै, कान्तायै, कमनीयायै, नगात्मजायै, ब्रह्माण्यै, वैष्णव्यै, शम्भोर्जायायै, गङ्गायै, जलेश्वर्यै, भागीरथ्यै, मनोबुद्ध्यै, नित्यायै, विद्यामय्यै, हरप्रियायै, गिरिसुतायै, हरपत्न्यै, तपस्विन्यै, महाव्याधिहरायै, महाघोरस्वरूपिण्यै, महापुण्यप्रभायै, भीमायै, मधुकैटभनाशिन्यै, शंखिन्यै, वज्रिण्यै, धात्र्यै, पुस्तकधारिण्यै, चामुण्डायै, चपलायै, तुङ्गायै, शुम्भदैत्य निकृन्तन्यै, शान्त्यै, निद्रायै, महानिद्रायै, पूर्णनिद्रायै, रेणुकायै, कौमार्यै, कुलजायै, कुन्त्यै, कौलवृतपरायणायै, वन-दुर्गायै, सदाचारायै, द्रौपद्यै, द्रुपदात्मजायै, यशस्विन्यै, यशस्यायै, यशोधात्र्यै, यशः प्रदायै, सृष्टिरूपायै, महागौर्यै तथा निशुम्भप्राणनाशिन्यै।।१९९।।

पद्मिनी वसुधा पृथ्वी रोहिणी विन्ध्यवासिनी।
शिवशक्तिर्महाशक्तिः शङ्खिनी शक्तिनिर्गता।।५२।।
दैत्यप्राणहरा देवी सर्वरक्षणकारिणी।
क्षान्तिः क्षेमङ्करी चैव बुद्धिरूपा महाधना।।५३।।
श्रीविद्या भैरवी भव्या भवानी भवनाशिनी।
तापिनी भाविनी सीता तीक्ष्णतेजःस्वरूपिणी।।५४।।
दात्री दानपरा काली दुर्गा दैत्यविभूषणा।
महापुण्यप्रदा भीमा मधुकैटभनाशिनी।।५५।।
पद्मा पद्मावती कृष्णा तुष्टा पुष्टा तथोर्वशी।
वज्रिणी वज्रहस्ता च तथा नारायणी शिवा।।५६।।
खड्गिनी खड्गहस्ता च खड्गखर्परधारिणी।
देवाङ्गना देवकन्या देवमाता पुलोमजा।।५७।।
सुखिनी स्वर्गदात्री च सर्वसौख्यविवर्धिनी।
शीला शीलावती सूक्ष्मा सूक्ष्माकारा वरप्रदा।।५८।।
वरेण्या वरदा वाणी ज्ञानिनी ज्ञानदा सदा।
उग्रकाली महाकाली भद्रकाली च दक्षिणा।।५९।।
भृगुवंशसमुद्भूता भार्गवी भृगुवल्लभा।
शूलिनी शूलहस्ता च कर्त्रीखर्परधारिणी।।६०।।
महावंशसमुद्भूता मयूरवरवाहना।
महाशङ्खरता रक्ता रक्तखर्परधारिणी।।६१।।
रक्ताम्बरधरा रामा रमणी सुरनायिका।
मोक्षदा शिवदा श्यामा मदविभ्रममन्थरा।।६२।।

परमानन्दा ज्येष्ठा योगिनी गणसेविता।
सारा जाम्बवती चैव सत्यभामा नगात्मजा॥६३॥
रौद्रा रौद्रबला घोरा रुद्रसारारुणात्मिका।
रुद्ररूपा महारौद्री रौद्रदैत्यविनाशिनी॥६४॥

पद्मिन्यै, वसुधायै, पृथ्व्यै, रोहिण्यै, विन्ध्यवासिन्यै, शिवशक्त्यै, महाशक्त्यै, शंखिन्यै, शक्तिनिर्गतायै, दैत्यप्राण हरायै, सर्वरक्षणकारिण्यै, क्षान्त्यै, क्षेमकर्यै, बुद्धिरूपायै, महाधनायै, श्रीविद्यायै, भैरव्यै, भव्यायै, भवान्यै, भयनाशिन्यै, तापिन्यै, भाविन्यै, सीतायै, तीक्ष्णतेजस्वरूपिण्यै, दात्र्यै, दानपरायै, काल्यै, दुर्गायै, दैत्यविभूषणायै, महापुण्यप्रदायै, भीमायै, मधुकैटभ नाशिन्यै, पद्मायै, पद्मावत्यै, कृष्णायै, तुष्टायै, पुष्टायै, उर्वश्यै, वज्रिण्यै, वज्रहस्तायै, नारायण्यै, शिवायै, खड्गिन्यै, खड्ग हस्तायै, खड्गखर्परधारिण्यै, देवाङ्गनायै, देवकन्यायै, देवमातायै, पुलोमजायै, सुखिन्यै, स्वर्गदात्र्यै, सर्वसौख्यविवर्धिन्यै, शीलायै, शीलावत्यै, सूक्ष्मायै, सूक्ष्माकरायै, वरप्रदायै, वरेण्यायै, वरदायै, वाण्यै, ज्ञानिन्यै, ज्ञानदायै, सदायै, उग्रकाल्यै, महाकाल्यै, भद्रकाल्यै, दक्षिणायै (दक्षिणाकाल्यै), भृगृवंशसमुद्भूतायै, भार्गव्यै, भृगुवल्लभायै, शूलिन्यै, शूलहस्तायै, कर्त्री खर्पर धारिण्यै, महावंशसमुद्भूतायै, मयूरवरवाहनायै, महाशेखरतायै, रक्तायै, रक्त खर्पर धारिण्यै, रक्ताम्बरधरायै, रामायै, रमण्यै, सुरनायिकायै, मोक्षदायै, शिवदायै, श्यामायै, मदविभ्रममन्थरायै, परमानन्दायै, ज्येष्ठायै, योगिन्यै, गणसेवितायै, सारायै, जाम्बवत्यै, सत्यभामायै, नगात्मजायै, रौद्रायै, रौद्रवलायै, घोरायै, रुद्रसारायै, अरुणात्मिकायै, रुद्ररूपायै, महारौद्र्यै तथा रौद्रदैत्यविनाशिन्यै॥३०१॥

कौमारी कौशिकी चण्डा कालदैत्यविनाशिनी।
शम्भुपत्नी शम्भुरता शम्भुजाया महोदरी॥६५॥
शिवपत्नी शिवरता शिवजाया शिवप्रिया।
हरपत्नी हररता हरजाया हरप्रिया॥६६॥
मदनान्तककान्ता च मदनान्तकवल्लभा।
गिरिजा गिरिकन्या च गिरीशस्य च वल्लभा॥६७॥
भूता भव्या भवा स्पष्टा पावनी परपालिनी।
अदृश्या च व्यक्तरूपा इष्टानिष्टप्रवर्द्धिनी॥६८॥
अच्युता प्रच्युतप्राणा प्रमदा वासवेश्वरी।
अपांनिधिसमुद्भूता धारिणी च प्रतिष्ठिता॥६९॥
उद्भवा क्षोभणा क्षेमा श्रीगर्भा परमेश्वरी।
कमला पुष्पदेहा च कामिनी कञ्जलोचना॥७०॥

शरण्या कमला प्रीतिर्विमलानन्दवर्धिनी।
कपर्दिनी कराला च निर्मला देवरूपिणी।।७१।।
उदीर्णभूषणा भव्या सुरसेना महोदरी।
श्रीमती शिशिरा नव्या शिशिराचलकन्यका।।७२।।
सुरमान्या सुरश्रेष्ठा ज्येष्ठा प्राणेश्वरी स्थिरा।
तमोघ्नी ध्वान्तसंहत्री प्रयतात्मा पतिव्रता।।७३।।
प्रद्योतिनी रथारूढा सर्वलोकप्रकाशिनी।
मेधाविनी महावीर्या हंसी संसारतारिणी।।७४।।
प्रणतप्राणिनामार्तिहारिणी दैत्यनाशिनी।
डाकिनी शाकिनीदेवी वरखट्वाङ्गधारिणी।।७५।।
कौमुदी कुमुदानन्दा कौलिका कुलजामरा।
गर्विता गुणसंपन्ना नगजा खगवाहिनी।।७६।।
चन्द्रानना महोग्रा च चारुमूर्धजशोभना।
मनोज्ञा माधवी मान्या माननीया सतां सुहृत्।।७७।।

कौमार्यै, कौशिक्यै, चण्डायै, कालदैत्यविनाशिन्यै, शम्भुपत्न्यै, शम्भुरतायै, शम्भुजायायै, महोदर्यै, शिवपत्न्यै, शिवरतायै, शिवजायायै, शिवप्रियायै, हरपत्न्यै, हररतायै, हरजायायै, हरप्रियायै, मदनान्तककान्तायै, मदनान्तक वल्लभायै, गिरिजायै, गिरिकन्यायै, गिरीशवल्लभायै, भूतायै, भव्यायै, भवायै, स्पष्टायै, पावन्यै, परपालिन्यै, अदृश्यायै, व्यक्तरूपायै, इष्टानिष्ट प्रवर्धिन्यै, अच्युतायै, अच्युतप्राणायै, प्रमदायै, वासवेश्वर्यै, अपांनिधिसमूद्भूतायै, धारिण्यै, प्रतिष्ठितायै, उद्भवायै, क्षोभणायै, क्षेमायै, श्रीगर्भायै, परमेश्वर्यै, कमलायै, पुष्पदेहायै, कामिन्यै, कञ्जलोचनायै, शरण्यायै, कमलायै, प्रीत्यै, विमलायै, आनन्दवर्धिन्यै, कपर्दिन्यै, करालायै, निर्मलायै, देवरूपिण्यै, उदीर्णभूषणायै, भव्यायै, सुरसेनायै, महोदर्यै, श्रीमत्यै, शिशिरायै, नव्यायै, शिशिराचलकन्यकायै, सुरमान्यायै, सुरश्रेष्ठायै, ज्येष्ठायै, प्राणेश्वर्यै, स्थिरायै, तमोघ्न्यै, ध्वान्तसंहन्त्र्यै, प्रयतात्मायै, पतिव्रतायै, प्रद्योतिन्यै, रथारूढायै, सर्वलोक प्रकाशिन्यै, मेधाविन्यै, महावीर्यायै, हंस्यै, संसारतारिण्यै, प्रणतप्राणिनामार्तिहारिण्यै, दैत्यनाशिन्यै, डाकिन्यै, शाकिनीदेव्यै, वरखट्वाङ्गधारिण्यै, कौमुद्यै, कुमुदानन्दायै, कौलिकायै, कुलजायै, अमरायै, गर्वितायै, गुणसम्पन्नायै, नगजायै, खगवाहिन्यै, चन्द्राननायै, महोग्रायै, चारुमूर्धज शोभनायै, मनोज्ञायै, माधव्यै, मान्यायै, माननीयायै तथा सतांसुहृदायै।।४०२।।

ज्येष्ठा श्रेष्ठा मघा पुष्या धनिष्ठा पूर्वफाल्गुनी।
रक्तबीजनिहन्त्री च रक्तबीजविनाशिनी।।७८।।

चण्डमुण्डनिहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी।
कर्त्री हर्त्री सुकर्त्री च विमलामलवाहिनी।।७९।।
विमला भास्करी वीणा महिषासुरघातिनी।
कालिन्दी यमुना वृद्धा सुरभिः बालिका सती।।८०।।
कौशल्या कौमुदी मैत्रीरूपिणी चाप्यरुन्धती।
पुरारिगृहिणी पूर्णा पूर्णानन्दस्वरूपिणी।।८१।।
पुण्डरीकाक्षपत्नी च पुण्डरीकाक्षवल्लभा।
संपूर्णचन्द्रवदना बालचन्द्रसमप्रभा।।८२।।
रेवती रमणी चित्रा चित्राम्बरविभूषणा।
सीता वीणावती चैव यशोदा विजया प्रिया।।८३।।
नवपुष्पसमुद्भूता नवपुष्पोत्सवोत्सवा।
नवपुष्पस्रजामाला माल्यभूषणभूषिता।।८४।।
नवपुष्पसमप्राणा नवपुष्पोत्सवप्रिया।
प्रेतमण्डलमध्यस्था सर्वाङ्गसुन्दरी शिवा।।८५।।
नवपुष्पात्मिका षष्ठी पुष्पस्तवकमण्डला।
नवपुष्पगुणोपेता श्मशानभैरवप्रिया।।८६।।
कुलशास्त्रप्रदीपा च कुलमार्गप्रवर्द्धिनी।
श्मशानभैरवी काली भैरवी भैरवप्रिया।।८७।।
आनन्दभैरवी ध्येया भैरवी कुरुभैरवी।
महाभैरवसंप्रीता भैरवीकुलमोहिनी।।८८।।
श्रीविद्याभैरवी नीतिभैरवी गुणभैरवी।
संमोहभैरवी पुष्टिभैरवी तुष्टिभैरवी।।८९।।
संहारभैरवी सृष्टिभैरवी स्थितिभैरवी।
आनन्दभैरवी वीरा सुन्दरी स्थितिसुन्दरी।।९०।।
गुणानन्दस्वरूपा च सुन्दरी कालरूपिणी।
श्रीमायासुन्दरी सौम्यसुन्दरी लोकसुन्दरी।।९१।।
श्रीविद्यामोहिनी बुद्धिर्महाबुद्धिस्वरूपिणी।
मल्लिका हाररसिका हार(ा)लम्बनसुन्दरी।।९२।।

ज्येष्ठायै, श्रेष्ठायै, मघायै, पुष्यायै, धनिष्ठायै, पूर्वफाल्गुन्यै, रक्तबीजनिहन्त्र्यै, रक्तबीजविनाशिन्यै, चण्डमुण्डनिहन्त्र्यै, चण्डमुण्डविनाशिन्यै, कर्त्र्यै, हर्त्र्यै, सुकर्त्र्यै, विमलावाहिन्यै, अमलावाहिन्यै, विमलायै, भास्कर्यै, वीणायै, महिषासुर

घातिन्यै, कालिन्द्यै, यमुनायै, वृद्धायै, सुरभ्यै, बालिकायै, सत्यै, कौशल्यायै, कौमुद्यै, मैत्रीरूपिण्यै, अरुन्धत्यै, पुरारिगृहिण्यै, पूर्णायै, पूर्णानन्दरूपिण्यै, पुण्डरीकाक्षपत्न्यै, पुण्डरीकाक्षवल्लभायै, सम्पूर्णचन्द्रवदनायै, बालचन्द्र समप्रभायै, रेवत्यै, रमण्यै, चित्रायै, चित्राम्बरविभूषणायै, सीतायै, वीणावत्यै, यशोदायै, विजयायै, प्रियायै, नवपुष्पसमुद्भूतायै, नवपुष्पोत्सवोत्सवायै, नवपुष्पस्रजायै, नवपुष्पमालायै, (नवपुष्प) माल्यभूषणभूषितायै, नवपुष्पसमायै, नवपुष्प प्राणायै, नवपुष्पोत्सवप्रियायै, प्रेतमण्डलमध्यस्थायै, सर्वाङ्गसुन्दर्यै, शिवायै, नवपुष्पात्मिकायै, षष्ठ्यै, पुष्पस्तवकमण्डलायै, नवपुष्पगुणोपेतायै, श्मशानभैरवप्रियायै, कुलशास्त्रप्रदीपायै, कुलमार्गप्रवर्धिन्यै, श्मशानभैरव्यै, काल्यै, भैरव्यै, कुलभैरव्यै, भैरवप्रियायै, आनन्दभैरव्यै, ध्येयायै, कुरुभैरव्यै, महाभैरव सम्प्रीतायै, भैरवीकुलमोहिन्यै, श्रीविद्याभैरव्यै, नीतिभैरव्यै, गुणभैरव्यै, सम्मोहभैरव्यै, पुष्टि भैरव्यै, स्थिति भैरव्यै, तुष्टिभैरव्यै, संहारभैरव्यै, सृष्टिभैरव्यै, आनन्दभैरव्यै, वीरायै, सुन्दर्यै, स्थितिसुन्दर्यै, गुणानन्दस्वरूपायै, कालरूपिण्यै, श्री मायासुन्दर्यै, सौम्यसुन्दर्यै, लोकसुन्दर्यै, श्रीविद्यामोहिन्यै, बुद्धयै, महाबुद्धिस्वरूपिण्यै, मल्लिकायै, हाररसिकायै तथा हारालम्बन सुन्दर्यै।।४९९।।

नीलपङ्कजवर्णा च नागकेसरभूषिता।
जपाकुसुमसङ्काशा जपाकुसुमशोभिता।।९३।।
प्रिया प्रियङ्करी विष्णोर्दानवेन्द्रविनाशिनी।
ज्ञानेश्वरी ज्ञानदात्री ज्ञानानन्दप्रदायिनी।।९४।।
गुणगौरवसंपन्ना गुणशीलसमन्विता।
रूपयौवनसंपन्ना रूपयौवनशोभिता।।९५।।
गुणाश्रया गुणरता गुणगौरवसुन्दरी।
मदिरामोदमत्ता च ताटङ्कद्वयशोभिता।।९६।।
वृक्षमूलस्थिता देवी वृक्षशाखोपरिस्थिता।
तालमध्याग्रनिलया वृक्षमध्यनिवासिनी।।९७।।
स्वयंम्भूपुष्पसंकाशा स्वयम्भूपुष्पधारिणी।
स्वयम्भूकुसुमप्रीता स्वयम्भूपुष्पशोभिनी।।९८।।
स्वयम्भूपुष्परसिका नग्ना ध्यानवती सुधा।
शुक्रप्रिया शुक्ररता शुक्रमज्जनतत्परा।।९९।।
पूर्णपर्णा सुपर्णा च निष्पर्णा पापनाशिनी।
मदिरामोदसंपन्ना मदिरामोदधारिणी।।१००।।

सर्वाश्रया सर्वगुणा नन्दनन्दनधारिणी।
नारीपुष्पसमुद्भृता नारीपुष्पोत्सवोत्सवा॥१०१॥
नारीपुष्पसमप्राणा नारीपुष्परता मृगी।
सर्वकालोद्भवप्रीता सर्वकालोद्भवोत्सवा॥१०२॥
चतुर्भुजा दशभुजा अष्टादशभुजा तथा।
द्विभुजा षड्भुजा प्रीता रक्तपङ्कजशोभिता॥१०३॥
कौबेरी कौरवी कौर्या कुरुकुल्ला कपालिनी।
सुदीर्घकदलीजङ्घा रम्भोरू रामवल्लभा॥१०४॥
निशाचरी निशामूर्तिर्निशाचन्द्रसमप्रभा।
चान्द्री चान्द्रकला चन्द्रा चारुचन्द्रनिभानना॥१०५॥
(श्रो?स्रो)तस्वती स्रुतिमती सर्वदुर्गतिनाशिनी।
सर्वाधारा सर्वमयी सर्वानन्दस्वरूपिणी॥१०६॥
सर्वचक्रेश्वरी सर्वा सर्वमन्त्रमयी शुभा।
सहस्रनयनप्राणा सहस्रनयनप्रिया॥१०७॥
सहस्रशीर्षा सुषमा सदम्भा सर्वभक्षिका।
यष्टिका यष्टिचक्रस्था षड्वर्गफलदायिनी॥१०८॥
षड्विंशपद्ममध्यस्था षड्विंशकुलमध्यगा।
हूँकारवर्णनिलया हूँकाराक्षरभूषणा॥१०९॥
हकारवर्णनिलया हकाराक्षरभूषणा।
हारिणी हारवलिता हारहीरकभूषणा॥११०॥
ह्रींकारबीजसहिता ह्रींकारैरुपशोभिता ।

नीलपङ्कजवर्णायै, नागकेसरविभूषितायै, जपाकुसुमसङ्काशायै, जपाकुसुम शोभितायै, प्रियायै, विष्णु-प्रियङ्कर्यै, दानवेन्द्रविनाशिन्यै, ज्ञानेश्वर्यै, ज्ञानदात्र्यै, ज्ञानानन्द प्रदायिन्यै, गुणगौरवसम्पन्नायै, गुणशील समन्वितायै, रूपयौवनसम्पन्नायै, रूपयौवनशोभितायै, गुणाश्रयायै, गुणरतायै, गुणगौरवसुन्दर्यै, मदिरामोदमत्तायै, ताटङ्कद्वय शोभितायै, वृक्षमूलस्थितायै, वृक्षशाखोपरिस्थितायै, तालमध्याग्रनिलयायै, वृक्षमध्यनिवासिन्यै, स्वयम्भूपुष्पसङ्काशायै, स्वयम्भूपुष्पधारिण्यै, स्वयम्भूपुष्पप्रीतायै, स्वयम्भूपुष्पशोभिन्यै, स्वयम्भूपुष्परसिकायै, नग्नायै, ध्यानवत्यै, सुधायै, शुक्रप्रियायै, शुक्ररतायै, शुक्रमज्जनतत्परायै, पूर्णपर्णायै, सुपर्णायै, निष्पर्णायै, पापनाशिन्यै, मदिरामोदसम्पन्नायै, मदिरामोदधारिण्यै, सर्वाश्रयायै, सर्वगुणायै, नन्दनन्दनधारिण्यै, नारीपुष्पसमुद्भूतायै, नारीपुष्पोत्सवोत्सवायै, नारीपुष्पसमप्राणायै, नारीपुष्परतायै, मृग्यै, सर्वकालोद्भवप्रीतायै, सर्वकालोद्भवोत्सवायै, चतुर्भुजायै, दशभुजायै,

अष्टादशभुजायै, द्विभुजायै, षड्भुजायै, प्रीतायै, रक्तपङ्कजशोभितायै, कौबेर्यै, कौरव्यै, कौर्यायै, कुरुकुल्लुकायै, कपालिन्यै, सुदीर्घकदलीजंघायै, रम्भोर्वै, रामवल्लभायै, निशाचर्यै, निशामूर्त्यै, निशाचन्द्रसमप्रभायै, चान्द्र्यै, चान्द्रकलायै, चन्द्रायै, चारुचन्द्रनिभाननायै, स्रोतस्वत्यै, स्रुतिमत्यै, सर्वदुर्गतिनाशिन्यै, सर्वधारायै, सर्वमय्यै, सर्वानन्दस्वरूपिण्यै, सर्वचक्रेश्वर्यै, सर्वायै, सर्वमन्त्रमय्यै, शुभायै, सहस्रनयनप्राणायै, सहस्रनयनप्रियायै, सहस्रशीर्षायै, सुषमायै, सदम्भायै, सर्वभक्षिकायै, यष्टिकायै, यष्टिचक्रस्थायै, षड्वर्गफलदायिन्यै, षड्विंशपद्ममध्यस्थायै, षड्विंशकुलमध्यगायै, हूँकारवर्णनिलयायै, हूँकाराक्षरभूषणायै, हकारवर्णनिलयायै, हकाराक्षरभूषणायै, हारिण्यै, हारवलितायै, हारहीरकभूषणायै, ह्रींकारबीजसहितायै तथा ह्रींकारैरुपशोभितायै।।६०१।।

कन्दर्पस्य कला कुन्दा कौलिनी कुलदर्पिता।।१११।।
केतकीकुसुमप्राणा केतकीकृतभूषणा।
केतकीकुसुमासक्ता केतकीपरिभूषिता।।११२।।
कर्पूरपूर्णवदना महामाया महेश्वरी।
कला केलिः क्रिया कीर्णा कदम्बकुसुमोत्सुका।।११३।।
कादम्बिनी करिशुण्डा कुञ्जेरेश्वरगामिनी।
खर्वा सुखञ्जनयना खञ्जनद्वन्द्वभूषणा।।११४।।
खद्योत इव दुर्लक्षा खद्योत इव चञ्चला।
महामाया जगद्धात्री गीतवाद्यप्रिया रतिः।।११५।।
गणेश्वरी गणेज्या च गुणपूज्या गुणप्रदा।
गुणाढ्या गुणसंपन्ना गुणदात्री गुणात्मिका।।११६।।
गुर्वी गुरुतरा गौरी गाणपत्यफलप्रदा।
महाविद्या महामेधा तुलिनी गणमोहिनी।।११७।।
भव्या भवप्रिया भाव्या भावनीया भवात्मिका।
घर्घरा घोरवदना घोरदैत्यविनाशिनी।।११८।।
घोरा घोरवती घोष्या घोरपुत्री घनाचला।
चर्चरी चारुनयना चारुवक्त्रा चतुर्गुणा।।११९।।
चतुर्वेदमयी चण्डी चन्द्रास्या चतुरानना।
चलच्चकोरनयना चलत्खञ्जनलोचना।।१२०।।
चलदम्भोजनिलया चलदम्भोजशोभिता।
छत्री छत्रप्रिया छत्रा छत्रचामरशोभिता।।१२१।।
छिन्नछद्मा छिन्नशिराश्छिन्ननासा छलात्मिका।
छलाढ्या छलसंक्रस्ता छलरूपा छलस्थिरा।।१२२।।

छकारवर्णनिलया छकाराढ्या छलप्रिया।
छद्मिनी छद्मनिरता छद्मच्छद्मनिवासिनी॥१२३॥
जगन्नाथप्रिया जीवा जगन्मुक्तिकरी मता।
जीर्णा जीमूतवनिता जीमूतैरुपशोभिता॥१२४॥
जामातृवरदा जम्भा जमलार्जुनभञ्जिनी।
झर्झरी झाकृतिर्झल्ली झरी झर्झरिका तथा॥१२५॥

कन्दर्पकलायै, कुन्दायै, कौलिन्यै, कुलदर्पितायै, केतकीकुसुम प्राणायै, केतकीकृतभूषणायै, केतकी कुसुमासक्तायै, केतकीपरिभूषितायै, कर्पूरपूर्णवदनायै, महामायायै, महेश्वर्यै, कलायै, केल्यै, क्रियायै, कीर्णायै, कदम्बकुसुमोत्सुकायै, कादम्बिन्यै, करिशुण्डायै, कुञ्जरेश्वरगामिन्यै, खर्वायै, सुखञ्जनयनायै, खञ्जनद्वन्द्वभूषणायै, खद्योत इव दुर्लक्षायै, खद्योत इव चञ्चलायै, जगद्धात्र्यै, गीतवाद्यप्रियायै, रत्यै, गणेश्वर्यै, गणेज्यायै, गुण पूज्यायै, गुण प्रदायै, गुणाढ्यायै, गुणसम्पन्नायै, गुणदात्र्यै, गुणात्मिकायै, गुर्व्यै, गुरुतरायै, गौर्यै, गाणपत्यफलप्रदायै, महाविद्यायै, महामेधायै, तुलिन्यै, गणमोहिन्यै, भव्यायै, भवप्रियायै, भाव्यायै, भावनीयायै, भवात्मिकायै, घर्घरायै, घोरवदनायै, घोरदैत्यविनाशिन्यै, घोरायै, घोरवत्यै, घोष्यायै, घोरपुत्र्यै, घनाचलायै, चर्च्यै, चारुनयनायै, चारुवक्त्रायै, चतुर्गुणायै, चतुर्वेदमय्यै, चण्ड्यै, चन्द्रास्यायै, चतुराननायै, चलच्चकोरनयनायै, चलत्खञ्जनलोचनायै, चलदम्भोजनिलयायै, चलदम्भोजशोभितायै, छत्र्यै, छत्रप्रियायै, छत्रायै, छत्रचामरशोभितायै, छिन्नछदायै, छिन्नशिरायै, छिन्ननासायै, छलात्मिकायै, छलाढ्यायै, छलसन्त्रस्तायै, छलरूपायै, छलस्थिरायै, छकारवर्णनिलयायै, छकाराढ्यायै, छलप्रियायै, छद्मिन्यै, छद्मनिरतायै, छद्मच्छद्मनिवासिन्यै, जगन्नाथ प्रियायै, जीवायै, जगन्मुक्तिकर्यै, मतायै, जीर्णायै, जीमूतवनितायै, जीमूतैरुपशोभितायै, जामातृवरदायै, जम्भायै, जमलार्जुनभञ्जिन्यै, झर्झर्यै, झाकृत्यै, झल्ल्यै, झर्यै, झर्झरिकायै॥७०२॥

टङ्कारकारिणी टीका सर्वटङ्कारकारिणी।
ठकाराङ्गी डमरुका डाकारा डमरुप्रिया॥१२६॥
ढक्कारावरता नित्या तुलसी मणिभूषिता।
तुला चा तोलिका तीर्णा तारा तारणिका तथा॥१२७॥
तन्त्रविज्ञा तन्त्ररता तन्त्रविद्या च तन्त्रदा।
तान्त्रिकी तन्त्रयोगा च तन्त्रसारा च तन्त्रिका॥१२८॥
तन्त्रधारी तन्त्रकरी सर्वतन्त्रस्वरूपिणी।
तुहिनांशुसमानास्या तुहिनांशुसमप्रभा॥१२९॥

तुषाराकरतुल्याङ्गी तुषाराधारसुन्दरी।
तन्त्ररूपा तन्त्रेश्वरी तन्त्रसारस्वरूपिणी॥१३०॥
तुषारधामतुल्यास्या तुषारांशुसमप्रभा।
तुषाराद्रिसुता ताक्ष्र्या ताराङ्गी तालसुन्दरी॥१३१॥
तारस्वरेण सहिता तारस्वरविभूषिता।
थकारकूटनिलया थकाराक्षरमालिनी॥१३२॥
दयावती दीनरता दु:खदारिद्र्यनाशिनी।
दौर्भाग्यदु:खदलिनी दौर्भाग्यपदनाशिनी॥१३३॥
दुहिता दीनवत्सला दानवेन्द्रविनाशिनी।
दानपात्री दानरता दानसंमानतोषिता॥१३४॥
दान्त्यादिसेविता दान्ता दया दामोदरप्रिया।
दधीचिवरदा तुष्टा दानवेन्द्रविमर्दिनी॥१३५॥
दीर्घनेत्रा दीर्घकचा दीर्घनासा च दीर्घिका।
दारिद्र्यदु:खसंनाशा दारिद्र्यदु:खनाशिनी॥१३६॥
दाम्भिका दन्तुरा दम्भा दम्भासुरवरप्रदा।
धनधान्यप्रदा धन्या धनेश्वरधनप्रदा॥१३७॥
धर्मपत्नी धर्मरता धर्माधर्मविनाशिनी।
धर्मिणी धर्मिका धर्म्या धर्माधर्मविवर्द्धिनी॥१३८॥
धनेश्वरी धर्मरता धर्मानन्दप्रवर्द्धिनी।
धनाध्यक्षा धनप्रीता धनाढ्या धनतोषिता॥१३९॥
धीरा धैर्यवती धिष्ण्या धवलाम्भोजसंनिभा।
धरिणी धारिणी धात्री धूरणी धरित्री धरा॥१४०॥

टङ्कारकारिण्यै, टीकायै, सर्वटङ्कारकारिण्यै, ठंकाराङ्ग्यै, डमरुकायै, डाकारायै (डकारायै), डमरुप्रियायै, ढक्कारावरतायै, नित्यायै, तुलस्यै, मणिभूषितायै, तुलायै, तोलिकायै, तीर्णायै, तारायै, तारणिकायै, तन्त्रविज्ञायै, तन्त्ररतायै, तन्त्रविद्यायै, तन्त्रदायै, तान्त्रिक्यै, तन्त्रयोग्यायै, तन्त्रसारायै, तन्त्रिकायै, तन्त्रधार्यै, तन्त्रकर्यै, सर्वतन्त्रस्वरूपिण्यै, तुहिनांशुसमानास्यायै, तुहिनांशुसमप्रभायै, तुषाराकरतुल्याङ्ग्यै, तुषाराधारसुन्दर्यै, तन्त्ररूपायै, तन्त्रेश्वर्यै, तन्त्रसारस्वरूपिण्यै, तुषारधामतुल्यास्यायै, तुषरांशुसमप्रभायै, तुषाराद्रिसुतायै, ताक्ष्र्यायै, ताराङ्ग्यै, तालसुन्दर्यै, तारस्वर सहितायै, तारस्वर विभूषितायै, थकारकूट निलयायै, थकाराक्षरमालिन्यै, दयावत्यै, दीनरतायै, दुख-दरिद्रनाशिन्यै, दौर्भाग्यदुखदलिन्यै,

दौर्भाग्यपदनाशिन्यै, दुहितायै, दीनवत्सलायै, दानवेन्द्रविनाशिन्यै, दानपात्र्यै, दानरतायै, दानसम्मानतोषितायै, दान्त्यादिसेवितायै, दान्तायै, दयायै, दामोदर प्रियायै, दधीचिवरदायै, तुष्टायै, दानवेन्द्रविमर्दिन्यै, दीर्घनेत्रायै, दीर्घकचायै, दीर्घनासायै, दीर्घिकायै, दारिद्र्यदुखसन्नाशायै, दारिद्र्यदुखनाशिन्यै, दम्भिकायै, दन्तुरायै, दम्भायै, दम्भासुर वरप्रदायै, धन धान्य प्रदायै, धन्यायै, धनेश्वर धनप्रदायै, धर्मपत्न्यै, धर्मरतायै, धर्माधर्मविनाशिन्यै, धर्मिण्यै, धर्मिकायै, धर्म्यायै, धर्माधर्मविवर्धिन्यै, धनेश्वर्यै, धर्मानन्द प्रवर्धिन्यै, धनाध्यक्षायै, धनप्रीतायै, धनाढ्यायै, धनतोषितायै, धीरायै, धैर्यवत्यै, धिष्ण्यायै, धवलाम्भोजसन्निभायै, धरिण्यै, धारिण्यै, धात्र्यै, धूरण्यै, धरित्र्यै तथा धरायै।।८००।।

धार्मिका धर्मसहिता धर्मनिन्दकवर्जिता।
नवीना नगजा निम्ना निम्ननाभिर्नगेश्वरी।।१४१।।
नूतनाम्भोजनयना नवीनाम्भोजसुन्दरी।
नागरी नगरज्येष्ठा नगराजसुता नगा।।१४२।।
नागराजकृततोषा नागराजविभूषिता।
नागेश्वरी नागरुढा नागराजकुलेश्वरी।।१४३।।
नवीनेन्दुकला नान्दी नन्दिकेश्वरवल्लभा।
नीरजा नीरजाक्षी च नीरजद्वन्द्वलोचना।।१४४।।
नीरा नीरभवा वाणी नीरनिर्मलदेहिनी।
नागयज्ञोपवीताढ्या नगायज्ञोपवीतिका।।१४५।।
नागकेसरसंतुष्टा नागकेसरमालिनी।
नवीनकेतकीकुन्द-मल्लिकाम्भोजभूषिता।।१४६।।
नायिका नायकप्रीता नायकप्रेमभूषिता।
नायकप्रेमसहिता नायकप्रेमभाविता।।१४७।।
नायकानन्दनिलया नायकानन्दकारिणी।
नर्मकर्मरता नित्या नर्मकर्मफलप्रदा।।१४८।।
नर्मकर्मप्रिया नर्मा नर्मकर्मकृतालया।
नर्मप्रीता नर्मरता नर्मध्यानपरायणा।।१४९।।
पौष्णप्रिया च पौष्पेज्या पुष्पदामविभूषिता।
पुण्यदा पूर्णिमा पूर्णा कोटिपुण्यफलप्रदा।।१५०।।
पुराणागमगोप्या च पुराणागमगोपिता।
पुराणगोचरा पूर्णा पूर्वा प्रौढा विलासिनी।।१५१।।

प्रह्लादहृदयाह्लादगेहिनी पुण्यचारिणी।
फाल्गुनी फाल्गुनप्रीता फाल्गुनप्रेमधारिणी।।१५२।।
फाल्गुनप्रेमदा चैव फणिराजविभूषिता।
फणिकाञ्ची फणिप्रीता फणिहारविभूषिता।।१५३।।
फणीशकृतसर्वाङ्गभूषणा फणिहारिणी।
फणिशीर्षा फणिरता फणिकङ्कणधारिणी।।१५४।।
फलदा त्रिफला शक्ता फलाभरणभूषिता।
फकारकूटसर्वाङ्गी फाल्गुनानन्दवर्द्धिनी।।१५५।।
वासुदेवरता विज्ञा विज्ञविज्ञानकारिणी।
वीणावती बलाकीर्णा बालपीयूषरोचिका।।१५६।।
बाला वसुमती विद्या विद्याहारविभूषिता।
विद्यावती वैद्यप्रदप्रीता वैवस्वती बलि:।।१५७।।
बलिविध्वंसिनी चैव वराङ्गस्था वरानना।
विष्णोर्वक्षःस्थलस्था च बाग्वती विन्ध्यवासिनी।।१५८।।

धार्मिकायै, धर्मसहितायै, धर्मनिन्दक वर्जितायै, नवीनायै, नगजायै, निम्नायै, निम्ननाभ्यै, नगेश्वर्यै, नूतनाम्भोजनयनायै, नवीनाम्भोजनयनायै, नागर्यै, नगरज्येष्ठायै, नगराजसुतायै, नगायै, नागराजकृततोषायै, नागराजविभूषितायै, नागेश्वर्यै, नागरूढायै, नागराजकुलैश्वर्यै,नवीनेन्दुकलायै, नान्द्यै, नन्दिकेश्वरवल्लभायै, नीरजायै, नीरजाक्ष्यै, नीरजद्वन्द्वलोचनायै, नीरायै, नीरभवायै, वाण्यै, नीरनिर्मलदेहिन्यै, नागयज्ञोपवीताढ्यायै, नागयज्ञोपवीतकायै, नागकेसरसन्तुष्टायै, नागकेसरमालिन्यै, नवीनकेतकी कुन्द मल्लिकाम्भोजभूषितायै, नायिकायै, नायकप्रीतायै, नायकप्रेमभूषितायै, नायकप्रेमसहितायै, नायकप्रेमभवितायै, नायकानन्दनिलयायै, नायकानन्द कारिण्यै, नर्मकर्मरतायै, नित्यायै, नर्मकर्मफलप्रदायै, नर्मकर्मप्रियायै, नर्मायै, नर्मकर्मकृतालयायै, नर्मप्रीतायै, नर्मरतायै, नर्मध्यानपरायणायै, पौष्णप्रियायै, पौष्पेज्यायै, पुष्पदामविभूषितायै, पुण्यदायै, पूर्णिमायै, पूर्णायै, कोटिपुण्यफल प्रदायै, पुराणागमगोप्यायै, पुराणागमगोपितायै, पुराणगोचरायै, पूर्वायै, प्रौढायै, विलासिन्यै, प्रह्लाद हृदयाह्लादगेहिन्यै, पुण्यचारिण्यै, फाल्गुन्यै, फाल्गुन प्रीतायै, फाल्गुन प्रेम धारिण्यै, फाल्गुन प्रेमदायै, फणिराज विभूषितायै, फणिकाञ्च्यै, फणिप्रीतायै, फणिहारविभूषितायै, फणीशकृत सर्वाङ्गभूषणायै, फणिहारिण्यै, फणिशीर्षायै, फणिरतायै, फणिकङ्कणधारिण्यै, फलदायै, त्रिफलायै, शक्तायै, फलाभरणभूषितायै, फकारकूटसर्वाङ्ग्यै, फाल्गुनानन्दवर्धिन्यै, वासुदेवरतायै, विज्ञायै, विज्ञविज्ञानकारिण्यै, वीणावत्यै,

बलाकीर्णायै, बालपीयूषरोचिकायै, बालायै, वसुमत्यै, विद्यायै, विद्याहार विभूषितायै, विद्यावत्यै, वैद्यप्रदप्रीतायै, वैवस्वत्यै,वल्यै, बलि विध्वंसिन्यै, वराङ्गस्थायै, वराननायै, विष्णोर्वक्षःस्थलस्थायै, वाग्वत्यै तथा विन्ध्यवासिन्यै।।९०४।।

भीतिदा भयदा भानोरंशुजालसमप्रभा।
भार्गवेज्या भृगोः पूज्या भरद्वाजनमस्कृता।।१५९।।
भीतिहा भयसंहन्त्री भीमाकारा च सुन्दरी।
मायावती मानरता मानसंमानतत्परा।।१६०।।
माधवानन्ददा माध्वी मदिरामुदितेक्षणा।
महोत्सवगुणोपेता महती च महद्गुणा।।१६१।।
मदिरामोदनिरता मदिरामज्जने रता।
यशोधरी यशोविद्या यशोदानन्दवर्द्धिनी।।१६२।।
यशःकर्पूरधवला यशोदामविभूषिता।
यमराजप्रिया योगमार्गानन्दप्रवर्द्धिनी।।१६३।।
यमस्वसा च यमुना योगमार्गप्रवर्द्धिनी।
यादवानन्दकर्त्री च यादवानन्दवर्द्धिनी।।१६४।।
यज्ञप्रीता यज्ञमयी यज्ञकर्मविभूषिता।
रामप्रीता रामरता रामतोषणतत्परा।।१६५।।
राज्ञी राजकुलेज्या च राजराजेश्वरी रमा।
रमणी रामणी रम्या रामानन्दप्रदायिनी।।१६६।।
रजनीकरपूर्णास्या रक्तोत्पलविलोचना।
लाङ्गलिप्रेमसंतुष्टा लाङ्गलिप्रणयप्रिया।।१६७।।
लाक्षारुणा च ललना लीला लीलावती लया।
लङ्केश्वरगुणप्रीता लङ्केश्वरदायिनी।।१६८।।
लवङ्गीकुसुमप्रीता लवङ्गकुसुमस्रजा।
धाता विवस्वद्गृहिणी विवस्वत्प्रेमधारिणी।।१६९।।
शवोपरिसमासीना शववक्षःस्थलस्थिता।
शरणागतरक्षित्री शरण्या श्रीः शरद्गुणा।।१७०।।
षट्कोणमध्यमध्यस्था संपद(ह?र्थ)निषेविता।
हूँकाराकारिणी देवी हूँकाररूपशोभिता।।१७१।।
क्षेमङ्करी तथा क्षेमा क्षेमधामविवर्द्धिनी।
क्षेमाम्नाया तथाज्ञा च इडा ईश्वरवल्लभा।।१७२।।

उग्रदक्षा तथा चोग्रा अकारादिस्वरोद्भवा।
ऋकारवर्णकूटस्था ॠकारस्वरभूषिता।।१७३।।
एकारा च तथा चैका एकाराक्षरवासिता।
ऐष्टा चैषा तथा चौषा औकाराक्षरधारिणी।।१७४।।
अंअःकारस्वरूपा च सर्वागमसुगोपिता।
इत्येतत् कथितं देवि तारानामसहस्रकम्।।१७५।।

भीतिदायै, भयदायै, भानोरंशुजालसमप्रभायै, भार्गवेज्यायै, भृगुपूज्यायै, भरद्वाजनमस्कृतायै, भीतिहायै, भयसंहन्त्र्यै, भीमाकारायै, मायावत्यै, मानरतायै, मानसम्मान तत्परायै, माधवानन्ददायै, माध्व्यै, मदिरायै, मुदितेक्षणायै, महोत्सव गुणोपेतायै, महत्यै, महद्गुणायै, मदिरामोद निरतायै, मदिरमज्जनरतायै, यशोधर्यै, यशोविद्यायै, यशोदानन्दवर्धिन्यै, यशःकर्पूरधवलायै, यशोदामविभूषितायै, यमराज प्रियायै, यमुनायै, योगमार्गानन्दप्रवर्धिन्यै, यमस्वसायै, योगमार्गप्रवर्धिन्यै, यादवानन्दकर्त्र्यै, यादवानन्दवर्धिन्यै, यज्ञप्रीतायै, यज्ञमय्यै, यज्ञकर्मविभूषितायै, रामप्रीतायै, रामरतायै, रामतोषण तत्परायै, राज्ञ्यै, राजकुलेज्यायै, राजराजेश्वर्यै, रमायै, रमण्यै, रामण्यै, रम्यायै, रामानन्दप्रदायिन्यै, रजनीकरपूर्णास्यायै, रक्तोपल विलोचनायै, लाङ्गलिप्रेमसन्तुष्टायै, लाङ्गलिप्रणयप्रियायै, लाक्षायै, अरुणायै, ललनायै, लीलायै, लीलावत्यै, लयायै, लङ्केश्वरगुणप्रीतायै, लङ्केश्वरवरदायिन्यै, लवङ्गीकुसुमप्रीतायै, लवङ्गकुसुमस्रजायै, धात्र्यै, विवस्वदगृहिण्यै, विववस्त् प्रेमधारिण्यै, शवोपरिसमासीनायै, शववक्षःस्थलस्थितायै, शरणागतरक्षित्र्यै, शरण्यायै, श्रियै, शरद्गुणायै, षट्कोणमध्यमध्यस्थायै, सम्पदर्थनिषेवितायै, हूँकार कारिण्यै, हूँकाररूपशोभितायै, क्षेमंकर्यै, क्षमायै, क्षेमायै, क्षेमधामविवर्धिन्यै, क्षेमाम्नायै, आज्ञायै, इडायै, ईश्वरवल्लभायै, उग्रदक्षायै, उग्रायै, अकारादिस्वरोद्भवायै, ऋकारवर्णकूटस्थायै, ॠकारस्वरभूषितायै, एकारायै, एकायै, एकाराक्षरवासितायै, ऐष्टायै, ऐषायै, ओषायै, औकाराक्षरधारिण्यै, अंअःकारस्वरूपायै तथा सर्वागम सुगोपितायै।।१०००।। इस प्रकार हे देवि! मैंने तुमसे तारासहस्रनाम का वर्णन किया।

।। तारासहस्रनामस्तोत्रपाठ-फलश्रुतिः।।

य इदं पठति स्तोत्रं प्रत्यहं भक्तिभावतः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ सन्ध्ययोरुभयोरपि।।१७६।।
स्तवराजस्य पाठेन राजा भवति किङ्करः।
सर्वागमेषु पूज्यः स्यात् सर्वतन्त्रे स्वयं हरः।।१७७।।
शिवस्थाने श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे।
य पठेच्छृणुयाद् वापि स योगी नात्र संशयः।।१७८।।

यानि नामानि सन्त्यस्मिन् प्रसङ्गाद् मुरवैरिणः।
ग्राह्याणि तानि कल्याणि नान्यान्यपि कदाचन॥१७९॥
हरेर्नाम न गृह्णीयाद् न स्पृशेत् तुलसीदलम्।
नान्यचिन्ता प्रकर्तव्या नान्यनिन्दा कदाचन॥१८०॥

जो भी मनुष्य इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ दिन में, रात्रि में अथवा दोनों संध्याओं में प्रतिदिन भक्तिभाव से करता है, इस स्तवराज के पाठ के फलस्वरुप राजा भी उस मनुष्य का सेवक हो जाता है। वह स्वयं समस्त शास्त्रों तथा सभी तन्त्रों में पूज्य शिव के समान ही होता है। जो भी साधक शिवालय, श्मशान, शून्यगृह अथवा चतुष्पथ (चौराहे) पर इस स्तोत्र का पाठ या श्रवण करता है, वह निःसन्देह योगी ही है। इस स्तोत्र में प्रसङ्गवश मुरशत्रु कृष्ण (अथवा विष्णु) से सम्बन्धित जो नाम हैं उन्हीं का ही ग्रहण करना चाहिए, अन्य नामों को स्तोत्र के मध्य में प्रयोग नहीं करना चाहिए। साधक को पाठकाल में (अथवा अन्य समय में भी) इस स्तोत्र में आये हुए विष्णु नामों के अतिरिक्त अन्य विष्णु-नामों का उच्चारण नहीं करना चाहिए तथा तुलसीदल का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। किसी भी अन्य देवता का ध्यान अथवा उसकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिए।

सिन्दूरकरवीराद्यैः पुष्पैर्लोहितकैस्तथा।
योऽर्चयेद् भक्तिभावेन तस्यासाध्यं न किञ्चन॥१८१॥
वातस्तम्भं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः।
वह्नेः स्तम्भं करोत्येव स्तवस्यास्य प्रकीर्तनात्॥१८२॥
श्रियमाकर्षयेत् तूर्णमानृण्यं जायते हठात्।
यथा तृणं दहेद् वह्निस्तथारीन् मर्दयेत् क्षणात्॥१८३॥
मोहयेद् राजपत्नीश्च देवानपि वशं नयेत्।
यः पठेत् शृणुयाद् वापि एकचित्तेन सर्वदा॥१८४॥
दीर्घायुश्च सुखी वाग्मी वाणी तस्य वशङ्करी।
सर्वतीर्थाभिषेकेण गयाश्राद्धेन यत् फलम्॥१८५॥
तत्फलं लभते सत्यं यः पठेदेकचित्ततः।
येषामाराधने श्रद्धा ये तु साधितुमुद्यताः॥१८६॥
तेषां कृतित्वं सर्वं स्याद् गतिर्देवि परा च सा।

जो पुरुष (पाठ से पूर्व) सिन्दूर, करवीर आदि पुष्पों तथा लाल पुष्पों द्वारा देवी की भक्तिभाव से अर्चना करता है, संसार में उसके लिए

कुछ भी असाध्य नहीं है। इस स्तोत्र के पाठ से ही साधक वायु, जल, गति, सूर्य, अग्नि आदि का स्तम्भन करने में समर्थ हो जाता है। वह ऐश्वर्य (लक्ष्मी) का आकर्षण करने में समर्थ हो जाता है और यदि किसी का ऋणी (धन रूप से) है तो शीघ्र ही उससे मुक्त हो जाता है। जैसे अग्नि सरलता एवं शीघ्रतापूर्वक (सूखे) तिनकों (घास के ढेरों) को जला डालता है, उसी प्रकार वह साधक भी शीघ्र ही अपने शत्रुओं का पराभव अथवा विनाश कर देता है। एकाग्रचित्त से सर्वदा इसका पाठ अथवा श्रवण करने वाला व्यक्ति (राजा सहित) राजपत्नी तथा देवताओं को भी अपने वश में कर लेता है। वह दीर्घायु वाला, सर्वदा सुखी, सत्यवादी होता है। उसकी वाणी उसके नियन्त्रण में रहती है अर्थात् किसी को वर अथवा शाप देने में वह समर्थ हो जाता है अथवा उसकी वाणी अपने प्रभाव से दूसरों को वश में करने वाली हो जाती है। सभी तीर्थों में स्नान करने तथा गया तीर्थ में पितरों का श्राद्ध करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे इस स्तोत्र को एकाग्रचित्त से पाठ करने वाला मनुष्य घर बैठे ही प्राप्त कर लेता है। जिन मनुष्यों की भगवती तारा की उपासना में श्रद्धा है तथा जो निरन्तर साधना में प्रयत्नशील है, उनके सम्पूर्ण कर्मों की गति (अन्तिम परिणति) वह परा भगवती ही है अर्थात् उन भक्तों को अपने समस्त कर्मों के फलस्वरुप साक्षात् भगवती की प्राप्ति होती है।

ऋतुयुक्तलतागारे स्थित्वा दण्डेन ताडयेत्।।१८७।।
जप्त्वा स्तुत्वा च भक्तया च गच्छेद् वै तारिणीपदम्।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां शनिवासरे।।१८८।।
संक्रान्त्यां मण्डले रात्रौ अमावास्यां च योऽर्चयेत्।
वर्षं व्याप्य च देवेशि तस्याधीनाश्च सिद्धयः।।१८९।।
सुतहीना च या नारी दौर्भाग्यामयपीडिता।
बन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतगर्भा च याङ्गना।।१९०।।
धनधान्यविहीना च रोगशोकाकुला च या।
सापि चैतद् महादेवि भूर्जपत्रे लेखापयेत्।।१९१।।
सव्ये भुजे च बध्नीयात् सर्वसौख्यवती भवेत्।
एवं पुमानपि प्रायो दुःखेन परिपीडितः।।१९२।।
सभायां व्यसने घोरे विवादे शत्रुसंकटे।
चतुरङ्ग च तथा युद्धे सर्वत्रापत्प्रपीडिते।।१९३।।

स्मरणादेव कल्याणि संक्षयं यान्ति दूरतः।
पूजनीयं प्रयत्नेन शून्यागारे शिवालये॥१९४॥
बिल्वमूले श्मशाने च तटे वा कुलमण्डले।
शर्करासवसंयुक्तैर्भक्तैर्दुग्धैः सपायसैः॥१९५॥
अपूपापिष्टसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च यथोचितैः।
निवेदितं च यद्द्रव्यं भोक्तव्यं च विधानतः॥१९६॥
तन्न चेद् भुज्यते मोहाद् भोक्तुं नेच्छन्ति देवताः।
अनेनैव विधानेन योऽर्चयेत् परमेश्वरीम्॥१९७॥
स भूमिवलये देवि साक्षादीशो न संशयः।
महाशङ्खेन देवेशि सर्वं कार्यं जपादिकम्॥१९८॥

ऋतुयुक्त लता के कुलागार में स्वदण्ड को स्थापित करके बार-बार उसे ताड़ित करते हुए भी बिना किसी विक्षोभ के जो साधक इन सहस्र नामों का पाठ करता हुआ देवी की भक्तिपूर्वक स्तुति करता है, वह भगवती तारा के पद (धाम) को प्राप्त करता है। अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा शनिवार को (अथवा शनिवासरीय इन तिथियों में) सूर्य चन्द्र के ग्रहण काल में एवं अमावस्या की रात्रि में जो साधक भगवती तारा का विशेष रूप से अर्चन करके इस स्तोत्र का पाठ वर्ष पर्यन्त करता है, सारी सिद्धियाँ उसके आधीन (वश में) हो जाती हैं। जो भी स्त्री पुत्र-रहित है, दुर्भाग्य से पीड़ित, बन्ध्या, काक-बन्ध्या(एक ही पुत्र वाली), मृत गर्भा (गर्भ में ही अथवा जन्म लेते ही जिस स्त्री की सन्तान मर जाती है), धनधान्य से रहित अथवा रोग-शोक से सदैव पीड़ित रहने वाली है, हे देवि! यदि वह स्त्री इस स्तोत्र को भोज-पत्र पर लिख (अथवा लिखवा) कर अपनी बायीं भुजा पर बांधकर सदैव धारण किये रहती है तो वह सभी प्रकार के सुखों से सम्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार यदि पुरुष भी विभिन्न प्रकार की आपत्तियों तथा दुखों से पीड़ित है, तो उसे भी उपर्युक्त रूप से इस स्तोत्र को अपनी दाहिनी भुजा (अथवा गले) में धारण करना चाहिए।

सभा के मध्य में (किसी विषय पर वाद-विवाद के समय), विपत्ति में, शत्रुओं के साथ भयंकर संघर्ष की स्थिति में, रण भूमि में चतुरङ्गिणी सेना (अथवा चारों ओर) से घिरकर शत्रुओं (विपत्तियों) द्वारा सब प्रकार से पीड़ित होने पर, हे कल्याणि! जो भी व्यक्ति भक्तिभाव से इस स्तोत्र के माध्यम से भगवती का स्मरण करता है, उसी समय उसकी सारी विपत्तियां दूर से ही पलायन कर (सम्पूर्णतया विनष्ट हो) जाती हैं। संकट-मुक्ति के

पश्चात् (तथा सामान्य रूप से भी) मनुष्य को घर के एकान्त कक्ष (अथवा बिल्कुल ही जनशून्य गृह) शिवालय, विल्वमूल, नदी तट अथवा शक्ति मन्त्र से दीक्षिता शाक्त स्त्रियों के मध्य (उनके साथ बैठकर) भगवती तारा का सामर्थ्यानुसार प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिए। शर्करा-घृत युक्त भात, दूध, खीर, मालपुआ, हलुआ आदि से युक्त जो कुछ भी भोजन के योग्य पदार्थ हो, उसे देवी को नैवेद्य के रूप में अर्पित करना चाहिए। वाममार्गी साधक को देवी के लिए आसव भी अर्पित करना चाहिए। जो भी भोज्यपदार्थ देवी को निवेदित किया गया है उसे स्वयं भी भक्तिपूर्वक प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई साधक देवी को अर्पित नैवेद्यों को मोहवश ग्रहण नहीं करता (नहीं खाता), उसके नैवेद्य को देवता भी ग्रहण करने की इच्छा नहीं करते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिपूर्वक सम्पूर्ण विधि-विधान एवं सामर्थ्य सहित भगवती की अर्चना करता है, हे देवि! वह इस भूमण्डल पर निःसन्देह साक्षात् शिव के समान (हो जाता) है। देवी से सम्बन्धित सभी जप आदि कर्म महाशंख की माला द्वारा ही करना चाहिए।

कुलसर्वस्वकस्यैवं प्रभावो वर्णितो मया।
न शक्यते समाख्यातुं वर्षकोटिशतैरपि॥१९९॥
किञ्चिद् मया च चापल्यात् कथितं परमेश्वरि।
जन्मान्तरसहस्रेण वर्णितुं नैव शक्यते॥२००॥
कुलीनाय प्रदातव्यं ताराभक्तिपराय च।
अन्यभक्ताय नो देयं वैष्णवाय विशेषतः॥२०१॥
कुलीनाय महेच्छाय भक्तिश्रद्धापराय च।
महात्मने सदा देयं परीक्षितगुणाय च॥२०२॥
नाभक्ताय प्रदातव्यं पथ्यन्तरपराय च।
न देयं देवदेवेशि गोप्यं सर्वागमेषु च॥२०३॥
पूजाजपविहीनाय स्त्रीसुरानिन्दकाय च।
न स्तवं दर्शयेत् कापि संदर्श्य शिवहा भवेत्॥२०४॥
पठनीयं सदा देवि सर्वावस्थासु सर्वदा।
यः स्तोत्रं कुलनायिके प्रतिदिनं भक्त्या पठेद् मानवः
स स्याद्वित्तचयैर्धनेश्वरसमो विद्यामदैर्वाक्पतिः।
सौन्दर्येण च मूर्तिमान् मनसिजः कीर्त्या च नारायणः
शक्त्या शङ्कर एव सौख्यविभवैर्भूमेः पतिर्नान्यथा॥२०५॥

इति ते कथितं गुह्यं तारानामसहस्रकम्।
अस्मात् परतरं स्तोत्रं नास्ति तन्त्रेषु निश्चयः॥२०६॥

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(तारासहस्रनामनिरूपणं) अष्टादशः पटलः॥१८॥

कौल (शाक्त) साधकों की सर्वस्वरूपिणी, सर्वशक्तिसमन्विता तथा सर्वशक्तिस्वरूपिणी सर्वाधारा भगवती तारा के किञ्चित प्रभाव का मेरे द्वारा वर्णन किया गया। सम्पूर्ण प्रभाव का वर्णन तो सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी नहीं किया जा सकता। अपनी वाणी की चञ्चलता (तथा तुम्हारे प्रेमाग्रह के वशीभूत होकर ही) मैंने भगवती के सम्बन्ध में कुछ कहने की धृष्टता की है, वैसे तो हजारों जन्मों में भी इनके महत्व का वर्णन करना असम्भव ही है। भगवती के इस सहस्रनाम का ज्ञान (उपदेश) केवल शाक्त साधक कौल सम्प्रदाय से सम्बन्धित तारा भक्ति परायण व्यक्ति को ही प्रदान करना चाहिए। अन्य देवता के उपासकों, विशेषत: वैष्णवों को इसका उपदेश नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य कुलीन (शक्त्युपासक) अपने महान कल्याण (मोक्ष) का इच्छुक, श्रद्धाभक्ति परायण, उदार चित्त वाला हो तथा गुरु द्वारा जिसके गुणों का भली-भाँति परीक्षण किया जा चुका हो, उसे ही इसका उपदेश करना चाहिए। जो मनुष्य भगवती का भक्त न हो अथवा अन्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो उसे तथा पूजन-जप आदि से रहित एवं स्त्री तथा देवताओं की निन्दा करने वाले व्यक्ति को, सर्वतन्त्र शास्त्रों में गोपनीय कहे गये इस स्तोत्र का उपदेश नहीं करना चाहिए। जो भी मनुष्य इसकी अवहेलना कर स्तोत्र को अनाधिकारी व्यक्ति के समक्ष प्रकाशित करता है, वह शिव-हत्या के पाप का भागी होता है। इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ साधक सर्वदा सभी अवस्थाओं में कर सकता है। सामान्य रूप से शुद्धि-अशुद्धि तथा काल का कोई विशेष प्रतिबन्ध इस पर आरोपित नहीं है। हे कुलनायिके! जो भी साधक भक्ति सहित प्रतिदिन इस स्तोत्र का पाठ करता है, धन-संपत्ति के संग्रह में कुबेर के समान, विद्या तथा गौरव में वृहस्पति के तुल्य, सौन्दर्य में द्वितीय कामदेव विग्रहवत् तथा यशोपलब्धि में साक्षात् नारायण के समकक्ष हो जाता है। वह शक्ति सामर्थ्य द्वारा शङ्कर की समता तथा सुख-सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति द्वारा इस संसार में पृथिवीपति महाराज की भाँति शोभित होता है। मेरा यह कथन कभी मृषा (असत्य) नहीं हो सकता। हे देवि! यह मैंने तुमसे तारासहस्र नाम स्तोत्र का वर्णन किया।

निश्चय ही समस्त तन्त्रागमों में इससे बढ़कर श्रेष्ठ कल्याणकारी अन्य कोई स्तोत्र नहीं है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
तारासहस्र नाम निरूपण नामक अट्ठारहवें पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

* * *

॥ एकोनविंशः पटलः॥

(तारा कवच-गुप्त मन्त्र निरूपणम्)

॥ तारा-कवच-माहात्म्यम्॥

श्रीभैरव उवाच

**अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं परमाद्भुतम्।
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे अवश्यं मुक्तिमाप्नुयुः॥१॥
श्रूयतां परमं गुह्यं कवचं मन्मुखोदितम्।
जपाद्धि सर्वकल्याणं जायते नात्र संशयः॥२॥
अप्रकाश्यं महादेवि तव स्नेहात् प्रकाशितम्।
उद्धृतं सारभूतानां सारात् सारतरं परम्॥३॥
कवचं धारयेद् यस्तु पठेद् वा भक्तिभावतः।
स शिवः स च विद्येशः स च योगी न संशयः॥४॥
कवचेन बिना देवि योऽर्चयेत् तारिणीं पराम्।
कल्पकोटिशतेनापि न सिद्धिर्जायते प्रिये॥५॥**

हे महेशानि! अब मैं भगवती तारा के परम आश्चर्यजनक (फलदायक) कवच-स्तोत्र का वर्णन करता हूँ, जिसका ज्ञान प्राप्त कर (तथा उसका नित्य भक्ति सहित पाठ करके) सभी साधक निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। तुम साक्षात् मेरे मुख से प्रकट होने (कहे जाने) वाले इस परमगोपनीय कवच को सुनो। इसके पाठ से निःसन्देह साधक का सर्वविध कल्याण होता है। समस्त तन्त्रशास्त्रों के सार भाग को ग्रहण कर पुनः उसके सार के भी सारतर भाग के रूप में कहे गये इस परमोत्तम कवच को जो भी मनुष्य भक्तिभाव से अपने चित्त में धारण करता है, वही निःसन्देह शिव-वृहस्पति (के तुल्य) तथा योगी है। हे देवि! इस कवचपाठ के बिना जो भी साधक पराशक्ति तारा की अर्चना करता है, उसे सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक अर्चना करने पर भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है।

।। तारा-कवच-स्तोत्रम्।।

ब्रह्मविष्णुशिवानां च बीजं रक्षतु मूलकम्।
तदैव शक्तिमूलं च लिङ्गं रक्षतु यत्नतः।।६।।
मणिपूरं सदा पातु वधूबीजमशेषतः।
अनाहतं वर्मबीजं पातु मे सर्वसर्वतः।।७।।
अस्त्रादि सर्वदा पातु विशुद्धं कण्ठदेशकम्।
शेषं हि पातु मे नित्यमाज्ञास्थानं द्विपत्रकम्।।८।।
शीर्ष पातु सदा तारा जटा पातु सदाननम्।
नीलासरस्वती पातु हृदयं मे सदा पुनः।।९।।
मूलाधारं सदा पातु महानीलसरस्वती।
अक्षोभ्यः पातु सर्वाङ्गं बृहती पातु भालकम्।।१०।।
उग्रतारा देवता मे शङ्खं रक्षतु सर्वदा।
कर्णौ (तु) मे सदा पातु ह्रींबीजं तदशेषतः।।११।।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के बीज स्वरूप वाला 'ॐ' मेरे मूल (मूलाधार) की रक्षा करे। इसी प्रकार समस्त शक्तियों का जो मूल है, वह 'ह्रीं' मेरे लिङ्ग (स्वाधिष्ठान चक्र) की रक्षा करे। वधू बीज 'स्त्रीं' सम्पूर्ण 'मणिपूर' चक्र की सदा रक्षा करे। वर्मबीज 'हूं' चारों ओर से मेरे पूरे 'अनाहत' चक्र की रक्षा करे। तारा मन्त्र का पञ्चम अस्त्र बीज (फट्) सर्वदा कण्ठ में स्थित विशुद्ध चक्र की रक्षा करे। शेष भाग (स्वाहा) द्विदल वाले मेरे आज्ञाचक्र की सदा रक्षा करे। मेरे शीर्ष की तारा तथा मुख की एकजटा नित्य रक्षा करे, नीलसरस्वती सदैव हृदय की रक्षा करती रहे। पुनः मूलाधार की (मन्त्र देवता) महानील सरस्वती सदैव रक्षा करें। सर्वाङ्गों की अक्षोभ्य (ऋषि) तथा वृहती (छन्द) भाल की रक्षा करे। उग्रतारा देवता मेरे शंख (कनपटी स्थल अथवा गले) की सर्वदा रक्षा करें। दोनों कर्णों की 'ह्रीं' बीज सम्पूर्णतः रक्षा करे।

स्तनद्वयं सदा पातु हूंशक्तिर्विघ्नघातकः।
रसनां मे सदा पातु लक्ष्मीर्देवी च शाश्वती।।१२।।
रसनाग्रं सदा पातु सरस्वती प्रयत्नतः।
रतिः पातु सदा बीजं प्रीतिर्मे वदनं सदा।।१३।।
कीर्तिः कीर्ति सदा पातु शान्तिः शान्ति सदावतु।
पुष्टिर्मे पातु पुष्टिं च तुष्टिसंतुष्टि सदावतु।।१४।।
वैरोचनः सदा पातु शङ्खं च शङ्खपाण्डुरः।
पाण्डुरो मे सदा गुह्यं पातु नित्यं च सर्वशः।।१५।।

पद्मनाभः सदा पातु नाभिं मे दशपत्रिकाम्।
असिताङ्गः पातु लिङ्गं नामकः पातु कर्णकौ॥१६॥
मामकः पातु मे बाहू हस्तौ पातु महेश्वरी।
तारा मे पातु सततं पृष्ठं पद्मान्तको मम॥१७॥

विघ्नों का विनाश करने वाली 'हूँ कार' शक्ति मेरे दोनों स्तनों (दोनों वक्षस्थलों) की रक्षा करे। सनातनी देवी लक्ष्मी मेरी जिह्वा की रक्षा करें। रति मेरे बीज (शुक्र) की तथा प्रीति सदैव मुख की रक्षा करे। कीर्ति मेरे यश की, शान्ति मेरे शान्ति की, पुष्टि मेरे जीवन में पुष्टि की तथा तुष्टि सदा मेरे मनस्तुष्टि की रक्षा करे। वैरोचन मेरे शंखस्थल को तथा शंख पाण्डुर एवं पाण्डुर सब प्रकार से मेरे गुह्य भाग की नित्य रक्षा करे। पद्नाभ दश दल वाले नाभिस्थ पद्म मणिपूरक चक्र की, असिताङ्ग लिङ्ग की तथा नामक मेरे दोनों कर्णो की रक्षा करें। मामक दोनों बाहुओं तथा महेश्वरी दोनों हाथों की रक्षा करे। पद्मान्तक के मेरे पृष्ठ भाग की तथा तारा निरन्तर मेरी रक्षा करें।

पार्श्वे मे च सदा पा(तु?तां)यमान्तकवदान्तकौ।
चरणौ मे सदा पातां विघ्नान्तनरकान्तकौ॥१८॥
तारा मे पातु सततं अष्टाङ्गं परमेश्वरी।
इतीदं कवचं देवि कथितं मन्मुखोदितम्॥१९॥
प्रमादात् परमेशानि न प्रकाश्यं कदाचन।
योगिनीभिस्तदा हन्यात्स्वयं च वधकारिणी॥२०॥
यदि भाग्यवशाद् देवि लब्धं साधकसत्तमैः।
तदा तस्य महासिद्धिर्जायते देवि निश्चितम्॥२१॥
निषिद्धेभ्यो न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन।
यदि दद्याद् निषिद्धेभ्यो तदा मृत्युमवाप्नुयात्॥२२॥
दद्यात् शान्ताय शिष्याय तन्त्रमन्त्रयुताय च।
गुरुभक्तियुतायैव तत्र सिद्धिरनुत्तमा॥२३॥

यमान्तक तथा वदान्तक मेरे दोनों पार्श्व भागों की सदा रक्षा करें। विघ्नान्तक तथा नरान्तक सदैव मेरे दोनों चरणों की रक्षा करें। परमेश्वरी तारा सदैव मेरे अष्टाङ्गों की रक्षा करें। कथन के माध्यम द्वारा अनायास मेरे मुख से प्रकट हुए इस कवच को हे देवि! परमेशानि! अपनी असावधानीवश किसी अपात्र के सम्मुख कभी प्रकाशित न करना। अन्यथा वध करने वाली स्वयं योगिनियों के द्वारा ही वह (इस कवच को प्रकाशित करने वाला) मारा

जाता है। यदि सौभाग्यवश किसी श्रेष्ठ गुणवान साधक को इस कवच की उपलब्धि हो जाती है, तो निश्चय ही उसे महान सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य इस कवच की प्राप्ति के लिए निषिद्ध (अपात्र) हैं, उन्हें न तो इसका उपदेश प्रदान करे और न ही उनके सामने इसका कथन करे। यदि कोई व्यक्ति अनधिकारी को भी इसका ज्ञान प्रदान करता है तो अवश्य ही वह मृत्यु का वरण करता है। शान्त चित्त वाले संयमी, पूजन-जपादि तन्त्र साधना युक्त तथा गुरु में देवतावत् भक्तिभाव रखने वाले सत् शिष्य को ही इस कवच का उपदेश करना चाहिए जिससे उस शिष्य को सर्वश्रेष्ठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

रहस्य कथितं सर्वमनन्तफलदायकम्।
गोप्तव्यं परमेशानि न प्रकाश्यं कदाचन॥२४॥
कवचेन बिना देवि योऽर्चयेत् तारिणीं शिवाम्।
तमश्नाति महोग्रा सा योगिनीभिः सुनिश्चितम्॥२५॥
इति ते कथितं गुह्यं कवचं देवि दुर्लभम्।
अथ वक्ष्ये महेशानि गोपनीयं प्रयत्नतः॥२६॥

हे परमेशानि! अनन्तफलों को प्रदान करने वाले रहस्य युक्त इस कवच को मैंने सम्पूर्ण रूप से कहा। इसे सदैव गुप्त रखना, कभी अनावश्यक रूप से प्रकाशित न करना। जो साधक कवच (पाठ के) बिना शिवारूपिणी तारा की अर्चना करता है उसे निश्चय ही वह महोग्रा देवी योगिनियों के साथ भक्षित कर लेती है। हे देवि! तुमसे यह मैंने गुह्य एवं दुर्लभ कवच का वर्णन किया। अब आगे जो कहने जा रहा हूँ, उसे भी सब प्रकार से गुप्त ही रखना।

॥ त्र्यक्षरी गुप्तमन्त्रोद्धार साधनञ्च॥

गुप्तमन्त्रं गुप्तजापं शृणुष्व क(म)लानने।
महाशक्तिं समुद्धृत्य मातङ्गीं परमेश्वरीम्॥२७॥
वह्निबीजं महेशानि बीजत्रयमुदाहृतम्।
बीजत्रयात्मकं मन्त्रं सर्वसारस्वतप्रदम्॥२८॥
एकादशसहस्रं तु पुरश्चरणमिष्यते।
होमयेत् तद्दशांशेन दशांशनैव तर्पणम्॥२९॥
अभिषेकं दशांशेन भोजयेद् ब्राह्मणान् दश।
मधूनि पायसं चैव महाज्यं च महेश्वरि॥३०॥
जुहुयाद् भक्तिभावेन सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
अनेन मन्त्रराजेन साधयेत् तारिणीं शुभाम्॥३१॥

(श्लोक २७ तथा २८ के द्वारा वास्तव में महानील सरस्वती के त्र्यक्षरी मन्त्र का उद्धार कहा गया है, जो सारस्वतप्रद है, परन्तु दोनों श्लोक अशुद्ध हैं।)

हे कमलानने! अब मैं एक अत्यन्त गोपनीय मन्त्र को, जिसका जप भी गुप्त रूप से करना चाहिए, कहता हूँ। तीन बीजों से युक्त यह मन्त्र सारस्वत (ज्ञान विद्या) प्रदान करने वाला कहा जाता है।

मन्त्र स्वरूप – **"ह्रीं स्त्रीं हूँ।"**

ग्यारह हजार जप द्वारा इसका पुरश्चरण कहा गया है। जप का दशांश हवन तथा हवन का दशांश तर्पण करना चाहिए। तर्पण का दशांश अभिषेक तथा दश ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करना चाहिए। तर्पण-अभिषेक की संख्या एक सौ आठ से कम होने पर भी इतनी (१०८) संख्या में अवश्य करना चाहिए। मधुत्रय, खीर तथा घृत से साधक को भक्तिभाव से हवन करना चाहिए। इस प्रकार इस मन्त्रराज के द्वारा भगवती तारा की साधना करनी चाहिए।

ततः सिद्धो महादेवि भवत्येव महेश्वरि।
युवतीयोनिदेशे तु हस्तमारोप्य सुन्दरि॥३२॥
उत्तरास्यो महेशानि भूत्वा परमसुन्दरीम्।
तारिणीं भावयेद् देवि मनसा काममोहिनीम्॥३३॥
संभाव्य परमेशानि योनिमध्ये महेश्वरि।
तत्र मुखं समानीय जपेदष्टोत्तरं शतम्॥३४॥
सिद्धमन्त्री महेशानि जायते नात्र संशयः।
पञ्चदिनप्रयोगेन कुबेर इव जायते॥३५॥
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले।
अष्टोत्तरशतं जप्यं स्तनमर्दनपूर्वकम्॥३६॥
क्षिपेत् लिङ्गं योनिगर्ते लघु शीर्षे च मस्तकम्।
घाताघातेन देवेशि शुक्रमुत्सार्य सुन्दरि॥३७॥
वामहस्ते तदाधाय तिलकं कारयेद् यदि।
सर्वसंपत्तिमान् भूत्वा मोदते पृथिवीतले॥३८॥
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।
तस्य पादपद्मद्वन्द्वं रा(ज्ञः?ज्ञां)किरीटभूषणम्॥३९॥
सभायां जायते देवि बृहस्पतिरिवापरः।
इति ते कथितं गुप्तमन्त्रजापं महाधनम्॥४०॥

मन्त्रराजं महादेवि कथितं नगनन्दिनि।
गोपनीयं पशोरग्रे सिद्धमन्त्रं सदा शिवे।।४१।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(ताराकवच-गुप्तमन्त्रनिरूपणं)एकोनविंश पटलः।।१९।।

उपर्युक्त पुरश्चरण रूप पञ्चाङ्गों सहित भगवती तारा की साधना करने से, हे महादेवि साधक को मन्त्र-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हे सुन्दरि! जो साधक उत्तर की ओर मुख करके बैठकर, युवती की योनि स्थल पर अपना हाथ रखकर, परमसुन्दरी-काममोहिनी तारा का मानसिक ध्यान करके तथा योनि के मध्य भगवती की स्थिति की सम्भावना करके, उसके समीप स्वमुख को लाकर उपर्युक्त त्रिबीजात्मक मन्त्र का एक सौ आठ बार (प्रतिदिन) जप करता है, तो हे महेशानि! उस साधक को निश्चय ही मन्त्र-सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रयोग को केवल पाँच दिनों तक करने से ही मनुष्य समस्त ऐश्वर्यों से युक्त कुबेर के समान होकर पृथिवी मण्डल पर सुख पूर्वक विहार (जीवन व्यतीत) करता है।

जो साधक स्त्री स्तन का मर्दन करते हुए मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके फिर स्त्री-योनि में स्वलिङ्ग को प्रविष्ट करके पहले धीरे-धीरे पुनः शीघ्रता पूर्वक उसके मस्तक पर बार-बार आघात करके शुक्र का उत्सर्जन कर तथा उसे बांये हाथ में लेकर स्वयं मस्तक पर तिलक करता है, वह सर्वसम्पत्तिशाली होकर इस भूतल पर आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। राजा भी ऐसे साधक की दासता स्वीकार कर लेते हैं, फिर दूसरे सामान्य व्यक्तियो की बात ही क्या है। उसके दोनों चरण कमल सदा राजाओं के मुकुट रूपी आभूषणों से सुशोभित होते रहते हैं। राज-सभा (अथवा विद्वानों की सभा) के मध्य वह द्वितीय-वृहस्पति के समान प्रतीत होता है। हे महादेवि पार्वति! मैने तुमसे परम वैभवशाली मन्त्र राजस्वरूप इस गुप्त मन्त्र के जपविधि का वर्णन किया। हे शिवे! इस सिद्धमन्त्र को सदैव गुप्त ही रखना, किसी पशु साधक के समक्ष कभी भी प्रकाशित न करना।

।।श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
तारा कवच-गुप्त मन्त्र निरूपण नामक
उन्नीसवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

◆

॥ विंशः पटलः॥

(तारा-शतनाम-निरूपणम्)

॥ तारा-शतनाम-निरूपण-हेतवे प्रार्थना॥

श्रीदेव्युवाच

पूर्वं संसूचितं देव नाम्नां शतं महेश्वर।
यत्नैः शतैर्महादेव मयि नात्र प्रकाशितम्॥१॥
पठित्वा परमेशान हठात् सिद्ध्यति साधकः।
नाम्नां शतं महादेव कथयस्व समासतः॥२॥

हे महेश्वर! आपने पूर्वकाल में तारा-वर्णन प्रसङ्ग में भगवती तारा के शतनामों के सम्बन्ध में सङ्केत किया था। परन्तु सैकड़ों बार प्रयत्न करने (पूछने) पर भी आपने उनका वर्णन नहीं किया। हे परमेशान! महादेव! जिस शतनाम के पढ़ने (पाठ) मात्र से साधक को वरवश ही सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है, उसे संक्षेप में आप मुझसे कहें।

॥ तारा-शतनाम स्तोत्रस्य माहात्म्यम्॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि भक्तानां हितकारकम्।
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे जीवन्मुक्तिमुपागताः॥३॥
कृतार्थास्ते हि विस्तीर्णा यान्ति देवीपुरे स्वयम्।
नाम्नां शतं प्रवक्ष्यामि जपात स(ा)र्वज्ञदायकम्॥४॥
नाम्नां सहस्रं संत्यज्य नाम्नां शतं पठेत् सुधीः।
कलौ नास्ति महेशानि कलौ नान्या गतिर्भवेत्॥५॥
शृणु साध्वि वरारोहे शतं नाम्नां पुरातनम्।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां साधकानां सुखप्रदम्॥६॥

हे देवि! भक्तों के लिए सर्वविध कल्याणकारक उस ताराशतनाम स्तोत्र को मैं कहता हूँ, जिसे जानकर (नित्य श्रद्धा सहित पाठ करने से) मनुष्य इस जीवन में ही जीवन्मुक्ति रूप आनन्द को प्राप्त कर कृतार्थ हो

देहावसानोपरान्त देवी धाम को प्रयाण करता है। यह शतनाम स्तोत्र साधक को सर्वज्ञता प्रदान करने वाला है। इस कलियुग में इसके अतिरिक्त मनुष्य के कल्याण हेतु अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। साधकों को चाहिए कि वे तारा-सहस्रनाम को छोड़कर केवल शतनाम का ही आश्रय ग्रहण करें, क्योंकि यह मनुष्यों को सर्वप्रकार की सिद्धि देने वाला तथा उन्हें (साधकों को) सुख प्रदान करने वाला (साधन में सुखद) है।

।। तारा-शतनाम-स्तोत्रम्।।

तारिणी तारसंयोगा महातारस्वरूपिणी।
तारकप्राणहर्त्री च तारानन्दस्वरूपिणी।।७।।
महानीला महेशानि महानीलसरस्वती।
उग्रतारा सती साध्वी भवानी भवमोचिनी।।८।।
महाशङ्‌खरता भीमा शाङ्करी शङ्करप्रिया।
महादानरता चण्डी चण्डासुरविनाशिनी।।९।।
चन्द्रवद्‌रूपवदना चारुचन्द्रमहोज्ज्वला।
एकजटा कुरङ्गाक्षी वरदाभयदायिनी।।१०।।
महाकाली महादेवी गुह्यकाली वरप्रदा।
महाकालरता साध्वी महैश्वर्यप्रदायिनी।।११।।
मुक्तिदा स्वर्गदा सौम्या सौम्यरूपा सुरारिहा।
शठविज्ञा महानादा कमला बगलामुखी।।१२।।
महामुक्तिप्रदा काली कालरात्रिस्वरूपिणी।
सरस्वती सरिच्‌श्रेष्ठा स्वर्गङ्गा स्वर्गवासिनी।।१३।।
हिमालयसुता कन्या कन्यारूपविलासिनी।
शवोपरिसमासीना मुण्डमालाविभूषिता।।१४।।
दिगम्बरा पतिरता विपरीतरतातुरा।
रजस्वला रजःप्रीता स्वयम्भूकुसुमप्रिया।।१५।।
स्वयम्भूकुसुमप्राणा स्वयम्भूकुसुमोत्सुका।
शिवप्राणा शिवरता शिवदात्री शिवासना।।१६।।
अट्‌टहासा घोररूपा नित्यानन्दस्वरूपिणी।
मेघवर्णा किशोरी च युवतीस्तनकुङ्कुमा।।१७।।
खर्वा खर्वजनप्रीता मणिभूषितमण्डना।
किङ्किणीशब्दसंयुक्ता नृत्यन्ती रक्तलोचना।।१८।।

कृशाङ्गी कृसरप्रीता शरासनगतोत्सुका।
कपालखर्परधरा पञ्चाशन्मुण्डमालिका।।१९।।
हव्यकव्यप्रदा तुष्टिः पुष्टिश्चैव वराङ्गना।
शान्तिः क्षान्तिर्मनो बुद्धिः सर्वबीजस्वरूपिणी।।२०।।
उग्रापत्तारिणी तीर्णा निस्तीर्णगुणवृन्दका।
रमेशी रमणी रम्या रामानन्दस्वरूपिणी।।२१।।
रजनीकरसंपूर्णा रक्तोत्पलविलोचना(१००)।
इति ते कथितं दिव्यं शतं नाम्नां महेश्वरि।।२२।।

यदि साधक (उपासक) इस शतनाम स्तोत्र के पाठ के पूर्व अथवा पश्चात् चतुर्थ्यन्त नामों के पूर्व 'ॐ' तथा पश्चात् में 'नमः' का संयोग कर नाम मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भगवती तारा की रक्त पुष्पों से अर्चना भी करे (अथवा यदि केवल नाम मन्त्रों से ही अर्चना करे) तो उसके लिए अति श्रेयस्कर होगा। अतः यहाँ प्रत्येक नाम को चतुर्थ्यन्त रूप से ही दिया जा रहा है।

तारिण्यै, तारसंयोगायै, महातारस्वरूपिण्यै, तारक प्राण हर्त्र्यै, तारानन्द स्वरूपिण्यै, महानीलायै, महेशान्यै, महानील सरस्वत्यै, उग्रतारायै, सत्यै, साध्व्यै, भवान्यै, भवमोचिन्यै, महाशंखरतायै, भीमायै, शाङ्कर्यै, शङ्करप्रियायै, महादानरतायै, चण्ड्यै, चण्डासुरविनाशिन्यै, चन्द्रवद्रूपवदनायै, चारुचन्द्रमहोज्ज्वलायै, एकजटायै, कुरङ्गाक्ष्यै, वरदायै, अभयदायिन्यै, महाकाल्यै, महादेव्यै, गुह्यकाल्यै, वरप्रदायै, महाकालरतायै, महैश्वर्यप्रदायिन्यै, मुक्तिदायै, स्वर्गदायै, सौम्यायै, सौम्यरूपायै, सुरारिहायै, शठविज्ञायै, महानादायै, कमलायै, बगलामुख्यै, महामुक्तिप्रदायै, काल्यै, कालरात्रिस्वरूपिण्यै, सरस्वत्यै, सरित्श्रेष्ठायै, स्वर्गङ्गायै, स्वर्गवासिन्यै, हिमालय सुतायै, कन्यायै, कन्यारूपविलासिन्यै, शवोपरिसमासीनायै, मुण्डमालाविभूषितायै, दिगम्बरायै, पतिरतायै, विपरीतरतातुरायै, रजस्वलायै, रजःप्रीतायै, स्वयम्भूकुसुमप्रियायै, स्वयम्भूकुसुमप्राणायै, स्वयम्भूकुसुमोत्सुकायै, शिवप्राणायै, शिवरतायै, शिवदात्र्यै, शिवासनायै, अट्टहासायै, घोररूपायै, नित्यानन्दस्वरूपिण्यै, मेघवर्णायै, किशोर्यै, युवत्यै, स्तनकुंकुमायै, खर्वायै, खर्वजनप्रीतायै, मणिभूषितमण्डनायै, किङ्किणीशब्दसंयुक्तायै, नृत्यन्त्यै, रक्तलोचनायै, कृशाङ्ग्यै, कृसरप्रीतायै, शरासनगतोत्सुकायै, कपालखर्परधरायै, पञ्चाशन्मुण्डमालिकायै, हव्यकव्यप्रदायै, तुष्ट्यै, पुष्ट्यै, वराङ्गनायै, शान्त्यै, क्षान्त्यै, मनोबुद्ध्यै, सर्वबीजस्वरूपिण्यै, उग्रापत्तारिण्यै, तीर्णायै, निस्तीर्णगुणवृन्दकायै, रमेश्यै, रमण्यै, रम्यायै, रामानन्दस्वरूपिण्यै, रजनीकरसम्पूर्णायै तथा रक्तोपलविलोचनायै।।१००।। हे महेश्वरि! भगवती तारा के इन सौ नामों को मैंने तुमसे कहा।

।। फल–श्रुतिः।।

प्रपठेद् भक्तिभावेन तारिण्यास्तारणक्षमम्।
सर्वासुरमहानादस्तूयमानमनुत्तमम् ।।२३।।
षण्मासाद् महदैश्वर्यं लभते परमेश्वरि।
भूमिकामेन जप्तव्यं वत्सरात्तां लभेत् प्रिये।।२४।।
धनार्थी प्राप्नुयादर्थं मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्।
दारार्थी प्राप्नुयाद् दारान् सर्वागम(पुरो?प्रचो)दितान्।।२५।।
अष्टम्यां च शतावृत्त्या प्रपठेद् यदि मानवः।
सत्यं सिद्ध्यति देवेशि संशयो नास्ति कश्चन।।२६।।
अति सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं महेश्वरि।
अस्मात् परतरं नास्ति स्तोत्रमध्ये न संशयः।।२७।।

समस्त देवताओं द्वारा स्तुति रूप में उच्च स्वरों से गाये जाने वाले भगवती तारा के इस मुक्तिप्रद सर्वोत्तम स्तोत्र का पूर्ण भक्तिभाव सहित साधक को पाठ करना चाहिए। जो भी मनुष्य ऐसा प्रतिदिन करता है, हे परमेश्वरि! उसे छः मास में ही महान ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाती है तथा भूमि की कामना से पाठ करने वाले की वर्ष भर में ही उसकी अभिलाषा पूरी हो जाती है। इस स्तोत्र के नियमित पाठ से सम्पत्ति का अभिलाषी धन, मोक्ष का इच्छुक मुक्ति, स्त्री (पत्नी) की कामना वाला पत्नी तथा समस्त शास्त्रों में वर्णित और जो भी कुछ फल प्राप्तियाँ हैं, उन्हें भी भगवती तारा की कृपा से मनुष्य प्राप्त कर लेता है। इस शतनाम स्तोत्र का नियमित पाठ करते हुए प्रत्येक अष्टमी को (संभव हो तो रात्रि में पूजन के पश्चात्) सौ पाठ करने वाला मनुष्य अवश्य ही सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है। हे महेश्वरि! मेरा यह कथन सत्य है, सत्य है, निःसन्देह पूर्णतया सत्य है। भगवती की सभी स्तुतियों में इससे बढ़कर श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी अन्य कोई स्तोत्र नहीं है।

।। सर्वविद्याप्राप्त्युपायः (साधनम्)।।

नाम्नां शतं पठेद् मन्त्रं संजप्य भक्तिभावतः।
प्रत्यहं प्रपठेद् देवि यदीच्छेत् शुभमात्मनः।।२८।।
इदानीं कथयिष्यामि विद्योत्पत्तिं वरानने।
येन विज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते।।२९।।
योनिबीजत्रिरावृत्त्या मध्यरात्रौ वरानने।
अभिमन्त्र्य जलं स्निग्धं अष्टोत्तरशतेन च।।३०।।

तञ्जलं तु पिबेद् देवि षणमासं जपते यदि।
सर्वविद्यामयो भूत्वा मोदते पृथिवीतले।।३१।।

यदि कोई मनुष्य अपना सर्वविध कल्याण चाहता है तो उसे नित्य भगवती के पूजन–मन्त्र जप के पश्चात् श्रद्धा–भक्ति सहित इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। अब मैं इस स्तोत्र के पाठ द्वारा सभी प्रकार की विद्याओं की प्राप्ति के साधन को कहता हूँ। जिसको क्रिया–विधि सहित जानने मात्र से ही मनुष्य संसार में सर्वत्र विजय प्राप्त कर लेता है। यदि मनुष्य प्रत्येक रात्रि में 'ऐं' बीज से सम्पुटित कर शतनाम स्तोत्र की तीन आवृत्ति पाठ करे (अथवा त्रि–आवृत्ति रूप 'ऐं' का एक सौ आठ बार जप करे) तथा पाठोपरान्त 'ऐं' से ही (अथवा त्रि आवृत्ति रूप 'ऐं ऐं ऐं' से) एक सौ आठ बार अभिमंत्रित करके जल का पान करे तो छः मास में सभी विद्याओं को प्राप्त कर स्वयं विद्यामय सा होकर इस संसार में सुखपूर्वक निवास करता है।

।। शक्ति माहात्म्यं तत्साक्षात्कारम् च।।

शक्तिरूपां महादेवीं शृणु हे नगनन्दिनि।
वैष्णवः शैवमार्गो वा शाक्तो वा गाणपोऽपि वा।।३२।।
तथापि शक्तेराधिक्यं शृणु भैरवसुन्दरि।
सच्चिदानन्दरूपाच्च सकलात् परमेश्वरात्।।३३।।
शक्तिरासीत् ततो नादो नादाद् बिन्दुस्ततः परम्।
अथ बिन्द्वात्मनः कालरूपबिन्दुकलात्मनः।।३४।।
जायते च जगत्सर्व सस्थावरचरात्मकम्।
श्रोतव्यः स च मन्तव्यो निर्ध्यातव्यः स एव हि।।३५।।
साक्षात्कार्यश्च देवेशि आगमैर्विविधैः शिवे।
श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यो मननादिभिः।।३६।।
उपपत्तिभिरेवायं ध्यातव्यो गुरुदेशतः।
तदा स एव सर्वात्मा प्रत्यक्षो भवति क्षणात्।।३७।।

निष्कल निराकार ब्रह्म की उपासना उसके सकल–साकार विष्णु–शिव–शक्ति–गणेश तथा सूर्य इन पाँच रूपों द्वारा की जाती है। इन्हीं के आधार पर इनके साधना मार्गों तथा साधकों को क्रमशः वैष्णव–शैव–शाक्त–गाणपत्य तथा सौर कहा जाता है। परन्तु इन सभी साधना मार्गों तथा साधकों में 'शाक्त' को, शक्ति का विशेष महत्व होने के कारण अत्यधिक श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि सच्चिदानन्द स्वरूप सकल परमेश्वर से सर्वप्रथम शक्ति की ही उत्पत्ति होती है, फिर शक्ति से नाद तथा नाद से बिन्दु की उत्पत्ति होती है।

सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥(शा०ति० प१/७)

पुनः काल रूप बिन्दु से ही सदाशिव से लेकर पृथिवी तक छत्तीस तत्वों (कलाओं) की उत्पत्ति होती है। इन्हीं कलाओं से चराचर सहित सम्पूर्ण जगत की तत्पश्चात् सृष्टि होती है। हे शिवे! विविध प्रकार के आगमों के श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन द्वारा इस शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना ही ब्रह्मसाक्षात्कार कहा जाता है। जब साधक गुरु मुख से श्रुति वाक्यों का श्रवण कर, श्रुत्यनुकूल तर्कों के अनुसार उस पर मनन करके प्राप्त निष्कर्षों के अनुरूप गुरुपदेशानुसार ध्यान (निदिध्यासन) करता है तब ही क्षण-भर में इस सर्वात्मा रूप शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव (साक्षात्कार) उसे प्राप्त हो जाता है।

॥ नानात्वे एकं एके च नानात्व-दर्शनम्॥

तस्मिन् देवेशि प्रत्यक्षे शृणुष्व परमेश्वरि।
भावैर्बहुविधैर्देवि भावस्तत्रापि नीयते॥३८॥
भुक्तेभ्यो नानाघासेभ्यो गवि चैको यथा रसः।
स(तु)दुग्धाख्यसंयोगे नानात्वं लभते प्रिये॥३९॥
तृणेन जायते देवि रसस्तस्मात् परो रसः।
तस्मात् दधि ततो हव्यं तस्मादपि रसोदयः॥४०॥
स एव कारणं तत्र तत्कार्यं स च लक्ष्यते।
दृश्यते च महादे(व?वि)न कार्यं न च कारणम्॥४१॥
तथैवायं स एवात्मा नानाविग्रहयोनिषु।
जायते च ततो जातः कालभेदो हि भाव्यते॥४२॥
स जातः स मृतो बद्धः स मुक्तः स सुखी पुमान्।
स वृद्धः स च विद्वांश्च न स्त्री पुमान् नपुंसकः॥४३॥
नानाध्याससमायोगादात्मना जायते शिवे।
एक एव स एवात्मा सर्वरूपः सनातनः॥४४॥

हे देवेशि परमेश्वरि! उस सर्वात्मा रूप शक्ति का साक्षात्कार हो जाने पर उसी में संसार के अनेकों प्रकार के भावों (पदार्थों) को देखते हुए भी उन सबके एकात्म कारण रूप से उसी शक्ति की कल्पना करनी चाहिए। जैसे अनेकों प्रकार के घासों को खाने वाली गाय में विभिन्न प्रकार के तृणों के संयोग से एक रूप रस की पुनः उससे परम रस रूप दुग्ध की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार समस्त भावों के द्वारा (उन्हें परस्पर विलीन कर) एक

शक्ति रूप भाव का ही चिन्तन करना चाहिए। यह दुग्ध भी पुनः प्रकृति संयोग से नानात्व (अनेक रूप) को प्राप्त करता है। इस प्रकार तृण (घासादि) से रस (गाय के शरीर में) की उत्पत्ति पुनः इससे परम रस रूप दुग्ध, दुग्ध से दधि (दधि से मक्खन तथा मक्खन) से घृत की उत्पत्ति होती है। पुनः इन सभी को यदि भक्षण किया जाय तो (शरीर में) रस की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ये परस्पर कारण-कार्य रूप से परिलक्षित होते हैं। परन्तु एक तत्व दृष्टि से न तो कोई कार्य है और न ही कोई कारण। इसी तरह यह एक आत्मा (सर्वात्मारूप शक्ति ही) विभिन्न योनियों में अनेकों प्रकार के शरीरों में उत्पन्न होती है। कालभेद के कारण ही यह 'उत्पन्न हुआ सा' अनुभव होता है। वह उत्पन्न हुआ, वह मर गया, वह बद्ध (जीव) है, वह मुक्त है, वह पुरुष सुखी है, वह वृद्ध है तथा वह विद्वान है, इस प्रकार का एक ही आत्मा के विषय में अनुभव कालभेद के कारण ही होता है। वास्तव में यह आत्मा न तो स्त्री है, न ही पुरुष और न ही नपुंसक। स्वयं में अनेकों प्रकार के अध्यासों को स्वीकार यह उन अध्यासों के संयोग द्वारा ही स्वयं को अनेकों रूपों में उत्पन्न सा करता है। हे शिवे! यह सनातन (शाश्वत-अविनाशी) आत्मा एक (अद्वितीय) होते हुए भी सर्वरूप है।

।। प्रकृति योगेन (ज्ञानेन) बिना आत्मज्ञानस्यासम्भवत्वम्।।

अव्यक्तश्च स च व्यक्तः प्रकृत्या ज्ञायते ध्रुवम्।
तस्मात् प्रकृतियोगेन बिना न ज्ञायते क्वचित्।।४५।।
बिना घटत्वयोगेन न प्रत्यक्षो यथा घटः।
इतराद् भिद्यमानोऽपि स भेदमुपगच्छति।।४६।।
मां बिना पुरुषे भेदो न च याति कथञ्चन।
न प्रयोगैर्न च ज्ञानैर्न श्रुत्या न गुरुक्रमैः।।४७।।
न स्नानैस्तर्पणैर्वापि नच (ज्ञा?दा)नैः कदाचन।
प्रकृत्या ज्ञायते ह्यात्मा प्रकृत्या लुप्यते पुमान्।।४८।।
प्रकृत्याधिष्ठितं सर्वं प्रकृत्या वञ्चितं जगत्।
प्रकृत्य भेदमाप्नोति प्रकृत्याभेदमाप्नुयात्।।४९।।
नरस्तु प्रकृतिर्नैव न पुमान् परमेश्वरः।
इति ते कथितं तत्त्वं सर्वसारमनोरमम्।।५०।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(ताराशतनाम-तत्त्वसारनिरूपणं) विंशः पटलः।।२०।।

निश्चित रूप से जो आत्मा (ब्रह्म अथवा परमेश्वर) अव्यक्त रूप है, वह प्रकृति के द्वारा (सहयोग से ही) व्यक्त भाव को प्राप्त होता है। इसलिए प्रकृति के ज्ञान के बिना कुछ भी जाना नहीं जा सकता। जैसे कि घट के समक्ष होने पर भी बिना घटत्व योग के उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। वस्तुओं में परस्पर विद्यमान भेदत्व रूप गुण का ज्ञान होने पर ही मनुष्य को उनमें भेद की उपलब्धि होती है। मेरे बिना पुरुष (आत्मा अथवा जीव) में किसी भी प्रकार से भेद की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस आत्मा (आत्म तत्व) का ज्ञान अनेकों प्रकार के प्रयोगों (कर्मो-साधनाओं), (विभिन्न प्रकार के लौकिक) ज्ञानों, वैदिक श्रुतियों, अनेकों गुरुओं (के वरण तथा उनके उपदेशों), अनेक तीर्थ स्थानों तथा विभिन्न देव पितरों के तर्पणों एवं बहुविध दानों आदि किसी भी कर्म के द्वारा सम्भव नहीं है। प्रकृति (शक्ति के ज्ञान) द्वारा ही इस आत्मा को जाना जा सकता है और इसी प्रकृति के ज्ञान से ही इसके पुरुष (जीव) भाव का लोप भी होता है। सब कुछ प्रकृति के द्वारा प्रकृति में ही अधिष्ठित है। प्रकृति के बिना संसार का कुछ भी अस्तित्व नहीं है। प्रकृति के कारण ही भेद तथा अभेद दोनों की उपलब्धि होती है, क्योंकि इन दोनों का कारण प्रकृति ही है। यह पुरुष (जीव-आत्मा) न तो प्रकृति है और न परमेश्वर ही पुरुष है। इस प्रकार हे देवि! मैंने तत्व के समस्त सार भावों को सुन्दर मनोरम (रुचिकर) रूप से तुमसे स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत
तारा शतनाम-तत्वसार निरूपण नामक
बीसवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

।। एकविंशः पटलः ।।

(रसायन-भाव निरूपणम्)

।। स्वर्ण-रजत निर्माण विधिः ।।

श्री भैरव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि तत्त्वसारं पुरातनम्।
येन विज्ञानमात्रेण कुबेर इव जायते।।१।।
ताम्रसीसकमेतत्तु पित्तलं चापि यत्नतः।
चतुर्हस्तप्रमाणं हि गर्तं कृत्वा तु साधकः।।२।।
सरलं भस्म कुर्याच्च विवर्जाङ्गारसंयुतम्।
करीषमर्धसं(युक्तं?शुष्कं)ताम्रस्योपरि पूरितम्।।३।।
तापयेत् परमेशानि दिनानि सप्त चैवहि।
ततः प(रे?रं)महेशानि उत्तोल्य यत्नतः शिवे।।४।।
पात्रे लोहमये देवि तमादाय महेश्वरि।
वि(वज?वर्जा)ङ्गारजैर्देवि अलातैस्तापयेद् दृढम्।।५।।
द्रवीभूतं तथा ताम्रं येन जायेत सुन्दरि।
तदर्धं च रसं तत्र दद्यात् प्रयतमानसः।।६।।
विजावरसकेनैव अटरूषरसेन च।
सिंहिकारसकेनाथ युक्तं कुर्याद् महेश्वरि।।७।।
ततश्च स्वर्णं जायेत सत्यं सुरगणार्चिते।
मूलमन्त्रस्य जाप्येन सिद्ध्यत्येव न संशयः।।८।।
सहस्रदशजापेन सिद्ध्यत्येव न संशयः।
पूर्वोक्तेन रसेनैव शुद्धसूतेन वा पुनः।।९।।
संहृत्य तत्र दद्याच्चसीसकं रूप्यतां व्रजेत्।
इति ते कथितं सर्वं सर्वसारस्वतप्रदम्।।१०।।

हे महेशानि! अब मैं समस्त तत्वों के सार रूप प्राचीन तत्व (ज्ञान) को कहता हूँ जिसके प्रयोगात्मक ज्ञान के द्वारा साधक कुबेर के समान

(सम्पत्ति शाली) हो जाता है। साधक पहले ताँबा तथा शीशा धातुओं के पत्रक (फलक) संग्रह करे फिर चार हाथ लम्बा इतना ही चौड़ा तथा गहरा गड्ढा खोदकर उसमें सरल (धूप) वृक्ष की लकड़ी को जलाकर भस्म तैयार करे। इस भस्म से कोयलों को अलग करके उसके ऊपर ताम्र पत्र रखकर पुनः ऊपर अर्धशुष्क कण्डों (गाय के गोबर से बने उपलों) का ढेर लगाकर उसे जलाकर सात दिनों तक तांबे को तपाये। फिर उसे सावधानीपूर्वक निकाल कर किसी लोहे के पात्र में लेकर प्रज्वलित अग्नि के लपटों के द्वारा भली-भाँति तपायें। इस प्रकार तांबे को द्रवित कर (पिघला) दें। इसके बाद उसमे तांबे के अर्धभाग के बराबर शुद्ध पारद भस्म डालें। तत्पश्चात् उसमें विजाव रस, अटरुष (अडूसा) रस तथा सिंहिका रस डालकर भली-भाँति मिश्रित कर दें। इस प्रकार हे सुरगणार्चिते देवि! स्वर्ण तैयार हो जाता है। समस्त क्रिया करते समय मूल मन्त्र का जप करते रहना चाहिए तथा मिश्रण के पश्चात् भी दश हजार मन्त्रों का जप करना चाहिए। इससे निःसन्देह कार्य की सिद्धि होती है। पूर्वोक्त रसों तथा शुद्ध पारद भस्म को मिलाकर द्रवित शीशा धातु पर डालने से वह चाँदी में परिवर्तित हो जाता है। हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे यह स्वर्ण-रजत निर्माण के ज्ञान का वर्णन किया।

॥ पारद (सूत) भस्म निर्माण-विधिः॥

प्रयोगार्हो भवेद् देवि सत्यं सत्यं वरानने।
इदानीं शृणु चार्वङ्गि सूतभस्म तथैव च॥११॥
येन विज्ञानमात्रेण मंत्रसिद्धिर्भवेत् प्रिये।
सार्धहस्तप्रमाणेन गर्तं कृत्वा तु देशिकः॥१२॥
हरिद्रागोमयेनाथ लेपयेत् परमेश्वरि।
ततस्तु गजमूत्रेण भस्म कुर्याद यथाविधि॥१३॥
वैजयन्त्याश्च मूलेन तथा सिद्धरसेन च।
करीषकेण देवेशि भस्मीकुर्याद् विधानतः॥१४॥
शुद्धसूतं समादाय मङ्गले वासरे निशि।
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा भस्मीभवति तत्क्षणात्॥१५॥
अश्वत्थपल्लवेनैव संयुक्तं परमेश्वरि।
सूतभस्म भवत्येव परेशि नात्र संशयः॥१६॥
अश्वदन्तेन देवेशि वाजिमारेण चैव हि।
संयुक्तसूतं तत्रत्यं भस्मीभवति तत्क्षणात्॥१७॥
धातुना सह युक्तं तद् बद्धीभवति सुन्दरि।

पातालरसकेनैव भवेच्च स्वर्णमुत्तमम्।।१८।।
आदौ च गुलिकां वद्ध्वा पश्चाद् रसेन ताडयेत्।
ततो बद्धीभवत्येव सत्यं गुगणार्चिते।।१९।।
त्रिरात्रस्य विधानेन जपं कुर्याच्छुचिस्मिते।
ततः प्रयोगो देवेशि सिद्धो नास्त्यत्र संशयः।।२०।।

हे चार्वङ्गि! अब पारदभस्म निर्माण की विधि सुनो, जिसके ज्ञान से मन्त्र की सिद्धि तथा साधक विभिन्न प्रकार के प्रयोगों को करने में सत्य ही समर्थ हो जाता है।

डेढ़ हाथ लम्बा, चौड़ा तथा गहरा गड्ढा खोदकर उसे हल्दी तथा गाय के गोबर के मिश्रण द्वारा लिप्त करे। इसके पश्चात् गजमूल अथवा वैजयन्ती मूल के साथ पारे को गाय के गोबर से बने उपलों को प्रज्वलित करके उसमें तपा करके विधिपूर्वक भस्म तैयार करें। मङ्गलवार की रात्रि में शुद्ध पारद (पारा) लेकर उसके ऊपर तथा नीचे लवण रखकर (लवण से सम्पुटित कर) तपाने से शीघ्र ही भस्म निर्मित हो जाता है। पीपल के पत्तों के साथ पारे को रखकर तपाने से भी शीघ्र भस्म तैयार हो जाता है।

अश्वगन्ध तथा हयारि पुष्प (अथवा मूल) के साथ पारे को संयुक्त करके भी शीघ्र भस्म निर्मित किया जा सकता है। द्रवित धातु के साथ पारे (भस्म) को संयुक्त करने से वह दृढ़ बद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् उस धातु को पाताल रस से संयुक्त करने पर उत्तम स्वर्ण प्राप्त होता है। पहले धातु तथा पारदभस्म को गोली की भाँति बद्ध बना लेना चाहिए फिर पूर्वोक्त रस द्वारा ताड़न (जोर-जोर से छींटे मारना) करना चाहिए जिससे ठोस स्वर्ण की प्राप्ति होती है। इस प्रयोग को करने से पहले तीन रात्रियों में विधिपूर्वक मूल मन्त्र का (न्यूनतम दश हजार) जप करना चाहिए। इसके पश्चात् ही इस प्रयोग को करने से सफलता प्राप्त होती है।

।। भाव-त्रय-निरूपणम्।।

भावनारससंपन्नो भवेद् योगी महाकविः।
भावस्य निर्णयं देवि कथितमपि शोभने।।२१।।
भावस्तु त्रिविधो देवि दिव्यवीरपशुक्रमात्।
गुरवस्तु त्रिधा ज्ञेयास्तथैव मन्त्रदेवताः।।२२।।
आद्यो भावो महादेवि श्रेयान् सर्वागमेषु च।
द्वितीयो मध्यमः प्रोक्तस्तृतीयः सर्वनिन्दितः।।२३।।
बहुजापात् तथा होमात् कायक्लेशादिविस्तरैः।
न भावेन बिना देवि मन्त्रविद्या फलप्रदा।।२४।।

किं वीरसाधनैर्लक्षैः किं वा कृष्टिकुलाकुलैः।
किं पीठपूजनेनैव किं कन्याभोजनादिभिः॥२५॥
स्वयोषितप्रीतिदानेन किं परेषां तथैव च।
किं जितेन्द्रियभावेन किं कुलाचारकर्मणा॥२६॥
यदि भावविशुद्धात्मा न स्यात् कुलपरायणः।
भावेन लभते मुक्तिं भावेन कुलवर्द्धनम्॥२७॥
भावेन गोत्रवृद्धिः स्याद् भावेन कुलसाधनम्।
किं न्यासविस्तरेणैव किं भूतशुद्धिविस्तरैः॥२८॥
किं तथा पूजनेनैव यदि भावो न जायते।
शेषभावो महादे(व?वि)सर्वकर्मसुखावहः॥२९॥
तेन भावेन देवेशि पूजयेत् परमेश्वरीम्।
बिना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः॥३०॥

हे देवि! अब मैं साधक के भावों (जिस मानसिक चिन्तन अथवा विचार में स्थित होकर साधक साधना करता है) के विषय में शास्त्रीय निर्णय (मत) को कहता हूँ। भावना रस से सम्पन्न (क्रमशः एक-एक भावों से ऊपर उठता हुआ दिव्य भाव प्राप्त किया) हुआ साधक महान विद्वान तथा योगी हो जाता है। हे देवि! भाव तीन प्रकार के कहे गये हैं। दिव्य भाव, वीर भाव तथा पशु भाव। इसी आधार पर गुरु भी तीन प्रकार के जानना चाहिए। मन्त्र तथा देवताओं की साधना भी इसी प्रकार त्रिविध होती है।

इनमें जो प्रथम 'दिव्य-भाव' है, उसे सभी तन्त्रों (तन्त्र-ग्रन्थों तथा साधनाओं) में सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। द्वितीय 'वीर-भाव' मध्यम तथा तीसरा 'पशु-भाव' सबसे निन्दित (अधम-निम्नतर) माना जाता है। मन्त्रों का चाहे जितना अधिक जप किया जाय, हवन किया जाय तथा शरीर को कष्ट देने वाले कर्म-काण्डों तथा साधनाओं को विस्तारपूर्वक किया जाय, जब तक साधक के हृदय में किसी भी भाव के प्रति दृढ़ता नहीं होती, मन्त्र विद्या की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

लाखों प्रकार की वीर-साधनाओं के करने से, कुण्डलिनी का आरोहण-अवरोहण करने से, पीठ-पूजन से, अनेकों कन्याओं को भोजन कराने से, अपनी स्त्री अथवा पर-स्त्री को भली-भाँति प्रसन्न करने से, जितेन्द्रिय होने से तथा कुलाचार से सम्बन्धित विविध कर्मों को करने से तब तक कोई भी लाभ नहीं होगा जब तक कि कुल साधन परायण साधक के चित्त में विशुद्ध रूप से दिव्य भाव की जागृति नहीं होगी।

पशु भाव से ऊपर उठते हुए जब साधक दिव्य भाव को प्राप्त होता है। तब ही उस भाव के कारण उसे मुक्ति प्राप्त होती है। भाव से ही कुल (वंश) वृद्धि, गोत्र वृद्धि तथा कुल साधना में साधक प्रगति की ओर अग्रसर होता है। यदि साधक के चित्त में अपने इष्ट के साथ तादात्म्य भाव (यहाँ तक कि गुरु तथा मन्त्र के साथ भी तादात्म्य भाव) उत्पन्न नहीं हुआ है तो विस्तार पूर्वक भूतशुद्धि करने से, विभिन्न प्रकार के न्यासों को करने से तथा विविध बहुमूल्य उपचारों द्वारा विस्तार पूर्वक पूजन करने से भी यथोचित अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। हृदय में शेष भाव (स्वयं की देवता के अंश रूप में कल्पना अथवा अन्तिम भाव दिव्य भाव) की उत्पत्ति होने पर ही सभी साधन कर्म सुख प्राप्ति के कारण होते हैं। अतः शेषभाव के द्वारा ही परेमश्वरी का पूजन करना चाहिए। परन्तु यदि साधक बिना हेतु (मद्य) को ग्रहण किये साधना करता है तो महेश्वर को क्षोभ की प्राप्ति होती है।

यत्र कुत्र कुजे वारे श्मशानगमने कृते।
पूजाफलं लभेत् तत्र सप्तवासरसंमितम्॥३१॥
चतुर्दश्यां गते तत्र पक्षपुण्यफलं लभेत्।
नागते नार्चिते स्थाने पशुरेव न संशयः॥३२॥
नान्यः स्यादधिको देव इति चिन्तापरायणः।
साधके क्षोभमापन्ने मम क्षोभः प्रजायते॥३३॥
तस्माद् यत्नाद् भोगयुतो भवेद् वीरवरः सदा।
भोगेन मोक्षमाप्नोति भोगेन कुलसुन्दरीम्॥३४॥
बिना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः।
न पूजां मानसीं कुर्याद् न ध्यानं न च चिन्तनम्॥३५॥
यद्यद् वदति निद्राति यत्करोति यदर्चति।
तत्सर्वं कुलरूपं तु ध्यात्वैवं विहरेत् सुधीः॥३६॥
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम्।
न चैव श्रुतिदोषोऽत्र नापराधादिदूषणम्॥३७॥
एकाकी निर्जने देशे श्मशाने पर्वते वने।
शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा॥३८॥
वीराणां जपकालस्तु सर्वकालः प्रशस्यते।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यं कुलतोषणम्॥३९॥

इति विज्ञाय देवेशि सर्वं कुर्याद् वरानने।
बहुनात्र किमुक्तेन किमन्यत् कथयामि ते॥४०॥

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे (रसायन-भावनिरूपणं)
एकविंश पटलः॥२१॥

जिस किसी भी मङ्गलवार को श्मशान में जाकर यदि (वीरभावापन्न) साधक (वीरसाधक) देवी का पूजन करता है तो उसे सात दिनों की पूजा का फल प्राप्त होता है। इसी भाँति चतुर्दशी (की रात्रि) में पूजन करने से पन्द्रह दिनों की पूजा के समान फल की प्राप्ति होती है। जो साधक ऐसे स्थान में नहीं जाता तथा इस प्रकार की पूजा नहीं करता, वह निश्चय ही पशु भावापन्न साधक है। यह साधक देवता से अभिन्न होते हुए भी, ऐसा न जानकर सदैव देवता को स्वयं से श्रेष्ठ (तथा भिन्न) मानता हुआ उसके ध्यान में संलग्न रहता है।

यदि कोई साधक शास्त्र विहित भोगों का भी परित्याग कर शरीर को अनावश्यक कष्ट देता हुआ साधना करता है तो उसके चित्त में क्षोभ उत्पन्न होता है जिसके कारण (जीवात्मा रूप) मुझे भी क्षोभ की प्राप्ति होती है। अतः वीर साधक सदैव भोगयुक्त होकर ही साधना करे। भोग से ही मुक्ति तथा देवी की प्राप्ति होती है।

दिव्य साधक न तो मानस पूजन करे और न ही इष्ट का ध्यान-चिन्तन, अर्थात् उसे विशेष रूप से इन्हें करने की आवश्यकता नहीं होती। वह जो कुछ भी बोलता है वही इष्ट की स्तुति है, उसका शयन ही इष्ट का ध्यान है तथा वह जो कुछ भी कर्म करता है, वह सभी इष्ट का अर्चन है। ऐसी भावना से युक्त होकर वह सम्पूर्ण सृष्टि में देवी का चिन्तन करता हुआ अर्थात् समस्त सृष्टि को देवी स्वरूप ही मानता हुआ सुख पूर्वक स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करे।

सम्पूर्ण सृष्टि को देवी (स्व-इष्ट) स्वरूप अनुभव करने वाला मनुष्य यदि कभी देवी का पूजन करे तो सदैव खा पीकर ही पूजन करे। ऐसा करना न तो वेद विरुद्ध है और न ही इससे कोई अपराध एवं दोष लगता है। वीर साधक हो अथवा दिव्य साधक सदैव अकेला जनशून्य स्थानों में, पर्वत, श्मशान, वन, शून्य भवन, नदी तट आदि सर्वत्र बिना किसी भय के निश्चिन्त होकर भ्रमण (निवास) करता हुआ सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करे। वीर साधकों के लिए जपकार्य हेतु सभी काल श्रेष्ठ हैं। वीर साधक को सभी स्थानों तथा सभी पीठों पर देवी की प्रसन्नता के लिए पूजन (विशेषतः स्त्री पूजन) करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि वीरसाधक कभी भी, कहीं भी देवी

का पूजन-जप करने का अधिकारी होता है। हे देवि! इस प्रकार भावों के विषय में जानकर स्व-स्व भावानुसार साधक को अपना सभी पूजनादि कर्म करना चाहिए। इस विषय में और अधिक कहने से क्या लाभ। अब कहिए देवि! तुमसे मैं और क्या कहूँ?

।।श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत
रसायन-भाव निरूपण नामक इक्कीसवें पटल
की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

।। द्वाविंशः पटलः।।

(काली सहस्रनाम-निरूपणम्)

।। काली-सहस्र-नाम-श्रुत्यर्थ कामना।।

श्री देव्युवाच

पूर्वं हि सूचितं देव कालीनामसहस्रकम्।
तद्वदस्व महादेव यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।।१।।

हे देव महादेव! पूर्व काल में आपने जिस काली सहस्रनाम को केवल सङ्केत रूप से सूचित किया था, उन नामों को, यदि आपका मेरे प्रति सत्य ही प्रेम है तो, विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

।। सविनियोग काली सहस्र नाम वर्णनम्।।

श्रीभैरव उवाच

तन्त्रेऽस्मिन् परमेशानि कालीनामसहस्रकम्।
शृणुष्वैकमना देवि भक्तानां प्रीतिवर्द्धनम।।२।।
कालिका कामदा कुल्ला भद्रकाली गणेश्वरी।
भैरवी भैरवप्रीता भवानी भवमोचिनी।।३।।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी।
महाकालरता सूक्ष्मा कौलव्रतपरायणा।।४।।
कोमलाङ्गी करालाङ्गी कमनीया वराङ्गना।
गन्धचन्दनदिग्धाङ्गी सती साध्वी पतिव्रता।।५।।
काकिनी वर्णरूपा च महाकालकुटुम्बिनी।
कामहन्त्री कामकला कामविज्ञा महोदया।।६।।
कान्तरूपा महालक्ष्मीर्महाकालस्वरूपिणी।
कुलीना कुलसर्वस्वा कुलवर्त्मप्रदर्शिका।।७।।
कुलरूपा चकोराक्षी श्रीदुर्गा दुर्गनाशिनी।
कन्या कुमारी गौरी तु कृष्णदेहा महामनाः।।८।।
कृष्णाङ्गी नीलदेहा च पिङ्गकेशी कृशोदरी।
पिङ्गाक्षी कमलप्रीता काली कालपराक्रमा।।९।।

कलानाथप्रिया देवी कुलकान्ताऽपराजिता।
उग्रतारा महोग्रा च तथा चैकजटा शिवा॥१०॥
नीला घना बलाका च कालदात्री कलात्मिका।
नारायणप्रिया सूक्ष्मा वरदा भक्तवत्सला॥११॥
वरारोहा महाबाणा किशोरी युवती सती।
दीर्घाङ्गी दीर्घकेशा च नृमुण्डधारिणी तथा॥१२॥
मालिनी नरमुण्डाली शवमुण्डास्थिधारिणी।
रक्तनेत्रा विशालाक्षी सिन्दूरभूषणा मही॥१३॥
घोररात्रिर्महारात्रिर्घोरान्तकविनाशिनी ।
नारसिंही महारौद्री नीलरूपा वृषासना॥१४॥
विलोचना विरूपाक्षी रक्तोत्पलविलोचना।
पूर्णेन्दुवदना भीमा प्रसन्नवदना तथा॥१५॥

हे देवि परमेशानि! भक्तों के हृदय में भगवती महाकाली के प्रति भक्तिभाव को संवर्धित करने वाले, इस तन्त्र-शास्त्र में कहे गये काली के सहस्र नामों को एकाग्रचित्त होकर सुनो! (इन नामों का पाठ करने से पूर्व निम्न प्रकार से इसका विनियोग करना चाहिए।)

विनियोग :- **ॐ अस्य श्रीकालीदेव्याः सहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य महाकाल भैरव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः श्री (महा) काली देवता, क्रीं बीजं, हूँ शक्तिः, ह्रीं कीलकं धमार्थ काम मोक्षार्थे (पुरुषार्थ चतुष्टये) विनियोगः।**

इसके पश्चात् **'ऋष्यादि न्यास'**, क्रां, क्रीं, क्रूं आदि से **'कर-षडङ्ग न्यास'**, **'ध्यान'** तथा **'मानसोपचारार्चन'** करके **'सहस्रनाम'** का पाठ करना चाहिए। साधक अपनी इच्छानुसार श्लोक रूप से पाठ न करके निम्न रूप से भी पाठ कर सकता है। यहाँ चतुर्थ्यन्त रूप नामों का उल्लेख किया जा रहा है। इनके पूर्व **'ॐ'** (अथवा ह्रीं) तथा पश्चात् में **'नमः'** का संयोग करके ही पाठ (जप) करना चाहिए। यथा –

ह्रीं (ॐ) कालिकायै नमः। कामदायै, (कुरु) कुल्लायै, भद्रकाल्यै, गणेश्वर्यै, भैरव्यै, भैरव प्रीतायै, भवान्यै, भवमोचिन्यै, कालरात्र्यै, महारात्र्यै, मोहरात्र्यै, मोहिन्यै, महाकालरतायै, सूक्ष्मायै, कौलव्रतपरायणायै, कोमलाङ्ग्यै, करालाङ्ग्यै, कमनीयायै, वराङ्गनायै, गन्धचन्दनदिग्धाङ्ग्यै, सत्यै, साध्व्यै, पतिव्रतायै, काकिन्यै, वर्णरूपायै, महाकालकुटुम्बिन्यै, कामहन्त्र्यै, कामकलायै, कामविज्ञायै, महोदयायै, कान्तरूपायै, महालक्ष्मी स्वरूपिण्यै, महाकालस्वरूपिण्यै, कुलीनायै,

कुलसर्वस्वायै, कुलवर्त्मप्रदर्शिकायै, कुलरूपायै, चकोराक्ष्यै, श्रीदुर्गायै, दुर्गनाशिन्यै, कन्यायै, कुमार्यै, गौर्यै, कृष्णदेहायै, महामनायै, कृष्णाङ्ग्यै, नीलदेहायै, पिङ्गकेश्यै, कृशोदर्यै, पिङ्गाक्ष्यै, कमलप्रीतायै, काल्यै, कालपराक्रमायै, कलानाथप्रियायै, देव्यै, कुलकान्तायै, अपराजितायै, उग्रतारायै, महोग्रायै, एक-जटायै, शिवायै, नीलायै, घनायै, बलाकायै, कालदात्र्यै, कलात्मिकायै, नारायणप्रियायै, सूक्ष्मायै, वरदायै, भक्तवत्सलायै, वरारोहायै, महाबाणायै, किशोर्यै, युवत्यै, सत्यै, दीर्घाङ्ग्यै, दीर्घकेशायै, नृमुण्डधारिण्यै, मालिन्यै, नरमुण्डाल्यै, शवास्थिधारिण्यै, मुण्डास्थिधारिण्यै, रक्तनेत्रायै, विशालाक्ष्यै, सिन्दूरभूषणायै, मह्यै, घोररात्र्यै, महारात्र्यै, घोरान्तकविनाशिन्यै, नारसिंह्यै, महारौद्र्यै, नीलरूपायै, वृषासनायै, विलोचनायै, विरूपाक्ष्यै, रक्तोत्पल विलोचनायै, पूर्णेन्दुवदनायै, भीमायै तथा प्रसन्नवदनायै। (१००)

पद्मनेत्रा विशालाक्षी शरज्ज्योत्सनासमाकुला।
प्रफुल्लपुण्डरीकाभलोचना भयनाशिनी॥१६॥
अट्टहासा महोच्छ्वासा महाविघ्नविनाशिनी।
कोटराक्षी कृशग्रीवा कुलतीर्थप्रस(ा)धिनी॥१७॥
कुलगर्तप्रसन्नास्या महती कुलभूषिका।
बहुवाक्यामृतरसा चण्डरूपाति(रो?वे)गिनी॥१८॥
वेगदर्पा विशालैन्द्री प्रचण्डचण्डिका तथा।
चण्डिका कालवदना सतीक्ष्णनासिका तथा॥१९॥
दीर्घकेशी सुकेशी च कपिलाङ्गी महारुणा।
प्रेतभूषणसंप्रीता प्रेतदोर्दण्डघण्टिका॥२०॥
शङ्खिनी शङ्खमुद्रा च शङ्खध्वनिनिनादिनी।
श्मशानवासिनी पूर्णा पूर्णेन्दुवदना शिवा॥२१॥
शिव प्रीता शिवरता शिवासनसमाश्रया।
पुण्यालया महापुण्या पुण्यदा पुण्यवल्लभा॥२२॥
नरमुण्डधरा भीमा भीमासुरविनाशिनी।
दक्षिणा दक्षिणाप्रीता नागयज्ञोपवीतिनी॥२३॥
दिगम्बरी महाकाली शान्ता पीनोन्नतस्तनी।
घोरासना घोररूपा सृक्प्रान्ते-रक्तधारिका॥२४॥
महाध्वनिः शिवासक्ता महाशब्दा महोदरी।
कामातुरा कामसक्ता प्रमत्ता शक्तभावना॥२५॥

समुद्रनिलया देवी महामत्तजनप्रिया।
कर्षिता कर्षणप्रीता सर्वाकर्षणकारिणी॥२६॥
वाद्यप्रीता महागीतरक्ता प्रेतनिवासिनी।
नरमुण्डसृजा गीता मालिनी माल्यभूषिता॥२७॥
चतुर्भुजा महारौद्री दशहस्ता प्रियातुरा।
जगन्माता जगद्धात्री जगती मुक्तिदा परा॥२८॥
जगद्धात्री जगत्त्रात्री जगदानन्दकारिणी।
जगज्जीवमयी हैमवती माया महाकचा॥२९॥
नागाङ्गी संहृताङ्गी च नागशय्यासमागता।
कालरात्रिर्दारुणा च चन्द्रसूर्यप्रतापिनी॥३०॥

पद्मनेत्रायै, विशालाक्ष्यै, शरज्ज्योत्सनायै, समाकुलायै, प्रफुल्लपुण्डरीकाभलोचनायै, भयनाशिन्यै, अट्टहासायै, महोच्छ्वासायै, महाविघ्नविनाशिन्यै, कोटराक्ष्यै, कृशग्रीवायै, कुलतीर्थप्रसाधिन्यै, कुलगर्तप्रसन्नास्यायै, महत्यै, कुलभूषिकायै, बहुवाक्यामृतरसायै, चण्डरूपायै, अतिवेगिन्यै, वेगदर्पायै, विशालैन्द्र्यै, प्रचण्डचण्डिकायै, चण्डिकायै, कालवदनायै, सुतीक्ष्ण नासिकायै, दीर्घकेश्यै, सुकेश्यै, कपिलाङ्ग्यै, महारुणायै, प्रेतभूषणसम्प्रीतायै, प्रेतदोर्दण्डघण्टिकायै, शंखिन्यै, शंखमुद्रायै, शंखध्वनिनिनादिन्यै, श्मशानवासिन्यै, पूर्णायै, पूर्णेन्दुवदनायै, शिवायै, शिवप्रीतायै, शिवरतायै, शिवासनसमाश्रयायै, पुण्यालयायै, महापुण्यायै, पुण्यदायै, पुण्यवल्लभायै, नरमुण्ड धरायै, भीमायै, भीमासुरविनाशिन्यै, दक्षिणायै, दक्षिणा प्रीतायै, नागयज्ञोपवितिन्यै, दिगम्बर्यै, महाकाल्यै, शान्तायै, पीनोन्नतस्तन्यै, घोरासनायै, घोररूपायै, सृक्प्रान्तेरक्त धारिकायै, महाध्वन्यै, शिवासक्तायै, महाशब्दायै, महोदर्यै, कामातुरायै, कामसक्तायै, प्रमत्तायै, शक्तभावनायै, समुद्रनिलयायै, देव्यै, महामत्तजनप्रियायै, कर्षितायै, कर्षणप्रीतायै, सर्वाकर्षणकारिण्यै, वाद्यप्रीतायै, महागीतरक्तायै, प्रेतनिवासिन्यै, नरमुण्डसृजायै, गीतायै, मालिन्यै, माल्यभूषितायै, चतुर्भुजायै, महारौद्र्यै, दशहस्तायै, प्रियातुरायै, जगन्मातायै, जगद्धात्र्यै, जगत्यै, मुक्तिदायै, परायै, जगद्धात्र्यै, जगत्त्रात्र्यै, जगदानन्दकारिण्यै, जगज्जीवमय्यै, हैमवत्यै, मायायै, महाकचायै, नागाङ्ग्यै, संहृताङ्ग्यै, नागशय्यासमागतायै, कालरात्र्यै, दारुणायै तथा चन्द्रसूर्य प्रतापिन्यै।(२००)

नागेन्द्रनन्दिनी देवकन्या च श्रीमनोरमा।
विद्याधरी वेदविद्या यक्षिणी शिवमोहिनी॥३१॥
राक्षसी डाकिनी देवमयी सर्वजगज्जया।
श्रुतिरूपा तथाग्नेयी महामुक्तिर्जनेश्वरी॥३२॥

पतिव्रता पतिरता पतिभक्तिपरायणा।
सिद्धिदा सिद्धिसंदात्री तथा सिद्धजनप्रिया॥३३॥
कर्त्रिहस्ता शिवारूढा शिवरूपा शवासना।
तमिस्रा तामसी विज्ञा महामेघस्वरूपिणी॥३४॥
चारुचित्रा चारुवर्णा चारुकेशसमाकुला।
चार्वङ्गी चञ्चला लोला चीनाचारपरायणा॥३५॥
चीनाचारपरा लज्जावती जीवप्रदाऽनघा।
सरस्वती तथा लक्ष्मीर्महानीलसरस्वती॥३६॥
गरिष्ठा धर्मनिरता धर्माधर्मविनाशिनी।
विशिष्टा महती मान्या तथा सौम्यजनप्रिया॥३७॥
भयदात्री भयरता भयानकजनप्रिया।
वाक्यरूपा छिन्नमस्ता छिन्नासुरप्रिया सदा॥३८॥
ऋग्वेदरूपा सावित्री रागयुक्ता रजस्वला।
रजःप्रीता रजोरक्ता रजःसंसर्गवर्द्धिनी॥३९॥
रजःलुप्ता रजःस्फीता रजःकुन्तलशोभिता।
कुण्डली कुण्डलप्रीता तथा कुण्डलशोभिता॥४०॥
रेवती रेवतप्रीता रेवा चैरावती शुभा।
शक्तिनी चक्रिणी पद्मा महापद्मनिवासिनी॥४१॥
पद्मालया महापद्मा पद्मिनी पद्मवल्लभा।
पद्मप्रिया पद्मरता महापद्मसुशोभिता॥४२॥
शूलहस्ता शूलरता शूलिनी शूलसङ्गिका।
पि(णा?ना)कधारिणी वीणा तथा वीणावती मघा॥४३॥
रोहिणी बहुलप्रीता तथा वाहनवर्द्धिता।
रणप्रीता रणरता रणासुरविनाशिनी॥४४॥

नागेन्द्रनन्दिन्यै, देवकन्यायै, श्रीमनोरमायै, विद्याधर्यै, वेदविद्यायै, यक्षिण्यै, शिवमोहिन्यै, राक्षस्यै, डाकिन्यै, देवमय्यै, सर्वजगज्जयायै, श्रुतिरूपायै, आग्नेय्यै, महामुक्त्यै, जनेश्वर्यै, पतिव्रतायै, पतिरतायै, पतिभक्तिपरायणायै, सिद्धिदायै, सिद्धिसंदात्र्यै, सिद्धजनप्रियायै, कर्त्रिहस्तायै, शिवारूढायै, शिवारूपायै, शवासनायै, तमिस्रायै, तामस्यै, विज्ञायै, महामेघस्वरूपिण्यै, चारुचित्रायै, चारुवर्णायै, चारुकेश समाकुलायै, चार्वङ्ग्यै, चञ्चलायै, लोलायै, चीनाचारपरायणायै, चीनाचारपरायै, लज्जावत्यै, जीवप्रदायै, अनघायै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, महानीलसरस्वत्यै, गरिष्ठायै,

धर्मनिरतायै, धर्माधर्मविनासिन्यै, विशिष्टायै, महत्यै, मान्यायै, सौम्यजनप्रियायै, भयदात्र्यै, भयरतायै, भयानकजनप्रियायै, वाक्यरूपायै, छिन्नमस्तायै, छिन्नायै, सदासुरप्रियायै, ऋग्वेदरूपायै, सावित्र्यै, रागयुक्तायै, रजस्वलायै, रज:प्रीतायै, रजोरक्तायै, रज:संसर्गवर्धिन्यै, रजः प्लुतायै, रजः स्फीतायै, रजः कुन्तलशोभितायै, कुण्डल्यै, कुण्डल प्रीतायै, कुण्डल शोभितायै, रेवत्यै, रेवत प्रीतायै, रेवायै, ऐरावत्यै, शुभायै, शक्तिन्यै, चक्रिण्यै, पद्मायै, महापद्मनिवासिन्यै, पद्मालायै, महापद्मायै, पद्मिन्यै, पद्मवल्लभायै, पद्मप्रियायै, पद्मरतायै, महापद्मसुशोभितायै, शूलहस्तायै, शूलरतायै, शूलिन्यै, शूलसङ्गिकायै, पिनाकधारिण्यै, वीणायै, वीणावत्यै, मघायै, रोहिण्यै, बहुलप्रीतायै, वाहनवर्धितायै, रणप्रीतायै, रणरतायै तथा रणासुरविनासिन्यै।(३००)

रणाग्रवर्तिनी राणा रणाग्रा रणपण्डिता।
जटायुक्ता जटापिङ्गा वज्रिणी शूलिनी तथा॥४५॥
रतिप्रिया रतिरता रतिभक्ता रतातुरा।
रतिभीता रतिगता महिषासुरनाशिनी॥४६॥
रक्तपा रक्तसंप्रीता रक्ताख्या रक्तशोभिता।
रक्तरूपा रक्तगता रक्तखर्परधारिणी॥४७॥
गलच्छोणितमुण्डाली कण्ठमालाविभूषिता।
वृषासना वृषरता वृषासनकृताश्रया॥४८॥
व्याघ्रचर्मावृता रौद्री व्याघ्रचर्मावली तथा।
कामाङ्गी परमा प्रीता परासुरनि(वा?रा)सिनी॥४९॥
तरुणा तरुणप्राणा तथा तरुणमर्दिनी।
तरुणप्रेमदा वृद्धा तथा वृद्धप्रिया सती॥५०॥
स्वप्नावती स्वप्नरता नारसिंही महालया।
अमोघारुन्धती रम्या तीक्ष्णा भोगवती सदा॥५१॥
मन्दाकिनी मन्दरता महानन्दा वरप्रदा।
मानदा मानिनी मान्या माननीया मदातुरा॥५२॥
मदिरा मदिरोन्मादा मदिराक्षी मदालया।
सुदीर्घा मध्यमा नन्दा विनतासुरनिर्गता॥५३॥
जयप्रदा जयरता दुर्ज(या?य्या)सुरनाशिनी।
दुष्टदैत्यनिहन्त्री च दुष्टासुरविनाशिनी॥५४॥
सुखदा मोक्षदा मोक्षा महामोक्षप्रदायिनी।
कीर्तिर्यशस्विनी भूषा भूष्या भूतपतिप्रिया॥५५॥

गुणातीता गुणप्रीता गुणरक्ता गुणात्मिका।
सगुणा निर्गुणा सीता निष्ठा काष्ठा प्रतिष्ठिता॥५६॥
धनिष्ठा धनदा धन्या वसुदा सुप्रकाशिनी।
गुर्वी गुरुतरा धौम्या धौम्यासुरविनाशिनी॥५७॥

रणाग्रवर्तिन्यै, राणायै, रणाग्रायै, रण पण्डितायै, जटायुक्तायै, जटापिङ्गायै, वज्रिण्यै, शूलिन्यै, रतिप्रियायै, रतिरतायै, रतिभक्तायै, रतातुरायै, रतिभीतायै, रतिगतायै, महिषासुरनाशिन्यै, रक्तपायै, रक्तसम्प्रीतायै, रक्ताख्यायै, रक्तशोभितायै, रक्तरूपायै, रक्तगतायै, रक्तखर्परधारिण्यै, गलच्छोणितमुण्डाल्यै, कण्ठमालाविभूषितायै, वृषासनायै, वृषरतायै, वृषासनकृताश्रयायै, व्याघ्रचर्मवृतायै, रौद्र्यै, व्याघ्रचर्मावल्यै, कामाङ्ग्यै, परमायै, प्रीतायै, परासुरनिरासिन्यै, तरुणायै, तरुणप्राणायै, तरुणमर्दिन्यै, तरुणप्रेमदायै, वृद्धायै, वृद्धप्रियायै, सत्यै, स्वप्नावत्यै, स्वप्नरतायै, नारसिंह्यै, महालयायै, अमोघायै, अरुन्धत्यै, रम्यायै, तीक्ष्णायै, भोगवत्यै, मन्दाकिन्यै, मन्दरतायै, महानन्दायै, वरप्रदायै, मानदायै, मानिन्यै, मान्यायै, माननीयायै, मदातुरायै, मदिरायै, मदिरोन्मादायै, मदिराक्ष्यै, मदालयायै, सुदीर्घायै, मध्यमायै, नन्दायै, विनतासुरनिर्गतायै, जयप्रदायै, जयरतायै, दुर्जयायै, दुर्जय्यासुरविनासिन्यै, दुष्टदैत्यनिहन्त्र्यै, दुष्टासुरविनासिन्यै, सुखदायै, मोक्षदायै, मोक्षायै, महामोक्षप्रदायिन्यै, कीर्तियशस्विन्यै, भूषायै, भूष्यायै, भूतपति प्रियायै, गुणातीतायै, गुणप्रीतायै, गुणरक्तायै, गुणात्मिकायै, सगुणायै, निर्गुणायै, सीतायै, निष्ठायै, काष्ठायै, प्रतिष्ठितायै, धनिष्ठायै, धनदायै, धन्यायै, वसुदायै, सुप्रकाशिन्यै, गुर्व्यै, गुरुतरायै, धौम्यायै तथा धौम्यासुरविनाशिन्यै।(४००)

निष्कामा धनदा कामा सकामा कामजीवना।
चिन्तामणिः कल्पलता तथा शङ्करवाहिनी॥५८॥
शङ्करी शङ्कररता तथा शङ्करमोहिनी।
भवानी भवदा भव्या भवप्रीता भवालया॥५९॥
महादेवप्रिया रम्या रमणी कामसुन्दरी।
कदलीस्तम्भसंरामा निर्मलासनवासिनी॥६०॥
माथुरी मथुरा माया तथा सुरभिवर्द्धिनी।
व्यक्ताव्यक्तानेकरूपा सर्वतीर्थास्पदा शिवा॥६१॥
तीर्थरूपा महारूपा तथागस्त्यवधूरपि।
शिवानी शैवलप्रीता तथा शैवलवासिनी॥६२॥
कुन्तला कुन्तलप्रीता तथा कुन्तलशोभिता।
महाकचा महाबुद्धिर्महामाया महागदा॥६३॥

महामेघस्वरूपा च तथा कङ्कणमोहिनी।
देवपूज्या देवरता युवती सर्वमङ्गला॥६४॥
सर्वप्रियङ्करी भोग्या भोगरूपा भगाकृतिः।
भगप्रीता भगरता भगप्रेमरता सदा॥६५॥
भगसंमर्दनप्रीता भगोपरि-निवेशिता।
भगदक्षा भगाक्रान्ता भगसौभाग्यवर्द्धिनी॥६६॥
दक्षकन्या महादक्षा सर्वदक्षा प्रचण्डिका।
दण्डप्रिया दण्डरता दण्डताडनतत्परा॥६७॥
दण्डभीता दण्डगा दण्डसंमर्दने रता।
सुवेदिदण्डमध्यस्था भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणी॥६८॥
आद्या दुर्गा जया सूक्ष्मा सूक्ष्मरूपा जयाकृतिः।
क्षेमङ्करी महाघूर्णा घूर्णनासा वशङ्करी॥६९॥
विशालावयवा मेध्या त्रिवलीवलया शुभा।
मदोन्मत्ता मदरता मत्तासुरविनाशिनी॥७०॥
मधुकैटभसंहन्त्री निशुम्भासुरमर्दिनी।
चण्डरूपा महाचण्डी चण्डिका चण्डनायिका॥७१॥

निष्कामायै, धनदायै, कामायै, सकामायै, कामजीवनायै, चिन्तामण्यै, कल्प लतायै, शंकरवाहिन्यै, शंकर्यै, शङ्कररतायै, शङ्करमोहिन्यै, भवान्यै, भवदायै, भव्यायै, भवप्रीतायै, भवालयायै, महादेवप्रियायै, रम्यायै, रमण्यै, कामसुन्दर्यै, कदलीस्तम्भसंरामायै, निर्मलासनवासिन्यै, माथुर्यै (माधुर्यै), मथुरायै (मधुरायै), मायायै, सुरभिवर्द्धिन्यै, व्यक्तायै, अव्यक्तायै, व्यक्ताव्यक्तानेकरूपायै, सर्वतीर्थास्पदायै, शिवायै, तीर्थरूपायै, महारूपायै, अगस्त्यवध्वै, शिवान्यै, शैवलप्रीतायै, शैवलवासिन्यै, कुन्तलायै, कुन्तलप्रीतायै, कुन्तलशोभितायै, महाकचायै, महाबुद्ध्यै, महामायायै, महागदायै, महामेघस्वरूपायै, कङ्कणमोहिन्यै, देवपूज्यायै, देवरतायै, युवत्यै, सर्वमङ्गलायै, सर्वप्रियङ्कर्यै, भोग्यायै, भोगरूपायै, भगाकृत्यै, भगप्रीतायै, भगरतायै, सदाभगप्रेमरतायै, भगसम्मर्दनप्रीतायै, भगोपरि निवेशितायै, भगदक्षायै, भगाक्रान्तायै, भगसौभाग्यवर्द्धिन्यै, दक्षकन्यायै, महादक्षायै, सर्वदक्षायै, प्रचण्डिकायै, दण्डप्रियायै, दण्डरतायै, दण्डताडनतत्परायै, दण्डभीतायै, दण्डगतायै, दण्डसम्मर्दनेरतायै, सुवेदिदण्डमध्यस्थायै, भूर्भुवः स्वः स्वरूपिण्यै, आद्यायै, दुर्गायै, जयायै, सूक्ष्मायै, सूक्ष्मरूपायै, जयाकृत्यै, क्षेमकर्यै, महाघूर्णायै, घूर्णनासायै, वशङ्कर्यै, विशालावयवायै, मेध्यायै,

त्रिवलीवलयायै, शुभायै, मदोन्मत्तायै, मदरतायै, मत्तासुरविनाशिन्यै, मधुकैटभ संहन्त्र्यै, निशुम्भासुरमर्दिन्यै, चण्डरूपायै, महाचण्ड्यै, चण्डिकायै तथा चण्डनायिकायै।(४९७)

चण्डोग्रा चण्डवर्णा प्रचण्डा चण्डावती शिवा।
नीलाकारा नीलवर्णा नीलेन्दीवरलोचना।।७२।।
खड्गहस्ता च मृद्वङ्गी तथा खर्परधारिणी।
भीमा च भीमवदना महाभीमा भयानका।।७३।।
कल्याणी मङ्गला शुद्धा तथा परमकौतुका।
परमेष्ठी पररता पर(ा)त्परतरा परा।।७४।।
परानन्दस्वरूपा च नित्यानन्दस्वरूपिणी।
नित्या नित्यप्रिया तन्द्री भवानी भवसुन्दरी।।७५।।
त्रैलोक्यमोहिनी सिद्धा तथा सिद्धजनप्रिया।
भैरवी भैरवप्रीता तथा भैरवमोहिनी।।७६।।
मातङ्गी कमला लक्ष्मीः षोडशी विषयातुरा।
विषमग्ना विषरता विषरक्षा जयद्रथा।।७७।।
काकपक्षधरा नित्या सर्वविस्मयकारिणी।
गदिनी कामिनी खड्गमुण्डमालाविभूषिता।।७८।।
योगीश्वरी योगमाता योगानन्दस्वरूपिणी।
आनन्दभैरवी नन्दा तथा नन्दजनप्रिया।।७९।।
नलिनी ललना शुभ्रा शुभ्राननविभूषिता।
ललज्जिह्वा नीलपदा तथा सु(मु?म)खदक्षिणा।।८०।।
बलिभक्ता बलिरता बलिभोग्या महारता।
फलभोग्या फलरसा फलदा श्रीफलप्रिया।।८१।।
फलिनी फलसंवज्ञा फलाफलनिवारिणी।
फलप्रीता फलगता फलसंदानसन्धिनी।।८२।।
फलोन्मुखी सर्वसत्त्वा महासत्त्वा च सात्त्विकी।
सर्वरूपा सर्वरता सर्वसत्त्वनिवासिनी।।८३।।
महारूपा महाभागा महामेघस्वरूपिणी।
भयनासा गणरता गणप्रीता महागतिः।।८४।।
सद्गतिः सत्कृतिः स्वक्षा शवासनगता शुभा।
त्रैलोक्यमोहिनी गङ्गा स्वर्गङ्गा स्वर्गवासिनी।।८५।।

महानन्दा सदानन्दा नित्यानित्यस्वरूपिका।
सत्यगन्धा सत्यगणा सत्यरूपा महाकृतिः॥८६॥

चण्डोग्रायै, चण्डवर्णायै, प्रचण्डायै, चण्डवत्यै, शिवायै, नीलाकारायै, नीलवर्णायै, नीलेन्दीवरलोचनायै, खड्गहस्तायै, मृद्वङ्ग्यै, खर्परधारिण्यै, भीमायै, भीमवदनायै, महाभीमायै, भयानकायै, कल्याण्यै, मङ्गलायै, शुद्धायै, परम कौतुकायै, परमेष्ठ्यै, पररतायै, परात्परतरायै, परायै, परानन्दस्वरूपायै, नित्यानन्दस्वरूपिण्यै, नित्यायै, नित्यप्रियायै, तन्द्र्यै, भवान्यै, भवसुन्दर्यै, त्रैलोक्यमोहिन्यै, सिद्धायै, सिद्धजनप्रियायै, भैरव्यै, भैरवप्रीतायै, भैरवमोहिन्यै, मातङ्ग्यै, कमलायै, लक्ष्म्यै, षोडश्यै, विषयातुरायै, विषमग्नायै, विषरतायै, विषरक्षायै, जयद्रथायै, काकपक्षधरायै, नित्यायै, सर्वविस्मयकारिण्यै, गदिन्यै, कामिन्यै, खड्गमुण्डमालाविभूषितायै, योगीश्वर्यै, योगमातायै, योगानन्दस्वरूपिण्यै, आनन्दभैरव्यै, नन्दायै, नन्दजनप्रियायै, नलिन्यै, ललनायै, शुभ्रायै, शुभ्राननाविभूषितायै, ललज्जिह्वायै, नीलपदायै, सुमखदक्षिणायै, बलिभक्तायै, बलिरतायै, बलिभोग्यायै, महारतायै, फलभोग्यायै, फलरसायै, फलदायै, श्रीफलप्रियायै, फलिन्यै, फलसंवज्रायै, फलाफलनिवारिण्यै, फलप्रीतायै, फलगतायै, फलसदानन्दसन्धिन्यै, फलोन्मुख्यै, सर्वसत्वायै, महासत्वायै, सात्विक्यै, सर्वरूपायै, सर्वरतायै, सर्वसत्वनिवासिन्यै, महारूपायै, महाभागायै, महामेघस्वरूपिण्यै, भयनासायै, गणरतायै, गणप्रीतायै, महागत्यै, सद्गत्यै, सत्कृत्यै, स्वक्षायै, शवासनगतायै, शुभायै, त्रैलोक्यमोहिन्यै, गङ्गायै, स्वर्गङ्गायै, स्वर्गवासिन्यै, महानन्दायै, सदानन्दायै, नित्यानित्य स्वरूपिकायै, सत्यगन्धायै, सत्यगणायै, सत्यरूपायै तथा महाकृत्यै। (६०५)

श्मशानभैरवी काली तथा भयविमर्दिनी।
त्रिपुरा परमेशानी सुन्दरी पुरसुन्दरी॥८७॥
त्रिपुरेशी पञ्चदशमी पञ्चमी पुरवासिनी।
महासप्तदशी षष्ठी सप्तमी (चा)ष्टमी तथा॥८८॥
नवमी दशमी देवप्रिया चैकादशी शिवा।
द्वादशी परमा दिव्या नीलरूपा त्रयोदशी॥८९॥
चतुर्दशी पौर्णमासी राजराजेश्वरी तथा।
त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथा त्रिपुरमर्दिनी॥९०॥
सर्वाङ्गसुन्दरी रक्ता रक्तवस्त्रोपवीतिनी।
चामरी चामरप्रीता चमरासुरमर्दिनी॥९१॥
मनोज्ञा सुन्दरी रम्या हंसी च चारुहासिनी।
नितम्बिनी नितम्बाढ्या नितम्बगुरुशोभिता॥९२॥

पट्टवस्त्रप(रि?री)धाना पट्टवस्त्रधरा-शुभा।
कर्पूरचन्द्रवदना कुङ्कुमद्रवशोभिता॥९३॥
पृथिवी पृथुरूपा सा पार्थिवेन्द्रविनाशिनी।
रत्नवेदिः सुरेशा च सुरेशी सुरमोहिनी॥९४॥
शिरोमणिर्मणिग्रीवा मणिरत्नविभूषिता।
उर्वशी शमनी काली महाकालस्वरूपिणी॥९५॥
सर्वरूपा महासत्त्वा रूपान्तरविलासिनी।
शिवा शैवा च रुद्राणी तथा शिवनिनादिनी॥९६॥
मातङ्गिनी भ्रामरी च तथैवा(ङ्गन?नङ्ग)मेखला।
योगिनी डाकिनी चैव तथा महेश्वरि-परा॥९७॥
अलम्बुषा भवानी च महाविद्यौघसंभृता।
गृध्ररूपा ब्रह्मयोनिर्महानन्दा महोदया॥९८॥
विरूपाक्षा महानादा चण्डरूपा कृताकृतिः।
वरारोहा महावल्ली महात्रिपुरसुन्दरी॥९९॥
भगात्मिका भगाधाररूपिणी भगमालिनी।
लिङ्गाभिधायिनी देवी महामाया महास्मृतिः॥१००॥

श्मशानभैरव्यै, काल्यै, भयविमर्दिन्यै, त्रिपुरायै, परमेशान्यै, सुन्दर्यै, पुरसुन्दर्यै, त्रिपुरेश्यै, पञ्चदश्यै, पञ्चम्यै, पुरवासिन्यै, महासप्तदश्यै, षष्ठ्यै, सप्तम्यै, अष्टम्यै, नवम्यै, दशम्यै, देवप्रियायै, एकादश्यै, शिवायै, द्वादश्यै, परमायै, दिव्यायै, नीलरूपायै, त्रयोदश्यै, चतुर्दश्यै, पौर्णमास्यै, राजराजेश्वर्यै, त्रिपुरायै, त्रिपुरेश्यै, त्रिपुर मर्दिन्यै, सर्वाङ्गसुन्दर्यै, रक्तायै, रक्तवस्त्रोपवीतिन्यै, चामर्यै, चामरप्रीतायै, चमरासुरमर्दिन्यै, मनोज्ञायै, सुन्दर्यै, रम्यायै, हंस्यै, चारुहासिन्यै, नितम्बिन्यै, नितम्बाढ्यायै, नितम्बगुरुशोभितायै, पट्टवस्त्रपरीधानायै, पट्टवस्त्र धराशुभायै, कर्पूरचन्द्रवदनायै, कुंकुमद्रवशोभितायै, पृथिव्यै, पृथुरूपायै, पार्थिवेन्द्र विनाशिन्यै, रत्नवेद्यै, सुरेशायै, सुरेश्यै, सुरमोहिन्यै, शिरोमण्यै, मणिग्रीवायै, मणिरत्नविभूषितायै, उर्वश्यै, शमन्यै, महाकाल स्वरूपिण्यै, काल्यै, सर्वरूपायै, महासत्वायै, रूपान्तर विलासिन्यै, शिवायै, शैवायै, रुद्राण्यै, शिवनिनादिन्यै, मातङ्गिन्यै, भ्रामर्यै, अनङ्गमेखलायै, योगिन्यै, डाकिन्यै, महेश्वरीपरायै, अलम्बुषायै, भवान्यै, महाविद्यौघस्मृतायै, गृध्ररूपायै, ब्रह्मयोन्यै, महानन्दायै, महोदयायै, विरूपाक्षायै, महानादायै, चण्डरूपायै, कृताकृत्यै, वरारोहायै, महावल्ल्यै, महात्रिपुर सुन्दर्यै, भगात्मिकायै, भगाधार रूपिण्यै, भगमालिन्यै, लिङ्गाभिधायिनी देव्यै, महामायायै तथा महास्मृत्यै॥(७०१)

महामेधा महाशान्ता शान्तरूपा वरानना।
लिङ्गमाला लिङ्गभूषा भगमालाविभूषणा॥१०१॥
भगलिङ्गामृतप्रीता भगलिङ्गामृतात्मिका।
भगलिङ्गार्चनप्रीता भगलिङ्गस्वरूपिणी॥१०२॥
स्वयम्भूकुसुमप्रीता स्वयम्भूकुसुमासना।
स्वयम्भूकुसुमरता लतालिङ्गनतत्परा॥१०३॥
सुराशना सुराप्रीता सुरासवविमर्दिता।
सुरापानमहातीक्ष्णा सर्वागमविनिन्दिता॥१०४॥
कुण्डगोलसदाप्रीता गोलपुष्पसदारतिः।
कुण्डगोलोद्भवप्रीता कुण्डगोलोद्भवात्मिका॥१०५॥
स्वयम्भवा शिवा-धात्री पावनी लोकपावनी।
महालक्ष्मीर्महेशानी महाविष्णुप्रभाविनी॥१०६॥
विष्णुप्रिया विष्णुरता विष्णुभक्तिपरायणा।
विष्णोर्वक्षःस्थलस्था च विष्णुरूपा च वैष्णवी॥१०७॥
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा।
धृतिर्मेघा तथा तुष्टिः पुष्टिरूपा चिता चितिः॥१०८॥
चितिरूपा चित्स्वरूपा ज्ञानरूपा सनातनी।
सर्वविज्ञजया गौरी गौरवर्णा शची शिवा॥१०९॥
भवरूपा भवपरा भवानी भवमोचिनी।
पुनर्वसुस्तथा पुष्या तेजस्वी सिन्धुवासिनी॥११०॥
शुक्राशना शुक्रभोगा शुक्रोत्सारणतत्परा।
शुक्रपूज्या शुक्रवन्दया शुक्रभोग्या पुलोमजा॥१११॥
शुक्रार्च्या शुक्रसंतुष्टा सर्वशुक्रविमुक्तिदा।
शुक्रमूर्त्तिः शुक्रदेहा शुक्राङ्गी शुक्रमोहिनी॥११२॥
देवपूज्या देवरता युवती सर्वमङ्गला।
सर्वप्रियङ्करी भोग्या भोगरूपा (भो?भ)गाकृतिः॥११३॥
भगप्रेता भगरता भगप्रेमपरा तथा।
भगसंमर्दनप्रीता भगोपरि-निवेशिता॥११४॥
भगदक्षा भगाक्रान्ता भगसौभाग्यवर्द्धिनी।
दक्षकन्या महादक्षा सर्वदक्षा प्रदन्तिका॥११५॥

महामेधायै, महाशान्तायै, शान्तरूपायै, वराननायै, लिङ्गमालायै, लिङ्गभूषायै, भगमालाविभूषणायै, भगलिङ्गामृतप्रीतायै, भगलिङ्गामृतात्मिकायै, भगलिङ्गार्चन प्रीतायै, भगलिङ्गस्वरूपिण्यै, स्वयम्भूकुसुमप्रीतायै, स्वयम्भूकुसुमासनायै, स्वयम्भूकुसुम रतायै, लतालिङ्गनतत्परायै, सुराशनायै, सुराप्रीतायै, सुरासवविमर्दितायै, सुरापान महातीक्ष्णायै, सर्वागमविनिन्दितायै, कुण्डगोलसदाप्रीतायै, गोलपुष्पसदारत्यै, कुण्डगोलोद्भवप्रीतायै, कुण्डगोलोद्भवात्मिकायै, स्वयम्भवायै, शिवायै, धात्र्यै, पावन्यै, लोकपावन्यै, महालक्ष्म्यै, महेशान्यै, महाविष्णु प्रभाविन्यै, विष्णुप्रियायै, विष्णुरतायै, विष्णुभक्तिपरायणायै, विष्णोर्वक्षस्थलस्थायै, विष्णुरूपायै, वैष्णव्यै, अश्विन्यै, भरण्यै, कृतिकायै, रोहिण्यै, धृत्यै, मेधायै, तुष्ट्यै, पुष्टिरूपायै, चितायै, चित्यै, चितिरूपायै, चित्स्वरूपायै, ज्ञानरूपायै, सनातन्यै, सर्वविज्ञजयायै, गौर्यै, गौरवर्णायै, शच्यै, शिवायै, भवरूपायै, भवपरायै, भवान्यै, भवमोचिन्यै, पुनर्वसवे, पुष्यायै, तेजस्व्यै, सिन्धुवासिन्यै, शुक्राशनायै, शुक्रभोगायै, शुक्रोत्सारण तत्परायै, शुक्रपूज्यायै, शुक्रवन्द्यायै, शुक्रभोग्यायै, पुलोमजायै, शुक्रार्च्यायै, शुक्रसन्तुष्टायै, सर्वशुक्रविमुक्तिदायै, शुक्रमूर्त्यै, शुक्रदेहायै, शुक्राङ्ग्यै, शुक्रमोहिन्यै, देवपूज्यायै, देवरतायै, युवत्यै, सर्वमङ्गलायै, सवप्रियङ्कर्यै, भोग्यायै, भोगरूपायै, भगाकृत्यै, भगप्रेतायै, भगरतायै, भगप्रेमपरायै, भगसम्मर्दनप्रीतायै, भगोपरि निवेशितायै, भगदक्षायै, भगाक्रान्तायै, भगसौभाग्यवर्द्धिन्यै, दक्षकन्यायै, महादक्षायै, सर्व-दक्षायै तथा प्रदन्तिकायै। (८००)

दण्डप्रिया दण्डरता दण्डताडनतत्परा।
दण्डभीता दण्डगता दण्डसंमर्दने-रता॥११६॥
वेदिमण्डलमध्यस्था भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणी।
आद्या-दुर्गा जया सूक्ष्मा सूक्ष्मरूपा जयाकृतिः॥११७॥
क्षेमङ्करी महाघूर्णा घूर्णनासा वशङ्करी।
विशालावयवा मेध्या त्रिवलीवलया-शुभा॥११८॥
मद्योन्मत्ता मद्यरता मत्तासुरविलासिनी।
मधुकैटभसंहन्त्री निशुम्भासुरमर्दिनी॥११९॥
चण्डरूपा महाचण्डा चण्डिका चण्डनायिका।
चण्डोग्रा च चतुर्वर्गा तथा चण्डावती-शिवा॥१२०॥
नीलदेहा नीलवर्णा नीलेन्दीवरलोचना।
नित्यानित्यप्रिया भद्रा भवानी भवसुन्दरी॥१२१॥
भैरवी भैरवप्रीता तथा भैरवमोहिनी।
मातङ्गी कमला लक्ष्मीः षोडशी भीषणातुरा॥१२२॥

विषमग्ना विषरता विषभक्ष्या जया तथा।
काकपक्षधरा नित्या सर्वविस्मयकारिणी॥१२३॥
गदिनी कामिनी खड्गा मुण्डमालाविभूषिता।
योगेश्वरी योगरता योगानन्दस्वरूपिणी॥१२४॥
आनन्दभैरवी नन्दा तथानन्दजनप्रिया।
नलिनी ललना शुभ्रा शुभाननविराजिता॥१२५॥
ललज्जिह्वा नीलपदा तथा संमुखदक्षिणा।
बलिभक्ता बलिरता बलिभोग्या महारता॥१२६॥
फलभोग्या फलरसा फलदात्री फलप्रिया।
फलिनी फलसंरक्ता फलाफलनिवारिणी॥१२७॥
फलप्रीता फलगता फलसन्धानसन्धिनी।
फलोन्मुखी सर्वसत्त्वा महासत्त्वा च सात्त्विका॥१२८॥
सर्वरूपा सर्वरता सर्वसत्त्वनिवासिनी।
महारूपा महाभागा महामेघस्वरूपिणी॥१२९॥
भयनाशा गणरता गणगीता महागतिः।
सद्गतिः सत्कृतिः साक्षात्-सदासनगता-शुभा॥१३०॥

दण्डप्रियायै, दण्डरतायै, दण्डताडनतत्परायै, दण्डभीतायै, दण्डगतायै, दण्डसम्मर्दनेरतायै, वेदिमण्डलमध्यस्थायै, भूभुर्वः स्वः स्वरूपिण्यै, आद्यादुर्गायै, जयायै, सूक्ष्मायै, सूक्ष्मरूपायै, जयाकृत्यै, क्षेमकर्यै, महाघूर्णायै, घूर्णनासायै, वशङ्कर्यै, विशालावयवायै, मेध्यायै, त्रिवलीवलयाशुभायै, मद्योन्मत्तायै, मद्यरतायै, मत्तासुरविलासिन्यै, मधुकैटभसंहन्त्र्यै, निशुम्भासुरमर्दिन्यै, चण्डरूपायै, महाचण्डायै, चण्डिकायै, चण्डनायिकायै, चण्डोग्रायै, चतुर्वगायै, चण्डावती शिवायै, नीलदेहायै, नीलवर्णायै, नीलेन्दीवरलोचनायै, नित्यानित्यप्रियायै, भद्रायै, भवान्यै, भवसुन्दर्यै, भैरव्यै, भैरवप्रीतायै, भैरवमोहिन्यै, मातङ्ग्यै, कमलायै, लक्ष्म्यै, षोडश्यै, भीषणातुरायै, विषमग्नायै, विषरतायै, विषभक्ष्यायै, जयायै, काकपक्षधरायै, नित्यायै, सर्वविस्मयकारिण्यै, गदिन्यै, कामिन्यै, खड्गायै, मुण्डमालाविभूषितायै, यौगेश्वर्यै, योगरतायै, योगानन्दस्वरूपिण्यै, आनन्दभैरव्यै, नन्दायै, नन्दजनप्रियायै, नलिन्यै, ललनायै, शुभ्रायै, शुभाननविराजितायै, ललज्जिह्वायै, नीलपदायै, सम्मुखदक्षिणायै, बलिभक्तायै, बलिरतायै, बलिभोग्यायै, महारतायै, फलभोग्यायै, फलरसायै, फलदात्र्यै, फलप्रियायै, फलिन्यै, फलसंरक्तायै, फलाफलनिवारिण्यै, फलप्रीतायै, फलगतायै, फलसन्धानसन्धिन्यै, फलोन्मुख्यै, सर्वसत्वायै, महासत्वायै, सात्विकायै,

सर्वरूपायै, सर्वरतायै, सर्वसत्वनिवासिन्यै, महारूपायै, महाभागायै, महामेघस्वरूपिण्यै, भयनाशायै, गणरतायै, गणगीतायै, महागत्यै, सद्गत्यै, सत्कृत्यै तथा साक्षात् सदासनगता-शुभायै।(९०२)

त्रैलोक्यमोहिनी गङ्गा स्वर्गङ्गा स्वर्गवासिनी।
महानन्दा सदानन्दा नित्या सर्वस्वरूपिणी॥१३१॥
शुक्रस्नाता शुक्रकरी शुक्रसेव्यातिशुक्रिणी।
महाशुक्रा शुक्ररता शुक्रसृष्टिविधायिनी॥१३२॥
सारदा साधकप्राणा साधकप्रेमवर्द्धिनी।
साधकाभीष्टदा नित्यं साधकप्रेमसेविता॥१३३॥
साधकप्रेमसर्वस्वा साधकाभक्तरक्तपा।
मल्लिका मालती जातिः सप्तवर्णा महाकचा॥१३४॥
सर्वमयी सर्वशुभ्रा गाणपत्यप्रदा तथा।
गगना गगनप्रीता तथा गगनवासिनी॥१३५॥
गणनाथप्रिया भव्या भवार्चा सर्वमङ्गला।
गुह्यकाली भद्रकाली शिवरूपा सतांगतिः॥१३६॥
सद्भक्ता सत्परा सेतुः सर्वाङ्गसुन्दरी मघा।
क्षीणोदरी महावेगा वेगानन्दस्वरूपिणी॥१३७॥
रुधिरा रुधिरप्रीता रुधिरानन्दशोभना।
पञ्चमी-पञ्चमप्रीता तथा पञ्चमभूषणा॥१३८॥
पञ्चमीजपसंपन्ना पञ्चमीयजने-रता।
ककारवर्णरूपा च ककाराक्षररूपिणी॥१३९॥
मकारपञ्चमप्रीता मकारपञ्चगोचरा।
ऋवर्णरूपप्रभवा ऋवर्णा सर्वरूपिणी॥१४०॥
(स?श)र्वाणी सर्वनिलया सर्वसारसमुद्भवा।
सर्वेश्वरी सर्वसारा सर्वे(षा?च्छा) सर्वमोहिनी॥१४१॥
गणेशजननी दुर्गा महामाया महेश्वरी।
महेशजननी मोहा विद्या-विद्योतनी विभा॥१४२॥
स्थिरा च स्थिरचित्ता च सुस्थिरा धर्मरञ्जिनी।
धर्मरूपा धर्मरता धर्माचरणतत्परा॥१४३॥
धर्मानुष्ठानसन्दर्भा सर्वसन्दर्भसुन्दरी।
स्वधा-स्वाहा-वषट्कारा श्रौषट्-वौषट्-स्वधात्मिका॥१४४॥

ब्राह्मणी ब्रह्मसंबन्धा ब्रह्मस्थाननिवासिनी।
पद्मयोनिः पद्मसंस्था चतुर्वर्गफलप्रदा॥१४५॥
चतुर्भुजा शिवयुता शिवलिङ्गप्रवेशिनी।

त्रैलोक्यमोहिन्यै, गङ्गायै, स्वर्गङ्गायै, स्वर्गवासिन्यै, महानन्दायै, सदानन्दायै, नित्यायै, सर्वस्वरूपिण्यै, शुक्रस्नातायै, शुक्रकर्यै, शुक्रसेव्यातिशुक्रिण्यै, महाशुक्रायै, शुक्ररतायै, शुक्रसृष्टिविधायिन्यै, सारदायै, साधकप्राणायै, साधक प्रेमवर्धिन्यै, साधकाभीष्टदायै, नित्यसाधकप्रेमसेवितायै, साधकप्रेमसर्वस्वायै, साधकाभक्तरक्तपायै, मल्लिकायै, मालत्यै, जात्यै, सप्तवर्णायै, महाकचायै, सर्वमय्यै, सर्वशुभ्रायै, गाणपत्यप्रदायै, गगनायै, गगनप्रीतायै, गगनवासिन्यै, गणनाथप्रियायै, भव्यायै, भवार्चायै, सर्वमङ्गलायै, गुह्काल्यै, भद्रकाल्यै, शिवरूपायै, सतांगत्यै, सद्भक्तायै, सत्परायै, सेतवे, सर्वाङ्गसुन्दर्यै, मघायै, क्षीणोदर्यै, महावेगायै, वेगानन्दस्वरूपिण्यै, रुधिरायै, रुधिरप्रीतायै, रुधिरानन्द शोभनायै, पञ्चम्यै, पञ्चमीप्रीतायै, पञ्चमभूषणायै, पञ्चमीजपसम्पन्नायै, पञ्चमीयजनेरतायै, ककारवर्णरूपायै, ककाराक्षररूपिण्यै, मकारपञ्चमप्रीतायै, मकारपञ्चमगोचरायै, ॠवर्णरूपप्रभवायै, ॠवर्णायै, सर्वरूपिण्यै, शर्वाण्यै, सर्वनिलयायै, सर्वसारसमुद्भवायै, सर्वेश्वर्यै, सर्वसारायै, सर्वेच्छायै, सर्वमोहिन्यै, गणेशजनन्यै, दुर्गायै, महामायायै, महेश्वर्यै, महेशजनन्यै, मोहायै, विद्या-विद्योतन्यै, विभायै, स्थिरायै, स्थिरचित्तायै, सुस्थिरायै, धर्मरञ्जिन्यै, धर्मरूपायै, धर्मरतायै, धर्माचरणतत्परायै, धर्मानुष्ठानसन्दर्भायै, सर्वसन्दर्भसुन्दर्यै, स्वधा-स्वाहा-वषट्कारायै, श्रौषट्-वौषट्-स्वधात्मिकायै, ब्राह्मण्यै, ब्रह्मसम्बन्धायै, ब्रह्मस्थान निवासिन्यै, पद्मयोन्यै, पद्मसंस्थायै, चतुर्वगफलप्रदायै, चतुर्भुजायै, शिवयुतायै तथा शिवलिङ्गप्रवेशिन्यै।(१०००)

महाभीमा चारुकेशी गन्धमादनसंस्थिता॥१४६॥
गन्धर्वपूजिता गन्धा सुगन्धा सुरपूजिता।
गन्धर्वनिरता-देवी सुरभी सुगन्धा तथा॥१४७॥
पद्मगन्धा महागन्धा गन्धामोदितदिङ्मुखा।
कालदिग्धा कालरता महिषासुरमर्दिनी॥१४८॥
विद्या-विद्यावती चैव विद्येशा विज्ञसंभवा।
विद्याप्रदा महावाणी महाभैरवरूपिणी॥१४९॥
भैरवप्रेमनिरता महाकालरता-शुभा।
माहेश्वरी गजारूढा गजेन्द्रगमना तथा॥१५०॥
यज्ञेन्द्रललना चण्डी गजासनपराश्रया।
गजेन्द्रमन्दगमना महाविद्या महोज्ज्वला॥१५१॥

बगला-वाहिनी वृद्धा बाला च बालरूपिणी।
बालक्रीडारता बाला-बलासुरविनाशिनी॥१५२॥
बाल्यस्था यौवनस्था च महायौवनसंरता।
विशिष्टयौवना काली कृष्णदुर्गा सरस्वती॥१५३॥
कात्यायनी च चामुण्डा चण्डासुरविघातिनी।
चण्डमुण्डधरा देवी मधुकैटभनाशिनी॥१५४॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा।
रुद्रकाली विशालाक्षी भैरवी कालरूपिणी॥१५५॥
महामाया महोत्साहा महाचण्डविनाशिनी।
कुलश्रीः कुलसंकीर्णा कुलगर्भनिवासिनी॥१५६॥
कुलाङ्गारा कुलयुता कुलकुन्तलसंयुता।
कुलदर्भग्रहा चैव कुलगर्तप्रदायिनी॥१५७॥
कुलप्रेमयुता साध्वी शिवप्रीतिः शिवाबलिः।
शिवसक्ता शिवप्राणा महादेवकृतालया॥१५८॥
महादेवप्रिया कान्ता महादेवमदातुरा।
मत्ता-मत्तजनप्रेमधात्री विभववर्द्धिनी॥१५९॥
मदोन्मत्ता महाशुद्धा मत्तप्रेमविभूषिता।
मत्तप्रमत्तवदना मत्तचुम्बनतत्परा॥१६०॥
मत्तक्रीडातुरा भैमी तथा हैमवती मतिः।
मदातुरा मदगता विपरीतरतातुरा॥१६१॥
वित्तप्रदा वित्तरता वित्तवर्धनतत्परा(११००)।
इति ते कथितं सर्वं कालीनामसहस्रकम्॥१६२॥

महाभीमायै, चारुकेश्यै, गन्धमादनसंस्थितायै, गन्धर्वपूजितायै, गन्धायै, सुगन्धायै, सुरपूजितायै, गन्धर्वनिरतादेव्यै, सुरभ्यै, पद्मगन्धायै, महागन्धायै, गन्धामोदितदिङ्मुखायै, कालदिग्धायै, कालरतायै, महिषासुरमर्दिन्यै, विद्यायै, विद्यावत्यै, विद्येशायै, विज्ञसम्भवायै, विद्याप्रदायै, महावाण्यै, महाभैरवरूपिण्यै, भैरवप्रेमनिरतायै, महाकालरतायै, शुभायै, माहेश्वर्यै, गजारूढायै, गजेन्द्रगमनायै, यज्ञेन्द्रललनायै, चण्ड्यै, गजासनपराश्रयायै, गजेन्द्रमन्दगमनायै, महाविद्यायै, महोज्ज्वलायै, बगलावाहिन्यै, वृद्धायै, बालायै, बालरूपिण्यै, बालक्रीडारतायै, बाला-बलासुरविनाशिन्यै, बाल्यस्थायै, यौवनस्थायै, महायौवनसंरतायै, विशिष्टयौवनायै, काल्यै, कृष्णायै, दुर्गायै, सरस्वत्यै, कात्यायिन्यै, चामुण्डायै,

चण्डासुरविघातिन्यै, चण्डमुण्डधरायै, मधुकैटभनाशिन्यै, ब्राह्म्यै, माहेश्वर्यै, ऐन्द्रयै, वाराह्यै, वैष्णव्यै, रुद्रकाल्यै, विशालाक्ष्यै, भैरव्यै, कालरूपिण्यै, महामायायै, महोत्साहायै, महाचण्डविनाशिन्यै, कुलश्रियै, कुलसङ्कीर्णायै, कुलगर्भनिवासिन्यै, कुलाङ्गारायै, कुलयुतायै, कुलकुन्तलसंयुतायै, कुलदर्भग्रहायै, कुलगर्तप्रदायिन्यै, कुलप्रेमयुतायै, साध्व्यै, शिवप्रीत्यै, शिवाबल्यै, शिवसक्तायै, शिवप्राणायै, महादेवकृतालयायै, महादेवप्रियायै, कान्तायै, महादेवमदातुरायै, मत्ता-मत्तजनप्रेमधात्र्यै, विभववर्द्धिन्यै, मदोन्मत्तायै, महाशुद्धायै, मत्तप्रेमविभूषितायै, मत्तप्रमत्तवदनायै, मत्तचुम्बनतत्परायै, मत्तक्रीडातुरायै, भैम्यै, हैमवत्यै, मत्यै, मदातुरायै, मदगतायै, विपरीतरतातुरायै, वित्तप्रदायै, वित्तरतायै तथा वित्तवर्धनतत्परायै।(११००)

इस प्रकार मैंने काली के सहस्र (शताधिकसहस्र)नामों का तुमसे वर्णन किया।

।। सहस्रनाम-स्तोत्र-पाठ-फलश्रुतिः।।

सारात्सारतरं दिव्यं महाविभववर्द्धनम्।
गाणपत्यप्रदं राज्यप्रदं षट्कर्मसाधकम्।।१६३।।
यः पठेत् साधको नित्यं स भवेत् संपदां पदम्।
यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदथ।।१६४।।
न किञ्चिद् दुर्लभं लोके स्तवस्यास्य प्रसादतः।
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णहरणं तथा।।१६५।।
गुरुदाराभिगमनं यच्चान्यद् दुष्कृतं कृतम्।
सर्वमेतत्पुनात्येव सत्यं सुरगणार्च्चिते।।१६६।।
रजस्वलाभगं दृष्ट्वा पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः।
स शिवः सत्यवादी च भवत्येव न संशयः।।१६७।।
परदारयुतो भूत्वा पठेत् स्तोत्रं समाहितः।
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा महाराजात्वमाप्नुयात्।।१६८।।
परनिन्दां परद्रोहं परहिंसां न कारयेत्।
शिवभक्ताय शान्ताय प्रियभक्ताय वा पुनः।।१६९।।
स्तवं च दर्शयेदेनमन्यथा मृत्युमाप्नुयात्।
अस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये सुरेश्वरि।।१७०।।
महाकाली महादेवी तथा नीलसरस्वती।
न भेदः परमेशानि भेदकृन्नरकं व्रजेत्।।१७१।।
इदं स्तोत्रं मया दिव्यं तव स्नेहात् प्रकथ्यते।
उभयोरेवमेकत्वं भेदबुद्धया न तां भजेत्।
स योगी परमेशानि समो मानापमानयोः।।१७२।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(कालीसहस्रनाम निरूपणं) द्वाविंशः पटलः॥२२॥

सार के भी सारतर रूप काली का यह सहस्रनाम स्तोत्र महान ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला संगठन का आधिपत्य गणनायक पद अथवा गणेश कासेवकत्व रूप प्रदान करने वाला, राज्य प्रदान करने वाला तथा षट्कर्मों को सिद्ध करने वाला है। जो भी साधक इसका नित्य पाठ करता है, वह सम्पत्तिशाली हो जाता है। इस सहस्रनाम स्तोत्र की कृपा से इसका पाठ करने वाला, पाठ कराने वाला, सुनने वाला तथा सुनाने वाला सभी के लिए इस लोक में कुछ भी प्राप्त करना असम्भव नहीं होता है। हे सुरपूजिते देवि! ऐसा साधक ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी तथा गुरुपत्नी गमन जैसे जघन्य पापों का एवं अन्य किसी भी प्रकार के दुष्कर्मों का कर्ता होने पर भी इस स्तोत्र के प्रभाव से पवित्र हो जाता है। यह कथन निःसन्देह सत्य है। रजस्वला स्त्री के भग को देखते हुए (विकृत चित्त हुए बिना) जो साधक इसका पाठ करता है, वह साक्षात् शिव के समान ही होता है तथा उसकी वाणी निःसन्देह सत्यभाषण करने वाली हो जाती है। पर स्त्री संयोग सहित पाठ करने वाला सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी होकर महाराज तक का पद प्राप्त करने वाला हो जाता है। साधक को कभी भी दूसरों की निन्दा, उनसे वैरभाव तथा उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति शिव-भक्त हो, शान्त प्रकृति वाला हो तथा अपना प्रियभक्त (शिष्य अथवा पुत्र) हो उसे ही इस स्तोत्र का ज्ञान-उपदेश देना चाहिए। अनधिकारी के समक्ष इसे प्रकट नहीं करना चाहिए अन्यथा साधक की मृत्यु हो सकती है। हे सुरेश्वरि! तन्त्रशास्त्रों में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भी स्तोत्र नहीं है। हे परमेशानि! महाकाली तथा महादेवी नील सरस्वती (तारा) इन दोनों में कोई भेद नहीं है। इनमें भेद-भावना वाला साधक नरक को गमन करने वाला होता है। इस दिव्य स्तोत्र को मैंने तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही विशेष रूप से कहा है। काली तथा तारा दोनों को एक मानते हुए ही इनकी उपासना करनी चाहिए। इनमें कभी भी भेद बुद्धि रखकर साधना नहीं करनी चाहिए। जो साधक स्वयं के मान-अपमान के प्रति समभाव वाला होता है, वही वास्तव में योगी (श्रेष्ठ साधक) कहलाने का अधिकारी होता है।

॥ श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत
काली सहस्रनाम निरूपण नामक
बाईसवें पटल की 'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥

* * *

।। त्रयोविंशः पटलः।।

(काली शतनाम निरूपणम्)

।। श्री महाकाल्याःशतनामप्रकाशनाय प्रार्थना।।

श्री देव्युवाच

पुरा प्रतिश्रुतं देव क्रीडासक्तो यदा भवान्।
नाम्नां शतं महाकाल्याः कथयस्व मयि प्रभो।।१।।

हे प्रभो! पहले (कभी) क्रीडासक्त-काल में आपके द्वारा महाकाली के सौ नामों के विषय में मैंने सुना था। कृपया उन नामों को आप अब मुझसे कहें।

।। श्री महाकाल्याःशतनाम-वर्णनाय-प्रतीज्ञा।।

श्रीभैरव उवाच

साधु पृष्टं महादेवि अकथ्यं कथयामि ते।
न प्रकाश्यं वरारोहे स्वयोनिरिव सुन्दरि।।२।।
प्राणाधिकप्रियतरा भवती मम मोहिनी।
क्षणमात्रं न जीवामि त्वां बिना परमेश्वरि।।३।।
यथादर्शेऽमले बिम्बं घृतं दध्यादिसंयुतम्।
तथाहं जगतामाद्ये त्वयि सर्वत्र गोचरः।।४।।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जपात् सार्वज्ञदायकम्।

हे महादेवि! आपने यह बहुत ही श्रेष्ठ विषय को पूछा (कहने के लिए प्रार्थना की) है। यह विषय (शतनाम कथन) अवर्णनीय होने पर भी (तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण विवश होकर) मैं तुमसे कहता हूँ। हे सुन्दरि! स्वयोनि की भाँति इसे गुप्त रखना तथा कभी किसी (अनधिकारी) के सम्मुख प्रकट न करना। आप सदैव मुझको मोहित (प्रेम) करने वाली तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। जैसे दर्पण में बिम्ब तथा दधि में सर्वत्र घृत की स्थिति होती है, उसी प्रकार सर्वत्र प्रकाशित होते हुए भी, हे विश्व की आदि कारण भूते! तुझमें ही मेरी स्थिति है। हे देवि! सर्वज्ञता प्रदान करने वाले महकाली के शतनामों को मैं कहता हूँ, सुनो।

।। विनियोग सहित शतनाम वर्णनम्।।

सदाशिव ऋषिः प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्दश्च ईरितः।।५।।
देवता भैरवो देवि पुरुषार्थचतुष्टये।
विनियोगः प्रयोक्तव्यः सर्वकर्मफलप्रदः।।६।।
महाकाली जगद्धात्री जगन्माता जगन्मयी।
जगदम्बा जगत्सारा जगदानन्दकारिणी(१०)।।७।।
जगद्विध्वंसिनी गौरी दुःखदारिद्र्यनाशिनी।
भैरवभाविनी भावानन्ता सारस्वतप्रदा।।८।।
चतुर्वर्गप्रदा साध्वी सर्वमङ्गलमङ्गला।
भद्रकाली(२०)विशालाक्षी कामदात्री कलात्मिका।।९।।
नीलवाणी महागौरसर्वाङ्गा सुन्दरी-परा।
सर्वसंपत्प्रदा भीमनादिनी वरवर्णिनी।।१०।।
वरारोहा (३०) शिवरुहा महिषासुरघातिनी।
शिवपूज्या शिवप्रीता दानवेन्द्रप्रपूजिता।।११।।
सर्वविद्यामयी शर्वसर्वाभीष्टफलप्रदा।
कोमलाङ्गी विधात्री च विधातृवरदायिनी(४०)।।१२।।
पूर्णेन्दुवदना नीलमेघवर्णा कपालिनी।
कुरुकुल्ला विप्रचित्ता कान्तचित्ता मदोन्मदा।।१३।।
मत्ताङ्गी मदनप्रीता मदाघूर्णितलोचना(५०)।
मदोत्तीर्णा खर्परासिनरमुण्डविलासिनी।।१४।।
नरमुण्डस्रजा देवी खड्गहस्ता भयानका।
अट्टहासयुता पद्मा पद्मरागोपशोभिता।।१५।।
वराभयप्रदा (६०) काली कालरात्रिस्वरूपिणी।
स्वधा स्वाहा वषट्कारा शरदिन्दुसमप्रभा।।१६।।
शरत्ज्योत्स्ना च संह्लादा विपरीतरतातुरा।
मुक्तकेशी (७०)छिन्नजटा जटाजूटविलासिनी।।१७।।
सर्पराजयुता-भीमा स(र्व?र्प)राजोपरि-स्थिता।
श्मशानस्था महानन्दिस्तुता संदीप्तलोचना।।१८।।
शवासनरता नन्दा सिद्धचारणसेविता(८०)।
बलिदानप्रिया गर्भा भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणी।।१९।।
गायत्री चैव सावित्री महानीलसरस्वती।
लक्ष्मीर्लक्षणसंयुक्ता सर्वलक्षणलक्षिता।।२०।।

व्याघ्रचर्मावृता (९०) मेध्या त्रिवलीवलयाञ्चिता।
गन्धर्वैः संस्तुता सा हि तथा चेन्द्रा महापरा॥२१॥
पवित्रा परमा माया महामाया महोदया(१००)।
इति ते कथितं दिव्यं शतं नाम्नां महेश्वरि॥२२॥

इस शतनाम स्तोत्र के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता भैरवी (महाकाली) तथा पुरुषार्थ चतुष्ट्य एवं सर्वकर्मफल की प्राप्ति के लिए इसका, विनियोग करना चाहिए।

[विनियोग:- **ॐ अस्य श्री महाकाल्याः शतनाम स्तोत्रस्य सदाशिव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, श्री महाकाली देवता पुरुषार्थ चतुष्टये सर्वकर्मफल प्राप्त्यर्थे च पाठे (जपे) विनियोगः।**]

ॐ महाकाल्यै नमः। जगद्धात्र्यै नमः। जगन्मातायै नमः। जगन्मय्यै नमः। जगदम्बायै नमः। जगत्सारायै नमः। जगदानन्दकारिण्यै नमः। जगद्विध्वंसिन्यै नमः। गौर्यै नमः। दुखदारिद्र्य नाशिन्यै नमः। भैरव भाविन्यै नमः। भावानन्तायै नमः। सारस्वतप्रदायै नमः। चतुर्वग प्रदायै नमः। साध्व्यै नमः। सर्वमङ्गलमङ्गलायै नमः। भद्रकाल्यै नमः। विशालाक्ष्यै नमः। कामदात्र्यै नमः। कलात्मिकायै नमः। नीलवाण्यै नमः। महागौरसर्वाङ्गायै नमः। सुन्दर्यै नमः। परायै नमः। सर्वसम्पत्प्रदायै नमः। भीमनादिन्यै नमः। वरवर्णिन्यै नमः। वरारोहायै नमः। शिवरुहायै नमः। महिषासुरघातिन्यै नमः। शिव पूज्यायै नमः। शिव प्रीतायै नमः। दानवेन्द्र प्रपूजितायै नमः। सर्वविद्यामय्यै नमः। शर्वायै नमः। सर्वाभीष्ट फलप्रदायै नमः। कोमलाङ्ग्यै नमः। विधात्र्यै नमः। विधातृवरदायिन्यै नमः। पूर्णेन्दुवदनायै नमः। नीलमेघवर्णायै नमः। कपालिन्यै नमः। कुरुकुल्लायै नमः। विप्रचित्तायै नमः। कान्तचित्तायै नमः। मदोन्मदायै नमः। मत्ताङ्ग्यै नमः। मदनप्रीतायै नमः। मदाघूर्णितलोचनायै नमः। मदोत्तीर्णायै नमः। खर्परासिनरमुण्डविलासिन्यै नमः। नरमुण्डस्रजायै नमः। देव्यै नमः। खड्गहस्तायै नमः। भयानकायै नमः। अट्टहासयुतायै नमः। पद्मायै नमः। पद्मरागोपशोभितायै नमः। वराभयप्रदायै नमः। काल्यै नमः। कालरात्रिस्वरूपिण्यै नमः। स्वाधायै नमः। स्वाहायै नमः। वषट्कारायै नमः। शरदिन्दुसमप्रभायै नमः। शरज्ज्योत्स्नायै नमः। संह्लादायै नमः। विपरीतरतातुरायै नमः। मुक्तकेश्यै नमः। छिन्नजटायै नमः। जटाजूट विलासिन्यै नमः। सर्पराज युतायै नमः। भीमायै नमः। सर्पराजोपरिस्थितायै नमः। श्मशानस्थायै नमः। महानन्दिस्तुतायै नमः। सन्दीप्तलोचनायै नमः। शवासन रतायै नमः। नन्दायै नमः। सिद्धचारण सेवितायै नमः। बलिदान प्रियायै नमः।

गर्भायै नमः। भूःभुवःस्वः स्वरूपिण्यै नमः। गायत्र्यै नमः। सावित्र्यै नमः। महानील सरस्वत्यै नमः। लक्ष्म्यै नमः। लक्षणसंयुक्तायै नमः। सर्वलक्षण लक्षितायै नमः। व्याघ्र चर्मावृतायै नमः। मेध्यायै नमः। त्रिवलीवलयाञ्चितायै नमः। गन्धर्व-संस्तुतायै नमः। इन्द्रायै नमः। महापरायै नमः। पवित्रायै नमः। परमायै नमः। मायायै नमः। महामायायै नमः। महोदयायै नमः।

हे महेश्वरि! ये दिव्य शतनामों को तुम्हारे लिए मैंने कहा है।

(इन शतनामों का पाठ श्लोकाबद्ध रूप से न करके यदि चतुर्थ्यन्त नामों के पूर्व 'ॐ' (अथवा 'ह्रीं' अथवा 'क्रीं') तथा पश्चात् में 'नमः' लगाकर पाठ किया जाय तो अधिक श्रेयष्कर होता है।)

।। शतनाम(स्तोत्र) पाठ-फल-श्रुति।।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय स तु विद्यानिधिर्भवेत्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा देवीसायुज्यमाप्नुयात्।।२३।।
तस्या वश्या भवन्त्येते सिद्धौघाः सचराचराः।
खेचरा भूचराश्चैव तथा स्वर्गचराश्च ये।।२४।।
ते सर्वे वशमायान्ति साधकस्य हि नान्यथा।
नाम्नां वरं महेशानि परित्यज्य सहस्रकम्।।२५।।
पठितव्यं शतं देवि चतुर्वर्गफलप्रदम्।
अज्ञात्वा परमेशानि नाम्नां शतं महेश्वरि।।२६।।
भजते यो महाकालीं सिद्धिर्नास्ति कलौ युगे।
प्रपठेत् प्रयतो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु।।२७।।
लक्षवर्षसहस्रस्य कालीपूजाफलं भवेत्।
बहुना किमिहोक्तेन वाञ्छितार्थी भविष्यति।।२८।।

इति श्री बृहन्नीलतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
(कालीशतनामनिरूपणं) त्रयोविंशः पटलः।।२३।।

जो भी साधक प्रातः उठकर नित्य इस महाकाली के सौ नामों का पाठ करता है, वह सभी विद्याओं का भण्डार हो जाता है तथा इस मर्त्यलोक में सभी ऐच्छिक सुखों का भोग कर मृत्यूपरान्त देवी सायुज्य रूप मोक्ष प्राप्त करता है। सभी सिद्धों के समूह उसके वशीभूत हो जाते हैं, यहाँ तक कि समस्त (जलचर) थलचर, गगनचर तथा स्वर्गस्थ चराचर प्राणी उस साधक के वश में हो जाते हैं। हे देवि महेशानि! काली के सहस्रनाम को छोड़कर केवल शतनाम का ही पाठ करना मेरे विचार से सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसके

पाठ से ही साधक को चतुर्वर्गों (धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति हो जाती है। जो साधक काली के शतनामों को जाने (पाठ किये) बिना महाकाली का जप-पूजन करते हैं, उन्हें इस कलियुग में कभी भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। जो साधक नित्य आत्म संयमी होकर श्रद्धा-पवित्रता तथा भक्तिभाव सहित इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे एक लाख हजार वर्षों तक किये गये काली पूजन के फल की प्राप्ति होती है। अधिक क्या कहें उसकी समस्त कामनायें अवश्य ही पूरी होती हैं।

।। श्री बृहन्नील तन्त्र के भैरव भैरवी संवाद के अन्तर्गत
काली-शतनाम निरूपण नामक तेईसवें पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

* * *

॥ चतुर्विंशः पटलः॥

(अन्नदामन्त्रोद्धार-शतनाम-तन्त्रमाहात्म्यनिरूपणम्)

॥ अन्नदा-मन्त्र प्रकाशनाय निवेदनम्॥

श्री देव्युवाच

देवदेव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
यदुक्तमन्नदाकल्पे तद्वदस्व समाहितः॥१॥
अन्नदायाः परं मन्त्रं विशेषं कथयामि ते।
इति में कथितं भद्र तद्वदस्व समाहितः॥२॥

संसार की सृष्टि-स्थिति तथा संहार करने वाले हे देवाधि देव महादेव! 'अन्नदाकल्प' के वर्णनकाल में 'मैं भगवती अन्नदा के मन्त्र को तुमसे विशेष रूप से कहता हूँ' ऐसा आपने मुझसे कहा था। अतः हे कल्याण स्वरूप प्रभु! मेरे आग्रह पर अब आप कृपया सावधान मनःस्थिति वाला होकर उस मन्त्र का मुझसे वर्णन करें।

॥ अन्नदा (अन्नपूर्णा) मन्त्रोद्धारः॥

श्रीभैरव उवाच

यथा काली तथा नीला तथा चैवान्नदा शिवे।
एतासां मन्त्रमेतस्मिन् कथितं परमेश्वरि॥३॥
एका मूर्तिस्त्रिधा भूत्वा जगतां हितकारिणी।
अन्नदायाः परं कल्पं कथितं तव सुन्दरि॥४॥
मन्त्रराजं महादेवि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।
जृम्भणान्तं त्यक्तपार्श्वं यात्रावारणरोहकम्॥५॥
वामाक्षिसंयुतं देवि बिन्दुसंयुतमुत्तमम्।
प्रथमं बीजमेतद्धि कथितं परमेश्वरि॥६॥
ततश्च लोहितं देवि स्वराद्येन विभूषितम्।
अन्नवर्ण महादेवि मकारैकारसंयुतम्॥७॥
नान्नवर्ण महादेवि स्वराद्येन विभूषितम्।
ततश्च परमेशानि त्रिपदं सर्वगोपनम्॥८॥
मन्त्रं गुप्तं महेशानि वह्निजायावधिस्थितम्।
मन्त्रमेतन्महेशानि हठात् सिद्धिप्रदायकम्॥९॥
ध्यानपूजादिकं सर्व कथितं पूर्वकल्पके।

भगवती काली, नीला, (तारा अथवा नील सरस्वती) तथा अन्नदा तीनों का वास्तविक स्वरूप एक है। एक ही देवमूर्ति तीन रूपों में विभक्त होकर विश्व का कल्याण करने वाली है। इस कल्प (अथवा ग्रन्थ) में इन तीनों के मन्त्रों का मेरे द्वारा वर्णन किया गया है। हे सुन्दरि प्रिये! मैं तुमसे अन्नदा के श्रेष्ठ कल्प तथा इसके मन्त्र-राज को कहता हूँ, एकाग्र चित्त होकर सुनो।

(ग्रन्थ में दिये गये मन्त्रोद्धार के श्लोक अशुद्ध तथा अपूर्ण हैं। अन्य ग्रन्थों के आधार पर शुद्ध मन्त्रस्वरूप इस प्रकार होगा-)

मन्त्र स्वरुप - **'ह्रीं अन्नमहि अन्नं मे देहि अन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा'**।

यह मन्त्र शीघ्र ही निश्चित रूप से सिद्धिदायक है। इसके ध्यान-पूजनादि पहले ही हे गये कल्पों (तारा-पूजनादि विधान) के अनुसार ही किये जायेंगे।

।।अन्नदा-शतनाम-वर्णनम्।।

शतनाम प्रवक्ष्यामि सर्वसारस्वतप्रदम्।।१०।।
बिना येन महादेवीमन्नदां भजते नरः।
शतवर्षसहस्रेण तस्य सिद्धिर्न जायते।।११।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सावधानावधारय।
नाम्नां सहस्रं कथितं परमं तव सुन्दरि।।१२।।
इदानीं शृणु देवेशि अन्नदाशतनामकम्।
यस्मात् परतरं नास्ति तन्त्रमध्ये महेश्वरि।।१३।।
अन्नदा परमा माया महादेवी शिवप्रिया।
भवानी जगतामाद्या प्राणदा प्राणवल्लभा।।१४।।
जगज्जीवमयी (१०) गौरी त्रयी वेदमयी परा।
काशीपुरनिवासा च काशीपुरविनाशिनी।।१५।।
कैलासनिलया काली कल्पज्ञा कल्पदा (२०) शुभा।
महादेवप्रपूज्या च महादेवरतातुरा।।१६।।
पायसान्नप्रिया देवी पीनोन्नतपयोधरा।
त्रिवलीवलयोपेता नयनोत्तमसत्तमा।।१७।।
अन्नपात्रधृतानन्ता (३०) अन्नवेषनतत्परा।
गङ्गा गया विशालाक्षी विशालरूपयौवना।।१८।।
मदोन्मत्ता स्वरूपाङ्गी पूर्णचन्द्रनिभानना।
शिवप्राणा शिवरता (४०) सदाशिवमहाधना।।१९।।

महादेवप्रिया साध्वी सती कामालसा प्रिया।
कोमलाङ्गी कामकला कला काष्ठा(५०) यशस्विनी॥२०॥
प्रफुल्लपद्मवदना तथा पद्मालया शिवा।
भवानी भवनप्रीता पद्मासनसमाश्रया॥२१॥
वेष्टिता सिद्धगन्धर्वैः संस्तुता ऋषिभिस्तथा।
शिवेन सह संविष्टा (६०) शिवक्रीडनतत्परा॥२२॥
युवती यौवनप्रीता नित्ययौवनतत्परा।
सदा षोडशवर्षीया सदाशिवमनोरमा॥२३॥
चारुरूपधरा चारुवक्त्रा चारुपराक्रमा।
चार्वङ्गी(७०) कनकाङ्गी च कनकोपरि-संस्थिता॥२४॥
अन्नपूर्णा सदापूर्णा भूषणा स्वर्णकङ्कणा।
भक्तप्राणा भक्तरता भक्तभोजनतत्परा॥२५॥
आज्यप्रिया(८०) विरूपाक्षी काकपक्षधरा शुभा।
शुभदा शोभना शुद्धा निष्कला परमागतिः॥२६॥
दीनप्रिया दीनरता (९०) दीनभोजनतत्परा।
साधकप्रेमसंपन्ना साधकाभीतदायिनी॥२७॥
साधकैः सह संविष्टा साधकप्रेमतोषिता।
साधकानन्ददात्री च साधकप्रेमगोचरा॥२८॥
जगद्धात्री जगत्त्रात्री जगतां जयकारिणी(१००)।
इति ते कथितं दिव्यमन्नपूर्णाशतं शुभम्॥२९॥

अब मैं भगवती महादेवी अन्नदा के शतनामों का वर्णन करता हूँ। इन नामों का जप व पाठ किये बिना साधक को सौ वर्षों में भी मन्त्र जप करने से सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। अतः सावधान होकर इन नामों को अपने चित्त में धारण करो। हे सुन्दरि! तुमसे मैं पहले ही (तारा तथा काली के) सहस्र नाम का वर्णन कर चुका हूँ। अब अन्नदा के शतनामों को सुनो।

ॐ अन्नदायै नमः, परमायै नमः, मायायै नमः, महादेव्यै नमः, शिवप्रियायै नमः, भवान्यै नमः, जगतामाद्यायै नमः, प्राणदायै नमः, प्राणवल्लभायै नमः, जगज्जीव मय्यै नमः, गौर्यै नमः, त्रय्यै नमः, वेदमय्यै नमः, परायै नमः, काशीपुर निवासायै नमः, काशीपुरविनासिन्यै नमः, कैलास निलयायै नमः, काल्यै नमः, कल्पज्ञायै नमः, कल्पदायै नमः, शुभायै नमः, महादेवप्रपूज्यायै नमः, महादेव रतायै नमः, आतुरायै नमः, पायसान्नप्रियायै नमः, पीनोन्न्तपयोधरायै नमः,

त्रिवलीवलयोपेतायै नमः, नयनोत्तमसत्तमायै नमः, अन्नपात्रधृतायै नमः, अनन्तायै नमः, अन्वेषनतत्परायै नमः, गङ्गायै नमः, गयायै नमः, विशालाक्ष्यै नमः, विशालरूपयौवनायै नमः, मदोन्मत्तायै नमः, स्वरूपाङ्ग्यै नमः, पूर्णचन्द्रनिभाननायै नमः, शिवप्राणायै नमः, शिवरतायै नमः, सदाशिवमहाधनायै नमः, महादेव प्रियायै नमः, साध्व्यै नमः, सत्यै नमः, कामालसायै नमः, प्रियायै नमः, कोमलाङ्ग्यै नमः, कामकलायै नमः, कलायै नमः, काष्ठायै नमः, यशस्विन्यै नमः, प्रफुल्लपद्मवदनायै नमः, पद्मालयायै नमः, शिवायै नमः, भवान्यै नमः, भवनप्रीतायै नमः, पद्मासनसमाश्रयायै नमः, वेष्टितायै नमः, सिद्धगन्धर्वऋषिभिः संस्तुतायै नमः, शिवेनसहसंविष्टायै नमः, शिवक्रीडनतत्परायै नमः, युवत्यै नमः, यौवनप्रीतायै नमः, नित्ययौवनतत्परायै नमः, सदाषोडशवर्षीयायै नमः, सदाशिवमनोरमायै नमः, चारुरूपधरायै नमः, चारुवक्त्रायै नमः, चारुपराक्रमायै नमः, चार्वङ्ग्यै नमः, कनकाङ्ग्यै नमः, कनकोपरिसंस्थितायै नमः, अन्नपूर्णायै नमः, सदापूर्णायै नमः, भूषणायै नमः, स्वर्णकङ्कणायै नमः, भक्तप्राणायै नमः, भक्तरतायै नमः, भक्तभोजनतत्परायै नमः, आज्यप्रियायै नमः, विरूपाक्ष्यै नमः, काकपक्षधरायै नमः, शुभायै नमः, शुभदायै नमः, शोभनायै नमः, शुद्धायै नमः, निष्कलायै नमः, परमागत्यै नमः, दीनप्रियायै नमः, दीनरतायै नमः, दीनभोजन तत्परायै नमः, साधकप्रेमसम्पन्नायै नमः, साधकभीतिदायिन्यै नमः, साधकैः सहसंविष्ययै नमः, साधकप्रेमतोषितायै नमः, साधकानन्ददात्र्यै नमः, साधकप्रेमगोचरायै नमः, जगद्धात्र्यै नमः, जगत्त्रात्र्यै नमः तथा जगताञ्जयकारिण्यै नमः। ये भगवती अन्नपूर्णा के दिव्य सौ नाम हैं, जिसे हे देवि! तुम्हारे लिए मैंने कहा है।

॥शतनाम-पाठ(जप) फल-श्रुति॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेत् परमेश्वरः।
दरिद्रो लभते देवि सर्वसंपत्तिमेव च॥३०॥
अरोगी जायते सुभ्रु! सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत्।
अन्नचिन्ता तस्य वंशे न जायते सुरेश्वरि॥३१॥
स भवेत् परमेशानि त्रैलोक्यविजयी प्रभुः।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम्॥३२॥
पठनाद्धारणाद् वापि नरो सर्वमयो भवेत्।
गुह्याद गुह्यतरं स्तोत्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥३३॥
तव स्नेहाद् वरारोहे प्रकाशितमिदं पुरः।
न प्रकाश्यं महादेवि न प्रकाश्यं कदाचन॥३४॥

मद्भक्तकाय महेशानि प्रकाशमुपपादय।
व्यासादयो वशिष्ठाद्याः सर्वे च तदुपासकाः॥३५॥

जो भी साधक इस शतनाम का नित्य प्रातः काल उठकर (जागकर) पाठ करता है, वह इसके फलस्वरूप परमेश्वर (शिव) के तुल्य हो जाता है। इसकी कृपा से दरिद्र व्यक्ति भी सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेता है। हे सुभ्रु! इसके पाठ से व्यक्ति निरोगी (स्वस्थ) तथा सभी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है। उसके वंश में भी कभी अन्न की चिन्ता अर्थात् अन्न का अभाव नहीं होता। इसका पाठ करने वाला मनुष्य त्रैलोक्यविजयी होकर सबका स्वामी हो जाता है। इसके पाठ से बन्ध्या स्त्री को पुत्र तथा कन्या को सच्चरित्र श्रेष्ठ पति की प्राप्ति होती है। इसके पाठ तथा भोजपत्रादि पर लिखकर धारण करने से मनुष्य सर्वरूप अर्थात् सभी मनुष्यों के लिए 'अपनासा' सर्वप्रिय हो जाता है। हे वरारोहे! यह शतनाम स्तोत्र समस्त तन्त्र शास्त्रों में गुह्य से गुह्य अर्थात् अत्यन्त गोपनीय माना जाता है। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण ही इसे तुम्हारे सम्मुख मैने प्रकाशित किया (कहा) है। हर किसी के सामने इसे कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिए। हे महेशानि! जो मनुष्य मेरा वास्तविक श्रद्धाशील भक्त है, उसी को यह स्तोत्र प्रदान करना चाहिए। व्यास-वशिष्ठादि सभी प्राचीन श्रेष्ठ मुनि इस भगवती अन्नपूर्णा के उपासक हो चुके हैं।

एकान्नपूर्णा देवेशि रूपभेदाधनेकधा।
काली तारा महाविद्या चान्नदा परमेश्वरी॥३६॥
एता विद्या महादेवि सिद्धविद्याः कलौ युगे।
अनेकजन्मसौभाग्याद् यद्येताः परमेश्वरि॥३७॥
प्राप्नुवन्ति वरारोहे तेषां पुण्यफलं शृणु।
यदि भाग्यवशेनैव एतासां सदुपासकः॥३८॥
स कविः स च विज्ञानी स च साधकसत्तमः।
एतन्मन्त्रग्रहादेव सिद्धो भवति मानवः॥३९॥
एतन्मन्त्रं समादाय धर्मकामार्थमुक्तिषु।
नासाध्यं मेनिरे देवि साधकाः वीतमत्सराः॥४०॥

देवेश्वरी अन्नपूर्णा वास्तव में एक हैं, परन्तु रूपभेद के कारण उन्हें अनेक प्रकार की (नाम व रूपों वाली) कहा जाता है। कलियुग में काली, महाविद्या तारा तथा परमेश्वरी अन्नदा ये तीनों विद्यायें सिद्धविद्या कही जाती

है। हे परमेश्वरि! अनेक जन्मों में किये गये सुकृतों से उत्पन्न सौभाग्य के कारण जिन्हें ये विद्यायें प्राप्त होती हैं, उनके पुण्यों (विशेषताओं) को सुनो। यदि सौभाग्यवश कोई व्यक्ति इन विद्याओं (अथवा इनमें से किसी भी एक विद्या) का श्रद्धायुक्त श्रेष्ठ उपासक होता है तो सत्य ही वही विद्वान, विज्ञानी (विधि सहित क्रियाओं का ज्ञाता) तथा सर्वोत्तम साधक कहे जाने के योग्य होता है। इनके मन्त्रों को (गुरु मुख से) ग्रहण मात्र से ही मनुष्य सिद्ध हो जाता है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद तथा मत्सर रूप षड्रिपुओं से रहित साधकों द्वारा इन विद्याओं को प्राप्त करके साधना द्वारा धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष रूप चतु:पुरुषार्थों को प्राप्त करना, कभी दुस्तर नहीं माना जाता अर्थात् वे बड़ी सरलता से इन्हें अपनी इच्छानुसार प्राप्त कर लेते हैं।

ऐश्वर्येण महादेवि कुबेर इव जायते।
य एता: पूजयेन्नित्यं प्रत्यहं भक्तिभावत:।।४१।।
तस्यैवाज्ञाकरा: सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।
तस्यैव धनसंपत्तिं दृष्टैव परमेश्वरि।।४२।।
इन्द्रोऽपि परमेशानि तिरस्कृत इवापर:।
तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोत्तम:।।४३।।
संप्रदायविदां वक्त्राद् य एता वेत्ति तत्त्वत:।
एतासां ज्ञानमात्रेण कुलकोटी: समुद्धरेत्।।४४।।
नन्दन्ति पितर: सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा।
अपि चास्मत्कुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति।।४५।।

हे महादेवि! जो भी मनुष्य इन सिद्धविद्याओं की नित्य प्रतिदिन भक्तिपूर्ण चित्त से अर्चना करता है। वह ऐश्वर्य में कुबेर के समान हो जाता है तथा सभी अष्ट सिद्धियाँ उसकी आज्ञाकारिणी (सेविकावत्) हो जाती हैं। उसकी धन सम्पत्ति को देखकर इन्द्र भी स्वयं को तिरस्कृत सा अनुभव करते हैं तथा वह मनुष्य इस लोक में द्वितीय इन्द्र के समान शोभित होता है। जो भी मनुष्य सम्प्रदाय परम्परा के ज्ञाता गुरु के मुखारबिन्द द्वारा इन विद्याओं को इनके रहस्य ज्ञान सहित दीक्षा-विधान द्वारा प्राप्त करता है, वास्तव में उसी के माता, पिता तथा उसके श्रेष्ठ इष्ट देवता धन्यता के पात्र होते हैं। इनके ज्ञान मात्र से ही उस मनुष्य के करोड़ों कुलों का उद्धार हो जाता है अथवा वह अपने समान ही अनेकों कुलों का उद्धार करने में समर्थ हो जाता है। उसके पितर आनन्द में भरकर गान करने लगते हैं कि चलो

हमारे कुल में भी कोई कुल-ज्ञानी मनुष्य तो उत्पन्न हुआ अथवा आगे भी अब कुलज्ञानी मनुष्य उत्पन्न होंगे।

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येकः कुलं वसेत्।
किं गयापिण्डदानेन किं काशीगमनेन च॥४६॥
यदि भाग्यवशेनैव कालीं सरस्वतीं शिवे।
अन्नपूर्णा महादेवीं पूजयति गृहाङ्गने॥४७॥
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः स वशी स च साधकः।
स तीर्थवासी पीठानां चतुर्थाश्रमिणो यथा॥४८॥
स सन्यासी महायोगी जीवन्मुक्तो भविष्यति।
पापं पुण्यं महादेवि तस्य नास्ति वरानने॥४९॥
हिंसादिजनितो दोषो नास्त्येव वरवर्णिनि।
अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषो यदि॥५०॥
एतासां सिद्धविद्यानां समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा।
मन्त्रं संत्यज्य चान्येषां एतन्मन्त्रं समाश्रयेत्॥५१॥

मनुष्य अनेकों पुत्रों की कामना करता है परन्तु उनमें से यदि एक भी पुत्र कुल परम्परा से दीक्षित हो कौलिक बन जाए तो उसे फिर गया में पिण्डदान करने तथा काशी की तीर्थयात्रा करने (अथवा काशी में मरण की आकांक्षा करने) का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता क्योंकि वह कुल-ज्ञानी पुत्र ही समस्त कुल (वंश) का उद्धारक हो जाता है। यदि सौभाग्यवश कोई मनुष्य काली, सरस्वती (नील-सरस्वती-तारा) तथा अन्नपूर्णा महादेवियों में से किसी भी एक का अपने घर में नित्य पूजन करता है तो वही वास्तव में ब्राह्मण, वेदज्ञ, जितेन्द्रिय (संयमी) श्रेष्ठ साधक, देवी पीठों का तीर्थवासी, चतुर्थ आश्रमी रूप सन्यासी, महायोगी तथा जीवनमुक्त कहलाने योग्य होगा। उस मनुष्य के लिए कोई भी कर्म न तो पापजनक होता है और न ही पुण्यकारक। उसे साधना-पूर्ति हेतु हिंसा करने पर भी किसी भी प्रकार से हिंसा का दोष व्याप्त नहीं होता। हे वरवर्णिनि! यदि सृष्टि में तुम्हारे समान अन्य कोई स्त्री तथा मेरे समान अन्य कोई पुरुष हो तो ही इन सिद्ध विद्याओं के समान अन्य कोई मन्त्र (विद्या) हो सकता है अन्यथा नहीं अर्थात् जैसे सृष्टि मे तुम्हारे समान नारी तथा मेरे समान अन्य कोई पुरुष नहीं है उसी प्रकार इन विद्याओं के तुल्य अन्य कोई विद्या भी नहीं है। अतः मनुष्यों के लिए यही श्रेयस्कर है कि अन्य सभी मन्त्रों का परित्याग करके इन्हीं सिद्ध विद्याओं के मन्त्रों का विधिवत् ग्रहण करें।

।। अस्य तन्त्रस्य माहात्म्यम्।।

कोटीनां तिसृणां मध्ये तन्त्रसारं प्रकाशितम्।
यदुक्तं परमेशानि तत्कर्तव्यमहर्निशम्।।५२।।
एतत् तन्त्रं महेशानि यद्गृहे तिष्ठति प्रिये।
मत्सानिध्यं महेशानि तत्र तिष्ठति निश्चितम्।।५३।।
सर्वविद्या भवत्येव संशयो नास्ति कश्चन।
ऐश्वर्य रोगराहित्यं सदा भवति तद्गृहे।।५४।।
अहं शिवः परात्मा च विमाता तु महेश्वरी।
सर्वमेव महेशानि कथितं दुर्लभं शिवे।।५५।।

इति श्रीबृहन्नीलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे भैरवभैरवीसंवादे
(अन्नदा-मन्त्रोद्धार-शतनाम-तन्त्रमाहात्म्यनिरूपणं)
चतुर्विंशः पटलः।।२४।।
समाप्तं चेदं श्रीबृहन्नीलतन्त्रम्।

तीन करोड़ तन्त्रों (तन्त्र शास्त्रों) के मध्य से सर्वतन्त्र सार रूप इस 'बृहन्नील तन्त्र-शास्त्र' को प्रकट किया गया है। इसमें जैसा जप-अर्चन-प्रयोग आदि का विधान कहा गया है, उसी के अनुसार साधक को आवश्यकतानुसार दिन-रात अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। हे प्रिय महेशानि! यह तन्त्र-शास्त्र जिस किसी के घर में स्थित है अर्थात् जिस गृह में इसके अनुसार साधना होती है, वहाँ मैं निश्चित रूप से उपस्थित रहता हूँ। उस साधक को निःसन्देह सभी विद्याओं की (सभी विद्याओं से प्राप्त होने वाले फलों की) उपलब्धि होती है तथा उसके घर सदैव निरोगता तथा ऐश्वर्य का वास होता है। उस साधक के लिए मैं शिव ही पर आत्मा (द्वितीय वास्तविक पितारूप अथवा शुद्ध आत्म स्वरूप) तथा तुम महेश्वरी द्वितीय (वास्तविक) माता स्वरूप होती हो। हे महेशानि! इस प्रकार जो कुछ सामान्य जनों के लिए अत्यन्त दुर्लभ (ज्ञान) है, वह सभी तुम्हारे पूछने पर मैंने वर्णन किया।

।।समस्त उत्तम तन्त्रों से भी उत्तम तन्त्र बृहन्नील नील तन्त्र के
भैरव-भैरवी संवाद के अन्तर्गत अन्नपूर्णा मन्त्रोद्धार-शतनाम-तन्त्र
माहात्म्य निरूपण नामक चौबीसवें पटल की
'आशा-सुशीला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

◆

॥ परिशिष्टम् ॥

मूल ग्रन्थ में प्रातः कृत्य, स्नान विधि, तर्पण, संध्या विधि, तारा पूजन, यन्त्रार्चन आदि का उल्लेख तो है, परन्तु उसमें स्पष्टता, क्रम बद्धता आदि का अभाव है। अतः साधकों की सुविधा के लिए ग्रन्थ के इस परिशिष्ट भाग में उपर्युक्त कृत्यों को स्पष्ट एवं क्रमबद्ध रूप से देने का प्रयास किया गया है।

॥ हूँ तारायै नमः॥

॥ प्राभातिक कृत्य॥

॥ गुरु-ध्यान मानसपूजनादि॥

साधक ब्रह्ममुहूर्त में (रात्रि के चतुर्थ प्रहर में दो दण्ड-४८ मिनट रात्रि अवशेष रहने पर) निद्रा का परित्याग करके शय्या पर ही पद्मासन में बैठकर (अन्य मतानुसार शय्या का परित्याग कर, हाथ-पैर-मुखादि धोकर, रात्रि का वस्त्र बदलकर तथा शुद्ध आसन पर बैठकर **ॐ आत्मतत्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्वाय स्वाहा** तथा **ॐ शिवतत्वाय स्वाहा** रूप से आचमन प्राणायाम करके) अपने शिर में स्थित अधोमुख शुक्लवर्ण सहस्रदल पद्म की कर्णिका में पूर्णचन्द्र मण्डल पर स्थित हंस पीठ के ऊपर विराजमान शक्ति सहित स्वगुरु का ध्यान करे। श्री गुरु का शरीर वर्ण श्वेत है तथा वे श्वेत ही वस्त्राभूषण धारण किये हुए। द्विभुज गुरु के हाथों में वर तथा अभय मुद्रा धारित है तथा ज्ञानानन्द से चित्त हर्षयुक्त एवं मुखमुद्रा प्रसन्न है। श्वेत चन्दन (लेप) से लिप्त शरीर पर श्वेत माला धारण किये हुए शान्त स्वप्रकाश रूप गुरु के वाम ऊरु पर बांये हाथ में रक्त कमल लिए हुई रक्तवर्णा शक्ति रूप गुरु-पत्नी स्थित है, जिसने अपने दाहिने हाथ से गुरु के शरीर को पकड़ा हुआ है। दो नेत्रों वाले परम शिव रूप गुरु का इस प्रकार से ध्यान करके, मानसिक रूप से उनका दिव्य अभिषेक करके सम्प्रदायानुसार प्राप्त स्व नाम का उच्चारण कर (यथा **अमुकानन्दनाथोऽहं**) अथवा अपने स्वाभाविक नाम (अमुकोऽहं) का उच्चारण कर **'श्री अमुकानन्द नाथ गुरुं पूजयामि'** बोले। इसके बाद गुरु का मानसोपचार पूजन करे। यथा -

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः (कनिष्ठाभ्यां - दोनों कनिष्ठाओं का परस्पर संयोग करे)। **हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि** (अंगुष्ठाभ्यां - दोनों अंगुष्ठों का परस्पर योग करें)। **यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि नमः** (तर्जनीभ्याम्)। **रं वहन्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः** (मध्यमाभ्याम्)। **वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि** (अनामिकाभ्याम्)। **ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः** (अञ्जलि-नियोजनम्)।

मानस-पूजनोपरान्त यथाशक्ति वाग्भव बीज 'ऐं' का जप करके 'ऐं' उच्चारण पूर्वक निम्न दो श्लोकों को बोलकर गुरु को प्रणाम करें -

ऐं अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

इसके पश्चात् गुरु से आज्ञा (भावनात्मक रूप से) प्राप्त कर मूलाधार के पद्म में स्थित त्रिकोण के मध्य में विराजमान स्वयम्भू शिव लिङ्ग को दक्षिणावर्त क्रम से साढे तीन आवृत्त (फेरों) द्वारा लपेटे हुए, षट्चक्रों से सम्बद्ध मेरुदण्ड के अन्तर्गत स्थित छिद्रयुक्त सुषुम्ना के मुख छिद्र पर अपने मुखाग्र को सटाये हुए, त्रिकोणस्थ अग्निशिखा के ऊपर स्थित सोई हुई सर्पाकारिणी, (करोड़ों) सूर्यवत् प्रकाशमान, (करोड़ों) चन्द्रमा के समान शीतल, विद्युत के समान दीप्तिमान तथा नीवार-तन्तु (कमलनाल के रेशे) के समान सूक्ष्म (पतली) मूलविद्या स्वरूपा कुल कुण्डलिनी का ध्यान करके मनोदण्ड (मानसिक भावना) द्वारा उस पर आघात कर 'हुं' के उच्चारण तथा त्रिकोण मण्डलस्थ अग्नि के द्वारा उसे प्रबुद्ध करके, 'हंसः' इस प्राणमंत्र द्वारा उसे उठाकर धीरे-धीरे सांस लेते हुए सुषुम्ना छिद्र मार्ग द्वारा षट्चक्रों का भेदन करते हुए परमशिव से संयुक्त करें। वहाँ स्त्रीरूपिणी उस कुण्डलिनी के द्वारा पुरुषरूपधारी शिव के साथ परस्पर सम्भोग क्रिया द्वारा बिन्दु से स्रवित सुधाधारा से संतृप्त होकर चञ्चल (दोलायमान) हुई उस चैतन्यमयी भुजगाकार रूपिणी कुण्डलिनी को उसी सुषुम्ना मार्ग द्वारा, धीरे-धीरे सांस छोड़ते हुए, पुनः मूलाधार में वापस ले आयें। तत्पश्चात् उस कुण्डलिनी के द्वारा चारों ओर प्रसरित प्रकाश के आवरण द्वारा अपने शरीर को व्याप्त हुआ सा चिन्तन (भावना) करे।

इसके पश्चात् यथा शक्ति मूल मन्त्र का न्यासादिपूर्वक जप करके तथा उसका समर्पण करके देवता को प्रणाम कर-

ॐ समुद्रमेखले देवि! पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

मन्त्र बोलकर पृथ्वी को प्रणाम कर जिस ओर की नासिका छिद्र में श्वास चल रही हो उसी ओर के पैर को पृथ्वी पर पहले रखते हुए शय्या से उतर कर (अथवा आसन से उठकर) गृह से बाहर जाकर शौचादि से निवृत्त होवें।

॥स्नान विधिः॥

इसके पश्चात् कुल-दर्भ (दोनों हाथों की अंगुलियों - तर्जनी में चाँदी की, मूलमन्त्र-बीजाङ्कित तथा अनामिका में स्वर्ण की 'शक्ति' अङ्कित मुद्रिकाएं) धारण करके शुद्ध मिट्टी, कुश, स्वच्छ वस्त्रादि लेकर तीर्थ (नदी, तालाबादि) पर जाकर स्वच्छ स्थान पर 'फट्' मन्त्र से प्रोक्षण कर, वहाँ वस्त्रादि रखकर वैदिक स्नान (मलापकर्षणादि रूप से शरीर शोधन आदि) करके समस्त पदार्थों की देवी रूपवत् भावना करके तान्त्रिक स्नान के लिए सङ्कल्प करें।

ॐ तत्सत् अद्येत्यादि अमुक गोत्रः अमुक शर्माऽहं (वर्माऽहं, गुप्तोऽहं, दासोऽहं वा) ममात्मनः श्रुति पुराणोक्त फल प्राप्तये, एतन्मन्त्र (पूजन) प्रतिबन्धकाशेष-पापक्षय पूर्वक (सन्ध्यातर्पणार्चनाधिकार प्राप्तये) श्री अमुक (तारा एकजटा नीलसरस्वती वा) देवता प्रीत्यर्थे च मन्त्र-स्नानं करिष्ये।

इस प्रकार सङ्कल्प करके, षडङ्ग न्यास, प्राणायाम कर उस तीर्थ जल में अधोमुख त्रिकोण बनाकर उसमें -

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु॥
ॐ ब्रह्माण्डोदर तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते॥

इन मन्त्रों को बोलते हुए अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन कर 'वं' बीज तथा धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, 'हुं' बीज तथा अवगुण्ठन मुद्रा से अवगुण्ठन 'फट्' से संरक्षण तथा मूल मन्त्र द्वारा ग्यारह बार अभिमन्त्रित करके '**ॐ ह्रीं स्वाहा**' से आचमन करे। तत्पश्चात् पुनः प्राणायाम-कर-षडङ्ग न्यास करके जल में देवी रूप की तथा स्वयं की तारिणी रूप में भावना कर शिर पर दश बार तथा जल में दश बार मूल मन्त्र का जप करके जल में त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर धेनु-योनि-मत्स्य मुद्रा प्रदर्शित करके उस जल से तीन (अथवा सात) बार स्वयं का प्रोक्षण (अभिषेक) कर मूलमन्त्र से मृत्तिका लेकर दोनों हाथों (करतलों) में लपेटकर, सूर्य को दिखाकर मूल मन्त्र का जप करते हुए स्व-शरीराङ्गों में लगाकर शिर, हृदय तथा नाभि पर तीन बार अञ्जलि से जल डाले। इसके पश्चात् पूर्ववत् आचमन कर सूर्य की ओर बारह बार जल का प्रक्षेपण करके, पूर्व में बनाये गये उस मण्डल को (उसकी कल्पना करके) दाहिने हाथ की तर्जनी द्वारा दक्षिणावर्त क्रम से विलोडित कर चक्षु (नेत्र) आदि सप्तछिद्रों को दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा बन्द करके मूलविद्या का उच्चारण करते हुए

देवता के चरणारबिन्द से निकले हुए उस जल में तीन बार डुबकी लगायें। फिर देवता का स्मरण करते हुए जल से ऊपर उठकर मूल विद्या से तीन बार अभिमन्त्रित कर जल द्वारा कलश मुद्रा से तीन बार शिर का अभिषेक करें। इसके पश्चात् **'ॐ आत्मतत्वाय स्वाहा'**, **'ॐ विद्यातत्वाय स्वाहा'** तथा **'ॐ शिव तत्वाय स्वाहा'** से तीन बार आचमन करे।

।।अघमर्षणं तर्पणं सन्ध्या विधिश्च।।

स्नान के उपरान्त पहले अघमर्षण फिर तर्पण करके साधक को वैदिक सन्ध्या के बाद तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिए। साधक जल में अधोमुख त्रिकोण बनाकर पूर्ववत् तीर्थों का आवाहन करके पूर्ववत् ही 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से आचमन करके षडङ्ग न्यास कर मूलमन्त्र द्वारा कुश के मूल से सात बार पृथ्वी पर जल से प्रोक्षण कर पुनः उसी कुश से सात बार स्वमूर्धा पर जल छिड़क कर, बांये हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की तर्जनी से उस पर 'हूँ' बीज सहित त्रिकोण लिखकर तथा दक्षिण हाथ से उसे आच्छादित कर कूर्च बीज 'हूँ' (अथवा मूल मन्त्र) तीन बार जप कर 'हं यं वं लं रं' इन पञ्च भूत बीजों से तीन बार अभिमन्त्रित कर अंगुलि के छिद्रों से गिरते हुए जल बिन्दुओं द्वारा मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्वमूर्धा (शिर) पर सात बार अभ्युक्षण करे। इसके बाद शेष जल को दाहिने हाथ में लेकर शुक्ल वर्ण उस जल को वाम नासिका द्वारा खींच कर देहान्तर पाप को प्रक्षालित करके कृष्ण वर्ण हुए पाप पुरुष रूप उस जल को दक्षिण नासापुट से बाहर निकालकर (निकालने की भावना कर) स्वसम्मुख (अथवा दक्षिण भाग में) कल्पित वज्रशिला पर अस्त्र मन्त्र 'फट्' बोलते हुए पटक दे। इस प्रकार एक अथवा तीन बार 'अघमर्षण' करे।

इसके बाद हाथ धोकर पूर्ववत् आचमन करके तर्पण करे। अपने आगे जल में त्रिकोण बनाकर, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके उस जल में एकजटा का ध्यान-आवाहन कर तथा **'मूलं श्रीमदेकजटादेवता पूजयामि नमः'** से जलरूप उपचारों द्वारा ही पूजन करके दोनों हाथों द्वारा तत्व मुद्रा से निम्न मन्त्रों को बोलते हुए एक-एक बार शिर पर तर्पण करें।

ॐ देवांस्तर्पयामि। ॐ ऋषींस्तर्पयामि। ॐ पितृंस्तर्पयामि। ॐ दिव्यौघ गुरूंस्तर्पयामि। ॐ सिद्धौघ गुरूंस्तर्पयामि। ॐ मानवौघ गुरूंस्तर्पयामि। ॐ कुल गुरूंस्तर्पयामि।

इसके पश्चात् निम्न मन्त्रों से तीन-तीन बार तर्पण करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री गुरु श्री अमुकानन्दनाथ श्री अमुकी देव्यम्बा श्री पादुकां तर्पयामि नमः।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री परम गुरु श्री अमुकानन्दनाथ श्री अमुकी देव्यम्बा
श्री पादुकां तर्पयामि नमः।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री परापर गुरु श्री अमुकानन्दनाथ श्री अमुकी देव्यम्बा
श्री पादुकां तर्पयामि नमः।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री परमेष्ठि गुरु श्री अमुकानन्दनाथ श्री अमुकी देव्यम्बा
श्री पादुकां तर्पयामि नमः।

यदि साधक को गुरू-परम गुरू आदि की शक्तियों के नाम ज्ञात न हों तो 'श्री अमुकी देव्यम्बा' के स्थान पर 'तच्छक्त्यम्बा' शब्द का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त यदि साधक चाहे तो 'दिव्यौघादि' गुरूओं का उनके नामानुसार पृथक-पृथक भी तर्पण कर सकता है।

तत्पश्चात् जिस कोटि का साधक हो उसके अनुसार हृदय, आज्ञाचक्र अथवा ब्रह्मरन्ध्र पर निम्न मन्त्र से तीन बार तर्पण करे।

मूलं (सायुधां सवाहनां सपरिवारां श्री अक्षोभ्य शिव सहितां) तारा देवीं श्रीमदेकजटां तर्पयामि स्वाहा।

तत्पश्चात् दोनो बाहों को ऊपर उठाकर, खड़े होकर- **ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिदुरोण सन्नृषद्वरसदृत सद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतिजा अद्रिजा ऋतं वृहत्**'। इस हंस ऋचा को तीन बार बोलते हुए सूर्योपस्थापन करे। तदुपरान्त किसी ताम्र-पात्र में दूर्वाक्षत रक्त पुष्प सहित अर्घ्य लेकर - '**ॐ ह्रीं हंसः श्री मार्तण्ड भैरवाय (श्री सूर्याय) प्रकाश शक्ति सहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा**' बोलकर एक (अथवा तीन) बार सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। पुनः सूर्य मण्डल में देवी का ध्यान कर **(ह्रीं ह्रीं हूं हंसः सूर्यमण्डलस्थायै श्रीमदेकजटायै नमः)** पूर्ववत् ताम्र-पात्र में रक्त चन्दन, श्वेतार्कपुष्प, अपराजिता, पुष्पाक्षतादि युक्त अर्घ्य लेकर मूलमन्त्र (अथवा गायत्री मन्त्र) का उच्चारण करके- '**ॐ उद्यदादित्य मण्डल मध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै तारादेव्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहा**' बोलते हुए तीन बार अर्घ्य प्रदान करें। इसके बाद सौ (एक सौ आठ) अथवा दश बार तारा गायत्री का जप करके जप देवता के बायें हाथ में समर्पित करें। मध्याह्न सन्ध्याकाल में '**मध्याह्नादित्य**' तथा सायं सन्ध्या के समय '**सायाह्नादित्य**' का प्रयोग करें।

प्रातः गायत्री ध्यानम् -

ॐ प्राताराधारकमले हुतभुड्मण्डलोपरि। वाग्बीजरूपां विद्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम्॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशांकुशलसत्कराम्। स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्याक्षरात्मिकाम्॥

मध्याह्ने ध्यानम् -

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिकेसूर्यमण्डले। कामबीजात्मिकां देवीमलक्तकरसारुणाम्॥
प्रसून बाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशांकुशान्विताम्। परितः स्वात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्वशक्तिभिः॥

सायं ध्यानम् -

सायमाज्ञासरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्। शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशांकुशान्विताम्॥
युगनित्याक्षराकारां स्फटिकाभरणान्विताम्। चिन्तयेच्च भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम्॥

उपर्युक्त रूप से गायत्री का यथा कालिक ध्यान करके तारा (एकजटा) गायत्री का कम से कम दश बार जप तथा मूल मन्त्र का यथाशक्ति (न्यूनतम एक सौ आठ बार) जप करके देवी को समर्पित करें। इसके बाद संहार मुद्रा से सूर्यस्थ देवी के तेज को अपने हृदय में लाकर प्रणाम तथा मानस पूजन करे। स्नानादि से लेकर यहाँ तक कि क्रिया यदि सम्भव हो तो जल में ही करें अन्यथा स्नान करके सन्ध्यादि क्रिया घर पर आकर करें।

यदि साधक ने उपर्युक्त क्रियायें जल में ही की हैं तो जल से बाहर आकर अधोवस्त्र (धोती, कच्छ) तथा उत्तरीय धारण कर हाथ-पैर धोकर तिलक (कुलानुसार लालन चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्रादि) धारण करें।

तारा गायत्री - **(ॐ ह्रीं) तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।**
अथवा- **तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

इस तारा गायत्री के जप के पश्चात् - '**हूं भगवत्येकजटे विद्महे घोरदंष्ट्रे (च) धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्**' इस विशेष गायत्री का भी सौ अथवा बीस बार जप करना चाहिए।

इसके पश्चात् मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके सभी मन्त्र जप देवी को समर्पित कर संहारमुद्रा से देवी को सूर्य मण्डल से स्वहृदय में लाकर मानसोपचार पूजन करें।

तारा (एक जटा) का मूल मन्त्र - ''ह्रीं स्त्रीं हूं फट्''॥

उपर्युक्त सन्ध्या विधान 'एकजटा' मन्त्रोपासक के लिए विहित है।

॥तारा (उग्रतारा) सन्ध्या विधिः॥

पूर्ववत् अघमर्षण से गुरु-तर्पण तक सभी क्रियायें करके - पूर्वोक्त तर्पण मन्त्र में '**श्रीमदेकजटां**' के स्थान पर '**श्रीमदुग्रतारां**' का प्रयोग करते हुए देवी का तीन बार तर्पण करके पूर्ववत् सूर्योपस्थापन, सूर्य को अर्घ्यदान, देवी उग्रतारा का ध्यान तथा उन्हें अर्घ्य प्रदान (मन्त्र में '**श्रीमदुग्रतारायै**' का प्रयोग करते हुए) करें। अर्घ्य मन्त्र से पूर्व तारा का मूल मन्त्र **(ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्)** अथवा पूर्वोक्त तारा गायत्री का प्रयोग करें।

त्रिकाल (गायत्री) ध्यानम् -

१. प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजां च कुमारिकाम्। कमण्डलुतीर्थपूर्णमक्षमालां च विभ्रतीम्॥
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम्। सूर्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायेत्तारकिताम्बरे॥
२. मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीं च चतुर्भुजाम्। शंखचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम्॥
पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम्। युवतीं सतत ध्यायेन्मध्ये मार्तण्डमण्डले॥
३. सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेत्ततः। शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासन कृताश्रयाम्॥
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृकरोटिकाम्। विभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम्॥

ध्यान के पश्चात् सामान्य तारा गायत्री का कम से कम दश बार जप करके निम्नलिखित विशेष (उग्रतारा) गायत्री का एक सौ आठ बार जप करे।

"ह्रीं उग्रतारे विद्महे श्मशानवासिनि धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्॥"

इसके बाद मूल मन्त्र **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'** का यथाशक्ति जप करके सभी जप देवी को समर्पित कर सूर्यमण्डलस्थ देवी के तेज को संहारमुद्रा से अपने हृदय में लाकर प्रणाम व मानसोपचार पूजन करें।

॥ नीलसरस्वती सन्ध्या विधिः॥

स्नानादि से निवृत्त होकर मूल मन्त्र **'ह्रीं स्त्रीं हूं'** से जल का शोधन करके सूर्य की ओर मुख कर पाँच बार मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए पाँच बार जल दान करें। फिर **'ह्रीं स्वाहा'** से आचमन करके बोलें -

ॐ श्मशानालयमध्यस्थां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्। महामेघप्रभां देवीं नीलपद्मे विराजिताम्॥
सर्वाभरणशोभाढ्यां लोचनं हरनेत्रतः॥

उपर्युक्त श्लोक को पढ़कर जल में षट्कोण बनाकर तीर्थों का आवाहन करके तत्वों द्वारा (आत्म, विद्या तथा शिव तत्व) आचमन करके मूल मन्त्र द्वारा तीन बार भूमि पर जल डालें। यही अघमर्षण क्रिया है। इसके बाद एकजटावत् तर्पण क्रिया करके सूर्य को अर्घ्य देकर - **"(नील गायत्रीं) सूर्यमण्डलस्थायै तारा देव्यै श्री नील सरस्वत्यै इदमर्घ्यं नमः"** से देवी नील सरस्वती को तीन बार अर्घ्य प्रदान कर ध्यान करें।

प्रातः ध्यानम् -

सूर्यमण्डलसंलग्नां मुक्ताहारविशोभिताम्। द्विनेत्रां द्विभुजां देवीं चतुर्वक्त्रां सरोजजाम्॥

मध्याह्न ध्यानम् -

मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च चतुर्हस्ताञ्च भैरवीम्।
मुक्तामाणिक्यसंयुक्तां नानाहारादिशोभिताम्। मन्त्रसिद्धिप्रदां देवीं गायत्रीं साधकाग्रणीः॥

सांय ध्यानम् -

सायाह्ने सूर्यसंस्थाञ्च पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्। माहेश्वरीं जगद्धात्रीं जगज्जङ्गमपालिकाम्॥

नील सरस्वती गायत्री-

"ॐ नीलसरस्वति धीमहि सारदायै विद्महे तन्नः शिवे प्रचोदयात्।"

पूर्ववत् सामान्य (तारा) गायत्री के पश्चात् इस उपर्युक्त गायत्री का तथा मूलमन्त्र का जप करके देवी को जप समर्पित कर संहार मुद्रा से देवी को सूर्य मण्डल से लाकर हृदय में स्थापित कर प्रणाम व पूजन करें।

उपर्युक्त सभी क्रियायें जल में ही स्थित होकर करने के पश्चात् बाहर आकर दो वस्त्र (रक्त वस्त्र) धारण करके हाथ पैर धोकर **'ॐ ह्रीं स्वाहा'** से आचमन तथा **'ॐ मणिधरि वज्रिणि सर्ववशङ्करि हुं फट् स्वाहा'** से शिखा बन्धन करके रक्तचन्दनादि से कुलानुसार तिलक करें।

ब्राह्मण ऊर्ध्व-पुण्ड्र (अथवा भस्म से त्रिपुण्ड्र), **क्षत्रिय** त्रिपुण्ड्र, **वैश्य** अर्धचन्द्राकार तथा **शूद्र** वृत्ताकार तिलक करें। ऊर्ध्वपुण्ड्र एक, दो अथवा त्रिरेखात्मक स्वेच्छानुसार लगायें। हृदय पर ताराबीज **'स्त्रीं'** तथा मध्य में शक्ति बीज **'ह्रीं'** लिखें। इसके बाद पूर्वमुख होकर मन्त्राचमन करें।

मन्त्राचमनम् - ॐ उग्रतारायै नमः (अथवा ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्)। ॐ एक जटायै नमः (अथवा ह्रीं स्त्रीं हूं फट्)। ॐ नील सरस्वत्यै नमः (अथवा ह्रीं स्त्रीं हूं)। इन तीन मन्त्रों से तीन बार आचमन कर 'ह्रीं' से दोनों हाथों को धोयें। इसके बाद **'स्त्रीं'** तथा **'हूं'** से होठों को दो बार पोछें। पुनः **'फट्'** से हाथ धोयें। तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों को बोलते हुए निर्दिष्ट शरीराङ्गों का स्पर्श करके आचमन करें। यथा - **ॐ वैरोचनाय नमः** (मुखे)। **ॐ शंखपाण्डुराय नमः** (दक्षनासायां)। **ॐ पद्मनाभाय नमः** (वाम नासायां)। **ॐ असिताङ्गाय (असिताभाय) नमः** (दक्ष नेत्रे)। **ॐ मामकाय नमः** (वाम नेत्रे)। **ॐ नामकाय (सामकाय) नमः** (दक्ष कर्णे)। **ॐ तारकाय नमः** (वाम कर्णे)। **ॐ पाण्डुराय नमः** (नाभौ)। **ॐ पद्मान्तकाय नमः** (हृदि)। **ॐ यमान्तकाय नमः** (शिरसि)। **ॐ विघ्नान्तकाय नमः** (दक्ष स्कन्धे) तथा **ॐ नरकान्तकाय नमः** (वाम स्कन्धे)।

तत्पश्चात् **'फट्'** से हाथ धोकर तीर्थ देवता को प्रणाम कर, पूजा के लिए शुद्ध जल लेकर मौन हो, मन ही मन स्तोत्रादि का पाठ करते हुए पूजा-गृह को प्रस्थान करे।

॥द्वार-पूजनम्[१]॥

उपर्युक्त क्रियाओं को करके साधक तीर्थ जल (शुद्ध-जल) सहित याग-मण्डप पर आकर उस जल में से **'ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहा'** बोलते हुए किसी अन्य कलश (अथवा लोटे जैसे पात्र) में पूजन के लिए

---

[१] यदि साधक घर में ही स्नान करता है तथा उसके गृह में पृथक पूजन-कक्ष नहीं है तो वह किसी एकान्त शुद्ध स्थान पर बैठकर सन्ध्या-वन्दनादि करके सामान्यर्घ्य स्थापित कर भूतापसरण, आसन-शोधन, शिखा-बन्धन, मन्त्राचमन आदि सभी क्रियायें करे। उसे द्वार-पूजन करने की आवश्यकता नहीं है।

आवश्यकतानुसार जल ग्रहण करे। फिर किसी अन्य पात्र में जल लेकर उसमें इस अभिमन्त्रित जल को थोड़ा सा मिला दें। फिर इस जल में से थोड़ा सा जल बांये हाथ में लेकर आसन का अभ्युक्षण करें। फिर इसी अन्यपात्रस्थ जल से **'ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेष-विकल्पमपनय हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र बोलते हुए हाथ-पैरों को धोकर, स्वर्ण-रजत मुद्रिका रूप कुल-कुशों को हाथों की अंगुलियों में यथोचित रूप से धारण कर (यदि पहले से धारित हो तो पुनः आवश्यक नहीं) **'ॐ ह्रीं स्वाहा'** से आचमन करके आसन पर बैठकर **'देवी-पीठ'** का चिन्तन (ध्यान) करे।

पीठ ध्यानम् – सबसे पहले श्मशान का ध्यान करें। फिर उसमें कल्पवृक्ष का ध्यान (कल्पना) कर उसके नीचे अनेक मणियों से अलंकृत मणिपीठ का चिन्तन करें। इसके बाद अनेकों मुनियों तथा देवताओं से शोभित (परिपूर्ण), अत्यधिक मांस तथा अस्थियों के कारण प्रसन्न हुई बहुत सी शिवाओं से व्याप्त तथा चारों ओर बिखरे हुए शवमुण्ड, चिता के अङ्गारों तथा अस्थियों से विभूषित उस श्मशान के मध्य (मणिपीठ पर) विराजमान देवी का ध्यान करें।

॥ सामान्य-अर्घ्य-स्थापनम्॥

सर्वप्रथम अपने सम्मुख, पूजन के लिए गृहीत अभिमन्त्रित जल से **'फट्'** मन्त्र द्वारा भूमि का प्रोक्षण कर जल से अथवा रक्त चन्दन से **'त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र'** रूप मण्डल बनायें। **'ह्रीं आधार शक्तये नमः'** मन्त्र से गन्धाक्षतादि द्वारा इस मण्डल का पूजन करके, आधार-पात्र (तिपाई आदि) का **'फट्'** मन्त्र से प्रक्षालन कर इस मण्डल पर रखें। इसके बाद **'रं धूम्रार्चिरादिदशकलात्मने धर्मप्रद-वह्निमण्डलाय नमः'** से आधार पात्र का पूजन करके उस पर **'फट्'** मन्त्र से प्रक्षालित सामान्य अर्घ्य पात्र (तांबे आदि से निर्मित) स्थापित कर **'अं तपिन्यादि द्वादश कलात्मने अर्थप्रद-सूर्यमण्डलाय सामान्यार्घ्य-पात्राय नमः'** से उसका पूजन करें। तदुपरान्त पूर्वोक्त अभिमन्त्रित जल से इस अर्घ्य पात्र को **'नमः'** का उच्चारण करते हुए पूरित करके, इस जल में सोम मण्डल की भावना करके **'सं अमृतादि षोडशकलात्मने कामप्रद-सोम मण्डलाय पात्रामृताय नमः'** से उसका गन्धाक्षतादि द्वारा पूजन करें। तत्पश्चात् **'ॐ गङ्गेच यमुने०'** इत्यादि मन्त्र बोलकर, **'अङ्कुश मुद्रा'** सहित **'क्रों'** का उच्चारण करके सूर्यमण्डल से तीर्थों का इस जल में आवाहन कर **'ॐ'** मन्त्र से उसमें गन्ध पुष्पादि डालकर **'ॐ'** से ही उसका पूजन करके, **'वं'** मन्त्र के उच्चारण सहित **'धेनुमुद्रा'** का उस पर प्रदर्शन कर **'अमृतीकरण'** करके **'ॐ'**

अथवा '**मूल-मन्त्र**' का उस पर दश बार जप करके उसे अभिमन्त्रित करें। इसके बाद इसी जल से पूजा-गृह-द्वार का प्रोक्षण करके द्वार देवताओं का पूजन करें। यदि पूजा-गृह एक से अधिक द्वारों वाला (सामान्यतः चार द्वारों वाला) हो तो प्रत्येक द्वार का प्रोक्षण तथा पूजन करें। चतुर्द्वार वाले गृह (अथवा याग-मण्डप) में पश्चिम-मुख द्वार से ही पूजन प्रारम्भ (तथा प्रवेश भी) किया जाता है।

द्वार के ऊपर- **ॐ गां गणेशाय नमः**। वाम भाग में - **ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः**। दक्ष भाग में - **ॐ वां वटुकाय नमः**। नीचे (देहली मध्य में) - **यां योगिनीभ्यो नमः**। इसी क्रम से उपर्युक्त चारों स्थानों पर - **ॐ गां गङ्गायै नमः। ॐ यां यमुनायै नमः। ॐ श्रीं लक्ष्म्यै नमः** तथा **ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः**। तत्पश्चात् -

ॐ पाखण्डकारिणे भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः।
दिविलोकस्थिताश्च ये ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

मन्त्र बोलकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए दिव्य-दृष्टि-अवलोकन द्वारा दिव्य विघ्नकारक भूतों का, '**अस्त्राय फट्**' बोलते हुए ऊपर की ओर जल फेंककर अन्तरिक्ष के भूतों का एवं पुनः '**अस्त्राय फट्**' बोलकर,तीन बार ताली बजाकर तथा बांये पैर से पृथ्वी पर आघात कर पृथ्वी के भूतों का निवारण करें। इसके बाद अपना दाहिना अङ्ग संकुचित करके द्वार के वाम भाग को स्पर्श करते हुए तथा दाहिना पैर पहले रखते हुए (वाममार्गी तथा स्त्री साधक बायां अङ्ग संकुचित कर बांया पैर पहले रखते हुए) पूजा-मण्डप (गृह) में प्रवेश करे।

इसके बाद पूजागृह के नैर्ऋत्य कोण में '**ॐ वास्तुपुरुषाय वास्त्वधीशाय ब्रह्मणे नमः**' से पुष्पाक्षतों द्वारा पूजन तथा प्रणाम करके सामान्यार्घ्य जल (तथा पञ्चगव्य) से पूजा-गृह के भीतरी भाग का प्रोक्षण करें। इसके बाद '**मूलमन्त्र**' का उच्चारण करते हुए भीतरी भाग का निरीक्षण, '**फट्**' मन्त्र से प्रोक्षण, '**हुं**' मन्त्र से (भूमि पर) सिञ्चन तथा '**हुं**' से ताडन रूप पूजागृह का चतुःसंस्कार करें। तदुपरान्त -

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूताः विघ्नकर्तारः नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इस मन्त्र श्नोक को बोलकर '**ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा**' बोलते हुए अक्षत, सरसो तथा तिल को सात बार अभिमन्त्रित करके '**नाराचमुद्रा**' से मण्डप में चारों ओर फेंके। तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर मुट्ठी (अथवा कुश-मुष्टि) से गिरते हुए जल द्वारा '**ॐ रक्ष-रक्ष हुं फट्**

स्वाहा' मन्त्र बोलते हुए (उस स्थान का जहाँ बैठकर पूजन करना है) भूमि का शोधन कर **'ॐ पवित्र वज्रभूमे हूं हूं फट् स्वाहा'** से उसे अभिमन्त्रित करें।

इसके बाद उस आसन स्थल पर रक्त चन्दन अथवा जल से **'आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र बोलते हुए अधोमुख त्रिकोण (∇)बनाकर **'ॐ ह्रीं आधार शक्त्यै नमः'** से उस त्रिकोण का पूजन कर, उस पर **'कोमलासनादि'** (अभाव में कम्बलादि का आसन) बिछाकर (यदि कम्बल का आसन बिछाया गया है तो उसके ऊपर सौ कुश-पत्रों द्वारा निर्मित वटुक रूप **'विष्टर'** बनाकर तथा उसमें शव की प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे कम्बल पर स्थापित कर) उसके ऊपर **'आः सुरेखे०'** इत्यादि मन्त्र से अष्टदल कमल बनाकर **'ॐ ह्रीं आधारशक्त्यै कमलासनाय नमः'** से उसका पूजन करके, आसन पर दाहिना हाथ रखकर बोलें -

ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता असनोपवेशने विनियोगः।

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

उपर्युक्त मन्त्र बोलकर उस पर पद्म-स्वस्तिक-वीरादि किसी भी आसनावस्था में यथारुचि बैठें।

[**मृदु-आसनम्** - **'मत्स्य-सूक्त'** के अनुसार छठवें मास में (**'तारा रहस्य'** के अनुसार आठवें मास के अन्त में) गर्भ-च्युत शिशु का शव **'मृदु-आसन'** कहा जाता है। इस आसन का **'ॐ प्रें कामपीठाय नमः'** से पूजन करके इस पर बैठना चाहिए।

कोमल-आसनम् - जिस बालक का **'चूड़ाकरण'** सम्पन्न हो गया हो परन्तु पाँचवे वर्ष में **'उपनयन'** संस्कार से पहले ही मृत्यु हो गई हो, उसका शव कोमलासन कहा जाता है। **'तारा-रहस्य'** के अनुसार चाण्डालिनी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण का औरस (वैध) पुत्र अथवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न चाण्डाल के औरस पुत्र का शव कोमलासन कहा जाता है।

अचूडक-आसनम् - **'चूड़ाकरण'** तथा **'उपनयन'** दोनों संस्कारों से रहित मृत बालक का शव **'आचूड़कासन'** कहलाता है। तारा रहस्य के अनुसार जिस बालक की मृत्यु चौथे वर्ष में हुई हो (तथा उसका चूड़ाकरण हो चुका हो) उसके शव को 'चूड़कासन' कहते हैं।]

आसन पर बैठने के पश्चात् **'ऐं ह्रीं श्रीं (अथवा ॐ) रक्त द्वादश**

शक्तियुताय दीपनाथाय नमः’ मन्त्र से भूमि पर पुष्पाञ्जलि बिखेरें। तत्पश्चात्-

ॐ अस्मिन् क्षेत्रे दीपनाथ निर्विघ्न सिद्धिहेतवे। अर्चायाग समृद्ध्यर्थमनुज्ञां दातुमर्हसि॥
अतितीक्षण-महाकाय कल्पान्त दहनोपम। भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इन दोनों मन्त्रों को बोलकर **दीपनाथ भैरव** से आगे का कार्य करने के लिए आज्ञा प्राप्त करें। आज्ञा प्राप्त हो गई है, ऐसा मानसिक भाव करके **‘कर्म-साक्षी रूप’** दीप प्रज्ज्वलित करें।

‘ॐ वह्नि दैवत्याय दीप पात्राय नमः’ मन्त्र से, **‘फट्’** मन्त्र द्वारा प्रक्षालित दीप-पात्र का पूजन करके **‘मूल-मन्त्र’** से गो-घृत (अथवा तिल-तैल) का दीप प्रज्जवलित करके **‘ॐ दीपस्थ देवतायै नमः’** से उसका पूजन करके प्रार्थना करें -

ॐ भो दीप! देवीरूपंस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत।
यावत् पूजां समाप्तिः स्यान्तावदत्र स्थिरो भव॥

इसके बाद दीपक को सुरक्षित (वायु आदि प्रभाव से रहित) ईशान कोण में स्थापित कर दें। इसके बाद **‘संविदा-शोधन’** (तथा ग्रहण) एवं **‘द्रव्य-शोधन’** (मांस-मत्स्य आदि का) करें।

॥ संविदा (विजया) ग्रहणम्॥

संविद पात्र को सम्मुख रखकर विनियोग बोलें -

विनियोगः - **ॐ अस्य संविद् मन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, सदाशिवो देवता संवित्-सन्निध्यारोपणे विनियोगः।**

ध्यानम् - **पीयूषाम्बुधि-मन्थनोद्भव-रसां संविद्-विलासास्पदाम्।**
वीराराधित-पादुकां सुविजयां ध्यायेज्जगन्मोहिनीम्॥

इसके पश्चात् स्व वर्णानुसार मन्त्र को बोलते हुए विजया पात्र पर हाथ रखकर उसका शोधन करें। यथा -

४ संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे। भैरवानां च तृप्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा॥ ॐ ब्रह्माण्यै नमः स्वाहा॥
४ सिद्धिमूलक्रिये देवि हीनबोधप्रबोधिनी। राजप्रजावशंकरि शत्रुकण्ठ त्रिशूलिनि॥ ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा॥
४ अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने ज्ञानाग्ने ज्ञानरूपिणि। आनन्दस्याहुतिं प्रीति सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छमे॥ ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा॥
४ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्ग प्रदर्शिनि। त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदा भव॥ क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा॥

पुनः - **‘४ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि! अमृताकर्षय-आकर्षय अमृतं कुरु कुरु स्वाहा’** बोलते हुए **‘धेनु मुद्रा’** प्रदर्शित कर उसे अमृत-मय करें। तत्पश्चात्-

‘यं’ बीज से शोषण, **‘रं’** से दहन, **‘वं’** तथा **‘धेनुमुद्रा’** से अमृतीकरण, **‘योनिमुद्रा’** से प्रणाम तथा **‘मत्स्य मुद्रा’** से मूल मन्त्र द्वारा

आठ बार अभिमन्त्रित करें। पुनः ध्यान करें-

४ संविद्-देवि गरीयसी गुणमयी वैगुण्य-विध्वंसिनी।
मायामोहमहान्धकारशमनी तापत्रयोन्मूलिनी॥
वन्दे वीरमुखाम्बुजे विलासिनी संदीपनी-दीपिका।
ब्रह्मज्ञानमयी विवेक-जनिका विज्ञान-मूर्त्यै नमः॥

तत्पश्चात्-"**४ वद वद वाग्वादिनि! मम जिह्वाग्रे स्थिरी भव सर्व सत्वं वशंकरि स्वाहा**" मन्त्र बोलकर भावना द्वारा विजया को कुण्डलिनी के मुख में अर्पित करें। (अन्य मतानुसार यह 'संविदा ग्रहण' 'द्वार पूजन' के पश्चात् ही कर लेना चाहिए।)

॥ द्रव्य-शुद्धि॥

१. मांस शोधनम्- किसी यथोचित पात्र में मांस (शुद्धि) लेकर, सम्मुख रखकर दाहिने हाथ से स्पर्श करते हुए निम्न मन्त्र बोलकर उसे अभिमन्त्रित करें -

ॐ प्रतद्विष्णुस्तुवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वाः॥

२. मीन-शोधनम् - एक पात्र में मत्स्य खण्ड लेकर उसे मांस (शुद्धि) पात्र के पास रखकर पूर्ववत् निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करें।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥

३. मुद्रा-शोधनम् - अन्न के बने हुए (विशेषकर भुने हुए) सभी उपलब्ध पदार्थों को थोड़ा-थोड़ा एक पात्र में लेकर उसे भी मीन पात्र के पास रखकर पूर्ववत् निम्न मन्त्र बोलकर अभिमन्त्रित करें-

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

४. पञ्चम-शोधनम् - एक पात्र में **'पञ्चम तत्व'** (स्वयम्भू कुसुम, कुण्ड गोलोद्भवादि) लेकर उसे मुद्रा-पात्र के पास रखकर निम्न मन्त्र से पूर्ववत् (पात्र को दाहिने हाथ से स्पर्श करते हुए) निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करें-

ॐ विष्णुः योनिं कल्पयतु त्वष्टारूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु वै।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं धेह्यश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजा॥

अब चारों तत्वों पर हाथ रखकर **'ऐं म्लूं प्लूं ग्लूं स्लूं न्लूं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि महत्प्रकाश स्वरूपे अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा'** मन्त्र से उन्हें अभिमन्त्रित करे। फिर **'हुं'** इस बीज का उच्चारण कर **'अवगुण्ठन मुद्रा'** से सभी तत्वों का अवगुण्ठन करके **'धेनुमुद्रा'** द्वारा

अमृत-मय करे। तत्पश्चात् दक्ष करतल पर वाम तर्जनी मध्यमा से तीन ताल (दक्ष करतल को नीचे से ऊपर की ओर उठाते हुए) देकर दश बार तर्जनी-अंगुष्ठ से चुटकी बजाकर (दशो दिशाओं में) दिग्बन्धन करें। इसके बाद चारों तत्वों पर आठ-आठ बार मूलमन्त्र पढ़कर उन्हें अपने वाम भाग में यथा क्रम स्थापित करें।

शक्ति शुद्धिः - यदि साधक **'शक्ति'** से युक्त होकर पूजन करता है तथा शक्ति **'अदीक्षित'** है तो उसकी भी शुद्धि करनी चाहिए। इसके लिए साधक जलादि (सुरा, रेतस अथवा जल) के द्वारा **'ह्रीं त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्री कुरु ममशक्तिं कुरु स्वाहा'** मन्त्र बोलते हुए शक्ति का अभिषेक करे तत्पश्चात् अपने साथ उसे एक (अभेद स्वरूप) मानते हुए उसके बायें कान में अपने मूल मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् उसे स्वशक्ति के रूप में स्वीकार करके पूजन कर्म करें।

॥कुण्डगोलोत्पत्तिः॥

साधक पृथ्वी पर कम्बलादि का आसन बिछाकर उसके ऊपर बैठकर अपने सामने शक्ति को प्रसून-तूलिका (कोमल गद्देदार आसन जिस पर पुष्प बिखेरे गये हों) पर निर्वस्त्र बैठाकर उसके मस्तक पर सिन्दूर आदि से अधोमुख त्रिकोण **'ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं हस (हर) व्लें आधारशक्ति श्री पादुकां पूजयामि'** मन्त्र बोलते हुए बनाये। (मेरे विचार से त्रिकोण बनाकर इस मन्त्र से त्रिकोण के मध्य में पूजन करे) तत्पश्चात्-

ॐ मद्यार्णवं श्री पादुकां पूजयामि। ॐ पोतासनं श्री पादुकां पूजयामि। ॐ पङ्केरुहासनं श्री पादुकां पूजयामि। ॐ महाप्रेतासनं श्री पादुकां पूजयामि। इन मन्त्रों द्वारा त्रिकोण के ऊपर-ऊपर क्रमशः इन आसनों की कल्पना कर उनका पूजन करे।

इसके पश्चात् त्रिकोण की चारों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से वटुकादि का अर्चन करे (त्रिकोण के बाहर पहले चतुरस्र की रचना कर ले अथवा उसकी कल्पना करके पूजन करे)। यथा -

'वां वटुकनाथ श्री पादुकां पूजयामि नमः', इसी प्रकार **'यां योगिनी'**, **'क्षं क्षेत्रपाल'** तथा **'गं गणपति'** का पूजन करके उसी क्रम से **'गां गङ्गा'**, **'यां यमुना'**, **'श्री लक्ष्मी'** तथा **'ऐं सरस्वती'** का पूजन करे। पुनः शक्ति के दक्षिण पाद तल में **'क्लीं कामराज श्री पादुकां पूजयामि'** से पूजन करे। तदुपरान्त उस शक्ति के दाहिने अङ्गो में नीचे से ऊपर की

ओर (आरोह क्रम से) कामकला का न्यास करें। यथा -

अं श्रद्धाकला श्री पादुका पूजयामि (दाहिने अंगुष्ठ में)। इसी प्रकार **आं प्रीति** (दक्ष चरण ऊपरी भाग पर), **इं रति** (एड़ी-टखना), **ईं धृति** (एड़ी से घुटने के मध्य में), **उं कांति** (घुटने में), **ऊं मनोहरा** (ऊरु मध्य), **ऋं मनोरमा** (ऊरु मूल), **ॠं मनोरामा** (कटि में), **लृं मदनोन्मदिनी** (नितम्ब में), **लॄं मोहिनी** (स्तन में), **एं दीपनी** (कक्षा-काँख में), **ऐं बोधिनी** (कण्ठ-दाहिनी ओर), **ओं वशङ्करी** (कर्णमूल), **औं रञ्जिनी** (कपोल-गाल), **अं सुभगा** (नेत्र) तथा **अः प्रियदर्शना** (शिर पर)।

इसके पश्चात् अवरोह क्रम से (ऊपर से नीचे आते हुए) वामाङ्गों में **'सोमकला'** का न्यास करें। यथा - **अं पूषाकला श्री पादुका पूजयामि** (मस्तक -शिर पर)। इसी प्रकार **आं अर्यमा** (वाम नेत्र), **इं सुमना** (कपोल), **ईं रति** (कर्णमूल), **उं प्रीति** (कण्ठ वाम पार्श्व), **ऊं धृति** (कक्षा-काँख), **ऋं ऋद्धिः** (स्तन में), **ॠं सौम्या** (कटि वाम पार्श्व), लृं मरीचि (नितम्ब), **लॄं अंशुमालिनी** (ऊरु मूल), **एं अङ्गिरा** (ऊरु मध्य), **ऐं शशिनी** (घुटना), **ओं छाया** (घुटना तथा चरण के मध्य), **औं सम्पूर्ण मण्डला** (एड़ी), **अं तुष्टि** (चरण ऊपरी भाग) तथा **अः अमृत** (वामपादांगुष्ठ में)। तदुपरान्त -

'धूं कामचापपाद श्री पादुका पूजयामि' से पीठ पर स्थित रीढ़ की हड्डी के निम्न शिरे से ऊपर मस्तक तक धनुषाकार रूप से न्यास करके **'पञ्चबाण'** का न्यास करें। यथा -

मूर्धा शरीर में (शिर के ऊपर) - **द्रां द्रावणबाणपाद श्री पादुका पूजयामि।** पैरों में - **द्रीं उन्मादन बाणपाद श्री पादुका पूजयामि।** मुख में - **क्लीं मोहण बाणपाद श्री पादुका पूजयामि।** गुह्य में - **ब्लूं सन्दीपन बाणपाद श्री पादुका पूजयामि।** हृदय में - **सः शोषण बाणपाद श्री पादुका पूजयामि।** तत्पश्चात् मस्तक पर स्थित त्रिकोण में पूजन करें। यथा - दक्ष रेखा पर- **ऐं शुभ (सुभगा) पाद श्री पादुका पूजयामि।** पश्चिम रेखा पर - **ह्रीं भग (भगा) पाद श्री पादुका पूजयामि।** वाम रेखा पर - **क्लीं भग सर्पिणीपाद श्री पादुका पूजयामि।** तथा मध्य में - **ह्सौः भगावहापाद श्री पादुका पूजयामि।** इसके बाद-

उड्डीयान पीठ (हृदय में) - **श्री उड्डीश देवी श्री पादुका पूजयामि, श्री उड्डीश नाथ देव श्री पादुका पूजयामि, श्री रक्ताम्बा श्री पादुका पूजयामि** तथा **श्री चर्यानाथ श्री पादुका पूजयामि।**

उपर्युक्त पूजन मन्त्र को **'श्री उड्डीशी देवी श्री उड्डीश नाथ देवी श्री रक्ताम्बा श्री चर्यानाथ पाद श्री पादुका पूजयामि'** की भाँति भी बोल सकते हैं। इसी प्रकार आगे भी प्रयोग कर सकते हैं।

जालन्धर पीठ (नाभि में) – **श्री जालेश्वरी देवी श्री पादुका पूजयामि। श्री जालेश नाथ देव श्री पादुका पूजयामि। श्री जालाम्बा श्री पादुका पूजयामि। श्री षष्ठी नाथ देव श्री पादुका पूजयामि।**

पूर्णगिरि पीठ (मस्तक में) – **श्री पूर्णेश्वरी देवी श्री पादुका पूजयामि। श्री पूर्णेशनाथ देव श्री पादुका पूजयामि। श्री चामुण्डा श्री पादुका पूजयामि। श्री उड्डीशनाथ श्री पादुका पूजयामि।**

कामरूप पीठ (योनि में) – **श्री कामेश्वरी देवी श्री पादुका पूजयामि। श्री कामेश्वरानन्दनाथ श्री पादुका पूजयामि। श्री महातुष्टाम्बा श्री पादुका पूजयामि। श्री मित्रीशनाथ श्री पादुका पूजयामि।**

पीठ-पूजन (न्यास) के बाद योनि के वाम भाग में **'गुरु-पंक्ति'** का तथा हृदय में **'(ॐ) अं अनङ्गकुसुमादिभ्यो नमः'** से पूजन करें। तदुपरान्त-

'ऐं ब्लौं ब्लीं ब्लों ब्लुं ब्लुः' इस मन्त्र का उच्चारण करके **'योनिमुद्रा'** का प्रदर्शन कर उसकी योनि में क्षोभ की भावना करे।

'ऐं क्लीं स्त्रीं क्षोभिणी' इस **'क्षोभणी'** नाम वाली विद्या द्वारा उसके स्तनों में क्षोभ उत्पन्न करे।

'ऐं स्फृं ब्लें ब्लीं ब्लूं क्लीं ह्रीं क्षं' द्राविणी नाम वाली इस विद्या को **'योनिमुद्रा'** का प्रदर्शन करके बोलते हुए उसकी योनि के मध्य में धीरे-धीरे क्षोभ उत्पन्न होने की भावना करे। तत्पश्चात् (मूलमन्त्र सहित) **'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः'** इस चेतनी नाम वाली विद्या का योनि में ध्यान (न्यास) करें। तत्पश्चात् स्थिर मानस तथा दिव्य आनन्द से परिपूर्ण (आनन्दमय सा) होकर मूर्धा के पद्म में अपनी मूल विद्या का ध्यान करें।

इसके बाद **'मूल-मन्त्र'** बोलकर उसकी योनि पर तीन बार पुष्पांजलि देकर स्वयं क्षोभ रहित होकर उसमें क्षोभ उत्पन्न होने की भावना (क्षोभ उत्पन्न) करें।

[इसके पश्चात् स्वलिङ्ग में भी पञ्चवक्त्र महादेव का उनके **ईश्वरः०, तत्पुरुषाय०** इत्यादि मन्त्रों से विभिन्न कलाओं का न्यास, धूप दीपादि (अथवा षोडशोपचार) से योनि तथा लिङ्ग का पूजन, वृषण का पूजनादि क्रियायें की जाती हैं। इसके लिए ज्ञानार्णव, तारा भक्ति सुधार्णव आदि ग्रन्थों का अवलोकन करें। संक्षेप में केवल **'ॐ ह्रीं ऐं क्लीं सौः नमः शिवाय'**

से स्वलिङ्ग का पूजन कर लें। धूप-दीपादि से मूल मन्त्र द्वारा योनि का भी पूजन कर लें।]

तदुपरान्त (**'सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा'** बाँधकर क्षोभिणी अथवा **'गजतुण्ड मुद्रा'** से योनि का परिचालन कर **'भगमाला मन्त्र'** तथा **'द्राविणी'** बीज का उच्चारण करते हुए-इसके लिए अन्य ग्रन्थों को देखें) योनि के मध्य में देवी का ध्यान कर अक्षुब्ध रहते हुए उस शक्ति के साथ के साथ समागम करें। ऐसा भी कहा गया है कि समागम से पूर्व शोधित **'कुल द्रव्य'** (कारण) (जिसे मांसादि के शोधन काल में ही शोधित कर लेना चाहिए- इसके शोधन की प्रक्रिया **'काली प्रकरण'** के अन्तर्गत **'कलश-स्थापन'** विधि में वर्णित है, वहीं देखें। यदि साधक **'कारण'** का पहले ही शोधन कर लेता है तो बाद में **'कलश-स्थापन'** की क्रिया में पुनः शोधन की क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती।) को घट से किसी अन्य पात्र में निकाल कर (गुरु की उपस्थिति में उन्हें देकर) शक्ति को देकर तथा स्वयं भी ग्रहण करके स्वयं को **'शिवरूप'** तथा शक्ति को **'शक्ति-रूप'** मानकर उल्लासपूर्ण चित्त से सम्बन्ध करना चाहिए। इस क्रिया से उत्पन्न **'कुण्डगोलक पुष्प'** का पूर्ववत् शोधन कर बायें हाथ से देवता तथा गुरु आदि का एक-एक बार तर्पण करके शेष अर्घ्य पात्र में डालना चाहिए।

अनुकल्पम् - कुण्डगोलपुष्प की प्राप्ति असम्भव होने की स्थिति में अपराजिता तथा हयारि (कनेर) पुष्प लेकर, हयारि पुष्प में श्वेत चन्दन तथा अपराजिता में (काला) अगुरु भरकर, दोनों की शिव-शक्ति रूप में कल्पना कर, उन दोनों को परस्पर सम्मुख रूप से सम्मिलित करके, कुछ क्षण पश्चात् उनके द्वारा **'कुल द्रव्य'** की उत्पत्ति की भावना करके, उनके ऊपर यथाशक्ति अपने **'मूलमन्त्र'** को जपकर उस **'कुण्डगोलपुष्प'** (अगुरु-चन्दन मिश्रण) को अर्घ्यपात्र में छोड़ें (छोड़ने के लिए सुरक्षित रख लें)।

कुल द्रव्य शोधन के पश्चात् बायें कान के ऊपर **'ॐ गुरुवे नमः'** (अथवा **'श्री अमुकानन्दनाथ श्री गुरुपादुकेभ्यो नमः'**) से स्वगुरु को तथा **'ॐ गुरु मण्डलाय नमः'** से गुरु मण्डल को, दाहिने कान के ऊपर **'गं गणपतये नमः'** से गणपति को एवं मध्य (हृदय) में **'ॐ तारायै** (अथवा **एकजटायै, नील सरस्वत्यै** आदि इष्ट के अनुसार) **नमः** से प्रणाम करके अपनी दाहिनी ओर पूर्ववत् **'सामान्य अर्घ्य'** स्थापित करें।

॥(पुनः) सामान्यार्घ्य (शंख) स्थापनम्॥

पूजन हेतु गृहीत शुद्ध जल से अपने सम्मुख दायीं ओर भूमि का प्रोक्षण कर रक्त चन्दन से मत्स्य मुद्रा द्वारा 'बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्र' रूप मण्डल बनाकर, चतुरस्र के अग्नि, ईशान, निर्ऋति, वायव्य कोणों, मध्य तथा चारों ओर षडङ्ग मन्त्रों से पूजन करें। यथा -

ह्रां एक जटायै हृदयाय नमः।

हृदय शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **हृत्-शक्त्यै नमः**)

ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा।

शिरः शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **शिरः-शक्त्यै नमः**)

ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्।

शिखा शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **शिखा-शक्त्यै नमः**)

ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं।

कवच शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **कवच-शक्त्यै नमः**)

ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्।

नेत्र शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **नेत्र-शक्त्यै नमः**)

ह्रः पिङ्गोग्रजटे अस्त्राय फट्।

अस्त्र शक्ति श्री पादुका पूजयामि नमः। (अथवा **अस्त्र-शक्त्यै नमः**)

इसके बाद षट्कोणों में अपने आगे से प्रारम्भ कर वामावर्त क्रम से उपर्युक्त छः मन्त्रों से ही पूजन करें। मूलमन्त्र के तीन खण्ड करके उनकी दो आवृत्तियों द्वारा भी उपर्युक्त पूजन कर सकते हैं। तारा (उग्रतारा) पक्ष में **'ह्रां ह्रीं ह्रूं'** इत्यादि से तथा नील सरस्वती पक्ष में उसके षडङ्ग मन्त्रों से पूजन करना चाहिए।

इसके बाद त्रिकोण में स्वाग्रादि प्रदक्षिणावत् मूलमन्त्र के तीन खण्ड करके एक-एक खण्ड से (त्रिखण्ड न होने की स्थिति में पूरे मन्त्र से) पूजन करें।

बिन्दु पर - **मूलं नमः।** तत्पश्चात् मण्डल का पूजन करें।

(कुछ ग्रन्थों में उपर्युक्त क्रिया नहीं दी गई है, पहले बिन्दु-त्रिकोण-षटकोण-वृत्त-चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर फिर आगे का ही क्रम दिया गया है।)

'ॐ श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखाधार मण्डलाय नमः' से मण्डल का पूजन करें।

'फट्' से आधार पात्र (तिपाई आदि) का प्रक्षालन करें।

'मूलं श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखाधार पात्राय नमः' से उसका पूजन करके-

'मूलं श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखाधार पात्रं स्थापयामि नमः' से मण्डल पर आधार पात्र रखें।

'मं रं धर्मप्रददशकलात्मने वह्नि मण्डलाय श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखाधाराय नमः' से आधार का पूजन करें।

अग्निदूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। रां रीं रुं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्नि मण्डलाय नमः। इस मन्त्र से आधार पर अग्निमण्डल की भावना कर अग्नि की दश कलाओं का पूर्वादि क्रम से प्रदक्षिणावत् पूजन करें। यथा –

यं धूम्रार्चिषे नमः। रं ऊष्मायै नमः। लं ज्वलिन्यै नमः। वं ज्वालिन्यै नमः। शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। षं सुश्रियै नमः। सं सुरूपायै नमः। हं कपिलायै नमः। लं हव्यवाहायै नमः। क्षं कव्यवाहायै नमः।

(**'वह्नेर्धूम्रार्चिरादिदशकलाभ्यो नमः'** से अशक्तावस्था में संक्षेप रूप में भी पूजन कर सकते हैं।

इसके बाद **'फट्'** से शंख का प्रक्षालन कर –

'मूलं श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखं स्थापयामि नमः' बोलकर आधार पर शंख रखें।

'अं अर्थप्रद द्वादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय श्रीमद्० शंखपात्राय नमः' से शंख का पूजन करें। इसके बाद शंख पर **'षट्कोण-चतुरस्र'** रूप यन्त्र (मण्डल) की कल्पना कर षट्कोणों में पूर्व से (स्वाग्र से) प्रारम्भ कर प्रदक्षिणावत् **'षडङ्ग-मन्त्रों'** से पूर्ववत् पूजन करें।

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च हिरण्ययेन सविता रथे ना देवो याति भुवनानि पश्यन्। हां ह्रीं हूं हैं हौं हः हमलवर यूं सूर्यमण्डलाय नमः। इस मन्त्र से शंख पर सूर्य मण्डल की भावना कर उस पर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूर्ववत् पूर्व (स्वाग्र) से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणावत् (शंख को आधार पर इस प्रकार रखें कि उसका मुख भाग अपनी ओर रहे, अब मुख से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणावत्) पूजन करें।

कं भं तपिनी कलायै नमः। इसी प्रकार पश्चात् में **'कलायै नमः'** का योग करते हुए – **खं बं तापिनी०। गं फं धूम्रा०। घं पं मरीचि०। ङं नं ज्वालिनी०। चं धं रुचि०। छं दं सुषुम्ना०। जं थं भोगदा०। झं तं विश्वा०। ञं णं बोधिनी०। टं ढं धारिणी०। ठं डं क्षमा कलायै नमः।**

(**'सूर्यस्य तपिन्यादि द्वादश कलाभ्यो नमः'** से संक्षिप्त पूजन।)

तदुपरान्त-**मूलं क्षं ळं हं..........आं अं (विलोम मातृका)** का उच्चारण (मानसिक) करके - **'श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखममृतेन पूरयामि नमः'** बोलकर शंख में शुद्ध जल भरें।

'उं सं कामप्रद षोडश कलात्मने चन्द्र मण्डलाय श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता शंखामृताय नमः' से गन्धपुष्पादि द्वारा जल का पूजन करें।

'आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्णियं भवावाजस्य सङ्गथे। सां सीं सूं सैं सौं सः स म ल व र यूं सोम मण्डलाय नमः' से जल में षोडश कलाओं सहित सोम मण्डल की भावना करें। अब पूजन करें।

अं अमृतायै नमः। इसी प्रकार आं मनादायै०। इं पूषायै०। उं पुष्ट्यै०। ॐ रत्यै०। ऋं धृत्यै०। ॠं शशिन्यै०। लृं चन्द्रिकायै०। लॄं कान्त्यै०। एं ज्योत्सनायै०। ऐं श्रियै०। ओं प्रीत्यै०। औं अङ्गदायै०। अं पूर्णायै०। अः पूर्णामृतायै नमः।

(संक्षिप्त पूजन - **सोमस्यामृतादि षोडश कलाभ्यो नमः।**)

तत्पश्चात् गन्धपुष्पाक्षत यव कुशाग्र तिल सरसो तथा दूर्वा उसमें डालकर-

ॐ गङ्गे च यमुने० इत्यादि मन्त्र से अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन कर मूल मन्त्र से तीर्थों का उसमें संयोग कर **'वौषट्'** मन्त्र से पुष्प डालें, **'वषट्'** बोलकर **'गालिनी मुद्रा'** प्रदर्शित करे, **'वं'** बोलकर तथा **'धेनुमुद्रा'** प्रदर्शित कर अमृतीकरण करें। फिर **'मूलं श्रीमत्तारा (एकजटा) देवता इहागच्छ इहतिष्ठ'** बोलते हुए हृदय से देवता का वहाँ (जल में) आवाहन कर, आवाहनादि पञ्चमुद्राओं का प्रदर्शन कर **'षडङ्ग'** मन्त्रों से **'सकलीकरण'** करके **'फट्'** बोलकर वामकरतल पर तीन ताल देकर तथा चारों ओर चुटकी बजाकर **'संरक्षण'** करके **'हुं'** से **'अवगुण्ठन'** करें। पुनः **'वौषट्'** से **संवीक्षण** (एकाग्र दृष्टि से भली-भँति देखना), **'शंखमुद्रा'** से **'अवष्टम्भन'** (स्थिरीकरण), **'योनिमुद्रा'** से प्रदीपन करके मूल मन्त्र से उस जल में गन्ध पुष्पादि द्वारा (**मूलं श्रीमत्तारा (एकजटा) देवतायै गंधं समर्पयामि नमः'** इत्यादि रूप से पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूल तक समर्पण द्वारा) पूजन करके पूर्ववत् षडङ्गों का पूजन कर **'मत्स्य मुद्रा'** से जल का आच्छादन (ढक) कर मूल मन्त्र का आठ बार जप करें।

॥ प्रोक्षणी पात्र-स्थापनम्॥

सामान्यार्घ्य पात्र (शंख) के दाहिनी ओर थोड़ा स्थान छोड़कर सामान्यार्घ्य के जल से त्रिकोण वृत्तात्मक मण्डल बनाकर **'नमः'** से उसका पूजन कर, आधार सहित प्रोक्षणी पात्र को **'फट्'** से अभिमन्त्रित जल द्वारा धोकर मण्डल पर रखें।

ॐ गङ्गे च यमुने० इत्यादि मन्त्र से उसमें जल डालें, **'नमः'** से गन्ध पुष्पों द्वारा जल का पूजन कर **'ॐ'** बोलकर उसमें कुश-पुष्प-जौ आदि डालकर **'ॐ'** से तीन बार अभिमन्त्रित कर **'धेनुमुद्रा'** दिखाकर थोड़ा सा सामान्य अर्घ्य (शंख) का जल उसमें डालें।

इसके बाद उस प्रोक्षणी पात्र के जल से पूजोपकरणों (पूजन-पात्रों तथा सामग्रियों) का प्रोक्षण करके अपने दायें भाग में पुष्पादि, देवता के पृष्ठ भाग में कुल द्रव्यों को तथा अपने बायीं ओर अन्य अर्घ्यादिक पात्रादि रखें।

[यन्त्र-पीठ अथा देवता-पीठ (आसन) तथा साधक के मध्य ३६ अंगुल का अन्तराल होना चाहिए। इसका तीन भाग करके मध्य के १२ अंगुल के अन्तराल में पात्रों का स्थापन करना चाहिए।]

तदुपरान्त **'ॐ शताभिषेके हुं फट् स्वाहा'** तथा **'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक सम्बद्धाय पुष्पे-पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा'** इन दो मन्त्रों से पुष्पों को अभिमन्त्रित (सामान्यार्घ्य के जल से अभ्युक्षण करके **'पुष्पाधिष्ठान'** (पुष्प में देवी की स्थापना) करें। इसके बाद हाथ में लाल पुष्प लेकर **'क्लीं'** का उच्चारण करके, उसे (पुष्प को) दोनों हाथों से मसल कर **'ऐं'** मन्त्र से सूंघकर -

हौं ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः।
मृत्यु-रोग-भय-क्लेशाः पतन्तु रिपु मस्तके॥

इस मन्त्र को बोलकर **'नाराचमुद्रा'** से उस पुष्प को पूजा-गृह से बाहर ईशानकोण में फेंक दें।

तत्पश्चात् **'ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा'** से वस्त्र के किनारे (छोर पर) **'रक्षा-ग्रन्थि'** लगाकर (गांठ बांधकर), हृदय पर हाथ रखकर **'ॐ आत्मानं रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा'** बोलते हुए आत्मरक्षा विधान कर, **'ॐ आः हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र से व्यापक न्यास द्वारा काया-वाणी तथा चित्त का शोधन करके, बायीं ओर भूमि पर बांये पैर से तीन बार आघात कर, बायें करतल पर दक्ष तर्जनी तथा अनामिका द्वारा हाथों को नीचे से ऊपर की ओर उठाते हुए तीन ताल देकर तथा दिव्य दृष्ट्यवलोकन द्वारा त्रिविध (भू-अन्तरिक्ष तथा दिव्य) विघ्नों का निवारण कर, तर्जनी-अंगुष्ठ के योग द्वारा चुटकी बजाते हुए दशो दिशाओं में दिग्-बन्धन कर एवं अपने चारों ओर **'रं'** के उच्चारण सहित जलधारा गिराते हुए अग्नि-प्रकार की भावना करके यन्त्र संरचना करें।

॥यन्त्र-संरचना॥

१. इसके पश्चात् गोरोचन कुंकुमादि से लिप्त सुवर्णादि के पीठ पर स्वयम्भू कुसुम (अथवा लाल चन्दन) से **'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण कर त्रिकोण, अष्टदल पद्म, वृत्त तथा चतुर्द्वार युक्त चतुरस्र (भूपुर) युक्त यन्त्र की रचना करें। तदुपरान्त पद्म के पूर्व दल में **'ह्रीं'**, दक्षिण दल में **'स्त्रीं'**, उत्तर दल में **'फ'** तथा पश्चिम दल में **'ट'** लिखे। त्रिकोण के मध्य में तारा प्रणव **'हूं'** लिखें।

२. अथवा पहले षट्कोण बनाकर उसके भीतर अष्टदल पद्म फिर द्विरेखात्मक चतुरस्र चतुर्द्वार युक्त भूपुर बनाये। इसमें भी पूर्ववत् वर्णों को लिखे। मध्य में बीज **(हूँ)** के साथ ही अभीष्ट साध्य **'मम द्रुत कवित्व पाण्डित्यं कुरु कुरु'** इत्यादि रूप से लिखें।

३. अथवा सारस्वत प्राप्ति के इच्छुक साधक नीलतन्त्र तथा वीर तन्त्र में कथित इस (मातृका) यन्त्र की रचना करें। अष्टदल कमल बनाकर उसे दो वृत्तों से आवृत्त करके चतुरस्र चतुर्द्वार युक्त भूपुर बनायें। कर्णिका में **'ह्सौः'** लिखे। पद्म के केशरों में प्रदक्षिणावत् पूर्वादिक्रम से दो-दो स्वरों को लिखें तथा अष्ट पत्रों में व्यञ्जन के अष्टवर्गों को क्रमशः **(क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग, श वर्ग, तथा ल क्ष)** लिखें। इसके बाद भूपुर के पूर्वादि दिशाओं में **'ठं'** तथा कोण दिशाओं (आग्नेयादि) में **'वं'** वर्ण लिखे। सभी वर्णों को अनुस्वार युक्त लिखना चाहिए।

४. अथवा एक जटा के विलास गृह रूप बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त, अष्टार (अष्टदल पद्म) तथा तीन वृत्त एवं भूपुर से युक्त यन्त्र की रचना करे।

इनमें से कोई भी एक यन्त्र बनाकर अपने सामने उचित आसन पर पुष्पों से आच्छादित करके स्थापित कर विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा करे।

॥लघु-प्राण-प्रतिष्ठापनम्॥

दाहिने हाथ की तत्वमुद्रा से पुष्प लेकर यन्त्र के मध्य में स्पर्श कराते हुए अथवा 'लेलिहान मुद्रा' प्रदर्शित करके बोलें –

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ हंसः सोऽहं, सोऽहं हंसः शिवः अस्य श्री तारा (एकजटा अथवा नील सरस्वती) यन्त्रस्य प्राणा इह प्राणाः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ हंसः सोऽहं, सोऽहं

हंसः शिवः अस्य श्री तारा (एकजटा अथवा नील सरस्वती) यन्त्रस्य जीव इह स्थितः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ हंसः सोऽहं, सोऽहं हंसः शिवः अस्य श्री तारा (एकजटा अथवा नील सरस्वती) यन्त्रस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वा घ्राणा इहैवागत्य अस्मिन् यन्त्रे (चक्रे) सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

ॐ असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्। ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नस्स्वस्ति।

यदि पहले से ही प्राण-प्रतिष्ठित यन्त्र हो तो इसे करने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् प्राणायाम, ऋष्यादि न्यास तथा कर-षडङ्ग न्यास करके भूत-शुद्धि की क्रिया करें।

॥भूत-शुद्धिः॥

दोनों हथेलियों (करतलों) को ऊपर की ओर गोद में रखते हुए बैठकर **'हंसः'** मन्त्र का उच्चारण कर हृदय में स्थित दीप शिखाकृति जीवात्मा को सुषुम्ना के छिद्र मार्ग द्वारा ऊपर सहस्रार में ले जाकर परम शिव से संयुक्त कर दे। इसके बाद मूलाधार पद्म में पूर्व वर्णित स्वरूप वाली सोई हुई कुण्डलिनी को **'हुं'** मन्त्र तथा त्रिकोण मण्डलस्थ अग्निशिखा द्वारा जागृत कर **'हंसः'** मन्त्र द्वारा ऊपर उठाकर षट्चक्रभेदन प्रक्रिया द्वारा षट्चक्रों का भेदन करते हुए सुषुम्ना छिद्र मार्ग द्वारा सहस्रार में ले जाकर परम शिव से संयोजित कर दे।

इसके बाद पायु में स्थित मूलाधारगत पृथ्वी तत्व को उठाकर लिङ्ग मूल में स्थित स्वाधिष्ठान चक्रगत जल से संयुक्त कर उसमें लीन होने की भावना करे। फिर उस पृथ्वी तत्व के साथ ही उस जल तत्व को उठाकर नाभिमूलस्थ मणिपूर गत अग्नि से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना करे। तत्पश्चात् उन पृथ्वी तथा जल तत्वों के साथ उस अग्नि तत्व को उठाकर हृदयस्थ अनाहत गत वायु तत्व से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना करें। तदुपरान्त उस वायु तत्व को उसमें विलीन तत्वों के साथ उठाकर कण्ठदेशस्थ विशुद्ध चक्रगत आकाश तत्व से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना कर आकाश सहित उन सभी तत्वों को उठाकर भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्रगत मन से संयुक्त कर तथा उसमें विलीन होने की भावना करके मन को नाद में तथा नाद को सहस्रदल पद्ममध्यगत बिन्दु रूप परम शिव में

हंसः शिवः अस्य श्री तारा (एकजटा अथवा नील सरस्वती) यन्त्रस्य जीव इह स्थितः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ हंसः सोऽहं, सोऽहं हंसः शिवः अस्य श्री तारा (एकजटा अथवा नील सरस्वती) यन्त्रस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वा घ्राणा इहैवागत्य अस्मिन् यन्त्रे (चक्रे) सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

ॐ असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्। ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नस्स्वस्ति।

यदि पहले से ही प्राण-प्रतिष्ठित यन्त्र हो तो इसे करने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् प्राणायाम, ऋष्यादि न्यास तथा कर-षडङ्ग न्यास करके भूत-शुद्धि की क्रिया करें।

॥भूत-शुद्धिः॥

दोनों हथेलियों (करतलों) को ऊपर की ओर गोद में रखते हुए बैठकर **'हंसः'** मन्त्र का उच्चारण कर हृदय में स्थित दीप शिखाकृति जीवात्मा को सुषुम्ना के छिद्र मार्ग द्वारा ऊपर सहस्रार में ले जाकर परम शिव से संयुक्त कर दे। इसके बाद मूलाधार पद्म में पूर्व वर्णित स्वरूप वाली सोई हुई कुण्डलिनी को **'हुं'** मन्त्र तथा त्रिकोण मण्डलस्थ अग्निशिखा द्वारा जागृत कर **'हंसः'** मन्त्र द्वारा ऊपर उठाकर षट्चक्रभेदन प्रक्रिया द्वारा षट्चक्रों का भेदन करते हुए सुषुम्ना छिद्र मार्ग द्वारा सहस्रार में ले जाकर परम शिव से संयोजित कर दे।

इसके बाद पायु में स्थित मूलाधारगत पृथ्वी तत्व को उठाकर लिङ्ग मूल में स्थित स्वाधिष्ठान चक्रगत जल से संयुक्त कर उसमें लीन होने की भावना करे। फिर उस पृथ्वी तत्व के साथ ही उस जल तत्व को उठाकर नाभिमूलस्थ मणिपूर गत अग्नि से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना करे। तत्पश्चात् उन पृथ्वी तथा जल तत्वों के साथ उस अग्नि तत्व को उठाकर हृदयस्थ अनाहत गत वायु तत्व से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना करें। तदुपरान्त उस वायु तत्व को उसमें विलीन तत्वों के साथ उठाकर कण्ठदेशस्थ विशुद्ध चक्रगत आकाश तत्व से संयुक्त कर उसमें विलीन होने की भावना कर आकाश सहित उन सभी तत्वों को उठाकर भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्रगत मन से संयुक्त कर तथा उसमें विलीन होने की भावना करके मन को नाद में तथा नाद को सहस्रदल पद्ममध्यगत बिन्दु रूप परम शिव में

चतुर्भुजां रक्तमांसं खण्डमण्डितमुष्टिना।
जटाजूटेऽग्रलग्नेन शोभितां तीक्ष्णधारया॥
खड्गेन दक्षिणस्योर्द्ध्वे शोभितां वीरनदिनीम्।
तदधस्ताद् वीजवृन्तकर्त्रिकालंकृतां पराम्॥
वामोर्ध्वे रक्तनीलेषद्विकस्वर-मनोहराम्।
दधतीं नीलपद्मञ्च तदधस्ताद् कपालकाम्॥
जगतां जाड्यसंहारि दधतीं कुन्दसन्निभाम्।
धूमाभ्रनाग-सन्दोह-कृतकेयूर-सुन्दरीम्॥
सुवर्णवर्ण-नागेन कङ्कणोज्ज्वल-पाणिकाम्।
शुभ्रवर्ण-महादेव-शवहृद्-विमलासनाम्॥
निर्यन्त्रणभिया तद्वत् सङ्गच्छत् प्रपदाञ्चनाम्।
शवपादद्वयारूढ-वामपादां हसन्मुखीम्॥
कुन्दाभनाग-संशोभिकटिसूत्रां त्रिलोचनाम्।
ईषद्रक्तेन नागेन कृतनूपुर - पल्लवाम्॥
सद्यः च्छिन्नगलद्रक्त-नृमुण्डैः रक्तभूषणैः।
अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मप्रलम्बितैः॥
पञ्चाशद्भिर्महामालां दधतीं परमेश्वरीम्।
जलच्चितामध्यस्थां द्वीपचर्मोत्तरांशुकाम्॥
अक्षोभ्यनाग-सन्नद्ध-जटाजूटां वरप्रदाम्।
सावेशस्मेर-वदनां स्त्र्यलङ्कार-विभूषिताम्॥
[एवं च युवतिरूपां षोडशीं तारिणीं ध्यात्वा।
आत्मानमभेदरूपं कल्पयेत् साधकः स्वयम्॥]

देवी भगवती तारा (एकजटा) का शरीर छोटा (नाटा) है। शरीर का वर्ण नवीन बादलों के समान श्याम वर्ण, पेट बढ़ हुआ, कटि में व्याघ्र चर्म लपेटे हुए, पुष्ट तथा उन्नत (उठे हुए) स्तनों से युक्त, लाल गोलाकार त्रिनेत्र, लपलपाती हुई जिह्वा, दाढों के कारण भयानक मुख, पिङ्गल (धूसर-भूरा) वर्ण विशाल एक जटा युक्त, अत्यधिक श्याम वर्ण नाग से आबद्ध जटा समूहों वाली, चरणों तक लटकती हुई लम्बी नील कमलों की माला धारण की हुई, ललाट पर चार श्वेत अस्थि पट्टिका से संयुक्त पञ्चम कपाल (रूप पञ्चमुद्रा) धारण की हुई, जपापुष्प सदृश आभा वाले तक्षक नागों से रचित कुण्डलों को धारण की हुई, अत्यन्त धवल शेषनाग युक्त हार पहने हुई, दूर्वादल के समान श्याम

वर्ण नागों से निर्मित यज्ञोपवीत धारण की हुई, चतुर्भुजा, रक्त सहित मांसखण्डों से शोभित मुष्टि (मूँठ भाग) तथा (शत्रुओं के) जटाजूटों से संलग्न अग्रभाग युक्त खड्ग को ऊपर के दाहिने हाथ में धारण की हुई, थोड़ा खिला (अर्ध विकसित) होने के कारण रक्त-नील सा प्रतीत होने वाला नील कमल ऊर्ध्व वाम कर में धारण की हुई, जिसका निम्न हस्तगत भाग 'हूँ' कार बीज से सुशोभित है, ऐसी कर्त्रिका से अधोगत दक्षिणकर अलङ्कृता, तीनों जगत् की जड़ता का संहार करने वाले धवल कपाल से मण्डित अधोगत वाम कर वाली, चारों भुजाओं में धूम के समान आभा वाले नागों से रचित केयूर, स्वगर्णाभ नागों से रचित कङ्कन धारण की हुई, शव रूप शुभ्रवर्ण शिव के हृदयस्थल पर दक्षिण चरण को, उन्हें होने वाली पीड़ा के भय से किञ्चित स्पर्शित रूप से रखे हुए तथा शव के दोनों पैरों पर (चरणों तथा घुटनों के मध्य) अपने वाम चरण को प्रसारित कर रखे हुए उस हंसती हुई आरुढा, कुन्द पुष्प के समान श्वेत आभा वाले नागों से रचित मेखला (करधनी) धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, किञ्चित (हल्के) रक्त वर्ण नाग रचित नूपुर (पायल) पैरों में धारण की हुई, तत्काल कटे हुए तथा रक्त धारा स्रवित करते हुए, परस्पर एक दूसरे के केशों से ग्रन्थित किये हुए चरणों तक लम्बी पचास नरमुण्डों से निर्मित माला धारण की हुई, चारों ओर अग्नि से प्रज्वलित चिताओं के मध्य (अथवा प्रज्वलित अग्नि चिता के मध्य) विराजमाना, शरीर के ऊपरी भाग में हस्ति चर्म रचित वस्त्र धारण की हुई, अक्षोभ्य नाग से संयुक्त जटा समूहों वाली, समस्त स्त्रियोचित शारीरिक अलङ्कारों से विभूषिता, आवेश युक्ता (गौरवान्विता) एवं किञ्चित मुस्कान युक्त मुख मण्डल वाली वरप्रदायिनी षोडश वर्षीया युवती के रूप में देवी तारा (एकजटा, नील सरस्वती) का ध्यान कर स्वयं की भी इसी रूप में भावना करनी चाहिए।

इसके बाद **'आः सोऽहम्'** इस मन्त्र के उच्चारण सहित जीव को हृदय में, कुण्डलिनी को मूलाधार में तथा तत्वों को यथा स्थान लाकर स्थापित करना चाहिए। इसके बाद प्राणायाम करें। यथा –

॥प्राणायामः॥

मूलमन्त्र (अथवा बीजवर्ण) का चार बार जप करते हुए दाहिने अंगूठे से दक्ष नासिका को बन्द कर वाम नासिका से वायु खींच (पूरक) करके दाहिने हाथ की तर्जनी-मध्यमा-अंगुष्ठ द्वारा दोनों नासारन्ध्रों को बन्द करके कुम्भक अवस्था में सोलह बार पूर्ववत् जप करे। तत्पश्चात् आठ बार पूर्ववत् मन्त्र अथवा बीज वर्ण का जप करते हुए दक्षिण नासा छिद्र से वायु का रेचन

करे। इसी प्रकार दक्षिण नासाछिद्र से पूरक फिर कुम्भक करके वाम नासाछिद्र से रेचन करे। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार तीन बार प्राणायाम करे। तत्पश्चात् मन्त्र का विनियोग न्यासादि करे।

विनियोग :- **ॐ अस्य तारा (उग्रतारा, एकजटा अथवा नील सरस्वती) मन्त्रस्य अक्षोभ्य ऋषिः, वृहती छन्दः, श्रीमदुग्रतारा (एक जटा अथवा नील सरस्वती) देवता, 'हूं' बीजं, 'फट्' शक्तिः, 'ॐ ह्रीं स्त्रीं' कीलकं (अथवा ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, स्त्रीं कीलकं) मम द्रुत कवित्वं पाण्डित्य सिद्धयर्थे (चतुर्वर्ग फल सिद्धयर्थे वा) जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यास :- **अक्षोभ्य ऋषये नमः** (शिरसि)। **वृहती छन्दसे नमः** (मुखे)। **श्रीमदुग्रतारायै नमः** (हृदि)। **हूं बीजाय नमः** (मूलाधारे)। **फट् शक्त्यै नमः** (पादयोः)। **ॐ ह्रीं स्त्रीं (एकजटा पक्ष में 'ह्रीं स्त्रीं' तथा नील सरस्वती पक्ष में 'स्त्रीं') कीलकाय नमः** (सर्वाङ्गे)। **पुनः मम द्रुत कवित्वं पाण्डित्य सिद्धयर्थे (अथवा चतुर्वर्गफल सिद्धयर्थे) विनियोगाय नमः** (सर्वाङ्गे) **व्यापकं न्यसेत्।** इसके पश्चात् मातृका न्यास करें।

।। मातृका न्यासः।।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमः - हृदि। **एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः** - दक्ष भुजे। **ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः** - वाम भुजे। **णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः** - दक्षिण पादे। **मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः** - वाम पादे।

।। कर-षडङ्ग न्यासः।।

तारा (उग्रतारा) पक्ष में -

ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।	**हृदयाय नमः।**
ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।	**शिरसे स्वाहा।**
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्।	**शिखायै वषट्।**
ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुम्।	**कवचाय हुम्।**
ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	**अस्त्राय फट्।**

एकजटा पक्ष में -

ह्रां एकजटायै अंगुष्ठाभ्यां नमः।	**हृदयाय नमः।**
ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा।	**शिरसे स्वाहा।**
ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्।	**शिखायै वषट्।**

ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुम्।	कवचाय हुम्।
ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रः पिङ्गोग्रैक जटे करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्।

नील सरस्वती पक्ष में -

ह्रां अखिल वाग्रूपिण्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः।
ह्रीं अखण्ड वाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा।	शिरसे स्वाहा।
ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट्।	शिखायै वषट्।
ह्रैं विष्णु वाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हुम्।	कवचाय हुम्।
ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्।

इसके पश्चात् सम्यक फलार्थी को तारा षोढा न्यास करना चाहिए।

(तारा पूजन प्रकरण में अन्तबर्हिर्मातृका-न्यास, मन्त्र वर्ण न्यास, पीठ-न्यास आदि का उल्लेख न होने के कारण इसे करंने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु कुछ ग्रन्थों में इनका विधान दिया गया है। अतः यहाँ उनका भी उल्लेख कर दिया गया है, साधक की इच्छा है, करे अथवा न करे।)

॥ अन्तबर्हिर्मातृका-न्यासः॥

साधक काली प्रकरण में वर्णित विधि के अनुसार (स्वेच्छा से) इन न्यासों को करके फिर **'तारा-षोढा न्यास'** करें।

॥ तारा-षोढा न्यासः॥

इस न्यास में प्रथम रुद्र न्यास (श्रीकण्ठादि न्यास), द्वितीय ग्रह न्यास, तृतीय लोकपाल न्यास, चतुर्थ शिव-शक्ति न्यास, पञ्चम तारादि न्यास तथा षष्ठ पीठ न्यास किया जाता है। इसके संयुक्त रूप को ही तारा-षोढा न्यास कहा जाता है। न्यास से पहले ध्यान करें। यथा -

नीलवर्णा त्रिनयनां शवासनसमायुताम्,
विभ्रतीं विविधां भूषां मौलावक्षोभ्यशोभिताम्।
एवं ध्यात्वा तारणीन्तु समाहितमनश्चिराम्।
(षोढा-न्यासं समाचरेत् सर्वकामार्थसिद्धये)॥

देवी का (शरीर) वर्ण नीला है। उनके तीन नेत्र हैं। विभिन्न प्रकार के आभूषण शरीर पर धारण किये हुए हैं। शिर पर जटा के मध्य अक्षोभ्य नाग शोभित है तथा वे (शिव रूप) शवासन पर स्थित हैं।

॥रुद्र-न्यास॥

ह्रीं स्त्रीं हूं अं श्रीकण्ठेशाय नमः	मस्तके
३ आं अनन्तेशाय नमः	मुखवृत्ते
३ इं सूक्ष्मेशाय नमः	दक्षनेत्रे
३ ई त्रिमूर्तीशाय नमः	वामनेत्रे
३ उं अमरेशाय नमः	दक्षकर्णे
३ ऊं अर्घीशाय नमः	वामकर्णे
३ ऋं भावभूतीशेशाय नमः	दक्षनासायां
३ ॠं तिथीशेशाय नमः	वामनासायां
३ लृं स्थाण्वीशाय नमः	दक्ष गण्डे
३ ॡं हरेशाय नमः	वामगण्डे
३ एं झिण्टीशेशाय नमः	ऊर्ध्वोष्ठे
३ ऐं भौतिकेशाय नमः	अधरोष्ठे
३ ओं सद्योजातेशाय नमः	ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
३ औं अनुग्रहेशाय नमः	अधोदन्तपंक्तौ
३ अं अक्रूरेशाय नमः	शिरसि
३ अः महासेनेशाय नमः	मुखमध्ये
३ कं क्रोधीशाय नमः	दक्षस्कन्धे
३ खं चण्डेशेशाय नमः	दक्ष कूर्परे
३ गं पञ्चान्तकेशाय नमः	मणिबन्धे
३ घं शिवोत्तमेशाय नमः	करांगुलिमूले
३ ङं एकरुद्रेशाय नमः	करांगुल्यग्रे
३ चं कूर्मेशाय नमः	वामस्कन्धे
३ छं एकनेत्रेशाय नमः	वाम कूर्पर
३ जं चतुराननेशाय नमः	मणिबन्धे
३ झं अजेशाय नमः	करांगुलिमूले
३ ञं शर्वेशाय नमः	करांगुल्यग्रे
३ टं सोमेशाय नमः	दक्षोरुमूले
३ ठं लांगुलीशाय नमः	दक्षजानुनि
३ डं दारुकेशाय नमः	दक्ष गुल्फे
३ ढं अर्धनारीशेशाय नमः	पादांगुलिमूले
३ णं उमाकान्तेशाय नमः	पादांगुल्यग्रे
३ तं आषाढीशाय नमः	वामोरुमूले
३ थं दण्डेशाय नमः	वाम जानुनि
३ दं अद्रीशाय नमः	गुल्फे
३ धं मीनेशाय नमः	पादांगुलिमूले
३ नं मेषेशाय नमः	पादांगुल्यग्रे
३ पं लोहितेशाय नमः	दक्ष पार्श्वे
३ फं शिखीशाय नमः	वाम पार्श्वे
३ बं छगलण्डेशाय नमः	पृष्ठे
३ भं द्विरण्डेशाय नमः	नाभौ
३ मं महाकालेशाय नमः	जठरे
३ यं बालीशाय नमः	हृदये
३ रं भुजङ्गेशाय नमः	दक्षांसे
३ लं पिनाकीशाय नमः	ककुदि
३ वं खड्गीशाय नमः	वामांसे
३ शं बकेशाय नमः	हृदयादि दक्षकरान्तम्
३ षं श्वेतेशाय नमः	हृदयादि वामाकरान्तम्
३ सं भृंगीशाय नमः	हृदयादि दक्षपादाग्रान्तम्
३ हं नकुलीशाय नमः	हृदयादि वामपादाग्रान्तम्
३ ळं शिवेशाय नमः	हृदयादि नाभ्यन्तम्
३ क्षं संवर्तकेशाय नमः	हृदयादि शिरोन्तम्

॥ग्रह-न्यासः॥

हृदय में रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं अं आं इं ई उं ऊं ऋं ॠं लृ ॡं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्याय नमः।

भ्रूमध्य में शुक्लवर्ण चन्द्र का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं यं रं लं वं सोमाय नमः।

नेत्रत्रय में लालवर्ण मंगल का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः।

हृदय (वक्ष) मण्डल में श्यामवर्ण बुध का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः।

कण्ठकूप में पीतवर्ण बृहस्पति का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः।

गले (घण्टिका) में पाण्डुर शुक्र का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः।

नाभि देश में नीलवर्ण शनि का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं पं फं बं भं मं शनैश्चराय नमः।

मुख में धूम्रवर्ण राहु का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं शं षं सं हं राहवे नमः।

गुदादेश में धूम्रवर्ण केतु का ध्यान करके-

ह्रीं स्त्रीं हूं ळं क्षं केतवे नमः।

इति ग्रह-न्यासः।

।। लोकपाल-न्यासः।।

ह्रीं स्त्रीं हूं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं	इन्द्राय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के पूर्व में
ह्रीं स्त्रीं हूं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः	अग्नये नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के आग्नेय में
ह्रीं स्त्रीं हूं कं खं गं घं ङं	यमाय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के दक्षिण में
ह्रीं स्त्रीं हूं चं छं जं झं ञं	निर्ऋत्ये नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के नैर्ऋत्य में
ह्रीं स्त्रीं हूं टं ठं डं ढं णं	वरुणाय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक)के पश्चिम में
ह्रीं स्त्रीं हूं तं थं दं धं नं	वायवे नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के वायव्य में
ह्रीं स्त्रीं हूं पं फं बं भं मं	कुबेराय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के उत्तर में
ह्रीं स्त्रीं हूं यं रं लं वं	ईशानाय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के ईशान में
ह्रीं स्त्रीं हूं शं षं सं हं	अनन्ताय नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के अधोभाग में
ह्रीं स्त्रीं हूं ळं क्षं	ब्रह्मणे नमः।	मूर्धा (शिर-मस्तक) के ऊर्ध्व में

इति लोकपाल न्यासः।

।। शिव-शक्ति-न्यासः।।

ह्रीं स्त्रीं हूं वं शं षं सं डाकिनी सहित ब्रह्मणे नमः। मूलाधारे।

ह्रीं स्त्रीं हूं बं भं मं यं रं लं काकिनी सहित विष्णवे नमः। स्वाधिष्ठाने।

ह्रीं स्त्रीं हूं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनी सहित रुद्राय नमः। मणिपूरके।

ह्रीं स्त्रीं हूं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनी सहित ईश्वराय नमः। अनाहते।

ह्रीं स्त्रीं हूं अं आं इं ईं.... अं अः शाकिनी सहित सदाशिवाय नमः। विशुद्धे।

ह्रीं स्त्रीं हूं ळं क्षं हाकिनी सहित पर शिवाय नमः। आज्ञायाम्।

इति शिव-शक्ति न्यासः।

॥ तारादि-न्यासः॥

ह्रीं स्त्रीं हूं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः।	ब्रह्मरन्ध्रे।
ह्रीं स्त्रीं हूं इं ईं चं छं जं झ ञं उग्रायै नमः।	ललाटे।
ह्रीं स्त्रीं हूं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायै नमः।	भ्रूमध्ये।
ह्रीं स्त्रीं हूं ऋं ॠं तं थं दं धं नं वज्रायै नमः।	कण्ठगह्वरे।
ह्रीं स्त्रीं हूं लृं ॡं पं फं बं भं मं नीलायै नमः।	हृदये।
ह्रीं स्त्रीं हूं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः।	नाभौ
ह्रीं स्त्रीं हूं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः।	लिङ्गमूले।
ह्रीं स्त्रीं हूं अं अः ळं क्षं भद्रकाल्यै नमः।	मूलाधारे।

इति तारादि न्यासः।

॥ पीठ-न्यासः॥

ह्रीं स्त्रीं हूं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूप पीठाय नमः।	मूलाधारे।
ह्रीं स्त्रीं हूं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः जालन्धर पीठाय नमः।	हृदये।
ह्रीं स्त्रीं हूं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरि पीठाय नमः।	ललाटे।
ह्रीं स्त्रीं हूं चं छं जं झं ञं उड्डीयान पीठाय नमः।	ललाटोर्ध्वे।
ह्रीं स्त्रीं हूं टं ठं डं ढं णं वाराणसी पीठाय नमः।	भ्रूमध्ये।
ह्रीं स्त्रीं हूं तं थं दं धं नं अवन्तिका पीठाय नमः।	लोचनत्रये।
ह्रीं स्त्रीं हूं पं फं बं भं मं मायापुरी पीठाय नमः।	मुखवृत्ते।
ह्रीं स्त्रीं हूं यं रं लं वं मधुपुरी (मथुरा) पीठाय नमः।	कण्ठे।
ह्रीं स्त्रीं हूं शं षं सं हं अयोध्या पीठाय नमः।	नाभौ।
ह्रीं स्त्रीं हूं ळं क्षं काञ्चीपुरी पीठाय नमः।	कट्याम्।

इति पीठ न्यासः।

॥ कालीतन्त्रोक्त षोढा न्यासः॥

इस न्यास में छः प्रकार से मातृका न्यास किया जाता है। सामान्यतः बहिर्न्यास सृष्टि-स्थित-संहार क्रम से किया जाता है। परन्तु शास्त्र का आदेश है कि यति (सन्यासी-भिक्षुक) तथा पत्नी रहित वानप्रस्थी संहारान्त, गृहस्थ (पत्नी युक्त वानप्रस्थी भी) स्थित्यन्त तथा ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) सृष्ट्यन्त न्यास करें। न्यास तीनों करना अनिवार्य है। अतः इनके करने का क्रम इस प्रकार होगा –

यति का क्रम - सृष्टि-स्थिति-संहार। **गृहस्थ क्रम** - संहार-सृष्टि-स्थिति। **ब्रह्मचारी का क्रम** - स्थिति-संहार-सृष्टि।

इस काली तन्त्रोक्त षोढा न्यास में तारा के मूलमन्त्र द्वारा मातृका वर्णों को क्रमशः सम्पुटित करके पहले अनुलोम क्रम से तीनों न्यास किये जायेंगे फिर विलोम क्रम से तीनों न्यास करने होंगे। इस प्रकार की न्यास प्रक्रिया में क्रम निम्न रुप से होगा।

यति क्रम - पहले सृष्टि-स्थित-संहार पुनः स्थिति-सृष्टि-संहार न्यास।

गृहस्थ क्रम - पहले सामान्य रूप से सृष्टि-स्थिति-संहार फिर सृष्टि-संहार-स्थिति।

ब्रह्मचारी क्रम - इसमें भी पहले पूर्ववत् सृष्टि-स्थिति-संहार फिर संहार-स्थिति-सृष्टि।

मूलं अं मूलं नमः, मूलं आं मूलं नमः इत्यादि रूप से **मूलं क्षं मूलं नमः** तक सभी मातृका वर्णों को सम्पुटित करके यथास्थान स्पर्श करते हुए न्यास किये जायेंगे।

विशेषतः एक नियम और भी है। सृष्टि न्यास में मातृका वर्ण विसर्ग युक्त **(यथा - अः, आः, इः, ईः इत्यादि रूप)**, स्थिति न्यास के समय बिन्दु तथा विसर्ग दोनों से युक्त **(यथा-अंः, आंः, इंः, ईंः इत्यादि रूप)** तथा संहार न्यास में केवल बिन्दु युक्त **(यथा अं, आं, इं, ईं इत्यादि रूप)** होते हैं। साधक चाहे तो केवल बिन्दु युक्त मातृका वर्णों से भी सभी न्यास कर सकता है।

॥ गुह्य षोढा न्यासः॥

इस षोढा न्यास में प्रणव, माया बीज, वधू बीज, कूर्च बीज, अस्त्र मन्त्र तथा मूल मन्त्र को मातृका के प्रत्येक वर्णों से सम्पुटित कर तथा वर्णों को इन बीजों से सम्पुटित करके न्यास किया जाता है। यथा-

पहले **अं ॐ अं नमः, आं ॐ आं नमः** इत्यादि रूप से प्रणव को सम्पुटित कर न्यास करें। फिर **ॐ अं ॐ नमः, ॐ आं ॐ नमः** इत्यादि रूप से वर्ण सम्पुटित न्यास करें।

इसी प्रकार **'ह्रीं', 'स्त्रीं', 'हूँ', 'फट्'** तथा **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्'** को क्रमशः मातृका वर्णों से सम्पुटित कर पुनः क्रमशः इन बीजों से मातृका वर्णों को सम्पुटित करके न्यास करें।

इस षोढा न्यास के करने से देवी-पूजा न करने से लगने वाला प्रत्यवाय (दोष) साधक को नहीं लगता। अर्थात् इस न्यास को करने वाला साधक इच्छानुसार देवी का पूजन जप करें अथवा न करें। इस प्रकरण में साधक पूर्वोक्त काली तन्त्रोक्त षोढा न्यास करे अथवा इस गुह्य षोढान्यास को करे।

सम्पूर्ण षोढा न्यास करने के बाद मूल मन्त्र द्वारा 'शिर से पैर तक', 'पैर से शिर तक' तथा 'हृदय से मुख तक', तीन बार व्यापक न्यास करे अथवा प्रणव पुटित मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे।

॥योनि-न्यासः॥

तत्व मुद्रा से - **ॐ योनिविद्यायै नमः** (मूर्धा पर)। **ॐ योनि नित्यायै नमः** (मुख में)। **ॐ योनिरूपायै नमः** (कण्ठ में)। **ॐ योनिमध्यायै नमः** (हृदय पर)। **ॐ योनि सिद्धायै नमः** (उदर में)। **ॐ योनिक्लृप्तायै नमः** (नाभि में)। **ॐ योनिदायै नमः** (मूलाधार पद्म में)। ॐ **योनिहायै नमः** (दक्ष पाद में)। **ॐ योनि साध्यायै नमः** (वाम पाद में)। **ॐ योनिज्ञानायै नमः** (दक्ष बाहु में)। **ॐ योनिपायै नमः** (वाम बाहु में)। **ॐ योनिपुण्यायै नमः** (सर्वाङ्गे-व्यापक)।

॥ बीज (मन्त्र) न्यासः॥

मन्त्र के पाँच खण्ड करके प्रत्येक खण्ड के पश्चात् **'नमः'** लगाकर न्यास करें। यदि मन्त्र **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'** है तो निम्नवत् न्यास करेंगें।

ब्रह्मरन्ध्र से ललाट (मस्तक) पर्यन्त - **ॐ नमः**। ललाट से मुख तक - **ह्रीं नमः**। मुख से कण्ठ तक - **स्त्रीं नमः**। कण्ठ से हृदय तक - **हूं नमः**। हृदय से मुख तक - **फट् नमः**। यदि मन्त्र के पाँच खण्ड न हो सकें तो जितने खण्ड हो सकें उतने से न्यास करके शेष स्थानों पर पूर्ण मन्त्र से न्यास करे अथवा सभी न्यास पूर्ण मन्त्र से करें।

॥तत्व-न्यासः॥

मूल मन्त्र के तीन खण्ड करके (यदि तीन खण्ड न हो सके तो पूरे मन्त्र से) - प्रथम खण्ड बोलकर - **ॐ आत्म तत्वाय नमः**, (पैरों से नाभिपर्यन्त)। द्वितीय खण्ड - **ॐ विद्या तत्वाय नमः** (नाभि से हृदय पर्यन्त)। तृतीय खण्ड - **ॐ शिव तत्वाय नमः** (हृदय से शिर पर्यन्त) न्यास करें।

॥पीठ-न्यासः॥

हृदय पर दायाँ हाथ रखकर तत्व मुद्रा से हृत्पद्म-कर्णिका के ऊपर न्यास करें। यथा - **ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ नानालङ्कारेभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थि मोदमान शिवाभ्यो नमः। ॐ शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः** (चतुर्दिक्षुकल्पना करके)। तत्पश्चात् -

हृत्-पद्म में देवी की कल्पना कर उनके आगे के दल से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्त पीठ-शक्तियों का न्यास करें। यथा -

ॐ लक्ष्म्यै नमः। ॐ सरस्वत्यै नमः। ॐ रत्यै नमः। ॐ प्रीत्यै नमः। ॐ कीर्त्यै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ पुष्ट्यै नमः तथा ॐ तुष्ट्यै नमः।

कर्णिका में - **ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।**

इस पीठ न्यास को साधक **'काली-प्रकरण'** में वर्णित विधि से भी कर सकता है। इस प्रकार सभी न्यासों को करके स्वशरीर को मन्त्रमय तथा देवता के पीठ रूप में कल्पना करके स्वयं की **'कामकला'** रूप में (काली प्रकरणवत्) भावना करें। तत्पश्चात् मूलाधार से परम शिव (ब्रह्मरन्ध्र) पर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान कर, उसे वहाँ स्थित अमृत से सम्प्लावित कर कच्छप मुद्रा से पुष्प ग्रहण कर सुषुम्ना के बाहर स्थित हृदयस्थ रक्त-अष्ट-दल-पद्म के मध्य देवी का ध्यान (पूर्ववत्) करके **'काली-प्रकरणवत्' 'मानस-पूजन'** करे।

'मानस-पूजन' के पश्चात् **'मानस-जप-तर्पण-हवन'** आदि का वर्णन प्रायः पद्धति ग्रन्थों में नहीं दिया गया है, परन्तु यदि साधक चाहे तो इसे कर सकता है। इसके पश्चात् **'कलश-स्थापन'** फिर **विशेषार्घ्य (महाशंख-कपाल)-श्रीपात्र-स्थापन'** 'काली-प्रकरण' में वर्णित विधि से करे। कुछ ग्रन्थों में **'कलश-स्थापन'** का निर्देश नहीं है, परन्तु इस स्थिति में **'द्रव्य-शुद्धि'** के समय ही घट में कारण की शुद्धि करनी होगी तथा इसे ही विशेषार्घ्य-पात्र में डालना होगा साथ ही विशेषार्घ्य द्रव्य में अन्य क्रियाओं के सहित प्रणव-कलाओं का भी पूजन करना होगा।

विशेषार्घ्य-स्थापन के बाद **'गुरु-पात्रादि-स्थापन'** से लेकर **'पञ्च-बलि-प्रदान'** तक की क्रियायें **'काली-प्रकरणवत्'** ही करें। केवल **'दिव्यौघादि'** गुरुओं के नामों तथा देवता के नामों में ही यथास्थिति परिर्वतन करना आवश्यक होगा।

॥यन्त्रे पीठ पूजनम्॥

पीठ के पूर्व द्वार पर - **ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः।** दक्षिण द्वार पर - **ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः।** पश्चिम द्वार पर - **ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः।** उत्तर द्वार पर - **ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः।** इसके बाद पीठ के मध्य में क्रमशः ऊपर-ऊपर कल्पना करते हुए - **ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः।** उसके (कल्पवृक्ष के) मूल में - **ॐ मणि पीठाय नमः।**

ॐ नाना मणिभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थिमोदमान शिवाभ्यो नमः। चारों दिशाओं में- **ॐ शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः।**

इसके बाद अष्ट दलों पर पूर्वादि क्रम (देवी के आगे) से - **ॐ लक्ष्म्यै नमः। ॐ सरस्वत्यै नमः। ॐ रत्यै नमः। ॐ प्रीत्यै नमः। ॐ कीर्त्यै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ तुष्ट्यै नमः। ॐ पुष्ट्यै नमः।** कर्णिका में - **ह्सौः सदाशिव महाप्रेतपद्मासनाय नमः।**

॥देव्या आवाहनम्॥

तदुपरान्त पुष्प लेकर पूर्व वर्णित ध्यान के श्लोकों को पढ़ते हुए तद्नुसार हृदय में देवता का चिन्तन कर, उस पुष्प को अपने शिर पर रखकर, नैवेद्य रहित मानसोपचारों द्वारा देवता का पूजन करे। इसके बाद लाल चन्दन (वज्र पुष्पादि), बिल्वपत्र, जपा, करवीर तथा अपराजित पुष्पों से युक्त पुष्पाञ्जलि बनाकर, स्वयं (आत्मा) के साथ देवी के अभेदत्व की कल्पना करके (निम्न रूप से) उसका ध्यान करे।

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा,
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटाग्रनागैर्युता,
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥

थोड़ा सङ्कुचित कर दाहिने चरण को शव के हृदय पर तथा वाम चरण को प्रसारित करके शव के दोनों पैरों पर (घुटनों से नीचे तथा चरणों से थोड़ा ऊपर) स्थापित किये हुए प्रत्यालीढ अवस्था में स्थित, घोर (तीव्र भयंकर) अट्टहास करने वाली, दक्षिण-वाम ऊर्ध्व भुजाओं में खड्ग तथा नील कमल एवं दक्षिण-वाम अधः भुजाओं में खप्पर (कपाल) तथा कर्त्रिका धारण की हुई, जिसकी विशालपिङ्गल जटा समूहों का अग्र भाग नील वर्ण नागों से संयुक्त (आबद्ध) है तथा जिसकी उत्पत्ति हूङ्कार (हूं) बीज से हुई है, वह छोटे (नाटे) शरीर वाली भगवती तारा तीनों जगत की जड़ता को कपाल (हस्तगत) में रखकर स्वयं (उसका) विनाश करती है अर्थात् प्रलय काल में निष्क्रिय पड़े हुए जीव-जगत को पुनः सृष्टि रूप में सक्रिय करती है।

उपर्युक्त देवी के स्वरूपवत् स्वयं की भावना कर पूर्वोक्त सूर्य की किरणों के समान अरुण हस्तगत पुष्पाञ्जलि में पीठ पर स्थापित यन्त्र की कल्पना कर मूल मन्त्र रूपिणी, तेजोमयी तथा शुद्ध ज्ञान चैतन्य (सद्-चित्त) स्वरूपिणी देवी

को षट्-चक्र भेदन प्रक्रिया द्वारा हृदय से शिरस्थ सहस्रदल कमल कर्णिका के मध्य लाकर, वहाँ स्थित परमशिव से उसे संयुक्त कर, परस्पर सङ्गमोद्भूत अमृतसिन्धु में कुछ पल विश्राम कराकर (शान्त चित्त स्थित रह कर) उस अमृत भोग से चञ्चल हुई चिदानन्द रूपिणी उस देवी को सुषुम्ना मार्ग द्वारा वायु सञ्चारित नासिका छिद्र से उस पुष्पाञ्जलि में लाकर, मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसमें देवी मूर्ति की कल्पना कर सम्मुख स्थित यन्त्र पर उसे (पुष्पाञ्जलि को) स्थापित करके देवी का आवाहन करे। यथा-

ॐ देवेशि! भक्ति सुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥

उपर्युक्त मन्त्र बोलकर साधक तारा के स्व-उपास्य नाम के द्वारा आवाहन करे। यथा-(वर्तमान प्रकरण में) **ॐ श्रीमदेकजटे इहावहावह (इह आवह आहव)** द्वारा आवाहन, **'इह तिष्ठ-तिष्ठ'** द्वारा स्थापन, **'इह सन्न्धिेहि सन्निधेहि'** द्वारा सन्निधापन, **'इह सन्निरुध्यस्व सन्निरुध्यस्व'** द्वारा सन्निरोधन तथा **'अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण'** द्वारा सम्मुखी करण करे। आवाहन आदि प्रत्येक क्रिया के साथ क्रमशः आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन तथा सम्मुखीकरण मुद्राओं का प्रदर्शन भी करना चाहिए। आवाहन की भाँति प्रत्येक मन्त्र के साथ **'ॐ श्रीमदेकजटे'** का भी साधक प्रयोग कर सकता है। इसके बाद देवता के शरीर में षडङ्ग न्यास द्वारा (पूर्ववत् **ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः इत्यादि रूप से** नील सरस्वती यंत्र पर आवाहन पूजन होने की स्थिति में **''ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः'' इत्यादि रूप से)** सकलीकरण करें।

इसके बाद अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शन सहित **'हुं'** से अवगुण्ठन, धेनुमुद्रा सहित **'वं'** से अमृतीकरण तथा **महामुद्रा** (दोनों अंगूठे परस्पर ग्रथित तथा दोनों हाथ की शेष सभी अंगुलियाँ आगे की ओर फैली हुई) प्रदर्शन कर आयुध -आभरणादि से युक्त **'पूर्वीकरण रूप'** परमीकरण करें। तत्पश्चात् **एं, ह्रीं, ऐं, स्त्रीं** तथा **हूं** बीजों का क्रमशः उच्चारण करते हुए क्रमिक रूप से इनके साथ ही **'योनि, भूतिनी, बीजदानव, धूमकेतु** तथा **लेलिहान'** मुद्रा का प्रदर्शन करें।

॥प्राण-प्रतिष्ठा॥

इसके बाद लेलिहान मुद्रा से (कल्पित मूर्ति का हृदय-यन्त्रस्थ पुष्पराशि के मध्य भाग को स्पर्श करते हुए बोलें -

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं मूलान्ते श्रीमदेक जटायाः प्राणा इह इह स्थिताः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं मूलान्ते श्री मदेकजटायाः जीव इह-इह।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं मूलान्ते श्री मदेकजटायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राण प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इस प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र का तीन बार जप कर देवता की मूर्ति में ऋष्यादि कर-षडङ्ग न्यास करके, देवता के सम्मुख **‘खड्ग’**, **‘मुण्ड’** , **‘वर’** तथा **‘अभय’** मुद्राओं का प्रदर्शन करके **‘योनिमुद्रा’** से प्रणाम करें। तत्पश्चात् - **‘देवि श्रीमदेकजटे! स्वागतं, कुशलं, इदमासनं आस्यताम्’** बोलकर आसन हेतु पद्म मुद्रा से यन्त्र पर पुष्प अर्पित करें। इसके बाद देवता का षोडशोपचार अथवा पञ्चोपचार से पूजन करें।

॥ देव्यर्चनम्॥

प्रत्येक उपचार के समर्पण में पहले मूलमन्त्र बोलें फिर **‘श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा’** बोलकर **‘एतत्पाद्यं श्रीमदेकजटायै नमः’** (उपचारानुसार पाद्य-अर्घ्य आदि का प्रयोग करते हुए) बोलें। यथा -

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, इदमासनं श्रीमदेकजटायै नमः।

आसन के लिए देवी के वाम भाग में पुष्पाञ्जलि समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एतत्पाद्यं श्रीमदेकजटायै नमः।

देवी के पैरों पर (भावना करते हुए) पाद्य समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, इदमर्घ्यं श्रीमदेकजटायै स्वाहा।

देवी के शिर पर अर्घ्य समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, इदमाचनीयं श्रीमदेकजटायै स्वधा।

देवी के मुख में आचमन समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एषःमधुपर्कः श्रीमदेकजटायै स्वधा।

पूर्ववत् मुख में मधुपर्क समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, पुनराचमनीयं श्रीमदेकजटायै स्वधा।

पूर्ववत् मुख में पुनः आचमन समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एष गन्धः श्रीमदेकजटायै नमः।

चन्दन समर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एतानि पुष्पाणि श्रीमदेकजटायै वौषट्।

मूलमन्त्र से पाँच बार पुष्पाञ्जलि दें।

पाद्यम् - पाद्य के लिए गृहीत जल में श्यामाक (सांवा), दूर्वा, कमल

तथा विष्णुक्रान्ता डालें।

अर्घ्यम् - अर्घ्य के जल में गन्ध-पुष्प-अक्षत, यव (जौ), कुशाग्र (खण्ड), तिल, पीली सरसो तथा दूर्वाखण्ड छोड़ें।

मधुपर्कम् - शहद, शकर, गोघृत, दही तथा दूध से (कुछ जल मिलाकर) मधुपर्क तैयार करें। इसमें शहद सबसे अधिक, शकर-दही-घी समान मात्रा में तथा दूध सबसे कम मात्रा में लेना चाहिए।

गन्धम् - (तारार्णव के अनुसार) गोरोचन, कपि (बाला अथवा गोठिमन) केशर, जटामांसी, तगरु, श्वेत रक्त-चन्दन तथा चोर (शठी) इन आठ पदार्थों से निर्मित गन्ध तारा को प्रिय है।

इसके बाद **'ॐ जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा'** से घण्टे का पूजन कर उसे बायें हाथ से बजाते हुए नीचे की ओर 'धूप' तथा ऊपर की ओर नेत्रों के सामने दिखाते हुए 'दीप' निवेदित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एष धूपः श्रीमदेकजटायै नमः। (धूप)

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, एष दीपः श्रीमदेकजटायै नमः। (दीप)

[फेतकरिणी तन्त्र (पटल ११) के अनुसार तारा-पूजन के मन्त्र में **'हुं फट्'** के प्रयोग का निर्देश नहीं है।

श्रीमदेकजटे चैव वज्रपुष्पमित्यभिधाय च।
मूलेनाग्निप्रियान्तेन सतारेण यजेत् पुनः। (१०१/१०२)
श्रीमदेकजटेत्युक्वा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ तु।
तारादिवह्निजायान्तमुदीर्य यजनं चरेत॥ (११०)

'ताराभक्ति-सुधार्णव' के अनुसार भी, जैसा कि निम्न श्लोक है, अङ्ग देवताओं के पूजन में 'हुं फट्' के प्रयोग का निर्देश नहीं प्राप्त होता है।

प्रणवं पूर्ववर्णं च तन्नामपदमेव च। वज्रपुष्पं प्रतीच्छोक्त्वा द्विठान्तमपुमुद्धरेत॥

परन्तु भैरवी तन्त्र का वचन है -

वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हुं फट् स्वाहेति मन्त्रतः।
एतन्मन्त्रे नाममात्रं भिन्नं चैवं न संशयः।
अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत्॥

साधक (पाठक) को (अन्य ग्रन्थों के आधार पर) किसी प्रकार का भ्रम न रहे, इसलिए यहाँ इसका उल्लेख किया गया है। वैसे (दीक्षित) साधक यथारुचि (अपनी परम्परानुसार) मन्त्रों का प्रयोग करे।]

उपर्युक्त उपचारों का निवेदन 'तारिणी निर्णय' तथा श्री विद्याधराचार्य द्वारा सम्मत पुष्प तथा गन्ध समर्पण से सम्बन्धित वचनों द्वारा भी कर सकते हैं। यथा -

ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा, पाद्यं नमः। इस मन्त्र से पाद्य अर्पित करें।

ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। अर्घ्य अर्पित करें।

ॐ तारिणीं ह्रीं इदमाचनीयं स्वधा। आचमन के लिए जल दें।

ॐ ह्रीं कपालिके मधुपर्कः स्वधा। मधुपर्क समर्पित करें।

श्रीमदेकजटे इदमाचनीयं सुगन्धि जलं नमः।

आचमन के लिए सुगन्धित जल दें।

ॐ परमानन्द सौरभ्यपरिपूर्ण दिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि॥
श्रीमदेकजटे एष गन्धो नमः। चन्दन अर्पित करें।

ॐ तुरीय वन सम्भूतं नानागुणमनोहरम्। आनन्द सौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि॥
श्रीमदेकजटे एतानि पुष्पाणि वौषट्। पुष्पाञ्जलि दें।

ॐवनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। प्रियश्च सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां देवि॥
श्रीमदेकजटे एष धूपो नमः। धूप समर्पित करें।

ॐसुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सवाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
श्रीमदेकजटे एष दीपो नमः। दीप प्रदर्शित करें।

इसके बाद देवता के सम्मुख-दक्ष भाग में किसी यथोचित पात्र में नैवेद्य को रखकर तथा उसे '**फट्**' से प्रोक्षित कर, '**चक्रमुद्रा**' से चतुर्दिक रक्षित कर, योनिमुद्रा प्रदर्शन सहित मूल मन्त्र द्वारा आठ बार अभिमन्त्रित कर तथा धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके वामांगुष्ठ-अनामिका से नैवेद्य-पात्र को पकड़कर उसे (नैवेद्य) अर्पित करें।

मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा, नैवेद्यमिदं श्रीमदेकजटायै नमः।

तत्पश्चात् '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' मन्त्र से जल अर्पित करके बांये हाथ से '**ग्रासमुद्रा**' तथा दायें हाथ से '**प्राणादि**' पञ्चमुद्राओं का प्रदर्शन करें।

कुछ क्षण बाद '**पानार्थ जलं निवेदयामि, आचमनीयं निवेदयामि, ताम्बूलं निवेदयामि**' बोलते हुए उन-उन पदार्थों को अर्पित करें।

[पद्धति ग्रन्थों में प्रायः पाद्य-अर्घ्यादि सहित '**पञ्चोपचार पूजन**' का ही वर्णन प्राप्त होता है। यदि साधक की रुचि हो तो वह '**काली-पूजनवत्**' '**षोडशोपचार-पूजन**' उपर्युक्त मन्त्रानुसार ('**मूलं श्रीमदेकजटे.......स्वाहा**'

का प्रयोग करते हुए) सभी उपचारों को अर्पित करते हुए कर सकता है। इसके पश्चात् तारा के शिव **'अक्षोभ्य'** का भी ध्यान करके पूजन करना चाहिए।

॥ अक्षोभ्य ध्यानं पूजनञ्च॥

सहस्रादित्यसङ्काशं नागरूपधरं शुभम्। विद्युतकोटिसमं वक्त्रं वह्निभं रक्तलोचनम्।
सार्धत्रिवलयोपेतं जटाकोटीरसंस्थितम्। महालावण्य संयुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्॥

इस प्रकार ध्यान करके **'मेरु-तन्त्र'** में कथित पूजन मन्त्र **'अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा'** द्वारा पञ्चोपचार पूजन करें। यथा -

अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा - एष गन्धो अक्षोभ्याय नमः।

इसी प्रकार **इदं पुष्पं** (अथवा **एतानि पुष्पाणि**), **एष धूपो, एष दीपो, इदं नैवेद्यं** तथा **इदं ताम्बूलं** रूप से उपचारों को उपर्युक्त मन्त्र का संयोजन करके अर्पित करें।

इसके पश्चात् अष्टाक्षर मन्त्र **'ॐ स्त्रीं आं अक्षोभ्य स्वाहा'** का न्यूनतम दश बार जप कर, उसे समर्पित करके **'योनिमुद्रा'** से प्रणाम करें।]

तत्पश्चात् देवी के शिर, हृदय, मूलाधार, पाद तथा सर्वाङ्गो पर भावना द्वारा एक-एक बार (कुल पाँच बार) पुष्पाञ्जलि अर्पित करें। तदुपरान्त श्रीपात्र (कपाल) के अमृत से देवी का तीन बार तर्पण करके योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

॥आवरण-पूजनम्॥

हाथों मे पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर, देवी से श्रीचक्र (यन्त्र) में स्थित उनके आवरण (अंग-परिवार) देवताओं के पूजन हेतु आज्ञा प्राप्त करते हुए उसे देवी के चरणों में (यन्त्र पर) अर्पित कर दें।

ॐ संविन्मये परे देवि! परामृतरसप्रिये।
अनुज्ञां देह्येकजटे परिवारार्चनाय ते (मे)॥

इस उपर्युक्त मन्त्र को बोलकर, देवी के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित कर तथा स्वयं को आज्ञा-प्राप्त हुआ मानकर यथा स्थान आवरण देवताओं का ध्यान करके **'गन्धपुष्पाक्षतादि'** द्वारा उनका पूजन करें।

[पूजन के समय पूज्य तथा पूजक के मध्य सदैव पूर्व दिशा की कल्पना की जाती है। इस प्रकार यंत्रस्थ देवता को पूर्वमुख मानने पर उसके सम्मुख यन्त्र की पूर्व दिशा, पीछे पश्चिम दिशा, देवता के दक्ष भाग में दक्षिण तथा वाम भाग में उत्तर दिशा की कल्पना यन्त्र पर की जायेगी।]

प्रथमावरण पूजनम्

सर्वप्रथम **'ॐ प्रथमावरण देवताभ्यो नमः'** से यन्त्र के मध्य केशरों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करें। तत्पश्चात् केशरों पर **अग्नि, ईशान, निर्ऋति, वायव्य, मध्य** (देवी के सामने) तथा **'चारों दिशाओं'** में षडङ्गों का पूजन करें।

एक जटा पक्ष में - **ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः** (अग्निकोण), **ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा** (ईशान), **ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्** (निर्ऋति), **ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं** (वायव्य), **ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्** (मध्य) तथा **ह्रः पिङ्गोग्रजटे अस्त्राय फट्** (चतुर्दिक्षु)।

नीलसरस्वती पक्ष में - **ह्राँ अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः**। इत्यादि रूप से षडङ्गों का पूजन करें। इसके पश्चात् 'काली-प्रकरण' में कथित रूप से षडङ्ग देवताओं का ध्यान करके उनके नामानुसार पृथक-पृथक पूजन उपर्युक्त (अग्नि-कोणादि) स्थानों पर करें। इन षडङ्ग-देवताओं के नाम क्रमशः **सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि-बोधसंज्ञिका, स्वतन्त्रता, नित्या** तथा **अलुप्त शक्ति** हैं। इनके सम्बोधन रूप नामों (**सर्वज्ञते, तृप्ते, अनादिबोध, संज्ञिके, स्वतन्त्रते, नित्ये** तथा **अलुप्त शक्ते**) से इनका पूजन किया जायेगा। यथा -

ॐ सं सर्वज्ञते, वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। इसी प्रकार अन्य का भी पूजन करें।

बिन्दु के मध्य में **'पुष्पबाण** तथा **धनुष'** धारण की हुई **'त्रिशक्तियों'** रति, प्रीति तथा प्रिया का पूजन करें। यथा - **ॐ रं रते वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा**। इसी प्रकार अन्य का भी पूजन करें।

इसके बाद बिन्दु पर ही (सम्मुख) पंक्ति रूप में पृथक-पृथक तीन मिथुनों **'गायत्री-ब्रह्मा', 'सावित्री-विष्णु'** तथा **'वागीश्वरी-रुद्र'** का आवाहन करके पूजन करें।

गां गायत्री-ब्रह्मन् (ब्रह्मणी), सां सावित्री-विष्णो (विष्णू) तथा **वां वागीश्वरी-रुद्र (रुद्रौ)** इनके पूर्व में **'ॐ'** तथा पश्चात् में **वज्रपुष्पं॰** इत्यादि संयोजित करके पूजन करें।

तदुपरान्त बिन्दु पर ही देवी के मौलि (शीर्ष) की भावना कर **'अक्षोभ्य'** का पूजन करें।

ॐ मूलं (अक्षोभ्य का मूल मन्त्र) **अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।**

समर्पणम् - **मूलं भगवत्येकजटे! अभीष्ट सिद्धिं मे देहि शरणागत वत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥** बोलते हुए बिन्दु पर पुष्पांजलि अर्पित करें। विशेषार्घ्य की एक-दो बूँदे यन्त्र (बिन्दु) पर छोड़कर बोलें - **एताः प्रथमावरण देवताः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सवाहनाः सशक्तयः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः।**

द्वितीयावरण पूजनम्

बिन्दु के बायी ओर **'वायव्य'** से **'ईशान'** पर्यन्त चार पंक्तियों की कल्पना करके प्रथम पंक्ति पर **'गुरु-चतुष्ट्य'** (गुरु-परम गुरु-परापर गुरु तथा परमेष्ठि गुरु) का पूजन, द्वितीय पंक्ति पर (प्रथम के बायीं ओर) **'मानवौघ'** गुरुओं का, उसके बायीं ओर तृतीय रेखा पर **'सिद्धौघ'** गुरुओं का तथा चौथी रेखा पर **'दिव्यौघ'** गुरुओं का पूजन करे। इन मानवौघादि गुरुओं के नाम निम्नवत् हैं।

मानवौघ गुरु - तारावत्यम्बा, भानुमत्यम्बा, जयाम्बा, विद्याम्बा, महोदर्यम्बा, सुखानन्द नाथ, परानन्द नाथ, पारिजातानन्द नाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, विरूपाक्षानन्दनाथ तथा फेरव्यम्बा।

सिद्धौघ गुरु - वशिष्ठानन्दनाथ, कूर्मानन्द नाथ, मीननाथानन्दनाथ, महेश्वरानन्द नाथ तथा हरिनाथानन्दनाथ।

दिव्यौघ गुरु - ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ, व्योमकेशानन्दनाथ, नीलकण्ठानन्द नाथ तथा वृषध्वजानन्दनाथ। पूजन क्रम में पहले 'गुरु-चतुष्ट्य' का फिर दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा **'मानवौघ'** गुरुओं का पूजन किया जाता है। पहले पूर्ववत् गुरु का ध्यान करें। फिर पूजन करें। यथा - पूजन से पहले **'ॐ द्वितीयावरण देवताभ्यो नमः'** बोलकर बिन्दु के वामभाग में पुष्पाञ्जलि दें। तत्पश्चात- **ॐ गुरो अमुकानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।**

इसी प्रकार **'गुरो'** के स्थान पर 'परम गुरो, परापर गुरो तथा परमेष्ठि गुरो' का प्रयोग करके पूजन करें। नाम से पूर्व नाम के प्रथम वर्ण को बीज के रूप में प्रयोग करना चाहिए। पुरुष गुरुओं के नाम तो यथारूप ही प्रयुक्त होंगे परन्तु स्त्री गुरुओं के नाम सम्बोधन रूप में **'तारावत्यम्बे'** इस प्रकार प्रयोग किये जायेंगे।

इस प्रकार **'ॐ ऊं ऊर्ध्वकेशानन्द नाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा'** इत्यादि रूप से पुरुष गुरुओं का तथा **'ॐ तां तारावत्यम्बे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा'** इत्यादि रूप से स्त्री गुरुओं का पूजन करें।

[ग्रन्थों में प्राय: **विन्दौ पूजयेत्, त्रिकोणे पूजयेत्, पद्म-दले पूजयेत् इत्यादि** रूप से स्थान संकेत सहित अंग-देवताओं का अर्चन (पूजन) करने का निर्देश प्राप्त होता है। परन्तु किस प्रकार पूजन किया जायेगा, यह स्पष्ट नहीं होता। कहीं-कहीं **'पाद्यादिना पूजयेत'**, **'धूपादिना पूजयेत्'** इत्यादि रूप से भी पूजन का निर्देश प्राप्त होता है। परन्तु आजकल के भाग-दौड़ भरे संघर्षपूर्ण जीवन में किसी सामान्य साधक के लिए 'पाद्यार्घ्य' सहित **'षोडशोपचार'** न सही **'पञ्चोपचार'** पूजन भी सभी **'अङ्ग-देवताओं'** का करना असम्भव जैसा ही है। अत: मेरे दृष्टिकोण से (जैसा कि 'काली-पूजन' में संकेत किया गया है) साधक **'दक्ष-कर'** की **'ज्ञानमुद्रा'** से गन्ध-पुष्पादि तथा **'वाम-कर'** की **'तत्व-मुद्रा'** से 'शुद्धि-खण्ड' ग्रहण करके पूजन मन्त्र **(ॐ वज्र०.......स्वाहा)** बोलकर देवता के निर्देशित स्थान पर गन्धपुष्पादि तथा शुद्धि-खण्ड द्वारा यथोचित 'पात्रामृत' से अमृत समर्पित करते हुए **'पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा'** अथवा **'तर्पयामि पूजयामि नमः'** बोले। इस प्रकार संक्षिप्त रूप से सभी पूजन सम्पन्न करे। केवल प्रधान (इष्ट) देवता का यथा-शक्ति तथा यथा-समय कुछ विस्तार से पूजन करे।]

समर्पणम् - इस प्रकार उपयुक्त रूप से 'गुरु-पंक्तियों' का पूजन करके पूर्ववत् (समर्पण मन्त्र में 'प्रथम' के स्थान पर 'द्वितीय' शब्द का प्रयोग कर) समर्पण करें। पुन: **'एताः द्वितीयावरण देवताः०'** इत्यादि बोलकर बिन्दु के वाम भाग (पूजन स्थल) पर **'विशेषार्घ्य'** की एक-एक बूंदें छोड़ें।

तृतीयावरण पूजनम्

पद्म दलों के मूल भाग पर पूर्ववत् **'ॐ तृतीयावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि प्रदान करके देवी के सम्मुख से प्रारम्भ कर वामावर्त क्रम से पद्म-दलों के मूल भाग पर अष्ट योगिनियों का पूजन करे। यथा-

ॐ क्रीं (मं) महाकालि वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। इसी प्रकार **रुं रुद्राणि, उं उग्रे, भीं भीमे, घों घोरे, भ्रां भ्रामरि, मं महारात्रि** तथा **भं भैरवि** के पूर्व **'ॐ'** तथा पश्चात् में **वज्र०** इत्यादि रूप मन्त्र प्रयोग करके पूजन करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् **'मूलं भगवत्येकजटे०'** इत्यादि बोलकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुए **तृतीयावरणार्चन** देवी को अर्पित कर **'एताः तृतीयावरण देवता०'** इत्यादि बोलते हुए विशेषार्घ्यामृत अर्पित करें।

चतुर्थावरण-पूजनम्

पूर्ववत् अष्ट-दल पद्म के दलों पर मध्य में **'ॐ चतुर्थावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि अर्पित करके **'वामावर्त क्रम'** से देवी के आगे से प्रारम्भ कर पूर्वादि चार दिशाओं में क्रमशः **ॐ वैं वैरोचन वज्रपुष्प०** (पूर्व), **ॐ शं शंखपाण्डुर वज्रपुष्प०** (उत्तर), **ॐ पं पद्नाभ वज्रपुष्प०** (पश्चिम) तथा **ॐ असिताभ वज्रपुष्प०** (दक्षिण) इस प्रकार पूजन करें।

पूर्ववत् ही **'आग्नेयादि'** चार कोण दिशाओं में (देवी के दक्ष कोण से आरम्भ करके) **ॐ मां मामक वज्रपुष्प०** (अग्निकोण), **ॐ नां नामक वज्रपुष्प०** (ईशान), **ॐ पां पाण्डुर वज्रपुष्प०** (वायव्य) तथा **ॐ तां तारक वज्रपुष्प०** (निर्ऋति) इस प्रकार पूजन करें।

[तारा भक्ति सुधार्णव में **'यामल'** से उद्‌धृत श्लोकानुसार कोणस्थ देवताओं के नाम आकारान्त (**मामका, नामका** इत्यादि रूप से) हैं। अतः पूजन-मन्त्रों में इनके रूप **मामके, नामके** इत्यादि की भाँति प्रयोग किये जाने चाहिए।]

समर्पणम् - मन्त्रों में **'चतुर्थावरण'** शब्द का प्रयोग करते हुए पूर्ववत् समर्पण करें।

पञ्चमावरण-पूजनम्

दलों के अग्र भाग पर **'ॐ पञ्चमावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि अर्पित कर देवी के आगे (पूर्वादि) से प्रदक्षिणावत् **ब्राह्मी, माहेश्वरी** आदि अष्टमातृकाओं का (दलाग्र पर) पूजन करें। यथा - **ॐ ब्राह्मि वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा** (पूर्व दलाग्र)। इसी प्रकार **ईं माहेश्वरी, ऊं कौमारि, ॠं वैष्णवि, ॡं वाराहि, ऐं इन्द्राणि, औं चामुण्डे** तथा **अः महालक्ष्मि** के पूर्व **ॐ** एवं पश्चात् में **वज्रपुष्पं०** इत्यादि का संयोजन करके यथा स्थान पूजन करें।

(कुछ विद्वानों के मत से **'यथा काली तथा नीला'** के अनुसार यहाँ काली-पूजनवत् **'ब्राह्मी नारायणी'** आदि का पूजन करना चाहिए। साधक जैसा चाहे करे। स्व-स्व सम्प्रदायानुसार दोनों उचित हैं।)

समर्पणम् - पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि प्रदान सहित, मन्त्र में **'पञ्चमावरण'** प्रयोग करते हुए समर्पण करें। **एताः पञ्चमावरण देवता०** इत्यादि बोलकर अर्घ्य बिन्दु छोड़ें।

षष्ठावरण-पूजनम्

पूर्ववत् **'षष्ठावरण देवताभ्यो नमः'** से भूपुर के चारों द्वारों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पूर्ववत् ही (देवी के आगे से वामावर्त) **ॐ पं पद्मान्तक वज्रपुष्प०** (पूर्व द्वार), **ॐ यं यमान्तक वज्रपुष्प०** (उत्तर द्वार), **ॐ विं विघ्नान्तक वज्रपुष्पं०** (पश्चिम द्वार) तथा **ॐ नं नरान्तक वज्रपुष्प०** (दक्षिण द्वार पर) पूजन करें।

समर्पणम् - मन्त्रों में **'षष्ठावरण'** का प्रयोग करते हुए पूर्ववत् समर्पण करें।

सप्तमावरण-पूजनम्

चतुरस्र (भूपुर) के चारों ओर **'ॐ सप्तमावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि अर्पित करके प्रदक्षिणावत् पूर्वादि (देवी के आगे) से **'इन्द्रादि'** दश लोकपालों का पूजन करें। यथा - **ॐ ऐं (लं) इन्द्र वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा** (पूर्व), इसी प्रकार **ॐ रं अग्ने वज्र पुष्पं०** (अग्निकोण), **ॐ यं यम वज्रपुष्पं०** (दक्षिण), **ॐ क्षां निर्ऋते वज्रपुष्पं०** (निर्ऋति कोण), **ॐ वं वरुण वज्रपुष्पं०** (पश्चिम), **ॐ यं वायो वज्रपुष्पं०** (वायव्य), **ॐ शं कुबेर वज्रपुष्पं०** (उत्तर), **ॐ हौं ईशान वज्रपुष्पं०** (ईशान कोण), **ॐ आं ब्रहान् वज्रपुष्पं०** (ईशान-पूर्व मध्य) तथा **ॐ ह्रीं अनन्त वज्रपुष्पं०** (निर्ऋति-पश्चिम मध्य) रूप से पूजन करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् ही समर्पण करें। मन्त्रों में **'सप्तमावरण'** प्रयोग करते हुए।

अष्टमावरण-पूजनम्

लोकपालों के निकट ही पूर्ववत् **'ॐ अष्टमावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पूर्ववत् दक्षिणावर्त उनके आयुधों का पूजन करें। यथा - **ॐ वं वज्र (पीतवर्ण) वज्रपुष्पं०** (इन्द्रायुध-इन्द्र के निकट), **ॐशं शक्ते (शुक्लवर्ण) वज्रपुष्पं०** (अग्न्यायुध), **ॐ दं दण्ड (सितवर्ण) वज्रपुष्पं०** (यमायुध), **ॐ खं खड्ग (आकाश-स्वच्छ वर्ण) वज्रपुष्पं०** (निर्ऋत्यायुध), **ॐ पां पाश (विद्युत वर्ण) वज्रपुष्पं०** (वरुणायुध), **ॐ अं अंकुश (रक्तवर्ण) वज्रपुष्पं०** (वायु-आयुध), **ॐ त्रिं त्रिशूल (असित वर्ण) वज्रपुष्पं०** (ईशानायुध), **ॐ पं पद्म (रक्त-कोकनद वर्ण) वज्रपुष्पं०** (ब्रह्मायुध) तथा **ॐ चं चक्र (पाटल वर्ण) वज्रपुष्पं०** (अनन्तायुध)।

[मेरी दृष्टि में भगवती तारा-पूजन से सम्बन्धित जो भी ग्रन्थ आये उनमें ब्राह्मी आदि शक्तियों तथा आयुधों सहित लोकपालों के अर्चन का उल्लेख नहीं प्राप्त हुआ। केवल **'तारा-भक्ति सुधार्णव'** में इसका उल्लेख किया गया है, अत: मैंने भी उसका वर्णन यहाँ कर दिया है। इसी प्रकार भगवती के आयुधों के पूजन का भी निर्देश कहीं प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु **'दक्षिणा-काली'** के **'आवरणार्चन'** में उनके **'आयुध-पूजन'** का उल्लेख होने के कारण **'यथा काली तथा नीला'** की उक्ति को ध्यान में रखते हुए भगवती तारा (एकजटा) के आयुधों के पूजन का उल्लेख यहाँ दिया जा रहा है।]

अष्टमावरण पूजनम् - पूर्ववत् **ॐ अष्टमावरण देवताभ्यो नमः'** से यन्त्र के मध्य बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करके (बिन्दु पर कल्पित देवी के) दक्षोर्ध्व हस्त में - **ॐ खं खड्ग वज्रपुष्पं०।** वामोर्ध्व हस्त में - **ॐ इं इन्दीवर वज्रपुष्पं०।** वामाधो हस्त में - **ॐ कं कपाल वज्रपुष्पं०।** तथा दक्षाधो हस्त में - **ॐ कं कर्त्रिके वज्रपुष्पं०।** से पूजन करें।

'मत्स्य-सूक्त' के अनुसार त्रिकोणों में **कामेश्वरी, दिक्करवासिनी** तथा **चण्डनायिका** का भी पूजन करना चाहिए।

समर्पणम् - पूर्वोक्त मन्त्रों में **'अष्टमावरण'** का प्रयोग करके पूर्ववत् पूजन समर्पित करें।

इसके पश्चात् मूल मन्त्र से देवी को तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान कर पुनः पूर्ववत् **गन्ध-पुष्प-धूप-दीप** तथा **नैवेद्य** (यदि संभव हो तो काली पूजनवत् महानैवेद्य) समर्पित करते हुए पूजन करें। तदुपरान्त अक्षोभ्य के मूल मन्त्र द्वारा उनका भी पञ्चोपचार पूजन करके पुनः देवी को पुष्पाञ्जलि अर्पित कर देवी को बलि समर्पित करें।

॥ बलिदानम्॥

अपने बायीं ओर अधोमुख त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर **'ॐ एकजटा बलिमण्डलाय नमः'** से पुष्पादि द्वारा पूजन करके, विहित बलि (मांस सहित चावल, दही, हल्दी, भुनी मछली, आसव, प्याज, लवण, अदरक तथा अन्य भी उपलब्ध) पदार्थों से पूर्ण पात्र को आधार सहित मण्डल पर रखकर उसे बायीं अनामिका तथा अंगुष्ठ से स्पर्श करते हुए **'ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे महायक्षाधिपायै मयोपनीतं बलिं गृह्ण-गृह्ण गृह्णापय-गृह्णापय मम सर्वशान्ति कुरु कुरु परविद्यामाकृष्य-आकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि-छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा''**। इस मन्त्र को तीन बार बोलकर बलि प्रदान

करें। बलि पात्र अथवा विशेषार्घ्य पात्र का अमृत बलि पर गिराते हुए उत्सर्ग (बलि प्रदान) करना चाहिए।

इसके पश्चात् मूल मन्त्र से आठ बार देवी को पुष्पाञ्जलि देकर **'रहस्य माला'** (मनुष्य के मस्तक 'कनपटी' के पास स्थित अस्थियों से पचास मणियों की बनी माला जिसे महाशंख माला भी कहते हैं (इसके अभाव में स्फटिक की माला) से वाचिक, उपांशु अथवा मानस रूप से एक हजार आठ अथवा एक सौ (आठ) बार मूल मन्त्र का (विनियोग-न्यासादि कर तथा 'कुल्लुका' मन्त्र का दश बार जप शिर पर करके) जप करे। अशक्तावस्था में भी न्यूनतम बीस बार से कम न जपे।

जप की विस्तृत विधि के लिए काली-प्रकरण का अवलोकन करें।

॥जप-काले मन्त्र-भावना॥

मन्त्र जप करते समय मूलाधार में सूर्य के समान प्रकाशमान **'ह्रीं'** का ध्यान, स्वाधिष्ठान (लिङ्गमूल) में पीतवर्ण **'स्त्रीं'** का ध्यान तथा मणिपूर चक्र (नाभि) में तीव्र श्याम प्रभायुक्त बादलवत् कृष्णवर्ण **'हूं'** का ध्यान कर क्रमशः इन तीनों बीजों से तीनों चक्रों को व्याप्त, करोड़ों विद्युत के समान प्रकाशमान तथा परस्पर इन तीनों बीजों को सम्बद्ध रूप से भावना करके हृदय में कालाग्नि के समान दीप्तमान **'फट्'** बीज को भ्रमण करता हुआ सा ध्यान करे। इसके बाद मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सम्पूर्ण विद्या (मूलमन्त्र) की करोड़ों सूर्य के समान आभायुक्त व्याप्ति रूप से भावना करे जैसा कि (शास्त्रों के वर्णनानुसार) पूर्व-पूर्व के योगियों ने देखा (अनुभव किया) था।

इस प्रकार यथा शक्ति मन्त्र जप कर **'गुह्याति गुह्य०'** इत्यादि मन्त्र द्वारा जप को देवी के वाम हाथ में समर्पित करके पूजन कर्माङ्गभूत 'नित्य हवन' कर्म का सम्पादन करें।

॥नित्य-होम॥

न्यास-ध्यानादि सहित विधिवत् जप करके, उसे देवी क वामकर में मन्त्रपूर्वक समर्पित करके (काली-प्रकरण में कही गयी विधि के अनुसार) नित्य-होम कर्म करें। हवन-वेदिका (स्थण्डिल) का पूजन **'मूलं श्रीमदेकजटायाः स्थण्डिलाय नमः'** से करें। अग्नि के नामकरण में **'श्रीमदेकजटा'** का प्रयोग करें। षडङ्ग देवताओं के लिए हवन करते समय **ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः स्वाहा। ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा।**

इत्यादि रूप से मन्त्रों का प्रयोग करें। नाम मन्त्र से हवन के समय **'मूलं श्रीमदेकजटायै स्वाहा'** का प्रयोग करें। इसी प्रकार आगे **'मूल साङ्गायै०'** इत्यादि रूप से मन्त्र योजना करके हवन कर पुनः निर्देशानुसार (१६ बार) **'मूलं स्वाहा'** से हवन करें। पूर्ण आहुति में **'मूलं स्वाहा'** का प्रयोग करें। इसके पश्चात् भस्म-ग्रहण तक सभी क्रियायें करके **'नीराजन'** (आरती) करें।

आरती के पश्चात् **'प्रदक्षिणा'**, **'पूर्ण नैवेद्य'** (महानैवेद्य- आवरण पूजन के पश्चात् पञ्चोपचार पूजन में संक्षिप्त रूप से नैवेद्य अर्पण की क्रिया करके महानैवेद्य-अर्पण आरती के बाद भी किया जा सकता है।) अर्पण, मन्त्र सहित **'पुष्पाञ्जलि अर्पण'**, **'आत्मसमर्पण'**, **'क्षमापन'**, **'देवतोद्वासन'** (देवता का विसर्जन), **'उच्छिष्ट भैरव बलि'**, **'शान्ति-स्तव-पाठ'**, **'सूर्यार्घ्य-दान'**, **'पात्रोद्वासन'** आदि सभी क्रियायें 'काली-प्रकरणवत्' ही सम्पन्न करें।

॥ पुरश्चरण-विधिः॥

यथेष्ट फल प्राप्ति के लिए साधक को अभीष्ट मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहिए। मन्त्र पुरश्चरण क्रिया में निर्देशानुसार एक निश्चित संख्या में जप-हवन के बाद तर्पण, मार्जन (अभिषेक) तथा ब्राह्मण भोजन भी कराना चाहिए। इसमें जप के बाद की हवन आदि की संख्या अपने पूर्व कर्म की दशमांश होती है।

जप की संख्या का दशमांश घी से भीगे कमलों अथवा बेल खण्डों से हवन करना चाहिए।

तर्पण - काला अगुरु युक्त निर्मल सुगन्धित जल में देवी का आवाहन कर पाद्यादि उपचारों द्वारा उनका पूजन कर हवन की संख्या का दशांश तर्पण **'ह्रीं तारा देवीं श्रीमदेकजटां तर्पयामि स्वाहा'** मन्त्र से करके एक-एक बार अङ्ग (परिवार) देवताओं का तर्पण करना चाहिए, अथवा नाम से पूर्व **'सपरिवारां'** शब्द जोड़कर तर्पण करें।

मार्जन (अभिषेक) - स्वयं की देवी रूप में भावना कर, दाहिने हाथ से स्वशिर पर पुष्प रखकर मानस पूजन करके, सम्मुख पूर्ववत् जल पात्र रखकर, अपने शिर पर **'ह्रीं तारिणीं सिञ्चयामि'** बोलते हुए तर्पण के दशांश संख्या में अभिषेक करना चाहिए।

ब्राह्मण भोजन - मन्त्र पुरश्चरण अथवा सकाम साधना करने पर मार्जन की दशांश संख्या में ब्राह्मणों को यथेष्ट सुरुचिपूर्ण भोजन तत्पश्चात्

दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए।

मन्त्र पुरश्चरण अथवा सकाम पूजन–जपादि करने पर साधना समाप्ति के पश्चात् गुरु को भी यथोचित दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिए।

हवन, तर्पण तथा मार्जन की संख्या यदि दशांश ग्रहण करने पर एक सौ आठ से कम हो तो भी इन्हें एक सौ आठ बार (अथवा सौ बार) अवश्य करना चाहिए।

॥तारायाः मन्त्राः॥

तारा (उग्रतारा, नील सरस्वती) – 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'

एकजटा – 'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'। महानील सरस्वती – 'ह्रीं स्त्रीं हूं'। इसे तारा मन्त्रों की कुल्लुका भी कहा जाता है। तारा के अन्य सभी मन्त्रों की देवता 'एकजटा' ही कही जाती है।

तारा के आठ भेदों के अनुसार उनके मन्त्र इस प्रकार हैं।

१. तारा – **ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।** २. उग्रा– **स्त्रीं ह्रीं हूं फट्।** ३. महोग्रा–**हूं स्त्रीं ह्रीं फट्।** ४. वज्रा – **हूं ह्रीं स्त्रीं फट्।** ५. नीला – **ह्रीं स्त्रीं फट् हूं।** ६. सरस्वती – **स्त्रीं ह्रीं फट् हूं।** ७. कामेश्वरी – **ह्रीं हूं स्त्रीं फट्।** ८. भद्रकाली–**स्त्रीं हूं ह्रीं फट्।**

इन आठों मन्त्रों के ऋषि **'अष्टक'**, छन्द **'अनुष्टुप्'**, देवता **'शम्भूपत्नि'**, विनियोग **'चतुर्वर्गप्राप्त्यर्थ'** पुरश्चरण जप – **६ लाख** तथा ध्यान पूजा एक जटावत्।

हंस तारा (अष्टाक्षरी) – हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं हंसः। नवाक्षरी – हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् हंसः। पूजनादि पञ्चाक्षरीवत्। कवित्व, वश्य, धन तथा मोक्ष प्राप्ति।

वेदमाता (नील सरस्वती) मन्त्र – ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा। पञ्च बीजों **(ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं)** से पञ्चाङ्ग न्यास तथा **'फट् स्वाहा'** से छठा अस्त्र न्यास करें।

एकवीरा कल्पोक्त (सार्ध पञ्चाक्षरी) मन्त्र – हंसः ॐ ह्रीं फट्। ॐ ह्रीं हंसः फट्। पूजनादि महोग्रानुसार, ज्ञान प्राति हेतु प्रयोग।

सारस्वतप्रद मन्त्र – (पञ्चाक्षरी) – **ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।** सप्ताक्षरी – **ॐ ह्रीं स्त्रीं हू फट् स्वाहा।** त्र्यक्षरी – **हूं स्त्रीं हूं।**

तारा मन्त्र पञ्चक –

१. षड्क्षरी – **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं नमः'।** सर्वतन्त्र गुह्य विद्या।

२. पञ्चाक्षरी (बीज तारा) – **'हूं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'।** यह महाविद्या 'बीजतारा' विद्या कही जाती है।

३. पञ्चाक्षरी – **'क्लीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'।** परमाविद्या सर्वकाम प्रदायिका।

४. षड्क्षरी – **'ॐ ह्रीं हूं हूं नमः'**। सर्वतन्त्र गुह्य विद्या।

५. अष्टाक्षरी (ब्रह्म विद्या)- **'ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं स्वाहा क्लीं'**।

पाँचों मन्त्र आयु-श्री-कान्ति-कविता-विद्या-सौभाग्य तथा अन्त में मोक्षप्रद हैं।

सप्ताक्षरी त्रिशक्तियुता महाविद्या – 'खं हूं हौं ॐ ऐं ह्रीं श्रीं'। सर्वतन्त्र गुह्य विद्या, शीघ्र सिद्धिप्रदा, ध्यानार्चनादि तारणीवत्।

भय-विपद नाशक पञ्चविंशाक्षरी विद्या – 'ॐ ह्रीं हां हूं नमस्तारायै सकल दुस्तरं तारय तारय ॐ ॐ स्वाहा'। पुरश्चरण चार लाख जप से, अष्टसिद्धि प्राप्ति, गद्य-पद्यमयी वाणी प्रवाह की प्राप्ति, कल्पतरुरूप विद्या, ध्यान-पूजादि तारणीवत्।

यही मन्त्र अन्य प्रकार से **द्वात्रिंशदक्षरी (३२)** भी है – **'त्रीं ह्रीं ह्रां हूं नमस्तारायै महातारायै सकल दुस्तरात् तारय-तारय तर-तर स्वाहा।'** (मेरु तन्त्र)

ॐ त्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महातारायै सकल दुस्तरांस्तारय-तारय तर-तर स्वाहा।' (मंत्र महोदधि)

महाषोडशी तारा मन्त्र – 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं क्रीं ईं उग्रतारे ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं हौं क्रों' । ध्यान पूजादि तारिणी के समान।

गुप्त षोडशी (पद्मावति) मन्त्र – 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति माये स्वाहा'। तारिणीवत् पूजन अर्धरात्रि में चौराहे पर जप करके बलि देने से द्रुत कवित्व की प्राप्ति।

* * *

॥ क्रीं काल्यै नमः॥

॥ प्राभातिक कृत्य॥

॥ गुरु-ध्यान मानसपूजनादि॥

साधक प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा त्याग कर तारा प्रकरण में कथित प्राणायाम तक क्रिया करके एकाक्षरी काली मन्त्र **'क्रीं'** का विनियोग न्यासादि करें।

विनियोग – **अस्य श्री दक्षिण कालिका मन्त्रस्य श्री महाकाल भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, श्री दक्षिण कालिका देवता, कं बीजं, ईं शक्तिः, रं कीलकं चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे (प्राभातिक कर्मङ्गत्वेन वा) जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः –

श्री महाकाल भैरव ऋषये नमः – शिरसि (दक्षिण अंगुष्ठ से शिर के मध्य स्पर्श)

उष्णिक् छन्दसे नमः – मुखे (अनामिका+मध्यमा से मुख स्पर्श)

श्री दक्षिणकालिका देवतायै नमः – हृदये (अंगुष्ठ छोड़कर शेष चारों अंगुलियों से)

कं बीजाय नमः –गुह्ये (तत्वमुद्रा से)

ईं शक्तये नमः – पादयोः (मध्यमा से)

रं कीलकाय नमः – सर्वाङ्गे (दोनों करतलों से)

चतुर्वर्ग सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः – अञ्जलौ (दोनों हाथों से अञ्जलि बनायें)

कर–न्यासः	षडङ्ग–न्यास
क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः	**हृदयाय नमः** (अ०+म०+त० से स्पर्श)
क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा	**शिरसे स्वाहा** (पूर्ववत् ऊर्ध्व मस्तक स्पर्श)
क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्	**शिखायै वषट्** (बद्ध मुष्टिका अंगुष्ठ से)
क्रैं अनामिकाभ्यां हुम्	**कवचाय हुम्** (दोनों करतलों से)
क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्	**नेत्रत्रयाय वौषट** (त०+म०+अ० से)
कः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्	**अस्त्राय फट्** (दक्ष त०+म० से वाम करतल पर त्रिताल दें)

व्यापक न्यास :– मूल मन्त्र (क्रीं) का उच्चारण कर शिर से पैर तक तथा पैर से शिर तक स्पर्श करें। ऐसा ३, ५ या ७ बार करें।

गुरु ध्यानम् – यह भावना करें कि शरीरस्थ ब्रह्माण्ड (शिरोर्ध्व मध्य) में अधोमुख सहस्रदल पद्म की कर्णिका के मध्य, कुण्डलिनी के आरोहण –अवरोहण मार्ग रूप चित्रिणी नाड़ी से सम्बद्ध ऊर्ध्वमुख एक श्वेत वर्ण द्वादश दल युक्त पद्म है जिसका प्रत्येक दल क्रमशः ह–स–ख–फ्रें–ह–स–क्ष–म–ल–व–र–यूं (इन बारह वर्णों) से विभूषित है। इस शुक्ल वर्ण कमल (गुरु चक्र अथवा हंस पीठ) पर सुधा सागर, इसके मध्य मणि द्वीप तथा उसके भी मध्य एक रत्नपीठ स्थित है। इस पीठ पर एक अधोमुख त्रिकोण है जिसकी वामभुजा पर 'अ से अः' तक, ऊपरी भुजा पर 'क से त' तक तथा दक्ष भुजा पर 'थ से स' तक (सोलह–सोलह वर्ण) तथा भीतर तीनों कोणों में ह, ल तथा क्ष वर्ण स्थित हैं। त्रिकोण के मध्यस्थ नाद–बिन्दु पर स्थित (परम) हंस रूप पीठ पर अपने चरणों को रखे हुए (शक्ति सहित) श्री गुरु (रूप अंतरात्मा) विराजमान हैं। इस हंस का शरीर **'ज्ञान–मय'**, दोनों पंख **'आगम–निगम'** रूप, दोनों पैर **'प्रकाश–विमर्श'** शक्ति रूप, चञ्चु (चोंच) **'प्रणव'** तथा कण्ठ **'कामकला'** रूप है। इस हंस पीठ पर सशक्ति गुरु का (निम्नवत्) ध्यान करें।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुद्ध क्षौम विराजितम्। गन्धानुलेपनं शान्तं वराभयकराम्बुजम्॥
मन्दस्मितं निजगुरुं कारूण्येनावलोकितम्। वामोरुशक्तिसंयुतं शुक्लाभरणभूषितम्॥
स्वशक्त्या दक्षहस्तेन धृतचारुकलेवरम्। वामे धृतोत्पलायाश्च सुरक्तायाः सुशोभनम्॥
परानन्दरसोल्लास–लोचनद्वय–पङ्कजम्। एवं संचिन्तयेन्नित्यं शिरःपद्मे ज्ञानमूर्तिम्॥

ब्रह्मानन्दं परम–सुखदं केवलं ज्ञान–मूर्ति
द्वन्द्वातीतं गगन–सदृशं तत्वमस्यादि–लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षि–भूतं
भावातीतं त्रिगुण–रहितं सद्–गुरुं तं नमामि॥

ध्यान के पश्चात् सशक्ति गुरु का मानस–पूजन करें। यथा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं सशक्तिकाय श्री गुरवे समर्पयामि।
हं आकाशात्मकं पुष्पं सशक्तिकाय श्री गुरवे समर्पयामि।
यं वाय्वात्मकं धूपं सशक्तिकाय श्री गुरवे समर्पयामि।
रं वह्न्यात्मकं दीपं सशक्तिकाय श्री गुरवे समर्पयामि।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं सशक्तिकाय श्री गुरवे समर्पयामि।

(तारा प्रकरण में भी साधक उपर्युक्त रूप से एक जटा, नील सरस्वती आदि किसी भी मन्त्र का विनियोग न्यासादि–अपनी साधनानुसार करके उपर्युक्त रूप से स्वगुरु का ध्यान कर सकता है।)

इसके बाद यथाशक्ति गुरु-पादुका (लघु-पादुका अथवा स्थूल पादुका) मन्त्र का जप करे।

लघु पादुका मन्त्र - **ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्री अमुकानन्द नाथ श्री अमुकी अम्बा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।**

स्थूल पादुका मन्त्र - **ऐं ह्रीं श्रीं हसख फ्रें हसक्षमलवरयूं सहख फ्रें सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः श्री गुरु अमुकानन्दनाथ श्री अमुकी अम्बा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।**

(यदि साधक को गुरु-पत्नी का नाम ज्ञात न हो तो '**श्री अमुकी अम्बा**' के स्थान पर '**तच्छक्त्यम्बा**' का प्रयोग करें।)

इसी उपर्युक्त मन्त्र में 'श्री गुरु' के स्थान पर '**श्री परम गुरु**', '**श्री परापर (परात्पर) गुरु**' तथा '**श्री परमेष्ठि गुरु**' का प्रयोग करके पृथक-पृथक उन गुरुओं के मन्त्र का जप करें।

(नियम यह है कि द्वादश कमल के एक-एक दल की भावना कर प्रत्येक दल पर नव-नव (९-९) बार गुरु पादुका मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार जप की संख्या एक सौ आठ पूरी करनी चाहिए अथवा साधक अपनी सामर्थ्य एवं समय के अनुसार जप करे।)

जप के पश्चात् '**ॐ गुह्याति गुह्य गोप्ता०**' इत्यादि मन्त्र बोलकर निम्न मन्त्र से जप श्री गुरु को समर्पित करे।

ॐ इदं जपं श्री गुरवे समर्पयामि नमः।

इसके पश्चात् निम्न तीन मन्त्र-श्लोकों को पढ़कर श्री गुरु को प्रणाम करें।

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
ॐ नमोस्तु गुरवे तस्मादिष्ट-देव-स्वरूपिणे।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसार-संज्ञकम्॥

इसके बाद निम्न प्रकार से 'गुरु-स्तुति' करें।

नमोस्तु तस्मै भगवन् शिवाय गुरु रूपिणे। विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रहाः॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैक रूपिणे। सर्वाज्ञानतमोभेद भानवे चिद्घनाय ते॥
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने। परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्। प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे॥
पुरस्ताद् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्याम्युपर्यधः। सदासंचित्तरूपेण विधेहि भवदासनम्॥
त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः। माया-मृत्युमहापाशाद् विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च॥

तत्पश्चात् अपने समस्त दैनिक कृत्य को पूजा-रूप मानते हुए श्री गुरु को अर्पित कर दें।

ॐ प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरं तथा।
यत्करोमि जगन्नाथ तदस्तु तव पूजनम्।।

इसके बाद गुरु से आज्ञा प्राप्त कर तारा-प्रकरण में कथित प्रक्रिया रूप से परम शिव के साथ कुण्डलिनी का सम्मिलन करा उसे संतृप्त कर उसकी चारों ओर फैली हुई ज्योति में कुल गुरुओं का ध्यान करें। यथा -

कुलामृत-रसोल्लोल-हृदयाघूर्ण लोचनान्। कुलालिङ्गनसम्भिनान् तान् घूर्णिताशेषत्तामसान्।।
पूर्णशिष्यैः परिवृतान् पूर्णान्तःकरणोद्यतान्। वराभययुतान् सर्वान् कुलतन्त्रार्थ-वादिनः।।
[प्रह्लादः सकलश्चैव कुमार वशिष्ठ क्रोधाः। सुख ध्यानश्च बोधाश्च विरूपाक्षः शुकश्चैताः।।]
(कुल गुरवः)

इन कुल गुरुओं के नाम के साथ **'आनन्दनाथ'** जोड़कर चतुर्थ्यन्त रूप करके नमः का संयोग कर ध्यान के साथ ही प्रणाम करना चाहिए। यथा-**प्रह्लादानन्दनाथ नमः**।

तदुपरान्त मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त प्रकाश रूप में मूलमन्त्र की भावना कर, परम शिव को प्रणाम कर कुण्डलिनी को सहस्रार से हृदय कमल में लाकर वहाँ महाकाली के रूप में उसका ध्यान कर, मानसोपचार पूजन करके, गुरु-मन्त्र-देवता तथा आत्मा के एकत्व (अभेदत्व) की भावना करके श्री काली गायत्री का न्यूनतम अट्ठाईस बार जप करे।

।। श्री (दक्षिणा) काली ध्यानम्।।

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमाला विभूषिताम्।।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोर्ध्व कराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्व-पाणिकाम्।।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डाली-गलद्रुधिरचर्चिताम्।।
कर्णावतंसतालीशव-युग्मभयानकान्। घोरदंष्ट्रा करालास्यां पीनोन्नत-पयोधराम्।।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्-रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। बालार्क मण्डलाकार-लोचनत्रितयान्विताम।।
दन्तुरां दक्षिणव्यापि मुक्ता लम्बिकचोच्चयाम्। शवरूप महादेव-हृदयोपरि-संस्थिताम्।।
शिवाभिर्घोर-रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीत-रतातुराम्।।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेरानन-सरोरुहाम्। एवं चिन्तयामि कालीं सर्वकाम-सिद्धिदाम्।।

दक्षिणा काली का खुला हुआ विशाल मुख अत्यन्त भयङ्कर है। उनके शिरः केश खुले हुए हैं तथा दिव्य स्वरूप वाली एवं नरमुण्डों की माला धारण की हुई दक्षिणा काली चतुर्भुजा है। इनके बायी ओर के नीचे तथा ऊपर के हाथों में क्रमशः तत्काल काटा हुआ शिर तथा खड्ग एवं दक्षिण ओर के

नीचे-ऊपर के हाथों में अभय तथा वर-मुद्रा धारित है। इनके शरीर का वर्ण विशाल मेघ (बादल) की आभा के समान श्याम है तथा ये दिगम्बरा (निर्वस्त्रा) हैं। इनके गले में नरमुण्डों की माला है, जिससे गिरते हुए रक्तधाराओं के द्वारा सारा अङ्ग भीगा हुआ है। दोनों कानों में भयानक छोटे-छोटे (शिशु) शव कर्णाभूषण के रूप में स्थित हैं। इनके विशाल मुख में बड़ी-बड़ी भयानक दाढ़ें हैं तथा इनके स्तन द्वय पुष्ट एवं उन्नत हैं। कटि भाग में शवों के हाथों से निर्मित मेखला (ऐसी करधनी जिसमें चारों ओर कटे हुए हाथ ग्रन्थित किये हुए हों) धारण करने वाली ये देवी हंस रही हैं। इस अवस्था में इनका मुख फैला (खुला) हुआ है तथा दोनों होठों से रक्त धारा गिर रही है। तीव्र भयङ्कर ध्वनि करने वाली अति क्रुद्ध भीषण स्वरूप वाली तथा श्मशान में वास करने वाली इन देवी के तीनों नेत्र वृत्ताकार सद्योदित सूर्य के समान प्रतीत होते हैं। इनके दाँत बड़े-बड़े हैं तथा इनका दक्षिण भाग शिर के लम्बे लटकते हुए केश समूहों से आच्छादित हैं। ये शवरूप में पड़े हुए महादेव के ऊपर स्थित (खड़ी हुई) तथा घोर ध्वनि करने वाली शिवाओं (सियारनियों-गीदड़ियों) के द्वारा चारों ओर से घिरी हुई हैं। महाकाल के साथ विपरीत रतावस्था में स्थिता, कमलमुख पर मन्दमुस्कान धारण की हुई तथा सुख से आनन्दित मुखमुद्रा वाली एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली इन दक्षिणा काली का मैं ध्यान करता हूँ।

दक्षिणा काली गायत्री -

"ॐ क्रीं दक्षिणायै विद्महे चामुण्डायै धीमहि तन्नो काली प्रचोदयात्।"

इसके बाद मूलमन्त्र का विनियोग न्यासादि करके यथाशक्ति जप करे। यदि सम्भव हो तो मातृका वर्णों के संयोग से जप करे। तत्पश्चात् जप देवी के वाम हाथ में समर्पित कर दे।

॥ अजपा-जप-समर्पणम् ॥[१]

अब पिछले दिन किये हुए (स्वाभाविक रूप से हुए) अजपा-जप के समर्पण के लिए सङ्कल्प करें। सङ्कल्प से पूर्व 'हंसः' मन्त्र से प्राणायाम कर लें।

सङ्कल्पम् - **ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि अमुक गोत्रः अमुक शर्माऽहं पूर्वेद्युः अहोरात्रोच्चरितं उच्छवास-निःश्वासात्मकं षट्शताधिकमेकविंशति सहस्र संख्याकं (२१६००) अजपा जपं सप्तचक्रेशु स्थितेभ्यो देवताभ्यो यथाभागं निवेदयामि।**

---

[१] किसी-किसी ग्रन्थ में 'आज्ञा-चक्र' में गुरु की तथा 'ब्रह्म-रन्ध्र' में परमात्मा की स्थिति मानकर उन्हें वहाँ जप समर्पण किया गया है। इस प्रकार की विधि के लिए हमारे 'मधुसूदन प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'श्री राजराजेश्वरी अर्चना-पद्धति' का अवलोकन करें।

१. मूलाधारे चतुर्दले पद्मे 'वं शं षं सं' इति वर्ण युते तत्रस्थाय गणपतये शाकिनी शक्ति युताय अत्र गंध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। गणपतये शाकिनी शक्ति युताय षट्शतं संख्याकं अजपा-जपं तुभ्यं समर्पयामि।

२. स्वाधिष्ठाने षड्दल पद्मे 'वं भं मं यं रं लं' इति षड्वर्ण युते तत्रस्थाय ब्रह्मणे काकिनी शक्ति युताय अत्र-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। सशक्तिकाय ब्रह्मणे षट् सहस्र संख्याकं अजपा-जपं तुभ्यं समर्पयामि।

३. मणिपूरे दशदल पद्मे 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं' इति दशवर्ण युते तत्रस्थाय विष्णवे लाकिनी शक्ति युताय अत्र गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। सशक्तिकाय विष्णवे षट्सहस्र संख्याकं अजपा जपं तुभ्यं समर्पयामि।

४. अनाहते द्वादश दले पद्मे 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं' इति द्वादशवर्णयुते तत्रस्थाय राकिनी शक्ति युताय रुद्राय अत्र गन्ध -पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। सशक्तिकाय रुद्राय षट्सहस्र संख्याकं अजपा जपं तुभ्यं समर्पयामि।

५. विशुद्धौ षोडश दल पद्मे अं आं.....अं अः इति षोडश वर्ण युते तत्रस्थाय जीवाय अत्र गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। जीवाय सहस्रमेकं संख्याकं अजपा जपं तुभ्यं समर्पयामि।

६. आज्ञायां द्विदल पद्मे 'हं क्षं' इति द्विवर्ण युते तत्रस्थाय परमात्मने अत्र गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। परमात्मने सहस्रमेकं संख्याकं अजपा जपं तुभ्यं समर्पयामि।

७. ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदल पद्मे अनन्त मातृका वर्ण युते तत्रस्थाय गुरवे अत्र गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य रूप पञ्च मानसोपचारैः पूजां समर्पयामि। गुरवे (गुरु-पादुकायै) सहस्रमेकं संख्याकं अजपा-जप तुभ्यं समर्पयामि।

(संक्षिप्त रूपेण समर्पणम्-मूलाधारादि ब्रह्मरन्ध्रान्त सप्त चक्रस्थेभ्यो सशक्ति गणेश-ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-जीव-परमात्म-गुरु देवताभ्यो यथाक्रम षट्शत-षट्सहस्र, षट्सहस्र-षट्सहस्र-सहस्रमेक-सहस्रमेक-सहस्रमेक संख्याकं अजपा जपं मानसोपचार पूजन पूर्वकं समर्पयामि।)

इसके पश्चात् आज किये जाने वाले अजपा-जप के लिए सङ्कल्प करें।

उपर्युक्त सङ्कल्प में **'पूर्वेद्यु:'** के स्थान पर **'अद्य'** तथा **'अजपा जपं'** के पश्चात् केवल **'करिष्ये'** पद जोड़कर सङ्कल्प बना लें।

विनियोग:- **ॐ अस्य अजपा मन्त्रस्य हंसः ऋषिः, अव्यक्त (आदि) गायत्री छन्दः, परम हंसो देवता 'हं' बीजं, 'सः' शक्तिः, 'सोऽहं' कीलकं मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः - **हंस ऋषये नमः** (शिरसि)। **अव्यक्त (आदि) गायत्री छन्दसे नमः** (मुखे)। **परमहंस देवतायै नमः** (हृदये)। **'हं' बीजाय नमः** (मूलाधारे)। **'सः' शक्तये नमः** (पादयोः)। **'सोऽहं' कीलकाय नमः** (नाभौ)। **विनियोगाय नमः** (अञ्जलौ)।

इसके पश्चात् **'हसाँ, हसीं, हसूं, हसैं, हसौं** तथा **हसः'** से करन्यास व षडङ्ग न्यास करें।

ध्यानम् - **गमागमस्त्वं गमनादिशून्यं चिद्रूपदीपं तिमिरान्तकारम्।**
पश्यामि ते सर्वजनान्तस्थं नमामि हंसं परमार्थ (परमात्म) रूपम्॥

तत्पश्चात् 'लं' इत्यादि से मानसोपचार पूजन करके 'हंसः' मन्त्र का एक सौ आठ बार तथा 'हंस गायत्री' का कम से कम पच्चीस बार जप करें।

हंस गायत्री - **"हंसः हंसाय विद्महे सोऽहं हंसाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्"**

इसके बाद देवता को प्रणाम कर दैनिक कार्य हेतु उनसे आज्ञा प्राप्त करें।

त्रैलोक्यचैतन्यमये त्रिशक्ते श्रीविश्वमातर्भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसार-यात्रामनुवर्तयिष्ये॥

तदुपरान्त कुण्डलिनी शक्ति को हृदय से लाकर मूलाधार में स्थापित कर (स्थापित करने की भावना कर) अपनी आत्मा को निम्न भावों द्वारा भावित करें।

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रति प्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तः पदव्यामनुसञ्चरन्तीं आनन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥

अहं काली न चान्योऽस्मिब्रह्मैवाहं न शोकभाक्। सच्चिदानन्द रूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्॥
परदेव्या हृदस्थेन प्रेरितेन करोम्यहं। न मे किञ्चित् क्वचिद् वापि कृत्यमस्ति जगत-त्रये॥
प्रातः प्रभृति सायान्तं सायान्तः प्रातरं पुनः। यत्करोमि जगन्मातस्तदस्तु तव पूजनम्॥

अब गुरु-आत्मा तथा देवता में अभेद की भावना कर भूमि से प्रार्थना करें।

ॐ समुद्रमेखले देवि! पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥
धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि! सर्वदा। तेन सत्येन मां पाहि पाशान् मोचय धारिणि॥

इसके बाद जिस नासिका छिद्र से श्वास चल रही हो उस ओर का (दोनों छिद्रों से श्वास चलने की स्थिति में दाहिना) पैर प्रथम पृथ्वी पर रखते हुए शयन कक्ष से बाहर निकलकर यथास्थिति शौचादि क्रिया से निवृत्त होवें।

॥ दन्त शोधनादि॥

गृह से दूर जाकर यथाविधि (अथवा प्राप्त परिस्थिति के अनुसार) शौच क्रिया से निवृत्त होकर, मिट्टी आदि से हाथ-पैर धोकर सामान्य रूप से आचमन करके -

ॐ आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजापशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते॥

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित यथा विहित दातून काष्ठ ग्रहण कर-

मुखदुर्गन्धनाशाय रदानाञ्च विशुद्धये। ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्त धावनम्॥
क्लीं कामदेवाय सर्वजन प्रियाय ज्वल-ज्वल प्रज्वल-प्रज्वल सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा"

(अथवा **ॐ क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः**)

इन मन्त्रों को बोलकर दन्तशुद्धि कर **'ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं'** से जिह्वा लेखन (स्वच्छ) करके दातून को उचित स्थान पर फेंक कर न्यूनतम बारह (बीस) बार कुल्ला करके, मुख धोकर स्मृत्यनुसार - **ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः।** अथवा - **ॐ आत्म तत्वाय स्वाहा। ॐ विद्या तत्वाय स्वाहा। ॐ शिव तत्वाय स्वाहा।** से आचमन करें।

॥ स्नानाघमर्षण-तर्पण-सन्ध्याः॥

साधक तारा प्रकरण में वर्णित विधि से ही स्नान करे। अघमर्षण भी उसी विधि से (केवल जल में **'हूं'** बीज के स्थान पर **'क्रीं'** का प्रयोग)करे। तर्पण के समय जल में **'मूलं श्री दक्षिण कालिकां देवतां पूजयामि नमः'** से पूजन करे। इसके बाद तारा प्रकरण के अनुसार ही **'परमेष्ठि'** गुरु तक समस्त तर्पण करके-**'मूलं सायुधां सवाहनां सपरिवारां श्री महाकाल सहितां श्रीमद् दक्षिण कालिकाम्बां तर्पयामि स्वाहा'** से तीन बार देवी का तर्पण करे।

इसके बाद तारा प्रकरणवत् देवी को अर्घ्य प्रदान तक (मन्त्रों में **'श्रीमद् दक्षिण कालिकायै'** का प्रयोग करते हुए) क्रियायें करके त्रिकालिक (प्रातः मध्याह्न तथा सायं) ध्यान करें। ध्यान के मंत्र (श्लोक) उग्रतारा प्रकरण में दिये हुए हैं। वास्तव में इस ध्यान के बाद ही देवी को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। त्रिकाल सन्ध्या करने वाला साधक सन्ध्याकाल के अनुसार एक ही ध्यान करे, परन्तु केवल प्रातः सन्ध्या करने वाला साधक तीनों ध्यानों को करे।

इसके पश्चात् काली गायत्री का न्यूनतम दस बार जप करे। तदुपरान्त विद्याराज्ञी का मन्त्र (दक्षिणा काली का विशेष मन्त्र) अथवा एकाक्षरी **'क्रीं'** मन्त्र अथवा जो भी गुरु-गृहीत मूल मन्त्र हो, उसका एक सौ आठ बार (न्यूनतम दश बार) जप करें।

काली गायत्री -

''ॐ कालिकायै विद्महे श्मशान वासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात्।''

तत्पश्चात् किये हुए जप को देवी के वाम हस्त में समर्पित कर संहार मुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से देवी को लाकर अपने हृदय में स्थापित करे।

तत्पश्चात् जल से बाहर आकर दो वस्त्र (अधोवस्त्र-धोती तथा ऊपर उत्तरीय) धारण कर आचमन व शिखा बन्धन तथा यथोचित तिलक करके शुद्ध जल पूजा के लिए लेकर मौन हो मन ही मन देवी की स्तुति (क्रम-स्तव पाठ) करते हुए गृह (याग-मण्डप) पर आयें। साधक परिस्थिति के अनुसार बाहर स्नान तर्पण करके घर आकर भी सन्ध्या कर सकता है।

॥गृहे स्नान-विधिः॥

यदि साधक वृद्ध अथवा अस्वस्थ है अथवा बाहर जाकर स्नान की सुविधा नहीं उपलब्ध है तो, घर पर ही स्नान के लिए ग्रहण किये जल में तीर्थों का आवाहन करके यथास्थिति स्नान करे। अस्वस्थ व्यक्ति बिना शिर भिगोये अथवा कुछ गर्म जल से भी स्नान कर सकता है। यहाँ तर्पण की आवश्यकता नहीं है। स्नान के पश्चात् पूर्वाभिमुख हो तीन बार कुल्ला करके आचमन कर शिखाबन्धन करे। इसके बाद मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित (सात बार) यज्ञीय भस्म अथवा चन्दनादि से तिलक करे।

शिखाबन्धन मन्त्र - **ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांस-शोणित भोजिनि।**
तिष्ठ देवि शिखा मध्ये चामुण्डेत्यपराजिते॥

अथवा **''ॐ मणिधरि वज्रिणि सर्ववशङ्करि हुं फट् स्वाहा।''**

॥द्वार-पूजनम्॥

साधक याग-मण्डप (पूजा-गृह) द्वार पर आकर स्नान के पश्चात् लाये हुए तीर्थोदक से पूजन के लिए किसी बड़े कलश (लोटे) जैसे पात्र में **ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र बोलकर जल ग्रहण करे। फिर किसी अन्य पात्र में भी सामान्य रूप से जल लेकर उसमें थोड़ा सा इस अभिमन्त्रित जल को मिला दे। इसके बाद इस दूसरे पात्र के जल से बायें हाथ में जल लेकर आसन का अभ्युक्षण करे। तत्पश्चात् उसी जल से '**ॐ ह्रीं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेष-विकल्पमपनय हूं फट् स्वाहा**' बोलकर के हाथ-पैरों को धोकर, स्वर्ण-रजत मुद्रिका रूप कुल-कुशों को धारण कर '**ॐ ह्रीं स्वाहा**' से आचमन करके आसन पर बैठकर सामान्यार्घ्य स्थापन करे।

सर्वप्रथम अपने सामने त्रिकोण (अधोमुख)-वृत्त-चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर '**ह्रीं आधारशक्त्यै नमः**' से उसका गन्धाक्षतपुष्पों द्वारा पूजन करे।

फिर आधार-पात्र (तिपाई आदि) को **'फट्'** मन्त्र से प्रक्षालित कर इस मण्डल पर स्थापित करके **'रं धूम्रार्चिरादि दश कलात्मने वह्नि मण्डलाय नमः'** से उस आधार पात्र का पूजन करें। तत्पश्चात् ताँबा आदि से निर्मित अर्घ्य पात्र को पूर्ववत् **'फट्'** मन्त्र से प्रक्षालित करके (धोकर) आधार पर स्थापित कर **'अं तपिन्यादि द्वादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय नमः'** से उसका पूजन करें। इसके बाद पूर्वोक्त पूजन हेतु लिए गए अभिमन्त्रित जल से **'नमः'** का उच्चारण करते हुए इस अर्घ्य पात्र को पूरित करें। तदुपरान्त इस अर्घ्य-जल में सोम-मण्डल की भावना करके **'सं अमृतादि षोडशकलात्मने सोम मण्डलाय नमः'** से उसका पूजन करके उस जल में -

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

मन्त्र बोलकर पुनः अंकुश मुद्रा सहित **'क्रों'** का उच्चारण करके सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहन कर **'ॐ'** मन्त्र से उस जल में गन्धपुष्पादि डालकर तथा **'ॐ'** से उसका पूजन करके **'ॐ'** से ही अथवा **'मूल-मन्त्र'** से दश बार उसे अभिमन्त्रित करके उस पर **'धेनुमुद्रा'** प्रदर्शित करें। तत्पश्चात् इसी जल से पूजागृह द्वार का तीन बार अभ्युक्षण करके उस पर द्वार-देवताओं का पूजन करें। यथा -

द्वार के ऊपर - **ॐ गां गणेशाय नमः**। वाम भाग में - **ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः**। दक्ष भाग में - **ॐ वां वटुकाय नमः**। नीचे - **ॐ यां योगिनीभ्यो नमः**। इसके बाद चारों स्थानों पर क्रम से **'गां गंगाये नमः'**, **'यां यमुनायै नमः'**, **'श्रीं लक्ष्म्यै नमः'** तथा **'ऐं सरस्वत्यै नमः'** से पूजन करे।

इस प्रकार द्वार पूजन करके -

ॐ पाखण्डकारिणे भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः।
दिविलोकस्थिताश्च ये ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

मन्त्र पढ़कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए दिव्य दृष्टि अवलोकन द्वारा दिव्य विघ्नकारक भूतों का, **'अस्त्राय फट्'** से ऊपर की ओर जल फेंककर अन्तरिक्ष के भूतों का एवं तीन बार ताली बजाकर (**अस्त्राय फट् बोलते हुए**) तथा बांये पैर से पृथ्वी पर आघात करके पृथ्वी के भूतों का निवारण करें। इसके बाद अपना दाहिना अङ्ग सङ्कुचित करके द्वार के वाम भाग को स्पर्श करते हुए दाहिना पैर पहले रखते हुए (**वाम मार्गी** तथा **स्त्री साधक** बांया पैर पहले रखते हुए) पूजा गृह में प्रवेश करें।

इसके बाद पूजा-गृह के नैर्ऋत्य कोण में **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** से ब्रह्मा की तथा **'ॐ वास्तु पुरुषाय नमः'** से वास्तु पुरुष का पूजन करें।

तत्पश्चात् **'मूल मन्त्र'** बोलते हुए पूजा गृह के भीतरी भाग का निरीक्षण कर, **'फट्'** से सामान्य अर्घ्य जल तथा पञ्चगव्य द्वारा प्रोक्षण तथा **'फट्'** से ही कुशों द्वारा भूमि का ताडन तथा **'हुं'** से भीतरी भाग का सिञ्चन कर **ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥**

इस मन्त्र को बोलकर **'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र से अक्षत, सरसो तथा तिल को सात बार अभिमन्त्रित करके चारों ओर तीन बार नाराच मुद्रा से फेकें। तदुपरान्त हाथ में जल लेकर मुट्ठी (अथवा कुश मुष्टि) से गिरते हुए जल से **'ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र बोलते हुए भूमि (जहाँ बैठकर पूजन करना है, उस स्थान) का शोधन करे तथा **'ॐ पवित्र वज्रभूमे हूं हूं फट् स्वाहा'** से उसे अभिमन्त्रित करें।

इसके बाद पृथ्वी पर अधोमुखी त्रिकोण रक्त चन्दन (अथवा जल) से **'आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र बोलते हुए बनाकर **'ॐ ह्रीं आधार शक्त्यै नमः'** से उसका पूजन कर उस पर कोमलासनादि, अभाव में कम्बल आदि का आसन बिछाकर, सौ कुशों से रचित विष्टर में शव की प्राण प्रतिष्ठा करके उस कम्बलादि के आसन पर उसे रखकर, फिर आसन पर दाहिना हाथ रखकर बोले- **ॐ पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः।**

ॐ पृथ्वि! त्वया घृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

उपर्युक्त मन्त्र बोलकर आसन पर **'आः सुरेखे०'** इत्यादि मन्त्र से अष्टदल पद्म बनाकर **'ह्रीं आधार शक्ति कमलासनाय नमः'** से आसन का पूजन कर (मृदु-कोमलादि शवासन होने पर भी विष्टर को छोड़कर शेष क्रियायें की जायेंगी) उस पर पद्म-स्वस्तिक-वीर आदि किसी भी आसन में बैठे।

॥मन्त्र-नित्याचमनम्॥

आसन पर बैठने के बाद **'ऐं रः अस्त्राय फट्'** से हाथों को धोकर पहले तत्वाचमन (आत्म-विद्या-शिव तत्व) करें। फिर मूल मन्त्र अथवा **'क्रीं'** से तीन बार आचमन[१] करे। इसके बाद नित्याचमन करे। यथा -

---

[१] श्री विद्यार्णव तन्त्रानुसार आद्य बीज 'क्रीं' का एक साथ तीन बार प्रयोग कर दो बार आचमन करना चाहिए। यथा - 'क्रीं क्रीं क्रीं' बोलकर आचमन करे फिर 'क्रीं क्रीं क्रीं' बोलकर आचमन करे।

‘ॐ काल्यै नमः’। **‘ॐ कपालिन्यै नमः’**। बोलकर अंगुष्ठ मूल द्वारा ओष्ठ तथा अधर का मार्जन करें (पोछें)। **‘ॐ कुल्लायै नमः’** से दोनों हाथ धोयें। **‘ॐ कुरु कुल्लायै नमः’** से मुख (त०+म०+अ० द्वारा), **‘ॐ विरोधिन्यै नमः’** से दक्षिण तथा **‘ॐ विप्रचित्तायै नमः’** से वामनासापुट (अ०+त० से) **‘ॐ उग्रायै नमः’** तथा **ॐ उग्रप्रभायै नमः’** से दक्षिण वाम नेत्र (अंगुष्ठ+अनामिका से) **‘ॐ दीप्तायै नमः’** तथा **‘ॐ नीलायै नमः’** से दक्षिण वाम-कर्ण (तत्वमुद्रा अं०+त० से), **‘ॐ घनायै नमः’** से नाभि (अं०+कनिष्ठा द्वारा), **‘ॐ बलाकायै नमः’** से हृदय (करतल द्वारा), **‘ॐ मात्रायै नमः’** से मस्तक (सभी अंगुलियों द्वारा) तथा **‘ॐ मुद्रायै नमः’** तथा **‘ॐ मितायै नमः’** से दक्षिण वाम स्कन्ध (बाहुमूल मध्यमा के अग्रभाग से) स्पर्श कर (इस प्रकार प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श करने के बाद) आचमन करें।

तत्पश्चात ‘तारा प्रकरणवत्’ **‘दीपनाथ-पूजन’**, **‘आज्ञा-ग्रहण’**, **‘दीप-प्रज्ज्वलन’**, **‘संविदा शोधन’** **‘द्रव्य-शोधन’**, **‘कुण्डगोलोत्पत्ति’** आदि क्रियायें करें।

इसके बाद वाम कर्ण के ऊर्ध्व भाग में **‘ॐ गुरवे नमः’** से गुरु तथा **‘ॐ गुरु मण्डलाय नमः’** से गुरु-मण्डल को प्रणाम कर दक्षकर्णोर्ध्व में **‘गं गणेशाय नमः’** से गणेश तथा मध्य (हृदय) में योनि मुद्रा से **‘श्री दक्षिणा कालिकायै देवतायै नमः’** बोलकर इष्ट-देवता को प्रणाम करें। प्रणाम सदैव ध्यानपूर्वक ही करना चाहिए।

तत्पश्चात् स्वदक्ष-सम्मुख भाग में तारा प्रकरणवत् सामान्यार्घ्य तथा प्रोक्षणी-पात्र स्थापित कर उसके जल से स्वयं का तथा पूजन सामग्रियों का अभ्युक्षण करके अपने दायें भाग में गन्ध पुष्पादि, वाम भाग में सुगन्धित जल देवता के पीछे कुल द्रव्य तथा वाम भाग में अन्य पात्रादिक पदार्थ स्थापित करें।

इसके बाद **‘ॐ शताभिषेक०’** इत्यादि दो मन्त्रों को बोलकर पुष्पों का सामान्यार्घ्य जल से अभ्युक्षण कर **‘पुष्पाधिष्ठान’** (पुष्प में देवी की स्थापना) करें। तदुपरान्त हाथ में (रक्त) गन्ध-पुष्प लेकर **‘क्लीं’** का उच्चारण कर उसे दोनों हाथों से मसल कर **‘ऐं’** मंत्र से सूंघकर -

हौं ते सर्वे विलयं यान्तु ये माँ हिंसन्ति हिंसकाः।
मृत्यु - रोग - भय - क्लेशाः पतन्तु रिपु मस्तके॥

इस मन्त्र को बोलकर नाराच मुद्रा से उस पुष्प को पूजा कक्ष से बाहर ईशान कोण में फेंक दें। इस प्रकार हाथों का शोधन कर **‘ॐ मणिधरि वज्रिणि**

महाप्रतिसरे रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा' से वस्त्राञ्चल में ग्रन्थि (गांठ) लगाकर, हृदय पर हाथ रखकर '**ॐ आत्मानं रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा**' से स्वरक्षा विधान कर, '**ॐ आः हुं फट् स्वाहा**' से व्यापक न्यास करके शरीर-वाणी तथा चित्त का शोधन कर, बायीं ओर भूमि पर बायें पैर से तीन बार आघात कर, बांये करतल को धीरे-धीरे नीचे से ऊपर उठाते हुए उस पर दक्ष तर्जनी तथा अनामिका से तीन ताल देकर, तर्जनी-अंगुष्ठ के योग से चुटकी बजाते हुए दशों दिशाओं में दिग्बन्धन कर दिव्य दृष्टि द्वारा दिव्य विघ्नों का निवारण कर तथा अपने चारों ओर अग्नि प्राकार की भावना करके तीन बार प्राणायाम, ऋष्यादि, कर-षडङ्ग तथा व्यापक न्यास करके भूत शुद्धि करें।

॥भूत-शुद्धिः॥

तारा प्रकरण में वर्णित प्रक्रियानुसार साधक पहले जीवात्मा फिर कुण्डलिनी को परम शिव से संयुक्त कर पञ्चभूतों तथा गन्ध से लेकर अहंकार तक उन्नीस तत्वों को परम शिव में विलीन (करने की भावना) करे। इसके बाद दक्षिण नासाछिद्र को बन्दकर वाम नासापुट में '**यं**' इस वायुबीज का ध्यान कर, प्राणायाम विधि से उस '**यं**' का सोलह बार जप करते हुए वाम नासिका से शरीर को वायु द्वारा पूरित कर फिर दोनों छिद्रों को बन्द कर उस बीजवर्ण का चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक क्रिया द्वारा वामकुक्षि में स्थित कृष्णवर्ण पाप पुरुष के साथ ही शरीर को सुखाकर, '**यं**' के बत्तीस बार जप द्वारा दक्षिण नासिका से वायु का रेचन कर दें।

इसके बाद वाम नासारन्ध्र को बन्द कर दक्ष नासाछिद्र में '**रं**' इस अग्निबीज का ध्यान करके सोलह बार जप द्वारा पूरक कर दोनों नासापुटों को बन्द कर चौंसठ बार के जप द्वारा कुम्भक करते हुए पापपुरुष सहित शरीर को जलाकर बत्तीस बार जप करते हुए वायु के साथ ही उसके भस्म को भी रेचन क्रिया द्वारा बाहर निकाल दें।

इसके पश्चात् वाम नासिका में '**ठं**' इस शुक्ल वर्ण चन्द्र बीज का ध्यान कर सोलह बार के जप द्वारा पूरक करते हुए ललाट में चन्द्र को लाकर, दोनों नासापुटों को बन्द कर '**वं**' इस शुक्लवर्ण वरुण बीज का चौंसठ बार जप करते हुए ललाटस्थ चन्द्र से स्रवित (गिरने वाले) मातृका वर्णात्मिका सुधा से समस्त शरीर की (पुनः) संरचना करके '**लं**' इस पीतवर्ण पृथिवी बीज का बत्तीस बार जप करते हुए शरीर के सुदृढ़ होने की भावना कर दक्षिण नासिका से वायु का रेचन कर दे। तदुपरान्त '**आं सोऽहं**' इस मन्त्र द्वारा जीव को हृदय में लाकर शिव संयोगजनित सुधाधारा से संतृप्त हुई दोलायमान कुण्डलिनी को विपरीत गति से षट् चक्रभेदन करते हुए मूलाधार में लाकर तथा पृथ्वी आदि पञ्चभूतों तथा गन्धादि

उन्नीस तत्वों को यथास्थान स्थापित करे। तत्पश्चात् अपने हृदय पर हाथ रखकर **'आं ह्रीं क्रों स्वाहा'** का ग्यारह बार जप करके प्राण सहित देवता का स्वशरीर में न्यास (प्रतिष्ठापन) करके स्वयं की देवी रूप में भावना करे।

(कुमारी कल्पानुसार इसके बाद **'ॐ आं हुं फट् स्वाहा'** से व्यापक न्यास कर काया, वाणी तथा चित्त का शोधन करके **'ॐ रक्ष-रक्ष हुं फट् स्वाहा'** से आत्म रक्षा करें)

॥ पाप-पुरुष-ध्यानम्॥

पाप पुरुष के शोषण के समय उसका निम्न प्रकार से ध्यान करना चाहिए।

ब्रह्महत्याशिरस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम्। सुरापानहृद्युक्तं गुरु-तल्पकटिद्वयम्॥
तत्संसर्गि पदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्ग पातकम्। उप पातक रोमाणां रक्तश्मश्रुविलोचनम्॥
खड्गचर्मधरं पापमंगुष्ठ परिमाणकम्। अधोमुखं कृष्णवर्णं वाम कुक्षौ विचिन्तये॥

शरीर के बायें कुक्षि (पेट) में स्थित पाप पुरुष का शिर तथा कन्धा ब्रह्म हत्या रूप पाप से निर्मित है। दोनों भुजायें स्वर्ण चोरी रूप, हृदय सुरापान रूप, कमर के दोनों भाग गुरु-पत्नी गमन रूप, दोनों पैर उपर्युक्त पाप करने वाले मनुष्यों के संसर्ग रूप पापों से, शेष अङ्ग-प्रत्यंग अन्य पापों से तथा रोमावलियाँ उपपातकों (छोटे सामान्य पापों से) निर्मित हैं। उस पाप पुरुष की दाढ़ी के बाल रक्त हैं तथा उसकी आंखों से अश्रु गिर रहे हैं। उसके दोनों हाथों में खड्ग तथा ढाल धारित है एवं उसके शरीर का परिमाण अंगुष्ठ के बराबर है। इस प्रकार के पाप पुरुष का ध्यान करके उसके शोषण व दहन की भावना करनी चाहिए।

॥ प्राण-प्रतिष्ठा॥

उपर्युक्त भूत-शुद्धि के वर्णन में प्राण-प्रतिष्ठा संक्षेप में दी गई है। विस्तृत विधि निम्न प्रकार से है -

विनियोग :- **ॐ अस्य श्री प्राण प्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुः सामानि छन्दासि, पराप्राणशक्तिर्देवता, आं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्रों कीलकं, श्रीमद् दक्षिण कालिका देवतायाः प्राण प्रतिष्ठापने विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः

ॐ	**ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यः ऋषिभ्यो नमः**	शिरसि।
	ऋग्यजुः सामभ्यश्छन्दोभ्यो नमः	मुखे।
	पराप्राण शक्त्यै देवतायै नमः	हृदये।
	आं बीजाय नमः	गुह्ये।
	ह्रीं शक्तये नमः	पादयोः
	क्रों कीलकाय नमः	नाभौ।
	श्रीमद् दक्षिण कालिकायाः देवतायाः प्राण प्रतिष्ठापने विनियोगाय नमः	अञ्जलौ।

कर-षडङ्ग न्यासः

ॐ आं ह्री क्रों अं कं खं गं घं ङं आकाश वाय्वग्नि सलिल पृथिव्यात्मने आं	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ आं ह्री क्रों इं चं छं जं झं ञं शब्द स्पर्श रूप रसगन्धात्मने ई	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा।
ॐ आं ह्री क्रों उं टं ठं डं ढं णं श्रोत्र त्वक् चक्षुर्जिह्वा घ्राणात्मने ऊं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्।
ॐ आं ह्री क्रों एं तं थं दं धं नं वाक् पाणि पाद पायूपस्थात्मने ऐं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ आं ह्री क्रों ओं पं फं बं भं मं वचनादान गमन विसर्गानन्दात्मने औं	कनिष्ठकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ आं ह्री क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं मनोबुद्ध्यहङ्कारचितात्मने अः	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्।

कर-षडङ्ग न्यास करने के बाद व्यापक न्यास करें। यथा-

आं नमः	-	नाभि से पैरों के अन्त तक
ह्रीं नमः	-	कण्ठ से नाभि तक
क्रों नमः	-	सिर से कण्ठ तक

इस प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करके भगवती प्राण शक्ति का तद्गत चित्त से ध्यान करें-

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
विभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु शुभकरी प्राणशक्तिः परा नः॥

रक्त वर्ण सागर में स्थित नौका में विकसित रक्तकमल पर विराजमान अपनी छः भुजाओं, वामांग के तीन करों में क्रमशः पाश, इक्षु निर्मित धनुष तथा गुण (त्रिशूल) एवं दक्षिण करों में अंकुश, रक्तकपाल तथा पाँच (पुष्प) बाणों को धारण की हुई, तीन नेत्रों तथा पुष्ट स्तनों से सुशोभिता, प्रातः कालीन सूर्य के समान आभा वाली आत्मस्वरूपा भगवती परा प्राणशक्ति हमारे लिए सुखदायिनी हों।

इस प्रकार ध्यान करके **'लं'** इत्यादि से उनका मानस पूजन करें। हृदय पर हाथ रखकर तीन बार निम्नलिखित प्रत्येक मंत्र का ध्यान और भावना सहित मानसिक जप करें-

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः सोऽहम्
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः प्राणाः इह प्राणाः।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः सोऽहम्
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः जीवः इह जीवः।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः सोऽहम्
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः सोऽहम्
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः त्वङ्मनश्चक्षुश्रोत जिव्हा घ्राण वाक् पाणि पाद प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इसके बाद संस्कार सिद्धि हेतु १५ बार प्रणव (ॐ) का जप करें। **''अनेन प्रणव जपेन अस्य शरीरस्य गर्भाधानादि पञ्चदश संस्काराः सम्पादिताः।**

प्राण प्रतिष्ठा के बाद प्राणों को आयाम देने के लिए प्राणायाम करें। प्राणायाम के बाद मूल मन्त्र का विनियोगादि न्यास करें।

॥मूल मन्त्रस्य विनियोगादयः॥

भूत-शुद्धि के पश्चात् साधक अपने गृहीत मन्त्र (एकाक्षरी 'क्रीं') अथवा बाईस अक्षर वाले 'विद्याराज्ञी मन्त्र' का विनियोग ऋष्यादि न्यास करे। यथा -

विनियोग:- **अस्य श्री दक्षिण कालिका मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक छन्दः, श्री दक्षिण कालिका देवता ह्रीं बीजं, 'हूं' शक्तिः, 'क्रीं' कीलकं श्रीमद्दक्षिणकालिकादेवता पूजाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।**

(एकाक्षरी मन्त्र का छन्द-गायत्री, बीज - **'कं'**, शक्ति - **'ईं'** तथा कीलक **'रं'** है। उपर्युक्त विनियोग **'विद्याराज्ञी'** मन्त्र के लिए है।)

ऋष्यादि न्यासः - **भैरवाय ऋषये नमः** - (शिरसि)। **उष्णिक् छन्दसे नमः** - (मुखे)। **श्री दक्षिण कालिकायै देवतायै नमः** - (हृदि)। **ह्रीं बीजाय नमः** - (गुह्ये)। **हूं शक्तये नमः** - (पादयोः)। **'क्रीं' कीलकाय नमः** - (सर्वाङ्गे)। **विनियोगाय नमः** - (अञ्जलौ)।

(जहाँ भी इस प्रकार से 'अञ्जलौ' का प्रयोग है, वहाँ हाथ जोड़ने से तात्पर्य है।)

कर-न्यास - **ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।** इत्यादि रूप से करें।

(एकाक्षरी मन्त्र के लिए **क्रां, क्रीं, क्रूं** इत्यादि से न्यास करें।)

इसी प्रकार **ह्रां ह्रीं ह्रूं** इत्यादि से (अथवा **क्रां क्रीं क्रूं** इत्यादि से) हृदयादि न्यास करें। भैरव तन्त्र के अनुसार अङ्ग न्यास तीन अथवा एक बार करना चाहिए।

(विद्याराज्ञी का साधक बाईस अक्षर वाले मन्त्र के तीन खण्ड करके यथा – **'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं'**, **'दक्षिण कालिके'** तथा **'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा'**, इनकी दो आवृत्तियों के द्वारा भी कर-षडङ्ग न्यास कर सकता है।)

॥ वर्ण-न्यासः॥

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः – हृदये।
एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः– दक्ष बाहौ।
डं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः – वाम बाहौ।
णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं – दक्षिण पादे।
मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं – वाम पादे।

(साम्प्रदायिकों के अनुसार यह वर्ण न्यास ही मातृका न्यास है, अतः अलग से सर्वसाधारण मातृका (अन्तर्बहिः) न्यास करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु कुछ ग्रन्थों में इसके बाद सर्वसाधारण मातृका न्यास करने के लिए कहा गया है, अतः यहां इसे दिया जा रहा है। साधक की इच्छा है करे अथवा न करे। कहा भी गया है – **'यथा काली तथा नीला तत्क्रमान् मातृकान् न्येसेत्'** तथा तारा प्रकरण में सामान्य मातृका न्यास का विधान नहीं दिया गया है, अतः काली प्रकरण में भी इसकी कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

॥ मातृका न्यास॥

मातृका न्यास दो प्रकार से किये जाते हैं – **अन्तर्मातृका न्यास** तथा **बहिर्मातृका न्यास।** बहिर्मातृका न्यास में सृष्टि मातृका न्यास, स्थिति मातृका न्यास तथा संहार मातृका न्यास ये तीन प्रकार के न्यास किये जाते हैं। सामान्यतः साधक गृहस्थ होता है। उसके लिए **'स्थित्यन्त मातृका-न्यास'** (यथा-संहार-सृष्टि-स्थिति क्रम) का विधान है। अतः इसी क्रम के अनुसार यहाँ न्यास दिये जा रहे हैं। अन्य के लिए विधेय क्रम तारा प्रकरण में देखें।

॥ अन्तर्मातृका-न्यासः॥

विनियोगः – **ॐ अस्य अन्तर्मातृका न्यासमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, अन्तर्मातृका सरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः विन्दवः कीलकानि, श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये अन्तर्मातृकान्यासे विनियोगः।**

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मणे ऋषये नमः	शिरसि।
गायत्रीछन्दसे नमः	मुखे।
अन्तर्मातृकासरस्वतीदेवतायै नमः	हृदि।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः	गुह्ये।
स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः	पादयोः।
बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः	नाभौ।
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये अन्तर्मातृकान्यासे विनियोगाय नमः	करसम्पुटे।

समस्त मातृका वर्णो द्वारा सर्वाङ्गो में तीन बार व्यापक न्यास करें। (किसी-किसी ग्रन्थ में इसके बाद प्राणायाम का भी विधान है)

प्राणायामः

अं आं इं ईं ....अं अः इन सोलह स्वरों से पूरक करें।
कं खं गं घं ङं.........................भं मं इन पच्चीस व्यञ्जों से कुम्भक करें।
यं रं लं...सं हं इन वर्णों से रेचक करें।

(नपुंसक वर्णों 'ऋं ॠं लृं लृं' से कर शुद्धि करें।)

कर-षडङ्ग-न्यासः

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	**हृदयाय नमः**
इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।	**शिरसे स्वाहा**
उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।	**शिखायै वषट्**
एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्।	**कवचाय हुम्।**
ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्

करन्यासः (कर-शुद्धिन्यासः)

ॐ अं नमः दक्ष करतले। ॐ आं नमः वामकरतले। ॐ इं नमः दक्ष कर पृष्ठे। ॐ ईं वाम कर पृष्ठे। ॐ उं नमः दक्ष करे। ॐ ऊं नमः वाम करे। ॐ ऋं नमः दक्ष कनिष्ठकायां। ॐ ॠं नमः दक्ष अनामिकायाम्। ॐ लृं नमः दक्ष मध्यमायाम्। ॐ ॡं नमः दक्ष तर्जन्याम्। ॐ एं नमः दक्ष अङ्गुष्ठे। ॐ ऐं नमः वाम कनिष्ठकायाम्। ॐ ओं नमः वाम अनामिकायाम्। ॐ औं नमः वाम मध्यमायाम्। ॐ अं नमः वाम तर्जन्याम्। ॐ अः नमः वाम अङ्गुष्ठे।

ॐ कं नमः वामतर्जनी प्रथम पर्वे। ॐ खं नमः वाम त0मध्य पर्वे। ॐ गं नमः वाम त0 तृतीय पर्वे। ॐ घं नमः वाम तर्जनी अग्रे। ॐ ङं नमः वाम मध्यमा प्रथम पर्वे। ॐ चं नमः वाम म0 मध्यपर्वे। ॐ छं नमः वाम म0 तृतीय पर्वे। ॐ जं नमः वाममध्यमाग्रे। ॐ झं नमः वामानामिका प्रथम पर्वे। ॐ ञं नमः वामाना0 मध्य पर्वे। ॐ टं नमः वामाना0 तृतीय पर्वे। ॐ ठं नमः वामानामिकाग्रे। ॐ डं नमः वाम कनिष्ठा प्रथम पर्वे। ॐ ढं नमः वाम क0 मध्य पर्वे। ॐ णं नमः वाम क0 तृतीय पर्वे। ॐ तं नमः वाम कनिष्ठाग्रे। ॐ थं नमः दक्ष कनिष्ठा प्रथम पर्वे। ॐ दं नमः दक्ष क0 मध्य पर्वे। ॐ धं नमः दक्ष क0 तृतीय पर्वे। ॐ नं नमः दक्ष कनिष्ठाग्रे। ॐ पं नमः दक्षानामिका प्रथम पर्वे। ॐ फं नमः दक्षाना0 मध्य पर्वे। ॐ बं नमः दक्षाना0 तृतीय पर्वे। ॐ भं नमः दक्षानामिकाग्रे। ॐ मं नमः दक्ष मध्यमा प्रथम पर्वे। ॐ यं नमः दक्ष म0 मध्य पर्वे। ॐ रं नमः दक्ष म0 तृतीय पर्वे। ॐ लं नमः दक्ष मध्यमाग्रे। ॐ वं नमः दक्ष तर्जनी प्रथम पर्वे। ॐ शं नमः दक्ष त0 मध्य पर्वे। ॐ षं नमः दक्ष त0 तृतीय पर्वे। ॐ सं नमः दक्ष तर्जन्यग्रे। ॐ हं नमः दक्षाङ्गुष्ठे। ॐ ळं नमः वामाङ्गुष्ठे। ॐ क्षं नमः सर्वाङ्गेषु।

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटित-हृदये तालुमूले ललाटे।
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्टे।।
वासान्ते बालमध्ये डफकठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणाम्।
हं क्षं तत्वार्थ मुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।।
शारत्पूर्णेन्दुशुभ्रां सकललिपिमयीं लोलारक्त त्रिनेत्राम्।
शुक्लालङ्कारभासां शशिमुकुटजटाभारहार प्रदीप्ताम्।।
विद्यास्रक-पूर्णकुम्भान्वरमपिदधतीं शुद्धपट्टाभिराद्याम्।
वाग्देवीपद्मपत्रां कुचभरनमिनां चिन्तयेत् साधकेन्द्र।।

कण्ठे धूम्रवर्णे षोडशदले विशुद्धे - ॐ अं नमः। ॐ आं नमः। ॐ इं नमः। ॐ ई नमः। ॐ उं नमः। ॐ ऊं नमः। ॐ ऋं नमः। ॐ ॠं नमः। ॐ लृं नमः। ॐ लॄ नमः। ॐ एं नमः। ॐ ऐं नमः। ॐ ओं नमः। ॐ औं नमः। ॐ अं नमः। ॐ अः नमः।

हृदये रक्तवर्णे अनाहते द्वादशदले - ॐ कं नमः। ॐ खं नमः। ॐ गं नमः। ॐ घं नमः। ॐ ङं नमः। ॐ चं नमः। ॐ छं नमः। ॐ जं नमः। ॐ झं नमः। ॐ ञं नमः। ॐ टं नमः। ॐ ठं नमः।

मणिपूरे मेघवर्णे दशदले नाभौ - ॐ डं नमः। ॐ ढं नमः। ॐ णं नमः। ॐ तं नमः। ॐ थं नमः। ॐ दं नमः। ॐ धं नमः। ॐ नं नमः। ॐ पं नमः। ॐ फं नमः।

लिङ्गमूले विद्युद्वर्णे षड्दले स्वाधिष्ठाने - ॐ बं नमः। ॐ भं नमः। ॐ मं नमः। ॐ यं नमः। ॐ रं नमः। ॐ लं नमः।

मूलाधारे पीतवर्णे चतुर्दले - ॐ वं नमः। ॐ शं नमः। ॐ षं नमः। ॐ सं नमः।

भ्रूमध्ये श्वेतवर्णे द्विदले आज्ञाचक्रे - ॐ हं नमः। ॐ क्षं नमः।

॥ इत्यन्तर्मातृकान्यासः॥

बहिर्मातृका-न्यासः

संहारमातृकान्यासः

विनियोगः - **ॐ अस्य बहिर्मातृका न्यासे संहारमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, संहार मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, बिन्दवः कीलकानि श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः

ॐ	**ब्रह्मणे ऋषये नमः**	शिरसि
	गायत्री छन्दसे नमः	मुखे
	संहार मातृकासरस्वती देवतायै नमः	हृदि
	हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः	गुह्ये
	स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः	पादयोः
	बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः	नाभौ
	श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता-भावाप्तये न्यासे विनियोगाय नमः	करसम्पुटे।

पूर्ववत् अञ्जलिना सर्वमातृकया सर्वाङ्गे त्रिव्यापकं प्राणायामं च कुर्यात्।

कर-षडङ्ग-न्यासः

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	**हृदयाय नमः।**
इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।	**शिरसे स्वाहा।**
उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।	**शिखायै वषट्।**
एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्।	**कवचाय हुम्।**
ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अंः करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्।	**अस्त्राय फट्।**

ध्यानम्

अक्षस्रंज हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्॥

अथवा

धूम्राङ्गी मुक्तकेशीं शशिमलिनमुखीं घोररूपां त्रिनेत्राम्,
व्यस्तैर्हस्तैर्दधानां व्यजनकरघृतां दीप्तमग्निं वहाहाम्।
हाहाकाराट्टहासामभयवरकरां ज्वालयन्तीं दिशाञ्च,
भक्तेभ्यः प्रेमबद्धां दिशतु प्रतिदिनं भारतीं तां नमामि॥

न्यास विधि

विलोम क्रम से क्षकार से अकार तक सभी वर्णों को अनुस्वार से युक्त तत्तत् स्थानों (अङ्गो) में न्यास करें। यथा–

ॐ क्षं परमात्मने नमः	हृदयादि मुखे व्यापकम
ॐ ळं जीवात्मने नमः	हृदयादि उदरे
ॐ हं प्राणात्मने नमः	हृदयादि वामपादान्तम्
ॐ सं शुक्रात्मने नमः	हृदयादि दक्षपादान्तम्
ॐ षं मज्जात्मने नमः	हृदयादि वामकरांगुल्यन्तम्
ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः	हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्तम्
ॐ वं मेदात्मने नमः	वामांशे
ॐ लं मांसात्मने नमः	ककुदि
ॐ रं असृगात्मने नमः	दक्षांसे
ॐ यं त्वगात्मने नमः	हृदि
ॐ मं नमः	उदरे
ॐ भं नमः	नाभौ
ॐ बं नमः	पृष्ठे
ॐ फं नमः	वाम पार्श्वे
ॐ पं नमः	दक्ष पार्श्वे
ॐ नं नमः	वामपादांगुल्यग्रेषु
ॐ धं नमः	वामपादांगुलिमूलेषु
ॐ दं नमः	वाम गुल्फे
ॐ थं नमः	वाम जानुनि

ॐ तं नमः	वामपादमूले
ॐ णं नमः	दक्ष पादांगुल्यग्रेषु
ॐ ढं नमः	दक्ष पादांगुलिमूलेषु
ॐ डं नमः	दक्ष गुल्फे
ॐ ठं नमः	दक्ष जानुनि
ॐ टं नमः	दक्ष पादमूले
ॐ ञं नमः	वामांगुल्यग्रेषु
ॐ झं नमः	वामांगुलिमूलेषु
ॐ जं नमः	वाम मणिबन्धे
ॐ छं नमः	वाम कूर्परे
ॐ चं नमः	वाम बाहुमूले
ॐ ङं नमः	दक्षांगुल्यग्रेषु
ॐ घं नमः	दक्षांगुलिमूलेषु
ॐ गं नमः	दक्ष मणिबन्धे
ॐ खं नमः	दक्ष बाहुकूर्परे
ॐ कं नमः	दक्ष बाहुमूले
ॐ अः नमः	मुखे (जिह्वाग्रे)
ॐ अं नमः	ब्रह्मरन्ध्रे
ॐ औं नमः	अधोदन्ते
ॐ ओं नमः	ऊर्ध्वदन्ते
ॐ ऐं नमः	अधरे
ॐ एं नमः	ओष्ठे (ऊर्ध्व)
ॐ लॄः नमः	वामगण्डे
ॐ लृं नमः	दक्ष गण्डे
ॐ ऋं नमः	वाम नासापुटे
ॐ ॠं नमः	दक्ष नासापुटे
ॐ ऊं नमः	वाम कर्णे
ॐ उं नमः	दक्ष कर्णे
ॐ ईं नमः	वाम नेत्रे
ॐ इं नमः	दक्ष नेत्रे
ॐ आं नमः	मुख वृत्ते
ॐ अं नमः	ललाटे (केशान्ते)

।। इति संहारमातृकान्यासः।।

सृष्टि-मातृकान्यासः

विनियोगः - ॐ अस्य बहिर्मातृकान्यासे सृष्टि मातृकान्यास मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, सृष्टि मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः, बिन्दवः, कीलकानि श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यासः

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः	शिरसि।
गायत्री छन्दसे नमः	मुखे।
सृष्टि मातृका सरस्वती देवतायै नमः।	हृदि।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः।	गुह्ये।
स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः।	पादयोः।
बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः।	नाभौ।
श्री दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोगाय नमः।	करसम्पुटे।

पूर्ववत् तीन बार व्यापक न्यास तथा प्राणायाम करें।

कर-षडङ्ग न्यासः

ॐ अः कः खः गः घः ङः आः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः
इः चः छः जः झः ञः ईः तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा
उः टः ठः डः ठः णः ऊः मध्यमाभ्यां वषट्।	शिखायै वषट्
एः तः थः दः धः नः ऐः अनामिकाभ्यां हुम्।	कवचाय हुम्
ओः पः फः बः भः मः औः कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्
अंः यः रः लः वः शः षः सः हः ळः क्षः अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्

इसके बाद पूर्ववत् कर-शुद्धि न्यास करके ध्यान करें।

ध्यानम्

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षः स्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्।।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये।।

ॐ अः नमः	ललाटे (केशान्ते)	मध्यमा+अनामिका द्वारा स्पर्श
ॐ आः नमः	मुखवृत्ते	तर्ज०+मध्य०+अना०

ॐ इः नमः	दक्षनेत्रे	अंगु०(तर्ज० वा)+अना०
ॐ ईः नमः	वामनेत्रे	अंगु०(तर्ज० वा)+अना०
ॐ उः नमः	दक्ष कर्णे	अंगु०(तर्ज० वा)+अना०
ॐ ऊः नमः	वाम कर्णे	अंगु०(तर्ज० वा)+अना०
ॐ ऋः नमः	दक्ष नासापुटे	अंगु०+कनि०
ॐ ॠः नमः	वाम नासापुटे	अंगु०+कनि०
ॐ लृः नमः	दक्ष गण्डे	तर्ज०+मध्य०+अना०
ॐ ॡः नमः	वाम गण्डे	तर्ज०+मध्य०+अना०
ॐ एः नमः	ओष्ठे (ऊर्ध्व)	मध्यमा
ॐ ऐः नमः	अधरे	मध्यमा
ॐ ओः नमः	ऊर्ध्व दन्ते	अनामिका
ॐ औः नमः	अधो दन्ते	अनामिका
ॐ अंः नमः	ब्रह्मरन्ध्रे	मध्यमा
ॐ अः नमः	मुखे (जिह्वाग्रे)	अना०+मध्य०
ॐ कः नमः	दक्ष बाहुमूले	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ खः नमः	दक्ष बाहु कूर्परे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ गः नमः	दक्ष मणिबन्धे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ घः नमः	दक्षाङ्गुलिमूलेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ङः नमः	दक्षाङ्गुल्यग्रेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ चः नमः	वाम बाहुमूले	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ छः नमः	वाम कूर्परे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ जः नमः	वाम मणिबन्धे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ झः नमः	वामाङ्गुलिमूलेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ञः नमः	वामाङ्गुल्यग्रेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ टः नमः	दक्ष पादमूले	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ठः नमः	दक्ष जानुनि	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ डः नमः	दक्ष गुल्फे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ढः नमः	दक्षपादाङ्गुलिमूलेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ णः नमः	दक्षपादाङ्गुल्यग्रेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ तः नमः	वाम पादमूले	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ थः नमः	वाम जानुनि	मध्य०+अना०+कनि०

ॐ द: नम:	वाम गुल्फे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ध: नम:	वामपादाङ्गुलिमूलेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ न: नम:	वामपादाङ्गुल्यग्रेषु	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ प: नम:	दक्ष पार्श्वे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ फ: नम:	वाम पार्श्वे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ ब: नम:	पृष्ठे	मध्य०+अना०+कनि०
ॐ भ: नम:	नाभौ	अंगु०+मध्य०+अना०+कनि०
ॐ म: नम:	उदरे	पञ्चाङ्गुलीभि: (पांचों अंगुलियों से)
ॐ य: त्वगात्मने नम:	हृदि	पञ्चाङ्गुलीभि:
ॐ र: असृगात्मने नम:	दक्षांशे	पञ्चाङ्गुलीभि:
ॐ ल: मांसात्मने नम:	ककुदि	पञ्चाङ्गुलीभि:
ॐ व: मेदात्मने नम:	वामांशे	पञ्चाङ्गुलीभि:
ॐ श: अस्थ्यात्मने नम:	हृदयादिदक्ष	कराङ्गुल्यन्तम्
ॐ ष: मज्जात्मने नम:	हृदयादिवाम	कराङ्गुल्यन्तम्
ॐ स: शुक्रात्मने नम:	हृदयादिदक्ष	पादान्तम्
ॐ ह: प्राणात्मने नम:	हृदयादिवाम	पादान्तम्
ॐ ळ: जीवात्मने नम:	हृदयादिउदरे	
ॐ क्ष: परमात्मने नम:	हृदयादिमुखे	व्यापकम्

।। इति सृष्टिमातृका न्यास:।।

स्थिति मातृकान्यास:

विनियोग: – **ॐ अस्य बहिर्मातृका न्यासे स्थिति मातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि:, गायत्री छन्द:, स्थितिमातृकासरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वरा: शक्तय:, बिन्दव: कीलकानि श्री दक्षिण कालिका देवताया: पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोग:।**

ऋष्यादि न्यास:

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नम:	शिरसि
गायत्री छन्दसे नम:	मुखे
स्थिति मातृका सरस्वती देवतायै नम:	हृदये
हल्भ्यो बीजेभ्यो नम:	गुह्ये
स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम:	पादयो:
बिन्दुभ्य: कीलकेभ्यो नम:	नाभौ
श्री दक्षिण कालिका देवताया: पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोगाय नम:	कर सम्पुटे।

पूर्ववत् तीन बार व्यापक न्यास तथा प्राणायाम करें।

(स्थितिमातृकादेवता षडङ्गान्यपि पूर्ववदेव सर्गविन्द्वन्तिकवर्णैः कार्याणीति।)

कर-षडङ्गन्यासः

ॐ अँः कँः खँः गँः घँः ङँः आँः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः
इँः चँः छँः जँः झँः ञँः ईँः तर्जनीभ्यां स्वाहा।	शिरसे स्वाहा
उँः टँः ठँः डँः ढँः णँः ऊँः मध्यमाभ्यां वषट्।	शिखायै वषट्
एँः तँः थँः दँः धँः नँः ऐँः अनामिकाभ्यां हुम्।	कवचाय हुम्
ओँः पँः फँः बँः भँः मँः औँः कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्
अँः यँः रँः लँः वँः शँः षँः सँः हँः ळँः क्षँः अँः करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्

पूर्ववत् कर-न्यासं विधाय ध्यानं कुर्यात्।

ध्यानम्

सिन्दूरकान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरं दधानम्।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काञ्चनाङ्गी
ध्यायेत् कराब्जधृतपुस्तकवर्णमालाम्।।

अथवा

पक्षीन्द्रासनसंस्थितां भगवतीं श्यामां पिशङ्गावृताम्।
शंखं चक्र गदाब्जपाशमसृणीं मालां दधानां पराम्।।
विद्याभीति वर प्रदां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीम्।
देवीं विष्णुमयीं समस्तजननीं ध्यायामि तामम्बिकाम्।।

न्यास विधि

सबसे पहले ड से क्ष तक वर्णों को, उसके पश्चात् अ से लेकर ठ तक वर्णों को बिन्दु-विसर्ग से युक्त कर तत्तत् स्थानों में न्यास करें। यथा-

ॐ डँः नमः	दक्ष गुल्फे
ॐ ढँः नमः	दक्ष पादांगुलिमूलेषु
ॐ णँः नमः	दक्ष पादांगुल्यग्रेषु
ॐ तँः नमः	वाम पादमूले
ॐ थँः नमः	वाम जानुनि
ॐ दँः नमः	वाम गुल्फे
ॐ धँः नमः	वाम पादांगुलिमूलेषु

ॐ नँः नमः	वाम पादांगुल्यग्रेषु
ॐ पँः नमः	दक्ष पार्श्वे
ॐ फँः नमः	वाम पार्श्वे
ॐ बँः नमः	पृष्ठे
ॐ भँः नमः	नाभौ
ॐ मँः नमः	उदरे
ॐ यँः त्वगात्मने नमः	हृदि
ॐ रँः असृगात्मने नमः	दक्षांशे
ॐ लँः मांसात्मने नमः	ककुदि
ॐ वँः मेदात्मने नमः	वामांशे
ॐ शँः अस्थ्यात्मने नमः	हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्तम्
ॐ षँः मज्जात्मने नमः	हृदयादि वामकरांगुल्यन्तम्
ॐ सँः शुक्रात्मने नमः	हृदयादि दक्ष पादान्तम्
ॐ हँः प्राणात्मने नमः	हृदयादि वाम पादान्तम्
ॐ ळँः जीवात्मने नमः	हृदयादि उदरे
ॐ क्षँः परमात्मने नमः	हृदयादि मुखे व्यापकम्
ॐ अँः नमः	ललाटे (केशान्ते)
ॐ आँः नमः	मुखवृत्ते
ॐ इँः नमः	दक्ष नेत्रे
ॐ ईँः नमः	वाम नेत्रे
ॐ उँः नमः	दक्ष कर्णे
ॐ ऊँः नमः	वाम कर्णे
ॐ ऋँः नमः	दक्ष नासापुटे
ॐ ॠँः नमः	वाम नासापुटे
ॐ लृँः नमः	दक्ष गण्डे
ॐ ॡँः नमः	वाम गण्डे
ॐ एँः नमः	ओष्ठे (ऊर्ध्व)
ॐ ऐँः नमः	अधरे
ॐ ओँः नमः	ऊर्ध्व दन्ते
ॐ औँः नमः	अधोदन्ते
ॐ अँः नमः	ब्रह्मरन्ध्रे

ॐ अँः नमः	मुखे (जिह्वाग्रे)
ॐ कँः नमः	दक्ष बाहुमूले
ॐ खँः नमः	दक्ष बाहुकूर्परे
ॐ गँः नमः	दक्ष मणिबन्धे
ॐ घँः नमः	दक्षांगुलिमूलेषु
ॐ ङँः नमः	दक्षांगुल्यग्रेषु
ॐ चँः नमः	वाम बाहुमूले
ॐ छँः नमः	वाम कूर्परे
ॐ जँः नमः	वाम मणिबन्धे
ॐ झँः नमः	वामांगुलिमूलेषु
ॐ ञँः नमः	वामांगुल्यग्रेषु
ॐ टँः नमः	दक्ष पादमूले
ॐ ठँः नमः	दक्ष जानुनि

मातृकाओं के साथ केवल अनुस्वार का योग करके भी (**अं,आं,इं.. ..इत्यादि** रूप से) सामान्यतः सभी न्यासों को किया जा सकता है।

।। इति मातृकान्यास-सम्पूर्णम्।।

॥कला-मातृका न्यासः॥

पूर्ववत् मातृका वर्णों से प्राणायाम कर हाथ जोड़कर विनियोग बोलें।

विनियोगः - **अस्य ॐ कलामातृका न्यासस्य प्रजापति ऋषिः, गायत्री छन्द, कला सरस्वती देवता, ॐ बीजं, नमः शक्तिः, कलाः कीलकं श्री दक्षिण कालिका देवता पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये विनियोगः।**

षडङ्ग-न्यास :- **ॐ आं ॐ हृदयाय नमः। ॐ ईं ॐ शिरसे स्वाहा। ॐ ऊं ॐ शिखायै वषट्। ॐ ऐं ॐ कवचाय हुं। ॐ औं ॐ नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ अंः ॐ अस्त्राय फट्।**

(उपर्युक्त षडङ्ग मन्त्रों को बोलते हुए क्रमशः हृदय, मस्तक, शिखा, दाहिने हाथ से बायां तथा बायें हाथ से दाहिना कन्धा (बाहु मूल) तथा भ्रूमध्य सहित दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए। 'अस्त्राय फट्' बोलने पर दाहिने हाथ को शिर के चारों ओर वामावर्त (पुरुष देवता की उपासना में दक्षिणावर्त) घुमाकर वाम करतल पर दक्ष तर्जनी-मध्यमा से तीन ताल देना चाहिए। वैसे तो यहाँ कर-न्यास की विशेष आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि साधक चाहे तो निम्न प्रकार से उपर्युक्त षडङ्ग न्यास से पहले कर सकता है।)

ॐ आं ॐ हृदयाय नमः - (अंगुष्ठयोः-दोनों तर्जनियों से दोनों अंगुष्ठों का स्पर्श करें)। **ॐ ई ॐ शिरसे स्वाहा** - (तर्जन्योः - दोनों अंगुष्ठों से दोनों तर्जनियों को स्पर्श करे)। **ॐ ऊं ॐ शिखायै वषट्** - (मध्यमयोः- अंगुष्ठों से मध्यमाओं को स्पर्श करें)। **ॐ ऐं ॐ कवचाय हुं** - (अनमिकयोः-अंगुष्ठों से अनामिकाओं को स्पर्श करें)। **ॐ औं ॐ नेत्रत्रयाय वौषट** - (कनिष्ठयोः - अंगुष्ठों से कनिष्ठाओं को स्पर्श करें)। **ॐ अंः अस्त्राय फट्** (करतलकर-पृष्ठयोः - दाहिनी अंगुलियों से बांये करतल तथा कर पृष्ठ को एवं बायीं अंगुलियों से दाहिने करतल व करपृष्ठ को स्पर्श करे)।

न्यास के पश्चात् ध्यान करें। यथा-

हस्तैः पद्मं स्थाङ्ग गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्णमालां,
टङ्कं शुभ्रं कपालं दरममृत-लसद्धेमकुम्भं वहन्तीम्।
मुक्ताविद्युतपयोदस्फटिकनवजपाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रैः,
त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभां शारदां तां नमामि॥

उपर्युक्त रूप से शारदा (सरस्वती) का ध्यान कर मानसोपचार पूजन करें।

न्यास विधिः (ऐं ह्रीं श्रीं ॐ=४)

४ अं निवृत्ति कलायै नमः	शिरसि
४ आं प्रतिष्ठा कलायै नमः	मुखे
४ इं विद्या कलायै नमः	दक्ष नेत्रे
४ ई शान्ति कलायै नमः	वाम नेत्रे
४ उं इन्धिका कलायै नमः	दक्ष कर्णे
४ ऊं दीपिका कलायै नमः	वाम कर्णे
४ ऋं रेचिका कलायै नमः	दक्ष नसि
४ ॠं मोचिका कलायै नमः	वाम नसि
४ लृं परा कलायै नमः	दक्ष गण्डे
४ लॄं सूक्ष्मा कलायै नमः	वाम गण्डे
४ एं सूक्ष्मामृता कलायै नमः	ऊर्ध्वोष्ठे
४ ऐं ज्ञानामृता कलायै नमः	अधरोष्ठे
४ ओं आप्यायिनी कलायै नमः	ऊर्ध्वदन्त पंक्तौ
४ औं व्यापिनी कलायै नमः	अधोदन्त पंक्तौ
४ अं व्योमरूपा कलायै नमः	ललाटे
४ अंः अनन्तरूपा कलायै नमः	जिह्वायां

इसके बाद बोलें-

४ विष्णुयोनिं कल्पयतु त्वष्टारूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा।। नमः।।

४ अं आं......अं अः (सोलहो स्वरों को बोलकर) भुक्ति मुक्ति प्रदनादजानन्त कलाभ्यो नमः, इस मन्त्र को बोलकर मुख पर व्यापक न्यास करें। (पूरे मुख-मण्डल पर दाहिना हाथ फेरें।)

४ कं सृष्टि कलायै नमः	दक्ष स्कन्धे
४ खं ऋद्धि कलायै नमः	दक्ष कूर्परे
४ गं स्मृति कलायै नमः	दक्ष मणिबन्धे
४ घं मेधा कलायै नमः	दक्ष अंगुलिमूले
४ ङं कान्ति कलायै नमः	दक्ष अंगुल्यग्रे
४ चं लक्ष्मी कलायै नमः	वाम स्कन्धे (बाहू-मूले)
४ छं धृति कलायै नमः	वाम कूर्परे (कोहिनी)
४ जं स्थिरा कलायै नमः	वाम मणिबन्धे
४ झं स्थिति कलायै नमः	वाम अंगुलिमूले
४ ञं सिद्धि कलायै नमः	वाम अंगुल्यग्रे

४ हंसः शुचिसद् वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्-वरसदृत सदव्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।। नमः।। ४ कं खं.....झं ञं सृष्टिप्रदाकारप्रभव ब्रह्म कलाभ्यो नमः। बोलकर दोनों भुजाओं पर व्यापक न्यास करें। (दाहिने हाथ से बांये हाथ की अंगुलियों से ऊपर कंधे तक फिर कन्धे से अंगुलियों तक स्पर्श करें। इसी प्रकार बांये हाथ से दाहिने हाथ पर भी करें।)

४ टं जरा कलायै नमः	दक्षपादमूले
४ ठं पालिनी कलायै नमः	दक्ष जानुनि
४ डं शान्ति कलायै नमः	दक्ष गुल्फे
४ ढं ऐश्वरी कलायै नमः	दक्ष पादांगुलिमूले
४ णं रति कलायै नमः	दक्षपादांगुल्यग्रे
४ तं कामिका कलायै नमः	वामपादमूले
४ थं वरदा कलायै नमः	वाम जानुनि

४ दं ह्लादिनी कलायै नमः	वाम गुल्फे
४ धं प्रीति कलायै नमः	वाम पादांगुलिमूले
४ नं दीर्घा कलायै नमः	वामपादांगुल्यग्रे

४ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरूषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।नमः।। ४ टं ठं.....धं नं स्थिति प्रदोकारप्रभवविष्णुकलाभ्यो नमः। बोलकर दोनों पैरों पर व्यापक न्यास करें।

४ पं तीक्ष्णा कलायै नमः	दक्ष पार्श्वे
४ फं रौद्री कलायै नमः	वाम पार्श्वे
४ बं भया कलायै नमः	पृष्ठे
४ भं निन्द्रा कलायै नमः	नाभौ
४ मं तन्द्रा कलायै नमः	जठरे (उदरे)
४ यं क्षुधा कलायै नमः	हृदये
४ रं क्रोधिनी कलायै नमः	दक्षांसे
४ लं क्रिया कलायै नमः	वामांसे
४ वं उत्कारी कलायै नमः	ककुदि
४ शं मृत्यु कलायै नमः	हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्ते

४ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।नमः।।४ पं फं......वं शं संहृतिप्रदमकारप्रभवरुद्रकलाभ्यो नमः, हृदय से उदर तक मध्य भाग में व्यापक न्यास करें।

४ षं पीता कलायै नमः	हृदयादि वामकरांगुल्यन्ते
४ सं श्वेता कलायै नमः	हृदयादि दक्षपादान्तम्
४ हं अरुणा कलायै नमः	हृदयादि वामपादान्तम्
४ ळं असिता कलायै नमः	हृदयादि नाभ्यन्तम् (पादादिनाभ्यन्तम्)
४ क्षं सिता कलायै नमः	हृदयादि मूर्धान्तम् (नाभ्यादिमूर्धान्तम्)

४ तत्सवितुर्वरेण्यं० इत्यादि (गायत्री मन्त्र), ४ षं सं हं ळं क्षं तिरोधान प्रदविन्दुप्रभवेश्वर कलाभ्यो नमः। बोलकर सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करें।

[श्री विद्यार्णव तन्त्र में बिन्दु से उत्पन्न पाँचवी (ईश्वर कला) **'सिता कला'** उद्घृत है। कुछ अन्य ग्रन्थों में **'अनन्त कला'** कही गयी हैं। **'श्री प्रपञ्चसार तन्त्र'** में **'व्यञ्जनोद्भवविष्णु शक्ति नाम'** वर्णन में (पटल-३, श्लोक ३५ से ३७ तक) शक्तियों की संख्या ३५ के बजाय ३६ (एक अधिक) हो जाने पर, उसमें वर्णित **'भुक्ति'** शक्ति (कला) को बिन्दु कलाओं के साथ योजित करने का निर्देश, इसके विवरण कार **'आचार्य पद्मपाद'** ने दिया है - **'भुक्तिर्बिन्दुकलासु योज्या'**]

इसके पश्चात् साधक 'श्री कण्ठादि-मातृका-न्यास' करे। यहाँ शक्तियों सहित रुद्र मूर्तियों के नाम (श्री कण्ठादि) 'श्री प्रपञ्चसार तन्त्र' के आधार पर दिये गये हैं।

॥श्रीकण्ठादि मातृका-न्यासः॥

विनियोगः- **ॐ अस्य श्री कण्ठादि मातृका न्यासस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्री अर्धनारीश्वरो देवता 'ह्सौं' बीजं, 'नमः' शक्तिः, शिव-शक्ति' कीलकं श्रीमद् दक्षिणा कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्तये न्यासे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः- **दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः** - (शिरसि)। **गायत्री छन्दसे नमः** - (मुखे)। **श्री अर्धनारीश्वर देवतायै नमः** - (हृदि)। **ह्सौं बीजाय नमः** - (गुह्ये)। **नमः शक्तये नमः** (पादयोः)। **शिव-शक्ति कीलकाय नमः** - (नाभौ)। **श्रीमद् दक्षिण कालिका देवतायाः पूजाङ्गत्वेन देवता भावाप्त्ये न्यासे विनियोगाय नमः** - (अञ्जलौ)।

श्री विद्यार्णव तन्त्र में (**'षड्दीर्घयुक्त बीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्'** के अनुसार) **ह्सां, ह्सीं, ह्सूं, ह्सैं, ह्सौं** तथा **ह्सः** से षडङ्गों का न्यास करना चाहिए। परन्तु कुछ ग्रन्थों में निम्नवत् **'कर-न्यास'** तथा **'षडङ्ग (हृदयादि) न्यास'** दिया गया है। साधक इच्छानुसार जैसा चाहे कर सकता है।

कर न्यासः	षडङ्ग न्यासः
अं कं खं गं घं ङं आं ह्सां अंगुष्ठा० नमः	**हृदयाय नमः**
इं चं छं जं झं ञं ईं ह्सीं तर्जनी० स्वाहा	**शिरसे स्वाहा**
उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्सूं मध्यमा० वषट्	**शिखायै वषट्**
एं तं थं दं धं नं ऐं ह्सैं अनामि० हुं	**कवचाय हुम्**
ओं पं फं बं भं मं औं ह्सौं कनिष्ठा० वौषट्	**नेत्रत्रयाय वौषट्**
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः ह्सः करतल० फट्	**अस्त्राय फट्**

इसके बाद ध्यान करके मानसोपचार पूजन करे फिर न्यास करे।

ध्यानम्- **बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां, पाशांकुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः।**
विभ्राणमिन्दु-शकलाभरणं त्रिनेत्रं, अर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

अब निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र को बोलते हुए मातृका न्यास में वर्णित निर्देशानुसार मातृका स्थानों (शरीराङ्गों) को स्पर्श करते हुए न्यास करें। साधक चाहे तो तत्व मुद्रा अथवा तत्व मुद्रा से पुष्प ग्रहण कर उसके द्वारा मातृका स्थानों को स्पर्श करता हुआ भी इन न्यासों को कर सकता है।

ह्सौं अं श्रीकण्ठ-पूर्णोदरीभ्यां नमः
ह्सौं आं अनन्त-विरजाभ्यां नमः
ह्सौं इं सूक्ष्म-शाल्मलीभ्यां नमः
ह्सौं ईं त्रिमूर्ति-लोलाक्षीभ्यां नमः
ह्सौं उं अमरेश्वर-बर्तुलाक्षीभ्यां नमः
ह्सौं ऊं अर्घीश-दीर्घाघोणाभ्यां नमः
ह्सौं ऋं भवभूति-सुदीर्घमुखीभ्यां नमः
ह्सौं ॠं तिथि-गोमुखीभ्यां नमः
ह्सौं लृं स्थाणु-दीर्घजिह्विकाभ्यां नमः
ह्सौं लृं हर-कुण्डोरीदभ्यां नमः
ह्सौं एं झिण्टीश-ऊर्ध्वकेशीभ्यां नमः
ह्सौं ऐं भौतिक-विकृतमुखीभ्यां नमः
ह्सौं ओं सद्योजात-ज्वालामुखीभ्यां नमः
ह्सौं औं अनुग्रहेश्वर-उल्कामुखीभ्यां नमः
ह्सौं अं अक्रूर-श्रीमुखीभ्यां नमः
ह्सौं अः महासेन-विद्यामुखीभ्यां नमः
ह्सौं कं क्रोधीश-महाकालीभ्यां नमः
ह्सौं खं चण्डेश-सरस्वतीभ्यां नमः
ह्सौं गं पञ्चान्तक-गौरीभ्यां नमः
ह्सौं घं शिवोत्तम-त्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः
ह्सौं ङं एकरुद्र-मन्त्रशक्तिभ्यां नमः
ह्सौं चं कूर्म-आत्मशक्तिभ्यां नमः
ह्सौं छं एकनेत्र-भूतमातृभ्यां नमः
ह्सौं जं चतुरानन-लम्बोदरीभ्यां नमः
ह्सौं झं अजेश-द्राविणीभ्यां नमः
ह्सौं ञं शर्व-नागरीभ्यां नमः
ह्सौं टं सोमेश्वर-खेचरीभ्यां नमः
ह्सौं ठं लाङ्गलि-मञ्जरीभ्यां नमः
ह्सौं डं दारुक-रूपिणीभ्यां नमः
ह्सौं ढं अर्धनारीश्वर-वीरणीभ्यां नमः
ह्सौं णं उमाकान्त-कोटरीभ्यां नमः
ह्सौं तं आषाढि-पूतनाभ्यां नमः
ह्सौं थं दण्डी-भद्रकालीभ्यां नमः
ह्सौं दं अद्रि-योगिनीभ्यां नमः
ह्सौं धं मीन-शंखिनीभ्यां नमः
ह्सौं नं मेष-गर्जिनीभ्यां नमः
ह्सौं पं लोहित-कालरात्रिभ्यां नमः
ह्सौं फं शिखी-कुब्जिनीभ्यां नमः
ह्सौं बं छलगण्ड-कपर्दिनीभ्यां नमः
ह्सौं भं द्विरण्ड-महावज्राभ्यां नमः
ह्सौं मं महाकाल-जयाभ्यां नमः
ह्सौं यं कपाली-सुमुखेश्वरीभ्यां नमः
ह्सौं रं भुजङ्गेश-रेवतीभ्यां नमः
ह्सौं लं पिनाकी-माधवीभ्यां नमः
ह्सौं वं खड्गीश-वारुणीभ्यां नमः
ह्सौं शंः वक-वायवीभ्यां नमः
ह्सौं षं श्वेत-रक्षोपधारिणीभ्यां नमः
ह्सौं सं भृगु-सहजाभ्यां नमः
ह्सौं हं नकुली-लक्ष्मीभ्यां नमः
ह्सौं ळं शिव-व्यापिनीभ्यां नमः
ह्सौं क्षं संवर्तक-मायाभ्यां नमः

इसके पश्चात् साधक को षोढा न्यास करना चाहिए। मैंने अनेकों ग्रन्थों में 'काली-षोढा न्यास' विधि का अवलोकन किया। पूर्णतः ऐसी शुद्ध विधि मुझे प्राप्त नहीं हुई जो 'वीरतन्त्र' के मूल श्लोकों के अर्थों के अनुकूल हो। अतः साधकों को किसी प्रकार का भ्रम न हो, मैं यहाँ मूल श्लोकों को देकर उसी के अनुसार विधि का वर्णन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

॥(काली) षोढा न्यास॥

वीरतन्त्रे-

केवल मातृकां कृत्वा मातृकां तारसम्पुटम्। मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः॥
श्री बीज पुटितां तान्तु मातृकापुटितञ्च तत्। कामेन पुटितां देवीं तत्पुटं काममेव च॥
शक्त्या च पुटिताँ देवीं शक्तिञ्च तत्पुटां न्यसेत्। ह्रीं द्वद्वञ्च पुनर्न्यस्त्वा ऋंॠंलृंलॄञ्च पूर्ववत्॥
मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च। अनुलोम विलोमेन न्यस्त्वा मन्त्रं यथाविधिः॥
मूलेनाष्ट शतं कुर्यात् व्यापकं तदनन्तरम्॥

॥ न्यास-विधिः॥

षोढा-न्यास के अन्तर्गत छः प्रकार से न्यास (मातृका-न्यास) किये जाते हैं। इनका क्रम श्लोकानुसार निम्नवत् है।

प्रथम - **'केवलं मातृकां कृत्वा'** अर्थात् पहले साधक अन्तर्बहिः रूप मातृका न्यास (अथवा पूवोक्त वर्ण-न्यास) कर ले। इसके बाद **'मातृकां तार सम्पुटं'** मातृका वर्णों को 'ॐ' से सम्पुटित कर तथा **'मातृकापुटितं तारं'** मातृका वर्णों से 'ॐ' को सम्पुटित करके न्यास करे। यथा -

ॐ अं ॐ नमः (शिरसि)। **ॐ आं ॐ नमः** (मुखे)। इसी प्रकार अन्तिम वर्ण **ॐ क्षं ॐ नमः** (हृदयादि मूर्धान्तम्)। इसके बाद पुनः **अं ॐ अं नमः, आं ॐ आं नमः ....क्षं ॐ क्षं नमः।**

द्वितीय - श्रीं बीज से पुटित मातृका-**श्रीं अं श्रीं नमः, श्रीं आं श्रीं नमः....श्रीं क्षं श्रीं नमः** तक। पुनः **अं श्रीं अं नमः, आं श्रीं आं नमः ......क्षं श्रीं क्षं नमः** तक न्यास करें।

तृतीय - कामबीज क्लीं से पृटित मातृका- **क्लीं अं क्लीं नमः, क्लीं आं क्लीं नमः..........क्लीं क्षं क्लीं नमः** तक न्यास करें। पुनः **अं क्लीं अं नमः, आं क्लीं आं नमः............क्षं क्लीं क्षं नमः** तक न्यास करें।

चतुर्थ - शक्ति बीज 'ह्रीं' से पुटित मातृका - **ह्रीं अं ह्रीं नमः, ह्रीं आं ह्रीं नमः............ह्रीं क्षं ह्रीं नमः** तक पुनः **अं ह्रीं अं नमः, आं ह्रीं आं नमः..........क्षं ह्रीं क्षं नमः** तक न्यास करें।

पञ्चम - मूल श्लोक की छठवीं पंक्ति का अन्वय इस प्रकार होगा- पहले **'ह्रीं ह्रीं'** लिखें फिर **'ऋं ॠं लृं लॄं'** लिखकर पुनः **'ह्रीं ह्रीं'** लिखें। इस प्रकार प्राप्त **'ह्रीं ह्रीं ऋं ॠं लृं लॄं ह्रीं ह्रीं'** रूप अष्ट वर्णात्मक मन्त्र से पहले क्रमशः मातृका वर्णों को सम्पुटित करके तत्पश्चात् मातृका वर्णों द्वारा इन अष्ट वर्णों को सम्पुटित करके न्यास करें। यथा -

'ह्रीं ह्रीं ऋं ॠं लृं लॄं अं ह्रीं ह्रीं ऋं ॠं लृं लॄं नमः' इत्यादि रूप से **'क्षं'** तक न्यास करें। इसके बाद **'अं ह्रीं ह्रीं ऋं ॠं लृं लॄं अं नमः'** इत्यादि रूप से न्यास करें।

षष्ठ - 'मूलेन पुटितां' इत्यादि का भाव यह है कि मूल मन्त्र से मातृका को पुटित कर फिर मातृका से मूल मन्त्र को सम्पुटित करके न्यास करें। यथा - **मूलं अं मूलं नमः, मूलं आं मूलं नमः................मूलं क्षं मूलं नमः** तक पुनः **अं मूलं अं नमः, आं मूलं आं नमः........क्षं मूलं क्षं नमः** तक।

आठवीं तथा नौवी पंक्तियों का इस प्रकार अर्थ करेंगे - उपर्युक्त रूप से विधिवत् अनुलोम-विलोम रूप से मन्त्रो को (मातृका वर्णों सहित) न्यास करके एक सौ आठ बार मूल मन्त्र बोलते हुए व्यापक न्यास करें।

विमर्श- इस षोढा न्यास में, बीज पुटित मातृका तथा मातृका पुटित बीजों द्वारा न्यास के जो उदाहरण ग्रन्थों में दिये गये हैं (यथा **ॐ अं ॐ नमः शिरसे, ॐ आं ॐ नमः मुखे** इत्यादि) वे सृष्टि न्यासवत् हैं। मेरे विचार से साधक को अपने अधिकारानुसार क्रम से तीनों न्यास अथवा यति को संहार न्यास, गृहस्थ को स्थिति न्यास तथा ब्रह्मचारी को केवल सृष्टि न्यास विधि से इन न्यासों को करना चाहिए।

॥ तत्व-न्यासः ॥[१]

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ॐ आत्मतत्वाय नमः (पैरों से नाभि पर्यन्त तत्व मुद्रा से स्पर्श करें।)

२. दक्षिणे कालिके ॐ विद्या तत्वाय नमः (नाभि से हृदयपर्यन्त)।

३. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ॐ शिव तत्वाय नमः (हृदय से शिर पर्यन्त स्पर्श करें)।

॥ बीज-न्यासः ॥

'क्रीं' नमः (ब्रह्मरन्ध्र में)। **क्रीं नमः** (भ्रूमध्य)। **क्रीं नमः** (ललाट)। **हूं नमः** (नाभि)। **हूं नमः** (गुह्य)। **ह्रीं नमः** (मुख)। **ह्रीं नमः** (सर्वाङ्ग में)।

॥ मन्त्र-वर्ण-न्यासः ॥

क्रीं नमः (शिर में)। **क्रीं नमः** (नेत्रों में)। **क्रीं नमः** (ललाट में)। **हूं नमः** (भ्रूमध्य)। **हूं नमः** (दोनों कान में)। **ह्रीं नमः** (गालों में)। **ह्रीं नमः** (मुख में)। **दं नमः** (दांतों में)। **क्षिं नमः** (जिह्वा में)। **णें नमः** (दोनों कन्धों में)। **कां नमः** (कण्ठ में)। **लिं नमः** (भुजाओं में)। **कें नमः** (हृदय में)। **क्रीं नमः**

---

[१] एकाक्षरी मन्त्र की साधना में 'तत्व न्यास' तथा 'बीज न्यास' का पूर्णतः अभाव है।

(दोनों पाश्वों में)। **क्रीं नमः** (पीठ में)। **क्रीं नमः** (नाभि में)। **हूं नमः** (लिङ्ग में)। **हूं नमः** (कटि में)। **ह्रीं नमः** (मूलाधार में)। **ह्रीं नमः** (करतलों में)। **स्वां नमः** (दोनों पैरों में)। **हां नमः** (सर्वाङ्ग में)।

एकाक्षरी विद्या न्यासः (एकाक्षरी साधना में) –

प्रत्येक बार 'क्रीं नमः' बोलते हुए शिर, मूलाधार, हृदय, दोनों नेत्र, कानों, मुख, भुजाओं, पीठ तथा घुटनों (जानु) में न्यास करें।

वर्णन्यास के पश्चात् साधक मूलमन्त्र से नौ, सात अथवा पाँच (अथवा तीन) बार व्यापक न्यास करे। इसके पश्चात् स्वशरीर में पीठ-न्यास करें।

॥पीठ-न्यासः॥

मन्त्रवर्ण न्यास के बाद साधक अपने शरीर में देवता के पीठ का न्यास करे। यथा –

मं मण्डूकाय नमः (मूलाधारे)। **कं कालाग्नि रुद्राय नमः** (स्वाधिष्ठाने)। **मूं मूल-प्रकृत्यै नमः** (मणिपूरके)।

हृदयस्थपद्म-मध्ये – हृदय पर दाहिने हाथ को तत्व मुद्रा से (अथवा करतल को) रखकर बाले – **ॐ ह्रीं आधार शक्त्यै नमः**। इसी प्रकार आगे 'नमः' जोड़ते हुए, **प्रं प्रकृतये, कूं कूर्माय, शें शेषाय, पृं पृथिव्यै, सुं सुधाम्बुधये, मं मणिद्वीपाय, चिं चिन्तामणिगृहाय, श्मं श्मशानाय, पां परिजाताय,** (परिजात मूले), **रं रत्नवेदिकायै,** (तदुपरि) **मं मणिपीठाय,** (पीठस्य चतुर्दिक्षु) **मुं मुनिभ्यो, दें देवेभ्यो,** (परितः बहुमांसास्थिमोदमान) **शिं शिवाभ्यो** तथा **शं शवमुण्डेभ्योः नमः**।

अग्न्यादि कोणेषु – आग्नेय अदि कोण दिशाओं में पूर्ववत् **'नमः'** जोड़ते हुए – **धं धर्माय, ज्ञां ज्ञानाय, वैं वैराग्याय** तथा **ऐं ऐश्वर्याय।**

पूर्वादिदिक्षु – पूर्वादि दिशाओं में – **अं अधर्माय, अं अज्ञानाय, अं अवैराग्याय** तथा **अं अनैश्वर्याय।**

अथवा

धं धर्माय नमः (दक्षस्कन्धे)। **ज्ञां ज्ञानाय नमः** (वामस्कन्धे)। **वैं वैराग्याय नमः** (वाम जंघे)। **ऐं ऐश्वर्याय नमः** (दक्ष जंघे)। **अं अधर्माय नमः** (मुखे)। **अं अज्ञानाय नमः** (वामकक्षायां-काँख में)। **अं अवैराग्याय नमः** (नाभौ)। **अं अनैश्वर्याय नमः** (दक्ष कक्षायां – काँख में)।

मध्ये (कर्णिकायां मणिपीठे वा) – आं आनन्दकन्दाय, सं संविन्नालाय, प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो, विं विकारमयकेशरेभ्यो, तं तत्वरूप

कर्णिकायै, पं पद्माय, अं अर्कमण्डलाय, उं सोम मण्डलाय, मं अग्नि मण्डलाय, सं सत्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने तथा **ह्रीं ज्ञानात्मने**। पूर्ववत् प्रत्येक के साथ **'नमः'** का योग करते हुए न्यास करें।

पत्रमूलेषु - पूर्वादि क्रम से अष्ट दलों पर न्यास करें। **इं इच्छायै** (अथवा इच्छाशक्त्यै), **ज्ञां ज्ञानायै, क्रिं क्रियायै, कां कामिन्यै, कां कामदायिन्यै, रं रत्यै, रं रति-प्रियायै, आं आनन्दायै**। कर्णिका में-**मं मनोन्मन्यै**। मध्य में- **ऐं परायै, ऐं अपरायै, ऐं परापरायै (विरूपायै)** तथा **ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय**। पूर्ववत् **'नमः'** का योग करते हुए न्यास करें।

इस प्रकार पीठ न्यास कर स्वशरीर को मन्त्रमय देहपीठ रूप बनाकर उस पर इष्ट देवता का ध्यान करें। तत्पश्चात् स्वयं की कामकला रूप से भावना करे। यथा -

मिहिरविन्दुमुखीं तदधो लसच्छशि-हुताशन-बिन्दु युगस्तनीम्।
हसपरार्ध कला रचनास्पदां भजत नित्यमिमां परदेवताम्॥

अनुस्वार युक्त तुरीय स्वर (ईं) में जिसका मुख अनुस्वार (सूर्य) रूप प्रथम बिन्दु से, दोनों स्तन विसर्ग रूप दो बिन्दुओं (शशि-अग्नि रूप) से तथा योनि हार्ध कला से निर्मित है, ऐसी परादेवता के रूप में स्वयं को अनुभव करे।

कामकला रूप भावना के पश्चात् मूलाधार से परम शिव पर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान कर उसे वहाँ स्थित अमृत से सम्प्लावित कर कच्छपमुद्रा से पुष्प ग्रहण कर सुषुम्ना के बाहर स्थित हृदयस्थ रक्त अष्ट दल कमल के मध्य देवी का ध्यान करें। महाकाली (दक्षिणा काली) के ध्यान स्वरूप का पहले वर्णन किया जा चुका है, उसी प्रकार से यहाँ ध्यान किया जायेगा। ध्यान के पश्चात् मानस पूजन करें। यथा -

मानस पूजनम् - सहस्रार में स्थित अमृत को कुण्डलिनी रूपी पात्र के द्वारा पाद्य के रूप में देवी के चरणों में प्रदान करें। इसके बाद 'मन' रूप अर्घ्य देकर सहस्रदलपद्मरूप (स्वर्ण) कलश से स्रवित परामृत रूप जल से मुख में आचमन प्रदान करें। शरीरस्थ पचीस तत्व रूप 'गन्ध' प्रदान करें। अहिंसा, विज्ञान, क्षमा, दया, अलोभ, अमोह, अमात्सर्य, अमाया, अनहङ्कार, अराग, अद्वेष तथा (ज्ञान-कर्म रूप) दसो इन्द्रियों को पुष्प रूप में देवी को अर्पित करें। इसके बाद वायु रूप धूप, तेज (अग्नि) रूप दीप, आकाशात्मक चामर, सूर्यात्मक दर्पण, चन्द्रात्मक छत्र, नक्षत्रात्मक मेखला, आनन्दात्मक उज्जवल हार तथा अनाहत नादमय घंटा निवेदित कर समुद्र को सुधारस के रूप में तथा पर्वतों को मांस रूप में अर्पित करना चाहिए।

मानस जपम् - मानस पूजन के पश्चात् मूलाधार, आज्ञाचक्र तथा सहस्रार में कामबीज 'क्लीं' का ध्यान कर मूल मन्त्र के प्रथम वर्ण से लेकर अन्तिम वर्ण तक को देवता के शिर से लेकर पैर तक व्याप्त रूप से ध्यान करें अथवा सहस्रार से मूलाधार तक व्याप्त ध्यान करें। इसके बाद मातृका वर्णों के सहयोग से जप करें। यथा -

अं मूलं, आं मूलं इसी प्रकार **लं मूलं** (क्ष से पहले) तक जप करें 'क्ष' के साथ जप नहीं किया जाता। क्योंकि इसे सुमेरु माना जाता है, केवल 'क्षं' उच्चारण करते हैं। पुनः विलोम क्रम से **लं मूलं, हं मूल, सं मूल....अं मूल** तक जप करें। इस प्रकार जप की संख्या सौ हो जायेगी। इसके बाद वर्गाद्य वर्णों **(अं, कं, चं, टं, तं, पं, यं** तथा **शं)** के साथ पूर्ववत् जप करें। इस प्रकार जप की संख्या एक सौ आठ पूर्ण हो जायेगी।

इसकी दूसरी विधि इस प्रकार है - विशुद्ध चक्र का ध्यान करते हुए सोलह बार जप करें। इसी प्रकार अनाहत में बारह, मणिपूर में दस, स्वाधिष्ठान में छः, मूलाधार में चार तथा आज्ञा चक्र में (उसका ध्यान करते हुए) दो बार जप करें। पुनः विलोम क्रम से आज्ञा चक्र, मूलाधार इत्यादि में जप करें। इस प्रकार जप की संख्या सौ हो जायेगी। इसके बाद जिस अष्ट दल पद्म पर देवता का ध्यान किया गया है उसके प्रत्येक दल पर एक-एक वर्गाद्य वर्ण का ध्यान करते हुए आठ बार जप करें। इस प्रकार जप की संख्या एक सौ आठ पूर्ण हो जायेगी। जप करते समय चक्रों में स्थित प्रत्येक वर्ण का ध्यान करते हुए जप किया जाता है। चक्रों में वर्णों की स्थिति इस प्रकार है-

विशुद्ध (कण्ठ में) - अ से अः तक सोलह वर्ण। **अनाहत (हृदय)**- क से ठ तक बारह वर्ण। **मणिपूर (नाभि)** - ड से फ तक दश वर्ण। **स्वाधिष्ठान (लिङ्ग मूल)** - ब से ल तक छः वर्ण। **मूलाधार (गुदा लिङ्ग मध्य)** - श ष स ह चार वर्ण। **आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य)** - ह ळ दो वर्ण।

इस प्रकार एक सौ आठ बार जप करके मानस रूप से उसका समर्पण भी करना चाहिए। इसके बाद साधक संभव हो तो मानस तर्पण तथा मानस हवन भी करे।

मानस तर्पणम् - मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्र द्वय रूप वह्निमण्डलात्मक आधार पर, मणिपूर तथा अनाहत चक्र द्वय रूप सूर्यमण्डलात्मक पात्र में स्थित, विशुद्ध तथा आज्ञा द्वय चक्र रूप सोममण्डलात्म परामृत से, जो अमाकला से स्वशक्ति-पर शिव के संयोग द्वारा उत्पन्न हुआ है, पर देवता की तृप्ति (तर्पण) होती है। इसके लिए साधक को प्राणायाम विधि द्वारा श्वास को ऊपर की ओर खींच कर कुम्भक करके स्वयं को स्व-इष्ट रूप परदेवता में पूर्ण रूप से समर्पण करने की भावना करनी चाहिए। इस मानसिक क्रिया के फलस्वरूप जिस विशेष आनन्द की उत्पत्ति (अनुभूति) होती है, उसे भी देवता को समर्पित कर उसे तृप्त करना चाहिए। इस क्रिया को न्यूनतम तीन बार करना चाहिए।

मानस हवन - अहंकार, असत्य, पिशुनता (चुगलखोरी), काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य (ईर्ष्या) आदि रूप हवि, मन रूप स्रुवा तथा सुषुम्ना रूप स्रुक् की कल्पना करके **'मूलाधार'** में आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा तथा ज्ञानात्मक रूप चतुष्कोणात्मक अग्निकुण्ड की भावना कर उसमें कुण्डलिनी रूप प्रज्वलित अग्नि का चिन्तन करके मन ही मन 'मूल मन्त्र' का उच्चारण करके-

धर्माधर्महविर्दीप्ते स्वात्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्॥

इस श्लोक को बोलकर **'पुण्यं जुहोमि स्वाहा'** बोलते हुए प्रथम आहुति प्रदान (करने की भावना) करें।

पुनः मूल-मन्त्र के पश्चात् पूर्वोक्त श्लोक बोलते हुए **'पापं जुहोमि स्वाहा'** से दूसरी, **'कृत्यं जुहोमि स्वाहा'** से तीसरी, **'अकृत्यं स्वाहा'** से चौथी, **'सङ्कल्पं जुहोमि स्वाहा'** से पाँचवी, **'विकल्पं जुहोमि स्वाहा'** से छठवीं तथा **'धर्मं जुहोमि स्वाहा'** से सातवीं आहुति प्रदान करके पूर्णाहुति प्रदान करें। यथा-

मूलान्ते प्रकाशामर्ष-हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुवम्।
धर्माधर्मकलास्नेहं पूर्णवह्नौ जुहोम्यहम्, स्वाहा॥

(कुछ ग्रन्थों में **'प्रकाशामर्ष'** के स्थान पर **'प्रकाशाकाश'** का प्रयोग है।)

इस प्रकार पूर्णाहूति प्रदान करने के पश्चात् समस्त (कर्ता-भोक्तादिरूप) उपाधियों से पूर्णतः मुक्त हुआ **'सच्चिदानन्द'** रूप स्वयं को अनुभव करके मूलमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके (कुछ ग्रन्थों में होम से पहले जप का विधान कहा गया है) उसे देवता को समर्पित कर दें।

॥ पूजन यन्त्र संरचना॥

अब साधक वाह्यार्चन के लिए सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, श्मशान काष्ठ, स्फटिक, अष्ट धातु, कपाल, शव (ये दोनों वीर साधकों के लिए विशेष) आदि के सुन्दर फलक पर **'स्वयम्भू पुष्प', कुण्डगोलोद्भव (पुष्प), गोरोचन, अगुरु, केशर, कस्तूरी, मद्य** तथा **मलयजचन्दन'** इन आठ पदार्थों के मिश्रण से यन्त्र का लेखन करे अथवा इनमें से जो भी उपलब्ध हो उनके मिश्रण से अथवा केवल लाल चन्दन से यन्त्र का लेखन करें। उपर्युक्त अष्ट पदार्थों (गन्धों) से लिखने के पहले यन्त्र-फलक पर **'लाल चन्दन'** अथवा **'स्वयम्भू पुष्प'** अथवा **'रक्त'** का लेपन करना चाहिए तथा **'स्वर्ण-शलाका'** अथवा **'लाल-चन्दन'** की लेखनी द्वारा लेखन कार्य करना चाहिए।

प्रथम-यन्त्रम् (काली-तन्त्रे) - पहले एक त्रिकोण बनाकर उसके बाहर एक और त्रिकोण बनायें। पुनः इन दोनों के बाहर तीन त्रिकोण और बनाये। इसके बाद क्रमशः बाहर होते हुए वृत्त-अष्टदल पद्म-वृत्त तथा एक-भूपुर बनाये। (प्रथम त्रिकोण के मध्य बिन्दु पर **'ह्रीं'** लिखें।)

द्वितीय-यन्त्रम् (भैरव-तन्त्रे) - शक्ति त्रिकोण (अधोमुख) तथा अग्नि त्रिकोण (ऊर्ध्वमुख) के संयोग से पहले 'षटकोण' बनाये। पुनः इसके मध्य में तीन अधोमुख त्रिकोण क्रमशः बाह्य होते हुए बनाये। इसके बाद षट्कोण के बाहर अष्ट दल पद्म तथा इसके बाहर एक चतुर्द्वार युक्त चतुरस्र भूपुर बनाये।

इनमें से कोई भी एक यन्त्र बनाकर ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु काली-पूजन में प्रमुख रूप से 'काली-तन्त्रोक्त' **'पञ्चत्रिकोणात्मक'** यन्त्र ग्रहण करने का विशेष विधान देखा जाता है।

इसके बाद अपने सामने स्थित पूजन-पीठ (वेदी) पर चौकी रखकर उसके ऊपर सुन्दर स्वर्ण-चाँदी से निर्मित (अथवा यथा उपलब्ध) छोटी थाली जैसे पात्र में पुष्प रखकर उसके ऊपर यन्त्र को स्थापित कर दे। तत्पश्चात् 'तारा-प्रकरण' में वर्णित विधि के अनुसार प्राण-प्रतिष्ठा करके **'पात्रासादन'** कलश-स्थापन आदि कार्य करें।

* * *

॥ पात्रासादनम् ॥

कलश स्थापनम् – साधक को अपने वाम भाग में सोने, चाँदी, ताँबे, काँच अथवा मिट्टी से निर्मित मध्यमाकार (सामान्यतः सोलह अंगुल ऊँचा, मुख व्यास आठ अंगुल तथा मध्य व्यास बारह अंगुल) कलश स्थापित करना चाहिए। इसके लिए पहले वाम भाग में भूमि पर **'बिन्दु-षट्कोण -वृत्त-चतुरस्र'** युक्त मण्डल रक्त चन्दन (अथवा सामान्य अर्घ्य के जल) से बनायें। ताम्र पत्र पर इस प्रकार का बना हुआ यन्त्र (मण्डल) भी स्थापित किया जा सकता है। फिर सामान्यार्घ्य जल से इस मण्डल (यन्त्र) का अभ्युक्षण करके षट्कोण के छहो कोणों में षडङ्ग मन्त्रों से पूजन करें। यथा –

क्रां हृदयाय नमः-हृदय देवतायै नमः। क्रीं शिरसे स्वाहा-शिरो देवतायै नमः। क्रूं शिखायै वषट्- शिखा देवतायै नमः। क्रैं कवचाय हुं – कवच देवतायै नमः। क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् – नेत्रत्रय देवतायै नमः। क्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र देवतायै नमः।

तत्पश्चात् मूल मन्त्र के तीन खण्ड करके एक-एक खण्ड से (यदि मन्त्र के तीन खण्ड सम्भव न हों तो पूरे मन्त्र से) त्रिकोण के एक-एक कोण में पूजन करें। तदुपरान्त – **ह्रीं श्रीमद् दक्षिणकालिका आधार शक्तिभ्यो नमः** से मण्डल के मध्य में पूजन करके, **'अस्त्राय फट्'** से आधार पात्र (तिपाई आदि) को प्रक्षालित कर – **मं रं धर्मप्रद दश कलात्मने वह्निमण्डलाय श्रीमद् दक्षिण कालिका कलशाधाराय नमः'** से आधार का पूजन करके **'श्रीमद्दक्षिणकालिका कलशाधारं स्थापयामि नमः'** से उसे मण्डल पर स्थापित कर दें।

इसके पश्चात् **'धूम्रार्चिरादि वह्नेर्दश कलाः आवाहयामि इहागच्छत, इह तिष्ठत'** से उस आधार पर अग्निकलाओं का आवाहन करके उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करें। यथा –

आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः वह्नि दशकलानां प्राणा इह प्राणाः।
आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः वह्नि दशकलानां जीव इह स्थितः।
आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः वह्नि दशकलानां सर्वेन्द्रियाणि।
आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः वह्नि दशकलानां वाङ्मनश्चक्षुस्त्वक्-जिह्वा-श्रोत्र-घ्राण-प्राणा-इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

अब आधार के दशो दिशाओं में पूर्वादि (अपने आगे) से प्रदक्षिणावत् एक-एक कलाओं का पूजन करें -

यं धूम्रार्चिषे नमः। रं ऊष्मायै नमः। लं ज्वलिन्यै नमः। वं ज्वालिन्यै नमः। शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। षं सुश्रियै नमः। सं सुरूपायै नमः। हं कपिलायै नमः। ळं हव्यवाहायै नमः। क्षं कव्यवाहायै नमः।

'ॐ वह्नेर्धूम्रार्चिरादिदशकलाभ्यो नमः' से भी संक्षिप्त पूजन किया जा सकता है।

इसके पश्चात् **'अस्त्राय फट्'** से कलश को प्रक्षालित कर, सिन्दूर, रक्तपुष्प, वस्त्र, मालादि से अलंकृत कर **'ॐ अं अर्कमण्डलाय अर्थप्रद द्वादश कलात्मने श्रीमद् दक्षिणकालिकारूप कलशाय नमः'** से इस कलश का पूजन कर **'ॐ श्रीमद्दक्षिणकालिका देवतात्मकं कलशं स्थापयामि नमः'** बोलकर उसे आधार पर रख दें।

तदुपरान्त सामान्यार्घ्य जल से मूल मन्त्र द्वारा उसका अभ्युक्षण करके **'ॐ तपिन्यादि सूर्यस्य द्वादश कलाः आवाहयामि, इहागच्छत, इह तिष्ठत'** मन्त्र से सूर्य-कलाओं का कलश पर आवाहन तथा पूर्ववत् उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करके पृथक-पृथक प्रत्येक कला की कलश पर पूजन करें।

कं भं तपिन्यै नमः। खं बं तापिन्यै नमः। गं फं धूम्रायै नमः। घं पं मरीच्यै नमः। ङ नं ज्वालिन्यै नमः। चं धं रुच्यै नमः। छं दं सुषुम्नायै नमः। जं थं भोगदायै नमः। झं तं विश्वायै नमः। ञं णं बोधिन्यै नमः। टं ढं धारिण्यै नमः। ठं डं क्षमायै नमः। (**'ॐ सूर्यस्य तपिन्यादि द्वादश कलाभ्यो नमः'** से भी संक्षिप्त पूजन, अशक्तावस्था में कर सकते हैं।)

तत्पश्चात् **'मूल क्षं ळं हं सं ....आं अं'** (मूल मन्त्र के बाद विलोम रूप मातृकाओं का उच्चारण करते हुए) के द्वारा कलश को **'कारण'** द्रव्य से पूरित करें। कलश को पूरित करते (भरते) समय **'ॐ श्रीमद् दक्षिण कालिका देवता कलशममृतेन पूरयामि'** का उच्चारण करें। इसके बाद-

'उं सं कामप्रद षोडश कलात्मने चन्द्रमण्डलाय श्रीमद् दक्षिण कालिका देवता कलशामृताय नमः' से उस अमृत (कारण) का पूजन कर उसमें **'ॐ अमृतादि सोमस्य षोडश कलाः आवाहयामि॰'** इत्यादि से चन्द्र कलाओं का आवाहन तथा पूर्ववत् प्राण-प्रतिष्ठा करके पृथक-पृथक पूजन करें। यथा-

अं अमृतायै नमः। आं मानदायै नमः। इं पूषायै नमः। ईं पुष्ट्यै नमः। उं तुष्ट्यै नमः। ऊं रत्यै नमः। ऋं धृत्यै नमः। ॠं शशिन्यै नमः। लृं

चन्द्रिकायै नमः। लृं कान्त्यै नमः। एं ज्योत्सनायै नमः। ऐं श्रियै नमः। ओं प्रीत्यै नमः। औं अङ्गदायै नमः। अं पूर्णायै नमः। अः पूर्णामृतायै नमः। (संक्षेप में '**अं आं.........अं अः सोमस्य अमृतादि षोडश कलाभ्यो नमः**')

इसके बाद उस कलशामृत में '**त्रिकोण-वृत्त-षट् कोणात्मक**' यन्त्र की रचना कर (भावना कर) त्रिकोण की वाम (स्वदक्षिण) रेखा पर '**अकारादि षोडश स्वरों**' को ऊपर की रेखा पर '**क से त**' तक सोलह वर्णों को तथा दक्षिण (स्ववाम) रेखा पर '**थ से स**' तक सोलह वर्णों को लिखकर वामावर्त क्रम से अपने सामने से प्रारम्भ कर तीनों कोणों में '**हं ळं क्षं**' इन तीन वर्णों को लिखें। फिर पूर्ववत् मूल मन्त्र के त्रिखण्डों से त्रिकोण में अर्चना करके षट्कोणों में षडङ्गों का पूजन करें।

तदुपरान्त उस कारण द्रव्य में '**ॐ गङ्गे च यमुने०**' इत्यादि मन्त्र बोलकर '**क्रों**' बोलते हुए '**अंकुश मुद्रा**' से सूर्य से तीर्थों का आवाहन करके उस पर '**फट्**' बोलते हुए कुशों द्वारा ताडन करके दश बार '**यं**' का जप करके दोषों का **संशोषण**, '**रं**' का दश बार जप करके दोषों का **भस्मीकरण**, '**वं**' का दश बार जप कर **अमृतीकरण** करके '**हुं**' से **अवगुण्ठन**, '**फट्**' से **संरक्षण**, '**मूल मन्त्र**' से **अभिवीक्षण** करके '**मत्स्य मुद्रा**' से **आच्छादन** करें। '**ॐ नमः**' से उसमें गन्धाक्षत पुष्प डालकर '**प्रणव**' की इक्यावन **(५१)** कलाओं का उसमें पूजन करें।

'**ॐ अकारोद्भव सृष्ट्यादि दशकलाः आवाहयामि, इहागच्छत इह तिष्ठत**' से आवाहन करके '**ॐ हंसः शुचिषद्०**' इत्यादि (कला-न्यास प्रकरण में कहे गये) मन्त्र पढ़कर '**आं ह्रीं क्रों यं....हं हंसः प्रणवस्याकारोद्भव सृष्ट्यादि दश कालानां प्राणाः इह प्राणाः**' इत्यादि रूप से उनकी प्राण प्रतिष्ठा करके '**ॐ कं सृष्ट्यै नमः**' रूप से **खं ऋद्ध्यै, गं स्मृत्यै, घं मेधायै, ङं कान्त्यै, चं लक्ष्म्यै, छं धृत्यै (द्युत्यै वा), जं स्थिरायै, झं स्थित्यै** तथा **ञं सिद्ध्यै** के पूर्व **ॐ** एवं पश्चात् में '**नमः**' लगाकर दशो कलाओं का पूजन करें। (**ॐ प्रणवस्याकारोद्भवसृष्ट्यादि दश कलाभ्यो नमः**' से संक्षिप्त पूजन)

इसके बाद उकारोद्भव दश कलाओं का (**प्रणवस्योकारोद्भव जरादि दश कलाः आवाहयामि०** इत्यादि रूप से) आवाहन करके **ॐ प्रतद्विष्णु०** इत्यादि मन्त्र पढ़कर दशो कलाओं की प्राण प्रतिष्ठा करके पृथक पृथक पूजन करे। यथा- '**ॐ टं जरायै नमः**' इसी प्रकार **ठं पालिन्यै,**

डं शान्त्यै, ढं ऐश्वर्यै, णं रत्यै, तं कामिकायै, थं वरदायै, वं ह्लादिन्यै, धं प्रीत्यै तथा **नं दीर्घायै** के पूर्व तथा पश्चात् में '**ॐ**' तथा '**नमः**' लगाकर पूजन करें। (संक्षेप में '**ॐ प्रणवस्योकारोद्भव जरादि दश कलाभ्यो नमः**' से भी पूजन कर सकते हैं।)

तदुपरान्त (**प्रणवस्य मकारोद्भव तीक्ष्णादि दश कलाः आवाहयामि०** इत्यादि रूप से) मकारोद्भव कलाओं का आवाहन कर '**ॐ त्र्यम्बकं०**' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर कलाओं की पूर्ववत् प्राण प्रतिष्ठा करके उनका पूजन करें। यथा -

पं तीक्ष्णायै, फं रौद्र्यै, बं भयायै, भं निद्रायै, मं तन्द्रायै, यं सुधायै, रं क्रोधिन्यै, लं क्रियायै, वं उत्कार्यै तथा **शं मृत्यवे** इन सभी के पूर्व तथा पश्चात् में '**ॐ**' तथा '**नमः**' लगाकर पूजन करें।

इसके बाद (**प्रणवस्य बिन्दूद्भव पीतादि पञ्चकलाः आवाहयामि०** इत्यादि रूप से) बिन्दु-उद्भव पञ्च कलाओं का आवाहन कर '**ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं०**' इत्यादि रूप ब्रह्मगायत्री को पढ़कर कलाओं की पूर्ववत् प्राण-प्रतिष्ठा करके उनका पूजन करें। यथा-

ॐ षं पीतायै नमः। ॐ सं श्वेतायै नमः। ॐ हं अरुणायै नमः। ॐ ळं असितायै नमः तथा **ॐ क्षं सितायै नमः**। (संक्षेप में **ॐ प्रणवस्य बिन्दूद्भव पीतादि पञ्चकलाभ्यो नमः**)

इसके बाद (**प्रणवस्य नादोद्भव निवृत्यादि षोडश कलाः आवाहयामि०** इत्यादि रूप से) नाद-उद्भव सोलह कलाओं का आवाहन कर '**ॐ विष्णुयोनि०**' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर तथा कलाओं की प्राण-प्रतिष्ठा करके उनका पूजन करें। यथा -

अं निवृत्यै, आं प्रतिष्ठायै, इं विद्यायै, ईं शान्त्यै, उं इन्धिकायै, ऊं दीपिकायै, ऋं रेचिकायै, ॠं मोचिकायै, ऌं परायै, ॡं सूक्ष्मायै, एं सूक्ष्मामृतायै, ऐं ज्ञानामृतायै, ओं आप्यायिन्यै, औं व्यापिन्यै, अं व्योमरूपायै तथा **अः अनन्तरूपायै**, इन सभी कलाओं के पूर्व '**ॐ**' तथा पश्चात् में '**नमः**' लगाकर पूजन करें। पुनः निवृत्यादि पञ्च कलाओं का आवाहन (**निवृत्यादि पञ्च कलाः आवाहयामि०**), प्राण प्रतिष्ठा तथा पूजन करें।

ॐ निवृत्यै नमः। ॐ प्रतिष्ठायै नमः। ॐ विद्यायै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ शान्त्यतीतायै नमः।

इसके पश्चात् कलश के द्रव्य का शोधन (शापोद्धार) करें यथा-

॥ शापोद्धारः (द्रव्य शोधनम्)॥

अब कलशस्थ द्रव्य की इष्ट देवता के रूप में भावना कर, कलश के ऊपर दाहिना हाथ रखकर निम्न मन्त्रों को बोलते हुए शापोद्धार (द्रव्य शोधन) करें।

ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्। कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥

ॐ सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे। अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद् विमुच्यताम्॥

ॐ वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयो यदि। तेन सत्येन हे देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥

'ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशाप विमोचितायै सुरा देव्यै नमः' इस मन्त्र का बारह बार जप करें।

'ॐ बां बीं बूं बैं बौं बः ब्रह्मशाप विमोचितायै सुरा देव्यै नमः' (पूर्ववत् १२ बार जप)

'ॐ रां रीं रूं रैं रौं रः रुद्रशाप विमोचितायै सुरा देव्यै नमः' (पूर्ववत् १२ बार जप)

'ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुरा कृष्णशाप विमोचय अमृतं स्रावय-स्रावय स्वाहा' (इस मन्त्र का १० बार जप करें)

'ऐं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि महत्प्रकाशस्वरूपे अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा' इस मन्त्र का दश बार जप करें। तत्पश्चात्-

'ॐ पवमानः परं ब्रह्म पवमानः परोरसः। पवमानं परं ज्ञानं तेन ते पावयाम्यहम्।' तथा **ॐ हंसः शुचिषत्॰** इत्यादि मन्त्र। इन दोनों को दो-दो बार जपें।

इस प्रकार शापोद्धार करके कलशस्थ द्रव्य में आनन्द भैरव तथा आनन्द भैरवी का ध्यान कर तीन-तीन बार उनके मन्त्रों का जप उस द्रव्य पर करें। यथा -

॥ आनन्द भैरव-ध्यानम्॥

सूर्यकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटि सुशीतलम्। अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्। वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरण भूषितम्॥
कपालखट्वाङ्गधर घण्टाडमरुवादिनम्। पाशांकुशधरं देवं गदा-मूषल धारिणम्॥
खड्गखेटकपट्टीशं मुद्गरं शूलदण्डकम्। विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभय पाणिकम्॥
लोहितं देव-देवेशं ध्यायाम्यानन्द भैरवम्॥

इस प्रकार आनन्द भैरव का ध्यान कर **'हसक्षमलवरयूं आनन्द भैरवाय वषट्'** मन्त्र का तीन बार जप उस कारण द्रव्य पर करके आनन्द भैरवी का ध्यान करें। यथा -

॥ आनन्द भैरवी-ध्यानम्॥

भावयामि सुरादेवीं चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम्। प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देव-देवस्य सम्मुखीम्॥

ध्यान के पश्चात् **'सहक्षमलवरयीं आनन्द भैरव्यै वौषट'** से पूर्ववत् तीन बार जप करें।

जप के पश्चात् **'अकथ त्रिकोण'** (वह त्रिकोण जिसकी तीनों रेखाओं पर **'अ से थ'** तक वर्ण लिखा गया है) के मध्य में **'आनन्द भैरव'** और **'आनन्द भैरवी'** का संयोगावस्था में ध्यान कर, इस क्रिया से क्षरित पदार्थ द्वारा **'कलश द्रव्य'** के (उसमें मिश्रित होकर) **'अमृत-मय'** होने की भावना करें। तत्पश्चात् कलश के ऊपर **'धेनुमुद्रा'** प्रदर्शित कर **'वं'** इस वरुण बीज का आठ (दश) बार जप करके पुनः मूल मन्त्र का आठ बार जप करें। (यदि साधक **'द्रव्य शुद्धि'** के समय ही **'शापोद्धार'** से लेकर यहाँ तक की क्रियाओं द्वारा **'कारण'** का शोधन पहले ही कर चुका है, तो कलश में इसे ही डाल कर आगे प्रणव-कलाओं के पूजन तक ही कर्म करके **'विशेष-अर्घ्य स्थापन'** करना चाहिए।) इस प्रकार प्रथम तत्व (कारण) का शोधन करके **'विशेषार्घ्य पात्र (श्रीपात्र)'** की स्थापना करें।

॥ श्री-पात्र (विशेषार्घ्य) स्थापनम्॥

सम्मुख स्थित अर्चन-पीठ तथा स्वयं के मध्य भाग में किञ्चित् दायीं ओर कलश के समानान्तर **'बिन्दु-त्रिकोण-वृत्त-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्र'** रूप मण्डल बनाकर बिन्दु पर **'हूं'** (अथवा **'ईं'**) अङ्कित कर चतुरस्र की चारों रेखाओं (अथवा कोणों) पर **'हं उड्डीयान पीठाय नमः'** इसी प्रकार **'गं जालन्धर पीठाय नमः'**, **'ॠं पूर्णगिरि पीठाय नमः'** तथा **'अं कामरूप पीठाय नमः'** मन्त्र से स्वाग्र-प्रदक्षिणावत् चारों पीठों तथा षट्कोणों में षडङ्ग देवताओं का पूर्ववत् पूजन करके, त्रिकोणों में, मूल-मंत्र का तीन खण्ड कर, एक-एक खण्ड से पूजन करें। यथा-

ॐ प्रथम खण्ड आत्म तत्वाय नमः। ॐ द्वितीय खण्ड विद्या तत्वाय नमः। ॐ तृतीय खण्ड शिव तत्वाय नमः। मध्य बिन्दु पर **'हूं श्रीमद् दक्षिणा कालिका आधार शक्तिभ्यो नमः'** से पूजन कर **'फट्'** मन्त्र से आधार (तिपाई आदि) को प्रक्षालित कर **'मं रं धर्मप्रद दशकलात्मने वह्नि मण्डलाय श्रीमद् दक्षिणा कालिका श्री पात्राधाराय नमः'** से उसका पूजन करके **'श्रीमद् दक्षिणा कालिका श्री पात्राधारं स्थापयामि नमः'** मन्त्र से उसे मण्डल पर स्थापित कर दें। इसके बाद पूर्ववत् अग्नि की दश कलाओं का आवाहन, प्राण-प्रतिष्ठा तथा प्रत्येक का पृथक-पृथक पूजन पूर्ववत् इस आधार पर करें। तत्पश्चात् **'श्रीमद् दक्षिणाकालिका देवता विशेषार्घ्य (श्री)**

पात्राय नमः' से महाशंख (कपाल) का पूजन कर, **'क्रीं श्रीमद् दक्षिणाकालिका देवता विशेषार्घ्य पात्रं स्थापयामि नमः'** बोलकर पुनः **'स्त्रीं'** बोलते हुए उसे आधार पर स्थापित करें। पूर्वोक्त विधि के अनुसार इस पर सूर्य की द्वादश (बारह) कलाओं का आवाहन, प्राण-प्रतिष्ठा तथा पृथक-पृथक पूजन करें।

कपाल की चौड़ाई (मध्य व्यास) प्रादेश मात्र तथा ऊँचाई चार अंगुल होनी चाहिए। सूर्यकलाओं का पूजन करने के बाद - **(१) 'ह्रां ह्रीं ह्रूं काली कपालाय नमः'** । **(२) 'स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणी कपालाय नमः'**। **(३) 'हां हीं हूं लीला (नीला) कपलाय नमः'**। तथा **(४) 'ह्रीं सः हूं सर्वकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुरभाजनाय देवी कपालाय नमः'** इन चार मन्त्रों से महाशंख (कपाल) का पूजन गन्धपुष्पादि से करें।

इसके पश्चात् पहले **'मूलमन्त्र'** का उच्चारण कर फिर विलोम **'मातृका वर्णों'** (क्षं ळं हं..........आं अं रूप से) का मन ही मन (मन्त्र का भी) उच्चारण करते हुए उस विशेषार्घ्य (श्री) पात्र को कलश के द्रव्य (संशोधित तीर्थ) से तीन चौथाई भाग पूरित कर शेष भाग शुद्ध जल से पूरित करें। तदुपरान्त इसमें रक्त चन्दन, यव, मदार पुष्प, श्वेत अपराजिता, बिल्व पत्र, कुन्द पुष्प, कनेर पुष्प, बर्बरी, दूर्वा, अक्षत, सुगन्धित कपूरादि डालें। इसके बाद पूर्व में शोधित **मांस-मत्स्य-मीन** तथा **पञ्चम तत्व** को अत्यल्प मात्रा में लेकर **'विशेषार्घ्य पात्र'** में डालकर **'उं सं कामप्रद षोडशकलात्मने सोम मण्डलाय श्रीमद् दक्षिणा कालिका देवता विशेषार्घ्यामृताय नमः'** से इस द्रव्य का पूजन कर पूर्ववत् सोम (चन्द्र) की कलाओं का आवाहन करके पृथक-पृथक प्रत्येक का इस द्रव्य में पूजन करें।

तदुपरान्त इस द्रव्य के ऊपर कल्पना द्वारा त्रिकोण-वृत्त-षट्कोणात्मक यन्त्र की रचना करके त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर पूर्ववत् अकारादि सोलहों स्वर, **'क से त'** तक सोलह वर्ण तथा **'थ से स'** तक सोलह वर्ण लिखकर त्रिकोण के तीनों कोणों में स्वाग्र से वामावर्त क्रम ये **ह, ळ** तथा **क्ष** इन तीनों मातृका वर्णों को लिखें तथा मध्य बिन्दु पर **'ई'** एवं वाम तथा दक्षिण की ओर **'हं तथा सः'** लिखें (लिखने की भावन करें)। पुनः पूर्ववत् ही मूलमन्त्र के त्रिखण्डों द्वारा तीनों कोणों में तथा षट्कोणों में षडङ्ग पूजन करें।

इसके पश्चात् **'ॐ गङ्गे च यमुने०'** इत्यादि बोलकर 'क्रों' मन्त्र से अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थों का इस द्रव्य में आकर्षण कर उसके तीर्थमय होने की भावना करें।

अब द्रव्य में निर्मित 'अकथ त्रिकोण' के मध्य **'आनन्द भैरव'** तथा **'आनन्द भैरवी'** का ध्यान-आवाहन करके उनका पूजन करें। यथा - (ध्यान पहले दिया जा चुका है।)

आवाहनम् - हसक्षमलवरयूं आनन्द भैरवाय वषट् श्री आनन्द भैरव, इहागच्छ आगच्छ, इह तिष्ठ-तिष्ठ, इह सन्निधेहि-सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धस्व-सन्निरुद्धस्व, इह सम्मुखीभव-सम्मुखीभव मम पञ्चोपचार पूजां गृहाण-गृहाण। यथास्थित आवाहनादि पञ्चमुद्राओं का प्रदर्शन भी करें। इसके बाद **'पञ्चोपचार'** पूजन करें।

पञ्चोपचार-पूजनम् - हसक्षमलवरयूं आनन्द भैरवाय वषट् गन्ध समर्पयामि। इसी भाँति मन्त्र की योजना करते हुए (तथा उपचारों को अर्पित करते हुए) बोलें - **पुष्पं समं०, धूपं सम०, दीपं सम० नैवेद्यं सम०** तथा **ताम्बूलं समर्पयामि।**

इसके पश्चात् आनन्द भैरव के बायीं ओर पूर्वोक्त रूप से 'आनन्द भैरवी' का ध्यान करके आवाहनादि करें। यथा-

सहक्षमलवरयीं आनन्द भैरव्यै वौषट्, श्री आनन्द भैरवि! इहागच्छ-आगच्छ (इसके बाद **'गृहाण-गृहाण'** तक) पूर्ववत् मुद्रा प्रदर्शन सहित बोलें

पूजनम्- **'सहक्षमलवरयीं आनन्द भैरव्यै वौषट्'** के साथ पूर्ववत् **'गंधं समर्पयामि'** इत्यादि पदों को योजित करते हुए पूजन करें।

इसके बाद विशेषार्घ्य पात्र पर दाहिना हाथ रखकर निम्न मन्त्रों से उसे अभिमन्त्रित करें-

ऐं क्लीं सौः ब्रह्माण्ड रस सम्भूतमशेषरससंभवम्। आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह॥
अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मानि। स्वछन्दस्फुरणं मन्त्रं निधेह्यकुलरूपिणि॥
अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञान कलेवरे। अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तूनि क्लिन्नरूपिणि॥
तद्रूपेणैकरस्यं च कृत्वार्घ्यं तत्स्वरूपिणि। भूत्वा परामृताकारा मयि चिरस्फुरणं कुरु॥

तदुपरान्त **'विशेषार्घ्य पात्र'** के ऊपर चारों दिशाओं में (पूर्वादि प्रदक्षिणावत्) तथा मध्य में **'पञ्च रत्नों'** की पूजा करें।

ग्लूं गगन रत्नेभ्यो नमः (पूर्वे)। **स्लूं स्वर्ग रत्नेभ्यो नमः** (दक्षिणे)। **प्लूं पाताल रत्नेभ्यो नमः** (पश्चिमे)। **म्लू मर्त्यरत्नेभ्यो नमः** (उत्तरे)। **न्लूं नाग रत्नेभ्यो नमः** (मध्ये)।

(किसी-किसी ग्रन्थ में रत्न का एकवचन रूप **'रत्नाय'** प्रयुक्त है।)

तत्पश्चात् द्रव्य के मध्य **'ई कार'** रूप काम कला की कल्पना कर उस पर स्वहृदय से इष्ट देवता का आवाहनादि करें। यथा-

मूलं साङ्गे श्रीमहाकाल शिव सहिते श्रीमद् दक्षिणे कालिके! इहागच्छ-आगच्छ। इसी प्रकार **'मूलं से दक्षिणे कालिके'** तक मन्त्र भाग का प्रत्येक बार संयोजन कर के यथोचित मुद्रा प्रदर्शन सहित बोलें **इह तिष्ठ-तिष्ठ, इह सन्निधेहि-सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धस्व-सन्निरुद्धस्व, इह सम्मुखी-सम्मुखी भव।**

मम पञ्चोपचार पूजां गृहाण-गृहाण। देवि। प्रसन्ना भव, वरदा भव।

अब षडङ्ग मन्त्रों द्वारा सकलीकरण करें। यथा-

ह्रां हृदयाय नमः-हृत्-शक्त्यै नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा-शिरः शक्त्यै नमः। ह्रूं शिखायै वषट्-शिखा शक्त्यै नमः। ह्रैं कवचाय हुं-कवच शक्त्यै नमः। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्-नेत्र-शक्त्यै नमः। ह्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र शक्त्यै नमः।

इसके बाद **'फट्'** से त्रिताल देकर तथा चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करके संरक्षण, **'हुं'** से अवगुण्ठन, **'वं'** बीज तथा **'धेनुमुद्रा'** से अमृतीकरण करके **'योनिमुद्रा'** से प्रणाम कर मूल मन्त्र से गन्ध पुष्पादि द्वारा पूजन करें। यथा -
मूलं साङ्गायै श्री महाकाल सहितायै श्रीमद्दक्षिणकालिकायै गन्ध समर्पयामि नमः।

इसी प्रकार से मन्त्र के पूर्वभाग का संयोजन करके बोलते हुए उपचारों को अर्पण करें -

पुष्पं सम० नमः। धूपं सम० नमः। दीपं सम० नमः। नैवेद्यं सम० नमः। ताम्बूलं सम० नमः।
(मूलं गन्धं सम० साङ्गा श्री महाकाल सहित श्रीमद् दक्षिण कालिका देवता पादुकां पूजयामि नमः।) इस प्रकार से भी पूजन का विधान कहा गया है। अथवा-

हंसः नमः गन्धं समर्पयामि। इसी प्रकार **पुष्पं-दीपं** आदि का योग करके पूजन करे। तदुपरान्त द्रव्य पर **'मत्स्य मुद्रा'** से आच्छादन करके **'मूल मन्त्र'** का दश बार जप कर पात्रस्थ द्रव्य को भावना द्वारा देवता रूप मानते हुए तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करें। दक्षिण मार्गी दाहिने हाथ से तथा वाममार्गी बायें हाथ से अर्घ्य का आच्छादन करें। इसके बाद भूतिनी, धेनु तथा योनिमुद्रा का प्रदर्शन करें।

॥ गुरु-पात्रादि स्थापनम्॥

अब साधक स्वदक्षिण भाग में स्थापित प्रोक्षणी पात्र में (तथा कलश में भी) विशेषाघ्यामृत की कुछ बूंदे डालकर प्रोक्षण आदि कर्म इसी प्रोक्षणी पात्र से ही आगे करें। इसके बाद कलश से विशेषार्घ्य पात्र तक एक ही

पंक्ति में **गुरु पात्र, भोग-पात्र, शक्ति-पात्र, योगिनी पात्र, वीर-पात्र, बलि-पात्र, पाद्य (पात्र) तथा आचमनीय (पात्र)** स्थापित करें। इस प्रकार **'श्री पात्र (विशेषार्घ्य पात्र)'** सहित कुल नौ पात्र होंगे। यदि साधक नौ पात्र स्थापित न कर सके तो **सात पात्र** (अन्तिम दो छोड़कर) अथवा **पाँच पात्र** (पाद्य, आचमनीय, शक्ति तथा वीरपात्र को छोड़कर) अथवा केवल तीन पात्र **श्रीपात्र, गुरुपात्र** तथा **भोगपात्र** ही स्थापित करे। विशेष अशक्तावस्था में **'त्रिशक्तिरत्न'** के अनुसार कलश, शंख तथा शक्तिपात्र की ही स्थापना करे। परन्तु जहाँ तक सम्भव हो तीन पात्र अवश्य रखें। स्थापन विधि इस प्रकार है –

कलश के पास भूमि पर **'त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र'** रूप मण्डल बनाकर **'ॐ आधार शक्त्यैनमः'** से गन्धाक्षत द्वारा पूजन कर **'फट्'** से आधार पात्र को धोकर **'ॐ गुरु-पात्राधारं स्थापयामि'** बोलकर आधार को मण्डल पर रखकर **'ॐ गुरु पात्राधाराय नमः'** तथा **'ॐ वह्नि दश कलाभ्यो नमः'** द्वारा गन्धाक्षत से पूजन करे। पुनः **'फट्'** से **'गुरु-पात्र'** को धोकर उसे **'ॐ गुरु-पात्रं स्थापयामि'** बोलकर आधार पर रखकर **'ॐ गुरुपात्राय नमः'** तथा **'ॐ सूर्यस्य द्वादश कलाभ्यो नमः'** से पात्र का पूजन करें। इसके बाद **'नमः (अथवा ह्रीं)'** मन्त्र से उसको घटस्थ कारण से पूरित कर **'शुद्धि'** आदि अन्य तत्व खण्डों को डालकर **'हुं'** से **'अवगुण्ठन', 'फट्'** से **'संरक्षण', 'ॐ गङ्गे च यमुने०'** इत्यादि बोलकर **'अंकुश मुद्रा'** से सूर्यमण्डल से तीर्थों का **आवाहन, 'वं'** बीज तथा **'धेनुमुद्रा'** से **'अमृतीकरण'** करके **'योनिमुद्रा'** प्रदर्शित करें। इसके बाद **'ॐ'** से पात्र में गन्ध-पुष्पाक्षत डालकर **'मत्स्य मुद्रा'** से **आच्छादन** कर पात्र के ऊपर **'मूलमन्त्र'** अथवा **'ॐ'** का दश बार जप करें। तत्पश्चात् उस पात्र में विशेषार्घ्यामृत की एक-दो बूंदें डाल दें। इसी प्रकार मन्त्रों में **'गुरु'** के स्थान पर भोग, शक्ति आदि का प्रयोग करते हुए अन्य पात्रों की स्थापना करें। हस्त प्रक्षालनादि के लिए अपने पीछे एक थाली भी रख लें।

किसी-किसी ग्रन्थ में पाद्य-आचमनीय पात्रों के साथ ही उसी पंक्ति में **'पाद्य'** के बाद **'अर्घ्य'** तथा **'आचमनीय'** के पश्चात् **'मधुपर्क'** पात्रों के स्थापन का भी निर्देश है। इन चारों पात्रों में घटस्थ कारण, शुद्धयादि तथा विशेषार्घ्यामृत नहीं डाला जाता। **'पाद्य'** में शुद्ध स्वच्छ जल डालकर **श्यामा, अर्क, दूर्वा, कुश** तथा **अपराजिता** डालें। **'अर्घ्यपात्र'** में शुद्ध स्वच्छ जल डालकर **गन्ध, पुष्प, अक्षत,**

यव, कुश, तिल, सरसों तथा **दूर्वा** (दूब घास) डालें। **'आचमनीय पात्र'** में जल सहित जावित्री, लौंग तथा कङ्कोल का चूर्ण एवं **'मधुपर्क पात्र'** में घी, दही तथा मधु डालें। पात्रों का स्थापन करके हाथ धो डालें।

॥आनन्द-भैरवादि तर्पणम्॥

बायें हाथ की **'तत्व मुद्रा'** से 'शुद्धि खण्ड' लेकर तथा दाहिने हाथ की **'ज्ञान मुद्रा'** से गन्धाक्षत लेकर शिरस्थ **'सहस्रार'** की कर्णिका में **तर्पण** (शुद्धि खण्ड को 'श्रीपात्र' के द्रव्य में डुबोकर) तथा **'पूजन'** करें। तर्पण तथा पूजन स्वशिर पर ही किया जाता है। पहले 'आनन्द भैरव' तथा 'आनन्द भैरवी' का तीन-तीन बार तर्पण करें। यथा-

हसक्षमलवरयूं आनन्द भैरवाय वषट् श्री आनन्द भैरव श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

सहक्षमलवरयीं आनन्द भैरव्यै वौषट् श्री आनन्द भैरवी श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

इसके बाद **'सहस्रार-कर्णिका'** में ही **'दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ** तथा **कुलगुरुओं'** (कुछ ग्रन्थों में कुलगुरुओं का निर्देश नहीं है) सहित **'गुरु-चतुष्ट्य'** का पूजन-तर्पण पूर्ववत् करें। **'गुरु'** का तर्पण **'गुरु-पात्र'** से तीन बार तथा अन्य गुरुओं का तर्पण **'श्री-पात्र'** से एक-एक बार करना चाहिए। यथा-

(दिव्यौघ से लेकर कुलगुरुओं तक के पूजन-तर्पण की विधि **'आवरण-पूजन'** में दी गई है, उसी के अनुसार यहाँ करें।)

ॐ गुरु श्री अमुकानन्दनाथ तच्छक्त्याम्बा
श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

इसी भाँति **'गुरु'** के स्थान पर **'परम गुरु', 'परापर गुरु'** तथा **'परमेष्ठि गुरु'** का प्रयोग करके पूजन-तर्पण करें। (परमेष्ठि गुरु पूजन-तर्पण में 'अमुकानन्द' के स्थान पर **'महाकालानन्द'** का भी प्रयोग किया जा सकता है।)

इसके पश्चात् **'हृदय-कमलस्थ'** भगवती **'दक्षिण कालिका'** का तर्पण **'श्रीपात्र'** के द्रव्य (अथवा भोग-पात्र से स्वगुरु क्रमानुसार) से तीन बार करे (पूजन सहित)। यथा-

मूलं साङ्गं सायुधां सवाहनां सपरिवारां श्री महाकाल शिव सहितां श्रीमद् दक्षिण कालिका श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

इसके बाद तत्व शोधन करें।

॥तत्व शोधनम्॥

विशेषार्घ्य को स्पर्श करके निम्नलिखित सात मन्त्रों को बोलते हुए (सात बार) पूरे शरीर का स्पर्श करें।

१. प्राणापानसमानोदानव्याना: मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
२. पृथिव्यपतेजो वाय्वाकाशनि मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
३. प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनः श्रोत्राणि मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
४. त्वक्-चक्षुर्जिह्वाघ्राणवंचासि मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
५. शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा: मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
६. पाणिपादपायूपस्थमुखा: मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥
७. वायुतेजभूसलिलाकाशात्मनो मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा प्रकृतभूयासं स्वाहा॥

॥शुद्धि ग्रहणम्॥

इसके बाद कलश से थोड़ा सा कारण लेकर दोनों हथेलियों का मार्जन करके **'श्रीपात्रामृत'** से दाहिनी हथेली पर स्वाग्र (अधोमुख) त्रिकोण बनाकर उसके तीनों कोणों तथा मध्य में **'मास-प्रमाण' 'शुद्धि-खण्ड'** रखें। फिर वाम अंगुष्ठ-मध्यमा-अनामिका से स्वाग्र कोण का 'शुद्धि-खण्ड' उठाकर-**'मूलं ह्रीं श्रीं आत्मतत्वेन स्थूल देहं शोधयामि स्वाहा'** बोलकर ग्रहण (भक्षण) करें। इसी प्रकार वामकोण का खण्ड उठाकर - **'मूलं ह्रीं श्रीं विद्या तत्वेन सूक्ष्म-देहं शोधयामि स्वाहा'** बोलकर, दक्ष कोण का खण्ड उठाकर - **'मूलं ह्रीं श्रीं शिव तत्वेन पर देहं शोधयामि स्वाहा'** बोलकर तथा मध्य भाग का 'शुद्धि-खण्ड' उठाकर - **मूलं ह्रीं श्रीं सर्वतत्वेन तनु-त्रयाश्रित जीवं शोधयामि स्वाहा'** बोलकर क्रमशः ग्रहण करें।

॥कारण (बिन्दु) ग्रहणम्॥

देह-त्रय सहित जीव का शोधन करने के बाद वस्त्र से हाथ पोंछकर शुद्ध-जल (अथवा कारण) से हाथों को शुद्ध कर पूरे शरीर का स्पर्श करते हुए मार्जन करें। तत्पश्चात् **'मूलाधार'** में **'कुण्डलिनि'** का ध्यान करके उसे **'जिह्वाग्र'** में (भावना द्वारा) लाकर स्थित करे। फिर **'भोग-पात्र'** (अथवा गुरु-क्रमानुसार (**श्रीपात्र**) का द्रव्य किसी अन्य पात्र में थोड़ा सा लेकर निम्न मन्त्रों को पढ़ते हुए (तत्वमुद्रा से, द्वितीय (शुद्धि) तत्व को ग्रहण किये हुए) एक-एक बूंद का पान करे।

१. ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि।
योऽहमस्मि सोऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा॥

२. ॐ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मां अवतु वक्तारं स्वाहा॥

३. ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात् सम्बभूव। समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु, अमृतस्य देव धारणो भूयासं। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहतः श्रुतं मे गोपाय आवाहन्ती वितन्वाना स्वाहा॥

इस प्रकार तीनों मन्त्र एक-एक कर बोलते हुए प्रत्येक बार एक-एक बूँद ग्रहण करें। इसके बाद विशेषार्घ्य लेकर स्वयं पर तथा सभी पूजन-सामग्रियों पर छिड़क कर सब कुछ को ब्रह्म-मय अनुभव (भावना द्वारा) करें।

॥पञ्च-बलि-प्रदानम्॥

साधक श्री चक्र (यन्त्र-पीठ) के पूर्वादि चारो दिशाओं में त्रिकोण-वृत्त रूप तथा अपने बायें चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर **'ऐं ह्रीं कूर्ममण्डलाय नमः'** से पाँचों मण्डलों का पूजन करे। तत्पश्चात् प्रत्येक मण्डल के समीप आधार सहित बलिपात्र (जिसमें पृथक-पृथक छोटे-छोटे पात्रों में शुद्धि-मीन-मुद्रा बटकादि सर्व प्रकार के बलि पदार्थ रखे हों) स्थापित करें।

१. वटुक बलि - पहले **'ऐं ह्रीं हूं वटुक बलि मण्डलाय नमः'** से मण्डल का पूजन करें फिर उसी मण्डल पर मध्य में **'वां वटुकाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इसी प्रकार **पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य** समर्पण रूप **'पञ्चोपचार पूजन'** करके मण्डल के मध्य भाग पर आधार सहित बलि पात्र स्थापित करके उस बलि पदार्थ पर एक घृत-पूरित फूल बत्ती भी जलायें। फिर बलि-मन्त्र बोलते हुए, उस मण्डलस्थ बलिभाग पर, बलि पात्रस्थ अमृत को बांये अंगुष्ठ-अनामिका (तत्वमुद्रा) से गिराते हुए बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्र- **एहि-एहि देवी पुत्र वटुकनाथ कपिल जटा भार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख! सर्व विघ्नान् नाशय-नाशय सर्वोपचार सहितं बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा। एष बलिः वां वटुकाय नमः।**

२. योगिनी बलि - दक्षिण मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं योगिनी बलि मण्डलाय नमः'** से पूजन कर मध्य में **'यां योगिनीभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से पूर्ववत् **'पञ्चोपचार पूजन'** करके मण्डल पर बलिपात्र रखकर दक्ष-अंगुष्ठ-अनामिका से **'योगिनी पात्र'** का **'अमृत'** उस पर गिराते हुए निम्न बलि-मन्त्र बोलते हुए बलि प्रदान की क्रिया करें।

बलि-मन्त्र - **ॐ ऊर्ध्व ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा पाताले वा वने वा पवन सलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा। क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृत पदा धूपदीपादिकेन प्रीताः देव्यः सदा नः शुभ बलि विधिना पान्तु वीरेन्द्र वन्द्याः यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हुं फट् स्वाहा एष बलिः यां योगिनीभ्यो नमः।**

३. **क्षेत्रपाल बलि** - पश्चिम मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं क्षेत्रपाल बलि मण्डलाय नमः'** से पूजन करके **'क्षां क्षेत्रपालाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से क्षेत्रपाल का **'पञ्चोपचार'** पूजन कर, मण्डल पर बलिपात्र स्थापित करके, बांये हाथ की मुट्ठी बांधकर अंगूठे के अग्रभाग से **'बलिपात्र'** का **'अमृत'** गिराते हुए निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करें-

बलि मन्त्र - **क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थान क्षेत्रपाल धूपदीपादि सहितं बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा। एष बलिः क्षां क्षेत्रपालाय नमः।**

४. **गणेश बलि** - उत्तर दिशा के मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं गणेश बलि-मण्डलाय नमः'** से पूजन कर **'गं गणेशाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से **'पञ्चोपचार'** पूजन करके, बलिपात्र मण्डल पर रखकर निम्न **'बलि-मन्त्र'** को बोलते हुए वाम हाथ से **'गजतुण्ड मुद्रा'** अथवा **'अंगुष्ठ मध्यमा'** से **'बलि-पात्र'** का **'अमृत'** गिराते हुए (बलिभाग पर) बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्र - **गां गीं गूं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा, एष बलिः गं गणपतये नमः।**

५. **सर्वभूत-बलि**- **'ऐं ह्रीं हूं सर्वभूत बलिमण्डलाय नमः'** से स्ववामस्थ मण्डल का पूजन कर **'ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से **'सर्वभूतों'** का **'पञ्चोपचार'** पूजन करके मण्डल के मध्य बलिपात्र स्थापित कर दक्ष हाथ से **'तत्व मुद्रा'** द्वारा **'बलि-पात्र'** का **'अमृत'** उस पर गिराते हुए निम्न बलिमन्त्र बोलकर बलि उत्सर्ग (प्रदान) करें।

बलि मन्त्र - **'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा, एष बलिः सर्वभूतेभ्यो नमः।'**

इसके पश्चात् **'ॐ सर्वेभ्यो बलिदेवताभ्यो नमः'** बोलकर सभी मण्डलों पर **'गन्धाक्षत-पुष्प'** डालें। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करें -

ॐ बलिदानेन संतुष्टाः क्षमध्वं बलिदेवताः। यथा सुखं विहरन्तु यथेच्छा सुदिशासु च॥

बलिदान के पश्चात् यन्त्रार्चन की प्रक्रिया आरम्भ करें। पहले यन्त्र पर पीठ-देवताओं तथा शक्तियों का पूजन (पीठ-पूजन) करें।

॥पीठ-पूजनम्॥

यन्त्र के मध्य बिन्दु पर पूजन करें-

ह्रीं आधार शक्त्यै नमः। इसी प्रकार पूर्व में **'ॐ'** तथा पश्चात् में **'नमः'** का संयोग करते हुए - **प्रकृत्यै, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, सुधाम्बुधये, मणिद्वीपाय, चिन्तामणिगृहाय, श्मशानाय, पारिजाताय,** (इसके मूल में कल्पना कर) **रत्नवेदिकायै,** (इसके ऊपर) **मणिपीठायै,** (इसके चारो ओर), **मुनिभ्यो, देवेभ्यो,** (सर्वतः-सब ओर) **बहुमांसास्थिमोदमानाशिवाभ्यः** तथा **शवमुण्डेभ्यः**। किसी-किसी के अनुसार इनके नामों से पहले नाम के प्रथम वर्ण को बीज के रूप में प्रयोग कर न्यास करना चाहिए। यथा - **ॐ प्रं प्रकृतये नमः, ॐ कूं कूर्माय नमः** इत्यादि रूप से।

प्रदक्षिणावत् आग्नेयादि (अपने आगे बांये से) चार कोण दिशाओं में- **ॐ धं धर्माय नमः, ॐ ज्ञां ज्ञानाय नमः, ॐ वैं वैराग्याय नमः** तथा **ॐ ऐं ऐश्वर्याय नमः**।

इसी प्रकार अपने आगे से प्रारम्भ करके पूर्वादि चार दिशाओं में - **ॐ अं अधर्माय नमः, ॐ अं अज्ञानाय नमः। ॐ अं अवैराग्याय नमः** तथा **ॐ अं अनैश्वर्याय नमः**।

मध्य में (मणिपीठ के ऊपर) - **ॐ आं आनन्द कन्दाय नमः**। इसी प्रकार **सं संविन्नालाय, प्रं प्रकृतमयपत्रेभ्यः, विं विकारमय केशरेभ्यः, पं पद्माय, अं द्वादशकलात्मने सूर्य मण्डलाय, उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय, मं (रं) दशकलात्मने अग्निमण्डलाय, सं सत्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने** तथा **ह्रीं ज्ञानात्मने**।

इसके पश्चात् यन्त्र के पद्मदलों में तथा मध्य में पूजन करे। दलों में प्रदक्षिणावत् पूर्वादि (स्वाग्र) से - **ॐ इं इच्छायै (इच्छा शक्त्यै) नमः**। इसी प्रकार **ज्ञां ज्ञानायै, क्रिं क्रियायै, कां कामिन्यै, कां कामदायिन्यै, रं रत्यै, रं रतिप्रियायै** तथा **आं आनन्दायै**।

कर्णिका में - **ॐ मं मनोन्मन्यै नमः**।

पुनः कर्णिका मध्य में ही - ऐं **परायै नमः। ऐं अपरायै नमः। ऐं विरूपायै (परात्परायै) नमः** तथा **'ह्सौः सदाशिव महाप्रेत पद्मासनाय नमः'**।

इसके बाद यथाविधि देवी का आवाहन कर यन्त्र पर प्रतिष्ठित करें।

॥ हृदयाद् देव्यावाहनं यन्त्रे स्थापनञ्च॥

अब पूर्व में वर्णित **'कराल वदनां घोरां०'** इत्यादि स्वरूपात्मक देवी का ध्यान करके साधक स्वयं को **'काम-कला'** रूप में परिणत हुआ सा भावना द्वारा अनुभव करके 'कच्छप मुद्रा' से हाथों में रक्त चन्दन लिप्त एक रक्तपुष्प (जपा-पुष्प) लेकर (अथवा पुष्पाँजलि बनाकर) 'मूलाधारस्थ कुण्डलिनि' को 'सुषुम्ना मार्ग' द्वारा सहस्रार में (भावना द्वारा) लाकर , वहाँ स्रवित होने वाले 'अमृतरस' में निमज्जित (सराबोर) करें। फिर उसे उसी मार्ग द्वारा हृदयस्थ रक्त अष्ट-दल पद्म पर लाकर गुरु-उपदिष्ट विधि से देवी का ध्यान तथा मूल मन्त्र का स्मरण करते हुए उस कुण्डलिनी को देवी मूर्ति के रूप में परिणत हुआ सा अनुभव करे। तत्पश्चात् वायु बीज **'यं'** का जप करता हुआ 'वामनासा' मार्ग द्वारा उस देवी मूर्ति को 'करस्थ पुष्प' अथवा पुष्पाञ्जलि में लाकर पुष्प सहित उसे सामने स्थित यन्त्र राज पर स्थापित कर दे। इसके बाद यह भावना करे कि 'महाकाल शिव' सहित देवी दक्षिण कालिका उस यन्त्र के मध्य बिन्दु पर उपस्थित हो गयी हैं। तत्पश्चात्-

ॐ देवेशि! भक्तिसुलभे परिवार समन्विते।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥

इस मन्त्र-श्लोक से विनती कर यथास्थिति मुद्राओं का प्रदर्शन करता हुआ **'आवाहनादि'** करे।

ॐ साङ्गे श्री महाकाल शिव सहिते श्री दक्षिणे कालिके! इहागच्छ-इहागच्छ। इसी प्रकार आगे भी- **इह तिष्ठ-इह तिष्ठ। इह सन्निहिता भव-सन्निहिता भव। इह सन्निरुद्धा भव-सन्निरुद्धा भव। इह सम्मुखी भव-सम्मुखी भव। मम सर्वोपचार पूजां गृहाण-गृहाण।** इसके बाद षडङ्गमन्त्रों से **'देवी'** का **'सकलीकरण'** करे।

क्रां हृदयाय नमः। क्रीं शिरसे स्वाहा। क्रूं शिखायै वषट्। क्रैं कवचाय हुं। क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। क्रः अस्त्राय फट्। इन मन्त्रों को बोलते हुए यन्त्र बिन्दु के अग्नि-निर्ऋति, ईशान, वायव्य, मध्य तथा सर्व दिशाओं में क्रमशः देवी के अङ्गो की कल्पना करते हुए पुष्प द्वारा उन्हें स्पर्श करे। तदुपरान्त- **'हुं'** से **'अवगुण्ठन मुद्रा'** द्वारा **'अवगुण्ठन'** करके **'अवगुण्ठिता भव'** बोलकर, **'फट्'** से **'संरक्षण'**, **'वं' बीज** तथा **'धेनुमुद्रा'** से **'अमृतीकृता भव'** बोलकर **'अमृतीकरण'** करे। इसके बाद भगवती की (काल्पनिक) मूर्ति के ऊपर **'महा-मुद्रा'** से सामान्यार्घ्य का जल गिराता हुआ देवी के अभिषिञ्चन की भावना करता हुआ बोले - **परमीकृता भव।**

॥ प्राण-प्रतिष्ठापनम्॥

अब देवता के हृदय के सामने 'लेलिहान-मुद्रा' का प्रदर्शन करते हुए निम्न मन्त्रों द्वारा उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। यथा –

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं.......हं हौं हंसः श्री दक्षिण कालिका देवतायाः प्राणा इह प्राणाः।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं.......हं हौं हंसः श्री दक्षिण कालिका देवतायाः जीव इह स्थितः।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं.......हं हौं हंसः श्री दक्षिण कालिका देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं.......हं हौं हंसः श्री दक्षिण कालिका देवतायाः वाङ्-मनस्त्वक्-चक्षुर्जिह्वा घ्राण-प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा प्रत्येक मन्त्र को तीन-तीन बार बोलें।

तदुपरान्त मूलमन्त्र का तीन बार जप करके देवता की मूर्ति में ऋष्यादि न्यास कर-षडङ्ग न्यास करके देवता के सम्मुख **'खड्ग'**, **'मुण्ड'**, **'वर'** तथा **'अभय'** मुद्राओं का प्रदर्शन करके **'योनिमुद्रा'** से देवता को प्रणाम करे। तत्पश्चात्- **'देवि दक्षिणे कालिके! स्वागतं, कुशलं, इदमासनं आस्यताम्'** बोलकर आसन हेतु पद्म मुद्रा से पुष्प यन्त्र पर अर्पित करे।

॥ आवरण-देवतानामावाहनम्॥

इसके बाद साधक **'ह्रां (क्रां) हृदयाय नमः-हृद्देवतायै नमः'** इत्यादि रूप से षडङ्ग मन्त्रों द्वारा अग्नि, निर्ऋति, ईशान, वायव्य, मध्य तथा सर्वदिशा में देवी का षडङ्ग पूजन करके उनकी 'रश्मि-वृन्द' का आवाहन करे। यन्त्र के पाँचों त्रिकोणों के पन्द्रहों कोणों में (अथवा तीन त्रिकोण तथा षट्कोण में जिस प्रकार का यन्त्र स्थापित किया गया है, उसके अनुसार) स्वाग्र से, भीतर से बाहरी त्रिकोण (षट्कोण) तक भावना करते हुए-

ॐ काली-कपालिनी-कुला-कुरुकुला-विरोधिनी-विप्रचिन्ता-उग्रा-उग्रप्रभा-दीप्ता-नीला-घना-बलाका-मात्रा-मुद्रा-अमिताः रश्मिवृन्द देवताः इहागच्छन्तु-२। इसी प्रकार- **इह तिष्ठन्तु-२। इह सन्निहिता भवन्तु-२। इह सन्निरुद्धा भवन्तु-२। इह सम्मुखी भवन्तु-२। मम सर्वोपचार पूजां गृह्णन्तु-गृह्णन्तु।** बोलें।

इसके बाद रश्मिवृन्द देवताओं का ध्यान करें।

सर्वाः श्यामा असिकराः मुण्डमाला-विभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः॥

इसके बाद ब्राह्मी आदि अष्ट-मातृकाओं का आवाहन-ध्यान करे। यथा-

ॐ ब्राह्मी-नारायणी-माहेश्वरी-चामुण्डा-कौमारी-अपराजिता-वाराही-नारसिंही मातृका इहागच्छन्तु-इहागच्छन्तु। आगे पूर्ववत् **'सम्मुखी भवन्तु'** तक बोलें।

अब क्रमशः प्रत्येक मातृका का ध्यान करें। यथा-

ब्राह्मी -

ब्रह्माणी हंस-संरूढां स्वर्णवर्णां चतुर्भुजाम्। चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रां च ब्रह्मकूर्चञ्च पंकजम्।
दण्डपद्माक्षं सूत्रं च दधतीं चारु हासिनीम्। जटा-जूट-युतां देवीं भावयामि पूर्वदले।।

नारायणी -

नारायणीं महादीप्तां श्यामाञ्च गरुडासनाम्। नानालंकारविभूषां चारुकेशां चतुभुर्जाम्।।
घण्टाशंख कपालञ्च चक्रञ्च दधतीं पराम्। मधुमत्तमदाघूर्णां नेत्रं सर्वाङ्ग सुन्दरीम्।।

माहेश्वरी -

वृषारूढां शुभ्रां देवीं माहेश्वरीं नेत्रत्रयाम्। कपालं डमरुं चैव वरदाभय-शूलकम्।
टङ्कं सन्दधतीं हस्तैः दिव्यालङ्कारभूषिताम्। ध्यायेऽहं दक्षदले मातरं सौभाग्यप्रदाम्।।

चामुण्डा -

चामुण्डामट्टहासां प्रकटित दशनां भीम-वक्त्रां त्रिनेत्राम्,
नीलाम्भोजप्रभाभां प्रमुदितवपुषां नरमुण्डालिमालाम्।
खड्गं शूलं कपालं नरशिरघटितां खेटकं धारयन्तीम्,
प्रेतासनां प्रमत्तां मधुमदमुदितां भावेच्चण्ड रूपाम्।।

कौमारी -

कुंकुमाभां शिखिस्थितां शक्तिपाशां कुशाभयम्। संदधतीं चतुर्भुजां नानालङ्कारसंयुक्ताम्।।
परिचिन्तयामि देवीं कौमारीं प्रमत्तां शुभाम्। कमलस्यासुरदले स्थितां चैव वरप्रदाम्।।

अपराजिता -

पीताङ्गामपराजितामक्षसूत्र वर प्रदाम्। कपालं मातुलिङ्गञ्च दधतीं परिचिन्तये।।

वाराही -

वाराहीं धूम्र वर्णाञ्च वराहवदनां शुभाम्। फलक खड्गमूषलहलवेदभुजैर्धृताम्।।

नारसिंही -

नृसिंह सदृशं वपुं धारयन्तीं नारसिंहीम्। भीमासुर भयङ्करीं भावयामीशान दले।।

तत्पश्चात् **'अष्ट भैरव'** तथा **'भैरवी'** का आवाहन दल के अग्रभाग पर पूर्वादि क्रम से करें।

भैरवी-महाभैरवी-सिंह, धूम्र, भीम, उन्मत्त, वशिनि-मोहिनी भैरवीभिः सह असिताङ्ग-रुरु-चण्ड-क्रोध-उन्मत-कपाली-भीषण-संहार-भैरवाः इहागच्छन्तु-इहागच्छन्तु (आगे पूर्ववत्)।

भैरवानां ध्यानम्-

भीषणास्यं त्रिनयनमर्धचन्द्रविभूषितम्। स्फटिकाभं कङ्कणादिभूषाशतसमायुतम्।
अष्टवर्षवयस्कं च कुन्तलोल्लसितं भजे। दण्ड-शूले धारयन्तं भैरव्या च समायुतम्।।

भैरवी ध्यानम् -

चन्द्रकोटि समाभासां शुभ्रवदनां त्रिनेत्राम्। पञ्चवक्त्रां अष्टादश भुजां च भैरवीं भजे।।

२. ॐ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मां अवतु वक्तारं स्वाहा॥

३. ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात् सम्बभूव। समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु, अमृतस्य देव धारणो भूयासं। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहतः श्रुतं मे गोपाय आवाहन्ती वितन्वाना स्वाहा॥

इस प्रकार तीनों मन्त्र एक-एक कर बोलते हुए प्रत्येक बार एक-एक बूँद ग्रहण करें। इसके बाद विशेषार्घ्य लेकर स्वयं पर तथा सभी पूजन-सामग्रियों पर छिड़क कर सब कुछ को ब्रह्म-मय अनुभव (भावना द्वारा) करें।

॥पञ्च-बलि-प्रदानम्॥

साधक श्री चक्र (यन्त्र-पीठ) के पूर्वादि चारो दिशाओं में त्रिकोण-वृत्त रूप तथा अपने बायें चतुरस्र रूप मण्डल बनाकर **'ऐं ह्रीं कूर्ममण्डलाय नमः'** से पाँचों मण्डलों का पूजन करे। तत्पश्चात् प्रत्येक मण्डल के समीप आधार सहित बलिपात्र (जिसमें पृथक-पृथक छोटे-छोटे पात्रों में शुद्धि-मीन-मुद्रा बटकादि सर्व प्रकार के बलि पदार्थ रखे हों) स्थापित करें।

१. वटुक बलि - पहले **'ऐं ह्रीं हूं वटुक बलि मण्डलाय नमः'** से मण्डल का पूजन करें फिर उसी मण्डल पर मध्य में **'वां वटुकाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इसी प्रकार **पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य** समर्पण रूप **'पञ्चोपचार पूजन'** करके मण्डल के मध्य भाग पर आधार सहित बलि पात्र स्थापित करके उस बलि पदार्थ पर एक घृत-पूरित फूल बत्ती भी जलायें। फिर बलि-मन्त्र बोलते हुए, उस मण्डलस्थ बलिभाग पर, बलि पात्रस्थ अमृत को बांये अंगुष्ठ-अनामिका (तत्वमुद्रा) से गिराते हुए बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्र- **एहि-एहि देवी पुत्र वटुकनाथ कपिल जटा भार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख! सर्व विघ्नान् नाशय-नाशय सर्वोपचार सहितं बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा। एष बलिः वां वटुकाय नमः।**

२. योगिनी बलि - दक्षिण मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं योगिनी बलि मण्डलाय नमः'** से पूजन कर मध्य में **'यां योगिनीभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से पूर्ववत् **'पञ्चोपचार पूजन'** करके मण्डल पर बलिपात्र रखकर दक्ष-अंगुष्ठ-अनामिका से **'योगिनी पात्र'** का **'अमृत'** उस पर गिराते हुए निम्न बलि-मन्त्र बोलते हुए बलि प्रदान की क्रिया करें।

बलि-मन्त्र - **ॐ ऊर्ध्व ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा पाताले वा वने वा पवन सलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा। क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृत पदा धूपदीपादिकेन प्रीताः देव्यः सदा नः शुभ बलि विधिना पान्तु वीरेन्द्र वन्द्याः यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हुं फट् स्वाहा एष बलिः यां योगिनीभ्यो नमः।**

३. **क्षेत्रपाल बलि** - पश्चिम मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं क्षेत्रपाल बलि मण्डलाय नमः'** से पूजन करके **'क्षां क्षेत्रपालाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से क्षेत्रपाल का **'पञ्चोपचार'** पूजन कर, मण्डल पर बलिपात्र स्थापित करके, बांये हाथ की मुट्ठी बांधकर अंगूठे के अग्रभाग से **'बलिपात्र'** का **'अमृत'** गिराते हुए निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करें-

बलि मन्त्र - **क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थान क्षेत्रपाल धूपदीपादि सहितं बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा। एष बलिः क्षां क्षेत्रपालाय नमः।**

४. **गणेश बलि** - उत्तर दिशा के मण्डल का **'ऐं ह्रीं हूं गणेश बलि-मण्डलाय नमः'** से पूजन कर **'गं गणेशाय नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से **'पञ्चोपचार'** पूजन करके, बलिपात्र मण्डल पर रखकर निम्न **'बलि-मन्त्र'** को बोलते हुए वाम हाथ से **'गजतुण्ड मुद्रा'** अथवा **'अंगुष्ठ मध्यमा'** से **'बलि-पात्र'** का **'अमृत'** गिराते हुए (बलिभाग पर) बलि प्रदान करें।

बलि मन्त्र - **गां गीं गूं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा, एष बलिः गं गणपतये नमः।**

५. **सर्वभूत-बलि**- **'ऐं ह्रीं हूं सर्वभूत बलिमण्डलाय नमः'** से स्ववामस्थ मण्डल का पूजन कर **'ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि'** इत्यादि रूप से **'सर्वभूतों'** का **'पञ्चोपचार'** पूजन करके मण्डल के मध्य बलिपात्र स्थापित कर दक्ष हाथ से **'तत्व मुद्रा'** द्वारा **'बलि-पात्र'** का **'अमृत'** उस पर गिराते हुए निम्न बलिमन्त्र बोलकर बलि उत्सर्ग (प्रदान) करें।

बलि मन्त्र - **'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा, एष बलिः सर्वभूतेभ्यो नमः।'**

इसके पश्चात् **'ॐ सर्वेभ्यो बलिदेवताभ्यो नमः'** बोलकर सभी मण्डलों पर **'गन्धाक्षत-पुष्प'** डालें। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करें -

ॐ बलिदानेन संतुष्टाः क्षमध्वं बलिदेवताः। यथा सुखं विहरन्तु यथेच्छा सुदिशासु च॥

बलिदान के पश्चात् यन्त्रार्चन की प्रक्रिया आरम्भ करें। पहले यन्त्र पर पीठ-देवताओं तथा शक्तियों का पूजन (पीठ-पूजन) करें।

अनुलेपनम् - मूलं महा...........नमः। अयं अङ्गरागः।

ॐ अंगरागमिमं शीतं नानासुरभिसंयुतम्। मया निवेदितं प्रीत्या गृहाण लेपायाङ्गकम्॥

शरीर पर लगाने (लेपन) के लिए अङ्गराग प्रदान करें।

सिन्दूरम् - मूलं महा.......नमः, इदं सीमन्तकम् (सिन्दूरम्)।

ॐ सीमन्तशोभावर्धकं सिन्दूरं रागोद्भवम्। अतिरागसमुत्पिञ्ज-सीमन्तकं च गृह्यताम्॥

सिन्दूर प्रदान करें।

कज्जल - मूलं महा........नमः, एतत् कज्जलम्।

ॐ स्निग्धमुष्णं मनोहरं नेत्रशोभावर्धनञ्च। कज्जलं गृहाण देवि नेत्राण्यञ्जय शोभने।

उपर्युक्त मन्त्रों से देवी को काजल प्रदान करें।

अलक्तकम् - मूलं महा......नमः, इदमलक्तकम्।

ॐ दीप्तिकरं च नखानां पादयोः द्युति-वर्धनम्। अलक्तकं प्रगृह्यतां मया दत्तमिदं देवि॥

इस मन्त्र के द्वारा पैरों में लगाने के लिए अलक्तक (आलता-महावर) प्रदान करें।

अक्षतान् - मूलं महा.......नमः, एतानक्षतान्।

ॐ विमलानक्षतान् देवि! हेमरौप्यादिनिर्मितान्। गृहाणत्वं मया दत्तं प्रसीद च सुरेश्वरि॥

उपर्युक्त मन्त्रों से देवी को अक्षत (चावल) अपित करें।

७. आभूषणम् - मूलं महा........नमः, एतानि आभूषणानि।

ॐ सहजाय सुन्दराय नाना शक्तिश्रयाय च। विचित्राण्याभूषणानि कल्पिताङ्गाय मया ते॥

देवी को विभिन्न प्रकार के आभूषण प्रदान करें।

भालालङ्करणम् - मूलं महा........नमः, इदं भालालङ्करणम्।

ॐ दिव्येदं भालाभूषणं महासौभाग्यसूचकम्। निवेदितं मया प्रीत्या गृह्ण नित्यं सुवासिनि॥

भाल पर धारण करने के लिए मस्तकालङ्करण (बिन्दी) प्रदान करें।

बाह्वाभूषणम् - मूलं महा..........नमः, इदं बाहु-भूषणम्।

ॐ स्वर्णलाक्षादिनिर्मितं रम्यं बाहु-भूषणम्। समर्पयामि ते देवि गृहाण परमेश्वरि॥

हाथों में धारण करने वाले कङ्कन-चूड़ी आदि समर्पित करें। वस्त्राभूषणादि समर्पित करते समय इसे पहनाने आदि की भावना भी करनी चाहिए।

इसके बाद वस्त्राभूषण-श्रृंगारादि से सुसज्जित प्रसन्न मुखी देवी को सुन्दर मन्द गति से लाकर श्रीचक्र पर पुनः विराजित करने की भावना करे। इसके बाद-

८. गन्धम् - मूलं महा.........नमः, एष गन्धः।

ॐ गन्धाष्टकेन निर्मितं गन्धं दिव्यं मनोहरम्। प्रीत्या स्वीकुरुष्व देवि मया भक्त्या निवेदितम्॥

९. पुष्पम् - मूलं महा.........कालिकायै वौषट्, इमानि पुष्पाणि।

ॐ एतानि पुष्पाणि यानि ग्राम्यारण्ये चोद्भवानि। गृहाण सुमुखी भूत्वा प्रसीद च महेश्वरि॥

इन मन्त्रों से पुष्प अर्पित करें।

बिल्व-पत्रम् - मूलं महा........वौषट्, एतानि बिल्व-पत्राणि।

ॐ श्रीयुतं श्री वृक्षोद्भवं नित्यं शिव-सुखदायकम्। बिल्व-पत्रं प्रयच्छामि देवेशि! तुभ्यं प्रीतये।

इन मन्त्रों द्वारा देवी को बिल्व-पत्र प्रदान करें।

दूर्वा - मूलं महा............वौषट्, एतानि दूर्वा-दलानि।

ॐ हरिताभां च कोमलां दूर्वामिमां सद्योधृताम्। गृहाणमातरर्पितां मम कल्याण-हेतवे॥

हरी, स्वच्छ, सद्योगृहीत दूर्वा (दूब घास) अर्पित करें।

माला - मूलं महा..........वौषट्, इमां मालाम्।

ॐ नानापुष्प विरचितां मालां प्रभ्रष्टालम्बनाम्।
सम्प्रददामि ते देवि! मह्यं श्रियं प्रयच्छ च॥

शिर से पैर तक लम्बी माला देवी को प्रदान करें।

उपर्युक्त चारों पदार्थों का संक्षिप्त समर्पण -

मूलं महा..........वौषट्, एतानि पुष्प-बिल्वपत्र-माल्य-दूर्वादलानि।

ॐ इमानि पुष्पाणि बिल्व-पत्राणि दूर्वा-दलानि।
माल्यानि मयादत्तानि गृहाण परमेश्वरि॥

(इस प्रकार बोलकर के एक-एक कर प्रत्येक पदार्थ को अर्पित करें।)

१०. धूपम् - सामान्यार्घ्य जल से धूप-पात्र को 'फट्' मन्त्र से प्रक्षालित कर उसमें अग्नि सहित धूप रख कर **'नमः'** से गन्धाक्षत द्वारा पूजन करके देवी को सामने रख उसे वाम तर्जनी से स्पर्श करे। इसके बाद **'हूं जयध्वनि मन्त्र मातः स्वाहा'** से घण्टे का पूजन करें। तत्पश्चात्-

मूलं महाकाल......कालिकायै नमः, धूपं निवेदयामि। बोलकर उस (धूप) पर विशेषार्घ्य का द्रव्य छिड़क कर उसे दाहिने हाथ (सम्भव हो तो अंगुष्ठ तर्जनी) से उठाकर बांये हाथ से घण्टा बजाते हुए देवी के सामने नीचे की ओर तीन बार घुमायें। घुमाते समय देवता की **'गायत्री'** अथवा **'मूल-मन्त्र'** बोलें। इसके बाद धूप को देवी के बायें नीचें रख दें। गायत्री मन्त्र अथवा मूल मन्त्र बोलने से पहले निम्न मन्त्र को बोलें -

मिश्रितं कर्पूरागुरुं वनस्पति-रसोद्भवम्। मया निवेदितं धूपं गृहाण परमेश्वरि॥

११. दीपम् - सामान्यार्घ्य जल से दीप-पात्र का **'फट्'** द्वारा प्रक्षालन कर उसमें कपूर सहित घृत (सम्भव हो तो गोघृत) अथवा तिल का तेल

रखकर बत्ती डालकर प्रज्जवलित करें। **'नमः'** से उसका पूजन करके देवता के सामने रखकर वाम मध्यमा से स्पर्श करके-

मूलं महा...............कालिकायै नमः, दीपं दर्शयामि। बोलकर विशेषार्घ्य का द्रव्य उसके चारों ओर छोड़कर, बायें हाथ से घण्टा बजाते हुए दाहिने हाथ (सम्भव हो तो मध्यमा अंगुष्ठ) से दीप पात्र को पकड़कर तीन बार देवी के सामने (नेत्रों के समक्ष) घुमायें। घुमाते समय पूर्ववत् मन्त्र बोलें। तत्पश्चात् उसे देवी के दक्षिण भाग में नीचे रख दें। इसके बाद हाथ धो लें।

गायत्री मन्त्र अथवा मूल मन्त्र (दीप पात्र को घुमाते समय) बोलने से पहले निम्न मन्त्र बोलें -

त्वं सूर्यचन्द्र ज्योतिषि विद्युदग्नि तथैव च।
त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

१२. नैवेद्यम् - नैवेद्य के लिए उपलब्ध पदार्थों (व्यञ्जन फलादि) को स्वर्णादि (सामार्थ्यानुसार) से निर्मित पात्र में रखकर, देवी के सम्मुख थोड़ा दायीं ओर **'त्रिकोण मण्डल'** बनाकर उस पर आधार सहित रखें। फिर **'हुं'** बीज तथा **'अवगुण्ठन मुद्रा'** से **'अवगुण्ठन'**, उसके ऊपर सोलह बार **'यं'** इस वायु बीज का जप करके दोषों का **'शोषण'** अग्नि बीज **'रं'** का सोलह बार जप करके दोषों का **'दहन'** (**भस्मीकरण**) तथा **'वं'** इस वरुण बीज का उतना ही जप करके **'धेनुमुद्रा'** द्वारा **'अमृतीकरण'** करें।

इसके बाद उसके ऊपर सात बार 'मूल मन्त्र' का जप करके वामांगुष्ठ से पात्र को स्पर्श करते हुए बोलें-

मूलं महा....................नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।

ॐ नानाविधानि रम्याणि स्वादूनि रसवन्ति च। मया दत्तानि गृह्यतां नैवेद्यानि सुरेश्वरि॥
गव्यसर्पिपयोयुक्तं नानामधुर मिश्रितम्। निवेदितं मयादेवि! परमान्नं प्रगृह्यताम्॥
मासं विविधं रम्यं मीनं भर्जितमुत्तमम्। अपूपं सितया मिश्रं प्रतिगृह्याशु भुज्यताम्॥

तत्पश्चात् एक पात्र में वस्त्र से छाना हुआ शुद्ध, निर्मल मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल लेकर उसे नैवेद्य पात्र के पास रख दें।

इसके बाद **'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'** बोलकर **'विशेषार्घ्यामृत'** प्रदान करके **'प्राणाय स्वाहा'** (क०+अना०+अं० स्पर्श मुद्रा बनाकर), **'अपानाय स्वाहा'** (त०+म०+अ० से), **'व्यानाय स्वाहा'** (म०+अना०+अं०), **'उदानाय स्वाहा'** (कनिष्ठा रहित शेष चार अंगु० से) तथा **'समानाय स्वाहा'** (पांचों अंगुलियों से ग्रास मुद्रा बनाकर) बोलते हुए तथा प्रत्येक ग्रास

मुद्राओं का प्रदर्शन करते हुए **'पञ्चग्रास'** प्रदान करें। यदि सम्भव हो तो देवी तथा स्वयं के बीच में आवरण कर दे अथवा कुछ देर आंखें बन्द करके शान्त बैठा रहे तथा देवी को भोजन करते हुए भावना करे।

जब साधक को यह आभास हो जाय कि देवी भोजन कर चुकी है तो आवरण हटा कर नैवेद्य के पास रखे जल को हाथ में लेकर बोलें-

मूलं महा......................नमः, इदं पानीय-जलं समर्पयामि।

ॐ दक्षिणाकालिके देवि! हृद्यं तृप्तिकरं परम्।
अखण्डानन्द सम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्॥

१३. तर्पणम्- भोग पात्र को वामहस्त की त्रिखण्डा मुद्रा (अनामिका-मध्यमा-सामने की ओर मुड़ी हुई करतल पर स्थित तथा शेष तीनों अंगुलियाँ सीधी स्थिति में) से तथा दाहिने हाथ से **'शुद्धि-खण्ड'** लेकर बोलें- **'ॐ परमं वारुणी कल्पं कोटि कल्पान्त कारिणि! गृहाण शुद्धि सहितं देहि मे मोक्षमव्ययम्।'** इसके बाद भोग पात्र का थोड़ा सा **'अमृत'** तथा **'शुद्धि-खण्ड'** यन्त्र के पीछे रखकर भोग पात्र को आधार पर रख दे। फिर बोले-

मूलं महा................नमः, इदं शुद्धि सहितं आसवं निवेदयामि।

इसके बाद **'विशेषार्घ्य'** के **'अमृत'** से उत्सर्ग करके देवता का तीन बार **'तर्पण'** करे।

मूलं महाकाल शिव सहितायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै सायुधायै श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। विशेषार्घ्यामृत से तीन बार बोलते हुए तर्पण करे। इसके बाद - **'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा'** बोलकर 'विशेषार्घ्यामृत' की बूँदें यन्त्र पर (मुख में देने की भावना सहित) छोड़ें।

१४. आचमनम् - इसके बाद पहले आचमन के लिए फिर 'गण्डूष' तथा मुख प्रक्षालन के लिए शुद्ध जल प्रदान करें।

मूलं महा................नमः, इदं आचमनीयं जलं समर्पयामि। पुनः **गण्डूषार्थे मुखशुद्ध्यर्थे च जलं समर्पयामि।**

१५. ताम्बूलम् - अब देवी को सुवासित ताम्बूल अर्पित करे।

मूलं महा............नमः, ताम्बूलं निवेदयामि।

ॐ दिव्यं पूगीफलं युतं कर्पूरादि सुवासितं मुख शुद्ध्यर्थं ताम्बूलं गृह्यतां परमेश्वरि॥

पाँचों अंगुलियों से ताम्बूल को ग्रहण कर मुख में खिलाने की भावना करते हुए यन्त्र पर अर्पित करें।

१६. पुष्पाञ्जलीम् - इसके बाद देवी के शिर-स्तन-योनि-पाद तथा सर्वाङ्ग पर एक-एक करके पाँच बार पुष्पाञ्जलि अर्पित कर विशेषार्घ्यामृत से उत्सर्ग करे।

मूलं महा................कालिकायै वौषट्, इमं पञ्च पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

इसके पश्चात् **'योनिमुद्रा'** अथवा **'महायोनिमुद्रा'** से देवी को प्रणाम करें।

इस प्रकार इष्ट देवता स्वरूपा देवी (श्रीमद् दक्षिण कालिका) का पूजन करने के बाद उनके दक्ष भाग में स्थित 'महाकाल' का पृथक रूप से ध्यान करके पूजन करें।

॥ महाकाल-ध्यानम्॥

कोटिकालानलाभासं चतुर्बाहुं त्रिलोचनम्। श्मशानाष्टक मध्यस्थं मुण्डाष्टक विभूषितम्॥
पञ्चप्रेतस्थितं देवं त्रिशूलं डमरुं तथा। खड्गञ्च खर्परञ्चैव वामदक्षिण योगतः॥
विभ्रतं सुन्दरं देहं श्मशानभस्मशोभितम्। नानाशवैः क्रीडमानं कालिकां हृदयस्थिताम्॥
लालयन्तं रतासक्तं घोर चुम्बन तत्परम्। गृद्ध्रगोमायुसंयुक्तं फेरवीगणसंयुतम्॥
जटापटल शोभाढ्यं सर्वशून्यालये स्थितम्। सर्वशून्यं मुण्डभूषं प्रसन्नवदनं शिवम्॥
(एतद्रूपं महाकालं कालिकायाः दक्षस्थितम्। हृदयाष्टदले पद्मे भावयामि मुहुर्मुहुः॥)

इसके पश्चात् महाकाल के मूल मन्त्र (**हुं क्षौं यां रां लां वां क्रौं महाकाल भैरव! सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा**) से पञ्चोपचार पूजन करे।

पूजनम् - मूलं श्री महाकालाय नमः, गन्धं समर्पयामि। इसी प्रकार **पुष्पं, धूपं, दीपं, नैवेद्यं** तथा **ताम्बूलं समर्पयामि** बोलते हुए उपचारों के द्वारा पूजन करें। तदुपरान्त-

तत्पश्चात् महाकाल कवचादि का पाठ करके **'हूं हूं महाकाल प्रसीद-प्रसीद ह्रीं ह्रीं स्वाहा'** का जप करके (न्यूनतम दश बार) उसे समर्पित करके 'योनिमुद्रा' से प्रणाम करें।

॥ आवरण पूजनम्॥

हाथों में पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर, देवी से श्री चक्र (यन्त्र) में स्थित उनके आवरण देवताओं के पूजन हेतु आज्ञा प्राप्त करते हुए उसे (पुष्पाञ्जलि को) देवी के चरणों में (यन्त्र पर) अर्पित करे।

ॐ संविन्मये परे देवि! परामृतरसप्रिये। अनुज्ञां कालिके देहि परिवारार्चनाय ते (मे)॥

इस प्रकार स्वयं को आज्ञा प्राप्त मानकर यथास्थान आवरण देवताओं का ध्यान करके **'दक्ष हाथ'** की **'ज्ञान मुद्रा'** से गन्धाक्षत द्वारा पूजन तथा **'वामहस्त'** की **'तत्व मुद्रा'** से **'शुद्धिखण्ड'** ग्रहण कर तर्पण करे।

प्रथमावरण पूजनम् - यन्त्र के प्रथम (सबसे भीतरी) त्रिकोण के बिन्दु पर आग्नेय, ईशान, निर्ऋति, वायव्य, मध्य (देव्यग्र) तथा सर्वदिशाओं में षडङ्ग देवताओं का ध्यान कर **'विशेषार्घ्य पात्रस्थ द्रव्य'** से तर्पण करें। पहले **'ॐ प्रथमावरण देवताभ्यो नमः'** बोलकर पुष्पाँजलि अर्पित करें।

ध्यान-तुषार स्फटिक श्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः।
वरदाभय धारिण्यः पुरातन नवस्त्रियः॥

(सभी षडङ्ग देवता-शक्तियाँ नवयुवती स्वरूप वाली एवं अपने हाथों में वर तथा अभयमुद्रा धारण की हुई हैं। इनके वर्ण क्रमशः हिमवत्, स्फटिकवत्, श्याम, नील, कृष्ण तथा अरुण हैं।)

क्रां हृदयाय नमः हृदयशक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (आग्नेये).

क्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (ईशाने)

क्रूं शिखायै वषट् शिखा शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (नैर्ऋत्ये)

क्रैं कवचाय हुं कवच शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (वायव्ये)

क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (मध्ये-देव्यग्रे)

क्रः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (सर्वदिक्षु)

(इन मंत्रों में 'क्रीं' के स्थान पर 'ह्रीं' का भी प्रयोग कर सकते हैं।)

समर्पणम् - हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर - **मूलं भगवति दक्षिणा कालिके! अभीष्ट सिद्धिं में देहि शरणागत वत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥** बोलकर यन्त्र पर भगवती के चरणों का स्मरण पुष्पाञ्जलि अर्पित कर दें। पुनः **'एताः प्रथमावरण देवताः साङ्गा सपरिवाराः सायुधाः सवाहनाः सशक्तयः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः'** बोलकर त्रिकोण के मध्य बिन्दु पर विशेषार्घ्यामृत की कुछ बूँदें छोड़ें।

द्वितीयावरण-पूजनम् - बिन्दु के बायीं ओर वायव्य से ईशान पर्यन्त पाँच पंक्तियों की कल्पना करके प्रथम पंक्ति पर **'गुरु चतुष्ट्य'** का (गुरु-पात्र से गुरु का तथा 'श्रीपात्र' से परमगुरुओं का अथवा गुरुपात्रामृत से ही सभी गुरुओं का) तर्पण पूजन करें। आगे क्रमशः **दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ** तथा **'कुल गुरु'** पंक्तियों का पूजन-तर्पण करें।

पहले गुरु-पंक्तियों का ध्यान करें। यथा -

गुरु-ध्यानम्- ते रक्तमाल्याम्बरभूषणाद्यैः स्वलंकृताः पङ्कजविष्टरस्थाः।
सर्वे च सालम्बनयोग निष्ठाः प्राप्ताखिलैश्वर्यगुणाष्टकार्याः॥

इसके बाद **'ॐ द्वितीयावरण देवताभ्यो नमः'** से यन्त्र पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। फिर पूजन-तर्पण करें।

प्रथम पंक्ति पर – **'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं सहखफ्रें सहक्षमलवरयीं श्री गुरु अमुकानन्दनाथ तच्छक्त्यम्बा श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।**

इसी प्रकार **'श्री गुरु'** के स्थान पर **'परम गुरु'**, **'परापर गुरु'** तथा **'परेमष्ठि गुरु'** शब्दों का प्रयोग करते हुए उनका तर्पण-पूजन करें।

द्वितीय पंक्ति पर (दिव्यौघ गुरु) –

श्री महादेव्यम्बा श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

श्री महादेवानन्दनाथ श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

श्री त्रिपुराम्बा श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

श्री श्री भैरवानन्दनाथ श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।

तृतीय पंक्ति पर – **'सिदौघ'** गुरुओं **श्री ब्रह्मानन्दनाथ, पूर्ण देवानन्द नाथ, चलचित्तानन्दनाथ, चञ्चलानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, क्रोधानन्दनाथ, स्मरदीपानन्दनाथ, मायाम्बा** तथा **मायावत्यम्बा** का पूजन-तर्पण करें। (पूर्ववत् नाम के पश्चात् 'श्री पादुका पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा' का योग करते हुए)

चतुर्थ पंक्ति पर – **'मानवौघ'** गुरुओं **श्री विमलानन्द नाथ, कुशलानन्द नाथ, भीमसेनानन्दनाथ, सुधाकरानन्दनाथ, मीनानन्दनाथ, गोरक्षा(गोरक्षका)नन्दनाथ, भोजदेवानन्दनाथ, प्रजापत्यानन्दनाथ, मूलदेवानन्दनाथ, रन्तिदेवानन्दनाथ, विघ्नेश्वरानन्दनाथ, हुताशनान्दनाथ, समयानन्दनाथ** तथा **सन्तोषानन्दनाथ** का पूजन-तर्पण पूर्ववत् करें।

पाँचवी पंक्ति पर – **'कुलगुरुओं' प्रह्लादानन्दनाथ, सनकानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठानन्दनाथ, क्रोधानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ, ध्यानानन्दनाथ** तथा **बोधानन्दनाथ** का पूजन-तर्पण करें।

समर्पणम् – पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि सहित मन्त्र (प्रथम के स्थान पर 'द्वितीय' शब्द का प्रयोग करके) बोलते हुए पूजन समर्पण करें। पुनः **'एताः द्वितीयावरणदेवताः'** इत्यादि बोलकर **'विशेषार्घ्यामृत'** की कुछ बूँदे बिन्दु के वामभाग पर छोड़ें।

तृतीयावरण-पूजनम् – पहले **'ॐ तृतीयावरण देवताभ्यो नमः'** से **'यन्त्र'** के **'पञ्च त्रिकोण'** पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करें। फिर प्रथम सबसे भीतरी त्रिकोण के स्वाग्र कोण (अधः कोण) से प्रारम्भ कर 'वामावर्त' क्रम से पाँचों त्रिकोणों के पन्द्रहों कोणों में 'नित्याओं' का पूजन-तर्पण करें। तर्पण 'योगिनीपात्र' के द्रव्य से तीन अथवा एक बार करें।

(ऐं ह्रीं श्रीं) ॐ काली -श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। इसी प्रकार **कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाका, मात्रा, मुद्रा** तथा **मिता** का पूजन-तर्पण करें। इनका ध्यान इस प्रकार है - **सर्वाश्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः।**

तर्जनीवामहस्तेन धारयन्त्यशुचिस्मृताः। दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः॥

समर्पणम् - पुनः हाथ में पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर **'मूलं भगवति०'** इत्यादि पूर्ववत् बोलते हुए **'तृतीयावरणार्चन'** देवी को समर्पित कर, **'एताः तृतीयावरण देवताः'** इत्यादि बोलकर **'त्रिकोणों'** पर **'विशेषार्घ्यामृत'** की बूँदें अर्पित करें।

चतुर्थावरण-पूजनम् - **'ॐ चतुर्थावरण देवताभ्यो नमः'** से अष्टदल पद्म पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करें। दलों पर पूर्वादि से दक्षिणावर्त क्रम से ब्राह्मी आदि **'अष्टमातृकाओं'** पूजन तथा तर्पण (योगिनी पात्र से) तीन अथवा एक बार करें। ध्यान पूर्व में दिया जा चुका है।

आं ब्राह्मी श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। इसी प्रकार **ईं नारायणी, ऊं माहेश्वरी, ॠं चामुण्डा, लृं कौमारी, ऐं अपराजिता, औं वाराही** तथा **अः नारसिंही** का पूजन-तर्पण करें। इसके बाद मूल मन्त्र से तीन बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि सहित समर्पण तथा **'अष्टदलों'** पर विशेषार्घ्यामृत की बूँदें डालें।

पञ्चमावरण-पूजनम् - अष्टदल पद्म के केसरों (अग्रभाग) पर असिताङ्गादि **भैरवों** तथा उनके साथ **'भैरवी'** आदि अष्टभैरवियों का पूजन-तर्पण(**'बलिपात्र'** से) पूर्वादि से दक्षिणावर्त क्रम से करें। पहले **'ॐ पञ्चमावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि अर्पित करें। तत्पश्चात्-

ऐं ह्रीं अं असिताङ्ग भैरव-भैरवी श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। इसी प्रकार सबके साथ पहले **'ऐं ह्रीं'** का योग करते हुए **इं रुरु भैरव-महाभैरवी, उं चण्ड-भैरव-सिंह भैरवी, ऋं क्रोध भैरव-धूम्र भैरवी, लृं उन्मत भैरव-भीम भैरवी, एं कपाली भैरव-उन्मत भैरवी, ओं भीषण भैरव-वशिनी भैरवी** तथा **अं संहार भैरव-मोहिनी** भैरवी का पूजन-तर्पण करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् समर्पण मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि दें तथा **'एताः पञ्चमावरण देवताः'** इत्यादि बोलकर दलाग्रों पर **'विशेषार्घ्यामृत-बूंदे'** छोड़ें।

षष्ठावरण-पूजनम् - पहले **'भूपुर'** की रेखाओं पर सभी दिशाओं में **'ॐ षष्ठावरण देवताभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि दें। पूर्वादि से दक्षिणावर्त **'इन्द्रादि'** दश दिक्पालों का पूजन-तर्पण (**'वीर-पात्र'** से) करें। **'ब्रह्मा'** का पूजन-तर्पण **'पूर्व ईशान-मध्य'** में तथा **'अनन्त'** का **'पश्चिम-निर्ऋत मध्य'** में किया जायेगा। ध्यान का वर्णन पहले किया जा चुका है।

ऐं (लं) इन्द्र - श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। इसी प्रकार **रं अग्नि, यं यम, क्षं निर्ऋति, वं वरुण, यं वायु, शं कुबेर, हौं ईशान, आं ब्रह्मा** तथा **ह्रीं अनन्त** का पूजन-तर्पण करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि सहित मन्त्र बोलकर पूजन समर्पण करें। **'एताः षष्ठावरण देवता०'** इत्यादि बोलकर **'विशेषार्घ्यामृत-बूंद'** भूपुर पर छोड़ें।

सप्तमावरण-पूजनम् - भूपुर की रेखाओं के बाहर **'ॐ सप्तावरण देवातभ्यो नमः'** से पुष्पाञ्जलि दें। फिर प्रत्येक देवता के निकट उनके आयुधों का पूजन-तर्पण (वीर-पात्र) से करें।

वं पीतवर्ण वज्र-श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा। (इन्द्रायुध -इन्द्र के निकट पूर्व में)। इसी प्रकार **'शं शुक्लवर्ण शक्ति**(अग्न्यायुध), **'दं सित वर्ण दण्ड**(यमायुध), **'खं आकाश (स्वच्छ) वर्ण खड्ग'** (निर्ऋत्यायुध), **'पां विद्युत वर्ण पाश'** (वरुणायुध), **'अं रक्त वर्ण अंकुश'** (वायु-आयुध), **गं सित (श्वेत) वर्ण गदा** (कुबेरायुध), **त्रिं असित वर्ण त्रिशूल** (ईशानायुध), **पं रक्त (कोकनद) वर्ण पद्म** (ब्रह्मायुध) तथा **चं पाटल वर्ण चक्र** (अनन्तायुध) का पूजन-तर्पण पूवादि दक्षिणावर्त करें।

समर्पणम् - पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर मन्त्र (में सप्तमावरणार्चनम् शब्द का प्रयोग करते हुए) बोलकर समर्पण करें। पुनः **'एताः सप्तमावरण देवताः'** इत्यादि बोलकर **'विशेषार्घ्यामृत बूँद'** अर्पित करें।

अष्टमावरण-पूजनम् - हाथ में पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर **'ॐ अष्टमावरण देवताभ्यो नमः'** से यन्त्र के मध्य बिन्दु पर अर्पित करें। इसके बाद देवी के आयुधों का पूजन-तर्पण (श्रीपात्र से) करें।

खं खड्गं पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा (वामोर्ध्व हस्ते)। **मुं मण्डं पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा** (वामाधो हस्ते)। **वं वरं पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा** (दक्षाधो हस्ते)। **अं अभयं पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा** (दक्षोर्ध्व हस्ते)।

समर्पणम् - पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि सहित मन्त्र (में अष्टमावरणार्चनं शब्द प्रयोग करते हुए) बोलकर पूजन समर्पित करें। **'एताः अष्टमावरण देवताः'** इत्यादि बोलकर पूर्ववत् अर्घ्य बिन्दु पर छोड़ें।

इस प्रकार समस्त आवरण-पूजन करके साधक एक पात्र में कलश का द्रव्य **'कारण'** तथा दूसरे पात्र में **'शुद्धि'** आदि लेकर भगवती को अर्पित करें -

मूलं शुद्धयादि सहितं इममासवं निवेदयामि श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै नमः।

पुनः गन्धाक्षत अर्पित करते हुए **क्रां हृदयाय नमः, क्रीं शिरसे स्वाहा** इत्यादि रूप से देवी का **'षडङ्ग'** पूजन बिन्दु पर आग्नेयादि दिशाक्रम से करे। तत्पश्चात् बिन्दु पर देवी के दक्ष भाग में महाकाल का पूजन-तर्पण (विशेषार्घ्य से) तीन बार करें।

मूलं श्री महाकाल श्री पादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि स्वाहा।
(महाकाल का मूल मन्त्र **'हुं क्षौं०'** इत्यादि पूर्व में कहा जा चुका है।) इसके बाद पुनः भगवती का अर्चन (पञ्चमोपचार) करें।

॥ श्रीमद् दक्षिणाकालिकायाः (पुनः) अर्चनम्॥

गन्धम् - **मूलं परमानन्द सौरभ्यः परिपूर्ण दिगन्तरम्।**
गृहाण परमं गन्धं प्रसीद परमेश्वरि॥

मूलं साङ्गायै सायुधायै, सवाहनायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै श्री महाकाल सहितायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै नमः, गन्धं समर्पयामि।
इन मन्त्रों को बोलकर 'कनिष्ठा-अंगुष्ठ' की गन्धमुद्रा से गन्ध अर्पित करें।

पुष्पम् - **मूलं तुरीयवन सम्भूतं नानागुण मनोहरम्।**
अमन्द सौरभं युक्तं पुष्पं गृहाण देवेशि॥

मूलं साङ्गायै सायुधायै, सवाहनायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै श्री महाकाल सहितायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै वौषट्, पुष्पं (पुष्पाणि) समर्पयामि।
अंगुष्ठ-तर्जनी की अधोमुख 'पुष्पमुद्रा' से पुष्प अर्पित करें।

धूपम् - धूप-पात्र को **'फट्'** मन्त्र से प्रोक्षित करके उसमें अग्नि सहित **'धूप'** रखकर पूजन करके, **'ॐ जय ध्वनि मन्त्र मातः'** से घण्टे का पूजन कर, अंगुष्ठ-तर्जनी से धूप-पात्र को पकड़ कर बायें हाथ से घण्टा बजाते हुए देवी के सामने कुछ निम्न भाग में धूप पात्र को घुमाते हुए बोले-

मूलं वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

मूलं साङ्गायै सायुधायै, सवाहनायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै श्री महाकाल सहितायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै नमः, धूपं आघ्रापयामि।

अंगुष्ठ-तर्जनी (की अग्रभाग स्पर्शित) ऊर्ध्व मुख **'धूप मुद्रा'** प्रदर्शित करे। धूप-पात्र को नीचे देवी के वाम भाग में रखें।

दीपम् - सामान्यार्घ्य जल से **'फट्'** मन्त्र द्वारा दीप-पात्र का प्रोक्षण (प्रक्षालन) करके 'नमः' से पूजन कर उसमें घृत सहित बत्ती रख कर उसे प्रज्वलित करें। दाहिने हाथ की अंगुष्ठ-मध्यमा से दीप पात्र को पकड़कर बांये हाथ से घण्टा बजाते हुए देवी के नेत्रों के समक्ष, निम्न मन्त्रों को बोलकर उसे (दीप को) प्रदर्शित करें।

मूलं सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः।
सवाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

मूलं साङ्गायै सायुधायै, सवाहनायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै श्री महाकाल सहितायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै नमः, दीपं दर्शयामि।

इसके बाद दीप को देवी के दक्षिण भाग में (नीचे) रखकर उसके चारो ओर सामान्यार्घ्य का जल गिराकर अंगुष्ठ मध्यमा से दीप मुद्रा (ऊर्ध्व मुख) दिखायें। इसके बाद हाथ धो लें।

॥(महा)नैवेद्यम्॥

दीप प्रदर्शन के बाद भगवती को आचमन कराके तीन बार मूल मन्त्र से तर्पण (विशेषार्घ्यामृत से) करके पुष्पाञ्जलि अर्पित कर **'नैवेद्य'** की व्यवस्था करें।

सर्वप्रथम देवी के सामने थोड़ा दक्षिण की ओर सामान्यार्घ्य जल द्वारा **'त्रिकोण-चतुरस्र'** रूप मण्डल बनायें। इस मण्डल पर स्वर्ण-रजत-कांसे आदि की चषक पूर्ण थाली(नैवेद्य-पात्र) को आधार सहित रखकर उसमें (द्रव्य-शुद्ध्यादि सहित) भक्ष्य-भोज्य-चोष्य-लेह्य-पेय रूपात्मक, प्रचुर गोघृत-दधि-दुग्ध युक्त रस पूर्ण सुन्दर व्यञ्जन (अथवा समय-सामर्थ्यानुसार उपलब्ध नैवेद्य पदार्थ) रखकर 'मूल मन्त्र' से तीन बार प्रोक्षण कर, सात बार 'मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पुनः **'क्रीं हूं ह्रीं'** से विशेषार्घ्यामृत द्वारा उसका प्रोक्षण करें। इसके बाद नैवेद्य के ऊपर वामकरतल को अधोमुख रखकर उसके ऊपर दक्ष करतल को रखकर, वाम करतल में **'यं' वायु बीज** की भावना करके उसका सात अथवा बारह बार जप करते हुए नैवेद्य के दोषों को शोषित करने की भावना करें। इसके बाद उस पर दक्ष करतल रखकर इसके ऊपर

वाम करतल रखकर, दक्ष करतल में **'रं' अग्नि बीज** का स्मरण करते हुए इसके सात (बारह) बार के जप द्वारा शुष्क हुए दोषों को भस्म कर दें। पुनः बायीं हथेली को नैवेद्य के ऊपर रखकर उसके ऊपर दाहिनी हथेली स्थापित कर, बायी हथेली में **'वं' वरुण बीज** का ध्यान कर, इसके सात (बारह) बार के जप द्वारा नैवेद्य को **'अमृतमय'** करने की भावना करें। फिर मूल मन्त्र से नैवेद्य का विशेषार्घ्यामृत द्वारा प्रोक्षण कर उसके सम्मुख **'धेनुमुद्रा'** प्रदर्शित करें। इसके बाद गन्धाक्षत द्वारा नैवेद्य का पूजन कर देवी को पाद्य-अर्घ्य-आचमन (विशेषार्घ्य से **पाद्यं सम०, अर्घ्यं सम०, आचमनीयं समर्पयामि** बोलते हुए) प्रदान करें। इसके बाद **'मूल-मन्त्र'** से **'विशेषार्घ्य'** द्वारा तीन बार तर्पण करें। अब देवी को पुष्पाञ्जलि अर्पित कर यह भावना करें कि देवी के मुख से तेज सा निकल रहा है। इसके बाद बांये हाथ के अंगूठे से नैवेद्य-पात्र को स्पर्श करते हुए तथा दक्ष हाथ में विशेषार्घ्यामृत (आचमनी आदि में) लेकर बोलें-

मूलं हेमपात्रगतं देवि परमान्नं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि॥
मूलं साङ्गायै..नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।

इस मन्त्र को बोलकर आचमनी का द्रव्य पात्र के चारों ओर (अथवा यन्त्र पर) गिरायें।

इसके बाद **'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'** बोलकर विशेषार्घ्यामृत देवी के दाहिने हाथ में (यंत्र पर) प्रदान (भावना करते हुए) करें।

तत्पश्चात् बांये हाथ की अंगुलियों से बन्द कमल सी (ग्रास) मुद्रा बनाकर दाहिने हाथ से **'प्राणादि'** की मुद्राएं प्रदर्शित करते हुए **मूल ॐ प्राणाय स्वाहा, मूल ॐ अपानाय स्वाहा** इत्यादि रूप से बोलते हुए **'पञ्चग्रास'** प्रदान करने की भावना करें।

इसके बाद पूर्ववत् देवता तथा स्वयं के मध्य आवरण करके (अथवा आँखें बन्द कर) कुछ पल शान्त बैठे रहें, जब यह आभास हो जाय कि देवी पूर्णरूप से नैवेद्य ग्रहण कर चुकी है तो **'विशेषार्घ्यामृत'** देवी के हाथ में **'ॐ अमृतोपिधानमसि'** बोलकर प्रदान करें। फिर पूर्ववत् **आचमनीयं, पानीय जलं** तथा **गण्डूषार्थ जलं समर्पयामि** बोलते हुए पहले **'विशेषार्घ्यामृत'** फिर शुद्ध जल प्रदान करें। तत्पश्चात् पूर्ववत् **'ताम्बूल'** प्रदान करें। प्रत्येक पदार्थ के समर्पण के समय **'मन्त्र योजना'** पूर्ववत् कर लिया करें।

अब **'मूल-मन्त्र'** बोलकर तथा निम्न श्लोक को पढ़कर तीन बार **'पुष्पाञ्जलि'** प्रदान करें -

मूलं ब्रह्मेशाद्यैरमर-निकरैः स्तूयमानैः समन्तात्
चञ्चद्बाल व्यजननिकरैः बीज्यमाना सखीभिः।
मर्मक्रीडाप्रहसनपरां पंक्ति-भोक्त्रीं हसन्तीम्,
भुक्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान् चिद्विलासान्॥

इस प्रकार पूजा सम्पूर्ण करके अङ्गभूत कर्म के रूप में मन्त्र-जप करें। तत्पश्चात् देवी के वामकर में जप समर्पित करके 'नित्य होम' करें।

॥ मन्त्र-जप॥

अब साधक स्वस्थ मानस होकर मूल-मन्त्र से प्राणायाम करके स्वमन्त्र का ऋष्यादि न्यास, करषडङ्ग न्यासादि करके पूर्ववत् स्वयं की 'कामकला' के रूप में भावना करे। फिर सहस्रदल में गुरु का तथा हृदय-कमल में इष्ट देवता का ध्यान करे-

सद्यश्छिन्न-शिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीम्,
घोरास्यां शिरसां स्रजा सुरुचिरामुन्मुक्त-केशावलिम्।
सृक्कासृक्-प्रवहां श्मशान निलयां श्रुत्योः शवालं कृतिम्,
श्यामाङ्गी कृत मेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्॥

इसके बाद साधक 'कुल्लुकादि' मन्त्रों का न्यास (जप) आदि करके मूलमन्त्र का यथेष्ट जप करें।

॥ मन्त्र-जप-विधिः॥

आम्नाय तथा क्रम-विहित पूर्व-संस्कृत माला द्वारा, जिसमें देवता की प्राण-प्रतिष्ठा की गई हो, मन्त्र का जप करना चाहिए। जप से पहले **'चौर गणेश-मन्त्र'** का न्यास (दश-दश बार उन अङ्गो पर जप) करना चाहिए, जिससे जप-फल की चोरी नहीं होती। यथा-

क्रीं (ब्रह्मरन्ध्र में)। **ह्रीं ह्रीं** (दोनों कानों में)। **ह्रीं ह्रीं** (दोनों नेत्र)। **हूं हूं** (दोनो नासाछिद्र-दक्षिण वाम क्रम से)। **श्रीं श्रीं** (मुख)। **ह्सौः ह्सौः** (नाभि)। **क्लीं क्लीं** (लिङ्ग)। **प्लूं प्लूं** (गुदा)। **हूं फट्** (भ्रूमध्य)।

मन्त्र-शुद्धि- पहले अनुलोम क्रम से प्रत्येक मातृका वर्ण के साथ **'मूल मन्त्र'** का जप करें। फिर विलोम क्रम से प्रत्येक मातृका वर्ण के साथ जप करें। इससे मन्त्र की शुद्धि होती है। यथा-

अं मूलं, आं मूलं...........क्षं मूलं। पुनः क्षं मूलं, ळं मूलं........अं मूलं।

मन्त्र-शिखा- कुण्डलिनी को विधिवत् प्रक्रिया द्वारा सहस्रार में लाकर पुनः मूलाधार में लाने की **'आरोहण-अवरोहण'** रूप क्रिया के बार-बार करने से जो

'मूलाधार' से **'ब्रह्मरन्ध्र'** पर्यन्त **'ज्योति-शिखा'** उत्पन्न होती है तथा सतत अभ्यास के कारण जो सर्वदा वर्तमान रहती है, उसे ही **'मन्त्र-शिखा'** कहते हैं। इसमें ऊपर से नीचे तक पूरे मन्त्र को व्याप्त हुआ सा ध्यान करते हुए जप किया जाता है।

मन्त्र-चैतन्य - गुरु, मन्त्र, देवता और आत्मा की एकत्व भावना ही मन्त्र-चैतन्य है। **'ईं'** से पुटित मन्त्र **(ईं मूलं ईं)** एक सौ आठ बार जपने से भी मन्त्र चैतन्य होता है।

मन्त्रार्थ - मन्त्र के प्रत्येक बार के जपकाल में देवता के स्वरूप का चिन्तन करना ही 'मन्त्रार्थ' है। यही **'वाच्य-वाचक'** का अभेद-ज्ञान भी है।

॥माला-पूजनम्॥

सुसंस्कृत-प्राण प्रतिष्ठित तथा विहित मणियों (दानों-मनकों) से निर्मित माला को किसी पात्र में रखकर **'ॐ (क्रीं) श्री दक्षिण कालिकाक्ष मालां तर्पयामि पूजयामि नमः'** से सामान्यार्घ्य के जल द्वारा तर्पण तथा गन्धाक्षतादि द्वारा पूजन करके **'ह्रीं माले माले! महामाले! सर्वशक्ति स्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥'** तथा **'गं अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे। जपकाले तु सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥'** बोलकर, माला को **'ॐ अक्ष (दन्त, स्फटिक आदि नामानुसार) माले! नमोऽस्तुते'** प्रणाम कर उसे दाहिने हाथ में ग्रहण करें। फिर शिर में **'गुरु'** का हृदय में **'देवता'** का तथा कण्ठ में **'पीतवर्ण'** मन्त्र का ध्यान करके माला को दाहिने हाथ की अनामिका (अन्य मतानुसार मध्यमा, वैसे साधक को जैसी सुविधा व अभ्यास हो) के मध्य पर्व पर रखकर हाथ को हृदय के पास स्थित करके अंगुष्ठ तथा मध्यमा के द्वारा दानों को अपनी ओर सरकाते हुए जप करें। माला को हाथ सहित किसी वस्त्र से ढक करके तथा तर्जनी से स्पर्श न करते हुए जप करना चाहिए। अच्छा होगा कि माला को जप मालिका में रखकर तर्जनी को वाहर निकाल कर जप करें।

मूल (इष्ट) मन्त्र का जप करने से पहले साधक को कुछ अन्य मन्त्रों का जप (तथा न्यास) भी कर लेना चाहिए।

कुल्लुका मन्त्र - स्वशिर में 'गुरु' तथा हृदय में देवता का ध्यान कर-

विनियोग- **अस्य श्री काली कुल्लुका मन्त्रस्य अघोर ऋषिः, विराट् छन्दः, कुल्लुका काली देवता, 'ह्रीं' बीजं, 'क्लीं' शक्तिः, 'हूं' कीलकं श्री दक्षिण कालिका मन्त्र जपाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यास :- शिरसि - **अघोर ऋषये नमः।** मुखे - **विराट्**

छन्दसे नमः। हृदि- **श्री कुल्लुका काली देवतायै नमः**। गुह्ये - **ह्रीं बीजाय नमः**। पादयोः - **क्लीं शक्तये नमः**। सर्वाङ्गे - **हूं कीलकाय नमः**। अञ्जलौ - **विनियोगाय नमः**।

इसके बाद **क्लां, क्लीं, क्लूं, क्लैं, क्लौं** तथा **क्लः** से कर-षडङ्ग न्यास करें। इसके बाद **'क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्'** इस कुल्लुका मन्त्र का शिर पर दस (बारह बार) जप (न्यास) करें।

सेतु मन्त्र - **'ॐ'** का दस बार हृदय पर जप (न्यास) करें।

महासेतु मन्त्र - **'क्रीं'** का दस बार कण्ठ पर जप करें।

निवार्ण-मन्त्र - **'ॐ अं.....क्षं ऐं मूलं ऐं अं............क्ष ॐ'** (**अं** से **क्षं** तक ५१ वर्ण) इस मन्त्र का नाभि पर बारह अथवा तीन बार जप करें।

कामप्रद मन्त्र - **'क्लीं'** का दश बार जप नाभि पर करें।

रक्षा मन्त्र - किसी एकान्त जनशून्य स्थान पर जप करते समय इसका जप करें। **'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं राकिनी मा रक्ष रक्ष, मम सर्व धातून रक्ष रक्ष, सर्व सत्वं वशंङ्करि देवि! आगच्छागच्छ! इमां पूजा गृह्ण-गृह्ण, ऐं घोरे देवि, घोरे देवि! ह्रीं सः परमघोरे घोरस्वरूपे! एहि-एहि, नमश्चामुण्डे डरलकसहैं श्री दक्षिण कालिके देवि! वरदे! विद्ये!**

योनिमुद्रा-भावना - शिर पर **'गुरु'** का ध्यान करके, त्रिकोण (योनि) रूपिणी देवता का ध्यान षट्चक्रों में (सभी चक्रों में) करें फिर **'ऐं'** का दश बार जप करे।

इसके बाद तीन बार प्राणायाम करके मन्त्र का विनियोग ऋष्यादि न्यास कर-षडङ्ग न्यासादि करके-**'क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं'** का सात बार जप कर **'जिह्वा शोधन'** करे। फिर **'मन्त्र-प्राण-योग'** के लिए **'ह्रीं मूलं ह्रीं'** का सात बार जप, **'दीपनी मन्त्र' 'ॐ मूलं ॐ'** का सात बार जप, निद्रा भंग (मन्त्र चैतन्य) के लिए **'ई मूल ई'** का सात बार जप तथा यदि **'अशौच'** काल में जप किया जा रहा है तो **'अशौच मंत्र'** के लिए **'ॐ मूलं ॐ'** का सात (दश) बार जप करें।

इसके पश्चात् मूल मन्त्र का यथेष्ट संख्या में जप करें। **'ॐ'** का उच्चारण करके जप प्रारम्भ करे तथा एक माला पूर्ण होने पर पुनः मन्त्र के अन्त में **'ॐ'** का उच्चारण करे। जप पूर्ण हो जाने पर-**'ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव। शुभं कुरुस्व मे भद्रे यशोवीर्यं च**

सर्वदा॥' बोलकर माला को मस्तक से लगाकर पुनः '**ह्रीं सिद्ध्यै नमः**' से उसका पूजन करके शुद्ध पवित्र स्थान पर रख दे। इसके बाद फिर से '**सेतु, महासेतु**' का जप, '**प्राणायाम**' तथा '**ऋष्यादि-न्यास**', '**कर-षडङ्ग-न्यास**' एवं '**व्यापक-न्यास**' करके – **ॐ गुह्याति गुह्य गोप्त्री त्वं गृहणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥**' '**इदं जपं श्री दक्षिण कालिकायै न मम**' बोलकर (दाहिने हाथ में '**विशेषार्घ्यामृत**' लेकर) देवता के बांये हाथ में जप का समर्पण करें। इसके पश्चात् मूल मन्त्र से देवी को पुष्पाञ्जलि प्रदान कर '**कवच-स्तोत्र-शतनाम-सहस्रनामादि**' का पाठ करके अङ्गभूत-कर्म-रूप '**नित्य-हवन**' कर्म करें।

॥ नित्य-होमः॥

अपने सम्मुख दायी ओर एक हाथ लम्बा इतना ही चौड़ा तथा चार अंगुल ऊंचाई वाला एक स्थण्डिल (वेदी) बनाकर उसका (अथवा पहले से निर्मित चतुरस्र कुण्ड का) '**मूल-मन्त्र**' से '**वीक्षण**', '**फट्**' बोलकर सामान्यार्घ्य जल से '**प्रोक्षण**' तथा '**फट्**' से ही '**कुशों**' द्वारा '**ताडन**' तथा '**हुं**' से अभ्युक्षण रूप संस्कार करें। इसके मध्य में लाल चन्दन से '**अधोमुख (स्वाग्र) त्रिकोण**' बनाकर '**मूलं श्रीमद् दक्षिण कालिकायाः स्थण्डिलाय नमः**' से उसका पूजन करें। फिर किसी यथोचित पात्र (कांसे-मिट्टी आदि के) में एक अन्य पात्र द्वारा आच्छादित किये हुए अग्नि लाकर (किसी शुद्ध पवित्र व्यक्ति द्वारा मंगाकर अथवा पहले से ही वहीं तैयार की हुई अग्नि को पात्र में लेकर) '**फट्**' मन्त्र से उसे अपने दाहिने रखकर '**हुं**' इस कवच मन्त्र से आच्छादन करके '**ॐ क्रव्यादेभ्यो नमः**' से उसमें से '**क्रव्यादांश**' निकाल कर '**हुं फट्**' बोलकर '**नैर्ऋत**' कोण में फेंक दें। इसके बाद शेष अग्नि को देवांश मानकर '**मूल-मन्त्र**' बोलते हुए सामने रखकर '**पूर्ववत् वीक्षणादि**' चारों संस्कार करके उदराग्नि तथा वैंदव (भ्रूमध्यस्थ) अग्नि (अथवा मूलाधारस्थ अग्नि) के साथ भौम (पार्थिव) अग्नि के ऐक्य की भावना करें। तत्पश्चात् '**रं वह्नि चैतन्यं कल्पयामि**' बोलकर अग्नि में चैतन्य का संयोग कर '**ॐ**' से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित कर, '**वं**' तथा '**धेनमुद्रा**' से अमृतीकरण करके '**फट्**' से '**प्रोक्षण**', इसी मन्त्र से '**संरक्षण**' तथा '**हुं**' से '**अवगुण्ठन**' करके, '**रं वह्नि मूर्तये नमः**' से गन्धाक्षतादि द्वारा पूजन करके, अग्नि पात्र को दोनों हाथों से उठाकर प्रदक्षिणावत् स्थण्डिल के ऊपर तीन बार घुमाकर, घुटनों से

पृथ्वी को स्पर्श करते हुए बैठकर **'ॐ'** का उच्चारण करके अपने आगे की ओर से, अग्नि को **'शिव बीज'** रूप मानते हुए वेदी में बने त्रिकोण पर स्थापित कर दें। इसके बाद **'ह्रीं बागीश्वरी बागीश्वराभ्यां नमः'** से पूजन कर, इसी मन्त्र से आचमन प्रदान कर **'वह्निरूप देवता'** को देवी के द्वारा गर्भ में धारण किया हुआ ध्यान कर गर्भ रक्षार्थ अग्नि के चारों ओर कुश का कङ्कण प्रदान करें अर्थात् अग्नि के चारों ओर वृत्ताकार रूप से कुश स्थापित कर दें।

इसके बाद **'चित्पिङ्गल हन-हन दह-दह पच-पच सर्वाज्ञाज्ञापय स्वाहा'** बोलकर (अग्नि पर कुछ समिधाएं रखकर) ज्वालिनी मुद्रा से अग्नि को प्रज्वलित करें।

इसके बाद हाथ जोड़कर अग्नि को प्रणाम करें। यथा-

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥

तत्पश्चात् **ॐ अद्येत्यादि** (तिथि मासादि बोलकर) **अमुक गोत्र अमुक शर्माऽहं (वर्मा गुप्तो दासोऽहंवा) श्रीमद् दक्षिण कालिका पूजाङ्ग रूप होमं करिष्ये।** इस प्रकार से सङ्कल्प कर किसी थाली जैसे पात्र में पिघला हुआ घृत लेकर दो कुशों द्वारा उस घृत के तीन भागों की कल्पना करें। बांये भाग को **'इडा'**, दाहिने भाग को **'पिङ्गला'** तथा मध्य भाग को **'सुषुम्ना'** रूप से भावना करें।

(सङ्कल्प के पश्चात् कुछ और भी न्यासादि क्रियाएं की जाती है, इसके लिए ग्रन्थ के 'सत्तरहवें पटल' का अवलोकन करें। यदि साधक के पास समय है अथवा विशेष पर्वों पर पूजन कर्म कर रहा है, तो इन क्रियाओं को जहाँ तक सम्भव हो सके अवश्य ही करें।)

तदुपरान्त घृत के दक्ष भाग से **'नमः'** बोलकर स्रुवा द्वारा घृत लेकर **'ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये नमः'** मन्त्र से अग्नि के दक्ष नेत्र में हवन करें तथा सम्पात भाग (स्रुवा से टपकने वाले घृत) को उसी दक्ष भाग में ही गिरायें। पुनः वाम भाग से उसी प्रकार **'नमः'** मन्त्र से आज्य (पिघला हुआ घृत) लेकर अग्नि के वाम नेत्र में **'ॐ सोमाय स्वाहा सोमायेदं नमः'** मन्त्र से हवन कर सम्पात उसी वाम भाग के घृत में करें। फिर मध्य भाग से भी उसी प्रकार आज्य लेकर अग्नि के ललाटस्थ नेत्र में **'ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा अग्निषोमाभ्या मिदं नमः'** मन्त्र से हवन करके आज्य के मध्य भाग में ही सम्पात करें। इसके बाद दक्षिण भाग से पुनः उसी प्रकार आज्य लेकर **'ॐ अग्नये स्विष्ट कृते स्वाहा अग्नये स्विष्ट कृते इदं नमः'** मन्त्र से अग्नि के मुख में हवन करें।

तत्पश्चात् **'ॐ स्वाहा'**, **'भूः स्वाहा'**, **'भुवः स्वाहा'**, **'स्वः स्वाहा'** तथा **'ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा'** इन पाँच मन्त्रों से पाँच आहुतियों द्वारा हवन करें। इसके बाद **'ॐ वैश्वानर जातवेद! इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा'** इस अग्नि मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करें। फिर **'ॐ वह्ने त्वं श्रीमद् दक्षिणा कालिका नामाऽसि'** बोलकर अग्नि तथा इष्ट देवता में ऐक्य रूपता की भावना करके **'ॐ अग्नेर्नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा'** से अष्ट आहुतियों द्वारा हवन करें। तदुपरान्त अग्नि के षडङ्ग मन्त्रों से आहुति प्रदान करें। यथा –

ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वाहा। ॐ स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट् स्वाहा। ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं स्वाहा। ॐ सप्त जिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट स्वाहा। ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् स्वाहा।

इसके बाद प्रज्वलित अग्नि में इष्ट देवता का ध्यान कर कच्छप मुद्रा से हाथों में पुष्प लेकर, पूर्वोक्त **'अन्तर्याग'** प्रक्रियानुसार कुण्डली को मूलाधार से सहस्रार में लाकर, परम शिव से संयोजित करके सन्तृप्त कर, उसे हृदय में लाकर, वहाँ इष्ट देवता के रूप में उसकी परिकल्पना कर, प्रवाहमान नासारन्ध्र द्वारा हस्तगत पुष्प पर लाकर, उसे अग्नि पर (पुष्प सहित) स्थापित करके पुनः उनका पञ्चोपचार पूजन करके **'षडङ्ग'** देवताओं के लिए हवन करें। यथा –

ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रूं शिखायै वषट् स्वाहा। ॐ ह्रैं कवचाय हुं स्वाहा। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा तथा **ॐ ह्रः अस्त्राय फट् स्वाहा।**

तत्पश्चात् **'क्रीं श्री दक्षिणा कालिकायै स्वाहा'** मन्त्र से पच्चीस, **'क्रीं साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै सायुधायै श्रीमद् दक्षिणा कालिकायै स्वाहा'** से तीन तथा **'क्रीं स्वाहा'** (मूल मन्त्र एकाक्षरी होने पर) से अथवा **'विद्याराज्ञी मन्त्र'** से (**'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा'** इस विद्याराज्ञी मन्त्र के मूल-मन्त्र होने पर) सोलह बार हवन करें। इसके बाद सुपाड़ी-पान-अक्षत सहित शेष घृत को स्रुवा में लेकर **'क्रीं वौषट्'** (अथवा **मूलं वौषट्**) से (वाम मार्गी **मूलं स्वाहा** से) पूर्णाहूति प्रदान करें।

तदुपरान्त **'दक्षिणा कालिके! पूजिताऽसि प्रसीद क्षमस्व'** बोलकर विशेषार्घ्यामृत बिन्दु अग्नि में डालकर **'संहार मुद्रा'** से तेजो रूप देवता को अपने हृदय में ले आयें। फिर **'भो भो वह्ने महाशक्ते! सर्वकर्मप्रसाधक!**

कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सानिध्यं कुरु सादरम्।। 'ॐ अग्नि पूजिताऽसि क्षमस्व' बोलकर अग्नि का विसर्जन कर दें।

इसके बाद **'भस्म'** को लेकर – **'ॐ त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।।'** मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित कर **'मूल मन्त्र'** से उसे **'मस्तकादि'** पर लगायें। इसके पश्चात् बोलें –

ॐ यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुसा।
स एव दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत।।

इसके बाद देवता को पञ्च पुष्पाञ्जलि (यन्त्र पर) देकर तीन बार पुनः तर्पण तथा पूजन करें।

।। बलि-प्रदानम्।।

साधक अपने दाहिने ओर **'त्रिकोण-चतुरस्र'** रूप मण्डल बनाकर, उसमें देवता का ध्यान कर, 'मूल' मन्त्र से गन्धाक्षतादि द्वारा उनका पूजन कर, उस मण्डल पर किसी पात्र में (अथवा कदली-पलाश आदि के पत्ते पर) आमिषयुक्त अन्नमय पदार्थ रखकर निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करें।

बलि-मन्त्र – **एहि-एहि जगतां जननि! इममामिषान्नं गृह्ण-गृह्ण, सिद्धिं देहि-देहि शत्रु-क्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा। एष बलिः दक्षिण कालिकायै नमः।**

इसके बाद पूर्ववत् इस बलि के समीप ही दूसरे पात्र में बलि पदार्थ (आमिषान्न) रख कर महाकाल को बलि प्रदान करें। यथा–

ॐ हूं महाकाल श्मशानाधिप! इममामिषान्नं बलिं गृह्ण-गृह्ण मम विघ्न-निवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा, एष बलिः महाकालायै नमः।

इस प्रकार बलि देकर देवता के तृप्त होने की भावना कर एक पात्र में जल लेकर उसे धेनुमुद्रा से अमृत-मय करके **'ॐ अमृतोपिधानमसि स्वाहा'** बोलकर देवता के हाथ में देने की भावना कर पीने के लिए उन्हें प्रदान करें।

।। नीराजनम्।।

सोने, चाँदी, ताँबे अथवा कांसे की थाली जैसे पात्र में सिन्दूर अथवा रक्त चन्दन से अष्ट दल कमल बनाकर, गेहूँ अथवा जौ के आटे में दूध मिश्रित कर बनाये गये नौ दीपों को, एक-एक करके आठो दलों पर तथा एक मध्य में रखें। दीपकों में गाय का घी भरकर प्रत्येक में एक-एक कर्पूर-गर्भित वर्तिका रखें। फिर इसे मूल-मन्त्र से दश बार अभिमन्त्रित करके **'ह्रीं'** मन्त्र बोलकर प्रज्वलित करें।

इसके बाद **'श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं'** इस मन्त्र से दीपकों को तीन बार अभिमन्त्रित कर **'धेनुमुद्रा'** से अमृतमय तथा **'मूल मन्त्र'** से उनका पूजन करके **'चक्रमुद्रा'** प्रदर्शित कर **क्रीं (मूलं) समस्त चक्र चक्रेशि युते देवि परात्मिके। आरार्तिकं गृहाणेदं कालिके मम सिद्धये।। इमां दीप मालिकां श्री दक्षिण कालिकायै नमः।** इस मन्त्र को बोलकर **'विशेषार्घ्यामृत'** से उत्सर्ग कर (दीप पात्र पर उसे एक-दो बूँद गिराकर) बांये हाथ से घण्टा बजाते हुए दाहिने हाथ से आरती पात्र को उठाकर सात अथवा नौ बार देवता के शिर से पैर तक (भावना द्वारा), मूल मन्त्र बोलते हुए घुमाए। फिर आरती पात्र को देवी के दाहिने रखकर उसके चारों ओर सामान्य अथवा विशेषार्घ्यामृत गिराये। तदुपरान्त **'मूलमन्त्र'** सहित **'योनिमुद्रा'** से प्रणाम कर निम्न मन्त्र बोलते हुए तीन बार दक्षिणावर्त प्रदक्षिणा करे।

ॐ काली विदध्यान्मम जीव रक्षां तथा कराली मम देहरक्षाम्।
दुर्गाट्टहासैर्मम शत्रुनाशं करोतु तारा विदधातु राज्यम्।।

इसके पश्चात् साष्टाङ्ग प्रणाम करके **'पूर्ण नैवेद्य'** देकर पूर्ववत् पानीय जलादि निवेदित कर तीन बार तर्पण करके आचमनीय, ताम्बूल तथा एक बार पुष्पाञ्जलि देकर निम्न स्तोत्रों को पढ़ते हुए एक-एक करके पाँच पुष्पाञ्जलि दें।

ॐ नान्यं वदामि न श्रृणोमि न चिन्तयामि
नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि।
त्यक्त्वा त्वदीय-पद-पङ्कजमादरेण,
मां त्राहि देवि! कृपया मयि देहि सिद्धिम्।।

ॐ अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यान्मनसोऽपि वा। यन्न्यूनमतिरिक्तं च तत्सर्वं क्षन्तुर्महसि।।
ॐ द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धा-मन्त्र विवर्जितम्। यन्मया कृतं देवेशि तत्क्षमस्व दयानिधे।।
ॐ यन्मया क्रियते कर्म जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिषु। तत्सर्वं तावकी पूजा भूयात् भूत्यै च मे शिवे।।
ॐ यन्मया क्रियते कर्म सुमहत् स्वल्पमेव च। तत्सर्वं स्वीकुरु देवि! त्वदन्या नो गतिर्मम।।
पुनः - **ॐ शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्त्तुंब्रह्मादयः सुराः। अहं किंवा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधी।।**
न जानेऽहं तेऽम्ब! रूपं न शरीरं न वा गुणान्। एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः।।
तां भक्तिं हृदि संभाव्य यजनं मे प्रगृह्य च। तिष्ठ देवि! हृदि प्रज्ञे! मह्यं देहि वरान् बहून्।।

पढ़कर एक पुष्पाञ्जलि दें अन्त में अपराध-क्षमापन' के लिए भी एक बार पुष्पाञ्जलि दें-

ॐ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते सदा। तव कृत्यमिदं सर्वमिति मत्वा क्षमस्व माम्।।

॥आत्म-समपर्णम्॥

दाहिने हाथ में 'सामान्यार्घ्य' का जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को बोलकर 'आत्म निवेदन करे। यथा -

ॐ इतः पूर्व प्राण-बुद्धि-देह धर्माधिकारतो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थासु कायेन मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मदीयं सकलं श्री दक्षिणा कालिका चरणौ समर्पितमस्तु। ॐ तत्सत्।

॥क्षमापनम्॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वरि॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन रक्षस्व परमेश्वरि॥
विधि-हीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्॥
अनङ्गव्यवधानादि अपराधशतानि च। क्षन्तुमर्हसि मे देवि त्वमेव शरणं यतः॥
त्वयि मे हृदयं चास्तु त्वयि चित्तं मनस्त्वयि। त्वत्पूजायां महामाये संवर्धन्ता प्रयोजिताः॥

॥देवतोद्वासनम्॥

क्षमापन स्तुति के पश्चात् दाहिने हाथ में 'विशेषार्घ्यामृत' लेकर बांये हाथ से घण्टा बजाते हुए -'**ॐ मूलं साङ्गासायुधा सपरिवारा सवाहना सशक्तयः श्री महाकाल सहिता श्रीमद् दक्षिणा कालिका पूजितासि प्रसीद क्षमस्व**' बोलकर उसे यन्त्र पर अर्पित करके पूजन को सम्पूर्णता प्रदान करे। इसके बाद 'खेचरी' मुद्रा प्रदर्शित करके-

हृत्पद्म कर्णिकामध्ये शिवेन सह शङ्करि। प्रविश्य त्वं महादेवि सर्वैरावरणैः सह॥
तिष्ठ देवि परेस्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि॥ बोलकर संहार मुद्रा से यन्त्रस्थ एक पुष्प को लेकर उसे सूंघकर, पूरक द्वारा नासामार्ग से तेजोरूप में परिणित देवी को पूर्ववत् हृदय में लाकर वहाँ मूर्ति रूप में परिणित उनका मानस पञ्चोपचार पूजन कर आत्मा से अभिन्न संवित रूप से उनकी भावना करें।

इसके बाद यन्त्र लेप (यन्त्र पर लगे हुए चन्दनादि) को **'मूल मन्त्र'** पढ़कर अपने मस्तक पर लगायें। तत्पश्चात् ईशान कोण में रक्त चन्दन से त्रिकोण मण्डल बनाकर उस पर **'ॐ निर्माल्य वासिन्यै नमः'** से पूजन करके एक पात्र में देवी का निर्माल्य तथा नैवेद्य का थोड़ा सा भाग रखकर उसे मण्डल पर स्थापित करके **'ॐ निर्माल्यवासिन्यै चण्डेश्वर्यै नमः'** से उसका पूजन करके - **'ॐ उच्छिष्ट-चाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'** मन्त्र बोलकर उस पर सामान्यार्घ्य का जल गिराकर बलि प्रदान करें।

उच्छिष्ट भैरव बलिः - बटुकादि सभी बलियों का निर्माल्य एक पात्र में लेकर पूजागृह से बाहर जाकर उत्तर दिशा में पूर्ववत् मण्डल बनाकर उसका पूजन कर उच्छिष्ट भैरव का ध्यान-पूजन करके बलि-पात्र के अमृत से मन्त्र बोलते हुए शुद्ध भूमि (मण्डल पर) बलि प्रदान करें।

ॐ गदात्रिशूलडमरू पात्रहस्तं त्रिलोचनम्। कृष्णं भैरवं भावयेत् सर्वविघ्न निवारणम्॥

ॐ एहि-एहि उच्छिष्ट भैरव इदं धूपादि सहितं बलिं गृह्ण-गृह्ण आपय-आपय सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। एष बलिः उच्छिष्ट-भैरवाय नमः।

इसके बाद बलिपात्र तथा हाथ पैरों को धोकर आचमन करके पूजा-गृह में आकर **'उदयोस्तु'** बोलकर आसन पर बैठकर **'शान्तिस्तव'** का पाठ करें।

सम्पूजकानां परिपालकानां यतेन्द्रियाणां च तपोधनाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञां करोतु शान्तिं भगवान् कुलेशः॥
नन्दन्तु साधककुलान्यणिमादिसिद्धाः शापाः पतन्तु समयद्विषि योगिनीनाम्।
सा शाम्भवी स्फुरतु कापि ममाप्यवस्था यस्यां गुरोश्चरण पङ्कजमेव लभ्यम्॥
शिवाद्यवनिपर्यन्त ब्रह्मादिस्तम्बसंयुतम्। कालाग्न्यादि शिवान्तं च जगद्यज्ञेन तृप्यन्तु॥

सूर्यार्घ्यम् - इसके बाद एक ताम्र पात्र में रक्त चन्दन-अक्षत-रक्तपुष्प तथा सामान्यार्घ्य का जल (अथवा विशेषार्घ्यामृत) लेकर- **'ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णु तेजसे नमः। सर्वत्रशुचये सवित्रे कर्म दायिने ॐ हूं ह्रीं हंसः सूर्याय एषोऽर्घ्यः स्वाहा'**। से सूर्य को **'अर्घ्य'** प्रदान करे। तदुपरान्त कृताञ्जलि बोलें-

ॐ यज्ञश्छिद्र-तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। तत्सर्वमछिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः॥

तत्पश्चात् **'ॐ क्लीं नमः'** बोलकर यन्त्र पर से एक पुष्प उठाकर सूंघें तथा यन्त्रस्थ गन्ध से तिलक करते हुए बोलें-

ॐ यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा।
स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत्॥

इसके बाद 'मूल मन्त्र' का स्मरण करके श्रीचक्र (यन्त्र) पर से निर्माल्य लेकर उसे मस्तक से लगाकर भक्षण करके पुनः **'प्राणायाम'**, 'ऋष्यादि', 'कर-षडङ्ग न्यास' कर देवता का ध्यान करे।

॥पात्रोद्वासनम्॥

विभिन्न पात्रों का उद्वासन उनके अधिकारी क्रमानुसार इस प्रकार करें- **'श्रीपात्र'** स्वयं साधक ग्रहण करे। **'भोग पात्र'** सभी उपस्थित व्यक्तियों को,

'गुरु पात्र' गुरु को अर्पित करे (उनकी अनुपस्थिति में जल में विसर्जित कर दे), **'वीर-पात्र'** वीर साधक को (अन्यथा जल में), **'शक्ति पात्र'** शक्ति को (अन्यथा अनुपस्थिति में जल में विसर्जन करें), **'भैरव पात्र'** यति को, 'बलि-पात्र' कापालिक को तथा शेष पात्रों के अमृत को (तथा जो अधिकारी उपस्थित न हो उनके भी पात्रामृत को) जल में विसर्जित कर दें। सामान्यार्घ्य का जल यन्त्र पर छोड़ दे।

इसके बाद साधक 'श्री-पात्र' को उठाकर मस्तक से लगाकर उसका अमृत अन्य पात्र में लेकर निम्न मन्त्रों को बोलते हुए चार बार में पूरा पान करें। प्रथम आहुति रूप प्रथम पान-

ॐ धर्माधर्म हविर्दीप्ते स्वात्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहं स्वाहा।।

द्वितीय आहुति -

ॐ प्रकाशाकाश हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी-स्रुचम्।
धर्माधर्म-कला-स्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा।।

तृतीय-आहुति -

ॐ अन्तर्निरन्तरं-निरन्धन-मेधमाने, मायान्धकार-परिपन्थिनि संविदाग्नौ।
कस्यांशिवदद्भुत-विकाशि मरीचि भूमौ, विश्वं जुहोमि वसुधा दिशिवावसानं स्वाहा।।

चतुर्थ-पूर्णाहूति -

ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्मास्मि।
योऽहमस्मि अहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा।।

तत्पश्चात् **'विशेषार्घ्य (श्री)पात्र'** में जल तथा पुष्प डालकर उसे भूमि पर उलट कर रख दे। फिर पात्र को उठा कर अन्यत्र छिपा कर रख दें। फिर उस स्थान पर जहाँ पात्र को उल्टा रखा गया था, **'ह्रीं'** लिखकर वहाँ की मिट्टी से मस्तक पर तिलक करे। इसके बाद शान्ति स्तोत्र का पाठ करें।

।। शान्ति-स्तोत्रम् ।।

जयन्तु मातरः सर्वाः जयन्तु योगिनी गणाः। जयन्तु सिद्धि-डाकिन्यो जयन्तु गुरु-पंक्तयः।।
जयन्तु साधका सर्वे विशुद्धाः कौलिकाश्च ये। समयाचार सम्पन्ना जयन्तु पूजका नराः।।
नन्दन्तु चाणिमा सिद्धा नन्दन्तु कुलपालकाः। इन्द्राद्या देवताः सर्वे तृपयन्तु वास्तु-देवताः।।
चन्द्र सूर्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तितः। नक्षत्राणि ग्रहायोगाः करणा राशयश्च ये।।
ऋषयो ब्राह्मणा सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु सर्वदा। शुभा मे वन्दिताः सन्तु मित्रास्तिष्ठन्तु पूजकाः।।

तारिणी पञ्च-श्लोकी

नमो साक्षिणी वासिनी श्मशाने,
सतत नाशिनी दुष्ट दानव प्रवृत्तिः।
सदा पूजिते सर्व देवं जनः किल,
नमो तारिणी सृष्टि जननी भवानी।।

नमो नित्य रूपा अनन्ता अव्यक्ता,
अरूपा सरूपा अजा सर्वरूपा।
सदा निराधारा निराकार रूपा,
नमो तारिणी सृष्टि जननी भवानी।।

नमो धारिणी विश्व बीजं स्वगर्भ,
स्वयं आदि मध्यान्त रूपं स्वरूपम्।
सदा सर्वव्यापी महामोहमाया,
नमो तारिणी सृष्टि जननी भवानी।।

नमो शक्ति रूपा शिवा, शिव स्वरूपा,
गले मुण्ड माला गरल रूप बाला।
सदा धारिणी खड्ग कर्त्री कमलिनी,
नमो तारिणी सृष्टि जननी भवानी।।

नमो उग्रतारे जटैक च नीले,
महाशक्ति एको त्रिरूपा भवन्ति।
सदा हारिणी सर्व आपत्ति बाधा,
नमो तारिणी सृष्टि जननी भवानी।।

इदम् पञ्च पुष्पम पठेत् त्रिकालं,
विनश्यति सदा सर्वदा सर्व बाधा।
गृहे स्थिरा लक्ष्मी नित्य निवसति,
सुगति मातृ चरणेषु अन्तिम प्रवृत्तिः।।

।। इति राजीव श्रीवास्तव "दिव्यानन्द नाथ विरचित तारिणी पञ्च-श्लोकी।।

श्री तारा चालीसा

“हूँ”

दोहा – **माँ जगदम्बा तारिणी, प्रणवऊँ शीश नवाय।**
कृपा करहु जगदम्बिके, संकट देहु नशाय।।
जय अम्बे तारा जगतारिणी। नाम जपत सब कष्ट निवारिणी।।
शव वाहिनी जय जग माता। अष्टसिद्धि नव निधि की दाता।।
प्रत्यालीढ़ा शव आरूढ़ा। पिंगलवर्ण जटा सिर जूड़ा।।
चतुर्भुजा माता कल्याणी। आदि शक्ति जग विदित भवानी।।
द्वय भुज खड्ग कर्तिका राजे। द्वय भुज खप्पर कमल विराजे।।
सिर पर शिव अक्षोभ्य सोहे है। गले मुण्ड माला मोहे है।।
जय जय शिवे मातु त्रय लोचनी। विघ्न हरन त्रय ताप विमोचनी।।
चतुर्दशी अष्टमी मनोहर। तारा नाम जपहु अति सुन्दर।।
मन्त्र प्रभाव विदित संसारा। शिव जप कीन्ह जलंधर मारा।।
वेद पुरानन तव यश गाया। आगम निगम तुम्हारी माया।।
ब्रह्मा विष्णु वशिष्ठ मुनि ज्ञानी। तारा नाम की महिमा जानी।।
रामचन्द्र जब सुमिरहिं तारा। जीता लंक रावनहि मारा।।
दक्ष सुता शिव लता कहावा। दक्ष यज्ञ में नहीं बुलावा।।
दक्ष यज्ञ जब चली भवानी। रोके बहुविधि औघड़दानी।।
शिव रोक भई क्रोध कुमारी। दशो दिशा भागे त्रिपुरारी।।
दशों रूप तब शिवहिं दिखावा। मूल शक्ति का मरम बतावा।।
आदि शक्ति कालिका भवानी। षोडशी भुवनेश्वरी महारानी।।
छिन्नमस्तिका भैरवी माता। धूमावती जगत विख्याता।।
बगला नाम रटत जग सारा। मातंगी कमला जय तारा।।
यंह दश रूप तुम्हारा माता। दशो महाविद्या विख्याता।।
ओम् कारिणी ब्रह्म स्वरूपा। ह्रीम् कारिणी रूप अनूपा।।
स्मरहर स्त्रीम् कारिणी। हूँम् कारा सब दुख निवारिणी।।
फट् कारा जय मातु भवानी। कृपा करहु मो पर जग जानी।।

उग्रा उग्रापति नाशिनी। नील-सरस्वती ज्ञान प्रकाशिनी।।
एकजटा कैवल्य प्रदाता। जय जग जननी तारा माता।।
अष्टभुजी जै विन्ध्यवासिनी। शंभु प्रिया हिमगिरि निवासिनी।।
जय दुर्गा दुर्गति निवारिणी। कामाख्या भव सिंधु तारिणी।।
नाम तुम्हार अनन्त भवानी। दया करहु मो पर कल्याणी।।
चरण कमल तुम्हरे जो ध्यावे। ऋद्धि सिद्धि सुख सम्पत्ति पावे।।
ब्रह्मा विष्णु तुम्हे नित ध्यावे। शेष सुरेश चरण चित लावे।।
बन्ध्या नारि धरे जो ध्याना। पुत्र होइ तेहि इन्द्र समाना।।
मातु कृपा सब बाधा भागे। प्रेत रोग ग्रह कबहु न लागे।।
तुम्हरी महिमा अपरमपारा। सुर नर मुनि करते जयकारा।।
काय वचन मन सुमिरों तोही। बुद्धि विवेक ज्ञान देउ मोही।।
माता तुम अनन्त अविनाशी। शक्ति रूप घट घट की वासी।।
तारा चरण शरण जो आवे। उसका कष्ट तुरत कट जावे।।
सुमिरन मातु का करे हमेशा। ताहि निकट नही रहे कलेशा।।
जो कोई तुम्हरे चरित को गावे। मन वांछित फल तुरतहि पावे।।
जो कोई पाठ करे चित लाई। ता पर कृपा करहु तुम माई।।
दिव्यानन्दनाथ शरण निज जानी। करहु कृपा जगदम्ब भवानी।।

दोहा- **जो यह तारा चालीसा, पाठ करे मन लाय।**
तारा चरनन चित धरै, अष्ट पाश कट जाय।।
काली तारा षोडशी भुवनेश्वरी सानन्द।
मातंगी श्री भैरवी धूमावती प्रचंड।।
छिन्नमस्तिका श्रीबगला कमलात्मिका सुजान।
दशो रूप को नमन है देहु अभय वरदान।।
श्रीतारा सुमिरन करूं विनय करूं सिर नाय।
सकल मनोरथ पूर्ण हो चरण शरण मिल जाय।।

।। इति राजीव श्रीवास्तव ''दिव्यानन्द नाथ विरचित तारा-चालीसा।।

श्री तारा चालीसा

‘‘हूँ’’

दोहा – **माँ जगदम्बा तारिणी, प्रणवऊँ शीश नवाय।**
कृपा करहु जगदम्बिके, संकट देहु नशाय।।
जय अम्बे तारा जगतारिणी। नाम जपत सब कष्ट निवारिणी।।
शव वाहिनी जय जग माता। अष्टसिद्धि नव निधि की दाता।।
प्रत्यालीढ़ा शव आरूढ़ा। पिंगलवर्ण जटा सिर जूड़ा।।
चतुर्भुजा माता कल्याणी। आदि शक्ति जग विदित भवानी।।
द्वय भुज खड्ग कर्तिका राजे। द्वय भुज खप्पर कमल विराजे।।
सिर पर शिव अक्षोभ्य सोहे है। गले मुण्ड माला मोहे है।।
जय जय शिवे मातु त्रय लोचनी। विघ्न हरन त्रय ताप विमोचनी।।
चतुर्दशी अष्टमी मनोहर। तारा नाम जपहु अति सुन्दर।।
मन्त्र प्रभाव विदित संसारा। शिव जप कीन्ह जलंधर मारा।।
वेद पुरानन तव यश गाया। आगम निगम तुम्हारी माया।।
ब्रह्मा विष्णु वशिष्ठ मुनि ज्ञानी। तारा नाम की महिमा जानी।।
रामचन्द्र जब सुमिरहिं तारा। जीता लंक रावनहि मारा।।
दक्ष सुता शिव लता कहावा। दक्ष यज्ञ में नहीं बुलावा।।
दक्ष यज्ञ जब चली भवानी। रोके बहुविधि औघड़दानी।।
शिव रोक भई क्रोध कुमारी। दशो दिशा भागे त्रिपुरारी।।
दशों रूप तब शिवहिं दिखावा। मूल शक्ति का मरम बतावा।।
आदि शक्ति कालिका भवानी। षोडशी भुवनेश्वरी महारानी।।
छिन्नमस्तिका भैरवी माता। धूमावती जगत विख्याता।।
बगला नाम रटत जग सारा। मातंगी कमला जय तारा।।
यंह दश रूप तुम्हारा माता। दशो महाविद्या विख्याता।।
ओम् कारिणी ब्रह्म स्वरूपा। ह्रीम् कारिणी रूप अनूपा।।
स्मरहर स्त्रीम् कारिणी। हूँम् कारा सब दुख निवारिणी।।
फट् कारा जय मातु भवानी। कृपा करहु मो पर जग जानी।।

उग्रा उग्रापति नाशिनी। नील-सरस्वती ज्ञान प्रकाशिनी।।
एकजटा कैवल्य प्रदाता। जय जग जननी तारा माता।।
अष्टभुजी जै विन्ध्यवासिनी। शंभु प्रिया हिमगिरि निवासिनी।।
जय दुर्गा दुर्गति निवारिणी। कामाख्या भव सिंधु तारिणी।।
नाम तुम्हार अनन्त भवानी। दया करहु मो पर कल्याणी।।
चरण कमल तुम्हरे जो ध्यावे। ऋद्धि सिद्धि सुख सम्पत्ति पावे।।
ब्रह्मा विष्णु तुम्हे नित ध्यावे। शेष सुरेश चरण चित लावे।।
बन्ध्या नारि धरे जो ध्याना। पुत्र होइ तेहि इन्द्र समाना।।
मातु कृपा सब बाधा भागे। प्रेत रोग ग्रह कबहु न लागे।।
तुम्हरी महिमा अपरमपारा। सुर नर मुनि करते जयकारा।।
काय वचन मन सुमिरों तोही। बुद्धि विवेक ज्ञान देउ मोही।।
माता तुम अनन्त अविनाशी। शक्ति रूप घट घट की वासी।।
तारा चरण शरण जो आवे। उसका कष्ट तुरत कट जावे।।
सुमिरन मातु का करे हमेशा। ताहि निकट नही रहे कलेशा।।
जो कोई तुम्हरे चरित को गावे। मन वांछित फल तुरतहि पावे।।
जो कोई पाठ करे चित लाई। ता पर कृपा करहु तुम माई।।
दिव्यानन्दनाथ शरण निज जानी। करहु कृपा जगदम्ब भवानी।।

दोहा- **जो यह तारा चालीसा, पाठ करे मन लाय।**
तारा चरनन चित धरै, अष्ट पाश कट जाय।।
काली तारा षोडशी भुवनेश्वरी सानन्द।
मातंगी श्री भैरवी धूमावती प्रचंड।।
छिन्नमस्तिका श्रीबगला कमलात्मिका सुजान।
दशो रूप को नमन है देहु अभय वरदान।।
श्रीतारा सुमिरन करूं विनय करूं सिर नाय।
सकल मनोरथ पूर्ण हो चरण शरण मिल जाय।।

।। इति राजीव श्रीवास्तव "दिव्यानन्द नाथ विरचित तारा-चालीसा।।

।। तारिणी-आरती ।।

ॐ जय तारा माता, ॐ जय तारा माता।
सर्वेश्वरी विश्वेश्वरि सुख सम्पत्ति दाता।। ॐ जय......

प्रत्यालीढ़ पदा शव हृदयासन वारिणी।
व्याघ्र चर्म कटि धारिणी, भव बाध तारिणी।। ॐ जय......

शिव शव पद तर रखकर अट्टहास करती।
मुण्डमाल गले सोहे विघ्ननाश करती।। ॐ जय......

चतुर्भुजा त्रयनयना एकजटा मोहे।
लम्बोदरि अरू खर्वा सिर अक्षोभ्य सोहे।। ॐ जय......

खड्ग कमल खप्पर अरू कर्तिका कर सोहे।
यह छवि ध्यान धरत ही सुर नर मुनि मोहे।। ॐ जय......

काली तू, तारा तू, षोडशी भुवनेश्वरी।
मातंगी, धूमावती, भैरवी परमेश्वरी।। ॐ जय......

छिन्नमस्तिका तू ही, तू ही है बगला।
दशो महाविद्या तू, तू ही है कमला।। ॐ जय......

मूलाधार निवासिनी कुण्डलिनी है तू।
दिव्य प्रकाश प्रकाशिनी सहस्त्रार में तू।। ॐ जय......

सृष्टि प्रकाशिनी तू ही सृष्टि विनाशिनी तू।
काल स्वरूपा तू ही दुर्गति नाशिनी तू।। ॐ जय......

प्रणव स्वरूपा तू ही शक्ति प्रणव रूपा।
वधू स्वरूपिणी तू ही कूर्च अस्त्र रूपा।। ॐ जय......

ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट् यह मन्त्र तपा।
उसका संकट कटता जिसने मन्त्र जपा।। ॐ जय......

श्री तारा मां की आरती जो कोई गावे।
सब सुख भोग सुगति हो चरण शरण पावे।। ॐ जय......

।। इति राजीव श्रीवास्तव “दिव्यानन्द नाथ विरचित तारिणी आरती।।

।। महाकाली-आरती ।।

ॐ जै काली माता, ॐ जै काली माता।
अखिलेश्वरी सर्वेश्वरी, भव सागर त्राता।। ॐ जै.......

आलीढ़ा शव हृद पर, अट्टहास करती।
मेघ प्रभा श्यामांगी, विघ्ननाश करती।। ॐ जै.......

चतुर्भुजा त्रय नयना, मुक्त केश सोहे।
यह छवि ध्यान धरत ही, त्रिभुवन जन मोहे।। ॐ जै.......

खड्गकपाल धारणी, वर अरु अभय प्रदे।
मुण्डमाल गले सोहे, सृष्टि जननी वर दे।। ॐ जै.......

रक्तबीज संहारिणी, काल विलासिनी तू।
शब्द ब्रह्म तुमही, श्मशान निवासिनी तू।। ॐ जै.......

काली तारा षोडशी, भुवनेश्वरी है तू।
मातंगी धूमावती, भैरवी बगला तू।। ॐ जै.......

छिन्नमस्तिका कमला, यह दश रूप तेरा।
दशो दिशा शिव देखे, तेरा ही पहरा।। ॐ जै.......

हरि-हर-ब्रह्म स्वरूपा, दुर्गा रूप धरा।
चण्ड-मुण्ड संहारे, सुर भय हीन करा।। ॐ जै.......

मैं मतिमन्द कुबुद्धि, मां ध्यान करुँ तेरा।
क्षमहुं मातु कल्याणी, सब अवगुण मेरा।। ॐ जै.......

आदि अनादि अनन्त, तू मूल प्रकृति माया।
अपनी शरण में लेकर, दो अपनी छाया।। ॐ जै.......

मां काली की आरती, जो कोई गावे।
दिव्यानन्द कहत, सुनो! भवसागर तर जावे।। ॐ जै.......

। इति राजीव श्रीवास्तव "दिव्यानन्द नाथ विरचित महाकाली-आरती।।

।। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के महत्वपूर्ण ग्रन्थ।।

श्री एस. एन. खण्डेलवाल द्वारा अनुदित
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- श्रीसाम्बपुराण

श्री श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा लिखित एवं अनुदित
- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति-साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- स्पन्दकारिका

श्री सुधाकर मालवीय द्वारा अनुदित
- रुद्रयामल (1-2 भाग)
- शारदातिलक (1-2 भाग)
- मन्त्रमहोदधि
- सौन्दर्यलहरी

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित
- लक्ष्मी तन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- देवी रहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)

श्री राधेश्याम चतुर्वेदी द्वारा अनुदित
- तन्त्रालोक (1-5 भाग)
- स्वच्छन्दतन्त्र (1-2 भाग)
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकाल संहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा अनुदित
- त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड एवं महात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णवतन्त्र

श्री परमहंस मिश्र द्वारा अनुदित
- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ)

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित
- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या

अन्य पुस्तकें
- विज्ञान भैरव : बापूलाल आँजना
- सिद्धसिद्धान्तपद्धति : द्वारकादास शास्त्री
- श्रीकृष्ण की तान्त्रिक पूजा (तान्त्रिक अनुष्ठान-परक ग्रन्थ) : विष्णु के. आचार्य
- शङ्कराचार्य तान्त्रिकसाधना : रामचन्द्रपुरी
- तारिणी परिजात
- वामकेश्वरी मतम्
- विपरीत प्रत्यंगिर
- वटुकभैरवसपर्या
- श्रीतत्वचिन्तामणी
- त्रिपुरासार समुच्चय
- अनुष्ठान प्रकाश

वितरक
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज नई दिल्ली - 110002
फोन नं. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के-37/117, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी - 221001
फोन नं. 0542-2335263, 2335264

आगामी प्रकाश्य ग्रन्थ

सप्तशती-कल्पलता

प्रस्तुत ग्रन्थ अनेक वर्षों के अध्ययन एवं अनुभव का प्रसार है। विभिन्न शास्त्रीय एवं वैदिक प्रमाणों के आधार पर इस पुस्तक में, गौरि गणेश, कलश, मातृका, नान्दी श्राद्ध, नवग्रह, अधि, प्रत्याधि, पंचलोकपाल, दश दिग्पाल, योगिनी, क्षेत्रपाल, सर्वतोभद्रदेवता स्थापन, पात्र साधन, देवी पूजन दुर्गायंत्रार्च, शिव, भैरव पूजन, शुद्ध विधि से दुर्गासप्तशती पाठ, विस्तृत हवनविधि दिग्पालादि बलिदान तथा सप्तशती मंत्रों के अतिगोपनीय (मारण मोहनादि) प्रयोग, सप्तशती के कई मंत्रों का उद्धार, नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, अयुत चण्डी, लक्ष चण्डी, यज्ञकुण्ड आदि का पूर्ण शुद्ध विधि से निरूपण किया गया है।

फेत्कारिणी तन्त्रम्

भारतीय तंत्र साहित्य सिन्धु के अद्‌भुत रत्न स्वरूप षट्कर्म (वशीकरण-सम्मोहनादि) काली, तारा, धूमावती, लवण, दुर्गा, वन दुर्गा, जातवेद दुर्गा, उच्छिष्ट चाण्डालिनी, चेटक आदि के विलक्षण प्रयोग दिये गये हैं। भाष्यकार ने शुद्ध एवं परिष्कृत रूप से व्याख्यायित किया है। (शीघ्र प्रकाश्य)

श्मशान काली-सपर्या

प्रस्तुत पुस्तक में 'श्मशान काली' का सविधि अर्चन दिया गया है। साथ ही, शव साधना, चिता साधना, त्रिमुण्डी, पंच मुण्डीय साधना, लता साधना, विल्वमूल साधना, शय्या साधना आदि का विस्तृत विधान निरूपित किया गया है।

मधुसूदन प्रकाशन
पो.ओ. जाखचौरा, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
फोन नं. 9760219141, 9675314181

आगामी प्रकाश्य ग्रन्थ

सप्तशती तंत्रसार

श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चन

फेत्करणी तन्त्र

महाविद्या-प्रयोग

दीक्षा-प्रकाश

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो० ओ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरध्वनि : 9760219141, 9675314181, 9411184063

Printed by: Aisha Printing Press Dehradun. 0135-2650

आगामी प्रकाश्य ग्रन्थ

सप्तशती तंत्रसार

श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चन

फेत्करणी तन्त्र

महाविद्या-प्रयोग

दीक्षा-प्रकाश

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो0ओ0 जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरध्वनि : 9760219141, 9675314181, 9411184063

Printed by: Aisha Printing Press Dehradun. 0135-2650064